

श्री भगवत्-पुरुषदन्त-भूतबलि-प्रणीतः

षट्खंडागमः

क. १३८८८ B

२३/११/९०

श्रीवीरसेनाचार्य-विरचित-ध्वला-टीका-सम्बन्धितः ।

तस्य

प्रथम-खंडे जीवस्थाने

हिन्दीभाषानुवाद-तुलनात्मकटिप्पण-प्रस्तावनेकपरिशिष्टेः सम्पादिताः

अन्तर-भावाल्यबहुत्वानुगमाः ५

सम्पादकः

अमरावतीस्थ-किंग-एडवर्ड-कॉलेज-संस्कृताध्यापक, एम् ए, एल्. वी., इत्युपाधिवारी

हीरालालो जैनः

सहसम्पादकः

पं. हीरालालः सिद्धान्तशास्त्री, न्यायतीर्थः

संशोधने सहायकौ

व्या. वा., सा. स., पं. देवकीनन्दनः

सिद्धान्तशास्त्री

डा. नेमिनाथ-तनय-आदिनाथः

उपाध्याय., एम्. ए., डी. लिट्.

प्रकाशकः

श्रीमन्त सेठ शितावराय लक्ष्मीचन्द्र

जैन-साहित्योद्धारक-फंड-कार्यालय.

अमरावती (बरार)

वि. स. १९९९]

वीर-निर्वाण-संवत् २४६८

[ई. स. १९४२

मूल्यं रूप्यक-द्वादशकम्

खंड

१

भाग

६, ७, ८,

पुस्तक

५



प्रकाशन—

श्रीमन्त सेठ शिताबराय लक्ष्मीचन्द्र,
जैन-साहित्योद्धारक-फंड कार्यालय,
अमरावती (बरार).



मुद्रक—

टी. एम्. पाटील,
मैनेजर

सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, अमरावती (बरार).

विषय सूची

पृष्ठ	पृष्ठ
१-३	२
ग्राहकथन	
१	
प्रस्तावना	
Introduction	
१-२८	१-३५०
२ १-३०	१-१७९
३ ३०-३६	१८१-२३८
४ ३६-४३	२३९-३५०
५ ४४-५९	
६ ६०-६३	

३

परिशिष्ट	१-३८
१ अन्तरप्ररूपणा-सूत्रपाठ	१
भावप्ररूपणा-सूत्रपाठ	१७
अल्पबहुत्व-सूत्रपाठ	२१
२ अवतरण-गाथा-सूची	३३
३ न्यायोक्तिया	३४
४ प्रयोद्धेय	३४
५ परिभाषिक शब्दसूची	३५-३८



प्रश्नोत्तर

पटुलंगमका चौथा भाग इसी वर्ष जनवरीमें प्रकाशित हुआ था। उसके दृढ़ माह पश्चात् ही यह पाचवां भाग प्रकाशित हो रहा है। सिद्धान्त ग्रन्थोंके प्रकाशनके विरुद्ध जो आन्दोलन उठाया गया था वह, हर्ष है, अधिकांश जैनपत्र-सम्पादकों, अन्य जैन विद्वानों तथा पूर्व भागकी प्रस्तावनामें प्रकाशित हमारे विवेचनके प्रभावसे विलकुल ठंडा हो गया और उसकी अब कोई चर्चा नहीं चल रही है।

प्राचीन ग्रन्थोंके सम्पादन, प्रकाशन व प्रचारकी चार मंजिलें हैं— (१) मूल पाठका संशोधन (२) मूल पाठका शब्दशः अनुवाद (३) ग्रन्थके अर्थको सुस्पष्ट करनेवाला सुविस्तृत व स्वतंत्र अनुवाद (४) ग्रन्थके विषयको लेकर उसपर स्वतंत्र लेख व पुस्तकें आदि रचनायें। प्रस्तुत सम्पादन-प्रकाशनमें हमने इनमेंसे केवल प्रथम दो मंजिलें तय करनेका निश्चय किया है। तदनुसार ही हम यथाशक्ति मूल पाठके निर्णयका पूरा प्रयत्न करते हैं और फिर उसका हिन्दी अनुवाद यथाशक्य मूल पाठके क्रम, शैली व शब्दावलीके अनुसार ही रखते हैं। विषयको मूल पाठसे अधिक स्वतंत्रतापूर्वक खोलनेका हम साहस नहीं करते। जहां इसकी कोई विशेष ही आवश्यकता प्रतीत हुई वहां मूलानुगाभी अनुवादमें विस्तार न करके अलग एक छोटा मोटा विशेषार्थ लिख दिया जाता है। किन्तु इस स्वतंत्रतामें भी हम उत्तरोत्तर कमी करते जाते हैं, क्योंकि, वह यथार्थतः हमारी पूर्वोक्त सीमाओंके बाहरकी बात है। हम अनुवादको मूल पाठके इतने समीप रखनेका प्रयत्न करते हैं कि जिससे वह कुछ अंशमें संस्कृत छायाके अभावकी भी पूर्ति करता जाय, जैसा कि हम पहले ही प्रकट कर चुके हैं। जिन शब्दोंकी मूलमें अनुवृत्ति चली आती है वे यदि समीपवर्ती होनेसे सुज्ञेय हुए तो उन्हें भी वार वार दुहराना हमने ठीक नहीं समझा।

हमारी इस सुस्पष्ट नीति और सीमाको न समझ कर कुछ समालोचक अनुवादमें दोष दिखानेका प्रयत्न करते हैं कि अमुक वाक्य ऐसा नहीं, ऐसा लिखा जाना चाहिये था, या अमुक विषय स्पष्ट नहीं हो पाया, उसे और भी खोलना चाहिये था, इत्यादि। हमें इस बातका हर्ष है कि विद्वान् पाठकोंकी इन प्रशंसायें इतनी तीव्र रुचि प्रकट हो रही हैं। पर यदि वह रुचि सच्ची और स्थायी है तो उसके बलपर उपर्युक्त चार मंजिलोंमें से दो मंजिलोंकी भी पूर्ति अलगसे प्रयत्न होना चाहिये। प्रस्तुत प्रकाशनके सीमाके बाहरकी बात लेकर सम्पादनदिमें दोष दिखानेका प्रयत्न करना अनुचित और अन्याय है। जो समालोचनादि प्रकट हुए हैं उनसे हमें अपने कार्यमें आशातीत सफलता मिली हुई प्रतीत होती

है, क्योंकि, उनमें मूल पाठोंके निर्णयकी त्रुटियां तो नहीं के बराबर मिलती हैं, और अनुवादके भी मूलानुगामित्वमें कोई दोष नहीं दिखाये जा सके। हा, जहाँ शब्दोंकी अनुवृत्ति आदि जोड़ी गई है वहाँ कहीं कुछ प्रमाद हुआ पाया जाता है। पर एक ओर हम जब अपने अल्प ज्ञान, अल्प साधन-सामग्री और अल्प समयका, तथा दूसरी ओर इन महान् ग्रन्थोंके अतिगहन विषय-विवेचनका विचार करते हैं तब हमें आश्चर्य इस बातका बिलकुल नहीं होता कि हमसे ऐसी कुछ भूलें हुई हैं, बल्कि, आश्चर्य इस बातका होता है कि वे भूलें उक्त परिस्थितिमें भी इतनी अल्प हैं। इस प्रकार उक्त छिद्रान्वेषी समालोचकोंके लेखोंसे हमें अपने कार्योंमें अधिक दृढता और विश्वास ही उत्पन्न हुआ है और इसके लिये हम उनके हृदयसे कृतज्ञ हैं। जो अल्प भी त्रुटि या स्वल्पन जब भी हमारे दृष्टिगोचर होता है, तभी हम आगामी भागके शुद्धिपत्र व शका-समाधानमें उसका समावेश कर देते हैं। ऐसे स्वल्पनादिकी सूचना करनेवाले सज्जनोंके हम सदैव आभारी हैं। जो समालोचक अत्यन्त छोटी मोटी त्रुटियोंसे भी बचनेके लिये बड़ी बड़ी योजनाये सुझाते हैं, उन्हें इस बातका ध्यान रखना चाहिये, कि इस प्रकाशनके लिये उपलब्ध फंड बहुत ही परिमित है और इससे भी अधिक कठिनाई जो हम अनुभव करते हैं, वह है समयकी। दिनों दिन काल बड़ा कराल होता जाता है और इस प्रकारके साहित्यके लिये रुचि उत्तरोत्तर हीन होती जाती है। ऐसी अवस्थामें हमारा तो अब मत यह है कि जितने शीघ्र हो सके इस प्राचीन साहित्यको प्रकाशित कर उसकी प्रतियां सब ओर फैला दी जाय, ताकि उसकी रक्षा तो हो। छोटी मोटी त्रुटियोंके सुधारके लिये यदि इस प्रकाशनको रोका गया तो संभव है उसका फिर उद्धार ही न हो पावे और न जाने कैसा सकट आ उपस्थित हो। योजनाए सुझाना जितना सरल है, स्वीकार्यता के आजकल कुछ कर दिखाना उतना सरल नहीं है। हमारा समय, शक्ति, ज्ञान और साधन सब परिमित हैं। इस कार्यके लिये इससे अधिक साधन-सम्पन्न यदि कोई संस्था या व्यक्ति-विशेष इस कार्य-भारको अधिक योग्यताके साथ सहाय्यके प्रस्तुत हो तो हम सदैव यह कार्य उन्हें सौंप सकते हैं। पर हमारी सीमाओंमें फिर हाल और अधिक विस्तारकी गुंजाइश नहीं है।

प्रस्तुत खंडाशमें जीवस्थानकी आठ प्ररूपणाओंमें अन्तिम तीन प्ररूपणाए समाविष्ट हैं—अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व। इनमें क्रमशः ३९७, ९३ व ३८२ सूत्र पाये जाते हैं। इनकी टीकाओंमें क्रमशः लगभग ४८, ६५ तथा ७६ शका-समाधान आये हैं। हिन्दी अनुवादमें अर्थको स्पष्ट करनेके लिये क्रमशः १, २ और ३ विशेषार्थ लिखे गये हैं। तुलनात्मक व पाठभेद सवधी टिप्पणियोंकी सख्या क्रमशः २९९, ९३ और १४४ है। इस प्रकार इस ग्रन्थ-भागमें लगभग १८९ शका-समाधान, ६ विशेषार्थ और ५३६ टिप्पण पाये जावेंगे।

सम्पादन-व्यवस्था व पाठ-शोधनके लिये प्रतियोंका उपयोग पूर्ववत् चालू रहा।
पं. हीरालालजी शास्त्री यह कार्य नियतरूपसे कर रहे हैं। इस भागके मुद्रित फार्म

श्री पं. देवकीनन्दनजी सिद्धान्तशास्त्रीने विशेषरूपसे गर्भीके विराम-कालमें अवलोकन कर सशोचन भेजेनेकी कृपा की है, जिनका उपयोग शुद्धिपत्रमें किया गया है। कन्नडप्रशस्तिका सशोधन पूर्ववत् डा. ए. ए. एन. उपाध्येजीने करके भेजा है। प्रति-मिलानमें पं. वालचन्द्रजी शास्त्रीका सहयोग रहा है। इस प्रकार सब सहयोगियोंका साहाय्य पूर्ववत् उपलब्ध है, जिसेके लिये मैं उन सबका अनुगृहीत हूँ।

इस भागकी प्रस्तावनामें पूर्वप्रतिबानुसार डा. अवधेशनारायणजीके गणितसम्बन्धी लेखका अविकल हिन्दी अनुवाद दिया जा रहा है। इसका अनुवाद भरे पुत्र चिरंजीव प्रफुल्ल-कुमार बी. ए. ने किया था। उसे मैंने अपने सहयोगी प्रोफेसर काशीदत्तजी पांडेके साथ मिलाया और फिर डा. अवधेशनारायणजीके पास भेजकर सशोधित करा लिया है। इसके लिये इन सज्जनोंका मुझपर आभार है। चौथे भागके गणितपर भी एक लेख डा. अवधेशनारायणजी लिख रहे हैं। खेद है कि अनेक कौटुंबिक विपत्तियों और चिन्ताओंके कारण वे उस लेखको इस भागमें देनेके लिये तैयार नहीं कर पाये। अतः उसके लिये पाठकोंको अगले भागकी प्रतीक्षा करना चाहिये।

आजकल कागज, जिल्द आदिका सामान व मुद्रणादि सामग्रीके मिलनेमें असाधारण कठिनाईका अनुभव हो रहा है। कीमतेँ बेहद बढ़ी हुई हैं। तथापि हमारे निरन्तर सहायक और अद्वितीय साहित्यसेवी पं. नाथूरामजी प्रेमीके प्रयत्नसे हमें कोई कठिनाईका अनुभव नहीं हुआ। इस वर्ष उनके ऊपर पुत्रवियोगका जो कठोर वज्रपात हुआ है उससे हम और हमारी संस्थाके समस्त ट्रस्टी व कार्यकर्त्तागण अत्यन्त दुखी हैं। ऐसी अपूर्व कठिनाइयोंके होते हुए भी हम अपनी व्यवस्था और कार्यप्रगति पूर्ववत् कायम रखनेमें सफल हुए हैं, यह हम इस कार्यके पुण्यका फल ही समझते हैं। आगे जब जैसा हो, कहा नहीं जा सकता।

फ्रिग एडवर्ड कैलेज

अमरावती

२०-७-४२

हीरालाल जैन



पुस्तक



INTRODUCTION

This volume contains the last three prarūpanās, namely Antara, Bhāva and Alpa-bahutva, out of the eight prarūpanās of which the first five have been dealt with in the previous volumes. The Antara prarūpanā contains 397 Sūtras and deals with the minimum and maximum periods of time for which the continuity of a single soul (*eka jīva*) or souls in the aggregate (*nānā jīva*) in any particular spiritual stage (*Guṇa-ssthāna*) or soul-quest (*Mārgaṇā-ssthāna*) might be interrupted. It is, thus, a necessary counterpart of Kāla prarūpanā which, as we have already seen, devotes itself to the study of similar periods of time for which continuity in any particular state could uninterruptedly be maintained. The standard periods of time are, therefore, the same as in the previous prarūpanā. The first Guṇasthāna is never interrupted from the point of view of souls in the aggregate : e. there is no time when there might be no souls in this Guṇasthāna—some souls will always be at this spiritual stage. But a single soul might deviate from this stage for a minimum period of less than 48 minutes (Antara-muhūrta) or for a maximum period of slightly less than 132 Sāgaropamas. The second Guṇasthāna may claim no souls for a minimum period of one instant (*eka samaya*) or for a maximum period of an innumerable fraction of a palyopama, while a single soul might deviate from it in the minimum for an innumerable fraction of a palyopama and at the maximum for slightly less than an Ardhapudgala-parivartana. And so on with regard to all the rest of the Guṇasthānas and the Mārgaṇāsthānas. The commentator has explained at length how these periods are obtained by changes of attitude and transformations of life of the souls.

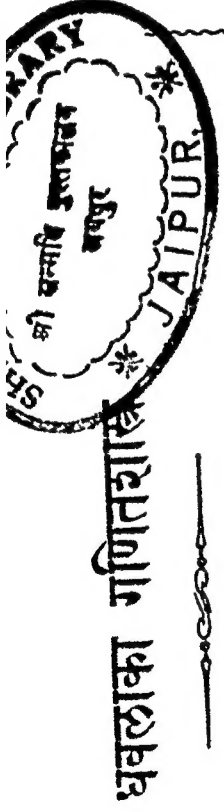
The Bhāva prarūpanā, in 93 Sūtras, deals with the mental dispositions which characterise each Guṇasthāna and Mārgaṇāsthāna. There are five such dispositions of which four arise from the Karmas heading for fruition (*udaya*) or pacification (*upaśama*) or destruction (*kshaya*) or partly destruction and partly pacification (*kshayopāśama*),

while the fifth arises out of the natural potentialities inherent in each soul (*pārvāmika*). Thus, the first Guṇasthāna is *audāryika*, the second *pārvāmika*, the third, fifth, sixth and seventh *kshāyopāśamika*, the fourth *upaśamika*, *kshāyika* or *kshāyopāśamika*, eighth, ninth and tenth *upaśamika* or *kshāyika*, eleventh *upaśamika* and the twelfth, thirteenth and fourteenth *kshāyika*. The commentary explains these at great length.

The eighth and last prarūpanā is Alpa-bahutva which, as its very name signifies, shows, in 382 Sūtras, the comparative numerical strength of the Guṇasthānas and the Mārgaṇāsthānas. It is here shown that the number of souls in the 8th, 9th and 10th *upaśamika* Guṇasthānas as well as in the 11th is the least of all and mutually equal. In the same three *Kṣhāpaka* Guṇasthānas and in the 12th, 13th and 14th, they are several times larger and mutually equal. This is the numerical order from the point of view of entries (*praveśa*) into the Guṇasthānas. From the point of view of the aggregates (*samcaya*) the souls at the 13th stage are several times larger than the last class, and similarly larger at each successive stage are those at the 7th and the 6th stage respectively. Innumerable larger than the last at each successive stage are those at the 5th and the 2nd stage, and the last is exceeded several times by those at the 3rd stage. At the 4th stage they are innumerable larger and at the 1st infinitely larger successively. The whole discussion shows how the exact sciences like mathematics have been harnessed into the service of the most speculative philosophy.

The results of these prarūpanās we have tabulated in charts, as before, and added them to the Hindi introduction





धवलाका गणितशास्त्र

(पुस्तक ४ में प्रकाशित डा. अवधेश नारायण सिंह,

लखनऊ यूनीवर्सिटी, के लेखका अनुवाद)

यह विदित हो चुका है कि भारतवर्षमें गणित-अकगणित, बीजगणित, क्षेत्रमिति आदिना अध्ययन अति प्राचीन कालमें किया जाता था। इस बातका भी अच्छी तरह पता चल गया है कि प्राचीन भारतवर्षीय गणितज्ञोंने गणितशास्त्रमें ठोस और सारगर्भित उन्नति की थी। यथार्थतः अर्वाचीन अकगणित और बीजगणितके जन्मदाता वे ही थे। हमें यह सोचनेका अभ्यास होगा है कि भारतवर्षकी विशाल जनसंख्यामेंसे केवल हिंदुओंने ही गणितका अध्ययन किया, और उन्हें ही इस विषयमें रुचि थी, और भारतवर्षीय जनसंख्याके अन्य भागों, जैसे कि बौद्ध व जैनोंने, उसपर विशेष ध्यान नहीं दिया। विद्वानोंके इस मतका कारण यह है कि अभी अभी तक बौद्ध वा जैन गणितज्ञोंद्वारा लिखे गये कोई गणितशास्त्रके ग्रन्थ ज्ञात नहीं हुए थे। किन्तु जैनियोंके आगमग्रन्थोंके अध्ययनसे प्रकट होता है कि गणितशास्त्रका जैनियोंमें भी गहरा आदर था। यथार्थतः गणित और ज्योतिष विद्याका ज्ञान जैन मुनियोंकी एक मुख्य सामाना ममता होती थी।

अब हमें यह विदित हो चुका है कि जैनियोंकी गणितशास्त्रकी एक शाखा दक्षिण भारतमें थी, और इस शाखाका कमसे कम एक ग्रन्थ, महावीरार्च्य-कृत गणितसारसंग्रह, उस समयकी अन्य उपलब्ध कृतियोंकी अपेक्षा अनेक बातोंमें श्रेष्ठ है। महावीरार्च्यकी रचना सन् ८५० की है। उनका यह ग्रन्थ सामान्य रूपरेखाओंमें ब्रह्मगुप्त, श्रीधराचार्य, भास्कर और अन्य हिन्दू गणितज्ञोंके ग्रन्थोंके समान होते हुए भी विशेष बातोंमें उनसे पूर्णतः भिन्न है। उदाहरणार्थ— गणितसारसंग्रहके प्रश्न (problems) प्रायः सभी दूसरे ग्रन्थोंके प्रश्नोंसे भिन्न हैं।

वर्तमानकालमें उपलब्ध गणितशास्त्रसंवन्धी साहित्यके आधारपरसे हम यह कह सकते हैं कि गणितशास्त्रकी महत्वपूर्ण शाखाएँ पाटलिपुत्र (पटना), उज्जैन, मैसूर, मलबार और संभवतः बनारस, तक्षशिला और कुछ अन्य स्थानोंमें उन्नतिशील थीं। जब तक आगे प्रमाण प्राप्त न हों, तब तक यह निश्चयपूर्ण नहीं कहा जा सकता कि इन शाखाओंमें परस्पर क्या

१ देगो-ममाती पुर, अमरदेश गरिनी दीन सहित, मृगसाजी आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित, १९९९, पृष्ठ ९०। जैनेकी इन उत्तराचन पटना अमेजी अनुवाद, थॉमसकोई १८९५, अध्याय ७, ८, १८.

संबंध था। फिर भी हमें पता चलता है कि भिन्न भिन्न शाखाओंसे आये हुए ग्रन्थोंकी सामान्य रूपरेखा तो एकसी है, किन्तु विस्तारसंबन्धी विशेष बातोंमें उनमें विभिन्नता है। इससे पता चलता है कि भिन्न भिन्न शाखाओंमें आदान-प्रदानका संबंध था, छात्रगण और विद्वान एक शाखासे दूसरी शाखाओंमें गमन करते थे, और एक स्थानमें किये गये आविष्कार शीघ्र ही भारतके एक कोनेसे दूसरे कोने तक विज्ञापित कर दिये जाते थे।

प्रतीत होता है कि बौद्ध धर्म और जैन धर्मके प्रचारने विविध विज्ञानों और कलाओंके अध्ययनको उत्तेजना दी। सामान्यतः सभी भारतवर्षीय धार्मिक साहित्य, और मुख्यतया बौद्ध व जैनसाहित्य, बड़ी बड़ी संख्याओंके उल्लेखोंसे परिपूर्ण है। बड़ी संख्याओंके प्रयोगने उन संख्याओंको लिखनेके लिये सरल संकेतोंकी आवश्यकता उत्पन्न की, और उसीसे दाशमिक क्रम (The place-value system of notation) का आविष्कार हुआ। अब यह बात निस्संशयरूपसे सिद्ध हो चुकी है कि दाशमिक क्रमका आविष्कार भारतमें ईसवी सन्के प्रारम्भ कालके लगभग हुआ था, जब कि बौद्धधर्म और जैनधर्म अपनी चरमोन्नति पर थे। यह नया अक-क्रम बड़ा शक्तिशाली सिद्ध हुआ, और इसीने गणितशास्त्रको गतिप्रदान कर के। यह नया अक-क्रम प्राप्त वैदिककालीन प्रारम्भिक गणितको विकासकी ओर बढ़ाया, और ब्राह्मिहिके ग्रन्थोंमें प्राप्त वैदिककालीन प्रारम्भिक गणितशास्त्रमें परिवर्तित कर दिया।

एक बड़ी महत्वपूर्ण बात, जो गणितके इतिहासकारोंकी दृष्टिमें नहीं आई, यह है कि यद्यपि हिन्दुओं, बौद्धों और जैनियोंका सामान्य साहित्य ईसासे पूर्व तीसरी व चौथी शताब्दीसे लगा-कर मध्यकालीन समय तक अविच्छिन्न है, क्योंकि प्रत्येक शताब्दीके ग्रन्थ उपलब्ध हैं, तथापि गणितशास्त्रसंबन्धी साहित्यमें विच्छेद है। यथार्थतः सन् ४९९ में रचित आर्यभटीयसे पूर्वकी गणितशास्त्रसंबन्धी रचना कदाचित् ही कोई हो। अपवादमें ब्रह्मसालि प्रति (Brahmsali-Manuscript) नामक वह अपूर्ण हस्तलिखित ग्रन्थ ही है जो संभवतः दूसरी या तीसरी शताब्दीकी रचना है। किन्तु इसकी उपलब्ध हस्तलिखित प्रतिसे हमें उस कालके गणित-ज्ञानकी स्थिति के विषयमें कोई विस्तृत वृत्तान्त नहीं मिलता, क्योंकि यथार्थमें वह आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त अथवा श्रीधर आदिके ग्रन्थोंके सदृश गणितशास्त्रकी पुस्तक नहीं है। वह कुछ चुने हुए गणितसंबन्धी प्रश्नोंकी व्याख्या अथवा टिप्पणीसी है। इस हस्तलिखित प्रतिसे हम केवल इतना ही अनुमान कर सकते हैं कि दाशमिकक्रम और तत्संबन्धी अकगणितकी मूल प्रक्रियायें उस समय अच्छी तरह विदित थीं, और पीछेके गणितज्ञोंद्वारा उल्लिखित कुछ प्रकारके गणित प्रश्न (problems) भी ज्ञात थे।

यह पूर्व ही बताया जा चुका है कि आर्यभटीयमें प्राप्त गणितशास्त्र विशेष उन्नत है, क्योंकि उसमें हमको निम्न लिखित विषयोंका उल्लेख मिलता है—वर्तमानकालीन प्राथमिक

अंकगणितके सत्र भाग जिनमें अनुपात, विनियम और व्याजके नियम भी सम्मिलित हैं, तथा सरल और वर्ग समीकरण, और सरल कुडक (indeterminate equations) की प्रक्रिया तकका बीजगणित भी है। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या आर्यभट्टने अपना गणितज्ञान विदेशसे ग्रहण किया, अथवा जो भी कुछ सामग्री आर्यभट्टीयमें अन्तर्हित है वह सब भारतवर्षकी ही मौलिक सम्पत्ति है ? आर्यभट्ट लिखते हैं “ ब्रह्म, पृथ्वी, चद्र, बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, बृहस्पति, शनि और नक्षत्रोंको नमस्कार करके आर्यभट्ट उस ज्ञानका वर्णन करता है जिसका कि यहाँ कुसुमपुरमें आदर है^१ । ” इससे पता चलता है कि उसने विदेशसे कुछ ग्रहण नहीं किया। दूसरे देशोंके गणितशास्त्रके इतिहासके अध्ययनसे भी यही अनुमान होता है, क्योंकि आर्यभटीय गणित संसारके किसी भी देशके तत्कालीन गणितसे बहुत आगे बढ़ा हुआ था। विदेशसे ग्रहण करनेकी संभावनाको इस प्रकार दूर कर देने पर प्रश्न उपस्थित होता है कि आर्यभट्टसे पूर्वकालीन गणितशास्त्रसंबन्धी कोई ग्रन्थ उपलब्ध क्यों नहीं है ? इस शकाका निवारण सरल है। दाशमिकक्रमका आविष्कार ईसवी सन्के प्रारम्भ कालके लगभग किसी समय हुआ था। इसे सामान्य प्रचारमें आनेके लिये चार पाँच शताब्दियां लग गई होगी। दाशमिकक्रमका प्रयोग करनेवाला आर्यभट्टका ग्रन्थ ही सर्वप्रथम अच्छा ग्रन्थ प्रतीत होता है। आर्यभट्टके ग्रन्थसे पूर्वके ग्रन्थोंमें या तो पुरानी सख्यापद्धतिका प्रयोग था, अथवा, वे समयकी कसौटी पर ठीक उतरने लायक अच्छे नहीं थे। गणितकी दृष्टिसे आर्यभट्टकी विस्तृत ल्यातिका कारण, भरे मतानुसार, बहुतायतसे यही था कि उन्होंने ही सर्वप्रथम एक अच्छा ग्रन्थ रचा, जिसमें दाशमिकक्रमका प्रयोग किया गया था। आर्यभट्टके ही कारण पुरानी पुस्तके अप्रचलित और धिलीन हो गईं। इससे साफ पता चल जाता है कि सन् ४९९ के पश्चात् लिखी हुईं तो हमें इतनी पुस्तकें मिलती हैं, किन्तु उसके पूर्वके कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

इस प्रकार सन् ५०० ईसवीसे पूर्वके भारतीय गणितशास्त्रके विकास और उन्नतिका चित्रण करनेके लिये वास्तवमें कोई साधन हमारे पास नहीं है। ऐसी अवस्थामें आर्यभट्टसे पूर्वके भारतीय गणितज्ञानका बोध करानेवाले ग्रंथोंकी खोज करना एक विशेष महत्वपूर्ण कार्य हो जाता है। गणितशास्त्रसंबन्धी ग्रन्थोंके नष्ट हो जानेके कारण सन् ५०० के पूर्व-कालीन भारतीय गणितशास्त्रके इतिहासका पुनः निर्माण करनेके लिये हमें हिंदुओं, बौद्धों और

१ नमस्कृतविभुधर्मपुरविक्रमजयकोशप्रमाणसम्बद्ध।

आर्यभट्टस्त्वह निगदति कुसुमपुरेऽन्यचित्तं ज्ञानम् ॥ आर्यभटीय २, १

महर्षिभिनक्षत्रगणनसम्बद्ध कुसुमपुरे कुसुमपुराणोऽस्मिन्देवे अन्यचित्तं ज्ञानं कुसुमपुरासिभिः पूजितं महर्षिज्ञानसाधनभूतं तन्मार्गमदो निगदति। (परमेश्वरार्चार्थकृत टीका)

जैनियोंके साहित्यकी, और विशेषतः धार्मिक साहित्यकी, छानबीन करना पड़ती है। अनेक पुराणोंमें हमें ऐसे भी खंड मिलते हैं जिनमें गणितशास्त्र और ज्योतिषविद्याका वर्णन पाया जाता है। इसी प्रकार जैनियोंके अधिकांश आगमग्रन्थोंमें भी गणितशास्त्र या ज्योतिषविद्याकी कुछ न कुछ सामग्री मिलती है। यही सामग्री भारतीय परम्परागत गणितकी द्योतक है, और वह उस ग्रन्थसे जिसमें वह अन्तर्भूत है, प्रायः तीन चार शताब्दियों पुरानी होती है। अतः यदि हम सन् ४०० से ८०० तककी किसी धार्मिक या दार्शनिक कृतिमी परीक्षा करें तो उसका गणितशास्त्रीय विवरण ईसवीके प्रारंभसे सन् ४०० तकका माना जा सकता है।

उपर्युक्त निरूपणके प्रकाशमें ही हम इस नौवीं शताब्दीके प्रारम्भकी रचना षट्खंडागमकी टीका धवलाकी खोजको अत्यन्त महत्वपूर्ण समझते हैं। श्रुतुत हीरालाल जैनने इस ग्रन्थका सम्पादन और प्रकाशन करके विद्वानोंको स्थायीरूपसे कृतज्ञताका ऋणी बना लिया है।

गणितशास्त्रकी जैनशाखा

सन् १९१२ में रणार्च्यद्वारा गणितसारसग्रहकी खोज और प्रकाशनके समयसे विद्वानोंको आभास होने लगा है कि गणितशास्त्रकी ऐसी भी एक शाखा रही है जो कि पूर्णतः जैन विद्वानोंद्वारा चलाई जाती थी। हालहीमें जैन आगमके कुछ ग्रन्थोंके अध्ययनसे जैन गणितज्ञ और गणितग्रन्थोंसंबन्धी उल्लेखोंका पता चला है^१। जैनियोंका धार्मिक साहित्य चार भागोंमें विभाजित है जो अनुयोग, (जैनधर्मके) तत्वोंका स्पष्टीकरण, कहलाते हैं। उनमेंसे एकका नाम करणानुयोग या गणितानुयोग, अर्थात् गणितशास्त्रसंबन्धी तत्वोंका स्पष्टीकरण, है। इसीसे पता चलता है कि जैनधर्म और जैनदर्शनमें गणितशास्त्रजो कितना उच्च पद दिया गया है।

यद्यपि अनेक जैन गणितज्ञोंके नाम ज्ञात हैं, परन्तु उनकी कृतियाँ लुप्त हो गई हैं। उनमें सबसे प्राचीन भद्रबाहु हैं जो कि ईसासे २७८ वर्ष पूर्व स्वर्ग सिधारे। वे ज्योतिष विद्याके दो ग्रन्थोंके लेखक माने जाते हैं (१) सूर्यप्रज्ञप्तिकी टीका, और (२) भद्रबाहुवी संहिता नामक एक मौलिक ग्रन्थ। मलयगिरि (लगभग ११५० ई.) ने अपनी सूर्यप्रज्ञप्तिकी टीकामें इनका उल्लेख किया है, और भट्टोत्पल^२ (९६६) ने उनके ग्रन्थावतरण दिये हैं। सिद्धसेन नामक एक दूसरे ज्योतिषीके ग्रन्थावतरण वराहमिहिर (५०५) और भट्टोत्पल द्वारा दिये गये

१ देखो— रणार्च्य द्वारा सम्पादित गणितसारसग्रहकी प्रस्तावना, डी. ई. स्मिथद्वारा लिखित, मद्रास, १९१२

२ बी. दत्तः गणितशास्त्रीय जैन शाखा, बुलेटिन कलकत्ता गणितसोसायटी, जिल्द २१ (१९१९), पृष्ठ ११५ से १४५.

३ बृहत्संहिता, एस. दिवेदीद्वारा सम्पादित, बनारस, १८९५, पृ. २२६

है। अभाग्यी और प्राकृत भाग्यों लिये हुए गणितसम्बन्धी उल्लेख अनेक ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं। भाग्योंमें इसप्रकारके बहुतमध्यक अवतरण विद्यमान हैं। इन अवतरणोंपर यथास्थान विचार किया जायगा। किन्तु यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि ये अवतरण निःसंशयरूपसे सिद्ध करते हैं कि जैन विद्वानोंद्वारा लिये गये गणितग्रंथ ये जो कि अब लुप्त हो गये हैं। क्षेत्रसमाप्त और सृणभावनोक्त नामसे जैन विद्वानोंद्वारा लिखित ग्रंथ गणितशास्त्रसम्बन्धी ही थे। पर अब हमें ऐसे कोई ग्रंथ प्राप्य नहीं हैं। हमारा जैन गणितशास्त्रसम्बन्धी अत्यन्त खडित ज्ञान स्थानागम सूत्र, उपास्यतिष्ठत तत्त्वार्थधामसूत्रमाध्य, सूर्यप्रबोधि, अनुयोगद्वारसूत्र, शिलोक्तप्रबोधि, शिलोक्तसार आदि गणितेतर ग्रन्थोंमें संकलित है। अब इन ग्रन्थोंमें ध्वलाका नाम भी जोड़ा जा सकता है।

ध्वलाका महत्त्व

ध्वला नौवीं सदी के प्रारंभमें वीरसेन द्वारा लिखी गई थी। वीरसेन तत्वज्ञानी और धार्मिक रत्नपुराण थे। वे प्रस्तुतः गणितज्ञ नहीं थे। अतः जो गणितशास्त्रीयसामग्री ध्वलाके अन्तर्गत है, वह उनसे पूर्ववर्ती लेखकोंकी कृति कही जा सकती है, और मुख्यतया पूर्वगत टीकाकारोंकी, जिनमेंसे पांचका इन्द्रनन्दीने अपने श्रुतावतारमें उल्लेख किया है। ये टीकाकार कुदकुंद, शामकुंद, तुमुल्लू, समन्तभद्र और वणदेव थे, जिनमेंसे प्रथम लगभग सन् २०० के और अन्तिम सन् ६०० के लगभग हुए। अतः ध्वलाकी अधिकांश गणितशास्त्रीयसामग्री सन् २०० से ६०० तकके बीचके समयकी मानी जा सकती है। इस प्रकार भारतवर्षीय गणितशास्त्रके इतिहासकारोंके लिये ध्वला प्रथम श्रेणीका महत्वपूर्ण ग्रंथ हो जाता है, क्योंकि उसमें हमें भारतीय गणितशास्त्रके इतिहासके सबसे अधिक अधिकांशपूर्ण समय, अर्थात् पाचवी शताब्दीसे पूर्वकी बातें मिलती हैं। विशेष अन्वयनसे यह बात और भी पुष्ट हो जाती है कि ध्वलाकी गणितशास्त्रीय सामग्री सन् ५०० से पूर्वकी है। उदाहरणार्थ— ध्वलामें वर्णित अनेक प्रक्रियायें किसी भी अन्य ज्ञात ग्रन्थमें नहीं पाई जातीं, तथा इसमें कुछ ऐसी स्थूलताका आभास भी है जिसकी सत्यक पश्चात्के भारतीय गणितशास्त्रसे परिचित विद्वानोंको सरलतासे मिल सकती है। ध्वलाके गणितभागमें यह परिपूर्णता और परिष्कार नहीं है जो आर्यभटीय और उसके पश्चात्के ग्रंथोंमें है।

ध्वलान्तर्गत गणितशास्त्र

संख्याएं और संकेत—ध्वलाकार दाशमिकक्रमसे पूर्णतः परिचित हैं। इसके प्रमाण

१ श्लोकान्ने सूत्रनामसूत्र, स्मयान्नगन अनुयोगद्वार, श्लोक २८, पर अपनी टीकामें सगसन्धी (regarding permutations and combinations) तीन नियम उद्धृत किये हैं। ये नियम भी जैन गणित ग्रन्थोंमें लिये गये जान पड़ते हैं।

सर्वत्र उपलब्ध होते हैं। हम यहाँ ध्वलाके अन्तर्गत अवतरणोंसे ली गई संख्याओंको व्यक्त करनेकी कुछ पद्धतियोंको उपस्थित करते हैं—

(१) ७९९९९९९८ को ऐसी संख्या कहा है कि जिसके आदिमें ७, अन्तमें ८ और मध्यमें छह बार ९ की पुनरावृत्ति है।

(२) ४६६६६६६६ व्यक्त किया गया है—चौसठ, छह सौ, छयासठ हजार, छयासठ लाख, और चार करोड़।

(३) २२७९९४९८ व्यक्त किया गया है—दो करोड़, सत्ताइस, नित्यान्वे हजार, चारसौ और अन्तान्वे।

इनमेंसे (१) में जिस पद्धतिका उपयोग किया है वह जैन साहित्यमें अन्य स्थानोंमें भी पायी जाती है, और गणितसारसंग्रहमें भी कुछ स्थानोंमें है। उससे दाशमिकक्रमका सुपरिचय सिद्ध होता है। (२) में छोटी संख्याएं पहले व्यक्त की गई हैं। यह संस्कृत साहित्यमें प्रचलित साधारण रीतिके अनुसार नहीं है। उसी प्रकार यहाँ संकेत-क्रम सौ है, न कि दश जो कि साधारणतः संस्कृत साहित्यमें पाया जाता है। किन्तु पाली और प्राकृतमें सौ का क्रम ही प्रायः उपयोगमें लाया गया है। (३) में सबसे बड़ी संख्या पहले व्यक्त की गई है। अवतरण (२) और (३) स्पष्टतः भिन्न स्थानोंसे लिये गये हैं।

बड़ी संख्यायें—यह सुविधित है कि जैन साहित्यमें बड़ी संख्यायें बहुतायतसे उपयोगमें आई हैं। ध्वलामें भी अनेक तरहकी जीवराशियों (द्रव्यप्रमाण) आदि पर तर्क वितर्क है। निश्चितरूपसे लिखी गई सबसे बड़ी संख्या पर्याप्त मनुष्योंकी है। यह संख्या ध्वलामें दो के छठे वर्ग और दो के सातवें वर्गके बीचकी, अथवा और भी निश्चित, कोटि-कोटि-कोटि और कोटि-कोटि-कोटि-कोटिके बीचकी कही गई है। याने—

२२^६ और २२^७ के बीचकी। अथवा, और अधिक नियत—(१,००,००,०००)^३ और (१,००,००,०००)^४ के बीचकी। अथवा, सर्वथा निश्चित—२२^५ × २२^६। इन जीवोंकी संख्या अन्य मतानुसार ७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६ है।

१. ध माग ३, पृष्ठ ९८, गाथा ५१। देखो गोमटसार, जीवकांड, पृष्ठ ६३३.

२. ध माग ३, पृ. ९९, गाथा ५२. ३ ध माग ३, पृ. १००, गाथा ५३.

४ देखो—गणितसारसंग्रह १, २७. और मी देखो—दत्त और सिद्धका हिन्दूगणितशास्त्रा इतिहास, खंड १, लाहौर १९३५, पृ १६.

५ दत्त और सिंह, पूर्ववत्, पृ. १४.

७ गोमटसार, जीवकांड, (मे. बु. जै सीरीज) पृ. १०४.

यह संख्या उन्तीस अंक ग्रहण करती है। इसमें भी उतने ही स्थान हैं जितने कि (१,००,००,०००) में, परन्तु है वह उससे बड़ी संख्या। यह बात धवलाकारको ज्ञात है, और उन्होंने मनुष्यक्षेत्रका क्षेत्रफल निकालकर यह सिद्ध किया है कि एक संख्याके मनुष्य मनुष्यक्षेत्रमें नहीं समा सकते, और इसलिये उस संख्यावाला मत ठीक नहीं है।

मौलिक प्रक्रियायें

धवलायें जोड़, बाकी, गुणा, भाग, वर्गमूल और घनमूल निकालना, तथा संख्याओंका घात निकालना (The raising of numbers to given powers) आदि मौलिक प्रक्रियाओंका कथन उपलब्ध है। ये क्रियाएं पूर्णांक और भिन्न, दोनोंके संबंधमें कही गई हैं। धवलायें वर्णित घातांकका सिद्धान्त (Theory of indices) दूसरे गणित ग्रंथोंसे कुछ कुछ भिन्न है। निम्नतः यह सिद्धान्त प्राथमिक है, और सन् ५०० से पूर्वका है। इस सिद्धान्तसंबन्धी मौलिक विचार निम्नलिखित प्रक्रियाओंके आधारपर प्रतीत होते हैं:—(१) वर्ग, (२) घन, (३) उत्तरोत्तर वर्ग, (४) उत्तरोत्तर घन, (५) किसी संख्याका संख्यातुल्य घात निकालना (The raising of numbers to their own power), (६) वर्गमूल, (७) घनमूल, (८) उत्तरोत्तर वर्गमूल, (९) उत्तरोत्तर घनमूल, आदि। अन्य सब घातांक इन्हीं रूपोंमें प्रगट किये गये हैं।

उदाहरणार्थ— a^3 को a के घनका प्रथम वर्गमूल कहा है। a^2 को a का घनका घन कहा है। a^4 को a के घनका वर्ग, या वर्गका घन कहा है, इत्यादि। उत्तरोत्तर वर्ग और घनमूल नीचे लिखे अनुसार हैं—

a का प्रथम वर्ग	याने	$(a)^2 = a^2$
" द्वितीय वर्ग	"	$(a^2)^2 = a^4 = a^{2^2}$
" तृतीय वर्ग	"	a^{2^3}
" न वर्ग	"	a^{2^4}
उसी प्रकार— a का प्रथम वर्गमूल	याने	$a^{\frac{1}{2}}$
" द्वितीय	"	$a^{\frac{1}{4}}$
" तृतीय	"	$a^{\frac{1}{8}}$
" न	"	$a^{\frac{1}{16}}$

१ धवला, भाग ३, पृष्ठ, ५३

वर्गित-संवर्गित

परिभाषिक शब्द वर्गित-संवर्गितका प्रयोग किसी संख्याका संख्यातुल्य घात करनेके अर्थमें किया गया है।

उदाहरणार्थ— n न का वर्गितसंवर्गितरूप है।

इस सम्बन्धमें धवलायें विरलन-देय 'फैलाना और देना' नामक प्रक्रियाका उल्लेख आया है। किसी संख्याका 'विरलन' करना व फैलाना अर्थात् उस संख्याको एकएकमें अलग करना है। जैसे, न के विरलनका अर्थ है—

१११११.न बार

'देय' का अर्थ है उपर्युक्त अंकोंमें प्रत्येक स्थान पर एककी जगह न (विवक्षित संख्या) को रख देना। फिर उस विरलन-देयसे उपलब्ध संख्याओंको परस्पर गुणा कर देनेसे उस संख्याका वर्गित-संवर्गित प्राप्त हो जाता है, और यही उस संख्याका प्रथम वर्गित-संवर्गित कहलाता है। जैसे, न का प्रथम वर्गित-संवर्गित n^2 है।

विरलन-देयकी एकवार पुनः प्रक्रिया करनेसे, अर्थात् n^2 को लेकर वही विधान फिर करनेसे, द्वितीय वर्गित-संवर्गित (n^4) प्राप्त होता है। इसी विधानको पुनः एकवार करनेसे

न का तृतीय वर्गित-संवर्गित $\left\{ \begin{matrix} n^4 \\ n^8 \end{matrix} \right\} \left\{ \begin{matrix} n^8 \\ n^{16} \end{matrix} \right\}$ प्राप्त होता है।

धवलायें उक्त प्रक्रियाका प्रयोग तीन बारसे अधिक अपेक्षित नहीं हुआ है। किन्तु, तृतीय वर्गितसंवर्गितका उल्लेख अनेकवार^१ बड़ी संख्याओं व असंख्यात व अनन्तके संबंधमें किया गया है। इस प्रक्रियासे कितनी बड़ी संख्या प्राप्त होती है, इसका ज्ञान इस बातसे हो सकता है कि २ का तृतीयवार वर्गितसंवर्गित रूप $2^{2^{2^6}}$ हो जाता है।

घातांक सिद्धान्त

उपर्युक्त कथनसे स्पष्ट है कि धवलाकार घातांक सिद्धान्तसे पूर्णतः परिचित थे। जैसे—

$$(१) \quad a^m \cdot a^n = a^{m+n}$$

$$(२) \quad a^m / a^n = a^{m-n}$$

$$(३) \quad (a^m)^n = a^{mn}$$

उक्त निदान्तोंके प्रयोगसमन्वयी उदाहरण ध्वलामें अनेक हैं। एक रोचक उदाहरण निम्न प्रमाणका है— कहा गया है कि २ के ७ वें वर्गमें २ के छठों वर्गका भाग देनेसे २ का छठाँ वर्ग ल-ग आता है। अर्थात्—

$$2^{2^7} / 2^{2^6} = 2^{2^6}$$

जग दागमिरुक्तमका ज्ञान नहीं हो पाया था तब द्विगुणक्रम और अर्धक्रमकी प्रक्रियाएँ (The operations of duplation and mediation) महत्वपूर्ण समझी जाती थीं। भारतीय गणितशास्त्रके ग्रंथोंमें इन प्रक्रियाओंका कोई चिह्न नहीं मिलता। किन्तु इन प्रक्रियाओंको भिन्न और यूनानके गिवासी महत्वपूर्ण गिनते थे, और उनके अरुणितसवधी ग्रंथोंमें वे तदनुसार स्वीकार की जाती थीं। धन्यमें इन प्रक्रियाओंके चिह्न मिलते हैं। दो या अन्य संख्याओंके उत्तरोत्तर वर्गीकरणका विचार निश्चयतः द्विगुणक्रमकी प्रक्रियासे ही परिपुष्टित हुआ होगा, और यह द्विगुण तमकी प्रक्रिया दाशमिकक्रमके प्रचासे पूर्व भारतवर्षमें अवश्य प्रचलित रही होगी। उसी प्रकार अर्धक्रम पद्धतिता भी पता चलना है। ध्वलामें इस प्रक्रियाको हम २, ३, ४ आदि आधार-वाले लघुरिचय सिद्धान्तमें साधारणीकृत पाते हैं।

लघुरिचय (Logarithm)

ध्वलामें निम्न पारिभाषिक शब्दोंके लक्षण पाये जाते हैं—

(१) अर्धच्छेद— जितनी बार एक संख्या उत्तरोत्तर आधी की जा सकती है, उतने उस संख्याके अर्धच्छेद कहे जाते हैं। जैसे— २^म के अर्धच्छेद = म

अर्धच्छेदका सन्नेत अछे मान कर हम इसे आधुनिक पद्धतिमें इस प्रकार रख सकते हैं—
क का अछे (या अछे क) = लरि क। यहा लघुरिचयका आधार २ है।

(२) वर्गशालाका— किसी संख्याके अर्धच्छेदोंके अर्धच्छेद उस संख्याकी वर्गशाला होती है। जैसे— क की वर्गशालाका = क का अछे अछे क = लरि क। यहा लघुरिचयका आधार २ है।

(३) त्रिकच्छेद— जितने बार एक संख्या उत्तरोत्तर ३ से विभाजित की जाती है, उतने उस संख्याके त्रिकच्छेद होते हैं। जैसे— क के त्रिकच्छेद = त्रिछे क = लरि ३क। यहा लघुरिचयका आधार ३ है।

१ ध्वला माग ३, पृ. २५३ आदि

३ ध्वला माग ३, पृ. ५६

२ ध्वला माग ३, पृ. २१ आदि

३ ध्वला माग ३, पृ. २१ आदि

(४) चतुर्थच्छेद— जितने बार एक संख्या उत्तरोत्तर ४ से विभाजित की जा सकती है, उतने उस संख्याके चतुर्थच्छेद होते हैं। जैसे— क के चतुर्थच्छेद = चछे क = लरि ४ क। यहा लघुरिचयका आधार ४ है।

ध्वलामें लघुरिचयसवधी निम्न परिणामोंका उपयोग किया गया है—

(१)^३ लरि (म.न) = लरि म — लरि न

(२) लरि (म. न) = लरि म + लरि न

(३)^३ २ लरि म = म। यहा लघुरिचयका आधार २ है।

(४)^४ लरि (क.क)^२ = २ क लरि क

(५)^५ लरि लरि (क.क)^२ = लरि क + १ + लरि लरि क,
(वाई ओर) = लरि (२ क लरि क)

= लरि क + लरि २ + लरि लरि क

= लरि क + १ + लरि लरि क।

चूँकि लरि २ = १, जब कि आधार २ है।

(६)^६ लरि (क.क) = क.क लरि क.क

(७) मानलो अ एक संख्या है, तो—

अ का प्रथम वर्गित-सर्वर्गित = अ^२ = व (मानलो)

” द्वितीय ” = व^२ = म ”

” तृतीय ” = म^२ = म ”

ध्वलामें निम्न परिणाम दिये गये हैं—

(क) लरि व = अ लरि अ

(ख) लरि लरि व = लरि अ + लरि लरि अ

(ग) लरि म = व लरि व

१ मला, माग ३, पृ. ५६. २ ध्वला, माग ३, पृ. ६०. ३ ध्वला, माग ३, पृ. ५५.

४ ध्वला, माग ३, पृ. २१ आदि ५ पूर्ववत्.

६ पूर्ववत्। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि ग्रंथमें ये लघुरिचय पूर्णतः त्रुटि ही परिमित नहीं हैं।

संख्या क कोई भी संख्या हो सकती है। क^२ प्रथम वर्गितसर्वर्गित राशि और (क^२) द्वितीय वर्गित-सर्वर्गित राशि है।
७ ध्वला, माग ३, पृ. २१-२४.

- (घ) लरि लरि म = लरि व + लरि लरि व
= लरि अ + लरि लरि अ + अ लरि अ
- (ङ) लरि म = म लरि म
- (च) लरि लरि म = लरि म + लरि लरि म । इत्यादि
- (८)^१ लरि लरि म < व'

इस असाध्यतासे निम्न असाध्यता आती है—

व लरि व + लरि व + लरि लरि व < व'

भिन्न— अङ्गगणितमे भिन्नोक्तौ मौलिक प्रक्रियाओ, जिनका ज्ञान धवलामें ग्रहण कर लिया गया है, के अतिरिक्त यहा हम भिन्नसंबंधी अनेक ऐसे रोचक सूत्र पाते है जो अन्य किसी गणितसंबंधी ज्ञात ग्रन्थमें नहीं मिलते । इनमें निम्न लिखित उल्लेखनीय है—

$$(१)^१ \frac{न'}{न \pm (न/प)} = न \mp \frac{न}{प \pm १}$$

(२)^१ मान लो कि किसी एक सख्या म में द, द' ऐसे दो भाजको का भाग दिया गया और उनसे क्रमशः क और क' ये दो लब्ध (या भिन्न) उत्पन्न हुए । निम्न लिखित सूत्रमे म के द + द' से भाग देने का परिणाम दिया गया है—

$$\frac{म}{द + द'} = \frac{क'}{(क/क) + १}$$

$$\text{अथवा} = \frac{क}{१ + (क/क')}$$

$$(३)^१ \text{ यदि } \frac{म}{द} = क, \text{ और } \frac{म'}{द} = क', \text{ तो } — द (क-क') + म' = म$$

$$(४)^१ \text{ यदि } \frac{अ}{व} = क, \text{ तो } — \frac{अ}{व + \frac{क}{न}} = क - \frac{क}{न + १};$$

१ धवला, माग ३, पृ. २४

३ धवला, माग ३, पृ. ४६

५ माग ३, पृ. ४६, गाथा २४

२ धवला, माग ३, पृ. ४६

४ धवला, माग ३, पृ. ४७, गाथा २७.

$$\text{और } \frac{अ}{व - \frac{न}{न}} = क + \frac{क}{न - १}$$

$$(५)^१ \text{ यदि } \frac{अ}{व} = क, \text{ तो } — \frac{अ}{व + स} = क - \frac{क}{व + १}$$

$$\text{और } \frac{अ}{व - स} = क + \frac{क}{व - १}$$

$$(६)^१ \text{ यदि } \frac{अ}{व} = क, \text{ और } \frac{अ}{व'} = क + स, \text{ तो } —$$

$$व' = व - \frac{क}{स} + १;$$

$$\text{और यदि } \frac{अ}{व'} = क - स, \text{ तो } — व' = व + \frac{क}{स} - १$$

$$(७)^१ \text{ यदि } \frac{अ}{व} - क, \text{ और } \frac{अ}{व'} \text{ दूसरा भिन्न है, तो } —$$

$$\frac{अ}{व} - \frac{अ}{व'} = क \left(\frac{व' - व}{व'} \right)$$

$$(८)^१ \text{ यदि } \frac{अ}{व} = क, \text{ और } \frac{अ}{व + ख} = क - स, \text{ तो } — ख = \frac{व स}{क - स}$$

$$(९)^१ \text{ यदि } \frac{अ}{व} = क, \text{ और } \frac{अ}{व - ख} = क + स, \text{ तो } — ख = \frac{व स}{क + स}$$

$$(१०)^१ \text{ यदि } \frac{अ}{व} = क, \text{ और } \frac{अ}{व + स} = क', \text{ तो } — क' = क - \frac{क स}{व + स}$$

१ माग ३, पृ. ४६, गाथा २४

३ माग ३, पृ. ४६, गाथा २८.

५ माग ३, पृ. ४९, गाथा ३०

२ माग ३, पृ. ४६, गाथा २५.

४ माग ३, पृ. ४८, गाथा २९.

६ माग ३, पृ. ४९, गाथा ३१

$$(११)' \text{ यदि } \frac{अ}{ब} = क, \text{ और } \frac{अ}{ब-स} = क', \text{ तो- } क' = क + \frac{क स}{ब-स}$$

ये सच परिणाम वाक्योके अन्तर्गत अवतरणोंमें पाये जाते हैं। वे किसी भी गणित-संस्था की उन्नत प्रथमों नहीं भिन्नते। ये अवतरण अर्धमागधी अथवा प्राकृत प्रयोगोंके हैं। अनुमान यही होता है कि ये सच किन्हीं गणितसम्बन्धी जैन ग्रन्थोंसे, अथवा पूर्ववर्ती टीकाओंसे लिये गये हैं। ये अंगगणितकी किसी सारभूत प्रक्रियाका निरूपण नहीं करते। वे उस कालके स्मारकप्रदेश हैं न कि भाग एक कठिन और श्रमसाध्य विधान समझा जाता था। ये नियम निश्चिततः उस काल के हैं जब कि दाशमिक-क्रमका अंगगणितकी प्रक्रियाओंमें उपयोग सुगमचलित नहीं हुआ था।

त्रैराशिक— त्रैराशिक क्रियाका ध्वलमें अनेक स्थानों पर उल्लेख और उपयोग किया गया है। इस प्रक्रियासंबन्धी परिभाषिक शब्द हैं— फल, इच्छा और प्रमाण— ठीक वही जो उन्नत प्रयोगोंमें भिन्नते हैं। इससे अनुमान होता है कि त्रैराशिक क्रियाका ज्ञान और व्यवहार भारतवर्षमें दाशमिक क्रमके आविष्कारसे पूर्व भी वर्तमान था।

अनन्त

बड़ी संख्याओंका प्रयोग—‘अनन्त’ शब्दका विविध अर्थोंमें प्रयोग सभी प्राचीन जातियोंके साहित्यमें पाया जाता है। किन्तु उसकी ठीक परिभाषा और समझदारी बहुत पीछे आई। यह स्वाभाविक ही है कि अनन्तकी ठीक परिभाषा उन्हीं लोगोंद्वारा विकसित हुई जो नयी संख्याओंका प्रयोग करते थे, या अपने दर्शनशास्त्रमें ऐसी संख्याओंके अभ्यस्त थे। निम्न विचारसे यह प्रकट हो जायगा कि भारतवर्षमें जैन दार्शनिक अनन्तसे सन्ध रखनेवाली विविध भावनाओंको श्रेणीबद्ध करने तथा गणनासबधी अनन्तकी ठीक परिभाषा निकालनेमें सफल हुए।

बड़ी संख्याओंको व्यक्त करनेके लिये उचित संकेतोंका तथा अनन्तकी कल्पनाका विकास तभी होता है जब निगूढ तर्क और विचार एक विशेष उच्च श्रेणीपर पहुँच जाते हैं। युरोपमें आर्किमिडीजने समुद्र-तटकी रेतके कणोंके प्रमाणके अदाल लगानेका प्रयत्न किया था और यूनानके दार्शनिकोंने अनन्त एव सीमा (limit) के विषयमें विचार किया था। किन्तु उनके पास बड़ी संख्याओंको व्यक्त करनेके योग्य संकेत नहीं थे। भारतवर्षमें हिन्दू, जैन और बौद्ध दार्शनिकोंने बहुत बड़ी संख्याओंका प्रयोग किया और उस कार्यके लिये उन्होंने उचित संकेतोंका

भी आविष्कार किया। विशेषतः जैनियोंने लोकरके समस्त जीवों, काल-प्रदेशों और क्षेत्र अथवा आकाश-प्रदेशों आदिके प्रमाणका निरूपण करनेका प्रयत्न किया है।

बड़ी संख्यायें व्यक्त करनेके तीन प्रकार उपयोगमें लाये गये—

(१) दाशमिक-क्रम (Place-value notation)— जिसमें दशमानका उपयोग किया गया। इस संवधमें यह बात उल्लेखनीय है कि दशमानके आधारपर १०^{१४०} जैसी बड़ी संख्याओंको व्यक्त करनेवाले नाम कल्पित किये गये।

(२) घातांक नियम (Law of indices वर्ग-संवर्ग) का उपयोग बड़ी संख्याओंको सूक्ष्मतासे व्यक्त करनेके लिये किया गया। जैसे—

$$(अ) २^२ = ४$$

$$(ब) (२^२)^३ = ४^३ = २५६$$

$$(स) \{(२^२)^३\}^३ = २५६^{२७}$$

जिसको २ का तृतीय वर्गित-संवर्गित कहा है। यह संख्या समस्त विश्व (universe) के विद्युत्कणों (protons and electrons) की संख्यासे बड़ी है।

(३) लघुरिक्थ (अर्धच्छेद) अथवा लघुरिक्थके लघुरिक्थ (अर्धच्छेदशलाका) का उपयोग बड़ी संख्याओंके विचारको छोटी संख्याओंके विचारमें उतारनेके लिये किया गया। जैसे—

$$(अ) \text{ लरि } २ \quad २^१ = २$$

$$(ब) \text{ लरि } २ \quad ४^३ = ३$$

$$(स) \text{ लरि } २ \quad २५६^{१६} = ११$$

इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि आज भी संख्याओंको व्यक्त करनेके लिये हम उपर्युक्त तीन प्रकारोंमेंसे किसी एक प्रकारका उपयोग करते हैं। दाशमिकक्रम समस्त देशोंकी साधारण सम्पत्ति बन गई है। जहाँ बड़ी संख्याओंका गणित करना पड़ता है, वहाँ लघुरिक्थोंका उपयोग किया जाता है। आधुनिक पदार्थविज्ञानमें परिमाणों (magnitudes) को व्यक्त करनेके

१ बड़ी संख्याओं तथा संख्या-नामोंके संवर्धमें विशेष जाननेके लिये देखिये दच और सिंह कृत हिन्दू गणितशास्त्रका इतिहास (History of Hindu Mathematics), मोतीलाल बनारसीदास, लहौर, द्वारा प्रकाशित, भाग १, पृ ११ आदि.

15

(११) शाश्वतानन्त--- नित्यस्थायी या अविनाशी अनन्त ।

२ ज त दद्यात्त त दुग्धि आगमदो णोआगमदो य। थ ३, पृ. १२

गणनानन्त (Numerical infinite)

चन्द्रमें यह स्पष्टरूपसे कह दिया गया है कि प्रकृतमें अनन्त संज्ञाका प्रयोग गणना-नन्तके अर्थमें ही किया गया है, अन्य अनन्तोंके अर्थमें नहीं, ' क्योंकि उन अन्य अनन्तोंके द्वारा प्रमाणका प्रकरण नहीं पाया जाता ' । यह भी कहा गया है कि ' गणनानन्त बहुवर्णनीय और सुगम है ' । इस कथनका अर्थ समयतः यह है कि जैन-साहित्यमें अनन्त अर्थात् गणना-नन्तभी परिभाषा अधिक विशदरूपसे भिन्न भिन्न लेखकों द्वारा कर दी गई थी, तथा उसका प्रयोग और जान भी सुप्रचलित हो गया था। किन्तु ध्वलामें अनन्तकी परिभाषा नहीं दी गई। तो भी अनन्तमंथी प्रक्रियाएँ सत्यात और असत्यात नामक प्रमाणोंके साथ साथ बहुत बार उल्लिखित हुई हैं।

संख्यात, असत्यात और अनन्त प्रमाणोंका उपयोग जैन साहित्यमें प्राचीनतम ज्ञात-तालमें किया गया है। किन्तु प्रतीत होता है कि उनका अभिप्राय सदैव एकसा नहीं रहा। प्राचीनतर ग्रंथोंमें अनन्त सचमुच अनन्तके उसी अर्थमें प्रयुक्त हुआ था जिस अर्थमें हम अब उसी परिभाषा करते हैं। किन्तु पीछे के ग्रंथोंमें उसका स्थान अनन्तानन्तने ले लिया। उदाहरणार्थ— नेमिचन्द्र द्वारा दशवीं शताब्दिमें लिखित ग्रंथ त्रिलोकसारके अनुसार परितानन्त, युक्तानन्त ए। जगन्मय अनन्तानन्त एक बड़ी भारी संख्या है, किन्तु है वह सान्त। उस प्रयत्नके अनुसार संख्याओंके तीन मुख्य भेद किये जा सकते हैं—

(१) संख्यात—जिसका संकेत हम स मान लेते हैं।

(२) असंख्यात—जिसका संकेत हम अ मान लेते हैं।

(३) अनन्त—जिसका संकेत हम न मान लेते हैं।

उपर्युक्त तीनों प्रकारके संख्या-प्रमाणोंके पुनः तीन तीन प्रभेद किये गये हैं जो निम्न प्रकार हैं—

(१) संख्यात—(गणनीय) संख्याओंके तीन भेद हैं—

(अ) जगन्मय-संख्यात (अल्पतम संख्या) जिसका संकेत हम स ज मान लेते हैं।

(ब) मध्यम-संख्यात (बीचकी संख्या) जिसका संकेत हम स म मान लेते हैं।

१ धाता ३, पृ १६.

२ 'ण च सेतयणाणि पमाणपल्लणाणि, तस्य तथादसणदो' । ध ३, पृ १७.

३ 'ज त गणणागत त बहुवर्णणीय सुसमं च' । ध ३, पृ १६

(स) उत्कृष्ट-संख्यात (सबसे बड़ी संख्या) जिसका संकेत हम स उ मान लेते हैं।

(२) असंख्यात (अगणनीय) के भी तीन भेद हैं—

(अ) परित-असंख्यात (प्रथम श्रेणीका असंख्य) जिसका संकेत हम अ प मान लेते हैं।

(ब) युक्त-असंख्यात (बीचका असंख्य) जिसका संकेत हम अ यु मान लेते हैं।

(स) असंख्यातासंख्यात (असंख्य-असंख्य) जिसका संकेत हम अ अ मान लेते हैं।

पूर्वोक्त इन तीनों भेदोंमेंसे प्रत्येकके पुनः तीन तीन प्रभेद होते हैं। जैसे, जगन्मय (सबसे छोटा), मध्यम (बीचका) और उत्कृष्ट (सबसे बड़ा)। इस प्रकार असंख्यातके भीतर निम्न संख्याएँ प्रविष्ट हो जाती हैं—

१ जगन्मय-परित-असंख्यात	अ प ज
२ मध्यम-परित-असंख्यात	अ प म
३ उत्कृष्ट-परित-असंख्यात	अ प उ
१ जगन्मय-युक्त-असंख्यात	अ यु ज
२ मध्यम-युक्त-असंख्यात	अ यु म
३ उत्कृष्ट-युक्त-असंख्यात	अ यु उ
१ जगन्मय-असंख्यातासंख्यात	अ अ ज
२ मध्यम-असंख्यातासंख्यात	अ अ म
३ उत्कृष्ट-असंख्यातासंख्यात	अ अ उ

(३) अनन्त—जिसका संकेत हम न मान चुके हैं। उसके तीन भेद हैं—

(अ) परित-अनन्त (प्रथम श्रेणीका अनन्त) जिसका संकेत हम न प मान लेते हैं।

(ब) युक्त-अनन्त (बीचका अनन्त) जिसका संकेत हम न यु मान लेते हैं।

(स) अनन्तानन्त (निःसीम अनन्त) जिसका संकेत हम न न मान लेते हैं।

असंख्यातके समान इन तीनों भेदोंके भी प्रत्येकके पुनः तीन तीन प्रभेद होते हैं। जगन्मय, मध्यम और उत्कृष्ट। अतः अनन्तके भेदोंमें हमें निम्न संख्याएँ प्राप्त होती हैं—

१ जगन्मय-परितानन्त	न प ज
२ मध्यम-परितानन्त	न प म
३ उत्कृष्ट-परितानन्त	न प उ

१	जघन्य युक्तानन्त	न शु
२	मध्यम-युक्तानन्त	न शु म
३	उत्कृष्ट-युक्तानन्त	न शु ल
१	जघन्य-अनन्तानन्त	न न ज
२	मध्यम-अनन्तानन्त	न न म
३	उत्कृष्ट-अनन्तानन्त	न न ल

संख्यातका संख्यात्मक परिमाण— सभी जैन ग्रंथोंके अनुसार जघन्य संख्यात २ है, क्योंकि, उन ग्रंथोंके मतसे भिन्नताकी बोधक यही सबसे छोटी संख्या है। एकत्वको संख्यातमें सम्मिलित नहीं किया। मध्यम संख्यातमें २ और उच्छृष्ट संख्यातके बीचकी समस्त गणना आ जाती है, तथा उच्छृष्ट-संख्यात जघन्य-परीतासंख्यातसे पूर्ववर्ती अर्थात् एक कम गणनाना नाम है। अर्थात् स उ = अ प ज - १। अ प ज को त्रिलोकसारमें निम्न प्रकारसे समझाया है—

जैन भूगोलानुसार यह विश्व, अर्थात् मन्व्यलोक, भूमि और जलके क्रमवार बलयोंसे बना हुआ है। उनकी सीमाएँ उत्तरोत्तर बढ़ती हुई त्रिव्याओंवाले समकेन्द्रीय वृत्तरूप हैं। किसी भी भूमि या जलमय एक वलयका विस्तार उससे पूर्ववर्ती वलयके विस्तारसे दुगुना है। केन्द्र-वर्ती वृत्त (सबसे प्रथम वीचका वृत्त) एक लाख (१००,०००) योजन व्यासवाला है, और जम्बूद्वीप कहलाता है।

अब बेलनके आकारके चार ऐसे गड्ढोंकी कल्पना कीजिये जो प्रत्येक एक ठाख योजन व्यासवाले और एक हजार योजन गहरे हों। इन्हें अ_१, व_१, स_१ और ड_१ कहिये। अब कल्पना कीजिये कि अ_१ सरसोंके बीजोंसे पूरा भर दिया गया और फिर भी उस पर और सरसों डाले गये जब तक कि उसकी शिखा शुकुके आकारकी हो जाय, जिसमें सबसे ऊपर एक सरसोंका बीज रहे। इस प्रक्रियाके लिये जितने सरसोंके बीजोंकी आवश्यकता होगी उनकी सख्या इस प्रकार है—

[illegible]

१ देखो त्रिलोत्तम, गाथा ३५.

इस पूर्वोक्त प्रक्रियाको हम बेलनाकार गड्डुका सरसोके बीजोंसे 'शिवायुक्त पूरण' कहेंगे। अब उपर्युक्त शिवायुक्त पुरित गड्डुमेंसे उन बीजोंको निकालिये और जम्बूद्वीपसे प्रारंभ करके प्रत्येक द्वीप और समुद्रके क्लयोंमें एक एक बीज डालिये। चूंकि बीजोंकी संख्या सम है, इसलिये अन्तिम बीज समुद्रकल्य पर पड़ेगा। अब एक बीज व, नामक गड्डुमें ढाल दीजिये, यह बतलानेके लिये कि उक्त प्रक्रिया एक बार होगई।

अब एक ऐसे वेदनकी कल्पना कीजिये जिसका व्यास उस समुद्रकी सीमापर्यन्त व्यासके बराबर हो जिसमे वह अन्तिम सरसोका बीज डाला हो। इस वेदनको अ_२ कहिये। अब इस अ_२ को भी पूर्वोक्त प्रकार सरसोसे शिवायुक्त भर देनेकी कल्पना कीजिये। फिर इन बीजोको भी पूर्व प्राप्त अन्तिम समुद्रवलयसे आगेके द्वीप-समुद्ररूप वलयोमे पूर्वोक्त प्रकारसे क्रमशः एक एक बीज डालिये। इस द्वितीय बार विरलनमे भी अन्तिम सरसप किसी समुद्रवलय पर ही पड़ेगा। अब ब_१ में एक और सरसप डाल दो, यह बतलानेके लिये कि उक्त प्रक्रिया द्वितीय बार हो चुकी।

अब फिर एक ऐसे बेलनकी कल्पना कीजिये जिसका व्यास उसी अन्तिम प्राप्त समुद्र-वलयके व्यासके बराबर हो तथा जो एक हजार योजन गहरा हो । इस बेलनको अ_३ कहिये । अ_३ को भी सरसपोंसे शिखायुक्त भर देना चाहिये और फिर उन बीजोंको आगेके द्वीपसमुद्रोंमें द्रव्योक्त प्रकारसे एक एक डालना चाहिये । अन्तमें एक और सरसप व_३ में डाल देना चाहिये ।

कल्पना कीजिये कि यही प्रक्रिया तब तक चालू रही गई जब तक कि बंशीलायुक्त न भर जाय। इस प्रक्रियामें हमें उत्तरोत्तर बंदते हुए आकारके बेलन लेना पड़ेगे—

अ १, अ २, ... अ ३, ...

मान लीजिये कि ब, के शिखायुक्त भरने पर अन्तिम बेलन अ' प्राप्त हुआ ।

अब अ' को प्रथम शिखायुक्त भरा गड्ढा मान कर उस जलवलयके बादसे जिसमें पिछली क्रियाके अनुसार अन्तिम बीज डाला गया था, प्रारम्भ करके प्रत्येक जल और स्थलके वलयमें एक एक बीज छोड़ने की क्रियाको आगे बढ़ाहिये । तब स, में एक बीज छोड़िये । इस प्रक्रियाको तब तक चालू रखिये जब तक कि स, शिखायुक्त न भर जाय । मान लीजिये कि इस प्रक्रियासे हमें अन्तिम वेलन अ" प्राप्त हुआ । तब फिर इस अ" से वही प्रक्रिया प्रारम्भ कर दीजिये और उसे ड, के शिखायुक्त भर जाने तक चालू रखिये । मान लीजिये कि इस प्रक्रियाके अन्तमें हमे अ"" प्राप्त हुआ । अतएव जयन्त्यर्पणामाप्त्यन

अ प ज का प्रमाण ७" में समानेवाले सरसप बीजोंकी सख्याके बराबर होगा और उच्छृण-
सख्यात = म उ = अ प ज = १.

पर्यालोचन— गन्याओंको तीन भेदोंमें विभक्त करनेका मुख्य अभिप्राय यह प्रतीत होता है— सख्यात अर्थात् गणना कहा तक की जा सकती है यह भाषा में सख्या-नामोंकी उपलब्धि। अथवा संख्याव्यक्तिके अन्य उपयोगोंकी प्राप्ति पर अवलम्बित है। अतएव भाषामें गणनाका क्षेत्र बढ़ानेके लिये भारतवर्षमें प्रधानतः दश-मानके आधारपर सख्या-नामोंकी एक टक्की श्रेणी तैयार की गई। हिन्दू १०^१ तरुकी गणनाको भाषामें व्यक्त कर सकनेवाले अठारह नामोंसे सतृष्ट होगये। १०^१ से ऊपरकी सख्याएँ उन्हीं नामोंकी पुनरावृत्ति द्वारा व्यक्त की जा सकती थी, जैसा कि अत्र हम दश दश-लाख (million million) आदि कह कर करते हैं। किन्तु उस बातका अनुभव होगया कि यह पुनरावृत्ति भारभूत (cumbersome) है। बीजों और दैनिक्योंको अपने दर्शन और विचारचना संबंधी विचारोंके लिये १०^१ से बहुत बड़ी सख्याओंकी आवश्यकता पड़ी। अतएव उन्हीं और बड़ी बड़ी सख्याओंके नाम कल्पित कर लिये। दैनिक्योंके संख्यानामोंका तो अब हमें पता नहीं है, किन्तु बीजोंद्वारा कल्पित सख्या-

१ जैनियोंके गौरीन साहित्यमें दर्शित काल-प्रमाणोंके सूचक नामोंकी तालिका पाई जाती है जो एक नवें प्रमाणसे प्रामाण्य श्रुती है। यह नामांशों इस प्रकार है—

१ नं	=	५ नं	=	१७ अट्यांग	=	८४ द्रुति
२ युग	=	८४ लाख नं	=	१८ अट	=	लाख अट्यांग
३ पूर्वांग	=	लाख पूर्वांग	=	१९ अममांग	=	अट
४ पूर्	=	पूर्	=	२० अपम	=	लाख अपमांग
५ न्युतांग	=	लाख न्युतांग	=	२१ हाहांग	=	अमम
६ नत	=	नत	=	२२ हाहा	=	लाख हाहांग
७ न्युतांग	=	न्युतांग	=	२३ हाहांग	=	हाहा
८ पमद	=	लाख कुमुदांग	=	२४ दृद	=	लाख हाहांग
९ पमांग	=	कुमुद	=	२५ लतांग	=	दृद
१० पय	=	लाख पमांग	=	२६ लता	=	लाख लतांग
११ नल्लिनांग	=	पय	=	२७ महालतांग	=	लता
१२ नल्लिन	=	लाख नल्लिनांग	=	२८ महालता	=	लाख महालतांग
१३ पमल्लिग	=	नल्लिन	=	२९ शीम्व	=	लाख महालता
१४ लान	=	लाख पमल्लिग	=	३० हस्ताहेलित	=	लाख शीम्व
१५ गुटिनांग	=	मल	=	३१ अचलम	=	लाख हस्ताहेलित
१६ गुटित	=	लाख गुटिनांग	=			

यह नामावली पिलोन्सि (४-६ वीं शताब्दि) हक्सिपुराण (८ वीं शताब्दि) और राज-
वाहित (८ वीं शताब्दि) में कुछ नामभेदोंके साथ पाई जाती है। पिलोन्सिवाहितके एक उद्धेखानुसार अचलमका
प्रमाण ८४ को ३१ बार परस्पर गुणा करनेसे प्राप्त होता है—अचलम = ८४^{३१} तथा यह सख्या ९० अंक प्रमाण
शील। किन्तु ठगुरिथ तालिका (Logarithmic tables) के अनुसार ८४^{३१} संख्या ९० अंक प्रमाण ही
प्राप्त होती है। देखिये भवला, मांग ३, प्रस्तावना न फुट नोट, पृ ३४ —सम्पादक.

नामोंकी निम्न श्रेणिका चित्ताकर्षक है—

१ एक	= १	१५ अब्युद	= (१०,०००,०००) ^८
२ दस	= १०	१६ निरब्युद	= (१०,०००,०००) ^९
३ सत	= १००	१७ अहह	= (१०,०००,०००) ^{१०}
४ सहस्स	= १,०००	१८ अवव	= (१०,०००,०००) ^{११}
५ दससहस्स	= १०,०००	१९ अटट	= (१०,०००,०००) ^{१२}
६ सतसहस्स	= १००,०००	२० सोगान्विक	= (१०,०००,०००) ^{१३}
७ दससतसहस्स	= १,०००,०००	२१ उप्पल	= (१०,०००,०००) ^{१४}
८ कोटि	= १०,०००,०००	२२ कुमुद	= (१०,०००,०००) ^{१५}
९ पकोटि	= (१०,०००,०००) ^३	२३ पुडरीक	= (१०,०००,०००) ^{१६}
१० कोटिपकोटि	= (१०,०००,०००) ^३	२४ पटुम	= (१०,०००,०००) ^{१७}
११ नहुत	= (१०,०००,०००) ^४	२५ कथान	= (१०,०००,०००) ^{१८}
१२ निनहुत	= (१०,०००,०००) ^४	२६ महाकथान	= (१०,०००,०००) ^{१९}
१३ अलोभिनी	= (१०,०००,०००) ^४	२७ असख्येय	= (१०,०००,०००) ^{२०}
१४ विन्दु	= (१०,०००,०००) ^४		

यहाँ देखा जाता है कि श्रेणिकोंमें अन्तिम नाम असंख्येय है। इसका अभिप्राय यही प्रतीत होता है कि असंख्येयके ऊपरकी संख्याएँ गणनातीत हैं।

असंख्येयका परिमाण समय समय पर अवश्य बदलता रहा होगा। नेमिचन्द्रका असख्यात उपर्युक्त असंख्येयसे, जिसका प्रमाण १०^{१४} होता है, निश्चयतः भिन्न है।

असंख्यात— ऊपर कहा ही जा चुका है कि असख्यातके तीन मुख्य भेद हैं और उनमेंसे भी प्रत्येकके तीन तीन भेद हैं। ऊपर निर्दिष्ट संकेतोंके प्रयोग करनेसे हमें नेमिचन्द्रके अनुसार निम्न प्रमाण प्राप्त होते हैं—

जघन्य-परीत-असख्यात (अ प ज) = स उ + १

मध्यम-परीत-असख्यात (अ प म) है > अ प ज, किन्तु < अ प उ.

उच्छृण-परीत असख्यात (अ प उ) = अ यु ज - १

जहां—

जघन्य-युक्त-असंख्यात (अ यु ज) = (अ प ज) ^{अ प ज}

मध्यम-युक्त-असंख्यात (अ यु म) है > अ यु ज, किन्तु < अ यु उ.

बटखंडागमकी प्रस्तावना

वल्गुष्ट-युक्त असंख्यात (अयुत = अ अ ज - ?).

—
जहाँ

जघन्य-असंख्यातासख्यात (अ अ ज) = (अ यु ज)³

मध्यम-असंख्यातासंख्यात (अ अ म) है $>$ अ अ ज, किन्तु $<$ अ अ उ.

उत्कृष्ट-असंख्यातासङ्ख्यात (अ अ उ) = अ प ज - १.

—
जहाँ

न प ज जघन्य-परीत-अनन्तका बोधक है ।

अनन्त—अनन्त श्रेणीकी संख्याएँ निम्न प्रकार हैं—

जयव्य-परीत-अनन्त(न प ज) निम्न प्रकारसे प्राप्त होता है—

$$n = \left[\left[\left\{ \left\{ \begin{matrix} (\text{अअज}) \\ (\text{अअज}) \end{matrix} \right\} \right\} \right] \left\{ \left\{ \begin{matrix} (\text{अअज}) \\ (\text{अअज}) \end{matrix} \right\} \right\} \right]$$

मानलो ए = क + छह द्रव्ये

$$\text{मानल० ग} = \left\{ \begin{matrix} \text{ख} \\ (\text{ख}) \end{matrix} \right\} + \left\{ \begin{matrix} \text{ख} \\ (\text{ख}) \end{matrix} \right\} + ४ \text{ राशियाः}$$

तब—

$$\text{जयत्य-परि-अन्त (न प ज)} = \left\{ \begin{matrix} \text{ग}^{\text{ग}} \\ (\text{ग}^{\text{ग}}) \end{matrix} \right\}$$

मध्यम-परीत-अनन्त (न प म) है \rightarrow न प ज, किंतु \vee न प छ

उच्छृष्ट-परीति-अनन्त (न प उ) = न म ज - १,

१ कृद्वय ये हैं— (१) घर्म, (२) अयर्म, (३) एक जीव, (४) लोकान्तर, (५) अप्रतिष्ठित (ननस्पति जीव), और (६) प्रतिष्ठित (वनस्पति जीव)

२. वार समुदाय ये हैं— (१) एक क्लकलके समय, (२) लोककालके प्रदेश, (३) अनुभागवध-
अध्यासपरमान, और (४) योगके नविभाग प्रतिच्छेद

जहाँ—

(अ प ड)

जघन्य-युक्त-अनन्त (न मु ज) = (अ प ज)

मध्यम-युक्त-अनन्त (न शु म) है \wedge न शु ज, किंतु \vee न शु, क

उत्कृष्ट-युक्त-अनन्त (नमः) = नमः - १

जहा—

जघन्य-अनन्तान्त (न न ज) = (न न ज)

मध्यम-अनन्तान्त (न न म) \wedge न न न, किंतु \vee न न न

—जहाँ

न न उ उच्छ्रित्य अनन्तानन्तैर्लिये प्रयुक्त है, जो कि नेमिचन्द्रके अनुसार निम्न प्रकारसे प्राप्त होता है—

क्षी = $\left[\begin{array}{c} \text{ननज} \\ \{ \text{(ननज)} \} \end{array} \right] \left[\begin{array}{c} \text{ननज} \\ \{ \text{(ननज)} \} \end{array} \right] \left[\begin{array}{c} \text{ननज} \\ \{ \text{(ननज)} \} \end{array} \right] \left[\begin{array}{c} \text{ननज} \\ \{ \text{(ननज)} \} \end{array} \right] \left[\begin{array}{c} \text{ननज} \\ \{ \text{(ननज)} \} \end{array} \right]$

$$x = \left\{ \begin{matrix} x_1 \\ x_2 \end{matrix} \right\} \left\{ \begin{matrix} x_1 \\ x_2 \end{matrix} \right\} + \text{પો રાશિયાં}$$

$$\underbrace{\underbrace{\frac{\pi}{\pi}}_{\frac{\pi}{\pi}}}_{\frac{\pi}{\pi}} = \frac{\pi}{\pi}$$

अथ, केवलज्ञान राशि ज्ञ से भी बड़ी है और—

न न उ = केवलज्ञान - ज्ञ + ज्ञ = केवलज्ञान.

पर्यालोचन— उपर्युक्त विवरणका यह निष्कर्ष निकलता है—

(१) जघन्य-परीत-अनन्त (न प ज) अनन्त नहीं होता जबतक उसमें प्रक्षिप्त किये गये छह द्रव्यों या चार राशियोंमेंसे एक या अधिक अनन्त न मान लिये जाय ।

१ छह राशिया ये हैं- [१] सिद्ध, (२) साधारण वनस्पति निगोद, (३) वनस्पति, (४) पुद्गल, (५) व्यवहारमूल और (६) अलोमाकाश

२ ये दो राशियाँ हैं— (१) धर्मद्वय, (२) अर्थमद्वय, (इन दोनों के अणुरूप गुण के अविभाग-मतिच्छेद)

(२) उद्भूत-अनन्त-अनन्त (न न उ) केवलज्ञानराजिके समप्रमाण हे । उपर्युक्त विवरणसे यह अभिप्राय निरुद्धता है कि उल्लेख अनन्तानन्त अमृगणितम्नी किसी प्रक्रियाद्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता, चाहे वह प्रक्रिया कितनी ही दूर क्यों न ले जाई जाय । यथार्थतः यह नृत्तगणितद्वारा प्राप्त न की किसी भी सत्यासे अधिक ही रहेगा । अतः मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि केवलज्ञान अनन्त है, और अभीष्टिथ उल्लेख-अनन्तानन्त भी अनन्त है ।

यस प्रकार त्रिचोक्तसारान्तर्गत विवरण हमें कुछ सशयमें ही छोड़ देता है कि परितानन्त और युक्तानन्तके तीन तीन प्रकार तथा जघन्य अनन्तानन्त सचमुच अनन्त है या नहीं, क्योंकि ये सम अनन्तानन्तके ही गुणनफल कहे गये हैं, और जो राशिया उनमें जोड़ी गईं हैं वे भी असंख्यतमाम ही हैं । किन्तु धन्यम्ना अनन्त सचमुच अनन्त ही है, क्योंकि यहाँ यह स्पष्ट है : यह दिया गया है कि 'न्यय होनेसे जो राशि नष्ट हो वह अनन्त नहीं कही जा सकती' । धात्यों पर भी कह दिया गया है कि अनन्तानन्तसे सर्वत्र तात्पर्य मध्यम-अनन्तानन्तसे है । अतः बालानुसार मध्यम-अनन्तानन्त अनन्त ही है । धात्योंमें उल्लिखित दो राशियोंके भिन्नानती निम्न रीति बड़ी रोचक है—

एक ओर गतज्ञानही समस्त अवसरपिणी और उत्सर्पिणी अर्थात् कल्पकालके समयोंको (time instants) स्थापित करो । (इनमें अनादि-सातत्य होनेसे अनन्तत्व है ही ।) दूसरी ओर भिन्नान्तरि जीराशि रखो । अब दोनों राशियोंमेंसे एक एक रूप बराबर उठा उठा कर फँकते जाओ । इस प्रकार करते जानेसे कालराशि नष्ट हो जाती है, किन्तु जीवन-राशिका आधार नहीं होता । धात्योंमें इस प्रकारसे यह निष्कर्ष निकाला गया है कि भिन्नानन्तरि राशि अतीत कल्पोंके समयोंसे अधिक है ।

यह उपर्युक्त रीति और कुछ नहीं केवल एकसे-एककी संगति (one-to-one correspondence) का प्रकार है जो आधुनिक अनन्त गणनाओंके सिद्धान्त (Theory of infinite cardinality) का मूलधार है । यह कहा सकता है कि वह रीति परिमित गणनाओंके मिलानमें भी उपयुक्त होती है, और इसीलिये उसका आलम्बन दो बड़ी परिमित राशियोंके मिलान के लिये किया गया था—रतनी घड़ी राशिया जिनके अंगों (elements)

१ 'सते गप पडुंत्तस अणत्तपारिणत्तो' । प. ३, पृ. २५.
२ धवला ३, पृ. २८.

३ 'अणत्तान्ताहि ओसप्पिणि उत्सप्पिणीहि ण अवसरिती कालेण' । प. ३, पृ. २८ सूत्र ३. देखो टीका, पृ. २८. 'कम कालेण भिण्णज्जे भिन्नाइओ जीवा' । १ आदि ।

की गणना किसी संख्यात्मक संज्ञा द्वारा नहीं की जा सकती । यह दृष्टिकोण इस बातसे और भी पुष्ट होता है कि जैन-ग्रंथोंमें समयके अध्यानका भी निश्चय कर दिया गया है, और इसलिये एक कल्प (अवसरपिणी-उत्सर्पिणी) के कालप्रदेश परिमित ही होना चाहिये, क्योंकि, कल्प स्वयं कोई अनन्त कालमान नहीं है । इस अन्तिम मतके अनुसार जघन्य-परित-अनन्त, जो कि परिभाषानुसार कल्पके कालप्रदेशोंकी राशिसे अधिक है, परिमित ही है ।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, एकसे-एककी संगतिकी रीति अनन्त गणनाओंके अध्ययनके लिये सबसे प्रबल साधन सिद्ध हुई है, और उस सिद्धान्तके अन्वेषण तथा सर्व-प्रथम प्रयोगका श्रेय जैनियोंको ही है ।

सख्याओंके उपर्युक्त वर्गीकरणमें मुझे अनन्त गणनाओंके सिद्धान्तको विकसित करनेका प्राथमिक प्रयत्न दिखाई देता है । किन्तु इस सिद्धान्तमें कुछ गभीर दोष हैं । ये दोष विरोध उत्पन्न करेंगे । इनमेंसे एक स—१ की संख्याकी कल्पनाका है, जहाँ स अनन्त है और एक वर्गकी सीमाका नियामक है । इसके विपरीत जैनियोंका यह सिद्धान्त कि एक सख्या स का वर्गित-सर्वर्गित रूप अर्थात् स^२ एक नवीन संख्या उत्पन्न कर देता है, युक्तपूर्ण है । यदि यह सच हो कि प्राचीन जैन साहित्यका उल्लेख-असंख्यात अनन्तसे भेल खाता है, तो अनन्तकी सख्याओंकी उत्पत्तिमें आधुनिक अनन्त गणनाओंके सिद्धान्त (Theory of infinite cardinals) का कुछ सीमा तक पूर्वनिरूपण हो गया है । गणितशास्त्रीय विमर्शके उत्तरे प्राचीन काल और उस प्रारम्भिक स्थितिमें इस प्रकारके किसी भी प्रयत्नकी असफलता अवश्यभावी थी । आश्चर्य तो यह है कि ऐसा प्रयत्न किया गया था ।

अनन्तके अनेक प्रकारोंकी सत्ताको जार्ज केन्टरने उन्नीसवीं शताब्दिके मध्यकालके लगभग प्रयोग-सिद्ध करके दिखाया था । उन्होंने सीमातीत (transfinite) सख्याओंका सिद्धान्त स्थापित किया । अनन्त राशियोंके क्षेत्र (domain) के विषयमें केन्टरके अन्वेषणोंसे गणितशास्त्रके लिये एक पुष्ट आधार, खोजके लिये एक प्रबल साधन और गणितसम्बन्धी अत्यन्त गूढ़ विचारोंको ठीक रूपसे व्यक्त करनेके लिये एक भाषा मिल गई है । तो भी यह सीमातीत संख्याओंका सिद्धान्त अभी अपनी प्राथमिक अवस्थामें ही है । अभी तक इन संख्याओंका कलन (Calculus) प्राप्त नहीं हो पाया है, और इसलिये हम उन्हें अभी तक प्रबलतासे गणितशास्त्रीय विश्लेषणमें नहीं उतार सके हैं ।

शब्द-सूची

★ ★ ★ ★ ★

‘ ध्वलाका गणितशास्त्र ’ शीर्षक लेखों में जो गणितसे सम्बन्ध रखनेवाले विशेष हिन्दी शब्दोंका उपयोग किया गया है उनके समरूप अंग्रेजी शब्द निम्न प्रकार हैं—

अनन्त-Infinite	घनमूल-Cube root
अनन्त गणनक सिद्धान्त-Theory of infinite cardinals.	घात निकालना, 'कला'-Raising of numbers to given powers.
अनुपात-Proportion.	घातोंक-Powers
अर्थक्रम-Operation of mediation.	घातोंक सिद्धान्त-Theory of indices
अर्थक्रम-Number of times a number is halved, mediation, logarithm.	चतुर्थक्रम-Number of times that a number can be divided by 4
असंख्यत-Innumerable.	चिह्न-Trace.
असंख्यता-Inequality.	जोड़-Addition.
अक्ष-Notational place	ज्योतिषविद्या-Astronomy.
अंकाणित-Arithmetic.	टिप्पणी-Notes
अंग-Element	त्रिक्रम-Number of times that a number can be divided by 3.
आधार-Base (of logarithm).	त्रिज्या-Radius.
आविष्कार-Discovery, invention.	त्रैशिक-Rule of three.
उत्तरोत्तर-Successive.	दशमान-Scale of ten.
एकदिशात्मक-One directional.	दाशमिकक्रम-Decimal place-value notation.
एकसे एक-सी सगति-One-to-one correspondence	द्विगुणक्रम-Operation of duplication
कला-Art.	द्विविस्तारात्मक-Two-dimensional, superficial.
कालप्रदेश-Time-instant	निगूढतर्क-Abstract reasoning.
कुट्टक-Indeterminate equation	नियम-Rule.
केन्द्रबर्ती वृत्त-Initial circle, central core	पद्धति-Method
क्रिया-Operation.	परिणाम-Result
क्षेत्रप्रदेश-Locations, points or places.	परिमाण-Magnitude
क्षेत्रमिति-Mensuration	परिमाणहीन-Dimensionless
गणित, 'शास्त्र'-Mathematics.	परिमित गणनक-Finite cardinals.
गणितज्ञ-Mathematician	
गुणा-Multiplication	

(२८)

शब्द-सूची

पूर्णक-Integer	विज्ञान-Science
प्रक्रिया-Process, operation.	विद्युत्प्रण-Protons and electrons.
प्रतारालक अनन्त आकाश-Infinite plane area.	विनिमय-Barter and exchange
प्रश्न-Problem.	वितरण-Distribution; spreading.
प्राथमिक-Elementary, primitive.	वितरण देय-Spread and give.
नाकी-Subtraction	विक्षेपण-Analysis
नीजगणित-Algebra	विस्तार-Details
बेलनाकार-Cylindrical	वृत्त-Circle.
भाग-Division.	व्याज-Interest
भाजक-Divisor	व्यास-Diameter
भिन्न-Fraction.	शकाकार शिला-Super-incumbent cone.
मूल, 'मौलिक' प्रक्रिया-Fundamental operation	शाळा-School.
राशि-Aggregate.	श्रेणीबद्ध करना-Classify
रुढ़ सख्या-Prime.	समकेन्द्रीय-Concentric.
रूपरेखा-General outline.	सल समीकरण-Simple equation.
लघुविषय-Logarithm.	संकेत-Symbol, notation
लब्ध-Quotient	संकेतक्रम-Scale of notation
वर्ग-Square.	सख्या-Number.
वर्गमूल-Square root	सख्यात-Numberable
वर्गशलाका-Logarithm of logarithm	सख्यातुल्य घात-Raising of a number to its own power
वर्गसमीकरण-Quadratic equation	सतत्य-Continuum.
वर्गित-सर्वर्गित-Raising a number to its own power (सख्यातुल्य घात).	साधारणीकृत-Generalised.
वलय-Ring	सीमा-Boundary
वितरण-Distribution	सीमातीत सख्या-Transfinite number.
	सूत्र-Formula.

आदिकी प्राप्ति होती हैं, वे गुण मिथ्यादृष्टि जीवके संभव नहीं है। शंकाकारके द्वारा उठाई गई आपत्तिका परिहार यह है कि तैजसशक्तिकी प्राप्तिके लिये भी उस सयम-विशेषकी आवश्यकता है जो कि मिथ्यादृष्टि जीवके हो नहीं सकता। किन्तु अशुभैतजसका उपयोग प्रमत्तसयत साधु नहीं करते। जो करते हैं, उन्हें उस समय भावलिगी साधु नहीं, किन्तु द्रव्यलिगी समझना चाहिए।

पुस्तक ४, पृष्ठ ४५

२ शंका—विदेहमें सयतराशिका उत्सेध ५०० धनुष लिखा है, सो क्या यह विशेषताकी अपेक्षासे कथन है, या सर्वथा नियम ही है? (नानकचन्द्र जैन, खतौली, पत्र ता. १-४-४२)

समाधान—विदेहमें सयतराशिका ही उत्सेध नहीं, किन्तु वहा उत्पन्न होनेवाले मनुष्यमात्रका उत्सेध पांचसौ धनुष होता है, ऐसा सर्वथा नियम ही है जैसा कि उसी चतुर्थ भागके पृ. ४५ पर आई हुई “एदाको वो नि ओगाहणाओ भरह-इरागसु चव होति न निदेहेसु, तव्य पचयसुसदुस्सेधणियमा” इस तीसरी पक्तिसे स्पष्ट है। उसी पक्ति पर तिलोपपणत्तीसे दी गई टिप्पणीसे भी उक्त नियमकी पुष्टि होती है। विशेषके लिए देखो तिलोपपणत्ती, अधिकार ४, गाथा २२५५ आदि।

पुस्तक ४, पृष्ठ ७६

३ शंका—पृष्ठ ७६ में मूलमें ‘मारणतिय’ के पहलेका ‘मुक्क’ शब्द अभी विचारणीय प्रतीत होता है? (जैनसन्देश, ता. २३-४-४२)

समाधान—मूलमें ‘मुक्कमारणतियराली’ पाठ आया है, जिसका अर्थ—“किया है मारणात्तिकसमुद्रात जिन्होंने” ऐसा किया है। प्रकरणजो देखते हुए यही अर्थ समुचित प्रतीत होता है, जिसकी कि पुष्टि गो. जी. गा ५४४ (पृ. ९५२) की टीकामें आए हुए ‘क्रियमाण-मारणान्तिकदडस्य’, ‘तियजीवमुक्कोपपाददडस्य’, तथा, ५४७ वीं गाथाकी टीकामें (पृ. ५६७) आये हुए ‘अष्टमपृथ्वीसविधादरपर्यान्तपृथ्वीकारोपु उष्पन्तु मुक्कतलसमुद्रातद्वाना’ आदि पाठोंसे भी होती है। ध्यान देनेकी बात यह है कि द्वितीय व तृतीय उद्धरणमें जिस अर्थमें ‘मुक्क’ शब्दका प्रयोग हुआ है, प्रथम अवतरणमें उसी अर्थमें ‘क्रियमाण’ शब्दका उपयोग हुआ है और यह कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है कि प्राकृत ‘मुक्क’ शब्दकी संस्कृतछाया ‘मुक्क’ ही होती है। पंडित टोडरमल्लजीने भी उक्त स्थलपर ‘मुक्क’ शब्दका यही अर्थ किया है। इस प्रकार ‘मुक्क’ शब्दके किये गये अर्थमें कोई शंका नहीं रह जाती है।

पुस्तक ४, पृष्ठ १००

४ शंका—पृ. १०० पर मूल पाठमें कुछ पाठ छूटा हुआ प्रतीत होता है :
(जैनसन्देश ३०-४-४२)

समाधान—शंकाकारने यद्यपि पृष्ठका नाममात्र ही दिया है, किन्तु यह स्पष्ट नहीं किया कि उक्त पेजपर २४ वें सूत्रकी व्याख्यामें पाठ छूटा हुआ उन्हे प्रतीत हुआ या २५ वें सूत्रकी व्याख्यामें। जहां तक हमारा अनुमान जाता है २४ वे सूत्रकी व्याख्यामें ‘बादरवाड-अपज्जत्तेसु अत्तमावादो’ के पूर्व कुछ पाठ उन्हे खलित जान पड़ा है। पर न तो उक्त स्थलपर काममें ली जानेवाली तीनों प्रतियोंमें ही तदतिरिक्त कोई नवीन पाठ है, और न मुडबिंद्रसे ही कोई संशोधन आया है। फिर मौजूदा पत्तिका अर्थ भी बहा बैठ जाता है।

पुस्तक ४, पृ. १२५

५ शंका—उपशमश्रेणीसे उतनेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके अतिरिक्त अन्य उपशम-सम्यग्दृष्टि जीवोंके मरणका निषेध है, इससे यह ध्वनित होता है कि उपशमश्रेणीमें चढ़नेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका मरण नहीं होता। परन्तु पृष्ठ ३५१ से ३५४ तक कई स्थानोंपर स्पष्टतासे चढ़ते हुए भी मरण लिखा है, सो क्या कारण है?

(नानकचन्द्र जैन, खतौली, पत्र ता. १-४-४२)

समाधान—उक्त पृष्ठपर दी गई शंका-समाधानके अभिप्राय समझनेमें भ्रम हुआ है। यह शंका-समाधान केवल चतुर्थ गुणस्थानवर्ती उन उपशमसम्यग्दृष्टियोंके लिये है, जो कि उपशमश्रेणीसे उतरकर आये हैं। इसका सीधा अभिप्राय यह है कि सर्वसाधारण उपशमसम्यग्दृष्टि असयतोका मरण नहीं होता है। अपवादरूप जिन उपशमसम्यग्दृष्टि असयतोंका मरण होता है उन्हें श्रेणीसे उतरे हुए ही समझना चाहिए। आगे पृ. ३५१ से ३५४ तक कई स्थानोंपर जो श्रेणीपर चढ़ते या उतरते हुए मरण लिखा है, वह उपशमक-गुणस्थानोकी अपेक्षा लिखा है, न कि असयतगुणस्थानकी अपेक्षा।

पुस्तक ४, पृष्ठ १७४

६ शंका—पृष्ठ १७४ में ‘एक्कगिह इदए सेडीनद्ध पइणए च सट्ठिगामागारवकुत्रिचविल-’ का अर्थ—‘एक ही इन्द्रज, श्रेणीबद्ध या प्रकीर्णक नरकमें विद्यमान ग्राम, घर और बहुत प्रकारके विलोभे’ किया है। क्या नरकमें भी ग्राम घर होते हैं? विले तो जरूर होते हैं। असलमें ‘गामागार’ का अर्थ ‘ग्रामके आकारवाले अर्थात् गावके समान बहुत प्रकारके विलोभे’ ऐसा होना चाहिए? (जैनसन्देश, ता. २३-४-४२)

समाधान—सुझाया गया अर्थ भी माना जा सकता है, पर किया गया अर्थ गलत नहीं है, क्योंकि, घोंके समुदायको ग्राम कहते हैं। समालोचकके कथनानुसार 'ग्रामके आकार-वाले अर्थात् ग्रामके समान' ऐसा भी 'गामागार' पदका अर्थ मान लिया जाय तो भी उन्हें कि द्वारा उठाई गई शब्दा तो व्यो की लों ही खड़ी रहती है, क्योंकि, ग्रामके आकारवालोंको ग्राम कहनेमें कोई असंगति नहीं है। इसलिए इस सुझाए गए अर्थमें कोई विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती।

पुस्तक ४, पृ. १८०

७ शंका—पृ. १८० में मूलमें एक पंक्तिमें 'व' और 'ण' ये दो शब्द जोड़े गये हैं। किन्तु ऐसा गलत होता है कि 'घणरज्जु' में जो 'घण' शब्द है वह अधिक है और लेखकों की मरामतसे 'व' का 'घण' हो गया है ? (जैनसन्देश, ता. २३-४-४२)

समाधान—प्रस्तुत पाठके संशोधन करते समय हमें उपलब्ध पाठमें अर्थकी दृष्टिसे 'व' पाठका स्थान प्रतीत हुआ। अतएव हमने उपलब्ध पाठकी रक्षा करते हुए हमारे नियमानुसार 'व' और 'ण' को यथास्थान कोष्ठकके अन्दर रख दिया। शंकाकारकी दृष्टि इसी संशोधनके आधारसे उक्त पाठपर अटकी और उन्होंने 'व' पाठकी वहा आवश्यकता अनुभव की। इससे हमारी कल्पनाकी पूरी पुष्टि होगई। अब यदि 'व' पाठ की पूर्ति उपलब्ध पाठके 'घण' को 'व' वनाकर कर ली जाय तो भी अर्थका निर्वाह हो जाता है और भिन्न गये अर्थमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। बात इतनी है कि ऐसा पाठ उपलब्ध प्रतियोंमें नहीं मिलता और न मूडबिद्भिसे कोई सुधार प्राप्त हुआ।

पुस्तक ४, पृ. २४०

८ शंका—पृ. २४० में ५७ वें सूत्रके अर्थमें एकेन्द्रियपर्याप्त एकेन्द्रियअपर्याप्त भेद गलत किन्ते हैं, ये नहीं होना चाहिए, क्योंकि, इस सूत्रकी व्याख्यामें इनका उल्लेख नहीं है ? (जैनसन्देश, ता. ३०-४-४२)

समाधान—यद्यपि यहां व्याख्यामें उक्त भेदोंका कोई उल्लेख नहीं है, तथापि द्रव्य-प्रमाणानुग (भाग ३, पृ. ३०५) में इन्हीं शब्दोंसे रचित सूत्र नं. ७४ की टीकामें धवलाकारे उन भेदोंका स्पष्ट उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है—“पृष्ठद्विधाचदरेद्विद्या सुदुमेद्विद्या पञ्जता जपञ्जता च ण्डे णव वि रासीओ ”। धवलाकारके इसी स्पष्टीकरणको ध्यानमें रखकर प्रस्तुत स्थल पर भी नो भेद गिनाये गये हैं। तथा उन भेदोंके यहां ग्रहण करने पर कोई दोष भी नहीं दिखता। अतएव जो अर्थ किया गया है वह सप्रमाण और शुद्ध है।

पुस्तक ४, पृष्ठ ३१३

९ शंका—पृ. ३१३ में—‘स-परप्पयासमयपमाणपडिवादीण-’ पाठ अशुद्ध प्रतीत होता है, इसके स्थानमें यदि ‘सपरप्पयासयमणिपमाणपडिवादीण-’ पाठ हो तो अर्थकी संगति ठीक बैठ जाती है ? (जैनसन्देश, ३०-४-४२)

समाधान—प्रस्तुत स्थलपर उपलब्ध तीनों प्रतियोंमें जो विभिन्न पाठ प्राप्त हुए और मूडबिद्भिसे जो पाठ प्राप्त हुआ उन सबका उल्लेख वहीं टिप्पणीमें दे दिया गया है। उनमें अधिक हेर-फेर करना हमने उचित नहीं समझा और यथाशक्ति उपलब्ध पाठोंपरसे ही अर्थकी संगति वैय्य दी। यदि पाठ बदलकर और अधिक सुसंगत होगा—स-परप्पयासयमाण-पडिवादीणमुवलंभा। उक्त पाठको इस प्रकार रखना अधिक सुसंगत होगा—‘क्योकि स्व-परप्रकाशक प्रमाण व प्रदीपादिक पाये इस पाठके अनुसार अर्थ इस प्रकार होगा—“क्योकि स्व-परप्रकाशक प्रमाण व प्रदीपादिक पाये पाये जाते हैं (इसलिये शब्दके भी स्वप्रतिपादकता बन जाती है)।”

पुस्तक ४, पृष्ठ ३५०

१० शंका—धवलराज खड ४, पृष्ठ ३५०, ३६६ पर सम्मूर्च्छन जीवके सम्यग्दर्शन होना लिखा है। परन्तु लब्धिसार गाथा २ में सम्यग्दर्शनकी योग्यता गर्भजके लिखी है, सो इसमें विरोधसा प्रतीत होता है, खुलासा करिए। (नानकचन्द्र जैन, खतौली, पृ. १६-३-४२)

समाधान—लब्धिसार गाथा दूसरीमें जो गर्भजका उल्लेख है, वह प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी प्राप्तिकी अपेक्षासे है। किन्तु यहा उपर्युक्त पृष्ठोंमें जो सम्मूर्च्छिम जीवके सयमांसयम पानेका निरूपण है, उसमें प्रथमोपशमसम्यक्त्वका उल्लेख नहीं है, जिससे ज्ञात होता है कि यहां वह कथन वेदकसम्यक्त्वकी अपेक्षासे किया गया है। अतएव दोनों कथनोंमें कोई विरोध नहीं समझना चाहिए।

पुस्तक ४, पृष्ठ ३५३

११ शंका—आपने अर्धवर्ण उपशमकको मरण करके अनुत्तर विमानोंमें उत्पन्न होना लिखा है, जब कि मूलमें ‘उत्तमो देवो’ पाठ है। क्या उपशमप्रेणीमें मरण करनेवाले जीव नियमसे अनुत्तरमें ही जाते हैं ? क्या प्रमत्त और अप्रमत्तवाले भी सर्वार्थसिद्धिमें जा सकते हैं ? (नानकचन्द्र जैन खतौली, पृ. ता. १-४-३२)

समाधान—इस शंकामें तीन शंकायें गर्भित हैं जिनका समाधान क्रमशः इस प्रकार है—
(१) मूलमें ‘उत्तमा देवो’ पाठ नहीं, किन्तु ‘लवसत्तमो देवो’ पाठ है। लवसत्तमका अर्थ अनुत्तर विमानवासी देव होता है। यथा—लवसत्तम-पुं०। पचानुत्तरविमानरश्म-

देवेसु । सूत्र० १ श्रु. ६ अ. । सम्प्रति लवसत्तमदेवस्वरूपमाह—

सत्त लवा जह्वात्तु पदु पमाण ततो उ सिज्जतो ।

तत्तियमेत्त न दु त तो ते लवसत्तमा जाया ॥ १३२ ॥

सब्बट्ठसिद्धिनामे उक्कोसिद्धिं य विजयमादीसु ।

एगावसेसगम्भा भवति लवसत्तमा देवा ॥ १३३ ॥ व्य ५ उ

अभिधानराजेन्द्र, लवसत्तमशब्द.

(२) उपशमश्रेणीमें मरण करनेवाले जीव नियमसे अनुत्तर विमानोंमें ही जाते हैं, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु त्रिलोकप्रज्ञप्तिकी निम्न गाथासे ऐसा अवश्य ज्ञात होता है कि चतुर्दशपूर्वधारी जीव लान्तव-कापिष्ठ करपसे लगाकर सर्वार्थसिद्धिपर्यंत उत्पन्न होते हैं । चूँकि 'शुद्धे चाये पूर्वविद्' के नियमानुसार उपशमश्रेणीवाले भी जीव पूर्वविविद् हो जाते हैं, अतएव उनकी लान्तवकरपसे ऊपर ही उत्पत्ति होती है नीचे नहीं, ऐसा अवश्य कहा जा सकता है । वह गाथा इस प्रकार है—

दसपुण्वधरा सोहम्मपण्डुदि सम्बट्ठसिद्धिपरित्त

चोइसपुण्वधरा तह लतवक्कप्पादि वच्चे ॥ ति प पत्र २३७, १६

(३) उपशमश्रेणीपर नहीं चढ़नेवाले, पमत्त अप्रमत्तस्यत गुणस्थानोंमें ही परिवर्तन-सहस्रोंको करनेवाले साधु सर्वार्थसिद्धिमें नहीं जा सकते हैं, ऐसा स्पष्ट उल्लेख देखनेमें नहीं आया । प्रत्युत इसके त्रिलोकसार गाथा न. ५४६ के 'सम्बट्ठो न्ति सुविट्ठी महब्बई' पदसे द्रव्य-भाररूपसे महाव्रती संयतोंका सर्वार्थसिद्धि तक जानेका स्पष्ट विधान मिलता है ।

पुस्तक ४, पृष्ठ ४११

१२ शंका—योग-परिवर्तन और व्याघात-परिवर्तनमें क्या अन्तर है ?

(नानकवन्द जैन, खतौली, पत्र ता १-४-४२)

समाधान—विवक्षित योगका अन्य किसी व्याघातके बिना काल-क्षय हो जाने पर अन्य योगके परिणामनको योग-परिवर्तन कहते हैं । किन्तु विवक्षित योगका कालक्षय होनेके पूर्व ही क्रोधादि निमित्तसे योग-परिवर्तनको व्याघात कहते हैं । जैसे—कोई एक जीव मनोयोगके साथ विद्यमान है । जब अन्तर्मुहूर्तप्रमाण मनोयोगका काल पूरा हो गया तब वह वचनयोगी या काययोगी हो गया । यह योग-परिवर्तन है । इसी जीवके मनोयोगका काल पूरा होनेके पूर्व ही कषाय, उपद्रव, उपसर्ग आदिके निमित्तसे मन चंचल हो उठा और वह वचनयोगी या काययोगी हो गया, तो यह योगका परिवर्तन व्याघातकी अपेक्षासे हुआ । योग-परिवर्तनमें काल प्रधान है, जब कि व्याघात-परिवर्तनमें कषाय आदिका आघात प्रधान है । यही दोनोंमें अन्तर है ।

पुस्तक ४, पृष्ठ ४५६

१३ शंका—पृष्ठ ४५६ में 'अणलेस्सागमणासम्भवा' का अर्थ 'अन्य लेश्याका आगमन असम्भव है' किया है, होना चाहिए—अन्य लेश्यामें गमन असंभव है ?

(जैनसन्देश, ता. ३०-४-४२)

समाधान—किये गये अर्थमें और सुझाये गये अर्थमें कोई भेद नहीं है । 'अन्य लेश्याका आगमन' और 'अन्य लेश्यामें गमन' कहनेसे अर्थमें कोई अन्तर नहीं पड़ता । मूलमें भी दोनों प्रकारके प्रयोग पाये जाते हैं । उदाहरणार्थ—प्रस्तुत पाठके ऊपर ही वाक्य है—'दीयमाण-वडुमाणकिण्हलेस्साण काउलेस्साण वा अच्छिदस्स गील्लेस्सा आगदा' अर्थात् दीयमान कृष्ण-लेश्यामें अथवा वर्धमान कापोतलेश्यामें विद्यमान किसी जीवके नीलेलेश्या आ गई, इत्यादि ।

४ विषय-परिचय



जीवस्थानकी आठ प्ररूपणाओंमेंसे प्रथम पाच प्ररूपणाओंका वर्णन पूर्व-प्रकाशित चार भागोंमें किया गया है । अब प्रस्तुत भागमें अवशिष्ट तीन प्ररूपणाएँ प्रकाशित की जा रही हैं—अन्तरानुगम, भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम ।

१ अन्तरानुगम

विवक्षित गुणस्थानवर्ती जीवका उस गुणस्थानको छोड़कर अन्य गुणस्थानमें चले जाने पर पुनः उसी गुणस्थानकी प्राप्तिके पूर्व तकके कालको अन्तर, व्युच्छेद या विरहकाल कहते हैं । सबसे छोटे विरहकालको जवन्म्य अन्तर और सबसे बड़े विरहकालको उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं । गुणस्थान और मार्गणास्थानोंमें इन दोनों प्रकारोंके अन्तरोंके प्रतिपादन करनेवाले अनुयोगद्वाराको अन्तरानुगम कहते हैं ।

पूर्व प्ररूपणाओंके समान इस अन्तरप्ररूपणामें भी ओष और ओदेशकी अपेक्षा अन्तरका निर्णय किया गया है, अर्थात् यह बतलाया गया है कि यह जीव किस गुणस्थान या मार्गणास्थानसे कमसे कम कितने काल तक के लिए और अधिकसे अधिक कितने काल तक के लिए अन्तरको प्राप्त होता है ।

उदाहरणार्थ—ओषकी अपेक्षा मिय्याट्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? इस प्रश्नके उत्तरमें बताया गया है कि नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ।

इसका अभिप्राय यह है कि भिर्यात्वपर्यायसे परिणत जीवोंका तीनों ही कालोंमें व्युच्छेद, विरह या अभाग नहीं है, अर्थात् इस ससारमें भिर्यादृष्टि जीव सर्वकाल पाये जाते हैं । किन्तु एक जीवकी अथवा भिर्यात्वका जवन्व्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तकालप्रमाण है । यह जवन्व्य अन्तर्काल इस प्रकार घटित होता है कि कोई एक भिर्यादृष्टि जीव परिणामोंकी विभुद्धिके निमित्तसे सम्पन्नको प्राप्तकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती हुआ । वह चतुर्थ गुणस्थानमें सबसे छोटे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण सम्यक्त्वके साथ रहकर सकेत आदि के निमित्तसे गिरा और भिर्यात्वको प्राप्त होगया, अर्थात् पुनः भिर्यादृष्टि होगया । इस प्रकार भिर्यात्व गुणस्थानको छोड़कर अन्य गुणस्थानतो प्राप्त होकर पुनः उसी गुणस्थानमें आनेके पूर्व तक जो अन्तर्मुहूर्तकाल भिर्यात्वपर्यायसे परिणत रहा, यही उस एक जीवकी अपेक्षा भिर्यादृष्टि गुणस्थानका जवन्व्य अन्तर माना जायगा ?

इसी एक जीवकी अपेक्षा भिर्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ अर्थात् एक सौ त्तीस (१३२) सागरोपम काठ है । यह उत्कृष्ट अन्तरकाल इस प्रकार घटित होता है कि कोई एक भिर्यादृष्टि तिथिच अथवा मनुष्य चौदह सागरोपम आयुस्थितिवाले लान्तव-नाभिष्ठ कन्यावर्ती देवोंमें उत्पन्न हुआ । वह वही एक सागरोपम कालके पश्चात् सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । तेरह सागरोपम काल वही सम्यक्त्वके साथ रहकर च्युत हो मनुष्य होगया । उस मनुष्यभयमें समयको, अथवा समयमासमयको पालन कर वाईस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले आण-अयुत कल्पमासी देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहासे च्युत होकर पुनः मनुष्य हुआ । इस मनुष्यभयमें समय धारण कर मारा और इक्तीस सागरोपमकी आयुवाले उपरिम श्रेयकके अह-मिन्द्रोंमें उत्पन्न हुआ । वहासे च्युत हो मनुष्य हुआ, और समय धारण कर पुनः उक्त प्रकारसे तीस, नाईस और चौबीस सागरोपमकी आयुवाले देवों और अहमिन्द्रोंमें क्रमशः उत्पन्न हुआ । इस प्रकार बह भूरे एक सौ वत्तीस (१३२) सागरोपम सम्यक्त्वके साथ रहकर अन्तमें पुनः भिर्यात्वको प्राप्त हुआ । इस तरह भिर्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर सिद्ध होगया । उक्त विवेचनमें यह बात ध्यान रानेकी है कि वह जीव जिने वार मनुष्य हुआ, उतने वार मनुष्यभवसम्बन्धी आयुसे कम ही देनाउतो प्राप्त हुआ है, अन्यथा वतलाए गए कालसे अधिक अन्तर हो जायगा । कुछ कम दो छयासठ सागरोपम कहनेका अभिप्राय यह है कि वह जीव दो छयासठ सागरोपम कालके प्रारम्भमें ही भिर्यात्वको छोड़कर सम्यक्त्वी बना और उसी दो छयासठ सागरोपमकालके अन्तमें पुनः भिर्यात्वको प्राप्त हो गया । इसलिए उतना काल उनमेंसे घटा दिया गया ।

यहाँ ध्यान रानेकी बात यह है कि काल-प्रत्युणमें जिन-जिन गुणस्थानोंका काल नानाजीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल वतलाया गया है, उन-उन गुणस्थानवर्ती जीवोंका नानाजीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता है । किन्तु उनके सिवाय शेष सभी गुणस्थानवर्ती जीवोंका नानाजीवोंकी

तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तर होता है । इस प्रकार नानाजीवोंकी अपेक्षा कभी भी शिहको नहीं प्राप्त होनेवाले छह गुणस्थान हैं— १ भिर्यादृष्टि, २ असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, ४ प्रमत्त-संयत, ५ अप्रमत्तसंयत और ६ संयोगिकेन्द्री । इन गुणस्थानोंमें केवल एक जीवकी अपेक्षा जवन्व्य और उत्कृष्ट अन्तर वतलाया गया है, जिसे ग्रन्थ-अध्ययनसे पाठक भली भांति जान सकेंगे ।

जिस प्रकार ओवसे अन्तरका निरूपण किया गया है, उसी प्रकार आदेशकी अपेक्षा भी उन-उन मार्गणोंमें सम्यक् गुणस्थानोंका अन्तर जानना चाहिए । मार्गणोंमें आठ सान्तरमार्गणएँ होती हैं, अर्थात् जिनका अन्तर होता है । जैसे— १ उपजामसम्यक्त्वमार्गणा, २ सूक्ष्मसाम्परायसममार्गणा, ३ आहारकक्राययोगमार्गणा, ४ आहारकमिश्रक्राययोगमार्गणा, ५ वैक्रिषिकमिश्रक्राययोगमार्गणा, ६ लब्धपर्याप्तमनुष्यगतिमार्गणा, ७ सासादनसम्यक्त्वमार्गणा और सम्यग्भिर्यात्वमार्गणा । इन आठोंका उत्कृष्ट अन्तर काल क्रमशः १ सात दिन, २ छह मास, ३ वर्षपृथक्त्व, ४ वर्षपृथक्त्व, ५ बारह मुहूर्त, और अन्तिम तीन सान्तर मार्गणोंका अन्तरकाल पृथक् पृथक् पल्योपमका असह्यतवा भाग है । इन सब सान्तर मार्गणोंका जवन्व्य अन्तरकाल एक समयप्रमाण ही है । इन सान्तर मार्गणोंके अतिरिक्त शेष सब मार्गणएँ नानाजीवोंकी अपेक्षा अन्तर-रहित हैं, यह ग्रन्थके स्वाभ्यासे सरलतापूर्वक हृदयंगम किया जा सकेगा ।

२ भावानुगम

कर्मोंके उपशम, क्षय आदिके निमित्तसे जीवके जो परिणामविशेष होते हैं, उन्हें भाव कहते हैं । वे भाव पाच प्रकारके होते हैं— १ औदयिकभाव, २ औपशमिकभाव, ३ क्षायिक-भाव, ४ क्षायोपशमिकभाव और परिणामिकभाव । कर्मोंके उदयसे होनेवाले भावोंको औद-यिक भाव कहते हैं । इसके इक्कीस भेद हैं— चार गतिरा (नरक, तिर्यच, मनुष्य और देवगति), तीन लिंग (स्त्री, पुरुष, और नपुंसकलिंग), चार कर्माय (क्रोध, मान, माया और लोभ), भिर्यादर्शन, असिद्धत्व, अज्ञान, छह लेख्याएँ (कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म और शुक्लेख्या), तथा असयम । मोहनीयकर्मके उपजामसे (क्योंकि, शेष सात कर्मोंका उपशम नहीं होता है) उत्पन्न होनेवाले भावोंको औपशमिक भाव कहते हैं । इसके दो भेद हैं— १ औपश-मिकसम्यक्त्व और २ औपशमिकचारित्र । कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होनेवाले भावोंको क्षायिकभाव कहते हैं । इसके नौ भेद हैं— १ क्षायिकसम्यक्त्व, २ क्षायिकचारित्र, ३ क्षायिकज्ञान, ४ क्षायिकदर्शन, ५ क्षायिकदान, ६ क्षायिकलाभ, ७ क्षायिकभोग, ८ क्षायिकउपभोग और ९ क्षायिकवीर्य । कर्मोंके क्षयोपशमसे उत्पन्न होनेवाले भावोंको क्षायोपशमिकभाव कहते हैं । इसके अष्टारह भेद हैं— चार ज्ञान (मति, श्रुत, अवधि और मतःपर्ययज्ञान), तीन अज्ञान

यहा यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि चौथे गुणस्थान तक भावोंका प्ररूपण दर्शन-मोहनीय कर्मकी अपेक्षा किया गया है। इसका कारण यह है कि गुणस्थानोंका तारतम्य या विकास-क्रम मोह और योगके आश्रित है। मोहकर्मके दो भेद हैं— एक दर्शनमोहनीय और दूसरा चारित्रमोहनीय। आत्माके सम्यक्त्वगुणको घातनेवाला दर्शनमोहनीय है जिसके निमित्तसे आत्मा वस्तुस्वभावको या अपने हित-अहितको देखता और जानता हुआ भी श्रद्धान नहीं कर सकता है। चारित्रगुणको घातनेवाला चारित्रमोहनीयकर्म है। यह वह कर्म है जिसके निमित्तसे वस्तुस्वरूपका यथार्थ श्रद्धान करते हुए भी, सन्मार्गिको जानते हुए भी, जीव उसपर चल नहीं पाता है। मन, वचन और कार्यकी चंचलताको योग कहते हैं। इसके निमित्तसे आत्मा सदैव परस्परद्वन्द्वयुक्त रहता है, और कर्मोश्रवका कारण भी यही है। प्रारम्भके चार गुणस्थान दर्शन-मोहनीय कर्मके उदय, उपशम, क्षयोपशम आदिसे उत्पन्न होते हैं, इसलिए उन गुणस्थानोंमें दर्शनमोहकी अपेक्षासे (अन्य भावोंके होते हुए भी) भावोंका निरूपण किया गया है। तथापि चौथे गुणस्थान तक रहनेवाला असयमभाव चारित्रमोहनीयकर्मके उदयकी अपेक्षासे है, अतः उसे औदयिकभाव ही जानना चाहिए। पाचवेंसे लेकर बारहवें तक आठ गुणस्थानोंका आधार चारित्र-मोहनीयकर्म है अर्थात् ये आठो गुणस्थान चारित्रमोहनीयकर्मके क्रमशः, क्षयोपशम, उपशम और क्षयसे होते हैं, अर्थात् पाचवें, छठे और सातवें गुणस्थानमें क्षयोपशमिकभाव, आठवें, नवें, दशवें और ग्यारहवें, इन चारो उपशमक गुणस्थानोंमें औपशमिकभाव, तथा क्षयकश्रेणीसम्बन्धी चारो गुणस्थानोंमें, तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानोंमें क्षयिकभाव कहा गया है। तेरहवें गुणस्थानमें मोहका अभाव हो जानेसे केवल योगकी ही प्रधानता है और इसीलिए इस गुणस्थानका नाम सम्यगिकेवली रखा गया है। चौदहवें गुणस्थानमें योगके अभावकी प्रधानता है, अतएव अयोगिकेवली ऐसा नाम सार्थक है। इस प्रकार शोडशमें यह फलितार्थ जानना चाहिए कि विवक्षित गुणस्थानमें सभव अन्य भाव पाये जाते हैं, किन्तु यहा भावप्ररूपणमें केवल उन्हीं भावोंको बताया गया है, जो कि उन गुणस्थानोंके मुख्य आधार हैं।

आदेशकी अपेक्षा भी इसी प्रकारसे भावोंका प्रतिपादन किया गया है, जो कि प्रयाचलो-कनसे व प्रस्तावनमें दिये गये नकशोंके सिंहावलोकनसे सहजमें ही जाने जा सकते हैं।

३ अल्पबहुत्वानुगम

द्रव्यप्रमाणानुगममें वतलये गये सत्या-प्रमाणके आधार पर गुणस्थानों और मार्गणा-स्थानोंमें सभव पारस्परिक सत्याकृत हीनता और अधिकताका निर्णय करनेवाला अल्पबहुत्वानुगम नामक अनुयोगद्वारा है। यद्यपि न्युत्पन्न पाठक द्रव्यप्रमाणानुगम अनुयोगद्वारेके द्वारा ही उक्त अल्पबहुत्वका निर्णय कर सकते हैं, पर आचार्योंने विस्ताररुचि शिष्योंके लाभार्थ इस नामका

(कुमति, कुश्रुत और विभगावधि), तीन दर्शन (चक्षुदर्शन, वचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन), पाच छविर्था (क्षयोपशमिक दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य), क्षयोपशमिकसम्यक्त्व, क्षयोपशमिकचरित्र और सयमासंयम। इन पूर्वोक्त चारों भावोंसे विभिन्न, कर्मोंके उदय, उपशम आदिकी अपेक्षा न रखते हुए स्वतः उत्पन्न भावोंको परिणामिकभाव कहते हैं। इसके तीन भेद हैं— १ जीवत्व, २ भव्यत्व और ३ अभव्यत्व।

इन उपर्युक्त भावोंके अनुगमको भावानुगम कहते हैं। इस अनुयोगद्वारमें भी ओष और आदेशकी अपेक्षा भावोंका विवेचन किया गया है। ओषनिर्देशकी अपेक्षा प्रथम किया गया है कि 'मिथ्यादृष्टि' यह कौनसा भाव है? इसके उत्तरमें कहा गया है कि मिथ्यादृष्टि यह औदयिकभाव है, क्योंकि, जीवोंके मिथ्या दृष्टि मिथ्यात्वकर्मके उदयसे उत्पन्न होती है। यहा यह शक्ता उठाई गई है कि, जब मिथ्यादृष्टि जीवके मिथ्यात्वभावके अतिरिक्त ज्ञान, दर्शन, गति, किंग, कर्णय भव्यत्व आदि और भी भाव होते हैं, तब यहाँ केवल एक औदयिकभावको ही वतानेका क्या कारण है? इस शक्तीके उत्तरमें कहा गया है कि यद्यपि मिथ्यादृष्टि जीवके औदयिकभावके अतिरिक्त अन्य भाव भी होते हैं, किन्तु वे मिथ्यादृष्टि के कारण नहीं हैं, एक मिथ्यात्वकर्मका उदय ही मिथ्यादृष्टि का कारण होता है, इसलिए मिथ्यादृष्टिको औदयिकभाव कहा गया है।

सासादनगुणस्थानमें पारिणामिकभाव बताया गया है, और इसका कारण यह कहा गया है कि जिस प्रकार जीवत्व आदि पारिणामिक भावोंके लिए कर्मोंका उदय आदि कारण नहीं है, उसी प्रकार सासादनसम्यक्त्वके लिए दर्शनमोहनीयकर्मका उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम, ये कोई भी कारण नहीं हैं, इसलिए इसे यहा पारिणामिकभाव ही मानना चाहिए।

सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानमें क्षयोपशमिकभाव होता है। यहा शक्ता उठाई गई है कि प्रतिवर्तीकर्मके उदय होनेपर भी जो जीवके स्वाभाविक गुणका अंश पाया जाता है, वह क्षयोपशमिक कहलाता है, किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके उदय रहते हुए तो सम्यक्त्वगुणकी कणिका भी अवशिष्ट नहीं रहती है, अन्यथा सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके सर्वधातीपना नहीं बन सकता है। अतएव सम्यग्मिथ्यात्वमान क्षयोपशमिक सिद्ध नहीं होता है? इसके उत्तरमें कहा गया है कि सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके उदय होनेपर श्रद्धानाश्रद्धानालम्ब एक मिश्रभाव उत्पन्न होता है। उसमें जो श्रद्धानांश है, वह सम्यक्त्वगुणका अंश है। उसे सम्यग्मिथ्यात्वकर्मका उदय नष्ट नहीं करता है, अतएव सम्यग्मिथ्यात्वभाव क्षयोपशमिक है।

असयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानमें औपशमिक, क्षायिक और क्षयोपशमिक, ये तीन भाव पाये जाते हैं, क्योंकि, यहापर दर्शनमोहनीयकर्मका उपशम, क्षय और क्षयोपशम, ये तीनों होते हैं।

एक पृथक् ही अनुयोगद्वारा बनाया, क्योंकि, संश्लेषरुचि शिष्योंकी जिज्ञासाको रूत करना ही शास्त्र-प्रणयनका फल वतयया गया है ।

अन्य प्ररूपणाओंके समान यहा भी ओषनिर्देश और आदेशनिर्देशकी अपेक्षा अल्प-चट्टु रत्ता निर्णय किया गया है । ओषनिर्देशसे अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक नीय प्रवेशकी अपेक्षा परस्पर तुल्य है, तथा शेष सब गुणस्थानोंके प्रमाणसे अल्प हैं, क्योंकि, इन तीनों ही गुणस्थानोंमें पृथक् पृथक् रूपसे प्रवेश करनेवाले जीव एक दो को आदि लेकर अधिकसे अधिक चौपन तक ही पाये जाते हैं । इतने कम जीव इन तीनों उपशामक गुणस्थानोंको छोड़कर और किसी गुणस्थानमें नहीं पाये जाते हैं । उपशान्तऋषायवीतरागद्वन्द्वस्थ नीय भी पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं, क्योंकि, उक्त उपशामक जीव ही प्रवेश करते हुए इस ग्यारहवें गुणस्थानमें आते हैं । उपशान्तऋषायवीतरागद्वन्द्वस्थोंसे अपूर्वकरणदि तीन गुणस्थानवर्ती क्षपक संख्यातगुणित हैं, क्योंकि, उपशामकके एक गुणस्थानमें उल्कर्षसे प्रवेश करनेवाले चौपन जीवोंकी ओषा क्षपकते एक गुणस्थानमें उल्कर्षसे प्रवेश करनेवाले एक सौ आठ जीवोंके दूने प्रमाण-स्वरूप मन्वानगुणितता पाई जाती है । क्षीणकषायवीतरागद्वन्द्वस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं, क्योंकि, उक्त क्षपक जीव ही इस ग्यारहवें गुणस्थानमें प्रवेश करते हैं । सयोगिकेवली और अयोगिकेवली निन प्रवेशकी ओषा दोनों ही परस्पर तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण अर्थात् एक सौ आठ हैं । किन्तु सयोगिकेवली निन सचयकालकी अपेक्षा प्रविश्यमान जीवोंसे सख्यातगुणित है, क्योंकि, पानसी अटाने गान जीवोंकी अपेक्षा आठ लाख अटानेवे हजार पाचसौ दो (८९८१०२) सन्याप्रमाण जीवोंके सख्यातगुणितता पाई जाती है । दूसरी बात यह है कि इस तरहें गुणस्थानका काल अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्षसे कम पूर्वमोटीवर्ष माना गया है । सयोगिकेवली जिनोंसे उपशम और क्षपकश्रेणीपर नहीं चढनेवाले अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित है, क्योंकि, अप्रमत्तसंयतोका प्रमाण दो करोड़ छयानेवे लाख निन्यानेवे हजार एकसौ तीन (२९६९९१०३) है । अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत सख्यातगुणित हैं, क्योंकि, उनसे इनका प्रमाण दूना अर्थात् पाच करोड तेरानेवे लाख अटानेवे हजार दोसौ छह (५९३९८२०६) है । प्रमत्तसंयतोसे संयतासंयत जीव असख्यातगुणित है, क्योंकि, वे पल्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण हैं । संयतासंयतोसे सासादनसंयदृष्टि जीव असख्यातगुणित हैं, क्योंकि, सयमासंयमकी अपेक्षा सासादनसंयत्वज्ञा पाना बहुत सुलभ है । यहापर गुणकारका प्रमाण आन्वीका असख्यातना भाग जानना चाहिए, अर्थात् आन्वीके असख्यातवें भागमें जितने समय होते हैं, उनके द्वारा संयतासंयत जीवोंकी राशिको गुणित करने पर जो प्रमाण आता है, उतने सासादनसंयदृष्टि जीव हैं । सासादनसंयदृष्टियोंसे सयमिम्यादृष्टि जीव सख्यातगुणित हैं, क्योंकि,

दूसरे गुणस्थानकी अपेक्षा तीसरे गुणस्थानका काल संख्यातगुणा है । सयमिम्यादृष्टियोंसे असंयतसंयदृष्टि जीव असख्यातगुणित है, क्योंकि, तीसरे गुणस्थानको प्राप्त होनेवाली राशिकी अपेक्षा चौथे गुणस्थानको प्राप्त होनेवाली राशि आन्वीके असख्यातवें भागगुणित है । असंयतसंयदृष्टि जीवोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि जीव अनन्त होते हैं । इस प्रकार यह चौदहों गुणस्थानोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहा गया है, जिसका मूल आधार द्रव्यप्रमाण है । यह अल्पबहुत्व गुणस्थानोंमें दो दृष्टियोंसे बताया गया है प्रवेशकी अपेक्षा और सचयकालकी अपेक्षा । जिन गुणस्थानोंमें अन्तरका अभाव है अर्थात् जो गुणस्थान सर्वकाल समव है, उनका अल्पबहुत्व सचयकालकी ही अपेक्षासे कहा गया है । ऐसे गुणस्थान, जैसा कि अन्तरप्ररूपणोंमें बताया जा चुका है, मिथ्यादृष्टि, असंयतसंयदृष्टि आदि चार और सयोगिकेवली, ये छह हैं । जिन गुणस्थानोंमें अन्तर पडता है, उनमें अल्पबहुत्व प्रवेश और सचयकाल, इन दोनोंकी अपेक्षा बताया गया है । जैसे— अन्तरकाल समाप्त होनेके पश्चात् उपशामक और क्षपक गुणस्थानोंमें कमसे कम एक दो तीनसे लगाकर अधिकसे अधिक ५४ और १०८ तक जीव एक समयमें प्रवेश कर सकते हैं, और निरन्तर आठ समयोंमें प्रवेश करने पर उनके सचयका प्रमाण क्रमशः ३०४ और ६०८ तक एक एक गुणस्थानमें हो जाता है । दूसरे और तीसरे गुणस्थानका प्रवेश और संचय ग्रन्थानुसार जानना चाहिए । ऐसे गुणस्थान चारो उपशामक, चारों क्षपक, अयोगिकेवली सयमिम्यादृष्टि और सासादनसंयदृष्टि हैं ।

इसके अतिरिक्त इस अनुयोगद्वारमें मूलसूत्रकारने एक ही गुणस्थानमें सयमिक्त्वकी अपेक्षासे भी अल्पबहुत्व बताया है । जैसे— असंयतसंयदृष्टि गुणस्थानमें उपशमसंयदृष्टि जीव सबसे कम हैं । उमशमसंयदृष्टियोंसे क्षायिकसंयदृष्टि जीव असख्यातगुणित हैं और क्षायिकसंयदृष्टियोंसे वेदकसंयदृष्टि जीव असख्यातगुणित हैं । इस हीनाधिक्रताका कारण उत्तरोत्तर सचयकालकी अधिक्रता है । संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसंयदृष्टि जीव सबसे कम हैं, क्योंकि, देशसंयमको धारण करनेवाले क्षायिकसंयदृष्टि मनुष्योंका होना अत्यन्त दुर्लभ है । दूसरी बात यह है कि तिर्यचोंमें क्षायिकसंयक्त्वके साथ देशसंयम नहीं पाया जाता है । इसका कारण यह है कि तिर्यचोंमें दर्शनमोहनीयकर्मकी क्षपणा नहीं होती है । इसी संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसंयदृष्टियोंसे उपशमसंयदृष्टि संयतासंयत असख्यातगुणित हैं और उपशमसंयदृष्टियोंसे वेदकसंयदृष्टि संयतासंयत असंख्यातगुणित हैं । प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसंयदृष्टि जीव सबसे कम हैं, उनसे क्षायिकसंयदृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं, उनसे वेदकसंयदृष्टि जीव सख्यातगुणित हैं । इस अल्पबहुत्वका कारण संचयकालकी हीनाधिक्रता

ही है। इसी प्रकारका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व अपूर्वकरण आदि तीन उपशामक गुणस्थानोंमें जानना चाहिए। यद्वा ध्यान रखनेकी बात यह है कि इन गुणस्थानोंमें उपशामसम्यक्त्व और क्षायिकसम्यक्त्व, ये दो ही सम्यक्त्व होते हैं। यहाँ वेदकसम्यक्त्व नहीं पाया जाता, क्योंकि, वेदकसम्यक्त्वके साथ उपशामश्रेणीके आरोहणका अभाव है। अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामसम्यक्त्वी जीव सबसे कम हैं, उनसे उन्हीं गुणस्थानवर्ती क्षायिकसम्यक्त्वी जीव सख्यात-गुणित हैं। आगेके गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि, वहाँ सभी जीवोंके एकमात्र क्षायिकसम्यक्त्व ही पाया जाता है। इसी प्रकार प्रारम्भके तीन गुणस्थानोंमें भी यह अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि, उनमें सम्यग्दर्शन होता ही नहीं है।

जिस प्रकार यह ओघकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार आदेशकी अपेक्षा भी मार्गणास्थानोंमें अल्पबहुत्व जानना चाहिए। भिन्न भिन्न मार्गणाओंमें जो खास विशेषता है, वह ग्रन्थके स्वाध्यायसे ही हृदयगम की जा सकेगी। किन्तु स्थूलरीतिका अल्पबहुत्व द्रव्यप्रमाणानुगम (भाग ३) पृष्ठ ३८ से ४२ तक अंकसंछिष्टिके साथ बताया गया है, जो कि वहाँसे जाना जा सकता है। भेद केवल इतना ही है कि वहाँ वह क्रम बहुत्वसे अल्पकी ओर रखा गया है।

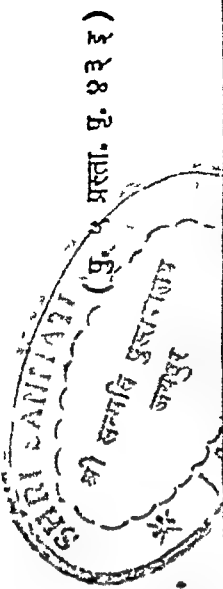
इन प्ररूपणाओंका महितार्थ सायमें लगाये गये नकशोंसे सुस्पष्ट हो जाता है।

इस प्रकार अल्पबहुत्वप्ररूपणाकी समाप्तिके साथ जीवस्थानानामक प्रथम खंडकी आठों प्ररूपणाएँ समाप्त हो जाती हैं।

५-विषय-सूची

(अन्तरानुगम)

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
१	धवलाकारका और प्रतिज्ञा	१-४	११	सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य अन्तर-प्रतिपादन	७
२	अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश-भेद-कथन	१	१२	उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर-निरूपण	८
३	नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव, इन छह भेद-रूप अन्तरका स्वरूप निरूपण	१-३	१३	सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा सोदाहरण जघन्य अन्तर-निरूपण तथा तदन्तर्गत अनेक शंकाओंका समाधान	९-११
४	कौनसे अन्तरसे प्रयोजन है, यह बताकर अन्तरके एकार्थ-वाचक नाम	३	१४	उपर्युक्त जीवोंका सोदाहरण उत्कृष्ट अन्तर	११-१३
५	अन्तरानुगमका स्वरूप तथा उसके द्विविध-निर्देशका सयुक्तिक निरूपण	२	१५	असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरोंका सोदाहरण निरूपण	१३-१७
६	ओघसे अन्तरानुगमनिर्देश मिथ्यादृष्टि जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर-निरूपण, तथा सूत्र पठित 'णत्थि अंतरे, णिरंतरे' इन दोनों पदोंकी सार्थकता-प्रतिपादन	४-२२	१६	चारों उपशामक गुणस्थानोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरोंका सोदाहरण निरूपण	१७-२०
७	मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरका सोदाहरण निरूपण	५	१७	चारों क्षपक और अयोगिकेवलीका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर	२०-२१
८	सम्यक्त्व छूटनेके पश्चात् होनेवाला अन्तिम मिथ्यात्व पहलेका मिथ्यात्व नहीं हो सकता, इस शकाका समाधान	५	१८	संयोगिकेवलीके नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरके अभावका प्रतिपादन	२१
९	मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तरका सोदाहरण निरूपण	५	१९	आदेशसे अन्तरानुगमनिर्देश	२२-१७९



सार्गनास्थानोंकी अपेक्षा जीवोंके अन्तर, भाव और अल्पवहुत्वका प्रमाण.

सार्गना	सार्गनाके अन्तर भेद	अन्तर			भाव	गुणस्थान	प्रमाण
		नाना जीवोंकी अपेक्षा		एक जीवकी अपेक्षा			
		जघय	वराष्ट	जघय	जघय	जघय	जघय
पक्षी	मिथ्यादि	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्
	{ सासादनसम्यग्दृष्टि	"	"	"	"	उपशामक अपूर्ण-करणमे अन्तर-सम्यग्दृष्टि तर्क मिथ्यादि	ओषवत्
	{ सम्यग्मिथ्यादि	"	"	"	"	"	असल्यातशुणित
	{ सम्यग्मिथ्यादि	"	"	"	"	"	"
पक्षी	पुष्टिनिमित्तिक आदि चार वनस्पतिनिमित्तिक	नितर	"	भुदमवमदृष्ट	ओषवत्	अनन्त कालात्मक असल्यात पुष्टलपुष्टितेन असल्यात लोक	ओषवत्
	{ मिथ्यादि	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्
	{ सासादनसम्यग्दृष्टि	"	"	"	"	पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सारोपम	"
	{ सम्यग्मिथ्यादि	"	"	"	"	" तथा देशोन दो हजार सारोपम	"
पक्षी	अस्यतादि चार गुणस्थान	नितर	"	अन्तर्गुह्यत	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्
	{ मिथ्यादि	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्
	{ सासादनसम्यग्दृष्टि	"	"	"	"	पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सारोपम	"
	{ सम्यग्मिथ्यादि	"	"	"	"	" तथा देशोन दो हजार सारोपम	"
पक्षी	चार्त उपशामक	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्
	{ चार्त क्षपक	"	"	"	"	ओषवत्	ओषवत्
	{ सार्गोमिथ्यादी	"	"	"	"	ओषवत्	ओषवत्
	{ सार्गोमिथ्यादी	"	"	"	"	ओषवत्	ओषवत्
पक्षी	मनोगोमी	नितर	नितर	नितर	नितर	नितर	नितर
	{ मिथ्यादि	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्
	{ सासादनसम्यग्दृष्टि	"	"	"	"	ओषवत्	ओषवत्
	{ सम्यग्मिथ्यादि	"	"	"	"	ओषवत्	ओषवत्

अल्पवहुत्व

मार्गणास्थानोंकी अपेक्षा जीवोंके अन्तर, भाव और अल्पबहुत्वका प्रमाण.

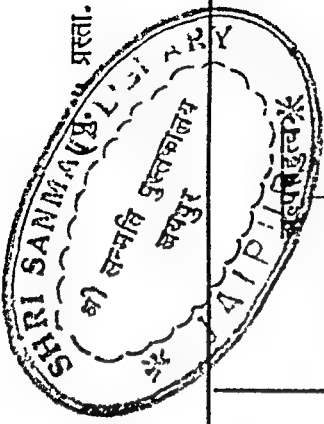
मार्गणा	मार्गणाके अवान्तर भेद	अन्तर				भाव	अल्पबहुत्व	
		नाना जीवोंकी अपेक्षा		एक जीवकी अपेक्षा			गुणस्थान	प्रमाण
		जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट			
वचनयोगी	{ सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि	एक समय	पल्लोपसमा अस्त- ख्यातत्वा भाग	निरन्तर	ओघवत्	ओघवत्	सर्वगुणस्थान	ओघवत्
	चारों उपशासक	ओघवत्	ओघवत्	"	ओघवत्	औपशामिक		
	चारों क्षपक	"	"	"	ओघवत्	क्षायिक		
काययोगी	औदारिककाययोगी	मनो- योगिवत्	मनोयोगिवत्	मनोयोगिवत्	मनोयोगिवत्	ओघवत्	"	पचैन्द्रियवत् असख्यातशुणित अनन्तशुणित
	{ औदारिकमिश्रमाय मिथ्यादृष्टि	निरन्तर	निरन्तर	निरन्तर	निरन्तर	"	सिध्यादृष्टि	{
	" सासादन.	ओघवत्	ओघवत्	"	"	"	सयोगिकेवली	सबसे कम
	" असयतसम्य	एक समय	वर्षपृथक्त्व	"	"	"	असयतसम्यग्दृष्टि	सख्यातशुणित
	" सयोगिकेवली	"	"	"	"	"	सासादनसम्यग्दृष्टि	असख्यातशुणित
	{ वैक्रियिककाययोगी चारों गुणस्थानवर्ती	मनो- योगिवत्	मनोयोगिवत्	मनोयोगिवत्	मनोयोगिवत्	ओघवत्	मिथ्यादृष्टि	अनन्तशुणित
	{ वैक्रियिमिश्रमाय मिथ्यादृष्टि	एक समय	बारह घट्ट	निरन्तर	निरन्तर	"	सासादनसम्यग्दृष्टि	सबसे कम
	{ सासादनसम्यग्दृष्टि असयतसम्यग्दृष्टि	औदारिक- मिश्रवत्	औदारिकमिश्रवत्	औदारिकमिश्रवत्	औदारिकमिश्रवत्	"	असयतसम्यग्दृष्टि	सख्यातशुणित
	{ आहाररुकाययोगी " मिश्रकाययोगी प्रमत्तसयत	एक समय	वर्षपृथक्त्व	निरन्तर	निरन्तर	क्षायोपशामिक	गुणस्थानभेदाभाव	अल्पबहुत्वाभाव

मार्गस्थानोंकी अपेक्षा जीवोंके अन्तर, भाव और अल्पबहुत्वका प्रमाण

सर्गणा	सर्गणाके बधान्तर भेद	नाना जीवोंकी अपेक्षा		एक जीवकी अपेक्षा		भाव	गुणस्थान	प्रमाण
		अवयव	उत्तर	अवयव	उत्तर			
	<div> <div> क्रांतिकार्ययोगी मियाददि " सासादनसम्यग्दृष्टि " असत्यतसम्यग्दृष्टि " सयोगिभिवली </div> </div>	औदारिक भिन्नवत्	औदारिक भिन्नवत्	औदारिक भिन्नवत्	औदारिक भिन्नवत्	ओषवत्	सयोगिभिवली सासादनसम्यग्दृष्टि असत्यतसम्यग्दृष्टि मियाददि	सबसे कम असत्यतगुणित " सत्यतगुणित
	<div> मियाददि <div> { सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्मियाददि </div> <div> { असत्यतसम्यग्दृष्टिसे अप्रसन्नसत्यत त्रु </div> <div> { उपशान्तक अपूर्व रूप " अनित्यविरूपण </div> <div> { क्षपक अपूर्व रूप " अनित्यविरूपण </div> </div>	निरंतर	निरंतर	निरंतर	निरंतर	औदारिक ओषवत् " औपशान्तिक क्षायिक	सर्वगुणस्थान	पंचेन्द्रियवत्
	<div> मियाददि <div> { सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्मियाददि </div> <div> { असत्यतसम्यग्दृष्टिसे अप्रसन्नसत्यत त्रु </div> <div> { उपशान्तक अपूर्व रूप " अनित्यविरूपण </div> <div> { क्षपक अपूर्व रूप " अनित्यविरूपण </div> </div>	ओषवत् " निरंतर	ओषवत् " निरंतर	ओषवत् पल्योपमका अस. माग अन्तर्मुद्रित	ओषवत् सामोपम शत- पृथक्त्व	औदारिक ओषवत् " औपशान्तिक क्षायिक	"	"

मार्गणास्थानोंकी अपेक्षा जीवोंके अन्तर, भाव और अल्पबहुत्वका प्रमाण.

मार्गणा	मार्गणाके अवान्तर भेद	अन्तर				भाव	अल्पबहुत्व	
		नाना जीवोंकी अपेक्षा		एक जीवकी अपेक्षा			युगस्थान	प्रमाण
		जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट			
मार्गणा	{ मिथ्याहृदि सासादनसे अनिवृत्ति- करण उपशामक तक } { क्षपक अपूर्वकरण " अनिवृत्ति-करण न्युसन्वेदी } { अनिवृत्ति, उप सूक्ष्मसाम्य, उप. अपगतवेदी } { क्षपक अनिवृत्ति-करणसे अयोगिभ्वली तक }	निरन्तर	ओघवत्	अन्तर्मुहूर्त	देशोन ३३ सागरोपम	औदयिक	सर्वयुगस्थान	ओघवत्
		ओघवत्	वर्षपृथक्त्व	निरन्तर	ओघवत्	क्षायिक		
		एक समय	"	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त	"	"	"
		"	"	निरन्तर	निरन्तर	"	"	"
		ओघवत्	ओघवत्	ओघवत्	ओघवत्	"	"	"
	{ क्रोधादिवृत्तु-रूपायी मिथ्या, से अनि कषायी } { लोभक, सूक्ष्मता उप " " क्षप उपशामक अज्ञानी } { क्षीणस्पाय सयोगिभ्वली अयोगिभ्वली }	मनो- योगिवत्	मनोयोगिवत्	मनोयोगिवत्	मनोयोगिवत्	ओघवत्	अस्यतमस्यगृहि तक मिथ्याहृदि सूक्ष्म उप " क्षपक	पुरषवेदिवत् अनन्तयुगित विशेषाधिक सस्यातयुगित
		ओघवत्	ओघवत्	निरन्तर	ओघवत्	"	चारों युगस्थान	ओघवत्
		"	"	निरन्तर	निरन्तर	"		
		एक समय	वर्षपृथक्त्व	"	"	"		
		ओघवत्	ओघवत्	ओघवत्	ओघवत्	क्षायिक		
अज्ञानी	{ मत्पक्षानो मिथ्याहृदि शुताज्ञानी " विमग्नज्ञानी " " सासादन }	निरन्तर	निरन्तर	निरन्तर	निरन्तर	औदयिक	सासादनस्यगृहि मिथ्याहृदि	सबसे कम असस्यातयुगित अनन्तयुगित
		"	"	"	"	पारिणामिक		

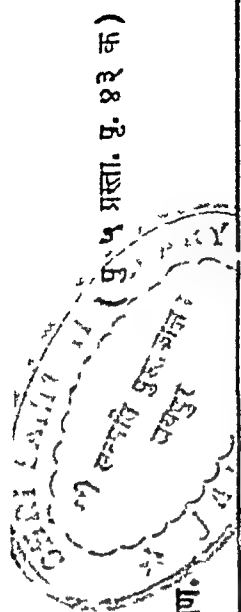


मार्गणास्थानोंकी अपेक्षा जीवोंके अन्तर, भाव और अल्पबहुत्वका प्रमाण.

मार्गणा	मार्गणाके अवान्तर भेद	नाना जीवोंकी अपेक्षा		एक जीवकी अपेक्षा		भाव	गुणस्थान	प्रमाण
		जवन्य	उत्तरुष्ट	जवन्य	उत्तरुष्ट			
मार्गणा	जगतमग्न्यष्टि सयतामयत प्रमत्तसयत अप्रमत्तसयत चारों उपशामक चारों क्षपक	नितर	नितर	अन्तर्मुहूर्त	देशोन पूर्वमेटी साधिक ६६ सागरोपम	ओधवत्	चारों उपशामक " क्षपक अप्रमत्तसयत प्रमत्तसयत सयतामयत असयतसग्न्यष्टि	सवसे कम सह्यतयुणित " " असह्यतयुणित "
		एक समय ओधवत्	वर्षपुयस्त्व अत्रधि " ओधवत्	"	"	"	"	"
		नितर	नितर	अन्तर्मुहूर्त	देशोन पूर्वमेटी नितर	ओधवत्	चारों उपशामक " क्षपक अप्रमत्तसयत प्रमत्तसयत	सवसे कम सह्यतयुणित " "
		एक समय ओधवत्	वर्षपुयस्त्व " ओधवत्	"	"	"	अयोनिभ्वली सयोनिभ्वली	सवसे कम सह्यतयुणित
संयममार्गणा	प्रमत्तसयत अप्रमत्तसयत उपशामक अपूर्वकरण " अनितृचिरण क्षपक अपूर्वकरण " अनितृचिरण	नितर	नितर	अन्तर्मुहूर्त	देशोन पूर्वमेटी	ओधवत्	{ उप अपूर्वकरण " अनितृचि	सवसे कम सह्यतयुणित
		एक समय ओधवत्	वर्षपुयस्त्व ओधवत्	"	"	ओधवत्	{ क्षपक अपूर्वकरण " अनितृचिरण	"
		नितर	नितर	अन्तर्मुहूर्त	देशोन पूर्वमेटी नितर	ओधवत्	अप्रमत्तसयत प्रमत्तसयत	सवसे कम सह्यतयुणित
		एक समय ओधवत्	वर्षपुयस्त्व ओधवत्	"	"	"	सूक्ष्मता. उपशा. " क्षपक	सवसे कम सह्यतयुणित

मार्गणास्थानोंकी अपेक्षा जीवोंके अन्तर, भाव और अल्पबहुत्वका प्रमाण.

मार्गणा	मार्गणाके अवान्तर भेद	अन्तर			भाव	अल्पबहुत्व	
		नाना जीवोंकी अपेक्षा	एक जीवकी अपेक्षा			गुणस्थान	प्रमाण
१२ सत्यकृत्वमार्गणा	{ चारों क्षपक सयोनित्वली अयोनित्वली	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	क्षायिक	असयतसम्यदृष्टि	असख्यातशुणित
		नित्तर	नित्तर	अन्तर्मुहूर्त	क्षायोपशमिक	अप्रमत्तसयत प्रमत्तसयत सयतासयत असयतसम्यदृष्टि	सबसे कम सख्यातशुणित असख्यातशुणित
		नित्तर	नित्तर	अन्तर्मुहूर्त	क्षायोपशमिक	अप्रमत्तसयत प्रमत्तसयत सयतासयत असयतसम्यदृष्टि	सबसे कम सख्यातशुणित असख्यातशुणित
	{ वेदक-सम्यदृष्टि { असयतसम्यदृष्टि सयतासयत प्रमत्तसयत अप्रमत्तसयत	पुरु समय	सत अहोरात्र	अन्तर्मुहूर्त	औपशमिक	चारों उपशमक	सबसे कम सख्यातशुणित
		"	चौदह "	"	क्षायोपशमिक	अप्रमत्तसयत	"
		"	पन्द्रह "	"	औपशमिक	प्रमत्तसयत	"
	{ उपशम-सम्यदृष्टि { असयतसम्यदृष्टि सयतासयत प्रमत्तसयत अप्रमत्तसयत तीन उपशमक उपशान्तकषाय	"	वर्षपुष्यवत्	नित्तर	औपशमिक	सयतासयत असयतसम्यदृष्टि	असख्यातशुणित
		"	"	"	"	"	"
		"	"	"	"	"	"
	{ सासादनसम्यदृष्टि सम्यगभिप्य्यादृष्टि भिप्यादृष्टि	"	पल्लोपमका असख्यातवां साग	नित्तर	ओषवत्	गुणस्थानमेदामाव	अल्पबहुत्वामाव
		नित्तर	नित्तर	"	औदयिक	"	"
		नित्तर	नित्तर	"	औदयिक	"	"
१३ सन्निवृत्तमार्गणा	{ सन्नी { भिप्यादृष्टि सासादनसे उपशान्त कषाय तक्र चारों क्षपक	ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	औदयिक	सर्वगुणस्थान	मनोयोगिवत्
		पुरुष-वेदिवत्	पुरुषवेदिवत्	ओषवत्	औदयिक	सर्वगुणस्थान	मनोयोगिवत्
		ओषवत्	ओषवत्	ओषवत्	क्षायिक	गुणस्थानमेदामाव	अल्पबहुत्वामाव
	{ असन्नी	नित्तर	नित्तर	नित्तर	औदयिक	गुणस्थानमेदामाव	अल्पबहुत्वामाव
		नित्तर	नित्तर	नित्तर	औदयिक	गुणस्थानमेदामाव	अल्पबहुत्वामाव
		नित्तर	नित्तर	नित्तर	औदयिक	गुणस्थानमेदामाव	अल्पबहुत्वामाव
	{ असन्नी	नित्तर	नित्तर	नित्तर	औदयिक	गुणस्थानमेदामाव	अल्पबहुत्वामाव
		नित्तर	नित्तर	नित्तर	औदयिक	गुणस्थानमेदामाव	अल्पबहुत्वामाव
		नित्तर	नित्तर	नित्तर	औदयिक	गुणस्थानमेदामाव	अल्पबहुत्वामाव
		नित्तर	नित्तर	नित्तर	औदयिक	गुणस्थानमेदामाव	अल्पबहुत्वामाव



(पु. ५ प्रस्ता. पृ. ४३ क)

मार्गणास्थानोंकी अपेक्षा जीवोंके अन्तर, भाव और अल्पबहुत्वका प्रमाण.

मार्गणा	मार्गणोंके अन्तर भेद	अन्तर				भाव	गुणस्थान	प्रमाण
		नाना जीवों की अपेक्षा		एक जीवकी अपेक्षा				
		जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट			
{ मियादहि सासादनसम्यदहि सम्यग्मियादहि	{ अक्षरक अक्षरक अक्षरक अक्षरक	ओघवत्	ओघवत्	ओघवत्	ओघवत्	औदयिक	चारों उपशामक	सबसे कम
		"	"	पल्योपममा अम भाग अन्तर्मुहूर्त	असल्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी	ओघवत्	" क्षपक	"
		निरन्तर	"	"	"	"	अप्रमत्तसयत	"
		"	"	"	"	औपशमिक	सयतासयत	असल्यातयुगित
{ मियादहि सासादनसम्यदहि असयतसम्यदहि सयोगिनेवली	{ क्षपक क्षपक क्षपक क्षपक	"	"	"	ओघवत्	क्षायिक	सासादनसम्यदहि सम्यग्मियादहि असयतसम्यदहि मियादहि	" असल्यातयुगित असल्यातयुगित अनन्तयुगित
		"	"	"	ओघवत्	"	सयोगिनेवली	सबसे कम
		"	"	"	"	पारिणामिक	अयोगिनेवली	असल्यातयुगित
		"	"	"	"	क्षायिक	सासादनसम्यदहि असयतसम्यदहि	"
अनाकारक	{ मियादहि सासादनसम्यदहि असयतसम्यदहि सयोगिनेवली (समुदातगत) अयोगिनेवली	निरन्तर	निरन्तर	निरन्तर	निरन्तर	"	मियादहि	अनन्तयुगित
		पुरुसमय	पल्योपमका अस. भाग	ओघवत्	ओघवत्	औपशमिक	सयोगिनेवली	सबसे कम
		"	मामपृथक्त्व	"	"	क्षायिक	अयोगिनेवली	असल्यातयुगित
		"	वर्षपृथक्त्व	ओघवत्	ओघवत्	"	सासादनसम्यदहि	"

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
१८	नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरोंका सोदाहरण निरूपण	२२-३१	२५	पंचेन्द्रियतिर्य्यच, पंचेन्द्रिय-तिर्य्यचपर्याप्त और पंचेन्द्रिय-तिर्य्यचयोनिमती मिथ्यादृष्टि-योंका दोनों अपेक्षाओंसे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर	३३-३७
१९	नारकियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका दोनों अपेक्षाओंसे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरोंका सद्यन्तर्गत् निरूपण	२२-२३	२६	तीनों प्रकारके तिर्य्यचोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका दोनों अपेक्षाओंसे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर	३७-३८
२०	प्रथम पृथिवीसे लेकर सातवों पृथिवी तकके मिथ्या-दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंके दोनों अपेक्षाओंसे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरोंका दृष्टान्तपूर्वक प्रति-पादन	२४-२६	२७	तीनों प्रकारके असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्य्यचोंका दोनों अपेक्षाओंसे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर	३८-४१
२१	सातों पृथिवियोंके सासादन-सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्या-दृष्टि नारकियोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर	२७-२८	२८	तीनों प्रकारके संयतासंयत तिर्य्यचोंका दोनों अपेक्षाओंसे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर	४१-४३
२२	तिर्य्यच मिथ्यादृष्टियोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर	२९-३१	२९	पंचेन्द्रिय तिर्य्यच लब्ध-पर्याप्तोंका दोनों अपेक्षा-ओंसे जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर	४३-४५
२३	तिर्य्यच और मनुष्य जन्मके कितने समय पश्चात् सम्यक्त्व और संयमासंयम आदिको प्राप्त कर सकते हैं, इस विषयमें दक्षिण और उत्तर प्रतिपत्तिके अनुसार दो प्रकारके उपदेशोंका निरूपण	३१-३२	३०	मनुष्य, मनुष्यपर्याप्तक और मनुष्यनी मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर	४५-४६
२४	सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तकके	३२	३१	भोगभूमिज मनुष्योंमें जन्म लेनेके पश्चात् सात सप्ताहके द्वारा प्राप्त होनेवाली योग्य-ताका वर्णन	४६-४७
			३२	उक्त तीनों प्रकारके सासा-दनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि मनुष्योंका अन्तर	४७
			३३	तीनों प्रकारके असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका अन्तर	४८-५०
			५०	देव मिथ्यादृष्टिको एकेन्द्रि-	५०-५१

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
३४	संयतासंयतसे लेकर अप्रमत्त-संयत गुणस्थान तक तीनों प्रकारके मनुष्योंका अन्तर	५१-५३	४७	एकेन्द्रिय जीवोंके त्रसकायिक जीवोंमें उत्पन्न कराकर अन्तर कइनेसे मार्गणाका विनाश क्यों नहीं होगा ? इस शंकाका समाधान	६५
३५	चारों उपशामक मनुष्यत्रि-कोंका अन्तर	५३-५५	४८	वादर एकेन्द्रिय जीवोंका अन्तर	६६-६७
३६	चारों क्षपक, अयोगिकेवली और सयोगिकेवली मनुष्य-त्रिकोंका अन्तर	५५-५६	४९	वादर एकेन्द्रियपर्याप्त और वादर एकेन्द्रियअपर्याप्तोंका अन्तर	६७
३७	लब्धपर्याप्तक मनुष्योंका अन्तर	५६-५७	५०	सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तोंका अन्तर	६७-६८
३८	मिथ्यादृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि देवोंका अन्तर	५७-५८	५१	द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतु-रिन्द्रिय और उर्ध्वोंके पर्या-प्तक तथा लब्धपर्याप्तक जीवोंका अन्तर	६८-६९
३९	सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका अन्तर	५९-६२	५२	पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि, सासादन-सम्यग्दृष्टि तथा सम्यग्मिथ्या-दृष्टि जीवोंका अन्तर	६९-७१
४०	भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी तथा सौधर्म-ईशानकल्पसे लेकर शतार-सहस्रारकल्प तकके मिथ्यादृष्टि और असं-यतसम्यग्दृष्टि देवोंका अन्तर	६१-६२	५३	असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक दोनों प्रकारके पंचेन्द्रिय जीवोंका अन्तर	७१-७५
४१	उक्त देवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि-योंका अन्तर	६२	५४	पंचेन्द्रियपर्याप्तकोंके साग-रोपमशतपृथक्त्वप्रमाण अन्तर कइते समय 'देशोन' पद क्यों नहीं कहा ? विवक्षित जीवको संज्ञी, सम्पूर्णछिन्न	
४२	आनतकल्पसे लेकर नवत्रैवे-यक-विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्य-ग्दृष्टियोंका अन्तर	६२-६३			
४३	उक्त फल्योंके सासादनसम्य-ग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका अन्तर	६३			
४४	नव अनुदिश और पांच अनु-सरविमानवासी देवोंमें अन्तराभावका प्रतिपादन	६३-६४			
४५	एकेन्द्रिय जीवोंका अन्तर	६५-७७			
४६	देव मिथ्यादृष्टिको एकेन्द्रि-	६५-६६			

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
५५	पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न काराकर और सम्यक्त्वको ग्रहण कराकर मिथ्यात्वके द्वारा अन्तरको प्राप्त क्यों नहीं कराया ? इत्यादि शंकाओंका समाधान	७३	६५	एक योगके परिणामन-कालसे गुणस्थानका काल संबन्धित गुणा है, यह कैसे जाना ? इस शंकाका समाधान	८९
५६	पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय-पर्याप्तकोंमें चारों उपशाम-कोंका अन्तर	७५-७६	६६	औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवलीका पृथक् पृथक् अन्तर-प्रतिपादन	८९-९१
५७	पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तकोंका अन्तर	७७	६७	वैक्रियिककाययोगी चारों गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्तर	९१
५८	पृथिवीकायिक आदि चार स्थावर कायिकोंका अन्तर	७८-८७	६८	वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर	९१-९३
५९	वनस्पतिकायिक चावर, सूक्ष्म और पर्याप्तिक तथा अपर्याप्तिक जीवोंका अन्तर	७९-८०	६९	आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी प्रमत्त-संयतोंका अन्तर	९३
६०	त्रसकायिक और त्रसकायिक-पर्याप्तकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुण-स्थान तकके जीवोंका पृथक् पृथक् अन्तर-निरूपण	८०-८६	७०	कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयत-सम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवलीका अन्तर	९३
६१	त्रसकायिक लब्धपर्याप्तकोंका अन्तर	८६-८७	७१	५ वेदमार्गणा	९४-१११
६२	पाचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगी मिथ्या-दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतसंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और सयोगिकेवली तिनका अन्तर	८७-९४	७२	स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर	९४-९६
६३	उक्त योगवाले सासादन-	८७	७३	असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तकके स्त्रीवेदी जीवोंका अन्तर	९७-९८

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
७४	स्त्रीवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण उपशामकका अन्तर	९९-१००	८६	आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुत-ज्ञानी और अवधिज्ञानी असंयत-सम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर	११४-११६
७५	स्त्रीवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण क्षपकका अन्तर	१००	८७	उक्त तीनों ज्ञानवाले संयता-संयतोंका तदन्तर्गत शंका-समाधानपूर्वक अन्तर-निरूपण	११६-११९
७६	पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर	"	८८	संक्षी, सम्मुखिष्ठम पर्याप्तिक जीवोंमें अवधिज्ञान और उप-शमसम्यक्त्वका अभाव है, यह कैसे जाना ? इस शंकाका तथा इसीसे सम्बन्धित अन्य अनेकों शंकाओंका सप्रमाण समाधान	११८-११९
७७	पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर	१०१	८९	तीनों ज्ञानवाले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका अन्तर तथा तदन्तर्गत विशेषताओंका प्रतिपादन	११९-१२२
७८	असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तकके पुरुषवेदी जीवोंका अन्तर	१०२-१०४	९०	तीनों ज्ञानवाले चारों उप-शामक और चारों क्षपकोंका पृथक् पृथक् अन्तर-निरूपण	१२२-१२४
७९	पुरुषवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण उपशामक तथा क्षपकोंका पृथक् पृथक् अन्तर-प्रतिपादन	१०४-१०६	९१	प्रमत्तसंयतसे लेकर क्षीण-कपाय गुणस्थान तक मनः-पर्याप्तज्ञानी जीवोंका पृथक् पृथक् अन्तर-निरूपण	१२४-१२७
८०	नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर	१०६	९२	केवलज्ञानी जीवोंका अन्तर	१२७
८१	सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक पृथक् पृथक् नपुंसकवेदी जीवोंका अन्तर	१०७-१०९	९३	प्रमत्तसंयतसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक समस्त संयतोंका पृथक् पृथक् अन्तर	१२८
८२	अपगतवेदी जीवोंका अन्तर	१०९-१११	९४	सामायिक और छेदेप-स्थापनासंयमी प्रमत्तसंयतादि चारों गुणस्थानवर्ती जीवोंका पृथक् पृथक् अन्तर	१२८-१३१
८३	६ कपायमार्गणा	१११-११३	९५	परिहारशुद्धिसंयमी प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका अन्तर	१३१
८४	मिथ्यादृष्टिसे लेकर सूक्ष्म-साम्पराय गुणस्थान तक चारों कपायवाले जीवोंका तदन्तर्गत शंका-समाधान-पूर्वक अन्तर-निरूपण	११३-११४			
८५	अकपायी जीवोंका अन्तर	११४			
८६	७ ज्ञानमार्गणा	११४-१२७			
८७	मत्तज्ञानी, श्रुतज्ञानी और विभगज्ञानी मिथ्यादृष्टि तथा सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् अन्तर	११४-१२७			

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
११	मृदममाग्नरायसंयमी उप- शामक आर क्षपक सूक्ष्म-	१३२	१०९	लेख्या और पञ्चलेख्यावाले जीवोंका पृथक् पृथक् अंतर १४६-१४९	
१७	माग्नरायिकसंयनोंका अन्तर	"	१०९	मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयोगि- केवली गुणस्थान तक	
१८	यथाव्याप्यविहारसंयमी चारों गुणस्थानोंका अन्तर	१३३	१०९	शुक्लेख्यावाले जीवोंका पृथक् पृथक् अन्तर १४९-१५४	
१९	संयतासंयतोंका अन्तर	१३३	१११	मध्यमार्गणा १५४	
२०	प्रसंयमी चारों गुणस्थानोंका पृथक् पृथक् अन्तर १३३-१३५	१३५	११०	समस्त गुणस्थानवर्ती भव्य- जीवोंका अन्तर	
२००	चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर	१३५	१११	अभव्य जीवोंका अन्तर	"
२०१	चक्षुदर्शनी सासादनसम्य- गदृष्टि और सम्यग्मिथ्या- दृष्टि जीवोंका अन्तर १३६-१३७	१३६-१३७	११२	सम्यक्त्वमार्गणा १५५-१७१	
२०२	असंयतसम्यगदृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तकके चक्षुदर्शनी जीवोंका अन्तर १३८-१४१	१४१	११३	असंयतसम्यगदृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक सम्यगदृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् अन्तर १५५-१५६	
२०३	चक्षुदर्शनी चारों उपशाम- कोंका अन्तर	१४१	११४	क्षायिकसम्यक्त्वी असंयत- सम्यगदृष्टि जीवोंका अन्तर १५६-१५७	
२०४	चक्षुदर्शनी चारों क्षपकोंका अन्तर	१४२	११४	क्षायिकसम्यक्त्वी संयता- संयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोंका अन्तर १५७-१६०	
२०५	अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीवोंका पृथक् पृथक् अन्तर	१४३	११५	क्षायिकसम्यक्त्वी चारों उपशामकोंका अन्तर १६०-१६१	
२०६	रुण, नील और फापोत- लेख्यावाले मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यगदृष्टि जीवोंका अन्तर १४३-१४५	१४५	११६	क्षायिकसम्यक्त्वी चारों क्षपक, संयोगिकेवली और अयोगिकेवलीका अन्तर १६१-१६२	
२०७	उक्त तीनों अशुभ लेख्यावाले सासादनसम्यगदृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर १४५-१४६	१४६	११७	असंयतसम्यगदृष्टि आदि चार गुणस्थानवर्ती चेदक- सम्यगदृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् अन्तर १६२-१६५	
२०८	मिथ्यादृष्टिसे लेकर अप्रमत्त- संयत गुणस्थान तक तेजो-		११८	असंयतसम्यगदृष्टिसे लेकर उपशान्तकपाय गुणस्थान तक उपशमसम्यगदृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् अन्तर १६५-१७०	
			११९	सासादनसम्यगदृष्टि, सम्य- ग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्या-	

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
	दृष्टि जीवोंका पृथक् पृथक् अन्तर १७०-१७१	१७०-१७१	६	विशेषता न होनेसे तीन ही निक्षेप कहना चाहिए ? इस शंकाका सयुक्तिक और सप्र- माण समाधान १८५-१८६	
१२०	मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपाय तक संज्ञी जीवोंका अन्तर	"	७	औदयिकादि पांच भावोंसे प्रकृतमें किस भावसे प्रयोजन है ? भावोंके अनेक भेद हैं, फिर यहां पांच ही भेद क्यों कहे ? इन शंकाओंका समाधान १८६-१८७	
१२१	असंज्ञी जीवोंका अन्तर	१७२	८	निर्देश, स्वामित्व आदि छह अनुयोगद्वारोंसे भावका स्वरूप-निरूपण १८७-१८८	
१२२	आहारमार्गणा १७३-१७९	१७३-१७९	९	औदयिकभावके स्थान और विकल्पकी अपेक्षा भेद तथा स्थानका स्वरूप-निरूपण १८९	
१२२	आहारक मिथ्यादृष्टि, सासा- दनसम्यगदृष्टि और सम्य- ग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अंतर १७३-१७४	१७४-१७७	१०	असिद्धत्व किसे कहते हैं ? जाति, संस्थान, संहनन आदि औदयिकभावोंका किस भावमें अन्तर्भाव होता है ? इन शंकाओंका समाधान	
१२३	असंयतसम्यगदृष्टि आदि चार गुणस्थानवाले आहा- रक जीवोंका अन्तर १७४-१७७	१७७-१७८	११	औपशमिकभावके स्थान और विकल्पकी अपेक्षा भेद-निरू- पण १९०	
१२४	आहारक चारों उपशाम- कोंका अन्तर १७७-१७८	१७८	१२	औपशमिकचारित्रिके भेदोंका विवरण १९०-१९१	
१२५	आहारक चारों क्षपक और संयोगिकेवलीका अन्तर १७८	१७८-१७९	१३	क्षायिकभावके स्थान और विकल्पकी अपेक्षा भेद १९१-१९२	
१२६	अनाहारक जीवोंका अन्तर १७८-१७९	१७९	१४	आयोपशमिकभावके भेद पारिणामिकभावके भेद १९२	
भावानुगम					
	१ विषयकी उत्थानिका १८३-१९३	१८३	१५	साक्षिपतिकभावका स्वरूप और भंग-निरूपण १९३	
१	धवलाकारका मंगलाचरण और प्रतिज्ञा १८३	१८३	१६	भंगोंके निकालनेके लिए करणसूत्र	
२	भावानुगमकी अपेक्षा निर्देश- भेद निरूपण	"			
३	नामभाव, स्थापनाभाव, द्रव्य- भाव और भावभाव, इन चार प्रकारके भावोंका सम्बन्ध- स्वरूप-निरूपण १८३-१८५	१८५			
४	प्रकृतमें नोआगमभावभावसे प्रयोजनका उल्लेख	१८५			
५	नाम और स्थापनामें कोई				

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
१७	ओघसे भावानुगमनिर्देश १९४-२०६	१९७	२४	जानता ? इस शंकाका तथा इसी प्रकारकी अन्य शंकाओंका समाधान	१९७
१८	मिथ्यादृष्टि जीवके भावका निरूपण	१९४	२५	सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके भावका अनेक शंकाओंके समाधानपूर्वक विशद निरूपण	१९८-१९९
१९	मिथ्यादृष्टि जीवके अन्य भी ज्ञान-दर्शनादिक भाव पाये जाते हैं, फिर उन्हें क्यों नहीं कहा ? इस शंकाको उठाते हुए, गुणस्थानोंमें संभव भावोंके सयोगी भंगोंका निरूपण तथा उक्त शंकाका समाधान	१९४-१९६	२६	असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके भावोंका अनेक शंका-समाधानोंके साथ विशद विवेचन	१९९-२००
२०	सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके भावका निरूपण	१९६	२७	असंयतसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदयिकभावकी अपेक्षा है, इस बातका सूत्रकारद्वारा स्पष्टीकरण	२०१
२१	दूसरे निमित्तसे उत्पन्न हुए भावको परिणामिक माना जा सकता है, या नहीं, इस शंकाका सयुक्तिक समाधान	१९६	२८	संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंके भावोंका तदन्तर्गत शंका-समाधानपूर्वक निरूपण	२०१-२०४
२२	सत्त्व, प्रमेयत्व आदिक भाव कारणके विना उत्पन्न होने-वाले पाये जाते हैं, फिर यह कैसे कहा कि कारणके विना उत्पन्न होनेवाले परिणामका अभाव है ? इस शंकाका समाधान	१९७	२९	दर्शनमोहनीयकर्मके उपशम, क्षय और क्षयोपशमकी अपेक्षा संयतासंयतोंके औपशमिकादि भाव क्यों नहीं बतलाये ? इस शंकाका समाधान	२०३
२३	सासादनसम्यग्दृष्टिपना भी सम्यक्त्व और चारित्र्य, इन दोनोंके विरोधी अनन्तानुबन्धी कपायके उदयके विना नहीं होता है, इसलिए उसे औदयिक क्यों नहीं मानते हैं ? इस शंकाका समाधान	१९७	३०	चारों उपशामकोंके भावोंका निरूपण	२०४-२०५
२४	सासादनसम्यग्दृष्टिपना भी सम्यक्त्व और चारित्र्य, इन दोनोंके विरोधी अनन्तानुबन्धी कपायके उदयके विना नहीं होता है, इसलिए उसे औदयिक क्यों नहीं मानते हैं ? इस शंकाका समाधान	१९७	३१	मोहनीयकर्मके उपशमसे रहित अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें औपशमिकभाव कैसे संभव है ? इस शंकाका अनेक प्रकारोंसे सयुक्तिक समाधान	२०४-२०५
२५	सासादनसम्यग्दृष्टिपना भी सम्यक्त्व और चारित्र्य, इन दोनोंके विरोधी अनन्तानुबन्धी कपायके उदयके विना नहीं होता है, इसलिए उसे औदयिक क्यों नहीं मानते हैं ? इस शंकाका समाधान	१९७	३२	चारों क्षपक, सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीके भावोंका तदन्तर्गत अनेकों शंकाओंका समाधान करते हुए विशद विवेचन	२०५-२०६

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
३	आदेशसे भावानुगमनिर्देश २०६-२३८	२०६-२३८	३९	है, इस बातका स्पष्ट निरूपण	२०९
१	गतिमार्गणा	२०६-२१६	४०	प्रथम पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक नारकी जीवोंके भावोंका निरूपण	२०९-२१२
(नरकगति)	२०६-२१२			(तिर्यचगति)	२१२-२१३
३२	नारकी मिथ्यादृष्टि जीवोंके भाव	२०६	४१	सामान्य तिर्यच, पंचेन्द्रिय-तिर्यच, पंचेन्द्रियतिर्यचपर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमती जीवोंके सर्व गुणस्थान-सम्बन्धी भावोंका निरूपण तथा योनिमती तिर्यचोंमें क्षायिकभाव न पाये जानेका स्पष्टीकरण	२१३
३३	सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्व-धाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदावस्थारूप उपशमसे, तथा सम्यक्त्व-प्रकृतिके देशधाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदावस्थारूप उपशमसे अथवा अनुदयोपशमसे और मिथ्यात्व-प्रकृतिके सर्वधाती स्पर्धकोंके उदयसे मिथ्यादृष्टिभाव उत्पन्न होता है, इसलिए उसे क्षायोपशमिक क्यों न माना जाय ? इस शंकाका सयुक्तिक समाधान	२०६-२०७	४२	सामान्यमनुष्य, पर्याप्तमनुष्य और मनुष्यनिर्योके सर्वगुणस्थानसम्बन्धी भावोंका निरूपण	२१३
३४	नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके भाव	२०७	४३	लब्धपर्याप्त मनुष्य और तिर्यचोंके भावोंका सूत्रकारद्वारा सूचित न होनेका कारण	२१४-२१६
३५	जब कि अनन्तानुबन्धी कपायके उदयसे ही जीव सासादनसम्यग्दृष्टि होता है, तब उसे औदयिकभाव क्यों न कहा जाय ? इस शंकाका समाधान	२०७	४४	चारों गुणस्थानवर्ती देवोंके भाव	२१४
३६	नारकी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके भावका तदन्तर्गत शंका-समाधानपूर्वक निरूपण	२०८	४५	भवनवासी, व्यन्तर ज्योतिषी देव और देवियोंके तथा सौधर्म-ईशानकल्पवासी देवियोंके भावोंका निरूपण	२१४-२१५
३७	नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके भाव	२०८-२०९	४६	सौधर्म-ईशानकल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक देवोंके भावोंका विवरण	२१५-२१६
३८	असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी योंका असंयतत्व औदयिक	२०९	४७	२ इन्द्रियमार्गणा	२१६-२१७

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
	निरूपण, तथा एकैन्द्रिय, विक्रान्तेन्द्रिय और लब्ध-पर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवोंके मान न करनेका कारण	२१६-२१७		सम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली जीवोंके भाव	२२१
	३ कायमार्गणा	२१७-२१८		५ वेदमार्गणा	२२१-२२२
४७	प्रसक्तार्थिक और प्रसक्तार्थिक-पर्याप्तक जीवोंके सर्व गुण-स्थानसम्बन्धी भावोंका प्रति-पादन, तथा तत्सम्बन्धी शक्ता-समाधान	"		५५ स्त्रिविदी, पुन्यवेदी और नपुं-सकवेदी जीवोंके भाव	२२१
४८	पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगी जीवोंके भाव	२१८-२२१		५६ अपगतवेदी जीवोंके भाव	२२२
४९	औदारिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली जीवोंके भावोंका पृथक् पृथक् निरूपण	२१८-२१९		५७ अपगतवेदी किसे कहा जाय ? इस शंकाका सयुक्तिक समाधान	"
५०	ओदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंमें औप-शमिकभाव न चलानेका कारण	२१९		६ कृपायमार्गणा	२२३
५१	चारों गुणस्थानवर्ती वैयक्तिक-काययोगी जीवोंके भाव	२१९-२२०		५८ चतुष्कपायी जीवोंके भाव	"
५२	वैयक्तिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके भाव	२२०		५९ अकपायी जीवोंके भाव	"
५३	आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके भाव	"		६० कपाय क्या वस्तु है, अकपा-यता किस प्रकार घटित होती है ? इस शंकाका सयुक्तिक समाधान	"
५४	कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयत-सम्यग्दृष्टि जीवोंके भाव	२२७		७ ज्ञानमार्गणा	२२४-२२६
				६१ मत्तदानी, श्रुताक्षानी और विभंगजानी जीवोंके भाव	२२४-२२५
				६२ मिथ्यादृष्टि जीवोंके ज्ञानको अक्षानपना कैसे है ? ज्ञानका कार्य क्या है ? इत्यादि अनेकों शंकाओंका समाधान	"
				६३ मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञानी जीवोंके भावोंका पृथक् पृथक् निरूपण	२२५-२२६
				६४ 'सयोग' यह कौनसा भाव है ? योगको कार्मणशरीरसे उत्पन्न होनेवाला क्यों न माना जाय ? इन शंकाओंका सयुक्तिक समाधान	"
				८ संयममार्गणा	२२७-२२८
				६५ प्रमत्तसंयतसे लेकर अयोगि-केवली गुणस्थान तक संयमी जीवोंके भाव	२२७

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
६६	सामाधिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि और सूक्ष्म-साम्परायिक संयमी जीवोंके भावोंका पृथक् पृथक् निरूपण	२२७	७७	उक्त गुणस्थानवर्ती क्षायिक-सम्यग्दृष्टि जीवोंके भावोंका और उनके सम्यक्त्वका तदन्तर्गत शंका-समाधान-पूर्वक निरूपण	२३१-२३४
६७	यथाख्यातसंयमी, संयमा-संयमी और असंयमी जीवोंके भावोंका पृथक् पृथक् निरूपण	२२८	७८	असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके भावोंका और सम्यक्त्वका निरूपण	२३४-२३५
६८	चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी जीवोंके भाव	२२८	७९	असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर उपशोतकपाय गुणस्थान तक उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके भावोंका और सम्यक्त्वका निरूपण	२३५-२३६
६९	अवधिदर्शनी और केवल-दर्शनी जीवोंके भाव	२२९	८०	सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्य-मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंके भाव	२३६-२३७
७०	कृष्ण, नील और कापोत-लेख्यावाले आदिके चार गुणस्थानवर्ती जीवोंके भाव	२२९		१३ संजिमार्गणा	२३७
७१	तेजोलेख्या और पद्मलेख्या-वाले आदिके सात गुणस्थान-वर्ती जीवोंके भाव	"	८१	मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीण-कपाय गुणस्थान तक सभी जीवोंके भाव	"
७२	शुक्लेख्यावाले आदिके तेरह गुणस्थानवर्ती जीवोंके भाव	२३०	८२	असंक्षी जीवोंके भाव	"
७३	सर्वगुणस्थानवर्ती भव्य जीवोंके भाव	२३०-२३१	८३	मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगि-केवली गुणस्थान तक आहा-रक जीवोंके भाव	२३८
७४	अभव्य जीवोंके भाव	"	८४	अनाहारक जीवोंके भाव	"
७५	अभव्यमार्गणमे गुणस्थानके भावको न कह कर मार्गणा-स्थान-संबंधी भावोंके कहनेका क्या अभिप्राय है ? इस शंकाका समाधान	२३०-२३१		अल्पबहुत्वानुगम	
७६	असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक सम्यग्दृष्टि जीवोंके भाव	२३१-२३७		विषयकी उत्थानिका	२४१-२५०
				१ घबलाकारका मंगलाचरण और प्रतिज्ञा	२४१
				अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश-भेद-निरूपण	"

षट्खंडागमकी प्रस्तावना

(५५)

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.		
२	नाम-अल्पबहुत्व, स्थापना-अल्पबहुत्व, द्रव्य-अल्पबहुत्व और भाव-अल्पबहुत्व, इन चार प्रकारके अल्पबहुत्वोंका समेद-स्वरूप-निरूपण	२४१-२४२	१५	सासादनसम्यग्दृष्टियोंका गुणकार बतलाते हुए गुणकारके तीन प्रकारोंका वर्णन	२४२		
३	प्रकृतमें सचित्त द्रव्याल्प-बहुत्वसे प्रयोजनका उल्लेख	२४२	१६	सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयत-सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंका सयुक्तिक एवं सम्प्रमाण अल्पबहुत्व-निरूपण	२५०-२५३		
४	निर्देश, स्वामित्व, आदि छह अनुयोगद्वारोंसे अल्पबहुत्वका स्वरूप निरूपण	२४२-२४३	१७	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्वका अनेक शंकाओंके समाधानपूर्वक निरूपण	२५३-२५६		
५	ओघ और आदेशका स्वरूप	२४३	१८	संयतासंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्वका तदन्तर्गत अनेक शंकाओंके समाधानपूर्वक सयुक्तिक निरूपण	२५६-२५७		
६	ओघसे अल्पबहुत्वानुगमनिर्देश	२४३-२६१	१९	प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व	२५८		
७	अपूर्वकरण आदिके कालोंमें परस्पर हीनाधिकता होनेसे संचय विसदृश क्यों नहीं होता ? इस शंकाका सयुक्तिक समाधान	२४४	२०	उपशामक और क्षपकोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व तथा तदन्तर्गत अनेक शंकाओंका समाधान	२५८-२६१		
८	उपशान्तकपायवीतरागछद्म-स्वोंका अल्पबहुत्व	२४५	२१	आदेशसे अल्पबहुत्वानुगम-निर्देश	२६१-३५०		
९	क्षपक जीवोंका अल्पबहुत्व	२४५-२४६	१ गतिमार्गणा (नरकगति)	२६१-२८७	२१	सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि	
१०	सयोनिकेवली और अयोगिकेवलीका प्रवेशकी अपेक्षा अल्पबहुत्व	२४६	२	संयतासंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंका अल्पबहुत्व	२४७-२४८	२२	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें नाराकियोंका सम्यक्त्वसंबंधी अल्पबहुत्व
११	सयोनिकेवलीका संचय-कालकी अपेक्षा अल्पबहुत्व	२४७	३	अदेशसे अल्पबहुत्वानुगम-निर्देश	२६१-३५०	२३	संयतासंयतोंका अल्पबहुत्व और तत्संबंधी शंकाका समाधान
१२	प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंका अल्पबहुत्व	२४७-२४८	४	अदेशसे अल्पबहुत्वानुगम-निर्देश	२६१-३५०	२४	सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका अल्पबहुत्व और तदन्तर्गत अनेक शंकाओंका समाधान
१३	संयतासंयतोंका अल्पबहुत्व और तत्संबंधी शंकाका समाधान	२४८	५	अदेशसे अल्पबहुत्वानुगम-निर्देश	२६१-३५०	२५	सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका अल्पबहुत्व और तदन्तर्गत अनेक शंकाओंका समाधान
१४	सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका अल्पबहुत्व और तदन्तर्गत अनेक शंकाओंका समाधान	२४८-२४९	६	अदेशसे अल्पबहुत्वानुगम-निर्देश	२६१-३५०	२६	सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका अल्पबहुत्व और तदन्तर्गत अनेक शंकाओंका समाधान

(५६)

अल्पबहुत्वानुगम-विषय-सूची

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
२३	पृथक्त्व शब्दका अर्थ वैपुल्य-वाची कैसे लिया ? इस शंकाका समाधान	२६४	३१	चारों गुणस्थानवर्ती देवोंका अल्पबहुत्व	२८०
२४	सातों पृथिवियोंके नारकी जीवोंका पृथक् पृथक् अल्पबहुत्व	२६४-२६७	३२	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें देवोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व	२८०-२८१
२५	अन्तर्मुहूर्तका अर्थ असंख्यात आवलियां लेनेसे उसका अन्तर्मुहूर्तपना विरोधको क्यों नहीं प्राप्त होगा ? इस शंकाका समाधान	२६६	३३	भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, देव और देवियोंका, तथा सौधर्म-ईशानकल्पवासिनी देवियोंका अल्पबहुत्व	२८१-२८२
२६	सामान्यतिर्यच, पंचेन्द्रिय-तिर्यच, पंचेन्द्रियपर्याप्त और पंचेन्द्रिययोनिमती तिर्यचोंके तदन्तर्गत अनेक शंकाओंके समाधानपूर्वक अल्पबहुत्वका निरूपण	२६८-२७३	३४	सौधर्म-ईशानकल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक विमान-वासी देवोंके चारों गुणस्थानसम्बन्धी तथा सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्वका तदन्तर्गत शंका-समाधान-पूर्वक पृथक् पृथक् निरूपण	२८२-२८६
२७	असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें एक चारों प्रकारके तिर्यचोंका सम्यक्त्वसंबंधी अल्पबहुत्व	२७०-२७३	३५	सर्वार्थसिद्धिमें असंख्यात देव क्यों नहीं होते ? वर्ष-पृथक्त्वके अन्तरवाले आन-तादि कल्पवासी देवोंमें संख्यात आवलियोंसे भाजित पल्योपमप्रमाण जीव क्यों नहीं होते ? इत्यादि अनेक शंकाओंका सयुक्तिक और सम्प्रमाण समाधान	२८६-२८७
२८	असंयत तिर्यचोंमें क्षायिक-सम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव क्यों असंख्यात-गुणित हैं, इस बातका सयुक्तिक निरूपण	२७१	३६	पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय-पर्याप्त जीवोंका अल्पबहुत्व	२८८-२८९
२९	संयतासंयत तिर्यचोंमें क्षायिक-सम्यग्दृष्टियोंका अल्पबहुत्व क्यों नहीं कहा ? इस शंकाका समाधान	२७२	३७	इन्द्रियमार्गणमें स्वस्थान-अल्पबहुत्व और सर्वपरस्थान-अल्पबहुत्व क्यों नहीं कहे ? इस शंकाका समाधान	२८९
३०	सामान्य मनुष्य, पर्याप्त-मनुष्य और मनुष्यनियोंके तदन्तर्गत शंका-समाधान-पूर्वक सर्व गुणस्थानसंबंधी	२७३-२८०			

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
३८	असत्कारिण और नमस्कारिक-पर्याप्त जीवोंका अल्पवहुत्व	२८९-२९०	४८	का सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पवहुत्व	२९९-३००
३९	पाँचों मनोयोगी, पाँचों नव्यनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगी जीवोंके नमन गुणस्थानसम्बन्धी और सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पवहुत्व	२९०-३००	४९	प्रारम्भके नव गुणस्थानवर्ती खविदेदी जीवोंका पृथक् पृथक् अल्पवहुत्व	३००-३०२
४०	औदारिकमित्रकाययोगी असत्कारिकेवली, असत्तत्त्वसम्बन्धि, सात्तावनसम्बन्धि और मिथ्यादि जीवोंका अल्पवहुत्व	२९०-२९४	५०	असत्तत्त्वसम्बन्धि, संयता-संयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्त-संयत, अपूर्वकरण और अनि-वृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती खविदेदियोंका पृथक् पृथक् सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पवहुत्व	३०२-३०४
४१	वैकल्पिककाययोगी जीवोंका अल्पवहुत्व	२९४-२९५	५१	प्रारम्भके नव गुणस्थानवर्ती पुरुषवेदी जीवोंका पृथक् पृथक् अल्पवहुत्व	३०४-३०६
४२	वैकल्पिकमित्रकाययोगी सा-सादनसम्बन्धि, असंयत-सम्बन्धि और मिथ्यादि जीवोंका अल्पवहुत्व	२९५-२९६	५२	असंयतसम्बन्धि आदि छह गुणस्थानवर्ती पुरुषवेदी जीवोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी पृथक् पृथक् अल्पवहुत्व	३०६-३०७
४३	वैकल्पिकमित्रकाययोगी असं-यतसम्बन्धि जीवोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पवहुत्व	२९७	५३	आदिके नव गुणस्थानवर्ती नपुंसकवेदी जीवोंका पृथक् पृथक् अल्पवहुत्व	३०७-३०८
४४	आहारककाययोगी और आहारकमित्रकाययोगी जी-वोंका अल्पवहुत्व	२९७-२९८	५४	असंयतसम्बन्धि आदि छह गुणस्थानवर्ती नपुंसकवेदी जीवोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पवहुत्व	३०९-३१०
४५	उपशमसम्बन्धके साथ आहारककाययोगी नही होती? इस शकका समाधान	२९८	५५	अपगतवेदी जीवोंका अल्पवहुत्व	३११
४६	तार्मणिकाययोगी सयोगिके-वली, सात्तावनसम्बन्धि, असंयतसम्बन्धि और मि-थ्यादि जीवोंका अल्पवहुत्व	२९८-२९९	५६	६ कपायमार्गणा चारों कपायवले जीवोंका अल्पवहुत्व	३१२-३१४

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
५७	अपूर्वकरण और अनिवृत्ति-करण, इन दो उपशमक गुणस्थानोंमें प्रवेश करने-वाले जीवोंसे संयतागुणित प्रमाणवाले इन्हीं दो गुण-स्थानोंमें प्रवेश करनेवाले क्षणिकोंकी अपेक्षा सूक्ष्मसाप्-रायिक उपशमक जीव विशेष अधिक कैसे हो सकते हैं ? इस शकका समाधान	३१२	६५	केवलज्ञानी सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिनोका अल्पवहुत्व	३२१-३२२
५८	असंयतसम्बन्धि आदि सात गुणस्थानवर्ती कपायी जीवोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी पृथक् पृथक् अल्पवहुत्व	३१५-३१६	६६	सामान्य संयतोंका प्रमत्त-संयतसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक अल्पवहुत्व	३२२-३२४
५९	कपायी जीवोंका अल्पवहुत्व	३१६-३२२	६७	उक्त जीवोंका दसवें गुण-स्थान तक सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पवहुत्व	३२४-३२५
६०	मलज्ञानी, श्रुतायानी और विभंगज्ञानी जीवोंका अल्प-वहुत्व	३१६-३१७	६८	प्रमत्तसंयतादि चार गुण-स्थानवर्ती नामाधिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंका अल्पवहुत्व	३२५-३२६
६१	आभितिकोधिकज्ञानी, श्रुत-ज्ञानी और अधिज्ञानी जीवोंका असंयतसम्बन्धिसे लेकर क्षीणकपायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक पृथक् पृथक् अल्पवहुत्व	३१७-३१९	६९	उक्त जीवोंका सम्यक्त्व-सम्बन्धी अल्पवहुत्व	३२६
६२	उक्त जीवोंका दसवें गुण-स्थान तक सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पवहुत्व	३१९	७०	पारेहारशुद्धिसंयमी प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान-वर्ती जीवोंका अल्पवहुत्व	३२७
६३	प्रमत्तसंयतसे लेकर क्षीण-कपाय गुणस्थान तक मनः-पर्ययज्ञानी जीवोंका अल्प-वहुत्व	३२०	७१	उक्त जीवोंका सम्यक्त्व-सम्बन्धी अल्पवहुत्व	"
६४	उक्त जीवोंका दसवें गुण-स्थान तक सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पवहुत्व	३२१	७२	परिहारशुद्धिसंयतोंके उप-शमसंयक्त्व नहीं होता है, इस सिद्धान्तका स्पष्टीकरण	"
६५	६ कपायमार्गणा चारों कपायवले जीवोंका अल्पवहुत्व	३२१-३२३	७३	रूक्षसांपरायिकसंयमी उप-शमक और क्षणिक जीवोंका अल्पवहुत्व	३२८
६६	उक्त जीवोंका दसवें गुण-स्थान तक सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पवहुत्व	३२३	७४	यथाव्याताविहारशुद्धिसंय-तोंका अल्पवहुत्व	"
६७	असंयतसम्बन्धि आदि सात गुणस्थानवर्ती कपायी जीवोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी पृथक् पृथक् अल्पवहुत्व	३२६-३२७	७५	संयतासंयतोंका अल्पवहुत्व नहीं है, इस बातका स्पष्टीकरण	"
६८	असंयतसंयत और असंयत-संयतसंयत जीवोंका सम्यक्त्व-सम्बन्धी अल्पवहुत्व	३२८-३२९	७६	संयतासंयत और असंयत-संयतसंयत जीवोंका सम्यक्त्व-सम्बन्धी अल्पवहुत्व	३२८-३२९
६९	असंयतसंयत और असंयत-संयतसंयत जीवोंका सम्यक्त्व-सम्बन्धी अल्पवहुत्व	३२९	७७	चक्षुदर्शनी, अन्धक्षुदर्शनी, अवचिदर्शनी और केवल-	३२९

पटुखंडागमकी प्रस्तावना

(५९)

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.	क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
	दर्शनी जीवोंका पृथक् पृथक् अल्पवहुत्व	३२१		गुणस्थानोंमें एक ही पद होनेके कारण सम्यक्त्व-सम्बन्धी अल्पवहुत्व नहीं है, इस बातका स्पष्टीकरण	३४२
७८	आदिके चार गुणस्थानवर्ती छुण्ण, नील और कापोत-लेस्यावाले जीवोंका अल्प-यहुत्व	३३२-३३९	८९	असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंका अल्पवहुत्व	३४२-३४३
७९	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उक्त जीवोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पवहुत्व	३३२-३३३	९०	उक्त जीवोंके सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पवहुत्वके अभावका निरूपण	३४३
८०	आदिके सात गुणस्थानवर्ती तेज और पञ्चलेस्यावाले जीवोंका पृथक् पृथक् अल्प-यहुत्व	३३३-३३५	९१	असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर उपशांतकपाय गुणस्थान तक उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका अल्पवहुत्व	३४४
८१	असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानोंमें उक्त जीवोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पवहुत्व	३३५	९२	उक्त जीवोंके सम्यक्त्वसंबन्धी अल्पवहुत्वके अभावका स्पष्टीकरण	३४५
८२	मिथ्यादृष्टि आदि तेरह गुणस्थानवर्ती शुक्लेस्यावाले जीवोंका अल्पवहुत्व	३३६-३३८	९३	सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंके अल्पवहुत्वका अभावप्रदर्शन	३४५-३४६
८३	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर दसवें गुणस्थान तक शुक्लेस्यावाले जीवोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पवहुत्व	३३८-३३९	९४	आदिके बारह गुणस्थानवर्ती संबंधी जीवोंका अल्पवहुत्व	३४५
८४	सर्वगुणस्थानवर्ती भव्य जीवोंका अल्पवहुत्व	३३९-३४०	९५	असंखी जीवोंके अल्पवहुत्वका अभाव-निरूपण	३४६
८५	अभव्य जीवोंका अल्पवहुत्व	३४०	९६	आदिके तेरह गुणस्थानवर्ती आहारक जीवोंका अल्पवहुत्व	३४६-३५०
८६	सामान्य सम्यग्दृष्टि जीवोंका अल्पवहुत्व	३४०-३४५	९७	चौथेसे दसवें गुणस्थान तक आहारक जीवोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पवहुत्व	३४७
८७	चौथे गुणस्थानसे लेकर चौदहवें गुणस्थान तक क्षायिक-सम्यग्दृष्टि जीवोंका अल्प-यहुत्व	३४०	९८	अनाहारक जीवोंका अल्प-वहुत्व	३४८
८८	असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार	३४०-३४२	९९	असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें अनाहारक जीवोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पवहुत्व	३४९-३५०

शुद्धिपत्र

१९३०-३१

(पुस्तक ४)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८	५	णामपत्तिङ्गुणं	णाम पत्तिङ्गुणं
"	२०	जिनको ऋद्धि प्राप्त नहीं हुई है,	जिनको ऋद्धि प्राप्त हुई है,
४१	२९	विष्कम और आयामसे	घनलोक, ऊर्ध्वलोक और अवलोक, इन तीनों लोकोंके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमे विष्कम और आयामसे एक राजुप्रमाण ही तिर्यलोक है,
७०	२८	तिर्यच पर्याप्त मिथ्यादृष्टि	तिर्यच मिथ्यादृष्टि
७२	१२	तिर्यच पर्याप्त जीव	तिर्यच जीव
"	१३	"	"
७४	१३	मनुष्य, पर्वात्त मनुष्य और योनिमती मिथ्यादृष्टि मनुष्य	मिथ्यादृष्टि मनुष्य
"	२२	"	"
८५	२२	खंडित करके उसका....उतनी राशि	खंडित करके जो लब्ध आवे उसके असंख्यातवें अथवा संख्यातवें भाग राशि
१२१	१३	देखा जाता है, (न कि यथार्थतः) ... किन्तु क्षीणमोही	देखा जाता है । इस प्रकारका स्वस्थानपद अयोगिकेवलीमे नहीं पाया जाता, क्योंकि, क्षीणमोही
१४२	२	उसहो अजीवो	उसहो अजिओ
"	१३	यह अजीव है,	यह अजित है,
१४७	६	प्रमाणसे	प्रमाणसे
१६३	१६	किन्तु वे उस गुणस्थानमें	किन्तु वे ऐकेन्द्रियोंमें
"	१७	न कि वे	न कि वे अर्थात् सासादनसम्यग्दृष्टि जीव ऐकेन्द्रियोंमें उत्पन्न

१८२	२३ चादिए ।	चादिए । (किन्तु सम्यग्भिष्यादृष्टि गुणस्थानमें मरण नहीं होता है ।)
१९१	१० और अधस्तन चार पृथिवियों-सम्बन्धी चार	और सातवीं पृथिवीसम्बन्धी अधस्तन चार
२६२	७ मारणंतिय (उचवाद-) परिणदेहि	मारणंतियपरिणदेहि
"	२२ मारणात्तिरुसमुद्धात और उप-पादपदपरिणत	मारणान्तिरुसमुद्धात-पदपरिणत
२६९	१३ वैक्तिविश्रमिथ्रमाययोगी जीवोंका	असयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका
२७३	२१ नारक्तियोंमेंसासादन-सम्यग्दृष्टि	नारक्तियोंमें तिर्यचों और मनुष्योंमें मारणात्तिरुसमुद्धात करनेवाले स्त्री और पुरुष-वेदी सासादनसम्यग्दृष्टि
३६९	१५ लज्यपर्याप्त-कोमें	अपर्याप्तकोमें
"	१६ लज्यपर्याप्त	अपर्याप्त
४१०	१७ अर्थात् उनमें पुन वापिस आनेसे,	अर्थात् अपने विभक्षित गुणस्थानको छोड़कर नवीन गुणस्थानमें जानेसे,
४१७	३ परियेट्टेपुण्णेषु	-परियेट्टेपुण्णेषु
"	१५ शेष रहने पर	पूर्ण होने पर
४२२	२२ उदरमें आये हैं	उपार्जित क्रिये हैं
४३५	५ -गिरयगदीरण	-गिरयगदीरण ण
"	६ मणुसगदीरण	मणुसगदीरण ण
"	७ तिरिस्खगईरण	तिरिस्खगईरण ण
"	८ देवगदीरण	देवगदीरण ण
"	१९, २०, २२, २४ उपन	नहीं उपन
४६४	२४ अन्तर्मुहूर्तसेकाल	अन्तर्मुहूर्तसे अधिक अट्ठाई सागरोपम काल
"	२५ अट्ठाई सागरोपम-कालके आदि	विभक्षित पर्यायके आदि
४६८	१२ वर्धमान	शुंका-वर्धमान
"	१७ शुंका-तेज	तेज
४७७	१७ सादि-सात्त	सादि

२	१६ अन्तरूप.....आगमको	अन्तरके प्रतिपादक द्रव्यरूप आगमको
"	२८ वर्तमानमें इस समय	वर्तमानमें अन्य पदार्थके
७	९ सासाण-	सारोण-
१०	१४ कालमें... रहने पर	कालके स्थानमें अन्तर्मुहूर्तके द्वारा
१२	८ गमिदसम्मत्त	गमिदसम्मत्त
१४	१७ असयतादि	प्रमत्तादि
१८	४ वासपुवत्ते	वासपुवत्ते
१९	१० वेदगसम्मत्तमुवणसिय	वेदगसम्मत्तमुवरागमिय
"	२७ प्राप्त कर	उपशामित कर अर्थात् द्वितीयोपशमसम्य-
५६	२२ यह तो राशियोंका	नत्वको प्राप्त कर
५९ २१, २२	उत्कृष्ट अन्तर	यह तो इस राशिका
७१	१९ आयुके	जवन्य अन्तर
७७	२६ गतिकी	उसके
९७	७ देवेषु	इन्द्रियकी
"	२२ देवोंमें	देवीयोंमें
१०६	२१ अन्तरसे अधिक अन्तरका	अन्तरका
१९८	९ उम्क्सेण	उम्क्सेण
११७	१९ तीनों ज्ञानवाले	मति-श्रुतज्ञानवाले
१२१	१ अन्तरम्भंतरादो	अन्तरम्भंतरा दो
"	१५ अप्रमत्तसयतका काल	अप्रमत्तसयतके दो काल
"	२४ तीनों ज्ञानवाले	मति-श्रुतज्ञानवाले
१५७	५ -पमत्तसंजदाण-	-पमत्तसंजद-अप्यमत्तसंजदाण-
"	१८ और प्रमत्तसंयत	प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत
१५८	१६ (श्रेण्यारोहण करता हुआ) सिद्ध	सिद्ध
"	२२ (गुणस्थान और आयुके)	आयुके कालक्षयसे

शुद्ध

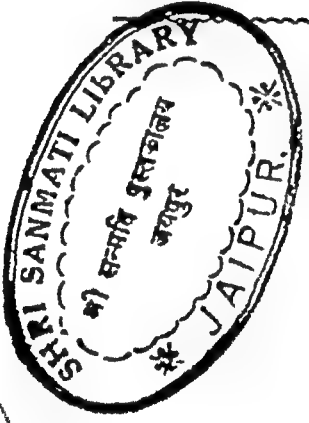
पंक्ति अशुद्ध

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७०	२१	जाना जाता है कि अन्तर रहित है ।	जाना जाता है कि उपशमश्रेणीके समारोहण योग्य कालसे शेष उपशमसम्यक्त्वका काल अल्प है ।
१८६	२	धम्मभावो ।	धम्मभावो य ।
१९८	२८-२९	अवयवीरूप . अंश	अवयवीरूप सम्यक्त्वगुणका तो निराकरण रहता है, किन्तु सम्यक्त्वगुणका अवयव- रूप अंश
२०४	१०	संखेज्जाणंत-	असंखेज्जाणंत-
२२४	१९	दयाधर्मसे .. हुए	दयाधर्मको जाननेवाले ज्ञानियोंमें वर्तमान
"	२१	क्योंकि, आत्त.... यथार्थ	क्योंकि, दयाधर्मके ज्ञाताओंमें भी आत्त, आगम और पदार्थके श्रद्धानसे रहित जीवके यथार्थ
२२५	९	सजोगिकेवली	सजोगिकेवली (अजोगिकेवली)
२२६	२८	पारिणामिकभावकी	भव्यत्वभावकी
२३८	१६	कर्मणकाययोगियोंमें	कर्मणकाययोगियोंसे
"	१७	कर्मणकाययोगी	अनाद्वारक
२४६	८	पुथसत्तारंभो	पुथसुत्तारंभो
३६४	५	भेत्तो-	भेत्तो-
२५५	१६	प्रमाणराशिसे.. भाजित	फलराशिसे इच्छाराशिको गुणित करके प्रमाणराशिसे भाजित
२७५	२८	सासादनसम्यग्दृष्टि जीव	सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सयतासयत मनुष्य-
		संख्यातगुणित	नियोंसे संख्यातगुणित
२८६	२९	असल्यात्तवें	संख्यात्तवें



क्र. १३८८ B.

२२६५५५५



सिरि-भगवंत-पुष्पदन्त-भूदवलि-पणीदो

छवखंडागमो

सिरि-वीरसेणाइरिय-विरइय-धवला-दीका-समणिपदो

तस्स

पढमवंडे जीवट्टाणे

अंतराणुगमो

अंताइमज्झहीणं दसद्वसयचावदीहिरं पढमजिणं ।

वोच्छं णमिज्जंतरमणंतरुंगसण्हइदुग्गेज्झं ॥

अंतराणुगमेण दुविहो णिहिसो, ओधेण आदेसेण यं ॥ १ ॥

णाम-दुग्गणा-द्वय-वेत्त-काल-भावभेदेण छविहसंतरं । तत्थ णामंतरसहो वज्झत्थे

आदि, मय्य ओर अन्तसे रहित अतण्व अनन्तर, अर्थात् अनन्तज्ञानस्वरूप, और यशरातके आधे अर्थात् पाच सो धनुष उचाईवाले अतएव उत्तुंग, तथापि ज्ञान की अपेक्षा सरस, अतएव अतिदुर्गोण, ऐसे प्रथम जिन श्री दृग्भनाथको नमस्कार करके अन्तराणुगद्वाराको कहाता हं, जिसमें अनन्तर अर्थात् अन्तर रहित गुणस्थानों व मार्गणा-स्थानोंका भी वर्णन है, तथा जिसमें उत्तुंग अर्थात् दीर्घकालात्मक व सूक्ष्म अर्थात् अत्यल्प-कालात्मक अन्तरोंका भी कथन है, अतएव जो मतिज्ञान द्वारा दुर्गोण है ।

अन्तराणुगमसे निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ॥ १ ॥

नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके भेदसे अन्तर छह प्रकारका होता है । उनमें याहा अर्थको छोड़कर अपने आपमें अर्थात् स्ववाचकतामें प्रवृत्त होनेवाला 'अन्तर'

१ निवर्तितस्य गुणस्य गुणान्तकमे सति पुनस्तत्प्राप्तेः प्राक्कथ्यमन्तस्य । तत् द्विविधम्, सामान्येन विभेदेन च । स. नि. १, ८.

मोत्तूण अप्पाणमिह पयट्ठो । द्धवणंतरं दुविहं सवभावासवभावोएण । भरह-चाहुवलीणमंतर-मुवेल्लंतो णदो सवभावद्दवणंतरं । अंतरमिदि बुद्धीए संकप्पिय दंड-कंड-कोण्डादो असवभावद्दवणंतरं । दवणंतरं दुविहं आगम-णोआगमभेएण । अंतरपाहुडजाणओ अणुवज्जुओ अंतरदव्वागमो वा आगमदव्वंतरं । णोआगमदव्वंतरं जाणुगसरीर-भविण्य-तव्वदिरित्तभेएण तिविहं । आधारे आधेयोवयारेण लद्धंतरसण्णं जाणुगसरीरं भविण्य-नद्धमाण-समुज्झाद-भेएण तिविहं । कधं भविण्यस्स अणाहारदाए द्धित्थस्स अंतरववएसो ? ण एस दोसो, कूरपजयाणाहारोसु वि तंदुलेसु एत्थ कूरववएसुवलंभा । कधं भूदे एसो ववहारो ? ण, रज्जपज्जायअणाहारे वि पुरिसे राओ आगच्छदि त्ति ववहारवलंभा । भविण्योआगम-दव्वंतरं भविस्सकाले अंतरपाहुडजाणओ संपहि संते वि उवजोए अंतरपाहुडअवगम-

यह शब्द नाम-अन्तरनिर्देश है । स्थापना अन्तर सद्भाव और असद्भावके भेदसे दो प्रकारका है । भरत और बाहुबलिके बीच उमड़ता हुआ नद सद्भावस्थापना अन्तर है । अन्तर इस प्रकारकी बुद्धिसे संकल्प करके दंड, बाण, धनुष आदिक असद्भावस्थापना अन्तर है, अर्थात् दंड, बाणादिके न होते हुए भी तत्प्रमाण क्षेत्रवर्ती अन्तरकी, यह अंतर इतने धनुष है ऐसी जो कल्पना कर लेते हैं, उसे असद्भावस्थापना अन्तर कहते हैं ।

द्रव्यान्तर आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है । अन्तर विषयक प्राप्तके शायक तथा वर्तमानमें अनुपयुक्त पुरुषको आगमद्रव्यान्तर कहते हैं । अथवा, अन्तररूप-द्रव्यके प्रतिपादक आगमको आगमद्रव्यान्तर कहते हैं । नोआगमद्रव्यान्तर शायकशरीर, भव्य और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकारका है । आधारमें आधेयके उपचारसे प्राप्त हुई है अन्तरसंज्ञा जिसको ऐसा शायकशरीर भव्य, वर्तमान और समुत्पत्तिके भेदसे तीन प्रकारका है ।

शंका—अनाधारतासे स्थित, अर्थात् वर्तमानमें जो अन्तरागमका आधार नहीं है ऐसे, भावी शरीरके 'अन्तर' इस संज्ञाका व्यवहार कैसे हो सकता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, कूर (भात) रूप पर्यायके आधार न होने पर भी तंदुलोंमें यहां, अर्थात् व्यवहारमें, कूर संज्ञा पाई जाती है ।

शंका—भूत शायकशरीरके यह अन्तरका व्यवहार कैसे वनेगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, राज्यपर्यायिके नहीं धारण करनेवाले पुरुषमें भी 'राजा आता है' इस प्रकारका व्यवहार पाया जाता है ।

भविष्यकालमें जो अन्तरशास्त्रका शायक होगा, परंतु वर्तमानमें इस समय उपयोगके होते हुए भी अन्तरशास्त्रके ज्ञानसे रहित है, ऐसे पुरुषको भव्य नोआगमद्रव्यान्तर कहते हैं ।

रहिओ । तन्मदिरित्तद्वन्तरं तिर्विहं सचित्ताचित्त-मिस्समेण । तत्थ सचित्तंरं उसह-संभवाणं मज्जे द्विओ अजिओ' । अचित्ततन्मदिरित्तद्वन्तरं गाम धणोअहिं-तणु-वादानं मज्जे द्विओ घणणिलो । मिस्संतरं जहा उज्जंत-संजुयणं विचालाद्धिगाम-णगराहं । सेत्त-कालंत्तराणि द्वन्तरे पविट्ठाणि, छद्वन्मदिरित्तखेत्त-कालागमभावा । भावंतरं दुविहं आगम-गोआगममेएण । अंतरपाहुजणओ उअलुत्तो भावागमो वा आगम-भावंतरं । गोआगमभावंतरं गाम ओदइयादी पंच भावा दोणहं भावाणमंतरे द्विडा ।

एत्थ केण अंतरेण पयदं ? गोआगमदो भावंतरेण । तत्थ मि अजीवभावंतरं मोत्तण जीवभावंतरे पयदं, अजीवभावंतरेण इह पओजणाभावा । अंतरमुच्छेदो विरहो परिणामंतरगमणं गत्थित्तगमणं अण्णभावव्यवहाणमिदि एयडो । एदस्स अंतरस्स अणु-गमो अंतराणुगमो । तेण अंतराणुगमेण दुविहो जिहेसो दव्वड्डिय-पज्जविट्ठियणयावलंयणेण । तिनिहो जिहेसो किण्णो होज्ज ? ण, तइज्जस्स णयस्स अभावा । तं पि कथं णव्यदे ?

तद्व्यतिरिक्त द्रव्यान्तर सचित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन प्रकारका है । उनमेंसे द्रुपम जिन ओर समव जिनके मध्यमें स्थित अजित जिन सचित्त तद्व्यतिरिक्त द्रव्यान्तरने उदाहरण हैं । यमोदधि और तलुवातेके मध्यमें स्थित घनवात अचित्त तद्व्यतिरिक्त द्रव्यान्तर है । ऊर्जयन्त और शत्रुज्यके मध्यमें स्थित ग्राम नगरादिक मिश्र तद्व्यतिरिक्त द्रव्यान्तर हैं । क्षेत्रान्तर और कालान्तर, ये दोनों ही द्रव्यान्तरमें प्रविष्ट हो जाते हैं, क्योंकि, छह द्रव्योंसे व्यतिरिक्त क्षेत्र और कालका अभाव है ।

भावान्तर आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है । अन्तरशाखके शायक और उपयुक्त पुरुषको आगमभावान्तर कहते हैं, अथवा भावरूप अन्तर आगमको आगमभावान्तर कहते हैं । औदयिक आदि पात्र भावोंमेंसे किन्हीं दो भावोंके मध्यमें स्थित विवक्षित भावको नोआगम भावान्तर कहते हैं ।

शंका—यहां पर किस प्रकारके अन्तरसे प्रयोजन है ?

समाधान—नोआगमभावान्तरसे प्रयोजन है । उसमें भी अजीवभावान्तरको छोड़कर जीवभावान्तर प्रकृत है, क्योंकि, यहां पर अजीवभावान्तरसे कोई प्रयोजन नहीं है । अन्तर, उच्छेद, विरह, परिणामान्तरगमन, नास्तिवगमन और अन्यभावव्यवधान, ये सब एकार्थवाची नाम हैं । इस प्रकारके अन्तरके अनुगमको अन्तरानुगम कहते हैं । उस अन्तरानुगमसे दो प्रकारका निर्देश है, क्योंकि, वह निर्देश द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक तयका अवलंन करनेवाला है ।

शंका—तीन प्रकारका निर्देश क्यों नहीं होता है ?

समाधान—तहीं, क्योंकि, तीसरे प्रकारका कोई नय ही नहीं है ।

शंका—यह भी कैसे जाना ?

१ प्रतिगु 'अजीओ' ममतो 'अजीओ' इति पाठः ।

२ प्रतिगु 'पुनोपहि' इति पाठः ।

३ प्रतिगु 'किण्ण' इति पाठः ।

संगहासंगदिरित्तचित्तविसयाणुवलंभा । एवं मणम्मि काऊण ओधेणादेसेण थेत्ति' उत्तं । एकेण जिहेसेण पज्जत्तमिदि चे ण, एकेण दुणयावलंविजीवाणमुपयारकरणे उवायाभावा ।

ओधेण मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २ ॥

'जहा उदेसो तहा जिहेसो' चि गायसंभालहुं ओधेणेत्ति उत्तं । सेसयुणद्वान-उदासट्ठो मिच्छादिट्ठिजिहेसो । केवचिरं कालादो इदि पुच्छा एदस्स पमाणत्तपदुप्पायण-फला । णाणाजीवमिदि बहुस्सु एयवयणजिहेसो कथं घडदे ? णाणाजीवद्वियसामण-विनक्खाए वहुणं पि एगत्तविरोहाभावा । गत्थि अंतरं मिच्छत्तपज्जयपरिणदजीवाणं तिसु त्रि कालेषु वोच्छेदो विरहो अभावो' गत्थि चि उत्तं होदि । अंतरस्स पडिसेहे कदे सो पडिसेहो तुच्छो ण होदि चि जाणावणहुं णिरंतरगहणं, विहिरूवेण पडिसेहादो वदिरित्तेण

समाधान—क्योंकि, संग्रह (सामान्य) और असंग्रह (विशेष) को छोड़कर किसी अन्य नयका विषयभूत कोई पदार्थ नहीं पाया जाता है ।

इस उक्त प्रकारके शंका-समाधानको मनमें धारण करके सूत्रकारने 'ओघसे और आदेशसे' ऐसा पद कहा है ।

शंका—एक ही निर्देश करना पर्याप्त था ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, एक निर्देशसे दोनों नयोंके अवलम्बन करनेवाले जीवोंके उपकार करनेमें उपायका अभाव है ।

ओघसे मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरंतर है ॥ २ ॥

'जैसा उदेश होता है, वैसा निर्देश होता है' इस न्यायके रक्षणार्थ 'ओघसे' यह पद कहा । मिथ्यादृष्टि पदका निर्देश शेष गुणस्थानोंके प्रतिषेधके लिए है । 'कितने काल होता है' इस पूछाका फल इस सूत्रकी प्रमाणताका प्रतिपादन करना है ।

शंका—'णाण जीवं' इस प्रकारका यह एक वचनका निर्देश बहुतसे जीवोंमें कैसे घटित होता है ?

समाधान—नाना जीवोंमें स्थित सामान्यकी विवक्षासे बहुतोंके लिए भी एक-वचनके प्रयोगमें विरोध नहीं आता ।

'अन्तर नहीं है' अर्थात् मिथ्यात्वपर्यायसे परिणत जीवोंका तीनों ही कालोंमें व्युच्छेद, विरह या अभाव नहीं होता है, यह अर्थ कहा गया समझना चाहिए । अन्तरके प्रतिषेध करने पर वह प्रतिषेध तुच्छ अभावरूप नहीं होता है, किन्तु भावान्तरभावरूप होता है, इस बातके जतलानेके लिए 'निरन्तर' पदका ग्रहण किया है । प्रतिषेधसे

१ प्रतिगु 'पुत्ति' इति पाठः ।

२ सामान्येन तावत् मिथ्यादृष्ट्याजीवापेक्षया नास्त्यन्तर । स मि १, ८

३ प्रतिगु 'अमाना' इति पाठः ।

मिच्छादिद्रिष्टिगो मन्वकालमच्छति ति उचं होदि । अधवा पञ्चद्विधयावलंबिजीवाणु-
गदण्डं गल्लि अंतरमिदि पडिसेहवयणं, दन्वद्विधयावलंबिजीवाणुगदण्डं गिरंतरमिदि
प्रहिरणं । एमो अत्यो उवरि सवत्य वत्तव्यो ।

एगजीवं पडुच जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३ ॥

तं जत्रा- एको मिच्छादिद्वी सम्मामिच्छत्त-सम्मत्त-संजमासंजम-संजमेसु बहुसो
परियद्विदो, परिणामपचाण मम्मत्तं गदो, सन्वलहुमंतोमुहुत्तं सम्मत्तेण अच्छिय
मिच्छत्तं गदो, लद्वमंतोमुहुत्तं सवजहणं मिच्छत्तं । एत्थ चोदगो भणदि- जं पढ-
मिद्धमिणं मिच्छत्तं तं पुणो सम्मत्तुत्तरकाले ण होदि, पुव्वकाले वहुत्तस्स उत्तरकाले
पउत्तिरोहो । ण न तं च उत्तरकाले उपपज्जइ, उपपणस्स उपपत्तिविरोहो । तदो
अंतिहं मिच्छत्तं पढमिद्धं ण होदि ति अंतरस्स अभावो चेयेत्ति ? एत्थ परिहारो उचदे-
सवमेममंदं जदि मुदो पज्जयणो अवलंबिज्जदि । किंतु णइगमणयमवलंबिय अंतर-
व्यतिरिक्त हुनेक कारण विधिरूपसे मिथ्यादृष्टि जीव सर्व काल रहते हैं, यह अर्थ कहा
गया है । अथवा, पर्यायाधिक नयका अवलम्बन करनेवाले जीवोंके अनुग्रहके लिए
'अन्तर नहीं है' इस प्रकारका प्रतिषेधवचन और द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करने-
वाले जीवोंके अनुग्रहके लिये 'निरन्तर' इस प्रकारका विधिपरक वचन कहा गया है ।
यह अर्थ आगेके सभी सूत्रोंमें भी कहना चाहिए ।

एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर्काल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३ ॥

जैसे-एक मिथ्यादृष्टि जीव, सम्यग्मिथ्यात्व, अधिरतसम्यक्त्व, संयमासंयम और
रागभयं गुरुत्वार परिवर्तित होता हुआ परिणामोंके निमित्तसे सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ,
और वहा पर सर्वकथु अन्तर्मुहूर्तकाल तक सम्यक्त्वेके साथ रह कर मिथ्यात्वको प्राप्त
हुआ । इस प्रकारसे सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण मिथ्यात्व गुणस्थानका अन्तर प्राप्त
हो गया ।

शंका-यहां पर शंकाकार गहता है कि अन्तर करनेके पूर्व जो पहलेका
मिथ्यात्व था, वही पुनः सम्यक्त्वेके उत्तरकालमें नहीं होता है, क्योंकि, सम्यक्त्व
प्राप्तिके पूर्वकालमें वर्तमान मिथ्यात्वकी उत्तरकालमें, अर्थात् सम्यक्त्व छोड़नेके पश्चात्,
प्रवृत्ति होनेका निरोध है । तथा, वही मिथ्यात्व उत्तरकालमें भी उत्पन्न नहीं होता है,
क्योंकि, उत्पन्न हुई वस्तुके पुनः उत्पन्न होनेका विरोध है । इसलिए सम्यक्त्व छूटनेके
पश्चात् होनेवाला अन्तिम मिथ्यात्व पहलेका मिथ्यात्व नहीं हो सकता है, इससे
अन्तरना अभाव ही सिर होता है ?

समाधान-यहां उक्त शंकाका परिहार करते हैं-उक्त कथन सत्य ही है, यदि
शून्य पर्यायाधिक नयका अवलंबन किया जाय । किंतु नैगमनयका अवलंबन लेकर अन्तर-

१ एब्बोत प्रति जप्येनान्तर्मुहूर्त । स नि, १, ८.

२ मतिपु न मतिपु च 'पदमभिन्निग' इति पाठ ।

परूवणा कीरदे, तस्स सामण्णविसेसुहयविसयत्तादो । तदो ण एस दोसो । तं जहा- पडमंतिम-
मिच्छत्तं पज्जाया अभिण्णा, मिच्छत्तकम्मोदयजादत्तेण अत्तागम-पदत्थाणमसहणेण
एगजीवाहारत्तेण भेदाभावा । ण पुव्वुत्तरकालमेएण ताणं भेओ, तथा विवत्तवाभावा ।
तन्हा पुव्वुत्तरद्वासु अच्छिण्णसरूवेण हिदिमिच्छत्तस्स सामण्णावलंबणेण एकत्तं पत्तस्स
सम्मत्तपज्जओ अंतरं होदि । एस अत्यो सवत्य पउज्जिदव्वो ।

उक्कस्सेण वे छावट्टिसागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ४ ॥

एदस्स णिदरिसणं- एको तिरिक्खो मणुस्सो वा लंतय-काविट्ठरूपवासियदेवेषु
चोदससागरोवमाउट्टिदिएसु उपपणो । एकं सागरोवमं गमिय विदियसागरोवमादिसमए
सम्मत्तं पडिवणो । तेरससागरोवमाणि तत्थ अच्छिय सम्मत्तेण सह चुदो मणुसो जादो ।
तत्थ संजमं संजमासंजमं वा अणुणालिय मणुसाउएण्णवात्रीससागरोवमाउट्टिदिएसु
आरणचुददेवेषु उववणो । ततो चुदो मणुसो जादो । तत्थ संजममणुणालिय उवरिसमगेवजे

प्ररूपणा की जा रही है, क्योंकि, वह नैगमनय सामान्य तथा विशेष, इन दोनोंको विषय
करता है, इसलिये यह कोई दोष नहीं है । उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है-अंतरकालके
पहलेका मिथ्यात्व और पहिलेका मिथ्यात्व, ये दोनों पर्याय हैं, जो कि अभिन्न हैं, क्योंकि,
मिथ्यात्वकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेके कारण, आत, आगम और पदार्थोंके अश्रद्धानती अपेक्षा,
तथा एक ही जीव द्रव्यके आधार होनेसे उनमें कोई भेद नहीं है । और न पूर्वकाल तथा
उत्तरकालके भेदकी अपेक्षा भी उन दोनों पर्यायोंमें भेद है, क्योंकि, इस कालभेदकी यहां
विवक्षा नहीं की गई है । इसलिए अन्तरके पहले और पहिलेके कालमें अविच्छिन्न स्वरूपसे
स्थित और सामान्य (द्रव्यार्थिकनय) के अवलम्बनसे एकत्वको प्राप्त मिथ्यात्वका
सम्यक्त्व पर्याय अन्तर होता है, यह सिद्ध हुआ । यही अर्थ आगे सर्वत्र योजित कर
लेना चाहिए ।

मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागरोपम काल है ॥ ४ ॥

इसका दृष्टान्त-कोई एक तिर्यच अथवा मनुष्य चोदह सागरोपम आयुस्थिति-
वाले लांतव-कापिट्ठ कल्पवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहा एक सागरोपम काल विता कर
दूसरे सागरोपमके आदि समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । तेरह सागरोपम काल वहां
पर रहकर सम्यक्त्वेके साथ ही च्युत हुआ और मनुष्य होगया । उस मनुष्यभ्रममें
संयमको, अथवा संयमासंयमको अनुपालन कर इस मनुष्यभ्रमसम्यन्धी आयुसे कम
घाईस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले आरण-अच्युतकल्पके देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहासे
च्युत होकर पुनः मनुष्य हुआ । इस मनुष्यभ्रममें संयमको अनुपालन कर उपरिम

१ प्रतिपु 'अत्यागम' इति पाठ ।

२ उत्तर्येण द्वे पदपद्यो देशेने सागरोपमाणाम् । स. सि. १, ८.

देवेषु मनुष्याउगेणएकत्तीसागरोवमाउद्धिदिमु उववणो । अंतोमुहुत्तूणछावद्धि-
सागरोवमचरिमसमए परिणामपच्चाएण सम्मामिच्छत्तं गदो । तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय
पुणो सम्मत्तं पडिवज्जिय विस्समिय जुदो मणुसो जादो । तत्थ संजमं संजमासंजमं वा
अणुपालिय मणुस्साउएणूणवीससागरोवमाउद्धिदिमुवज्जिय पुणो जहाकमेण मणुसाउ-
वेणूणवावीस-चउवीससागरोवमाउद्धिदिमु देवेषुवज्जिय अंतोमुहुत्तूणवेछावद्धिसागरो-
वमचरिमसमए मिच्छत्तं गदो । लद्धमंतरं अंतोमुहुत्तूणवेछावद्धिसागरोवमाणि । एसो
उप्पत्तिकमो अउप्पणउप्पायणद्धं उत्तो । परमत्थदो पुण जेण केण वि पयारेण छावद्धी
पूरेदव्वा ।

**सासाणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठिणमंतरं केवचिरं कालादो
होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहणणेण एगसमयं ॥ ५ ॥**

तं जहा, सासाणसम्मादिट्ठिस्स ताव उच्चदे- दो जीवमादि कालुण एगुत्तरकमेण
पलिदोवमस्स असंखेज्जिदिभागमेत्तवियप्पेण उवससम्मादिट्ठिणो उवससम्मत्तद्वाए
एगसमयमादि कालुण जाव छावलिवावसेसाए आसाणं गदा । तेत्तियं पि कालं सासाण-
अवेयकमं मनुष्य आयुसे कम इत्तीस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले अहमिन्द्र देवोंमें
उत्पन्न हुआ । वहाँ पर अन्तर्मुहूर्त कम छयासठ सागरोपम कालके चरम समयमें परि-
णामोंके निमित्तसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि प्राप्त हुआ । उस सम्यग्मिथ्यात्वमें अन्तर्मुहूर्त काल
रहकर पुन' सम्यक्त्वको प्राप्त होकर, विश्राम ले, च्युत हो, मनुष्य हो गया । उस मनुष्य-
भवमें सयमको अथवा सयमांसयमको परिपालन कर, इस मनुष्यभवसम्बन्धी आयुसे
कम वीस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले आनत-प्राणत कल्पोंके देवोंमें उत्पन्न होकर
पुनः यथाक्रमसे मनुष्यायुसे कम धार्दस और चौबीस सागरोपमकी स्थितिवाले देवोंमें
उत्पन्न होकर, अन्तर्मुहूर्त कम दो छयासठ सागरोपम कालके अन्तिम समयमें मिथ्यात्वको
प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्त कम दो छयासठ सागरोपम कालप्रमाण अन्तर प्राप्त
हुआ । यह ऊपर बताया गया उत्पत्तिका क्रम अव्युत्पन्न जनोंके समझानेके लिए कहा है ।
परमार्थसे तो जिस किसी भी प्रकारसे छयासठ सागरोपम काल पूरा किया जा
सकता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता
है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होता है ॥ ५ ॥

जैसे, पहले सासादनसम्यग्दृष्टिका अन्तर कहते हैं— दो जीवोंको आदि करके
एक एक अधिकके क्रमसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र विकल्पसे उपशमसम्यग्दृष्टि
जीव, उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समयको आदि करके अधिकसे अधिक छह आवली
कालके अवशेष रह जाने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए । जितना काल अवशेष

१ सासादनसम्यग्दृष्टेत्तर नानाजीवोपेक्षा जघन्येतर सम । × × × सम्यग्मिथ्यादृष्टेत्तर नाना-
जीवोपेक्षा समानदन्तर । स मि. १, ८

गुणेण अच्छिय सवे मिच्छत्तं गदा । तिसु वि लोगेसु सासाणागमेगसमए अभावो जादो ।
पुणो विदियसमए सत्तडु जणा आवलियाए असंखेज्जिदिभागमेत्ता पलिदोवमस्स असंखे-
ज्जिदिभागमेत्ता वा उवससम्मादिट्ठिणो आसाणं गदा । लद्धमंतरमेगसमओ ।

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे- सत्तडु जणा बहुआ वा सम्मामिच्छादिट्ठिणो णाणा-
जीवगदसम्मामिच्छत्तद्वावएण सम्मत्तं मिच्छत्तं वा सवे पडिवण्णा । तिसु वि लोगेसु
सम्मामिच्छादिट्ठिणो एगसमयमभावीभूदा । अणंतरसमए मिच्छाद्विड्ठिणो सम्मादिट्ठिणो वा
सत्तडु जणा बहुआ वा सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णा । लद्धमंतरमेगसमओ ।

उवकस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जिदिभागो ॥ ६ ॥

णिदरिसणं सासाणसम्मादिट्ठिस्स ताव उच्चदे- सत्तडु जणा बहुआ वा उवसम-
सम्मादिट्ठिणो आसाणं गदा । तेहि आसाणेहि आय-व्यवसेण पलिदोवमस्स असंखेज्जिदि-
भागमेत्तकालं सासाणगुणप्पवाहो अविच्छिणो कदो । पुणो अणंतरसमए सवे मिच्छत्तं

रहने पर उपशमसम्यक्त्वको छोड़ा था, उतने ही कालप्रमाण सासादन गुणस्थानमें रह
कर वे सब जीव मिथ्यात्वको प्राप्त हुए, और तीनों ही लोकोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंका
एक समयके लिए अभाव हो गया । पुनः द्वितीय समयमें अन्य सात आठ जीव, अथवा
आवलीके असंख्यातवें भागमात्र जीव, अथवा पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण उपशम-
सम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए । इस प्रकार सासादन गुणस्थानका
एक समयरूप जघन्य अन्तर प्राप्त हो गया ।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका जघन्य अन्तर कहते हैं— सात आठ जन,
अथवा बहुतेसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव, नाना जीवगत सम्यग्मिथ्यात्वसम्बन्धी कालके
क्षयसे सम्यक्त्वको, अथवा मिथ्यात्वको सभीके सभी प्राप्त हुए और तीनों ही लोकोंमें
सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव एक समयके लिए अभावरूप हो गये । पुनः अनन्तर समयमें ही
मिथ्यादृष्टि, अथवा सम्यग्दृष्टि सात आठ जीव, अथवा बहुतेसे जीव, सम्यग्मिथ्यात्वको
प्राप्त हुए । इस प्रकारसे सम्यग्मिथ्यात्वका एक समयरूप जघन्य अन्तर प्राप्त हो गया ।

उक्त दोनों गुणस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग
है ॥ ६ ॥

उनमेंसे पहले सासादनसम्यग्दृष्टिका उदाहरण कहते हैं— सात आठ जन,
अथवा बहुतेसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए । उन सासादन-
सम्यग्दृष्टि जीवोंके द्वारा आय और व्ययके क्रमवशा पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र काल
तक सासादन गुणस्थानका प्रवाह अविच्छिन्न चला । पुनः उसका काल समाप्त होनेपर
दूसरे समयमें ही वे सभी जीव मिथ्यात्वको प्राप्त हुए, और पल्योपमके असंख्यातवें भाग-

१ उत्तर्येण पल्योपमासंख्येयमागः । स मि. १, ८

गदा। पलिदोवमस्म असंखेज्जिभागमेतत्कालं सामणगुणद्वगुणमंतरिदं। तदो उक्कस्संतरस्स अणंतरममए मत्तइ जणा वहुआ वा उवसमसम्मादिट्ठिणो आसाणं गदा। लद्धमंतरं पलिदोवमस्म असंखेज्जिभागो।

मम्मामिच्छादिट्ठिस्म उच्चदे-णाणजीवगदसम्मामिच्छत्तद्वाए उक्कस्संतरजोगाए अदिन्ताए मच्चे मम्मामिच्छादिट्ठिणो सम्मत्तं मिच्छत्तं वा पडिउण्णा। अंतरिदं सम्मामिच्छत्तगुणद्वगुणं। पुणो पलिदोवमस्म असंखेज्जिभागमेतत्तुक्कस्संतरकालस्स अणंतरममए अट्ठासीसंतत्तम्मियमिच्छादिट्ठिणो वेदगसम्मामिदिट्ठिणो उवसमसम्मामिदिट्ठिणो वा सम्मामिच्छत्तं पडिउण्णा। लद्धमंतरं पलिदोवमस्म असंखेज्जिभागो।

एगजीवं पडुच्च जहणेण पलिदोवमस्म असंखेज्जिभागो, अंतोमुहुरं ॥ ७ ॥

‘जहा उदसो तहा णिदसो’ ति णायोदो सासणसम्मामिदिट्ठिस्स पढमं उच्चदे-एस्सो सासणसम्मामिदिट्ठो उवसमसम्मत्तपच्छायदो केत्तिं पि कालमासाणगुणेणिच्छिय मिच्छत्तं गदो अंतोदो। पलिदोवमस्म असंखेज्जिभागमेतत्कालेण भूओ उवसमसम्मत्तं मात्त कालत्तकके लिए सासादन गुणस्थान अन्तरको प्राप्त हो गया। पुनः इस पल्योपमके अंगय्यातवें भाग प्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकालके अनन्तर समयमें ही सात आठ जन, अथवा श्रुतसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए। इस प्रकारसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण सासादन का उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त हो गया।

अन सम्यग्मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कहते हैं- उत्कृष्ट अन्तरके योग्य, नाना जीवगत सम्यग्मिथ्यात्वकालके व्यतिक्रान्त होने पर, सभी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्वको, अथवा मिथ्यात्वको प्राप्त हुए। इस प्रकारसे सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान अन्तरको प्राप्त हुआ। पुनः पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उत्कृष्ट अन्तरकालके अनन्तर समयमें एी मोए कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि, अथवा वेदकसम्यग्दृष्टि, अथवा उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुए। इस प्रकारसे सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान का पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हो गया।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका एक जीवकी अपेक्षा जयन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमके असंख्यातवें भाग और अन्तर्मुहुरं है ॥ ७ ॥

जिस प्रकारसे उद्देश होता है, उसी प्रकारसे निर्देश होता है, इसी न्यायसे सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानका अन्तर पहले कहते हैं- उपशम सम्यक्त्वसे पीछे लौटा हुआ कोई एक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने ही काल तक सासादन गुणस्थानमें रहा और फिर मिथ्यात्वको प्राप्त हो अन्तरको प्राप्त हुआ। पुनः पल्योपमके असंख्यातवें

१ एज्जीग प्रति जयनेन पल्योपमालयेयमाग । ४ x ४ सम्यग्मिथ्यादृष्टे ४ x ४ एज्जीव प्रति जयनेनात्तर्मुहुरं । स नि १, ८

२ प्रतिगु ‘आसाण गुणेन’ इति पाठ ।

पडिउज्जिय छात्रालयावसेसाए उवसमसम्मत्तद्वाए आसाणं गदो। लद्धमंतरं पलिदोवमस्म असंखेज्जिभागो। अंतोमुहुरत्तकालेण आसाणं किण्ण णीदो? ण, उवसमसम्मत्तेण विणा आसाणगुणगहणाभावा। उवसमसम्मत्तं पि अंतोमुहुरत्तेण किण्ण पडिउज्जेदं? ण, उवसमसम्मामिदिट्ठो मिच्छत्तं गंतूण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि उव्वेल्लमाणो तेसिमंतोकोडा-कोडीमेत्तद्विदिं घादिय सागरोवमादो सागरोवमपुधत्तादो वा जाव हेडा ण करोदि ताव उवसमसम्मत्तगहणसंभवाभावा। ताणं द्विदीओ अंतोमुहुरत्तेण घादिय सागरोवमादो सागरोवमपुधत्तादो वा हेडा किण्ण करोदि? ण, पलिदोवमस्म असंखेज्जिभागमेतत्तकालेण पलिदोवमस्म असंखेज्जिभागमेतत्कालेण विणा सागरोवमस्म वा सागरोवमपुधत्तस्स वा अंतोमुहुरत्तकालेहो उव्वेल्लणखंडएहि घादिज्जभाणाए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तद्विदीए पलिदोवमस्म असंखेज्जिभागमेतत्कालेण विणा सागरोवमस्म वा सागरोवमपुधत्तस्स वा हेडा पदणोणुववत्तीदो। सासणपच्छायदमिच्छाद्विड्डि संजमं गेणहाविय दंसणतियमुवसाभिय

भागमात्र कालसे उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होकर, उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवली काल अवशेष रहने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हो गया। इस प्रकारसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तरकाल उपलब्ध हो गया।

शंका—पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण कालमें अन्तर्मुहुरं काल शेष रहने पर सासादन गुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त कराया?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमसम्यक्त्वके विना सासादन गुणस्थानके ग्रहण करनेका अभाव है।

शंका—वही जीव उपशमसम्यक्त्वको भी अन्तर्मुहुरं कालके पश्चात् ही क्यों नहीं प्राप्त होता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वको प्राप्त होकर, सम्यक्त्वप्रकृति ओर सम्यग्मिथ्याप्रकृतिकी उड्डेलना करता हुआ, उनकी अन्तःक्रोधा-कोडीप्रमाण स्थितिकी घात करके सागरोपमसे, अथवा सागरोपम पृथक्त्वसे जवतक नीचे नहीं करता है, तब तक उपशमसम्यक्त्वका ग्रहण करना ही संभव नहीं है।

शंका—सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी स्थितिओंको अन्तर्मुहुरं कालमें घात करके सागरोपमसे, अथवा सागरोपमपृथक्त्व कालसे नीचे क्यों नहीं करता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र आयामके द्वारा अन्तर्मुहुरं उत्त्तीरणकालवाले उड्डेलनाकांडोंसे घात कीजानेवाली सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी स्थितिका, पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र कालके विना सागरोपमके, अथवा सागरोपमपृथक्त्वके नीचे पतन नहीं हो सकता है।

शंका—सासादन गुणस्थानसे पीछे लौटते हुए मिथ्यादृष्टि जीवको संयम ग्रहण कराकर और दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका उपशमन कराकर, पुनः चारित्रमोहका

१ प्रतिगु ‘पदेण’ इति पाठः।

पुणो चरित्तमोहमुवसामेदूण हेडा ओयरिय आसाणं गदस्स अंतोमुहुत्तंरं किण्ण परुविदिं? पुण, उवसमसेदीदो ओदिण्णं सासणगमणाभावादो । तं पि कुदो णब्बे? एदम्हादो चेव भूदवलीवयणादो ।

सम्माभिच्छादिद्विस्स उच्चदे- एक्केण सम्माभिच्छादिद्वी परिणामपच्चएण मिच्छत्तं सम्मतं वा पडिवण्णो अंतरिदो । अंतोमुहुत्तेण भूओ सम्माभिच्छत्तं गदो । लद्धमंतर- मंतोमुहुत्तं ।

उक्कस्सेण अद्धपोगलपरियदं देसुणं ॥ ८ ॥

ताव सासणस्सुदाहरणं वुच्चदे- एक्केण अणादियमिच्छादिद्विणा तिणि करणाणि कादूण उवसमसम्मत्तं पडिवण्णपढमसमए अणंतो संसारो छिण्णो अद्धपोगलपरियदमेत्तो कदो । पुणो अंतोमुहुत्तं सम्मत्तेणच्छिय आसाणं गदो (१) । मिच्छत्तं पडिवज्जिय अंतरिदो अद्धपोगलपरियदं मिच्छत्तेण परिभमिय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारो उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो एगसमयाप्रसेसाए उवसमसम्मत्तद्वए आसाणं गदो । लद्धमंतरं । भूओ मिच्छा- उपशम करा ओर नीचे उतारकर, सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए जीवके अन्तर्मुहूर्त- प्रमाण अन्तर क्यो नहीं बताया ?

समाधान-नहीं, क्योंकि, उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले जीवोंके सासादन गुण- स्थानमें गमन करनेका अभाव है ।

शंका-यह कैसे जाना ?

समाधान-भूतवली आचार्यके इसी वचनसे जाना ।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर कहते हैं- एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव परिणामोंके निमित्तसे मिथ्यात्वको, अथवा सम्यक्त्वको प्राप्त हो अन्तरको प्राप्त हुआ और अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् ही पुनः सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तरकाल प्राप्त हो गया ।

उक्त दोनों गुणस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥८॥

उन्मत्तसे पहले सासादन गुणस्थानका उदाहरण कहते हैं- एक अनादि मिथ्या- दृष्टि जीवने अथ प्रवृत्तादि तीनों करण करके उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें अनन्त संसारको छिन्न कर अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र किया । पुनः अन्तर्मुहूर्तकाल सम्यक्त्वके साथ रहकर वह सासादनसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१) । पुन मिथ्यात्वको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ और अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल मिथ्यात्वके साथ परिभ्रमणकर संसारके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रह जाने पर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुन उपशम- सम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रह जाने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे सूत्रोक्त अन्तरकाल प्राप्त हो गया । पुनः मिथ्यादृष्टि हुआ (२) । पुनः वेदक-

१ उक्तमेंभूतद्वयपरिवर्तितों देशोन । स ति १, ८

दिद्वी जादो (२) । वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय (३) अणंताणुवंधिं विसंजोजिय (४) दंसणमोहणीयं खविय (५) अपमत्तो जादो (६) । तदो पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (७) खवगसेदीपाओगविसोहीए विसुज्झिऊण (८) अपुव्वखवगो (९) अणियद्विखवगो (१०) सुहुमखवगो (११) खीणकसाओ (१२) सजोगिकेवली (१३) अजोगिकेवली (१४) होदूण सिद्धो जादो । एवं समयाहियचोदसअंतोमुहुत्तेहि ऊण- मद्धपोगलपरियदं सासणसम्मादिद्विस्स उक्कस्संतरं होदि ।

सम्माभिच्छादिद्विस्स उच्चदे- एक्केण अणादियमिच्छादिद्विणा तिणि वि करणाणि कादूण उवसमसम्मत्तं गेण्हत्तेण गमिदसम्मत्तपढमसमए अणंतो संसारो छिदिदूण अद्ध- पोगलपरियदमेत्तो कदो । उवसमसम्मत्तेण अंतोमुहुत्तमिच्छिय (१) सम्माभिच्छत्तं पडिवण्णो (२) । मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो । अद्धपोगलपरियदं परिभमिय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारो उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो । तथैव अणंताणुवंधिं विसंजोइय सम्माभिच्छत्तं पडि- वण्णो । लद्धमंतरं (३) । तदो वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय (४) दंसणमोहणीयं खवेदूण (५) अपमत्तो जादो (६) । पुणो पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं करिय (७) खवगसेदीपाओग-

सम्यक्त्वको प्राप्त होकर (३) अनन्तानुवन्धीकपायका विसंयोजन कर (४) दर्शनमोह- नीयका क्षयकर (५) अप्रमत्तसंयत हुआ (६) । पुनः प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानोंमें सहस्रो परावर्तनोंको करके (७) क्षपकश्रेणीके प्रायोग्य विद्युद्विसे विद्युद्ध होकर (८) अपूर्वकरण क्षपक (९), अनिवृत्तिकरण क्षपक (१०), सूक्ष्मसात्पर्यायिक क्षपक (११), क्षीणकपाय- वीतराग छग्रस्य (१२), सयोगिकेवली (१३) और अयोगिकेवली (१४) होकरके सिद्ध होगया । इस प्रकारसे एक समय अधिक चौदह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन सासादनसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है ।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने तीनों ही करण करके उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करते हुए सम्यक्त्व ग्रहण करनेके प्रथम समयमें अनन्त संसार छेदकर अर्धपुद्गलपरिवर्तन मात्र किया । उपशमसम्यक्त्वके साथ अन्तर्मुहूर्त रहकर वह (१) सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (२) । पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त हो अन्तरको प्राप्त हो गया । पश्चात् अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल प्रमाण परिभ्रमण कर संसारके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवशेष रहने पर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ, और वहांपर ही अनन्तानुवन्धीकपायकी विसंयोजना कर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे अन्तर उपलब्ध हो गया (३) । तत्पश्चात् वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर (४) दर्शनमोहनीयका क्षपण करके (५) अप्रमत्तसंयत हुआ (६) । पुनः प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानसम्यन्धी सहस्रों परावर्तनोंको करके (७) क्षपकश्रेणीके प्रायोग्य विद्युद्विसे विद्युद्ध

निमोहीण विमुञ्चिय (८) अपुव्वरयगो (९) अणियद्विखवगो (१०) सुहुमखवगो (११) रीणरुमाओ (१२) मजोगिकेवली (१३) अजोगिकेवली (१४) होदूण सिद्धि गदो। पदेदि चोदमअंतोमुहुत्तेहि उगमद्रपोगलपरियद्वं सम्माभिच्छुचुकस्संतं होदि ।

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अपमत्तसंजदा सि अंतरं केव-
चिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥९॥

कुदो ? मव्वकालमेदाणमुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ १० ॥

एदस्स सुत्तस्स गुणद्वारापरिवाडीए अत्थो उचदे । तं जहा- एकको असंजद-
सम्मादिद्वी संजमासंजमं पडिउण्णो । अंतोमुहुत्तमंतरिय भूओ असंजदसम्मादिद्वी जादो ।
लद्वमंतरमंतोमुहुत्तं । संजदासंजदस्स उचदे- एकको संजदासंजदो असंजदसम्मादिट्ठि
मिच्छादिट्ठि संजमं वा पडिउण्णो । अंतोमुहुत्तमंतरिय भूओ संजमासंजमं पडिउण्णो ।
लद्वमंतोमुहुत्तं जहणंतरं संजदासंजदस्स । पमत्तसंजदस्स उचदे- एगो पमत्तो अपमत्तो
होकर (८) अपूर्वकरण क्षपक (९) अनिद्वित्तरुण क्षपक (१०) सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक (११)
क्षीणरुपाय (१२) सयोनिकेवली (१३) ओर अयोगिकेवली (१४) होकरके सिद्धपदको
प्राप्त हुआ । इन चोदह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्थपुद्गलपरिवर्तन सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट
अन्तरकाल होता है ।

अमंयतमम्यगदृष्टि गुणस्थानको आदि लेकर अग्रमत्तसंयत गुणस्थान तकके प्रत्येक
गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर
नहीं है, निरन्तर है ॥ ९ ॥

न्योंकि, सर्वकाल ही सूत्रोक्त गुणस्थानवर्ती जीव पाये जाते हैं ।

उक्त गुणस्थानोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥१०॥
इस सूत्रका गुणस्थानकी परिपाटीसे अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है- एक
असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संयमासंयमको प्राप्त हुआ । वहाँपर अन्तर्मुहूर्तकाल रहकर
अन्तरको प्राप्त हो, पुनः असंयतसम्यग्दृष्टि होगया । इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण
अन्तरकाल प्राप्त होगया ।

अब सयतासंयतका अन्तर कहते हैं- एक संयतासंयत जीव, असंयतसम्यग्दृष्टि
गुणस्थानको, अथवा मिथ्यादृष्टि गुणस्थानको, अथवा संयमको प्राप्त हुआ और अन्तर्मुहूर्त-
काल वहाँपर रह कर अन्तरको प्राप्त हो पुनः संयमासंयमको प्राप्त होगया । इस
प्रकारसे संयतासंयतका अन्तर्मुहूर्तकाल प्रमाण जघन्य अन्तर प्राप्त हुआ ।

१ अमयतमम्यगदृष्ट्याग्रमवात्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८

२ एवजीवं प्रति जपयेनान्तर्मुहूर्तं । स. सि. १, ८

होदूण सब्बलुहुं पुणो वि पमत्तो जादो । लद्वमंतोमुहुत्तं जहणंतरं पमत्तस्स । अपमत्तस्स
उचदे- एगो अपमत्तो उवसमसेदीमारुहिय पडिणियत्तो अपमत्तो जादो । लद्वमंतरं
जहणमपमत्तस्स । हेडिमगुणेषु किण्ण अंतराविदो ? ग, उवसमसेदीसवगुणद्वारा-
द्वाराहिंतो हेडिमएगुणद्वाराद्वारा संखेज्जगुणत्तादो ।

उक्कस्सेण अद्वपोगलपरियद्वं देसूणं ॥ ११ ॥

गुणद्वारापरिवाडीए उक्कस्संतरपरुत्तणा कीरदे- एक्केण अणादियमिच्छादिट्ठिणा
तिणिण करणाणि कादूण पढमसम्मत्तं गेण्हत्तेण अणंतो संसारो छिदिदूण गहिदसम्मत्त-
पढमसमाए अद्वपोगलपरियद्वमेत्तो कदो । उवसमसम्मत्तेण अंतोमुहुत्तमच्छिय (१)
छाविलयावसेसाए उवसमसम्मत्तद्वारा आसाणं गंतूणंतरिदो । मिच्छत्तेणद्वपोगलपरियद्वं
भमिय अपच्छिमे भवे संजमं संजमासंजम वा गंतूण कदकरणिज्जो होदूण अंतोमुहुत्तावसेसे

अब प्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं- एक प्रमत्तसंयत जीव, अप्रमत्तसंयत होकर
सर्वलघु कालके पश्चात् फिर भी प्रमत्तसंयत होगया । इस प्रकारसे प्रमत्तसंयतका
अन्तर्मुहूर्तकालप्रमाण जघन्य अन्तर प्राप्त हुआ ।

अब अप्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं- एक अप्रमत्तसंयत जीव उपशमश्रेणिपर
चढ़कर पुनः लौटा और अप्रमत्तसंयत होगया । इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्तकाल प्रमाण
जघन्य अन्तर अप्रमत्तसंयतका उपलब्ध हुआ ।

शंका-नीचेके असंयतादि गुणस्थानोंमें भेजकर अप्रमत्तसंयतका जघन्य अन्तर
क्यों नहीं बताया ?

समाधान-नहीं, क्योंकि, उपशमश्रेणीके सभी गुणस्थानोंके कालोंसे प्रमत्तादि
नीचेके एक गुणस्थानका काल भी संख्यातगुणा होता है ।

उक्त असंयतादि चारों गुणस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्थपुद्गल-
परिवर्तनप्रमाण है ॥ ११ ॥

अब गुणस्थान-परिपाटीसे उत्कृष्ट अन्तरकी प्ररूपणा करते हैं- एक अनादि मिथ्या-
दृष्टि जीवने तीनों करण करके प्रथमोपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करते हुए अनन्त संसार
छेदकर सम्यक्त्व ग्रहण करनेके प्रथम समयमें वह संसार अर्थपुद्गलपरिवर्तनमात्र किया ।
पुनः उपशमसम्यक्त्वके साथ अन्तर्मुहूर्तकाल रह कर (१) उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह
आवलिंयां अवशेष रह जाने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त
हुआ । पुनः मिथ्यात्वके साथ अर्थपुद्गलपरिवर्तन परिश्रमण कर अन्तिम भवमें संयमको,
अथवा संयमासंयमको प्राप्त होकर, कृतकृत्य वेदकसम्यक्त्वकी होकर अन्तर्मुहूर्त-
काल प्रमाण संसारके अवशेष रह जाने पर परिणामोंके निमित्तसे असंयतसम्यग्दृष्टि

१ चत्तयेणाद्वं पुद्गलपरितो देशेनः । स. सि. १, ८.

संसारे परिणामपञ्चण असंजदसम्मादिट्ठी जादो । लद्धमंतरं (२) । पुणो अप्पमत्त-
भावेण संजमं पडिवज्जिय (३) पमत्तापमत्तपरावत्तसहसं कादूण (४) खवगसेडी-
पाओगगविसोहीए विसुज्झिय (५) अपुब्बो (६) अणियट्ठी (७) सुहुमो (८)
खीणो (९) सजोगी (१०) अजोगी (११) होदूण परिणिउदो । एवमेक्कारसेहि
अंतोमुहुत्तेहि ऊणमद्वपोगलपरियट्ठमसजदसम्मादिट्ठीणमुक्कस्संतरं होदि ।

संजदासंजदस्स उच्चदे- एकेण अणादियमिच्छादिट्ठिणा तिणिण करणाणि
कादूण गहिदसम्मत्तपढमसमए सम्मत्तगुणेण अणंतो संसारो छिण्णो अद्वपोगलपरियट्ठ-
मेत्तो कदो । सम्मत्तेण सह गहिदसंजमासंजमेण अंतोमुहुत्तमच्छिय छावलिवावसेसाए
उवसमसम्मत्तद्वाए आसाणं गदो (१) अंतरिदो मिच्छत्तेण अद्वपोगलपरियट्ठं परिभमिय
अपच्छिमे भवे सांसंजमं सम्मत्तं संजमं वा पडिवज्जिय कदकरणिज्जो होदूण परिणाम-
पञ्चण संजमासंजमं पडिवणो (२) । लद्धमंतरं । अप्पमत्तभावेण संजमं पडिवज्जिय (३)
पमत्तापमत्तपरावत्तमहसं कादूण (४) खवगसेडीपाओगविसोहीए विसुज्झिय (५)
अपुब्बो (६) अणियट्ठी (७) सुहुमो (८) खीणकसाओ (९) सजोगी (१०)

होगया । इस प्रकार सूत्रोक अन्तरकाल प्राप्त हुआ (२) । पुनः अप्पमत्त-
भावके साथ संयमको प्राप्त होकर (३) प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी
सहस्रों परावर्तनोंको करके (४) क्षपकश्रेणीके प्रायोग्य विद्युद्विसे विद्युद्ध
होकर (५) अपूर्वकरणसंयत (६) अनिवृत्तिकरणसंयत (७) सूक्ष्मसाम्परायसंयत (८)
क्षीणकपायवीतरागछद्मस्य (९) सयोगिकेवली (१०) और अयोगिकेवली (११) होकर
निर्वाणको प्राप्त हो गया । इस प्रकारसे इन ग्यारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरि-
वर्तनकाल असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

अथ संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने
तीनों करण करके सम्यक्त्व ग्रहण करनेके प्रथम समयमें सम्यक्त्वगुणके द्वारा अनन्त
संसार छेदकर अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण किया । पुनः सम्यक्त्वके साथ ही ग्रहण क्रिये
गये संयमासंयमके साथ अन्तर्मुहूर्तकाल रहकर, उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह
आवलिवा अवशेष रहजाने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हो (१) अन्तरको प्राप्त हो
गया, और मिथ्यात्वके साथ अर्धपुद्गलपरिवर्तन परिश्रमण कर अन्तिम भवमें असंयम-
सहित सम्यक्त्वको, अथवा संयमको प्राप्त होकर कृतकृत्य वेदकसम्यक्त्वो हो, परि-
णामोंके निमित्तसे संयमासंयमको प्राप्त हुआ (२) । इस प्रकारसे इस गुणस्थानका अन्तर
प्राप्त होगया । पुनः अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त होकर (३) प्रमत्त-अप्रमत्त
गुणस्थानसम्बन्धी सहस्रों परावर्तनोंको करके (४) क्षपकश्रेणिके योग्य विद्युद्विसे विद्युद्ध
होकर (५) अपूर्वकरण (६) अनिवृत्तिकरण (७) सूक्ष्मसाम्पराय (८) क्षीणकपाय (९)

अजोगी (११) होदूण परिणिउदो । एवमेक्कारसेहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणमद्वपोगलपरियट्ठ-
मुक्कस्संतरं संजदासंजदस्स होदि ।

पमत्तस्स उच्चदे- एकेण अणादियमिच्छादिट्ठिणा तिणिण करणाणि कादूण
उवसमसम्मत्तं संजमं च जुगवं पडिवज्जत्तेण अणंतो संसारो छिदिओ, अद्वपोगलपरियट्ठ-
मेत्तो कदो । अंतोमुहुत्तमच्छिय (१) पमत्तो जादो (२) । आदी दिट्ठा । छावलिवा-
वसेसाए उवसमसम्मत्तद्वाए आसाणं गंतूणंतरिय मिच्छत्तेणद्वपोगलपरियट्ठं परियट्ठिय
अपच्छिमे भवे सांसंजमसम्मत्तं संजमासंजमं वा पडिवज्जिय कदकरणिज्जो होऊण
अप्पमत्तभावेण संजम पडिवज्जिय पमत्तो जादो (३) । लद्धमंतरं । तदो खवगसेडी-
पाओगो अप्पमत्तो जादो (४) । पुणो अपुब्बो (५) अणियट्ठी (६) सुहुमो (७)
खीणकसाओ (८) सजोगी (९) अजोगी (१०) होदूण पिण्वाणं गदो । एवं दसहि
अंतोमुहुत्तेहि ऊणमद्वपोगलपरियट्ठं पमत्तस्सुक्कस्संतरं होदि ।

अप्पमत्तस्स उच्चदे- एकेण अणादियमिच्छादिट्ठिणा तिणिण वि करणाणि करिय
उवसमसम्मत्तमप्पमत्तगुणं च जुगवं पडिवणणेण छेचूण अणंतो संसारो अद्वपोगल-

सयोगिकेवली (१०) और अयोगिकेवली (११) होकर निर्वाणको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे
इन ग्यारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर
होता है ।

अथ प्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं- एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने तीनों ही
करण करके उपशमसम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त होते हुए अनन्त संसार छेदकर
अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र किया । पुनः उस अवस्थामें अन्तर्मुहूर्त रह कर (१) प्रमत्तसंयत
हुआ (२) । इस प्रकारसे यह अर्धपुद्गलपरिवर्तनकी आवृत्तिगोचर हुई । पुनः उपशम-
सम्यक्त्वके कालमें छह आवलिवा अवशेष रहजाने पर सासादन गुणस्थानको जाकर
अन्तरको प्राप्त होकर मिथ्यात्वके साथ अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल परिश्रमण कर अन्तिम
भवमें असंयमसहित सम्यक्त्वको, अथवा संयमासंयमको प्राप्त होकर कृतकृत्य वेदक-
सम्यक्त्वो हो अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त होकर प्रमत्तसंयत हो गया (३) ।
इस प्रकारसे इस गुणस्थानका अन्तर प्राप्त होगया । पश्चात् क्षपकश्रेणिके प्रायोग्य
अप्रमत्तसंयत हुआ (४) । पुनः अपूर्वकरणसंयत (५) अनिवृत्तिकरणसंयत (६) सूक्ष्म-
साम्परायसंयत (७) क्षीणकपायवीतरागछद्मस्य (८) सयोगिकेवली (९) और अयोगि-
केवली (१०) होकर निर्वाणको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्ध-
पुद्गलपरिवर्तनकाल प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

अथ अप्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं- एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने तीनों ही
करण करके उपशमसम्यक्त्वको और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानको एक साथ प्राप्त होकर
सम्यक्त्व ग्रहण करनेके प्रथम समयमें ही अनन्त संसार छेदकर अर्धपुद्गलपरिवर्तन मात्र

परियद्रुमो पदमममए करो । तत्पुत्रोमुत्तमच्छिय (१) पमत्तो जादो अंतरिदो भिच्छुणेण अद्रुगलपरियद्रुं परियद्रिय अपच्छिमे भेने मम्मत्तं संजमांसजमं वा पडि-
वज्जिय मत्त कम्माणि राभिय अपमत्तो जादो (२) । लद्धमंतरं । पमत्तापमत्तपरावत्त-
महम्मं मादूण (३) अपमत्तो जादो (४) । अपुब्बो (५) अणियद्वी (६) सुहुमो (७)
भीणकमाओ (८) सजोगी (९) अजोगी (१०) होदूण णिव्वाणं गदो । (एवं)
दमहि अंतोमुहुत्तं हि उणमद्रुगलपरियद्रुं (अपमत्तसुकस्तं होदि) ।

चटुण्हसुवसामगणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १२ ॥

अपुब्बस्म तान उच्चदे- सत्तडु जणा बहुआ वा अपुब्बकरणउवसामगद्वए
रीणाए अणियडिउवसामगा वा अपमत्ता वा कालं करिय देवा जादा । एगसमय-
मंतरिदमपुब्बगुणद्वणं । तदो विदियसमए अपमत्ता वा ओदरंता अणियडिणो वा अपुब्ब-
करणउवसामगा जादा । लद्धमेगसमयमंतरं । एवं चेव अणियडिउवसामगाणं सुहुम-
उवसामगाणं उवसंतकमायाणं च जहण्णंतमेगसमओ वत्तव्यो ।

क्रिया । उस अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें अन्तर्मुहूर्त रहकर (१) प्रमत्तसंयत हुआ और
अन्तरको प्राप्त होकर मिथ्यात्वके साथ अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल परिवर्तन कर अन्तिम
भवमें मम्यत्त्व अथवा सयमासयमको प्राप्त होकर दर्शनमोहकी तीन और अनन्तानुबंधीकी
चार. इन सात प्रकृतियोंका क्षण कर अप्रमत्तसंयत हो गया (२) । इस प्रकार अप्रमत्त-
संयतना अन्तरकाल उपलब्ध हुआ । पुनः प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानमें सहस्रों परा-
वर्तनोंको करके (३) अप्रमत्तसंयत हुआ (४) । पुनः अपूर्वकरण (५) अनिवृत्तिकरण (६)
सूक्ष्मसाधारण (७) क्षीणरूपाय (८) सयोगिकवली (९) और अयोगिकवली (१०)
होकर निर्माणको प्राप्त हुआ । इस प्रकार दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल
अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर है ।

उपशमश्रेणीके चारों उपशमकोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? नाना
जीवोंकी अपेक्षा जघन्यमें एक समय अन्तर है ॥ १२ ॥

उनमेंसे पहले अपूर्वकरण उपशमकोंका अन्तर कहते हैं- सात आठ जन, अथवा
गदुत्तसे जीव, अपूर्वकरण गुणस्थानके उपशमककाल क्षीण हो जाने पर अनिवृत्तिकरण उप-
शमक अथवा अप्रमत्तसंयत होकर तथा मरण करके देव हुए । इस प्रकार एक समयके
लिये अपूर्वकरण गुणस्थान अन्तरको प्राप्त होगया । तत्पश्चात् द्वितीय समयमें अप्रमत्त-
संयत, अथवा उतरते हुए अनिवृत्तिकरण उपशमक जीव, अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती
उपशमक होगए । इस प्रकार एक समय प्रमाण अन्तरकाल लब्ध होगया । इसी
प्रकारसे अनिवृत्तिकरण उपशमक, सूक्ष्मसाधारण उपशमक और उपशान्तकराय उप-
शमकोंका एक समय प्रमाण जघन्य अन्तर कहना चाहिए ।

१ चतुर्गुणप्रथममर्त्ता नाताजीवोपेक्षया जघन्येनैक समय । स सि १, ८

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ १३ ॥

तं जघा- सत्तडु जणा बहुआ वा अपुब्बउवसामगा अणियडिउवसामगा अप-
मत्ता वा कालं करिय देवा जादा । अंतरिदमपुब्बगुणद्वणं जाव उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।
तदो अदिक्रंते वासपुधते सत्तडु जणा बहुआ वा अपमत्ता अपुब्बकरणउवसामगा
जादा । लद्धसुकस्तं वासपुधत्तं । एवं चेव सेसतिण्हसुवसामगाणं वासपुधत्तं
वत्तव्यं, विसेसामावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४ ॥

तं जघा- एकको अपुब्बकरणो अणियडिउवसामगो सुहुमउवसामगो उवसंत-
कसाओ होदूण पुणो वि सुहुमउवसामगो अणियडिउवसामगो होदूण अपुब्बउवसामगो
जादो । लद्धमंतरं । एदाओ पंच वि अद्वाओ एकहुं कंदे वि अंतोमुहुत्तमेव होदि ति
जहण्णंतमंतोमुहुत्तं होदि ।

एवं चेव सेसतिण्हसुवसामगाणमेगजीवजहण्णंतं वत्तव्यं । णवरि अणियडि-
उत्त चारों उपशमकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ १३ ॥

जैसे- सात आठ जन, अथवा बहुतसे अपूर्वकरण उपशमक जीव, अनिवृत्तिकरण
उपशमक अथवा अप्रमत्तसंयत हुए और वे मरण करके देव हुए । इस प्रकार यह अपूर्व-
करण उपशमक गुणस्थान उत्कृष्टरूपसे वर्षपृथक्त्वे लिये अन्तरको प्राप्त होगया ।
तत्पश्चात् वर्षपृथक्त्वकालके व्यतीत होनेपर सात आठ जन, अथवा बहुतसे अप्रमत्तसंयत
जीव, अपूर्वकरण उपशमक हुए । इस प्रकार वर्षपृथक्त्व प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त
होगया । इसी प्रकार अनिवृत्तिकरणादि तीनों उपशमकोंका अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण
कहना चाहिए, क्योंकि, अपूर्वकरण उपशमकके अन्तरसे तीनों उपशमकोंके अन्तरमें
कोई विशेषता नहीं है ।

चारों उपशमकोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १४ ॥

जैसे- एक अपूर्वकरण उपशमक जीव, अनिवृत्ति उपशमक, सूक्ष्मसाधारण
उपशमक और उपशान्तकराय उपशमक होकर फिर भी सूक्ष्मसाधारण उपशमक
और अनिवृत्तिकरण उपशमक होकर अपूर्वकरण उपशमक होगया । इस प्रकार अन्त-
र्मुहूर्तकाल प्रमाण जघन्य अन्तर उपलब्ध हुआ । ये अनिवृत्तिकरणसे लगाकर पुनः अपूर्व-
करण उपशमक होनेके पूर्व तकके पांचों ही गुणस्थानोंके कालोंको एकत्र करने पर भी
चह काल अन्तर्मुहूर्त ही होता है, इसलिए जघन्य अन्तर भी अन्तर्मुहूर्त ही होता है ।

इसी प्रकार शेष तीनों उपशमकोंका एक जीवसम्बन्धी जघन्य अन्तर
कहना चाहिए । विशेष यात यह है कि अनिवृत्तिकरण उपशमकके सूक्ष्मसाधारणिक

१ उत्तर्येण वर्षपृथक्त्वम् । स सि १, ८

२ एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त । स. सि, १, ८.

उवसामगस दो सुहुमद्वाओ एगा उवसंतकसायद्वा च जहणंतं होदि । सुहुमउव-
सामगस उवसंतकसायद्वा एक्का चैव जहणंतं होदि । उवसंतकसायस पुण हेद्वा
उवसंतकसायमोदरिय सुहुमसांपराओ अणियद्धिकरणो अपुव्वकरणो अप्पमत्तो होदूण
पमत्तापमत्तपरावत्तसहसं करिय अप्पमत्तो अपुव्वो अणियद्धी सुहुमो होदूण पुणो उवसंत-
कसायगुणद्वानं पडिवणस्स गवद्वासमूहमेत्तमोसुहुत्तमंतरं होदि ।

उक्कस्सेण अद्धपोगलपरियद्धं देसुणं ॥ १५ ॥

अपुव्वस्स ताव उच्चदे- एक्रेण अणादियमिच्छादिट्ठिणा तिणि करणाणि
करिय उवसमसम्मत्तं संजमं च अक्कमेण पडिवणपढमसमए अणंतसंसारं छिंदिय
अद्धपोगलपरियद्धमेत्तं कदेण अप्पमत्तद्वा अंतोसुहुत्तमेत्ता अणुपालिदा (१) । तदो
पमत्तो जादो (२) । नेदगसम्मत्तमुवणमियं (३) पमत्तापमत्तपरावत्तसहसं कादूण (४)
उवसमसेदीपाओगो अप्पमत्तो जादो (५) । अपुव्वो (६) अणियद्धी (७) सुहुमो (८)
उवसंतकसायो (९) पुणो सुहुमो (१०) अणियद्धी (११) अपुव्वकरणो जादो (१२) ।

सम्यन्धी दो अन्तर्मुहूर्तकाल ओर उपशान्तकथायसम्यन्धी एक अन्तर्मुहूर्तकाल, ये तीनों
मिलाकर जघन्य अन्तर होता है । सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामकके उपशान्तकथाय-
सम्यन्धी एक अन्तर्मुहूर्तकाल ही जघन्य अन्तर होता है । किन्तु उपशान्तकथाय उप-
शामकका उपशान्तकथायसे नीचे उतरकर सूक्ष्मसाम्पराय (१) अनिवृत्तिकरण (२)
अपूर्वकरण (३) ओर अप्रमत्तसंयत (४) होकर, प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानसम्यन्धी
सहस्रों परावर्तनोंको करके (५) पुनः अप्रमत्त (६) अपूर्वकरण (७) अनिवृत्तिकरण (८)
ओर सूक्ष्मसाम्परायिक होकर (९) पुनः उपशान्तकथाय गुणस्थानको प्राप्त हुए जीवके
नो अदाओंका सम्मिलित प्रमाण अन्तर्मुहूर्तकाल अन्तर होता है ।

उक्त चारों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्ध-
पुद्गलपरिवर्तन काल है ॥ १५ ॥

इनमेंसे पहले एक जीवकी अपेक्षा अपूर्वकरण गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर कहते
हैं- एक अनादि भिव्यादृष्टि जीवने तीनों ही करण करके उपशामसम्यक्त्व और संयमको
एक साथ प्राप्त होनेके प्रथम समयमें ही अनन्त संसारको छेदकर अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र
करके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अप्रमत्तसंयतके कालका अनुपालन किया (१) । पीछे प्रमत्तसंयत
हुआ (२) । पुनः वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर (३) सहस्रों प्रमत्त-अप्रमत्त परावर्तनोंको
करके (४) उपशामत्रेणिके योग्य अप्रमत्तसंयत होगया (५) । पुनः अपूर्वकरण (६) अनि-
वृत्तिकरण (७) सूक्ष्मसाम्पराय (८) उपशान्तकथाय (९), पुनः सूक्ष्मसाम्पराय (१०)
अनिवृत्तिकरण (११) ओर पुनः अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती होगया (१२) । पश्चात् नीचे

१ उत्तरार्धपुद्गलपीतों देखो । स नि १, ८

२ त्रिपु ' सुपमागि' इति पाठ ।

हेद्वा पडिय अंतर्दिदो अद्धपोगलपरियद्धं परियद्धिदूण अपच्छिमे भवे दंसणत्तिंगं खविय
अपुव्ववसामगो जादो (१३) । लद्धमंतरं । तदो अणियद्धी (१४) सुहुमो (१५)
उवसंतकसाओ (१६) जादो । पुणो पडिवणियत्तो सुहुमो (१७) अणियद्धी (१८)
अपुव्वो (१९) अप्पमत्तो (२०) पमत्तो (२१) पुणो अप्पमत्तो (२२) अपुव्व-
खगो (२३) अणियद्धी (२४) सुहुमो (२५) खीणकसाओ (२६) सजोगी (२७)
अजोगी (२८) होदूण णिव्वुदो । एवमद्वावीसेहि अंतोसुहुत्तेहि ऊणमद्धपोगलपरि-
यद्धमपुव्वकरणसुक्कसंतरं होदि । एवं तिण्हसुवसामगणं । णव्वरि परिवाडीए छव्वीसं
चउवीसं वावीसं अंतोसुहुत्तेहि ऊणमद्धपोगलपरियद्धं तिण्हसुक्कसंतरं होदि ।

चटुण्हं खवग-अजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहणणेण एगसमयं ॥ १६ ॥

तं जहा- सचट्ट जणा अहुत्तरसदं वा अपुव्वकरणखवगा एकस्मिह चैव समए
सव्वे अणियद्धिखवगा जादा । एगसमयमंतरिदमपुव्वगुणद्वानं । त्रिदियसमए सचट्ट
जणा अहुत्तरसदं वा अप्पमत्ता अपुव्वकरणखवगा जादा । लद्धमंतरमेगसमओ । एवं
गिरकर अन्तरको प्राप्त हुआ और अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल प्रमाण परिवर्तन करके अन्तिम-
भयमें दर्शनमोहनीयकी तीनों प्रकृतियोंका क्षयण करके अपूर्वकरण उपशामक हुआ (१३) ।
इस प्रकार अन्तरकाल उपलब्ध होगया । पुनः अनिवृत्तिकरण (१४) सूक्ष्मसाम्प-
रायिक (१५) और उपशान्तकथाय उपशामक होगया (१६) । पुनः लौटकर सूक्ष्मसाम्प-
रायिक (१७) अनिवृत्तिकरण (१८) अपूर्वकरण (१९) अप्रमत्तसंयत (२०) प्रमत्तसंयत (२१)
पुनः अप्रमत्तसंयत (२२) अपूर्वकरण क्षपक (२३) अनिवृत्तिकरण क्षपक (२४) सूक्ष्मसाम्प-
रायिक क्षपक (२५) क्षीणकथाय क्षपक (२६) सयोगिकेवली (२७) और अयोगिकेवली (२८)
होकर निर्वाणको प्राप्त हुआ । इस प्रकार अर्द्धाईस अन्तर्मुहूर्तसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन-
काल अपूर्वकरणका उत्कृष्ट अन्तर होता है । इसी प्रकारसे तीनों उपशामकोंका अन्तर
जानना चाहिये । किन्तु विशेष बात यह है कि परिणतीक्रमसे अनिवृत्तिकरण उप-
शामकके छव्वीस, सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकके चौवीस और उपशान्तकथायके वाईस
अन्तर्मुहूर्तसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल तीनों उपशामकोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

चारों क्षपक और अयोगिकेवलीका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी
अपेक्षा जघन्यसे एक समय होता है ॥ १६ ॥

जैसे- सात आठ जन, अथवा अधिकसे अधिक एक सौ आठ अपूर्वकरण क्षपक
एक ही समयमें सबके सब अनिवृत्तिकरण होगये । इस प्रकार एक समयके लिए अपूर्व-
करण गुणस्थान अन्तरको प्राप्त होगया । द्वितीय समयमें सात आठ जन, अथवा एक
सौ आठ अप्रमत्तसंयत एक साथ अपूर्वकरण क्षपक हुए । इस प्रकारसे अपूर्वकरण क्षपकका
एक समय प्रमाण अन्तरकाल उपलब्ध होगया । इसी प्रकारसे दोष गुणस्थानोंका भी

१ चतुर्णां क्षपकाणामयोगेवलीनां च नानाजीवापेक्षया जघन्येनैक मयय । स ति १, ८

मेसगुणद्वयानं वि' अंतरमेसमयो वत्तव्यो ।

उक्कस्सेण छम्मासं' ॥ १७ ॥

तं जथा- सत्तद्ध जणा अट्टत्तरसदं वा अपुव्वकरणसवगा अणियद्विखवा जादा । अंतरिदमपुव्वसवगुणद्वयं उक्कस्सेण जाव छम्मासा वि । तदो सत्तद्ध जणा अट्टत्तरसदं वा अपपमचा अपुव्वसवगा जादा । लद्धं छम्मासुक्कस्संतरं । एवं सेसगुणद्वयानं वि छम्मायुक्कस्संतरं वत्तव्यं ।

एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं' ॥ १८ ॥

कुदो ? सगगणं पदणाभावा ।

सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं' ॥ १९ ॥

कुदो ? सजोगिकेवलिविरिहिकालाभावा ।

एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं' ॥ २० ॥

अन्तरकाल एक समय प्रमाण कहना चाहिये ।

चारों क्षपक और अयोगिकेवलीका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तरकाल छह मास है ॥ १७ ॥

जैसे- सात आठ जन, अथवा एक सौ आठ अपूर्वकरणक्षपक जीव अनिष्टुत्ति-करण क्षपक हुए । अत अपूर्वकरणक्षपक गुणस्थान उत्कर्षसे छह मासके लिए अन्तरको प्राप्त होगया । तत्पश्चात् सात आठ जन, अथवा एक सौ आठ अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरणक्षपक हुए । इस प्रकारसे छह मास उत्कृष्ट अन्तरकाल उपलब्ध होगया । इसी प्रकारसे शेष गुणस्थानोंका भी छह मासका उत्कृष्ट अन्तरकाल कहना चाहिये ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त चारों क्षपकोंका और अयोगिकेवलीका अन्तर नहीं होता है, निरंतर है ॥ १८ ॥

क्योंकि, क्षपक श्रेणीवाले जीवोंके पतनका अभाव है ।

सयोगिकेवलियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता है, निरंतर है ॥ १९ ॥

क्योंकि, सयोगिकेवली जिनोंसे विरहित कालका अभाव है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरंतर है ॥ २० ॥

१ अतिरु 'दि' इति पाठः ।

२ उत्तरपेक्ष षण्मासाः । स. सि. १, ८

३ एवजीव प्रति नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८

४ सयोगिकेवलिनो नानाजीवापेक्षया एवजीवापेक्षया व नास्त्यन्तरम् । स. सि. २, ८.

कुदो ? सजोगीणमजोगिभावेण परिणदानं पुणो सजोगिभावेण परिणमणाभावा ।

एवमोधाणुगमो समत्तो ।

आदेसेण गदियाणुवादेण गिरयगदीए गेरइएसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं' ॥ २१ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिहि विरिहिट्ठुद्वीणिं सच्चद्वमणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुतं' ॥ २२ ॥

मिच्छादिट्ठिस्स उच्चेद- एको मिच्छादिट्ठी दिट्ठमगो परिणामपचएण सम्मा-मिच्छत्तं वा सम्मत्तं वा पडिवाजिय सवजहणमंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो मिच्छादिट्ठो जादो । लद्धमंतोमुहुत्तमंतरं । सम्मादिट्ठि पि मिच्छत्तं गेदूण सवजहणेणंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवाजाविय असंजदसम्मादिट्ठिस्स जहणंतरं वत्तव्यं ।

क्योंकि, अयोगिकेवलिरूपसे परिणत हुए सयोगिकेवलियोंका पुनः सयोगिकेवलिरूपसे परिणमन नहीं होता है ।

इस प्रकारसे ओघानुगम समाप्त हुआ ।

आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें, नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरंतर है ॥ २१ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे रहित रत्नप्रभादि पृथिवियों किसी भी कालमें नहीं पायी जाती हैं ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त दोनों गुणस्थानोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २२ ॥ इनमेंसे पहले मिथ्यादृष्टिका जघन्य अन्तर कहते हैं- देखा है मार्गको जिसने ऐसा एक मिथ्यादृष्टि जीव परिणामोंके निमित्तसे सम्यग्मिथ्यात्वको अथवा सम्यक्त्वको प्राप्त होकर, सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल रहकर, पुनः मिथ्यादृष्टि होगया । इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तरकाल लब्ध हुआ । इसी प्रकार किसी एक असंयतसम्यग्दृष्टि नारकीको मिथ्यात्व गुणस्थानमें ले जाकर सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल द्वारा पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त कराकर असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका जघन्य अन्तर कहना चाहिये ।

१ विच्छेपेण गल्लुवादेन नरकगतौ नारकाणां सत्तस्य पृथिवीस्य मिथ्यादृष्टयसमतमग्गदृष्टेनोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८

२ एवजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि' ॥ २३ ॥

तं जहा-मिच्छादिद्विस्स उक्कस्संतरं बुच्चदे। एक्को तिरिक्खो मणुसो वा अट्ठावीस-
संतकम्मिओ अघो सत्तमीए पुढवीए गेरइएसु उववणो छहि पज्जचीहि पज्जत्तयदो (१)
विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय अंतरिदो थोवावसेसे आउए
मिच्छत्तं गदो (४)। लद्धमंतरं। तिरिक्खाउअं वंधिय (५) विस्समिय (६) उवडिदो।
एवं छहि अंतोपुहुत्तेहि उणाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि मिच्छत्तुक्कस्संतरं होदि ।

असंजदसम्मादिद्विस्स उक्कस्संतरं बुच्चदे-एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा अट्ठावीस-
संतकम्मिओ मिच्छादिद्वी अघो सत्तमीए पुढवीए गेरइएसु उववणो। छहि पज्जचीहि
पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवणो (४) संक्किलिद्धो
मिच्छत्तं गंतूणंतदिदो। अवसाणे तिरिक्खाउअं वंधिय अंतोपुहुत्तं विस्समिय विसुद्धो
होएण उवससम्मत्तं पडिवणो (५)। लद्धमंतरं। भूओ मिच्छत्तं गंतूणव्याडिदो (६)।
एवं छहि अंतोपुहुत्तेहि उणाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि असंजदसम्मादिद्वि-उक्कस्संतरं होदि।

मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस
सागरोपम है ॥ २३ ॥

जैसे, पहले मिथ्यादृष्टि नारकीका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं-मोह कर्मकी अट्ठाईस
प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक तिर्यच अथवा मनुष्य, नीचे सातवाँ पृथिवीके नार-
कियोंमें उत्पन्न हुआ, और छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होकर (१), विश्राम ले (२), विद्युद्
हो (३), वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर आयुके थोड़े अवशेष रहने पर अन्तरको प्राप्त हो
मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (४)। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ। पुनः तिर्यच आयुको
बांधकर (५), विश्राम लेकर (६) निकला। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस
सागरोपम काल मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर है।

अत्र असंयतसम्यग्दृष्टि नारकीका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं-मोह कर्मकी अट्ठाईस
कर्मप्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक तिर्यच, अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव नीचे सातवीं
पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ, और छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होकर (१) विश्राम
लेकर (२) विद्युद् होकर (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४)। पुनः संक्लिष्ट हो
मिथ्यात्वको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ। आयुके अन्तर्में तिर्यचायु बांधकर पुन
अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके विद्युद् होकर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (५)। इस
प्रकार इस गुणस्थानका अन्तर लब्ध हुआ। पुन मिथ्यात्वको जाकर नरकसे निकला।
इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपम काल असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट
अन्तर होता है।

१ उ-अरेण पुंन पि मय-दद सत्तदद द्वाविंशति त्रयस्त्रिंश सागरोपमाणि दशोनाणि । स पि १, ८

सासणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं' ॥ २४ ॥

तं जहा-गिरयगदीए द्विदसासणसम्मादिद्विणो सम्माभिच्छादिद्विणो च सव्वे
गुणंतरं गदा। दो वि गुणट्ठाणाणि एगसमयमंतरिदाणि। पुणो विदियसमए के वि
उवससम्मादिद्विणो आसाणं गदा, मिच्छादिद्विणो असंजदसम्मादिद्विणो च सम्मा-
मिच्छत्तं पडिवण्णा। लद्धमंतरं दोण्हं गुणट्ठाणाणमेगसमओ।

उक्कस्सेण पालिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो' ॥ २५ ॥

तं जहा-गिरयगदीए द्विदसासणसम्मादिद्विणो सम्माभिच्छादिद्विणो च सव्वे
अण्णगुणं गदा। दोणि वि गुणट्ठाणाणि अंतरिदाणि। उक्कस्सेण पालिदोवमस्स असंखेज्जदि-
भागमेत्तो दोण्हं गुणट्ठाणाणमंतरकालो होदि। पुणो तेत्तियमेत्तकाले वदिकेत्ते अपपण्णो
कारणीभूदगुणट्ठाणेहिंत्तो दोण्हं गुणट्ठाणाणं संगभे जोदे लद्धमुक्कस्संतरं पालिदोवमस्स
असंखेज्जदिभागो।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंका अन्तर कितने काल होता
है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर होता है ॥ २४ ॥

जैसे-नरकगतिमें स्थित सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि सभी
जीव अन्य गुणस्थानको प्राप्त हुए, और दोनों ही गुणस्थान एक समयके लिए
अन्तरको प्राप्त होगये। पुनः द्वितीय समयमें कितने ही उपशमसम्यग्दृष्टि नारकी जीव
सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए और मिथ्यादृष्टि तथा असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीव
सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हुए। इस प्रकार दोनों ही गुणस्थानोंका अन्तर एक
समय प्रमाण लब्ध होगया।

उक्त दोनों गुणस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग है ॥ २५ ॥

जैसे-नरकगतिमें स्थित सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि, ये
सभी जीव अन्य गुणस्थानको प्राप्त हुए और दोनों ही गुणस्थान अन्तरको प्राप्त होगये।
इन दोनों गुणस्थानोंका अन्तरकाल उत्क्रपसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र होता है।
पुनः उतना काल व्यतीत होनेपर अपने अपने कारणभूत गुणस्थानोंसे उक्त दोनों
गुणस्थानोंके संभव होजानेपर पल्योपमका असंख्यातवां भागप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर
लब्ध होगया।

१ सामादसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाविपेक्षया जघन्यतैकः समयः । स पि १, ८

२ उक्कस्सेण पल्योपमासंख्येयमाणा । स सि १, ८

एगजीवं पडुच्च जहणणे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥ २६ ॥

तं जहा- 'जहा उदेसो तहा णिहेसो' ति णायदो सासणस्स पलिदोवमस्स अमरेज्जदिभागो, सम्माभिच्छाद्विस्स अंतोमुहुत्तं जहणंतरं होदि । दोहं णिदरिसणं- पन्ना गेगडओ अणादियमिच्छादिद्वी उवसमसम्मत्तणओगसादियमिच्छादिद्वी वा तिणि करणाणि ऋदूण उवसमसम्मत्तं पडिवणो । उवसमसम्मत्तेण केचित्तं हि कालमच्छिय आमाणं गंतूण मिच्छत्तं गदो अंतरिदो । पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमत्तकालेण उव्वेलणरंउपहि सम्मत्त-सम्माभिच्छाद्विदोओ सागरोवमपुद्गलादो हेड्डा करिय पुणो तिणि करणाणि कादूण उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय उवसमसम्मत्तद्वए छात्रलियावसेसाए आसाणं गदो । लद्धमंतरं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एक्को सम्माभिच्छादिद्वी मिच्छत्तं सम्मत्तं वा गंतूणंतोमुहुत्तमंतरिय पुणो सम्माभिच्छत्तं पडिवणो । लद्धमंतोमुहुत्त-मंतरं सम्माभिच्छादिद्विस्स ।

उक्त दोनों गुणस्थानोंका जघन्य अन्तर एक जीवकी अपेक्षा पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ २६ ॥

जैसे- जेसा उदेश होता है, उसी प्रकारका निर्देश होता है, इस न्यायके अनुसार सासादनसम्यग्दृष्टिका जघन्य अन्तर पल्योपमका असंख्यातवां भाग, और सम्यग्मिथ्यादृष्टिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

अब क्रमशः सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि, इन दोनों गुणस्थानोंके अन्तरका उदाहरण कहते हैं- एक अनादि मिथ्यादृष्टि नारकी जीव अथवा उपशमसम्यक्त्वके प्रायोग्य सादि मिथ्यादृष्टि जीव, तीनों करणोंको करके उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और उपशमसम्यक्त्वके साथ कितने ही काल रहकर पुनः सासादन गुणस्थानको जाकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार अन्तरको प्राप्त होकर पल्योपमके असंख्यातवै भागमात्र कालसे उठेलना- नांडनोंसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंकी स्थितियोंको सागरोपमपृथक्त्वेसे नीचे अर्थात् कम करके पुनः तीनों करण करके और उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवली काल अवशेष रह जाने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ । इस प्रकार पल्योपमके असंख्यातवै भाग प्रमाण अन्तरकाल उपलब्ध होगया । एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वको अथवा सम्यक्त्वको प्राप्त होकर और वहां पर अन्तर्मुहूर्तका अन्तर देकर पुनः सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टिका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर लब्ध होगया ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूसाणि ॥ २७ ॥

तं जघा- एक्को सादियो अणादिओ वा मिच्छादिद्वी सत्तमपुढवणीणइएसु उव-वणो छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) उवममसम्मत्तं पडिवणो (४) आसाणं गंतूण मिच्छत्तं गदो अंतरिदो । अनासाणे तिरिवलाउअं वंधिय निसुद्धो होदूण उवसमसम्मत्तं पडिवणो । उवसमसरमत्तद्वए एगसमयावसेसाए आसाणं गदो । लद्धमंतरं । तदो मिच्छत्तं गंतूण अंतोमुहुत्तमच्छिय (५) उवद्विदो । एवं पंचहि अंतोमुहुत्तेहि समयाहिएहि ऊणाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि सासणुक्कस्संतरं होदि ।

सम्माभिच्छादिद्विस्स उच्चदे- एक्को तिरिवलो मणुसो वा अट्ठावीमसंतकम्भिओ सत्तमपुढवणीणइएसु उववणो छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) सम्माभिच्छत्तं पडिवणो (४) । पुणो सम्मत्तं मिच्छत्तं वा गंतूण देसूणतेत्तीसाउड्डिमंतरिय मिच्छत्तेणाउअं वंधिय विस्समिय सम्माभिच्छत्तं गदो (५) । तदो मिच्छत्तं गंतूण अंतोमुहुत्तमच्छिय (६) उवद्विदो । छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि सम्माभिच्छत्तुक्कस्संतरं होदि ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागरोपम काल है ॥ २७ ॥

जैसे- एक सादि अथवा अनादि मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होकर (१) विग्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) उपशम-सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४) । पुनः सासादन गुणस्थानमें जाकर मिथ्यात्वको प्राप्त हो, अन्तरको प्राप्त हुआ । आयुके अन्तमें तिर्यच आयुको बांधकर विशुद्ध हो उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुनः उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय अवशेष रहने पर सासा-दन गुणस्थानको प्राप्त हुआ । इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ । पुनः मिथ्यात्वको जाकर अन्तर्मुहूर्त रह (५) निकला । इस प्रकार समयाधिक पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपमकाल सासादन गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर है ।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला एक तिर्यच अथवा मनुष्य सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न होकर छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विग्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (४) । पुनः सम्यक्त्वको अथवा मिथ्यात्वको जाकर देशोन तेतीस सागरोपमप्रमाण आयुस्थितिको अन्तररूपसे विताकर मिथ्यात्वके द्वारा आयुको बांधकर विग्राम ले सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (५) । पश्चात् मिथ्यात्वको प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्त रहकर (६) निकला । इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपमकाल सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

पढमादि जाव सत्तमीए पुढवीए गेरइएसु मिच्छादिट्ठि-असंजद-
सम्मादिट्ठिणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च णत्थि
अंतरं, गिरंतरं ॥ २८ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिगिरिहदसत्तमपुढवीणरइयाणं सच्चकाल-
मणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २९ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठि असंजदसम्मादिट्ठि अण्णगुणं गेदूण सच्चजहणणेण अंतो-
मुहुत्तकालेण पुणो तं चेम गुणं पडिच्चज्जाविदे अंतोमुहुत्तमेत्तत्तल्लभा ।

उक्कस्सेण सागरोवमं तिणिण सत्त दस सत्तारस वावीस तेचीसं
सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३० ॥

एत्थ तिणिण-आदीसु सागरोवमसदो पादेक्कं संबंधणिज्जो । 'जहा उदेसो तहा
णिदेसो' ति पायादो पढमीए पुढवीए देख्खमेगं सागरोवमं, विदियाए देख्खतिणिण
सागरोवमाणि, तदियाए देख्खमत्तसागरोवमाणि, चउत्थीए देख्खदससागरोवमाणि,
प्रथम पृथिवीसे लेकर सातवी पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि और असं-
यतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा कोई अन्तर नहीं
है, निरन्तर है ॥ २८ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे रहित सातों पृथिवियोंमें नार-
कियोंका सर्वकाल अभाव है ।

उक्त दोनों गुणस्थानोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २९ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि, इन दोनोंको ही अन्य गुणस्थानमें
ले जाकर सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त कालसे पुनः उसी गुणस्थानमें पहुचाने पर अन्तर्मुहूर्त
मात्र कालका अन्तर पाया जाता है ।

उक्त दोनों गुणस्थानोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर देशोन एक, तीन,
सात, दश, सत्तरह, वार्डस और तेतीस सागरोपम काल है ॥ ३० ॥

यहा पर तीन आदि संख्याओंमें सागरोपम शब्द प्रत्येक पर सच्चन्धित करना
चाहिए । जेसा उदेस होता है, वैसा निर्देस होता है, इस न्यायसे प्रथम पृथिवीमें देशोन
एक सागरोपम, द्वितीय पृथिवीमें देशोन तीन सागरोपम, तीसरी पृथिवीमें देशोन सात
सागरोपम, चौथीमें देशोन दश सागरोपम, पाचवीमें देशोन सत्तर सागरोपम, छठीमें

१ उत्तरमें एक मि-सत्त-दश-मज्जद-द्वारविषदि-मयसिक्खतागरोपमाणि देजेनानि । स सि १, ८.

पंचमीए देख्खसत्तारससागरोवमाणि, छट्ठीए देख्खवावीससागरोवमाणि, सत्तमीए देख्ख-
तेचीससागरोवमाणि ति वत्तवं । णवरि दोहं पि गुणद्वाराणं सत्तमाए पुढवीए देख्ख-
पमाणं छअंतोमुहुत्तमेत्तं । तं च गिरओधे परूविदमिदि गेह परूविज्जदे । सेसपुढवीसु
मिच्छादिट्ठिणं सग-सगआउट्ठिदीओ चहुहि अंतोमुहुत्तेहि उणाओ । के ते चत्तारि अंतो-
मुहुत्ता ? छ पज्जत्तीओ समाणणे एक्को, विस्समणे विदिओ, त्रिसोहिआऊरणे तदिओ,
अवसाणे मिच्छत्तं गदस्स चउत्थो अंतोमुहुत्तो । असंजदसम्मादिट्ठिणं सेसपुढवीसु सग-
सगआउट्ठिदीओ पंचहि अंतोमुहुत्तेहि उणाओ अंतरं हेदि । तं जधा-एक्को तिरिक्खो
मणुस्सो वा अट्ठावीससंतकम्मिओ पढमादि जाव छट्ठीसु उववण्णो छहि पज्जत्तीहि
पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विमुदो (३) सम्मत्तं पडिचण्णो (४) सच्चलंहुं
मिच्छत्तं गंतूगंतरिदो । सगट्ठिदिमिच्छिय उवसमसम्मत्तं पडिचण्णो (५) सासणं गंतूण-
व्वाट्ठिदो । एव पंचहि अंतोमुहुत्तेहि उणाओ सग-सगट्ठिदीओ सम्मत्तुक्कसत्तरं हेदि ।

देशोन वार्डस सागरोपम और सातवीमें देशोन तेतीस सागरोपम अन्तर कहना चाहिए ।
विशेष बात यह है कि प्रथम और चतुर्थ, इन दोनों गुणस्थानोंका सातवीं पृथिवीमें
देशोनका प्रमाण छह अन्तर्मुहूर्तमात्र है । वह नारकियोंके ओघ वर्णनमें कह आये हैं,
इसलिए यहाँ नहीं कहते हैं । शेष अर्थात् प्रथमसे लगाकर छठी पृथिवीतककी छह पृथि-
वियोंमें मिथ्यादृष्टि नारकियोंका उत्कृष्ट अन्तर चार अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी अपनी
आयुस्थिति प्रमाण है ।

शंका—वे चार अन्तर्मुहूर्त कौनसे हैं ?

समाधान—छहों पर्याप्तियोंके सम्यक् निष्पन्न करनेमें एक, विथाममें दूसरा,
विशुद्धिको आपूरण करनेमें तीसरा, और आयुके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त होनेका
चौथा अन्तर्मुहूर्त है ।

असंयतसम्यग्दृष्टियोंका शेष पृथिवियोंमें पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी अपनी
आयुस्थिति प्रमाण अन्तर होता है । वह इस प्रकार है—मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी
सचावाला कोई एक तिर्यच अथवा मनुष्य प्रथम पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तक कहीं
भी उत्पन्न हुआ, और छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विथाम ले (२) विशुद्ध
हो (३) सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४) पुनः सर्वलघुकालसे मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको
प्राप्त हुआ, और अपनी स्थिति प्रमाण मिथ्यात्वमें रहकर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त
हुआ (५) पुनः सासादन गुणस्थानमें जाकर निकला । इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे
कम अपनी अपनी पृथिवीकी स्थिति वहाके असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर
होता है ।

१ प्रतिपु 'उणादे' इति पाठ ।

सासणसभादिद्वि-सम्मामिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो
होदि, पाणाजीवं पडुच्च जहणणेण एगसमयं ॥ ३१ ॥

एदस्स अत्थो सुगमो ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३२ ॥

जथा गिरओघग्निह पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपरूवणा कदा, तथा एत्थ
नि कादव्या ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो,
अंतोमुहुचं ॥ ३३ ॥

एदं पि सुचं सुगमं चेय, गिरओघग्निह परूविदत्तादो ।

उक्कस्सेण सागरोवमं तिणिण सत्त दस सत्तारस वावीस तेत्तीसं
सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३४ ॥

एदस्स मुत्तस्स अत्थे भणमाणे- सत्तमपुढवीसासणसम्मामिच्छा-

उक्त सातों ही पृथिवियोंके सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकि-
योंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय
है ॥ ३१ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

उक्त पृथिवियोंमें ही उक्त गुणस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवै
भाग है ॥ ३२ ॥

जिस प्रकार नारकियोंके ओघ अन्तरवर्णनमें पल्योपमके असंख्यातवै भागकी
प्ररूपणा की है, उसी प्रकार यहां पर भी करना चाहिए ।

उक्त गुणस्थानोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका
असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३३ ॥

यह सूत्र भी सरल ही है, क्योंकि, नारकियोंके ओघ अन्तरवर्णनमें प्ररूपित
किया जा चुका है ।

सातों ही पृथिवियोंमें उक्त दोनों गुणस्थानोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर
क्रमशः देशोन एक, तीन, सात, दश, सत्तरह, नार्ईस और तेत्तीस सागरोपम है ॥ ३४ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहने पर- सातवीं पृथिवीके सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्य-

दिद्वीणं गिरओघुक्कस्सभंगो, सत्तमपुढविं चैवमास्सिदूण तत्थेदोसिमुक्कस्सपरूवणादो ।
पढमादिछुपुढवीसासणणमुक्कस्से भणमाणे- एकको तिरिक्खो मणुस्सो वा पढमादिछुसु
पुढवीसु उववण्णो । छहि पज्जचीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विस्सुदो (३)
उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिऊण आसाणं गदो (४) मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो । सग-सगुक्कस्स-
द्विदीओ अच्चिय अवसाणे उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो उवसमसम्मत्तद्वाए एगसमयाव-
सेसाए सासणं गंतूणुव्वदिदो । एवं समयाहियचदुहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाओ सग-
सगुक्कस्सद्विदीओ सासणाणुक्कस्संतरं होदि ।

एदसिं सम्मामिच्छादिद्वीणं उच्चदे- एकको अट्टावीसंतकम्मिओ अपिदणे-
इएसु उववण्णो छहि पज्जचीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विस्सुदो (३) सम्मा-
मिच्छत्तं पडिवण्णो (४) मिच्छत्तं सम्मत्तं वा गंतूणंतरिदो । सगद्विदिमिच्छिय सम्मा-
मिच्छत्तं पडिवण्णो (५) । लद्धमंतरं । मिच्छत्तं सम्मत्तं वा गंतूण उव्वदिदो (६) । छहि

मिथ्यादृष्टि नारकियोंका उत्कृष्ट अन्तर नारकसामान्यके उत्कृष्ट अन्तरके समान है, क्योंकि,
ओघवर्णनमें सातवीं पृथिवीका आश्रय लेकर ही इन दोनों गुणस्थानोंकी उत्कृष्ट अन्तर-
प्ररूपणा की गई है । प्रथमादि छह पृथिवियोंके सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर
कहने पर-एक तिर्यंच अथवा मनुष्य प्रथमादि छह पृथिवियोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्ति-
योंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होकर
सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ (४) । फिर मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त होगया ।
पुनः अपनी अपनी पृथिवियोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण रह कर आयुके अन्तमें उपशमसम्य-
क्त्वको प्राप्त हुआ । उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय अवशेष रह जाने पर सासादन
गुणस्थानको प्राप्त होकर निकला । इस प्रकार एक समयसे अधिक चार अन्तर्मुहूर्तोंसे
कम अपनी अपनी पृथिवीकी उत्कृष्ट स्थिति उस उस पृथिवीके सासादनसम्यग्दृष्टियोंका
उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

अब इन्हीं पृथिवियोंके सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं-
मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य विच-
क्षित पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम
ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (४) । पुनः मिथ्यात्वको अथवा
सम्यक्त्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ, और जिस गुणस्थानको गया उसमें अपनी
आयुस्थितिप्रमाण रह कर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (५) । इस प्रकार अन्तरकाल प्राप्त
होगया । पुनः मिथ्यात्वको अथवा सम्यक्त्वको प्राप्त होकर निकला (६) । इन छहों

अंतोमुहुत्तेहि उणाओ सग-सगुक्कस्सट्ठिदीओ सम्मामिच्छत्तुक्कस्संतं होदि । सव्व-
गदीहिंतो सम्मामिच्छादिट्ठिणिसरणकमो वुच्चदे । तं जहा—जो जीवो सम्मादिट्ठी होदूण
आउअं वंधिय सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जदि, सो सम्मत्तेणव निप्पिददि । अह मिच्छादिट्ठी
होदूण आउअं वंधिय जो सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जदि, सो मिच्छत्तेणव निप्पिददि ।
कधमेदं णव्वदे ? आहरियपरंरागदुवदेसादो ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो
होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३५ ॥

सुगमेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३६ ॥

कुदो ? तिरिक्खमिच्छादिट्ठिमणगुणं णेदूण सव्वजहणेण कालेण पुणो तस्सेव
गुणस्स तस्मि ढोहदे अंतोमुहुत्तंरुलंभा ।

अन्तर्मुहूर्तसे कम अपनी अपनी पृथिवीकी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण नारकी सम्यग्मिथ्या-
दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

अब सर्व गतियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके निकलनेका क्रम कहते हैं । वह इस
प्रकार है—जो जीव सम्यग्दृष्टि होकर ओर आयुको बांधकर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होता
है, यह सम्यक्त्वके साथ ही उस गतिसे निकलता है । अथवा, जो मिथ्यादृष्टि होकर
ओर आयुको बांधकर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होता है, वह मिथ्यात्वके साथ ही
निकलता है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आचार्यपरम्परागत उपदेशसे जाना जाता है ।

तिर्यच गतिमें, तिर्यचोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना
जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त
है ॥ ३६ ॥

स्मॉकि, तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीवकी अन्य गुणस्थानमें ले जाकर सर्वजघन्य कालसे
पुनः उसी गुणस्थानमें लोटा ले जानेपर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर प्राप्त होता है ।

१ गर्भ का निष्ठ वा परिचरिय मतदि नियमेण ॥ सम्यग्मिच्छाणिमेस जहिं आउण पुा नद ।
गहिं माणे नर-उपुचदो नि य न सिममि ॥ गो जी २३, २४

२ निर्मलनो नित्ता निष्पादहेर्नानाजीवापेक्षा नात्तत्तस्स । स सि १, ८.

३ पृच्छीर नति जस्येनान्मुहूर्तं । स सि १, ८

उक्कस्सेण तिणि पल्लिदोवमाणि देसूणाणि ॥ ३७ ॥

णिदरिसणं—एको तिरिक्खो मणुस्सो वा अट्ठावीसंतकम्मिओ तिपल्लिदोवमाउ-
ट्ठिदिएसु कुक्कुड-मक्कडादिएसु उववण्णो, वे मासे गब्भे अच्छदूण णिक्खंतो ।

एत्थ वे उवदेसा । तं जहा—तिरिक्खेसु वेमास-मुहुत्तपुधत्तस्सुवरि सम्मत्तं
संजमासंजमं च जीवो पडिवज्जदि । मणुसेसु गब्भादिअट्ठवस्सेसु अंतोमुहुत्तव्वहिएसु
सम्मत्तं संजमं संजमासंजमं च पडिवज्जदि चि । एसा दक्खिणपडिवत्ती । दक्खिणं
उज्जुवं आहरियपरंरागदमिदि एयट्ठो । तिरिक्खेसु तिणिपक्ख-तिणिगदिवस-अंतोमुहुत्त-
स्सुवरि सम्मत्तं संजमासंजमं च पडिवज्जदि । मणुसेसु अट्ठवस्साणमुवरि सम्मत्तं संजमं
संजमासंजमं च पडिवज्जदि चि । एसा उत्तरपडिवत्ती । उत्तरमणुज्जुवं आहरियपरंराग-
णागदमिदि एयट्ठो ।

पुणो मुहुत्तपुधत्तेण विसुट्ठो वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो । अवसाणे आउअं वंधिय
मिच्छत्तं गदो । पुणो सम्मत्तं पडिवज्जिय कालं कादूण सोहम्मीसाणदेवेसु उववण्णो ।
आदिछेहि मुहुत्तपुधत्तव्वहिय-वेमासेहि अवसाणे उवलद्ध-वेअंतोमुहुत्तेहि य ऊणाणि तिणि

तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन
परलोपम है ॥ ३७ ॥

इसका उदाहरण—मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक तिर्यच
अथवा मनुष्य तीन परलोपमकी आयुस्थितिवाले कुक्कुट-मर्कट आदिमें उत्पन्न हुआ और
दो मास गर्भमें रहकर निकला ।

इस विषयमें दो उपदेश हैं । वे इस प्रकार हैं—तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ जीव,
दो मास और मुहूर्त-युक्त्वसे ऊपर सम्यक्त्व और संयमासंयमको प्राप्त करता है ।
मनुष्योंमें गर्भकालसे प्रारंभकर, अन्तर्मुहूर्तसे अधिक आठ वर्षोंके व्यतीत हो जाने-
पर सम्यक्त्व, संयम और संयमासंयमको प्राप्त होता है । यह दक्षिण प्रतिपत्ति है ।
दक्षिण, क्रजु और आचार्यपरम्परागत, ये तीनों शब्द एकार्थक हैं । तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ
जीव तीन पक्ष, तीन दिवस और अन्तर्मुहूर्तके ऊपर सम्यक्त्व और संयमासंयमको प्राप्त
होता है । मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ जीव आठ वर्षोंके ऊपर सम्यक्त्व, संयम और संयमा-
संयमको प्राप्त होता है । यह उत्तर प्रतिपत्ति है । उत्तर, अजु और आचार्यपरम्परासे
अनागत, ये तीनों एकार्थवाची हैं ।

पुनः मुहूर्तयुक्त्वसे विमुक्त होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पश्चात् अपनी
आयुके अन्तमें आयुको बांधकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त हो,
काल करके सौधर्म पेशान देवोंमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार आदिके मुहूर्तयुक्त्वसे
अधिक दो मासोंसे और आयुके अवसानमें उपलब्ध दो अन्तर्मुहूर्तसे कम तीन

पलिदोमसाणि मिच्छतुक्कस्तंरं होदि ।

सासणसम्मादिट्ठिपहुडि जाव संजदासंजदा ति ओधं ॥ ३८ ॥

कृदो ? ओधचदुगुणद्वयणगणगेजजीव-जहणुक्कस्तंरकालेहिं तो तिरिक्कसगदिचदु-
गुणद्वयणगणगेजजीव-जहणुक्कस्तंरकालाणं भेदाभावा । तं जहा-सासणसम्मादिट्ठिणीं
पाणाजीवं पडुच्च जहणणेण एगमसओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

एतत् अंतरमाहपज्जाणापण्डुमप्यावहुगं उच्चदे-संखेत्योवा सासणसम्मादिट्ठि-
रामी । तस्सेन कालो पाणाजीवगदो असंखेज्जगुणो । तस्सेन अंतरमसंखेज्जगुणं । एदमप्या-
वहुगं ओधादिसव्यमगणामु सासणाणं पडंजिदव्वं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एदस्स
कालम्मा माहणउवाप्सो उच्चदे । तं जहा-तस्सेसु अचिद्धूण जेण सम्मत्त-सम्मा-
मिच्छत्ताणि उब्बेल्लिदाणि सो सागरोपमपुथत्तेण मम्मत्त-सम्मामिच्छत्तद्धिसंत-
क्रमेण उवसममम्मत्तं पडिज्जदि । एदम्हादो उवरिमासु ट्ठिदीसु जदि सम्मत्तं
गेण्हदि, तो णिच्छगुण वेदगसममत्तमेव गेण्हदि । अथ एइदिएसु जेण सम्मत्त-
पल्योपमकाल मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

तिर्यंचोमें मासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर संयत्तासंयत गुणस्थान तकका अन्तर ओघके
समान है ॥ ३८ ॥

फर्गकि, ओघके इन चार गुणस्थानोंसम्बन्धी नाना और एक जीवके जघन्य और
उत्कृष्ट अन्तरकालोंसे तिर्यंचगतिसम्बन्धी इन्हीं चार गुणस्थानोंसम्बन्धी नाना और एक
जीवके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकालोंका कोई भेद नहीं है । वह इस प्रकार है- सासा-
दनसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे
पल्योपमका असंख्यातवा भाग है ।

यहांपर अन्तरके माहात्म्यको बतलावनेके लिए अल्पबहुत्व कहते हैं- सासादन-
सम्यग्दृष्टिराशि सबसे कम है । नानाजीवगत उसीका काल असंख्यातगुणा है । और
उसीका अन्तर, कालसे असंख्यातगुणा है । यह अल्पबहुत्व ओघादि सभी मार्गणाओंमें
मासादनसम्यग्दृष्टियोंका कहना चाहिए ।

सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे पल्योपमका
असंख्यातवा भाग है । इस कालके साधक उपदेशको कहते हैं । वह इस प्रकार
है- तस जीवोंमें रहकर जिसने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दो प्रकृ-
तियोंका उद्देलन किया है, वह जीव सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थितिके सत्त्वरूप
सागरोपमपृथक्त्वके पश्चात् उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होता है । यदि इससे ऊपरकी
स्थिति रहनेपर सम्यक्त्वको ग्रहण करता है, तो निश्चयसे वेदकसम्यक्त्वको ही प्राप्त
होता है । ओर एकेन्द्रियोंमें जा करके जिसने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्देलना

१ सात्तारनसम्यग्दृष्ट्यादीनां चतुर्णां मामान्योत्तमन्तस्य । स मि १, ८

सम्मामिच्छत्ताणि उब्बेल्लिदाणि, सो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागोपासगोरो-
वममेत्ते सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं ट्ठिदिसंतक्रमे सेसे तस्सेसु विज्जय उवसमसम्मत्तं
पडिज्जदि । एदाहि ट्ठिदीहि ऊणसेसकम्मट्ठिदिव्वेल्लणकालो जेण पलिदोवमस्स
असंखेज्जदिभागो तेण सासणेज्जीवजहणंतरं पि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तं होदि ।

उक्कस्सेण अद्वयगुणपरियट्ठं देखणं । णवरि विसेसो एत्थ अत्थि तं णिस्सायो-
एक्को तिरिक्खो अणादियमिच्छादिट्ठी तिणिण करणाणि करिय सम्मत्तं पडिक्खणपडगसयए
संसारमणंतं छिदिय पोगलपरियट्ठं काऊण उवसमसम्मत्तं पडिक्खणो आसाणं गदो
मिच्छत्तं गंतूणंतरिय (१) अद्वयगुणपरियट्ठं परिभमिय दुच्चरिसे भवे पंचियतिरिक्खेसु
उवज्जिय मणुसेसु आउअं वंधिय तिणिण करणाणि करिय उवसमसम्मत्तं पडिक्खणो ।
उवसमसम्मत्तद्वाए मणुसगदिपाओगआवलिआसंखेज्जदिभागवसेसाए आसाणं गदो ।
लद्धमंतरं । आवलिआए असंखेज्जदिभागमेत्तसासणद्धमच्छिय मदो मणुसो जादो सत्त
मासे गवभे अचिद्धूण णिक्खंतो सत्त वरसाणि अंतोमुहुत्तवमहियपचमासे च गमेदूण (२)
वेदगसम्मत्तं पडिक्खणो (३) अणंताणुवंधी विसंजोइय (४) दंसणमोहणीयं खत्रिय (५)
अपमत्तो (६) पमत्तो (७) पुणो अप्पमत्तो (८) पुणो अपुब्बादिछहि अंतोमुहुत्तेहि
की है, वह पल्योपमके असंख्यातवें भागसे कम सागरोपमकालमात्र सम्यक्त्व और
सम्यग्मिथ्यात्वका स्थितिसत्त्व अवशेष रहनेपर तस जीवोंमें उत्पन्न होकर उपशमसम्य-
क्त्वको प्राप्त होता है । इन स्थितिओंसे कम शेष कर्मस्थिति-उद्देलनकाल चूकि पल्योपमके
असंख्यातवें भाग है, इसलिये सासादन गुणस्थानका एकजीवसम्बन्धी जघन्य अन्तर
भी पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र ही होता है ।

सासादन गुणस्थानका एक जीवसम्बन्धी उत्कृष्ट अन्तर देशोन अर्धपुद्गल-
परिवर्तनप्रमाण है । पर यहां जो विशेष बात है, उसे कहते हैं- अनादि मिथ्या-
दृष्टि एक तिर्यंच तीनों करणोंको करके सम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें
अनन्त संसारको छेदकर और अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण करके उपशमसम्यक्त्वको
प्राप्त हुआ और सासादन गुणस्थानको गया । पुनः मिथ्यात्वको जाकर ओर
अन्तरको प्राप्त होकर (१) अर्धपुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण करके द्विचरम भवमें पंचे-
न्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न होकर और मनुष्योंमें आयुको बांधकर, तीनों करणोंको करके उप-
शमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुनः उपशमसम्यक्त्वके कालमें मनुष्यगतिके योग्य आव-
लीके असंख्यातवें भागमात्र कालके अवशेष रहनेपर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ ।
इस प्रकारसे उक्त अन्तर लब्ध हो गया । आवलीके असंख्यातवें भागमात्र काल सासा-
दन गुणस्थानमें रहकर मरा और मनुष्य होगया । यहांपर सात मास गर्भमें रहकर
निकला तथा सात वर्ष और अन्तर्मुद्गर्तसे अधिक पांच मास वितकर (२) वेदक-
सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (३) । पुनः अनन्ताणुवन्धीरूपायका विसंयोजन करके (४) दर्शन-
मोहनीयका क्षयकर (५) अप्रमत्त (६) प्रमत्त (७) पुनः अप्रमत्त (८) हो, पुनः अपूर्व-

(१४) गिज्वाणं गदो । एवं चोइसअंतोसुहोत्तेहि आवलियाए असंखेज्जदिभागण अब्भहिएहि अट्टवस्सेहि य उणमद्वपोगलपरियट्टमंतरं होदि । एत्थुववज्जंतो अत्थो बुचदे । तं जधा- सासणं पडिवण्णविदियसमए जदि मरदि, तो गियमेण देवगदीए उववज्जदि । एवं जाम आवलियाए असंखेज्जदिभागो देवगदिपाओगो कालो होदि । तदो उवरि मणुसगदिपाओगो आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो कालो होदि । एवं सण्णिपंचिदिय-तिरिक्ख-असण्णिपंचिदियतिरिक्ख-चउरिदिय-तेइंदिय-तेइंदिय-एइंदियपाओगो होदि । एसो गियमो सच्चरय सासणगुणं पडिवज्जमाणं ।

सम्माभिच्छादिट्ठिस्स गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एयसमओ, उक्कस्सेण पलि-दोमस्स असंखेज्जदिभागो । एत्थ दव-कालंतरअप्पावहुगस्स सासणभंगो । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोसुहत्तं, उक्कस्सेण अद्वपोगलपरियट्टं देखणं । गवरि एत्थ त्रिसो उच्चदे- एक्को तिरिक्खो अणादियमिच्छादिट्ठी तिण्णि करणाणि काऊण सम्मत्तं पडि-वणपढमसमए अद्वपोगलपरियट्टमेत्तं संसारं काऊण पढमसम्मत्तं पडिवण्णो सम्मा-भिच्छत्तं गदो (१) मिच्छत्तं गंतूण (२) अद्वपोगलपरियट्टं परियट्टिदूण दुचरिमभवे

करणादि छह गुणस्थानोंसम्यन्धी छह अन्तर्मुहूर्तोंसे (१४) निर्वाणको प्राप्त हुआ । इस प्रकार चोवह अन्तर्मुहूर्तोंसे तथा आवलीके असंख्यातवें भागसे अधिक आठ वर्षोंसे कम अर्धपुल्लपरिवर्तन सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है ।

अब यहांपर उपयुक्त होनेवाला अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है- सासादन गुणस्थानको प्राप्त होनेके द्वितीय समयमें यदि वह जीव मरता है तो नियमसे देवगतिमें उत्पन्न होता है । इस प्रकार आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण काल देवगतिमें उत्पन्न होनेके योग्य होता है । उसके ऊपर मनुष्यगतिके योग्य काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकारसे आगे आगे सक्की पंचेन्द्रिय तिर्यच, असंखी पंचेन्द्रिय तिर्यच, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होने योग्य होता है । यह नियम सर्वत्र सासादन गुणस्थानको प्राप्त होनेवालोंका जानना चाहिए ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे पत्योपमेके असंख्यातवें भागप्रमाण अंतर है । यहां पर द्रव्य, काल और अन्तर सम्बन्धी अत्यवश्य सासादनगुणस्थानके समान है । इसी गुणस्थानका अन्तर एक जीवकी अपेक्षा जगन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे देशोन अर्धपुल्लपरिवर्तन काल है । केवल यहां जो चिन्नेगता है उसे कहते हैं- अनादि मिथ्यादृष्टि एक तिर्यच तीनों करणोंको करके सम्यक्त्वके प्राप्ति होनेके प्रथम समयमें अर्धपुल्लपरिवर्तनमात्र संसारकी स्थितिको करके प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और सम्यग्मिथ्यात्वको गया (१) फिर मिथ्यात्वको आकर (२) अर्धपुल्लपरिवर्तनप्रमाण परिभ्रमण करके द्विचरम भवमें पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें

पंचिदियतिरिक्खेसु उववज्जिय मणुसाउअं बांधिय अवसाणे उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय सम्माभिच्छत्तं गदो (३) । लद्धमंतरं । तदो मिच्छत्तं गदो (४) मणुसेसुववण्णो । उवरि सासणभंगो । एवं सत्तारसअंतोसुहत्तवस्सेहि उणमद्वपोगलपरियट्टं सम्मा-भिच्छत्तुक्कस्संतरं होदि ।

असंजदसम्मादिट्ठिस्स गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं; एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोसुहत्तं, उक्कस्सेण अद्वपोगलपरियट्टं देखणं । गवरि त्रिसो उच्चदे- एक्को अणादियमिच्छादिट्ठी तिण्णि करणाणि काऊण पढमसम्मत्तं पडिवण्णो (१) उवसम-सम्मत्तद्वए छावलिआवसेसाए आसाणं गंतूणतरिदो । अद्वपोगलपरियट्टं परियट्टिदूण दुचरिमभवे पंचिदियतिरिक्खेसु उववण्णो । मणुसेसु वासपुत्ताउअं बांधिय उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो । तदो आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताए वा एवं गंतूण समऊणछावलिय-मेत्ताए वा उवसमसम्मत्तद्वए सेसाए आसाणं गंतूण मणुमगदिपाओगाम्हि मदो मणुसो जादो (२) । उवरि सासणभंगो । एवं पण्णारसेहि अंतोसुहत्तं अन्वभहियअट्ट-वस्सेहि उणमद्वपोगलपरियट्टं सम्मत्तुक्कस्संतरं होदि ।

उत्पन्न होकर मनुष्य आयुको बांधकर अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होकर सम्यग्मिथ्यात्वको गया (३) । इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ । पुनः मिथ्यात्वको गया (४) और मरकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । इसके पश्चात्तका कथन सासादनसम्यग्दृष्टिके समान ही है । इस प्रकार सत्तरह अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्षोंसे कम अर्धपुल्लपरिवर्तनकाल सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

असंयतसम्यग्दृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे देशोन अर्धपुल्लपरिवर्तन प्रमाण अन्तरकाल है । केवल जो विशेषता है वह कही जाती है- एक अनादिमिथ्यादृष्टि जीव तीनों ही करणोंको करके प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१) और उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रह जाने पर सासादन गुणस्थानको जाकर अन्तरको प्राप्त होगया । पश्चात् अर्धपुल्लपरिवर्तन काल परिवर्तित होकर द्विचरम भवमें पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ । पुनः मनुष्योंमें चर्यपृथक्त्वकी आयुको बांधकर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पीछे आवलीके असंख्यातवें भागमात्र कालके, अथवा यहांसे लगाकर एक समय कम छह आवली कालप्रमाण तक, उपशमसम्यक्त्वके कालमें अवशेष रह जानेपर सासा-दन गुणस्थानको जाकर मनुष्यगतिके योग्य कालमें मरा और मनुष्य हुआ (२) । इसके ऊपर सासादनके समान कथन जानना चाहिए । इस प्रकार पन्त्रह अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्षसे कम अर्धपुल्लपरिवर्तनकाल असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

संजदासंजदाणं गाणाजीवं पडुच्च गल्लि अतरं; एगजावं पडुच्च जहणेण अतो-
मुहत्तं, उक्कस्सेण अट्ठपोगलपरियट्ठं देवणं । एत्थ त्रिसो उच्चदे- एकको अणादिय-
मिच्छादिद्वी अट्ठपोगलपरियट्ठस्मादिमए उवमसम्मत्तं संजमासंजमं च जुगवं पडि-
गणो (१) छात्रलियासेमाए उवमसम्मत्तद्वाए आसाणं गंतूणंतिदो मिच्छत्तं गदो ।
अट्ठपोगलपरियट्ठं परिभमिय दूचरिमे भवे पंचिंदियतिरिक्खेसु उपज्जिय उवसमसम्मत्तं
संजमासंजमं च जुगवं पडिगणो (२) । लद्धमंतरं । तदो मिच्छत्तं गदो (३) आउअं
बंधिय (४) त्रिस्समिय (५) कालं गदो मणुसेसु उववणो । उवरि सासणभंगो ।
एवमट्ठारममंतोमुहुत्तत्तभहिय-अट्ठवत्सेहि ऊणमट्ठपोगलपरियट्ठं संजदासंजदुक्कस्संतरं
होदि । तिरिक्खेसु संजमासंजमगहणादो पुव्वमेव मिच्छादिद्वी मणुसाउअं किण्ण वंधा-
निदो ? ण, वद्धमणुसाउमिच्छादिद्विस्स संजमगहणाभावा ।

**पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्ख-
जोणिणीसु मिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिरं कालदो होदि, गाणाजीवं
पडुच्च गल्लि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३९ ॥**

संयतासयतोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, एक जीवकी अपेक्षा
जगन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ कम अर्धपुलपरिवर्तनकाल अन्तर है । यहांपर
जो विशेषता है उसे कहते हैं- एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव अर्धपुलपरिवर्तनके आदि
समयमें उपरामसम्यक्त्वको और संयमासंयमको युगपत् प्राप्त हुआ (१) उपरामसम्य-
क्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रह जानेपर सासादनको जाकर अन्तर्को प्राप्त
होता हुआ मिथ्यात्वमें गया । पश्चात् अर्धपुलपरिवर्तनकाल परिश्रमण करके द्विचरम
भवमें पंचेन्द्रियतिर्यचोंमें उत्पन्न होकर उपरामसम्यक्त्वको और संयमासंयमको युगपत्
प्राप्त हुआ (२) । इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ । पश्चात् मिथ्यात्वको गया (३) व आयु
बांधकर (४) विश्राम ले (५) मरकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । इसके ऊपर सासादनका
ही क्रम है । इस प्रकार अट्ठारह अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्षोंसे कम अर्धपुलपरि-
वर्तनकाल संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

शंका—तिर्यचोंमें संयमासंयम ग्रहण करनेसे पूर्व ही उस मिथ्यादृष्टि जीवको
मनुष्य आयुका बंध क्यों नहीं कराया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मनुष्यायुको बाध लेनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके संयमका
ग्रहण नहीं होता है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यचपर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमितियोंमें
मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है,
नित्तर है ॥ ३९ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहत्तं ॥ ४० ॥

कुदो ? तिण्हं पंचिंदियतिरिक्खाणं तिणिण मिच्छादिद्विजीवे दिट्ठमगे सम्मत्तं
गेदूण सन्नजहणकालेण पुणो मिच्छत्ते गेण्हाविदे अंतोमुहुत्तकालुवलंभा ।

उक्कस्सेण तिणिण पालिदेवमाणि देसूणाणि ॥ ४१ ॥

तं जधा- तिणिण तिरिक्खा मणुसा वा अट्ठवीसंतकम्मिया तिरिक्खिदेवमाउ-
ट्ठिदिएसु पंचिंदियतिरिक्खतिगकुक्खुड-मकडादिएसु उववणा, वे मासे गन्धे अन्धिदूण
णिकखंता, मुहुत्तपुधत्तेण विमुद्धा वेदगसम्मत्तं पडिगणा अवसाणे आउअं बंधिय
मिच्छत्तं गदो । लद्धमंतरं । भूओ सम्मत्तं पडिगज्जिय कालं करिय सोधम्मसाणदेवसु
उववणा । एवं वेअंतोमुहुत्तेहि मुहुत्तपुधत्तत्तभहिय-वेमासेहि य ऊणाणि तिणिण पालिदेव-
माणि तिण्हं मिच्छादिद्वीणमुक्कस्संतरं होदि ।

**सासणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिरं कालदो
होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ ४२ ॥**

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंमें एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ४० ॥

क्योंकि, तीनों ही प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यचोंके तीन मिथ्यादृष्टि दृष्टमार्गी
जीवोंको असंयतसम्यक्त्व गुणस्थानमें ले जाकर सर्वजघन्यकालसे पुनः मिथ्यात्वके
ग्रहण करने पर अन्तर्मुहूर्तकालप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्त तीनों ही प्रकारके मिथ्यादृष्टि तिर्यचोंका अन्तर कुछ कम तीन पल्योपम-
प्रमाण है ॥ ४१ ॥

जैसे- मोहकर्मकी अट्ठारह प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाले तीन तिर्यच अथवा
मनुष्य, तीन पल्योपमकी आयुस्थितिवाले पंचेन्द्रिय तिर्यच-विक कुम्भक, मर्कट आदिमें
उत्पन्न हुए व दो मास गर्भमें रहकर निकले और मुहूर्तपृथक्त्वसे विशुद्ध होकर वेदक-
सम्यक्त्वको प्राप्त हुए और आयुके अन्तमें आगामी आयुको बांधकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुए ।
इस प्रकारसे अन्तर प्राप्त हुआ । पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त कर और मरण करके सौधर्म-ईशान
देवोंमें उत्पन्न हुए । इस प्रकार इन दो अन्तर्मुहूर्तोंसे और मुहूर्तपृथक्त्वसे अधिक दो
मासोंसे कम तीन पल्योपमकाल तीनों जातिवाले तिर्यच मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर
होता है ।

उक्त तीनों प्रकारके तिर्यच सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका
अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होता है ॥ ४२ ॥

तं जहा- पंचिदियतिरिक्खतिगसासणसम्मादिट्ठिपवाहो केत्तियं पि कालं णित्तर-
मागदो । पुणो सत्वेसु सासणेसु भिच्छत्तं पडिक्खणेसु एगसमयं सासणगुणविरहो होदण
विदियसमए उवसमसम्मादिट्ठिजीवेसु सासणं पडिक्खणेसु लद्धमेगसमयसंतं । एवं चेव
तिरिक्खतिगसम्माभिच्छादिट्ठिणं पि वत्तव्वं ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ४३ ॥

तं जहा- पंचिदियतिरिक्खतिगसासणसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छादिट्ठिजीवेसु सत्वेसु
अण्णगुणं गदेसु दोण्हं गुणद्वानाणं पंचिदियतिरिक्खतिएसु उक्कस्सेण पलिदोवमस्स
असंखेज्जदिभागमेत्तं होदण पुणो दोण्हं गुणद्वानाणं संभेजे जोदे लद्धमेत्तं होदि ।

**एगजीवं पडुच्च जहणेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो,
अंतोमुहुत्तं ॥ ४४ ॥**

पंचिदियतिरिक्खतिगसासणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, सम्माभिच्छा-
दिट्ठिणं अंतोमुहुत्तमेगजीवजहणंतं होदि । सेसं सुगमं ।

जैसे- पचेन्द्रिय तिर्यच-त्रिक सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका प्रवाह कितने ही काल
तक निरन्तर आया । पुनः सभी सासादन जीवोंके मिथ्यात्वको प्राप्त हो जानेपर एक
समयके लिए सासादन गुणस्थानका विरह होकर द्वितीय समयमें उपशमसम्यग्दृष्टि
जीवोंके सासादन गुणस्थानको प्राप्त होनेपर एक समय प्रमाण अन्तरकाल प्राप्त
होगया । इसी प्रकार तीनों ही जातिवाले तिर्यच सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका भी अन्तर
फटना चाहिये ।

उक्त तीनों प्रकारके तिर्यच सासादन और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका नाना जीवोंकी
अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवै भागप्रमाण है ॥ ४३ ॥

जैसे- तीनों ही जातिवाले पचेन्द्रिय तिर्यच सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्य-
ग्मिथ्यादृष्टि सभी जीवोंके अन्य गुणस्थानको चले जानेपर इन दोनों गुणस्थानोंका
पचेन्द्रिय तिर्यचत्रिकमें उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवै भागमात्र अन्तर होकर पुनः
दोनों गुणस्थानोंके सम्य हो जानेपर उक्त अन्तर प्राप्त हो जाता है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका एक जीवकी अपेक्षा
जन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमके असंख्यातवै भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ४४ ॥

पचेन्द्रिय तिर्यचत्रिक सासादनसम्यग्दृष्टियोंका पल्योपमके असंख्यातवै भाग
और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण एक जीवका जघन्य अन्तर होता है । शेष
सुगम है ।

**उक्कस्सेण तिणि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुथत्तेणवमहि-
याणि ॥ ४५ ॥**

एत्थ ताव पंचिदियतिरिक्खसासणाणं उच्चदे । तं जहा- एकको मणुगो गेहओ
देवो वा एगमयावसेसाए सासणद्वए पंचिदियतिरिक्खेसु उववण्णो । तत्थ पंचा-
णउदिपुव्वकोडिअवमहिदियाणि पलिदोवमाणि गमिय अवसाणे (उवसमसम्मचं धेत्तूण)
एगसमयावसेसे आउए आसाणं गदो कालं करिय देवो जादो । एवं दुसमऊणसगड्ढिदी
सासणुक्कसंतं होदि ।

सम्माभिच्छादिट्ठिणमुच्चदे - एकको मणुसो अट्ठावीससंतकम्मिओ सण्णिपंचि-
दियतिरिक्खसमुच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो छहि पज्जतीहि पज्जत्तयदो (१) त्रिस्सतो
(२) विसुद्धो (३) सम्माभिच्छत्तं पडिक्खणो (४) अंतरिय पंचाणउदिपुव्वकोडिओ
परिभमिय तपिलिदोवमिणसु उववज्जिय अवसाणे पढमसम्मचं धेत्तूण सम्माभिच्छत्तं
गदो । लद्धसंतं (५) । सम्मत्तं वा भिच्छत्तं वा जेण गुणेण आउअं वद्धं तं पडियज्जिय
(६) देवेसु उववण्णो । छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणा सगड्ढिदी उक्करसंतं होदि । एवं पंचि-

उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती तीनों प्रकारके तिर्यचोंका अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वसे
अधिक तीन पल्योपम है ॥ ४५ ॥

इनमेंसे पहले पचेन्द्रिय तिर्यच सासादनसम्यग्दृष्टिका अन्तर कहते हैं । जैसे-
कोई एक मनुष्य, नारकी अथवा देव सासादन गुणस्थानके कालमें एक समय अवशेष
रह जानेपर पचेन्द्रिय तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ । उनमें पंचानेव पूर्वकोटिकालसे अधिक तीन
पल्योपम विताकर अन्तमें (उपशमसम्यक्त्व ग्रहण करके) आयुके एक समय अवशेष रह
जाने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ और मरण करके देव उत्पन्न हुआ । इस
प्रकार दो समय कम अपनी स्थिति सासादन गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

अब तिर्यचत्रिक सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृति-
योंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक मनुष्य, संज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यच सम्मूच्छिम पर्याप्तकोंमें
उत्पन्न हुआ और छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विजुद्ध हो (३) सम्य-
ग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (४) तथा अन्तरको प्राप्त होकर पंचानेव पूर्वकोटि कालप्रमाण
उन्हीं तिर्यचोंमें परिधामण करके तीन पल्योपमको आयुवाले तिर्यचोंमें उत्पन्न होकर और
अन्तमें प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहण करके सम्यग्मिथ्यात्वको गया । इस प्रकार अन्तर प्राप्त
हुआ (५) । पीछे जिस गुणस्थानसे आयु बाधी थी उसी सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्व
गुणस्थानको प्राप्त होकर (६) देवोंमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी
स्थिति ही इस गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर है । इसी प्रकार पचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्तकोंका

दियतिरिक्तापज्जचारणं । णत्ति सत्तालीसपुव्वकोडीओ तिणिण पल्लोवमाणि च पुव्वुत्त-
दोमपयल्लोवमाणि च य उणाणि उक्कस्सत्तरं होदि । एवं जोणिणीसु नि । णत्ति सम्मा-
भिच्छादिद्विउक्कस्सम्हि अत्थि विससो । उच्चदे- एक्को गेरइओ देवो वा मणुसो वा
अट्ठावीसन्तकम्मिओ पंचिदियतिरिक्तापज्जचारणि कुम्भकुड-मक्कडेसु उववण्णो वे मासे गब्बे
अच्छिय णिस्सन्तो मुहुत्तपुव्वत्तेण त्रिसुद्धो सम्माभिच्छत्तं पडिवण्णो । पण्णारस पुव्व-
कोडीओ परिभमिय तुरेसु उववण्णो । मम्मत्तेण वा भिच्छत्तेण वा अच्छिय अवसाणे
सम्माभिच्छत्तं गदो । लद्धमंतरं । जेण गुणेण आउअं वद्धं, तेणेव गुणेण मदो देवो
जादो । दोहि अंतोमुहुत्तेहि मुहुत्तपुव्वत्ताहिय-वेमासेहि य उणाणि पुव्वकोडिपुव्वत्तम्भहिय-
तिणिण पल्लोवमाणि उक्कस्सत्तरं होदि । सम्मुच्छिमेसुपाइय सम्माभिच्छत्तं किण्ण
पडिवज्जाविदो ? ण, तत्थ इत्थिवेदाभावा । सम्मुच्छिमेसु इत्थि-पुरिसेवेदा किमहं ण
होति ? सन्नन्दो चेय ।

असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं
पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ४६ ॥

उत्तरुप अन्तर जानना चाहिए । विशेषता यह है कि सैतालीस पूर्वकोटियां और पूर्वोक्त
दो समय और उग्र अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तीन पल्लोपमकाल इनका उत्तरुप अन्तर होता है ।
इसी प्रकार योनिमतिर्योका भी अन्तर जानना चाहिए । केवल उनके सम्यग्मिथ्यादृष्टि-
सम्यग्धी उत्तरुप अन्तरमें विशेषता है, उसे कहते हैं- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी
सत्ता ररानेवाला एक नारकी, देव अथवा मनुष्य, पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती कुम्भकुट,
मर्तद आदिमें उत्पन्न हुआ, दो मास गर्भमें रहकर निकला व मुहूर्तपृथक्त्वसे विशुद्ध
होकर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । (पश्चात् मिथ्यात्वमें जाकर) पन्द्रह पूर्वकोटि-
कालप्रमाण परिभ्रमण करके देवकुल, उत्तरकुल, इन दो भोगभूमियोंमें उत्पन्न हुआ । वहां
सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्वके साथ रहकर आयुके अन्तमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ ।
इस प्रकार अन्तर प्राप्त होगया । पश्चात् जिस गुणस्थानसे आयुको वांछा था उसी
गुणस्थानसे मरकर देव हुआ । इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्त और मुहूर्तपृथक्त्वसे अधिक दो
मासोंसे हीन पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्लोपमकाल उत्तरुप अन्तर होता है ।

शंका—सम्मूर्च्छिम तिर्यचोंमें उत्पन्न कराकर पुनः सम्यग्मिथ्यात्वको क्यों नहीं
प्राप्त कराया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सम्मूर्च्छिम जीवोंमें स्वीवेदका अभाव है ।

शंका—सम्मूर्च्छिम जीवोंमें स्वीवेद और पुरुषवेद क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान—स्वभावसे ही नहीं होते हैं ।

उक्त तीनों असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यचोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना
जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ४६ ॥

१ प्रतिगु '४' इति पाठो नास्ति ।

कुदो ? अरांजदसम्मादिट्ठिविरिहदपंचिदियतिरिक्तापज्जचारणं सव्वद्वमणुवलंभा ।
एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ४७ ॥

कुदो ? पंचिदियतिरिक्तापज्जचारणं अरांजदसम्मादिट्ठीणं दिट्ठमगाणं अण्णारुणं पडि-
वज्जिय अइदहरकालेण पुणरागयाणमतोमुहुत्तंतरुवलंभा ।

उक्कस्सेण तिणिण पल्लोवमाणि पुव्वकोडिपुव्वत्तेणम्भहियाणि
॥ ४८ ॥

पंचिदियतिरिक्तापज्जचारणं ताव उच्चदे- एको मणुसो अट्ठावीसन्त-
कम्मिओ सण्णिपंचिदियतिरिक्तापज्जचारणं उववण्णो छहि पज्जत्तीहि पज्जत्त-
यदो (१) विस्सतो (२) त्रिसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो (४) संकलिद्धो
भिच्छत्तं गंतूणंतरिय पंचाणउदिपुव्वकोडीओ गमेदूण तिपल्लोवमाउट्ठिदिसुववण्णो
ओवावसेसे जीविए उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो । लद्धमंतरं (५) । तदो उवमसम्मत्तद्वए
छ आवलियाओ अत्थि ति आसाणं गंतूण देवो जादो । पंचहि अंतोमुहुत्तेहि उणाणि
पंचाणउदिपुव्वकोडिअम्भहियाणि पल्लोवमाणि पंचिदियतिरिक्तापज्जचारणं अरांजदसम्मादिट्ठीणं

क्योंकि, असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे विरहित पंचेन्द्रिय तिर्यचत्रिक किसी भी
कालमें नहीं पाये जाते हैं ।

उक्त तीनों असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यचोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर
अन्तर्मुहूर्त है ॥ ४७ ॥

क्योंकि, देखा है मार्गको जिन्होंने पेसे तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यच
असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके अन्य गुणस्थानको प्राप्त होकर अत्यल्प कालसे पुनः उसी गुण-
स्थानमें आनेपर अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्त तीनों असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यचोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्तरुप अंतर
पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्लोपमकाल है ॥ ४८ ॥

पहले पंचेन्द्रिय तिर्यच असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी
अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक मनुष्य, संक्षीपंचेन्द्रियतिर्यच सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें
उत्पन्न हुआ व छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विधाम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदक-
सम्यक्त्वको प्राप्त हो (४) संक्षिप्त हो मिथ्यात्वमें जाकर व अंतरको प्राप्त होकर पंचा-
श्रवे पूर्वकोटियां विताकर तीन पल्लोपमकी आयुस्थितिवाले उत्तम भोगभूमियां तिर्यचोंमें
उत्पन्न हुआ और जीवनके अल्प अवशेष रहने पर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । इस
प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ (५) । पश्चात् उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष
रह जानेपर सासादन गुणस्थानमें जाकर मरा और देव हुआ । इस प्रकार पंच अन्त-
र्मुहूर्तोंसे कम पंचाश्रये पूर्वकोटियोंसे अधिक तीन पल्लोपम प्रमाणकाल पंचेन्द्रिय तिर्यच

उक्तसंतरं होदि ।

पंचिदितिरिक्खपज्जत्तएसु एवं चेव । गवरि सत्तालीसपुव्वकोडीओ अहियाओ ति भाणिदव्वं । पंचिदितिरिक्खजोणिणीसु वि एवं चेव । गवरि कोच्छि विससो अत्थि, तं पख्वेमो । तं जहा- एकको अट्ठवीससत्तकम्मिओ पंचिदितिरिक्खजोणिणीसु उववणो । दोहि मासेहि गन्नादो गिक्खमिय मुहुत्तपुधत्तेण वेदगसम्मत्तं पडिवणो (१) संकिलिद्धो मिच्छत्तं गंतूणतरिय पण्णारस पुव्वकोडीओ भमिय तिपल्लोवमाउड्ढिदिएसु उप्पणो । असणो उवससम्मत्तं गदो । लद्धमंतरं (२) । छावलियावसेसाए उवससम्मत्तच्चाए आमाणं गदो मदो देवो जादो । दोहि अंतोमुहुत्तेहि मुहुत्तपुधत्तब्बहिय-वेमासेहि य उणा सगड्ढिदी असंजदसम्मादिट्ठिणिमुक्कसंतरं होदि ।

संजदासंजदानमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ४९ ॥

कुदो ? संजदासंजदापरिहियं पंचिदितिरिक्खजोणिणीसु सव्वदाणुलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ५० ॥

असंयतसम्यग्दृष्टिओंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्तकोंमें भी इसी प्रकार अन्तर होता है । विशेषता यह है कि इनके सत्तालीस पूर्वकोटिया ही अधिक होती है, ऐसा कहना चाहिए । पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमतियोंमें भी इसी प्रकार अन्तर होता है । केवल जो थोड़ी विशेषता है उसे कहते हैं । यह इस प्रकार है- मोहकर्मकी अट्ठवीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक जीव पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमतियोंमें उत्पन्न हुआ । दो मासके पश्चात् गर्भसे निकलकर मुहूर्तपृथक्स्वमें वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१) व संक्रिय हो मिथ्यात्वमें जाकर अन्तरको प्राप्त हो पन्द्रह पूर्वकोटिकाल परिभ्रमण करके तीन पल्लोपमकी आयुस्थितिवाले भोगभूमियोंमें उत्पन्न हुआ । यहाँ आयुके अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ (२) । पुनः उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलिया अवशेष रह जाने पर सासा-दन गुणस्थानको प्राप्त हुआ और मरकर देव होगया । इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्तोंसे और मुहूर्तपृथक्स्वसे अधिक दो मासोंसे कम अपनी स्थिति असंयतसम्यग्दृष्टि योनिमती तिर्यचोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

तीनों प्रकारके संयतासंयत तिर्यचोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ४९ ॥

स्मृतिक, संयतासंयतोंसे रहित तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यच जीवोंका किसी भी कालमें अभाव नहीं है ।

उन्हीं तीनों प्रकारके तिर्यच संयतासंयत जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक अन्तर्मुहूर्त है ॥ ५० ॥

कुदो ? पंचिदितिरिक्खजोणिणीसंजदासंजदस दिट्ठमग्गस्स अण्णगुणं गंतूण अहद-हरकालेण पुणारागदस्स अंतोमुहुत्तत्तलंभा ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुत्तं ॥ ५१ ॥

तत्थ ताव पंचिदितिरिक्खसंजदासंजदाणं उच्चदे । तं जहा- एकको अट्ठवीस-संतकम्मिओ सणिपंचिदितिरिक्खसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उववणो छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विससंतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं संजमांसजमं च जुगवं पडि-वणो (४) संकिलिद्धो मिच्छत्तं गंतूणतरिय छण्णउदिपुव्वकोडीओ परिभमिय अपच्छिमाए पुव्वकोडीए मिच्छत्तेण सम्मत्तेण वा सोहम्ममदिसु आउअं वंधिय अंतोमुहुत्तावसेसे जीविए संजमांसजमं पडिवणो (५) कालं करिय देवो जादो । पंचहि अंतोमुहुत्तेहि उणाओ छण्णउदिपुव्वकोडीओ उक्कस्संतरं जादं ।

पंचिदितिरिक्खपज्जत्तएसु एवं चेव । गवरि अट्ठेतालीसपुव्वकोडीओ ति भाणिदव्वं । पंचिदितिरिक्खजोणिणीसु वि एवं चेव । गवरि कोइ विससो अत्थि तं भणिस्सामो । तं जहा- एकको अट्ठवीससंतकम्मिओ पंचिदितिरिक्खजोणिणीसु उप्पणो

क्योंकि, देखा है मार्गको जिन्होंने, ऐसे तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यच संयता-संयतके अन्य गुणस्थानको जाकर अतिस्वल्पकालसे पुनः उसी गुणस्थानमें आने पर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण काल पाया जाता है ।

उन्हीं तीनों प्रकारके तिर्यच संयतासंयत जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि-पृथक्त्व है ॥ ५१ ॥

इनमेंसे पहले पंचेन्द्रिय तिर्यच संयतासंयतोंका अन्तर कहते हैं । जैसे- मोह-कर्मकी अट्ठवीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक जीव संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच सम्पूर्णम पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ, व छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्व और समयमांसयमको एक साथ प्राप्त हुआ (४) तथा संक्रिय हो मिथ्यात्वको जाकर और अन्तरको प्राप्त हो छयात्रवे पूर्वकोटिप्रमाण परिभ्रमण कर अन्तिम पूर्वकोटिमें मिथ्यात्व अथवा सम्यक्त्वके साथ सौधर्मदि कल्पोंकी आयुको बांधकर व जीवनके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रह जाने पर संयमांसयमको प्राप्त हुआ (५) और मरण कर देव हुआ । इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे हीन छयात्रवे पूर्वकोटियां पंचेन्द्रिय तिर्यच संयतासंयतोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यच पर्याप्तकोंमें भी इसी प्रकार अन्तर होता है । विशेषता यह है कि इनके अट्ठेतालीस पूर्वकोटिप्रमाण अन्तरकाल कहना चाहिए । पंचेन्द्रिय तिर्यच योनि-मतियोंमें भी इसी प्रकार अन्तर होता है । केवल कुछ विशेषता है उसे कहते हैं । जैसे- मोहकर्मकी अट्ठवीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक जीव पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमतियोंमें

वे मासे गन्धे अन्धिय निर्वसंतो मुहुत्तपुत्रेण विमुद्रो वेदगसम्मत्तं संजमांसजं च जुगवं पडिण्णो (?) । संक्रिद्धो मिच्छत्तं गत्तुण्ठिरिय सोलयपुण्यकोडीओ परिभमिय देसाउअं वंथिय अंतोमुत्तामसे जीविए संजमांसजं पडिण्णो (२) । लद्धमंतरं । मदेो देतो जादो । वेदि अंतोमुद्रुत्तेहि मुहुत्तपुत्रत्तन्महियन्मेसाहे य ऊणाओ सोलहपुण्व-कोडीओ उरुत्तमंतरं होदि ।

**पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि,
णाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ५२ ॥**

सुगमेदं सुत्त ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण खुदाभवगहणं ॥ ५३ ॥

कुदो ? पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तयस्स अण्णसु अपज्जत्तएसु खुदाभवगहणाउ-
ट्टिदीएसु उताज्जिय पडिणियत्तिय आगदस्स खुदाभवगहणमेतत्तल्लंभा ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोगलपरियट्ठं ॥ ५४ ॥

कुदो ? पंचिदियतिरिक्खअपज्जत्तयस्स अणपिदजीवेसु उपपज्जिय आवलियाए उत्पण एआ न दो मास गभंमे रहुरर तिकला, मुहूर्तपुत्रस्त्वसे विशुद्ध होकर, वेदकसम्य-
क्ताओ और सयमासंयमतो एरु साथ प्राप्त हुआ (२) । पुन. सखिए हो मिथ्यात्वको जाकर, अन्तरांगों प्राप्त हो, सोलह पूर्वकोटिप्रमाण परिभ्रमण कर और देवायु बांधकर जीवनने जन्तुमूर्तप्रमाण अवशेष रहनेपर संयमासयमको प्राप्त हुआ (२) । इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ । पञ्चात् मरकर देव हुआ । इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्तों और मुहूर्तपुत्रस्त्वसे अभिरु रो माससे होन सोलह पूर्वकोटिया पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिमित्तियोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तिकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ५२ ॥

यह स्रग सुगम है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तिकोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्षुद्रभ-
ग्रहणप्रमाण है ॥ ५३ ॥

क्योंकि, पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तिकोंका क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण आयुस्थितिवाले अन्य अपर्याप्तिक जीवोंमें उत्पन्न होकर और लौटकर आये हुए जीवका क्षुद्रभवग्रहण-
प्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तिकोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अनन्त-
कालप्रमाण असंख्यत पुद्गलपरिवर्तन है ॥ ५४ ॥

क्योंकि, पंचेन्द्रिय तिर्यच लब्धपर्याप्तिकोंके अविचक्षित जीवोंमें उत्पन्न होकर आव-

असंखेज्जिभागमेत्तपोगलपरियट्ठाणि परियट्ठिय पडिणियत्तिय आगंतूण पंचिदिय-
तिरिक्खापज्जत्तेसु उपपणस्म सुत्तुत्तंत्तल्लंभा ।

एदं गदिं पडुच्च अंतरं ॥ ५५ ॥

जीवद्वयगमिह मगणविसेसिदगुणद्वयानां जहणुक्कस्संतरं वत्तन्वं । अदीदसुत्ते
पुणो मगणाए उत्तमंतरं । तदो णेदं घडदि त्ति आसंक्रिय गंथक्कारो परिहारं भगदि-
एवमेदं गदिं पडुच्च उत्तं सिस्समहविप्फाणट्ठं । तदो ण दोसो त्ति ।

गुणं पडुच्च उभयदो वि गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ५६ ॥

एदस्सत्थो- गुणं पडुच्च अंतरे भणमाणे उभयदो जहणुक्कस्संहितो णाणेग-
जीवेहि वा अंतरं गत्थि, गुणंतरगहणाभावा पत्राहवोच्छेदाभावाच्च ।

**मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिद्विणमंतरं
केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरं-
तरं ॥ ५७ ॥**

लौके असंख्यतर्वे भागमात्र पुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण करके पुनः लौटकर पंचेन्द्रिय
तिर्यच लब्धपर्याप्तिकोंमें उत्पन्न हुए जीवका सूत्रोक्त उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है ।

यह अन्तर गतिकी अपेक्षा कहा गया है ॥ ५५ ॥

यहां जीवस्थानखंडमें मार्गणाविशेषित गुणस्थानोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर
कहना चाहिए । किन्तु, गत सूत्रमें तो मार्गणाकी अपेक्षा अन्तर कहा है और इसलिये
वह यहां घटित नहीं होता है । ऐसी आशंका करके ग्रंथकर्ता उसका परिहार करते हुए
कहते हैं कि यहा यह अन्तर-कथन गतिकी अपेक्षा शिष्योकी बुद्धि विस्तुरित करनेके
लिए किया है, अतः उसमें कोई दोष नहीं है ।

गुणस्थानकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट, इन दोनों प्रकारोंसे अन्तर नहीं है,
निरन्तर है ॥ ५६ ॥

इसका अर्थ- गुणस्थानकी अपेक्षा अन्तर कहने पर जघन्य और उत्कृष्ट, इन दोनों
ही प्रकारोंसे, अथवा नाना जीव और एक जीव इन दोनों अपेक्षाओंसे, अन्तर नहीं है;
क्योंकि, उनके मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके सिवाय अन्य गुणस्थानके ग्रहण करनेका अभाव
है, तथा उनके प्रवाहका कमी उच्छेद भी नहीं होता है ।

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्यपर्याप्तिक और मनुष्यनिर्योमि मिथ्यादृष्टि जीवोंका
अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ५७ ॥

१ मनुष्यगती मनुष्याणां मिथ्यादृष्टेस्तिर्यग्भवत् । म. सि. १, ८.

सुगममंदं सुतं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुतं ॥ ५८ ॥

कुदो ? तिबिहमणुसमिच्छादिद्विस्स दिट्ठमणस्स गुणंतरं पडिवज्जिय अइदहर-
कालेण पडिणियत्तिय आगदस्स सब्बजहण्णेतोमुहुत्तल्लंभा ।

उक्कस्सेण तिणिण पल्लिदोवमाणि देसूणाणि ॥ ५९ ॥

ताव मणुसमिच्छादिद्वीणं उच्चदे । तं जथा- एकको तिरिक्खो मणुस्सो वा
अट्ठवीसंतकम्मिओ तिपल्लिदोवमिएसु मणुसेसु उववण्णो । गव मासे गन्धे अचिच्छदो ।
उत्ताणसेज्जाए अंगुलिआहारेण सत्त, रंगंतो सत्त, अथिरगमणेण सत्त, थिरगमणेण सत्त,
कलसु सत्त, गुणसु सत्त, अण्णे वि सत्त दिवसे गमिय विमुद्धो वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो ।
तिणिण पल्लिदोवमाणि गमेदूण मिच्छत्तं गदो । लद्धमंतरं (१) । सम्मत्तं पडिवज्जिय (२)
मदो देवो जादो । एगणवण्णदिवसव्हियणमहि मासेहि वेअंतोमुहुत्तेहि य ऊणाणि तिणिण
पल्लिदोवमाणि मिच्छनुक्कस्समंतरं जाद । एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणिंसु वत्तवं, भेदाभावा ।

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त तीनों प्रकारके मनुष्य मिथ्यादृष्टियोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर-
अन्तर्मुहूर्त है ॥ ५८ ॥

क्योंकि, दृष्टमार्गी तीनों ही प्रकारके मनुष्य मिथ्यादृष्टिके किसी अन्य गुणस्थानको
प्राप्त होकर अति स्वल्पकालसे लौटकर आजाने पर सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर-
पाया जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके मनुष्य मिथ्यादृष्टियोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर-
कुछ कम तीन पल्योपम है ॥ ५९ ॥

उनमेंसे पहले मनुष्य सामान्य मिथ्यादृष्टिका अन्तर कहते हैं । वह इस प्रकार है-
मोक्षकर्मकी अट्ठार्विन प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक तिर्यच अथवा मनुष्य जीव तीन
पल्योपमकी स्थितिवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । नो मास गर्भमें रहकर निकला । फिर
उत्तानशाय्याने अंगुष्ठनो चूलेते हुए सात, रंगेते हुए सात, अस्थिर गमनसे सात, स्थिर
गमनसे सात, ललाओंमें सात, गुणोंमें सात, तथा और भी सात दिन वितारकर विशुद्ध हो
वेदकमम्पस्त्वको प्राप्त हुआ । पश्चात् तीन पल्योपम वितारकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस
प्रकारसे अन्तर प्राप्त होगया (१) । पीछे सम्यक्त्वको प्राप्त होकर (२) मरा और देव
होगया । इस प्रकार उनचास दिनोंसे अधिक नो मास और दो अन्तर्मुहूर्तसे कम तीन
पल्योपम सामान्य मनुष्यके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर होता है । इसी प्रकारसे मनुष्य
पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें अन्तर कहना चाहिए, क्योंकि, इनसे उनमें कोई भेद नहीं है ।

सासणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो
होदि, णाणजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ६० ॥

कुदो ? तिबिहमणुसेसु द्विदमासणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छादिद्विगुणपरिणदजीवेसु
अणुगुणं गदेसु गुणंतरस्स जहण्णेण एगसमयदंसणादो ।

उक्कस्सेण पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६१ ॥

कुदो ? सासणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छादिद्विगुणद्वुणोहि विणा तिबिहमणुस्साणं
पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तकालमवद्वुणदंसणादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो,
अंतोमुहुतं ॥ ६२ ॥

सासणस्म जहण्णंतरं पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । कुदो ? एत्तिएण कालेण
विणा पढमसम्मत्तगहणपाओगाए सम्मत्त-सम्माभिच्छादिद्वीए सागरोवमपुत्तादो
होद्विमाए उप्पत्तीए अभावा । सम्माभिच्छादिद्विस्स अंतोमुहुत्तं जहण्णंतरं, अणुगुणं

उक्त तीनों प्रकारके मनुष्य सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका
अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर
है ॥ ६० ॥

क्योंकि, तीनों ही प्रकारके मनुष्योंमें स्थित सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्य-
ग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे परिणत सभी जीवोंके अन्य गुणस्थानको चले जानेपर इन गुण-
स्थानोंका अन्तर जघन्यसे एक समय देखा जाता है ।

उक्त मनुष्योंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ ६१ ॥

क्योंकि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके विना तीनों ही
प्रकारके मनुष्योंके पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र काल तक अवस्थान देखा जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः
पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ६२ ॥

सासादन गुणस्थानका जघन्य अन्तर पल्योपमका असंख्यातवा भाग है, क्योंकि,
इतने कालके विना प्रथमसम्यक्त्वके ग्रहण करले योग्य सागरोपमपुत्रत्वसे नीचे
होनेवाली सम्यक्त्वप्रकृति तथा सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी स्थितिनी उत्पत्तिका अभाव
है । सम्यग्मिथ्यादृष्टिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है, क्योंकि, उसका अन्य गुणस्थानको

१ सासादनसम्यग्दृष्टिमिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवोपेक्षया सामान्यम् । स वि १, ८

२ एगजाव प्रति जघन्येन पल्योपमानेयेयमागोडन्तर्मुहूर्तम् । म वि १, ८

गंतूण अंतोमुहुत्तेण पुणारागमुवलंभा ।

उक्कस्सेण तिणिण पल्लोवमाणि पुव्वकोडिपुत्तेणव्भहियाणि
॥ ६३ ॥

मणुमगामणमम्मादिट्ठिणं ताव उच्चदे- एकको तिरिक्खो देवो गेरुओ वा मावणद्वाए एगो ममओ अत्थि ति मणुमो जादो । विदियसमए मिच्छत्तं गंतूण अंतरिय सत्तेतालीयपुव्वकोडिअव्भहियतिणिण पल्लोवमाणि भमिय पच्छा उवसममम्मत्तं गदो । तस्मिं एगो समओ अत्थि ति सामणं गंतूण मदो देवो जादो । दुसमज्जणा मणुसुक्कस्स- विट्ठी' सासणुक्कस्संत्तरं जादं ।

सम्माभिच्छादिट्ठिस्म उच्चदे- एकको अट्ठावीससंतकम्मिओ अण्णगदीदो आगदो मणुमेसु उमण्णो । गव्भादिअट्ठयस्सेसु गदेसु विसुदो सम्माभिच्छत्तं पडिचण्णो (१) । मिच्छत्तं गदो सत्तेतालीसपुव्वकोडीओ गमेदूण तिपल्लोवमिएसु मणुसेसु उववण्णो आउअं वंधिय अमणो सम्माभिच्छत्तं गदो । लद्धमंत्तरं (२) । तदो मिच्छत्त-सम्मत्ताणं जेण आउअं चदं तं गुणं गंतूण मदो देवो जादो (३) । एवं तीहि अंतोमुहुत्तेहि अट्ठवस्सेहि जाकर अन्तमुहुत्तं पुनः आगमन पाया जाता है ।

उक्त मनुष्याका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपर्युथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम- काल है ॥ ६३ ॥

पहले मनुष्य मासादनसम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एक तिर्यच, देव अथवा नारकी जीव सामादन गुणस्थानके कालमें एक समय अवशेष रहने पर मनुष्य हुआ । द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको जाकर और अन्तरको प्राप्त होकर सैतालीस पूर्व- कोटियोंने अधिक तीन पल्योपमकाल परिभ्रमणकर पछि उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । उस उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय अवशेष रहनेपर सासादन गुणस्थानको जाकर मरा और देव होगया । इस प्रकार दो समय कम मनुष्यकी उत्कृष्ट स्थिति मासादन गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर होगया ।

अथ मनुष्यसम्यग्मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव अन्य गतिसे आकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भको आदि लेकर आठ वयोंके व्यतीत होने पर विशुद्ध हो सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (१) । पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ, संतालीस पूर्वकोटियां विताकर, तीन पल्योपमकी स्थिति- घाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और आयुको बांधकर अन्तमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे अन्तर लब्ध हुआ (२) । तत्पश्चात् मिथ्यात्व और सम्यक्त्वसे जिसके द्वारा आयु याधी थी, उसी गुणस्थानको जाकर मरा और देव होगया (३) । इस प्रकार तीन

१ उक्तोपेण पीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वेरव्यधिकानि । स सि १, ८.

२ प्राणिगु ' दुसमज्जणा मणुसुक्कस्सदिदी ' इति पाठ ।

य ऊणा सगट्ठिदी सम्माभिच्छलुक्कस्संत्तरं ।

एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीणं पि । णवरि मणुसपज्जत्तेसु तेवसि पुव्वकोडीओ, मणुसिणीसु सत्त पुव्वकोडीओ तिसु पल्लोवमेसु अहियाओ चि वत्तव्वं ।

असंजदसम्मादिट्ठिणमंत्तरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंत्तरं ॥ ६४ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ६५ ॥

कुदो ? तिविहमणुसेसु ट्ठिदअसंजदसम्मादिट्ठिस्स अण्णगुणं गंतूणंतरिय पडिणिय- त्तिय अंतोमुहुत्तेण आगमणुवलंभा ।

उक्कस्सेण तिणिण पल्लोवमाणि पुव्वकोडिपुत्तेणव्भहियाणि
॥ ६६ ॥

मणुसअसंजदसम्मादिट्ठिणं ताव उच्चदे- एकको अट्ठावीससंतकम्मिओ अण्णगदीदो अन्तमुहुत्तं और आठ वयोंसे कम अपनी स्थिति सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर है ।

इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनिर्योका भी अन्तर जानना चाहिए । विशेष चात यह है कि मनुष्यपर्याप्तकोंमें तेवीस पूर्वकोटियां और तीन पल्योपमका अन्तर कहना चाहिए । और मनुष्यनिर्योमें सात पूर्वकोटियां तीन पल्योपमोंमें अधिक कहना चाहिए ।

असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यविकका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ६४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा मनुष्यविकका जघन्य अन्तर अन्तमुहुत्तं है ॥ ६५ ॥

क्योंकि, तीन प्रकारके मनुष्योंमें स्थित असंयतसम्यग्दृष्टिका अन्य गुणस्थानको जाकर अन्तरको प्राप्त हो और लौटकर अन्तमुहुत्तसे आगमन पाया जाता है ।

असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यविकका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपर्युथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम है ॥ ६६ ॥

इनमेंसे पहले मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- अट्ठाईस मोह-

१ अयमपसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवपेक्षया नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

२ एक्कजीवपेक्षया जघन्येनान्तमुहुत्तं । स सि. १, ८.

३ उत्तर्येण पीणि पल्योपमानि पूर्वकोटिपृथक्त्वेरव्यधिकानि । स सि १, ८.

आगदो मनुष्येसु उववण्णो । गम्भादिअट्टवस्सेसु गदेसु विमुद्धो वेदगमम्मत्तं पडिवण्णो (१) । भिच्छत्तं गंतूणंतरिय मत्तेचालीसपुव्वकोडीओ गमेदूण तिपलिदेवमिएसु उववण्णो । तदो वदाउओ संतो उवमसम्मत्तं पडिवण्णो (२) । उवसमसम्मत्तद्वए छ आवलियावेसेसाए साणं गंतूण मदो देवो जादो । अट्टवस्सेहि वोहि अंतोमुद्धुत्तेहि ऊणा सगट्ठिदी असंजद-मम्मादिद्वीणं उक्कस्संतं होदि । एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीणं पि । गवरि तेवीस-सत्त-पुव्वकोडीओ तिपलिदेवमेसु अहियाओ चि वत्तव्वं ।

संजदासंजदपहुडि जाव अपमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालदो होदि, गाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ६७ ॥

मुगणमेदं मुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुद्धुत्तं ॥ ६८ ॥

इदो ? तिविहमणुसेसु द्विदतिगुणद्वयजीवस्स अपणगुणं गंतूणंतरिय पुणो अंतो-मुद्धुत्तेण पौराणगुणस्सागवुल्लभा ।

प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव अन्यगतिसे आया और मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । पुनः गर्भको आदि लेकर आठ वर्षके नीतेनेपर विमुद्ध हो वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१) । पुनः मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो सैतालीस पूर्वकोटियां विताकर तीन पश्योपमवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । तत्पश्चात् आयुको बांधता हुआ उपशमसम्य-त्वको प्राप्त हुआ (२) । उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रहनेपर मात्सावन गुणस्थानको जाकर मरा और देव हुआ । इस प्रकार आठ वर्ष और दो अन्त-मुद्धुत्तोंसे कम अपनी स्थिति असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर है ।

इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनिर्योका भी अन्तर कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि मनुष्यपर्याप्त असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर तेईस पूर्वकोटियां तीन पश्योपममें अधिक तथा मनुष्यनिर्योमें सात पूर्वकोटियां तीन पश्योपममें अधिक होती हैं, ऐसा कहना चाहिए ।

संयतासंयतोंमें लेकर अप्रमत्तसंयतों तकके मनुष्यत्रिकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ६७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा ज्ञान्य अन्तर अन्तर्मुद्धुत्त है ॥ ६८ ॥

क्योंकि, तीन प्रकारके मनुष्योंमें स्थित संयतासंयतादि तीन गुणस्थानवर्ती जीवका अन्य गुणस्थानको जाकर अन्तरको प्राप्त होकर और पुनः लौटकर अन्तर्मुद्धुत्त प्राण पुराण गुणस्थानका होना पाया जाता है ।

१ संतापमदमप्राप्तमदानी नानाजीवसेषा नास्तन्नाए । त मि १, ८

२ पृच्छीत गो^१ ब्रह्मनेमात्तमुद्धुत्तं । त मि १, ८.

उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं ॥ ६९ ॥

मणुससंजदासंजदाणं ताव उच्चदे-एक्को अट्टवीससंतकम्मिओ अपणगदीदो आंगतूण मणुसेसु उववण्णो । अट्टवस्सिओ जादो वेदगसम्मत्तं संजमासंजमं च समगं पडिवण्णो (१) । भिच्छत्तं गंतूणंतरिय अट्टदालीसपुव्वकोडीओ परिभमिय अवसाणे देवाउअं वंधिय संजमासंजमं पडिवण्णो । लद्धमंतरं (२) । मदो देवो जादो । एवं अट्टवस्सेहि वे-अंतोमुद्धुत्तेहि य ऊणाओ अट्टदालीसपुव्वकोडीओ संजदासंजदुक्कस्संतं होदि ।

पमत्तस्स उक्कस्संतं उच्चदे-एक्को अट्टवीससंतकम्मिओ अपणगदीदो आंगतूण मणुसेसु उववण्णो । गम्भादिअट्टवस्सेहि वेदगसम्मत्तं संजमं च पडिवण्णो अप्पमत्तो (१) पमत्तो होदूण (२) भिच्छत्तं गंतूणंतरिय अट्टदालीसपुव्वकोडीओ परिभमिय अपच्छिमाए पुव्वकोडीए वदाउओ संतो अप्पमत्तो होदूण पमत्तो जादो । लद्धमंतरं (३) । मदो देवो जादो । तिणिअंतोमुद्धुत्तवभहियअट्टवस्सेणूणअट्टदालीसपुव्वकोडीओ पमत्तुक्कस्संतं होदि ।

उक्त तीनों गुणस्थानवाले मनुष्यत्रिकोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटीपृथक्त्व है ॥ ६९ ॥

इनमेंसे पहले मनुष्य संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक जीव अन्यगतिसे आकर मनुष्योंमें उत्पन्न हो आठ वर्षका हुआ । और वेदकसम्यक्त्व तथा संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (१) । पुनः मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो अट्टदालीस पूर्वकोटियां परिध्रमण कर आयुके अन्तमें देवायुको बांधकर संयमासंयमको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे उक्त अन्तर लब्ध हुआ (२) । पुनः मरा और देव हुआ । इस प्रकार आठ वर्ष और दो अन्तर्मुद्धुत्तोंसे कम अट्टदालीस पूर्वकोटियां संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है

अब प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक जीव अन्यगतिसे आकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । पुनः गर्भको आदि लेकर आठ वर्षसे वेदकसम्यक्त्व और संयमको प्राप्त हुआ । पश्चात् वह अप्रमत्तसंयत (१) प्रमत्तसंयत होकर (२) मिथ्यात्वमें जाकर और अन्तरको प्राप्त होकर, अट्टदालीस पूर्वकोटियां परिध्रमण कर अन्तिम पूर्वकोटिमें यद्वायुक्त होता हुआ अप्रमत्तसंयत होकर पुनः प्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकारसे अन्तर लब्ध होगया (३) । पश्चात् मरा और देव होगया । इस प्रकार तीन अन्तर्मुद्धुत्तोंसे अधिक आठ वर्षसे कम अट्टदालीस पूर्वकोटियां प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

१ उक्कस्सेण पूर्वकोटीपृथक्त्वानि । त मि १, ८.

अप्रमत्तस्य उक्तरूपं उच्यते- एकको अष्टावीससंस्कृतिओ अण्णादीदो आगंतूण मणुपेसु उपज्जिय गन्भादिअट्ठवसिओ जादो । सम्मत्तं अप्रमत्तगुणं च जुगवं पडियण्णो (१) । पमत्तो होदूणंतरीदो अट्टतालीसपुव्वसामिओ परिभमिय अपच्छिमाए पुव्वकोडीए वद्धदेवाउओ संतो अप्रमत्तो जादो । लद्धमंतरं (२) । तदो पमत्तो होदूण (३) मत्तो देवो जादो । तीहि अंतोमुहुत्तेहि अब्भहियअट्ठवस्सेहि उणाओ अट्टतालीस-पुव्वकोडीओ उक्तरूपं । पज्जत्त-मणुसिणीसु एवं चेव । गवरि पज्जत्तेसु चउवीस-पुव्वकोडीओ. मणुसिणीसु अट्टपुव्वकोडीओ चि वत्तन् ।

चट्ठहमुवसामगणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ ७० ॥

कुदो ? तिथिहमणुस्साणं चउविहउवसामगेहि विणा एगसमयावट्ठानुवलभा ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ७१ ॥

कुदो ? तिथिहमणुस्साणं चउविहउवसामगेहि विणा उक्कस्सेण वासपुधत्तावट्ठानु-वलभादो ।

अप्रमत्तसंयतका उत्तरुष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मनी अट्टाईस प्रकृतियोंकी मत्ता रखनेवाला कोई एक जीव अन्य गतिस आकर मनुष्योंमें उत्पन्न होकर गर्भको आदि लेकर आठ वर्गका हुआ और सम्यक्त्व तथा अप्रमत्त गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। पुनः प्रमत्तसंयत हो अन्तरको प्राप्त हुआ और अट्टतालीस पूर्वकोटिया परिभ्रमण कर अन्तिम पूर्वकोटिमें देवायुको प्राप्त हुआ अप्रमत्तसंयत होगया। इस प्रकारसे अन्तर प्राप्त हुआ (२)। तत्पश्चात् प्रमत्तसंयत होकर (३) मरा और देव होगया। ऐसे तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्षोंसे कम अट्टतालीस पूर्वकोटियों उत्कृष्ट अन्तर होता है।

पर्याप्त मनुष्यनियोग इसी प्रकारका अन्तर होता है। विशेष बात यह है कि इन पर्याप्तमनुष्योंके चोवीस पूर्वकोटि और मनुष्यनियोग आठ पूर्वकोटिकालप्रमाण अन्तर कहना चाहिए।

चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यमे एक समय अन्तर है ॥ ७० ॥

क्योंकि, तीनों ही प्रकारके मनुष्योंका चारों प्रकारके उपशामकोंके विना एक समय अवस्थान पाया जाता है।

चारों उपशामकोंका उत्कर्षसे वर्षपृथक्त्व अन्तर है ॥ ७१ ॥

क्योंकि, तीनों प्रकारके मनुष्योंका चारों प्रकारके उपशामकोंके विना उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व रहनेवाला पाया जाता है।

१ चतुर्गणपुधमफानं नानाजीवपेसया सामान्यक्त्वं । म सि १, ८

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ७२ ॥
सुगममेदं सुत्तं, ओधम्मि उत्तत्तादो ।
उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं ॥ ७३ ॥

मणुस्साणं ताव उच्यते- एकतो अट्टावीससंस्कृतिओ मणुसेसु उववण्णो गन्भादि-अट्ठवस्सेहि सम्मत्तं संजमं च समगं पडियण्णो (१) । पमत्तापमत्तसंजदट्ठणे सादासाद-बंधपरावचित्तसहसं कादूण (२) दंसणमोहणीयमुवसामिय (३) उवसमसेदीपाओग-अप्रमत्तो जादो (४) । अपुव्वो (५) अणियट्ठी (६) सुहुमो (७) उवसंतो (८) सुहुमो (९) अणियट्ठी (१०) अपुव्वो (११) अपमत्तो होदूणंतरिदो । अट्टतालीस-पुव्वकोडीओ परिभमिय अपच्छिमाए पुव्वकोडीए वद्धदेवाउओ सम्मत्तं संजमं च पडि-चञ्जिय दंसणमोहणीयमुवसामिय उवसमसेदीपाओगविसेहीए विसुज्जिय अपमत्तो होदूण अपुव्वो जादो । लद्धमंतरं । तदो णिहा-नयलाणं वंधवोच्छेदपटमसमए कालं गदो देवो जादो । अट्ठवस्सेहि एक्कारसअंतोमुहुत्तेहि य अपुव्वद्वए सत्तमभागेण च उणाओ अट्टतालीसपुव्वकोडीओ उक्कस्संतरं होदि । एवं चेव तिण्हमुधसमगणं । गवरि दमहि

उक्त गुणस्थानोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ७२ ॥
यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, ओघमें कहा जा चुका है।

चारों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व है ॥ ७३ ॥
इनमेंसे पहले मनुष्य सामान्य उपशामकोंका अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ, और गर्भको आदि लेकर आठ वर्षोंसे सम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें साता और असाता वेदनीयके बंध परावर्तन-सदर्थोंको करके (२) दर्शनमोहनीयका उपशम करके (३) उपशमश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (४)। पुनः अपूर्वकरण (५) अनिवृत्तिकरण (६) सूक्ष्मसात्पराय (७) उपशान्त-कपाय (८) सूक्ष्मसात्पराय (९) अनिवृत्तिकरण (१०) अपूर्वकरण (११) और अप्रमत्त-संयत हो अन्तरको प्राप्त होकर अट्टतालीस पूर्वकोटियों तक परिभ्रमण कर अन्तिम पूर्वकोटिमें देवायुको बंध कर सम्यक्त्व और संयमको युगपत् प्राप्त होकर दर्शन-मोहनीयका उपशमकर उपशमश्रेणीके योग्य विशुद्धिसे विशुद्ध होता हुआ अप्रमत्तसंयत होकर अपूर्वकरणसंयत हुआ। इस प्रकारसे अन्तर उपलब्ध होगया। तत्पश्चात् निद्रा और प्रचलोक बंध-विच्छेदके प्रथम समयमें कालको प्राप्त हो देव हुआ। इस प्रकार आठ वर्ष और ग्यारह अन्तर्मुहूर्तोंसे तथा अपूर्वकरणके सप्तम भागसे कम अट्टतालीस पूर्वकोटिकाल उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी प्रकारसे शेष तीन उपशामकोंका भी अन्तर

१ एकजीव प्रति जघ येनान्तर्मुहूर्तं । म सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण पूर्वकोटीपृथक्त्वानि । स. सि. १, ८.

णवहि अट्टहि अतोपुहुत्तेहि एगसमयाहियअट्टवस्सेहि य ऊणओ अट्टेदालीसपुव्व-
कोडीओ उक्कसंतरं होदि ति वत्तवं । पज्जत्त-मणुसिणीसु एवं चेव । णवरि पज्जत्तेसु
चउत्तंसि पुव्वकोडीओ, मणुसिणीसु अट्ट पुव्वकोडीओ ति वत्तवं ।

चटुण्हं खवा अजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि,
णाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ ७४ ॥

कुदो ? एदेसु गुणद्वष्टाणसु अणुणुणं णिन्दुदि च गदेसु एदेसिमेगसमयमेच-
जहणंतल्लंभा ।

उक्कस्सेण छम्मासं, वासपुधत्तं ॥ ७५ ॥

मणुस-मणुसपज्जत्ताणं छमासमंतरं होदि । मणुसिणीसु वासपुधत्तमंतरं होदि ।
जहामंसाए विणा कथमेदं णवन्दे ? गुरुवन्देसादो ।

एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ७६ ॥

कुदो ? भूओ आगमणाभावा । गिरंतरणिदेसो किमट्ठं बुच्चदे ? गिगयमंतरं जम्हा
होता है । किन्तु उनमें क्रमशः दश, नौ और आठ अन्तर्मुहूर्तोंसे और एक समय अधिक
आठ वर्षोंसे कम अट्टतालीस पूर्वकोटिया उत्कृष्ट अन्तर होता है, ऐसा कहना चाहिए ।
मनुष्यपर्याप्तोंमें या मनुष्यनियोंमें भी ऐसा ही अन्तर होता है । विशेषतया यह है कि
पर्याप्तोंमें चौबीस पूर्वकोटियों और मनुष्यनियोंमें आठ पूर्वकोटियोंके कालप्रमाण अन्तर
कहना चाहिए ।

चारों क्षपक और अयोगिकेवलियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना
जीवोंकी अपेक्षा जघन्यमें एक समय है ॥ ७४ ॥

क्योंकि, इन गुणस्थानोंके जीवोंसे चारों क्षपकोंके अन्य गुणस्थानोंमें तथा अयो-
गिकेवलियोंके निर्गुतिको चले जानेपर एक समयमात्र जघन्य अन्तर पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर, छह मास और वर्षपृथक्त्व होता है ॥ ७५ ॥

मनुष्य और मनुष्यपर्याप्तक क्षपक या अयोगिकेवलियोंका उत्कृष्ट अन्तर छह मास-
प्रमाण है । मनुष्यनियोंमें वर्षपृथक्त्वप्रमाण अन्तर होता है ।

शंका—सूत्रमें यथासंन्य पदके बिना यह बात कैसे जानी जाती है ?

समाधान—गुरुके उपदेशसे ।

चारों क्षपकोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ७६ ॥

क्योंकि, चारों क्षपक और अयोगिकेवलियोंके पुन आगमनका अभाव है ।

शंका—सूत्रमें निरन्तर पदका निर्देश किम् लिए है ?

समाधान—निरुक्त गया है अन्तर जिस गुणस्थानसे, उस गुणस्थानको निरन्तर

१ इदं नाम गमनं नार । म नि १, ८

गुणद्वष्टाणादो तं गुणद्वष्टाणं गिरंतरमिदि विहिमुहेण दव्वट्टियणयावलंसिस्साणं पडिसेह-
परूवणट्ठं ।

सजोगिकेवली ओधं ॥ ७७ ॥

णाणेगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरमिच्चदेण भेदाभावा ।

मणुसअपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं
पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ ७८ ॥

किमट्ठमेदस्स एम्महंतस्स रासिस्स अंतरं होदि ? एसो सहाओ एदस्स । ण च
सहावे जुत्तिवादस्स पवसो अत्थि, भिण्णविसयादो ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ७९ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण खुदाभवगगहणं ॥ ८० ॥

कुदो ? अणपिदअपज्जत्तएसु उपपज्जिय अइदहरकालेण आगदस्स खुदाभव-
गगहणमेतंतल्लंभा ।

कहते हैं । इस प्रकार विधिसुखसे द्रव्यार्थिकनयके अवलम्बन करनेवाले शिष्योंके प्रतिपेक्ष
प्ररूपण करनेके लिए 'निरन्तर' इस पदका निर्देश सूत्रमें किया गया है ।

सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ७७ ॥

क्योंकि, ओघमें वर्णित नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है,
निरन्तर है, इस प्रकारसे इस प्ररूपणमें कोई भेद नहीं है ।

मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा
जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ७८ ॥

शंका—इस इतनी महान् राशिका अन्तर किस लिए होता है ?

समाधान—यह तो राशियोंका स्वभाव ही है । और स्वभावमें युक्तिवादका
प्रवेश है नहीं, क्योंकि, उसका विषय भिन्न है ।

मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमेके असंख्यातवें भाग है ॥ ७९ ॥
यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा लब्ध्यपर्याप्तिक मनुष्योंका जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण
है ॥ ८० ॥

क्योंकि, अविबक्षित लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर अति स्वल्पकालसे पुनः
लब्ध्यपर्याप्तकोंमें आए हुए जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोगगलपरियट्ठं ॥ ८१ ॥

कुदो ? मणुमअपज्जत्तस्स एइंदियं गदस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ते-
पोगगलपरियट्ठी परियट्ठिदूण पडिणियत्तिय आगदस्स सुचुत्तंत्तलंभा ।

एदं गदिं पडुच्च अंतरं ॥ ८२ ॥

सिम्माणमंतसंसमपदुपायणट्ठमेदं सुत्तं ।

गुणं पडुच्च उभयदो वि णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ८३ ॥

उभयदो जहण्णुक्कस्सेण णाणेगजीविहि वा णत्थि अंतरमिदि बुत्तं होदि । कुदो ?
मगणमछडिय गुणंतग्गहाणाभावा ।

देवगदीए देवेषु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं
कालादो होदि, णाणजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ८४ ॥

सुगमेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ८५ ॥

उक्त लब्धपर्याप्तक मनुष्योंका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकालात्मक असंख्यात
पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ ८१ ॥

क्योंकि, फेन्ड्रियोंमें गये हुए लब्धपर्याप्त मनुष्यका आवलीके असख्यातवै
भागमात्र पुद्गलपरिवर्तन परिश्रमण कर पुनः लोटकर आये हुए जीवके सूत्रोक्त उत्कृष्ट
अन्तर पाया जाता है ।

यह अन्तर गतिकी अपेक्षा कहा है ॥ ८२ ॥

यह सूत्र शिष्योंको अन्तरकी संभावना बतलानेके लिए कहा गया है ।

गुणस्थानकी अपेक्षा तो दोनों प्रकारमे भी अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ८३ ॥
उभयतः अर्थात् जघन्य और उत्कर्षसे, अथवा नाना जीव और एक जीवकी
अपेक्षा अन्तर नहीं है, यह अर्थ कहा गया समझना चाहिये । क्योंकि, मार्गणाको छोड़े
बिना लब्धपर्याप्तक जीवोंके अन्य गुणस्थानका ग्रहण हो नहीं सकता ।

देवगतिमें, देवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने
काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ८४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य
अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ८५ ॥

१ देवगतीं देवानां मिथ्यादृश्यतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८.

२ एगजीवं अति जगन्नेनान्तर्मुहूर्तः । स. सि १, ८.

कुदो ? मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणं दिट्ठमग्गाण देवाणं गुणंतरं गंतूण अहद-
हरकालेण पडिणियत्तिय आगदाणं अंतोमुहुत्तंअंतरुत्तलंभा ।

उक्कस्सेण एकक्कीसं सागरोवमाणि देस्सूणाणि ॥ ८६ ॥

मिच्छादिट्ठिस्स ताव उच्चदे- एक्को दव्वलिंगी अट्ठावीससंतकम्मिओ उवरिम-
गेवेज्जेसु उववणो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुदो (३)
वेदगसम्मत्तं पडिवणो । एकक्कीसं सागरोवमाणि सम्मत्तेणंतरिय अवमाणे मिच्छत्तं
गदो । लद्धमंतरं (४) । बुदो मणुसो जादो । चदुहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि एकक्कीसं
सागरोवमाणि उक्कस्संतरं होदि ।

असंजदसम्मादिट्ठिस्स उच्चदे- एक्को दव्वलिंगी अट्ठावीससंतकम्मिओ उवरिम-
गेवेज्जेसु उववणो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुदो (३)
वेदगसम्मत्तं पडिवणो (४) मिच्छत्तं गंतूणंतरिय एकक्कीसं सागरोवमाणि अच्छिदूण
आउअं वंधिय सम्मत्तं पडिवणो । लद्धमंतरं (५) । पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि एक-
क्कीसं सागरोवमाणि असंजदसम्मादिट्ठिस्स उक्कस्संतरं होदि ।

क्योंकि, जिन्होंने पहले अन्य गुणस्थानोंमें जाने आनेसे अन्य गुणस्थानोंका मार्ग
देखा है ऐसे मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका अन्य गुणस्थानको जाकर अति
स्वल्पकालसे प्रतिनिवृत्त होकर आये हुए जीवोंके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्त मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम
इकतीस सागरोपमकालप्रमाण है ॥ ८६ ॥

इनमेंसे पहले मिथ्यादृष्टि देवका अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृति-
योंके सत्त्ववाला एक द्रव्यलिंगी साधु उपरिम प्रवेयकोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे
पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । इकतीस
सागरोपमकाल सम्यक्त्वके साथ विताकर आयुके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस
प्रकारसे अन्तर लब्ध हुआ (४) । पश्चात् वहाँसे च्युत हो मनुष्य हुआ । इस प्रकार चार
अन्तर्मुहूर्तोंसे कम इकतीस सागरोपमकाल मिथ्यादृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि देवका अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके
सत्त्ववाला कोई एक द्रव्यलिंगी साधु उपरिम प्रवेयकोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे
पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४) ।
पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो इकतीस सागरोपम रहकर और आयुको
वांधकर, पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (५) । ऐसे पांच
अन्तर्मुहूर्तोंसे कम इकतीस सागरोपमकाल असंयतसम्यग्दृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर
होता है ।

१ उत्तर्येण एगविश्रामागरोपमाणि देवानाणि । स सि १, ८.

सासणसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ८७ ॥

कुदो? दोण्हं पि सांतरासीणं गिरवसेसेण अण्णगुणं गदाणं एगसमयंतरुवलंभा ।

उक्कस्सेण पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८८ ॥

कुदो? एदासिं दोण्हं रासीणं सांतराणं गिरवसेसेण अण्णगुणं गदाणं उक्कस्सेण पल्लिदोवमस्स अमरेज्जदिभागमेते अंतरं पडि विरोहाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥ ८९ ॥

सासणसम्मादिट्ठिस्स पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो अंतरं, सम्माभिच्छादिट्ठिस्स अंतोमुहुत्तं । सेसं सुगमं, बहुसो परुविदत्तादो ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है ॥ ८७ ॥

क्योंकि, इन दोनों ही सान्तर राशियोंका निरवशेषरूपसे अन्य गुणस्थानको मये हुए जीवोंके एक समयप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्लोपमका असंख्यातवां भाग है ॥ ८८ ॥

क्योंकि, इन दोनों सान्तर राशियोंके सामंस्त्यरूपसे अन्य गुणस्थानको चले जानेपर उत्क्रमेण पल्लोपमके असंख्यातवें भागमात्र कालमं अन्तरके प्रति कोई विरोध नहीं है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्लोपमका अर्ध-रूपातां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ८९ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर पल्लोपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है और सम्यग्मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । शेष सूत्रार्थ सुगम है, क्योंकि, पहले षट्ठगार प्ररूपण किया जा चुका है ।

१ भागास्तगमरदिग्न्यभिगम्यारहोर्नानाविशेषा भागा तत्त्वं । न सि १, ८

२ पृच्छीरं नति जप तेन पन्नोसमापत्त्येवमागोऽवर्तते । स सि १, ८

उक्कस्सेण एकक्कीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ९० ॥

सासणस्स तावुच्चदे- एकको मणुसो दव्वलिणी उवसमसम्मत्तं पडिचज्जिय सासणं गंतूण तत्थ एगसमओ अत्थि ति मदो देवो जादो । एगसमयं सासणगुणेण दिट्ठो । विदियसमए मिच्छत्तं गंतूणंतरिय एकक्कीसं सागरोवमाणि गमिय आउअं बंधिय उवसमसम्मत्तं पडिवणो सासणं गदो । लद्धमंतरं । सासणगुणेणेगसमयमच्छिय विदिय-समए मदो मणुसो जादो । तिहि समएहि ऊणाणि एकक्कीसं सागरोवमाणि सासणु-क्कस्संतरं ।

सम्माभिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे- एको दव्वलिणी अट्ठावीससंतकम्मिओ उवरिम-गेवज्जेसु उववणो । छहि पज्जत्तचीहि पज्जत्तयदो (१) विस्सतो (२) विसुद्धो (३) सम्माभिच्छत्तं पडिवणो (४) मिच्छत्तं गंतूणंतरिय एकक्कीसं सागरोवमाणि गमिय आउअं बंधिय सम्माभिच्छत्तं गदो (५) । जेण गुणेण आउअं बद्धं, तेणैव गुणेण मदो मणुसो जादो (६) । छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि एकक्कीसं सागरोवमाणि सम्मा-भिच्छत्तस्सुक्कस्संतरं होदि ।

उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती देवोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागरोपम-काल है ॥ ९० ॥

उनमेंसे पहले सासादनसम्यग्दृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एक द्रव्यलिङ्गी मनुष्य उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हो करके और सासादनगुणस्थानको जाकर उसमें एक समय अवशेष रहनेपर मरा और देव होगया । वह देव पर्यायमें एक समय सासादन-गुणस्थानके साथ दृष्ट हुआ और दूसरे समयमें मिथ्यात्वगुणस्थानको जाकर अन्तरको प्राप्त हो इकतीस सागरोपम विताकर, आयुको बांधकर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुनः सासादन गुणस्थानको गया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । तब सासादनगुण-स्थानके साथ एक समय रहकर द्वितीय समयमें मरा और मनुष्य होगया । इस प्रकार तीन समयोंसे कम इकतीस सागरोपमकाल सासादनसम्यग्दृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रभृतियोंके सत्त्ववाला कोई एक द्रव्यलिङ्गी साधु उपरिम श्रेयैयकोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विमुक्त हो (३) सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (४) । पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो इकतीस सागरोपम विताकर आगामी भवकी आयुको बांधकर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (५) । पश्चात् जिस गुण-स्थानसे आयुको बांधा था, उसी गुणस्थानसे मरा और मनुष्य होगया (६) । इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम इकतीस सागरोपमकाल सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

१ उत्तर्येणं न विदन्त्यागरोपमाणि देशो नानि । स सि. १, ८

भवणवासियचाणवेंतर-जोदिसिय-सोधमीसाणपहुडि जाव
सदार-सहस्सारकणवासियदेवसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं
केवचिरं कालादो होदि, गाणजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ९१ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९२ ॥

कुदो ? गाणसु मग्गेसु वट्ठमिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणं अण्णगुणं गंतूणंतरिय
लद्धमागदणं अंतोमुहुत्तं लब्धमा ।

उक्कस्सेण सागरोवमं पलिदोवमं वे सत्त दस चोदस सोलस
अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरयाणि ॥ ९३ ॥

मिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे- तिरिक्खो मणुसो वा अप्पिदेवसु सग-सगुक्कस्साउ-
ट्ठिदिप्पसु उवण्णो । छहि पज्जचीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३)
वेदगमम्मत्तं पडिक्खणो । अंतरिदो अप्पणो उक्कस्साउट्ठिमणुपालिय अवसाणे मिच्छत्तं
गदो । लद्धमंतरं (४) । चट्ठहि अंतोमुहुत्तेहि जणाओ अप्पण्णो उक्कस्साउट्ठिदीओ
मिच्छादिट्ठिउक्कस्संतरं होदि ।

भवनगसी, नानव्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म-देशानसे लेकर शतार-सहस्रार
तर्कके कल्पवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल
होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ९१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त देवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ९२ ॥

क्योंकि, भवननैतिक और सहस्रार तर्कके छह कल्पपटल, इन नौ स्वर्गोंमें रहने-
गाले मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंके अन्य गुणस्थानको जाकर अन्तरको प्राप्त
हो पुनः लघुकालसे आये हुएोंके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तरकाल पाया जाता है ।

उक्त देवोंका उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः सागरोपम, पल्योपम और साधिक दो,
सात, दश, चैदह, सोलह और अट्ठारह सागरोपमप्रमाण है ॥ ९३ ॥

इनमेंसे पहले मिथ्यादृष्टि देवोंका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- कोई एक तिर्यंच
अथवा मनुष्य अपने अपने स्वर्गकी उत्कृष्ट आयुवाले विवाहित देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों
पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विसुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त
हो अन्तरको प्राप्त हुआ । पश्चात् अपनी उत्कृष्ट आयुस्थितिको अनुपालनकर अन्तमें
मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे अन्तर लब्ध हुआ (४) । इन चार अन्तर्मुहूर्तोंसे
काम अपनी अपनी आयुस्थितियां उन उन स्वर्गोंके मिथ्यादृष्टि देवोंका उत्कृष्ट अन्तर है ।

एवमसंजदसम्मादिट्ठिस्स वि । णवरि पंचहि अंतोमुहुत्तेहि जणउक्कस्सट्ठिदीओ
अंतरं होदि ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छादिट्ठीणं सत्थाणोधं ॥ ९४ ॥

कुदो ? गाणजीवं पडुच्च जहणणेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असं-
खेज्जदिभागो; एगजीवं पडुच्च जहणणेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं;
उक्कस्सेण वेहि समएहि छहि अंतोमुहुत्तेहि जणाओ उक्कस्सट्ठिदीओ अंतरमिच्छेएहि
भेदाभावा । णवरि सग-सगुक्कस्सट्ठिदीओ देखणाओ उक्कस्संतरमिदि एत्थ वचचं,
सत्थाणोधणहाणुवत्तीदो ।

आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवसु मिच्छादिट्ठि-असंजद-
सम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणजीवं पडुच्च णत्थि
अंतरं, णिरंतरं ॥ ९५ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९६ ॥

इसी प्रकारसे असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका भी अन्तर जानना चाहिए । विशेष
चात यह है कि उनके पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण अन्तर होता है ।

उक्त स्वर्गोंके सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका अन्तर स्वस्थान
ओघके समान है ॥ ९४ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे पल्योपमका
असंख्यातवां भाग अन्तर है, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे पल्योपमका असंख्यातवां
भाग और अन्तर्मुहूर्त अन्तर है, उत्कर्षसे दो समय और छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी उत्कृष्ट
स्थितिप्रमाण अन्तर है, इत्यादि रूपसे ओघके अन्तरसे इनके अन्तरमें भेदका अभाव
है । विशेष चात यह है कि अपनी अपनी कुछ कम उत्कृष्ट स्थितियां ही यहां पर उत्कृष्ट
अन्तर है ऐसा कहना चाहिए, क्योंकि, अन्यथा सूत्रमें कहा गया स्वस्थान ओघ
अन्तर वन नहीं सकता ।

आनतकल्पसे लेकर नवग्रैव्यकविमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयत-
सम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है,
निरन्तर है ॥ ९५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ९६ ॥

१, ६, ९७.]

छम्बडागमे जीवद्वारा

[६३]

कुदो ? तेरमभुवणद्धिमिच्छादिद्वि-सम्मादिद्वीणं विद्वममाणमण्युणं गंतूण लहु-
मागदाणमंतोमुहुचंतलंभा ।

उक्कस्सेण वीसं वावीसं तेवीसं चउवीसं पणवीसं छव्वीसं सत्ता-
वीसं अट्ठावीसं ऊणत्तीसं तीसं एकत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि
॥ ९७ ॥

मिच्छादिद्विस्स उच्चदे- एक्को दव्वलिगी मणुसो अप्पिदेवेषु उववण्णो । छहि
पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगमम्मत्तं पडिवज्जिय अंतरीदो ।
अप्पप्पणो उक्कस्साउद्धिदीओ अणुपालिय अवसाणे मिच्छत्तं गदो (४) । चहुहि अंतो-
मुहुत्तेहि ऊणाओ अप्पप्पणो उक्कस्साउद्धिदीओ मिच्छादिद्विस्स उक्कस्संतं होदि ।

असंजदसम्मादिद्विस्स उच्चदे- एक्को दव्वलिगी च्छुक्कस्साउओ अप्पिदेवेषु
उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदग-
सम्मत्तं पडिवण्णो (४) मिच्छत्तं गंतूणंतरीदो । अप्पप्पणो उक्कस्साउद्धिदियमणु-
पालिय मम्मत्तं गंतूण (५) मदो मणुसो जादो । पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणउक्कस्स-
द्विदिमत्तं लद्धमंतं ।

क्योंकि, आनंत प्राणत आदि तेरह भुवनोमें रहेनवाले दृष्टमार्गी मिथ्यादृष्टि
और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका अन्य गुणस्थानको जाकर पुन शीघ्रतासे आनेवाले उन
जीवोंके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्त तेरह भुवनोमें रहेनवाले देवोंका उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः देशोन बीस, गार्हस
तेर्दम, चागीम, पचीस, छव्वीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इक्तीस
सागरोपम कालप्रमाण होता है ॥ ९७ ॥

इनमेंसे पहले मिथ्यादृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एक द्रव्यलिङ्गी मनुष्य
त्रिवर्षिन देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विग्राम ले (२) विशुद्ध
हो (३) वेदकर्मभयकत्वको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ और अपनी अपनी उत्कृष्ट
आयुस्थितिको अनुपालन कर जीवनेके अन्तमें मिथ्यात्वको गया (४) । इन चार
अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण उक्त मिथ्यादृष्टि देवोंका उत्कृष्ट
अन्तर होता है ।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- बांधी है देवोंमें उत्कृष्ट
आयुको जियने, पैसा एक द्रव्यलिङ्गी साधु विवर्षित देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्ति-
योंसे पर्याप्त हो (१) विग्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकर्मभयकत्वको प्राप्त हुआ (४) ।
पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ । अपनी अपनी उत्कृष्ट आयुस्थितिको
अनुपालन कर सम्यक्त्वको जाकर (५) मरत और मनुष्य हुआ । इस प्रकार इन पांच
अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण अन्तर लब्ध हुआ ।

६४]

अंतराणुगमे देव-अंतरपरवृत्त

[१, ६, १००]

सासणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छादिद्वीणं सत्थाणमोघं ॥ ९८ ॥

कुदो ? गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमओ, उक्कस्सेण पल्लिदोवमस्स
असंखेज्जदिभागो; एगजीवं पडुच्च जहणेण (पल्लिदोवमस्स) असंखेज्जदिभागो, अंतो-
मुहुत्तं, उक्कस्सेण वेहि समएहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाओ अप्पप्पणो उक्कस्साउद्धिदीओ
अंतं होदि, एदेहि भेदाभावा ।

अणुदिसादि जाव सव्वद्वसिद्धिविमाणवासियदेवेषु असंजद-
सम्मादिद्वीणमंतं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च (णत्थि)
अंतं, गिरंतं ॥ ९९ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतं, गिरंतं ॥ १०० ॥

एगगुणत्तादो अणुगुणगमणाभावा ।

एव गदिमगणा समत्ता ।

उक्त आनतादि तेरह भुवनवासी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि
देवोंका अन्तर स्वस्थान ओघके समान है ॥ ९८ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे पल्योपमके असं-
ख्यातवै भागप्रमाण अन्तर है, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे पल्योपमका असंख्यातवै
भाग और अन्तर्मुहूर्त है, उत्कर्षसे दो समय और अन्तर्मुहूर्त कम अपनी अपनी उत्कृष्ट
स्थितिप्रमाण अन्तर होता है, इस प्रकार ओघके साथ इनका कोई भेद नहीं है ।

अनुदिशको आदि लेकर सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि
देवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है,
निरन्तर है ॥ ९९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त देवोंमें एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १०० ॥

उक्त अनुदिश आदि देवोंमें एक ही असंयतगुणस्थान होनेसे अन्य गुणस्थानमें
जानेका अभाव है ।

इस प्रकार गतिमार्गाणा समाप्त हुई ।

इंदियाणुवादेण एहंदियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणा-
जीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १०१ ॥

सुगममेदं मुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण खुदाभवगहणं ॥ १०२ ॥

कुदो ? एहंदियस्स तसकाइएसु उपपज्जिय सव्वलहुएण कालेण पुणे
एहंदियमागदस्स खुदाभवगहणेमेत्तंरुलंभा ।

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुथेतेणव्वमहि-
याणि ॥ १०३ ॥

तं जहा—एहंदियो तसकाइएसु उव्वज्जिय अंतरिदो पुव्वकोडीपुथेतेणव्वमहिय-
वेसागरोवमसहस्सेमेत्तं तसद्धिदि परिमसिय एहंदियं गदो । लद्धमेहंदियाणमुक्कस्संतरं तस-
द्धिदिमेत्तं । देवमिच्छादिदिमेहंदिएसु पवेसिय असंखेज्जपोगलपरियद्दी तत्थ भमाडिय
पच्छा देवेमुप्पाडय देवाणमंतरं किण्ण परुविदं ? ण, णिरुद्धदेवसदिसमगणाए अभावपंसंगा ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना
जीमोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १०१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा एकेन्द्रियोंका जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १०२ ॥
क्योंकि, एकेन्द्रियके त्रसकायिक अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर सर्वलघु कालसे
पुनः एकेन्द्रियपर्यायको प्राप्त हुए जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

एकेन्द्रियोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अंतर पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो
हजार सागरोपम है ॥ १०३ ॥

जैसे—कोई एक एकेन्द्रिय जीव त्रसकायिकोंमें उत्पन्न होकर अन्तरको प्राप्त हुआ
और पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपमप्रमित त्रसकाय स्थितिप्रमाण परि-
भ्रमण कर पुनः एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार एकेन्द्रियोंका उत्कृष्ट अन्तर त्रस-
स्थितिप्रमाण लब्ध हुआ ।

शंका—देव मित्याद्युपियोंको एकेन्द्रियोंमें प्रवेश करा, असंख्यात पुत्रलपरिवर्तन
उनमें परिभ्रमण कराके पीछे देवोंमें उत्पन्न कराकर देवोंका अन्तर क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वैसा करनेपर प्ररूपणा की जानेवाली देवगति-

१ इन्द्रियाज्जादेन एरेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

२ एवञ्जीवापेक्षया जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । स सि १, ८

३ उत्तर्येण दे सागरोपमसहसे पूर्वकोटिपृथक्त्वैरप्यधिके । स सि १, ८.

मगणमच्छंतेण अंतरपररूपणा कादव्वा, अण्णहा अव्वत्थान्वत्तीदो । एहंदियं तसकाइएसु
उप्पादिय अंतरे भण्णमाणे मगणाए विणासो किण्ण होदीदि चे होदि, किंतु जीए
मगणाए बहुगुणद्वयाणि अत्थि तीए तं मगणमच्छंडिय अण्णगुणेहि अंतराविय अंतर-
पररूपणा कादव्वा । जीए पुण मगणाए एकं चेव गुणद्वयं तत्थ अण्णमगणाए
अंतराविय अंतरपररूपणा कादव्वा इदि एसो सुत्ताभिप्पाओ । ण च एहंदिएसु गुणद्वय-
बहुत्तमत्थि, तेण तसकाइएसु उप्पादिय अंतरपररूपणा कदा ।

वादेरेहंदियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च
णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १०४ ॥

सुगममेदं मुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण खुदाभवगहणं ॥ १०५ ॥

कुदो ? वादेरेहंदियस्स अण्णअपज्जेत्तेसु उपपज्जिय सव्वत्थेवेण कालेण पुणे
वादेरेहंदियं गदस्स खुदाभवगहणेमेत्तंरुलंभा ।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ १०६ ॥

मार्गणाके अभावका प्रसंग प्राप्त होगा । विवक्षित मार्गणाको नहीं छोड़ते हुए अन्तर-
प्ररूपणा करता चाहिए, अन्यथा अव्यवस्थापनकी प्राप्ति होगी ।

शंका—एकेन्द्रिय जीवको त्रसकायिक जीवोंमें उत्पन्न कराकर अन्तर कहने पर
फिर यहां मार्गणाका विनाश क्यों नहीं होता है ?

समाधान—मार्गणाका विनाश होता है, किंतु जिस मार्गणामें बहुत गुणस्थान
होते हैं उसमें उस मार्गणाको नहीं छोड़कर अन्य गुणस्थानोंसे अन्तर कराकर अन्तरप्ररूपणा
करना चाहिए । परन्तु जिस मार्गणामें एक ही गुणस्थान होता है, वहांपर अन्य मार्गणामें
अन्तर करा करके अन्तरप्ररूपणा करना चाहिए । इस प्रकारका यहांपर सूत्रका अभिप्राय
है । और एकेन्द्रियोंमें अनेक गुणस्थान होते नहीं हैं, इसलिए त्रसकायिकोंमें उत्पन्न
कराकर अन्तरप्ररूपणा की गई है ।

वादर एकेन्द्रियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर
नहीं है, निरन्तर है ॥ १०४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १०५ ॥

क्योंकि, वादरएकेन्द्रिय जीवका अन्य अपर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न होकर सर्व
स्तोककालसे पुनः वादर एकेन्द्रियपर्यायको गये हुए जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण अन्तर
पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है ॥ १०६ ॥

तं जथा- एकको वादेरंदिओ सुहुमेइंदियादिसु उपपज्जिय असंखेज्जलोगमेच-
कालमंतरिय पुणो वादेरंदिएसु उववण्णो । लद्धमसंखेज्जलोगमेचं वादेरंदिआणमंतरं ।

एवं वादेरंदिपज्जत्त अपज्जत्ताणं ॥ १०७ ॥

कुदो ? वादेरंदिअहिंतो सवयपयोण एदेसिमंतरस्स भेदाभावा ।

सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदियपज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो
होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ १०८ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण खुदाभवगगहणं ॥ १०९ ॥

कुदो ? सुहुमेइंदियस्स अणप्पिदअपज्जत्तएसु उपपज्जिय सव्यत्येवेण कालेण तीसु
पि सुहुमेइंदिएसु आंगत्तूणप्पणस्स खुदाभवगगहणमेचंतरवलंभा ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ
ओसपिणि-उस्सपिणीओ ॥ ११० ॥

जैसे- एक वादर एकेन्द्रिय जीव, सूक्ष्म एकेन्द्रियादिकोंमें उत्पन्न हो वहां पर
प्रमत्त्यात लोकप्रमाण काल तक अन्तरको प्राप्त होकर पुनः वादर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न
हुआ । इस प्रकार असंख्यात लोकप्रमाण वादरएकेन्द्रियोंका अन्तर लब्ध हुआ ।

इसी प्रकारसे वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और वादर एकेन्द्रिय लब्धपर्याप्तोंका
अन्तर जानना चाहिए ॥ १०७ ॥

क्योंकि, वादर एकेन्द्रियोंकी अपेक्षा सर्व प्रकारसे इन पर्याप्त और लब्धपर्याप्तक
वादर एकेन्द्रियोंके अन्तरमें कोई भेद नहीं है ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्धपर्याप्तक
जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर
है ॥ १०८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर शुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १०९ ॥

क्योंकि, किसी सूक्ष्म एकेन्द्रियका अविश्वित लब्धपर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न
होकर सर्व लोककालमे तीनों ही प्रकारके सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें आकर उत्पन्न हुए जीवके
शुद्रभवग्रहणप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्त सूक्ष्मविकोंका उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भाग असंख्यातासंख्यात
उन्मर्षिणी और असर्पिणी कालप्रमाण है ॥ ११० ॥

तं जहा- एकको सुहुमेइंदिओ पज्जत्तो अपज्जत्तो च वादेरंदिएसु उववण्णो ।
तसकाइएसु वादेरंदिएसु च असंखेज्जासंखेज्जा ओसपिणि-उस्सपिणीपमाणमंगुलस्स
असंखेज्जदिभागं परिभमिय पुणो तिसु सुहुमेइंदिएसु आंगत्तूण उववण्णो । लद्धमंतरं
वादेरंदिअतसकाइयाणमुक्कस्सट्ठिदी ।

वीइंदिय-तीइंदिय-चदुरिंदिय-तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं
केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ १११ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण खुदाभवगगहणं ॥ ११२ ॥

कुदो ? अणप्पिदअपज्जत्तएसु उपपज्जिय सव्यत्येवेण कालेण पुणो गत्तसु विग-
लितिएसु आंगत्तूण उपपणस्स खुदाभवगगहणमेचंतरवलंभा ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोगलपरियट्ठं ॥ ११३ ॥

जैसे- एक सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्तक, अथवा लब्धपर्याप्तक जीव वादर एकेन्द्रि-
योंमें उत्पन्न हुआ । वह त्रसकायिकोंमें, और वादर एकेन्द्रियोंमें अंगुलके असंख्यातवें भाग
असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालप्रमाण परिभ्रमण कर पुनः उक्त
तीनों प्रकारके सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें आकर उत्पन्न हुआ । इस प्रकार वादर एकेन्द्रियों
और त्रसकायिकोंकी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण सूक्ष्मत्रिकका उत्कृष्ट अन्तर उपलब्ध हुआ ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और उन्हींके पर्याप्तक तथा लब्धपर्याप्तक
जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर
है ॥ १११ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त द्वीन्द्रियादि जावाका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर शुद्रभवग्रहण-
प्रमाण है ॥ ११२ ॥

क्योंकि, अविश्वित लब्धपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर सर्वस्तोक कालसे पुनः नौ
प्रकारके विकलेन्द्रियोंमें आकर उत्पन्न होनेवाले जीवके शुद्रभवग्रहणमात्र अन्तरकाल
पाया जाता है ।

उन्हीं विकलेन्द्रियोंका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन
है ॥ ११३ ॥

१ विमल्लेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

२ एतज्जीवापेक्षया जघन्येन शुद्रभवग्रहणम् । स सि १, ८.

३ उन्वयणान्तमल्लोऽसंखेया-पुद्गलपरिवर्तो । स सि १, ८

तं जहा- णम हि निगलिदिया एइदियाएइदिएसु उप्पज्जिय आवलियाए असंखे-
ज्जदिभागमेत्तपगलपरियेइए पयियडिय पुणो णवसु निगलिदिएसु उप्पण्णा । लद्धमंतरं
अमरेज्जपोगलपरियेइमेत्त ।

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिद्वी ओधं ॥ ११४ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं,
उत्कस्सेण वे छावड्डिसगतोत्ताणि अंतोमुहुत्तेण ज्जणानि इच्चेएण भेदाभावा ।

सासणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छादिद्विणमंतरं केवचिरं कालादो
होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ११५ ॥

दोषगुणद्वयजीवो रत्तंसु अण्णगुणं गदेसु दोण्हं गुणद्वयणं एगसमयविरहु-
नलंभा ।

उत्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११६ ॥

कुदो ? तांतराभिच्छादो । चहुगमंतरं किण्ण होदि ? सभावा ।

जैसे- ननों प्रकारके विकलेन्द्रिय जीव, एकेन्द्रिय या अनेकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर
आयुर्वीके असंख्यातवें भागमान पुल्लपरिवर्तन कालतरु परिधमण कर पुनः ननों
प्रकारके विन्लेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुए । इन प्रकारसे असंख्यात पुल्लपरिवर्तनप्रमाण उत्कृष्ट
अन्तर मान लिया ।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्तियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर ओधके समान
है ॥ ११४ ॥

पर्योक्ति, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे
अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षो अन्तर्मुहूर्त कम दो दयासठ सागरोपमकाल अन्तर है, इस
प्रकार ओधकी अपेक्षा इनमें कोई भेद नहीं है ।

उक्त दोनों प्रकारके पंचेन्द्रिय सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका
अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर
है ॥ ११५ ॥

उक्त दोनों गुणस्थानोंके सभी जीवोंके अन्य गुणस्थानको चले जाने पर दोनों
गुणस्थानोंमें एक समय विरह पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ ११६ ॥

क्योंकि, ये दोनों सास्तर राशियां हैं ।
शंका—इनका पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक अंतर क्यों नहीं होता ?
समाधान—स्वभावसे ही अधिक अन्तर नहीं होता है ।

१ पंचेन्द्रियों मिथ्यादृष्टि सामान्यम् । स सि १, ८

२ सास्तरासम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवोपेक्षया सामान्यवत् । स सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो,
अंतोमुहुत्तं ॥ ११७ ॥

गुगममेदं सुत्तं, बहुतो उत्तत्तादो ।

उत्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुत्तेणवभहियाणि
सागरोवमसदपुत्तं ॥ ११८ ॥

सासणस्स तान उच्चेद- एकको अणंतआलमारांसेज्जलोगमेत्तं वा एइदिएसु द्विदो
असण्णिपंचिदिएसु आगंतूण उववण्णो । पंचहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्सतो (२)
विमुदो (३) भणवारिय-वाणवेत्तेरेसु आउअं वंधिय (४) विस्सतो (५) कमेण कालं
करिय भवणवासिय-वाणवेत्तेरेवेरुप्पणो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (६) विस्सतो (७)
विमुदो (८) उवसमसम्भत्तं पडिद्वणो (९) सासणं गदो । आदी दिद्वा । भिच्छत्तं
गंतूणत्तरिय सगड्ढिदं परियद्वियावसाणे सासणं गदो । लद्धमंतरं । तदो थावरयाओणमान-
लियाए असंखेज्जदिभागमच्छिय कालं करिय थावरकाएसु उववण्णो आवलियाए असंखे-
ज्जदिसाणेण णवहि अंतोमुहुत्तेहि ज्जणिया सगड्ढिदी अंतरं ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमके असं-
ख्यातों भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ११७ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, बहुत बार काल गया है ।

उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती पंचेन्द्रियोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वोक्तीपृथक्त्वेसे अधिक
एक हजार सागरोपम काल है, तथा पंचेन्द्रिय पर्याप्तियोंका उत्कृष्ट अन्तर सागरोपम-
शतपृथक्त्वं है ॥ ११८ ॥

इनमेंसे पहले सासादनसम्यग्दृष्टिका अन्तर कहते हैं- अतन्तकाल या असंख्यात-
लोकमात्र काल तरु एकेन्द्रियोंमें रहा हुआ कोई एक जीव असंखी पंचेन्द्रियोंमें आकर
उत्पन्न हुआ । पंचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३)
भवनवासी या वानव्यन्तरोमें आयुको नांधकर (४) विश्राम ले (५) क्रमसे मरण कर
भवनवासी, या वानव्यन्तरेवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (६)
विश्राम ले (७) विशुद्ध हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (९) । पुनः सासादन-
गुणस्थानको प्राप्त हुआ । इस प्रकार इस गुणस्थानका प्रारम्भ दृष्ट हुआ । पश्चात् मिथ्या-
त्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो अपनी स्थितिप्रमाण परिवर्तित होकर आयुके अन्तमें
सासादन गुणस्थानको गया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । पश्चात् स्थावरकायके
योग्य आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तरु उनमें रह कर, मरण करके स्थावर-
कायिकोंमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार आवलीके असंख्यातवें भाग और नौ अन्तर्मुहूर्तोंसे
कम अपनी स्थिति ही इनका उत्कृष्ट अन्तर है ।

१ एगजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयमागोअन्तर्मुहूर्तश्च । स. सि. १, ८

२ उत्तर्येण सागरोपमसहस्र पूर्वोक्तीपृथक्त्वेरेव्यधिम् । स. सि. १, ८.

सम्माभिच्छादिद्विस्स उच्चदे- एकको जीवो एइंदियद्विदिमच्छिदो असणि-
पंचिदिएसु उववण्णो। पंचहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३)
भण्णवासिय-वाणवैतरेसु आउअं वंधिय (४) विस्समिय (५) देवसु उववण्णो। छहि
पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (६) विस्संतो (७) विसुद्धो (८) उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो
(९) सम्माभिच्छत्तं गदो (१०)। मिच्छत्तं गंतूणंतरिय सगद्धिदि परिभमिय अंतोमुहुत्ताव-
सेसे सम्माभिच्छत्तं गदो (११)। लद्धमंतरं। मिच्छत्तं गंतूण (१२) एइंदिएसु उव-
वण्णो। वारमेहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणसगद्धिदी सम्माभिच्छत्तुक्कस्संतरं।

‘जहा उदेसो तहा णिदेसो’ ति णायदो पंचिदियद्विदी पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहिय-
सागरोवमसहस्समेत्ता, पज्जत्ताणं सागरोवमसदपुधत्तेमा ति वत्तव्यं।

असंजदसम्मादिद्विपहुडि जाव अपमत्तसंजदानमंतरं केवचिरं
कालदो होदि, णाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ११९ ॥

सुगमेदं सुत्त।

अथ सम्यग्मिथ्याद्वि पचेन्द्रिय जीवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एकेन्द्रियकी
स्थितिमें स्थित एक जीव असंखी पचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। मनके विना शेष पांचों
पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विजुद्ध हो (३) भवनवासी या वान-
व्यत्तरोंमें आयुको बांधकर (४) विश्राम ले (५) देवोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे
पर्याप्त हो (६) विश्राम ले (७) विजुद्ध हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हो (९)
सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (१०)। पुनः मिथ्यात्वको जाकर और अन्तरको प्राप्त हो
अपनी स्थितिप्रमाण परिश्रमण कर आयुके अन्तर्मुहूर्तकाल अवशेष रह जाने पर सम्य-
ग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (११)। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। पश्चात् मिथ्यात्वको
जाकर (१२) एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। ऐसे इन बारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम स्वस्थिति
सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर है।

‘जेसा उदरा होता है, उसीके अनुसार निर्देश होता है,’ इस न्यायसे पंचेन्द्रिय
सामान्यकी स्थिति पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक एक हजार सागरोपमप्रमाण होती है,
और पचेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी स्थिति शतपृथक्सागरोपमप्रमाण होती है, ऐसा कहना
साहिब।

अमंपतसम्यग्दष्टिसे लेकर अप्रमत्तमंपत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती
जीवोंका अन्तर किनेने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर
है ॥ ११९ ॥

यस मूल सुगम है।

१ अनात्ममय रहकारमण्डानां नानाजीवेष्वेवा नास्त्यतस्। स सि १, ८

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२० ॥

कुदो? एदेसिमण्णुणं गंतूण सव्वदहरेण कालेण पडिणियत्तिय अपपण्णो गुण-
मागदाणमंतोमुहुत्तं तत्तल्लभा।

उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि,
सागरोवमसदपुधत्तं ॥ १२१ ॥

असंजदसम्मादिद्विस्स उच्चदे- एको एइंदियद्विदिमच्छिदो असणिपंचिदियसम्मु-
च्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो। पंचहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो
(३) भण्णवासिय-वाणवैतरेदेसु आउअं वंधिय (४) विस्समिय (५) मदो देवसु
उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (६) विस्संतो (७) विसुद्धो (८) उवसमसम्मत्तं
पडिवण्णो (९)। उवसमसम्मत्तद्वाए छावलियाओ अत्थि ति आसाणं गदो अंतरिदो
मिच्छत्तं गंतूण सगद्धिदि परिभमिय अंतो उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (१०)। पुणो सासाणं गदो
आवल्याए अससेजदिभागं कालमच्छिदूण थावरकाएसु उववण्णो। दसहि अंतोमुहुत्तेहि

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२० ॥

क्योंकि, इन असंयतादि चार गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्य गुणस्थानको जाकर
सर्वलघु कालसे लौटकर अपने अपने गुणस्थानको आये हुएोंके अन्तर्मुहूर्तमात्र अन्तर
पाया जाता है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक सहस्र सागरोपम तथा
शतपृथक्त्व सागरोपम है ॥ १२१ ॥

इनमेंसे पहले असंयतसम्यग्दष्टिका अन्तर कहते हैं- एकेन्द्रिय भवस्थितिको
प्राप्त कोई एक जीव, असंखी पचेन्द्रिय सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ। पांचों पर्या-
प्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विजुद्ध हो (३) भवनवासी या वानव्यन्तर देवोंमें
मायुको बांधकर (४) विश्राम ले (५) मरा और देवोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे
पर्याप्त हो (६) विश्राम ले (७) विजुद्ध हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (९)।
उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रहने पर सासादन गुणस्थानको गया
और अन्तरको प्राप्त हुआ। पछे मिथ्यात्वको जाकर अपनी स्थितिप्रमाण परिश्रमणकर अन्तमें
उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१०)। पुनः सासादन गुणस्थानको गया और चहांपर
आवलीके असंयतवै भागप्रमाण काल तक रहकर स्थावरकायिकोंमें उत्पन्न हुआ। इस
प्रकार इन दस अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थितिप्रमाणकाल उक्त असंयतसम्यग्दष्टिका

१ पृच्छीव प्रति जपयेनान्तर्मुहूर्तं। स सि १, ८.

२ उन्मयेण सागरोपमसहस्र पूर्वमेटीपृथक्त्वैरस्यधिकम्। स सि १, ८.

ऊणिया सगडिदी लद्धमुच्चन्तंनर । मागरोवममदपुधचं देव्वणमिदि वत्तव्वं ? ण, पंचि-
दियपज्जत्तट्ठिदीणं देव्वणाणं णि मागरोवममदपुधचत्तादो । तं पि कथं णव्वदे ? सुत्ते
देव्वणायणासागो । मण्णिमम्भुच्छिपंपंचिदिएसुपाइय सम्मत्तं गेण्हानिय भिच्छत्तेण
क्किण्णांतगपिदो ? ण, तत्था पढममन्धत्तगहणाभावा । वेदगसम्मत्तं क्किण्ण पडिवजाविदो ?
ण, एंडिएसु दीलद्धमगडिदस्स उव्वेहिदग्गम्मत्त-सम्माभिच्छत्तस्स तदुप्पायणे संभमाभावा ।

मंजदायंदत्ता नुच्चदे- एकको एंडियद्विदिसच्छिदो सण्णिपंचिदियपज्जत्तएसु
उव्वणो तिण्णिपम्भुत्त-तिण्णिदिग्गम-अंतोमुदुत्तेहि (१) पढमसम्मत्तं संजमांसजं च
जुगं पटियणो (२) छामलियाओ पढमसम्मत्तद्वाए अलिय चि आभाणं गंतूणंतरिदो ।
मिच्छत्तं गंतूण सगडिदिं परिभमिय अपच्छिमे पंचिदियभे संम्मत्तं वेत्तूण दंसणमोहणीयं

उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

शंका—पंचेन्द्रिय पर्याप्तिकोंका जो सागरोपमगतयृत्यन्त्वप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर
वताया है, उनमें 'देशोन' ऐसा पद और कहना चाहिये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पंचेन्द्रिय पर्याप्तिकोंको देशोन स्थिति भी सागरोपम-
गतयृत्यन्त्वप्रमाण ही होती है ।

शंका—यह भी कैसे जाना जाता है ?

समाधान—स्योंकि, सूत्रमें 'देशोन' इस वचनका अभाव है ।

शंका—संसी सम्भूच्छिम पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न करान और सम्यक्त्वको ग्रहण
कराकर मिथ्यात्वके द्वारा अन्तरको प्राप्त क्यों नहीं कराया ?

समाधान—नहीं, स्योंकि, संसी सम्भूच्छिम पंचेन्द्रियोंमें प्रथमोपशमसम्यक्त्वके
ग्रहण करनेका अभाव है ।

शंका—वेदकसम्यक्त्वको क्यों नहीं प्राप्त कराया ?

समाधान—नहीं, स्योंकि, पंचेन्द्रियोंमें दीर्घ काल तक रहनेवाले ओर उद्वेलना
की है सम्यक्ता और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी जिसने, ऐसे जीवके वेदकसम्यक्त्वका
उत्पन्न कराना संभव नहीं है ।

संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एकेन्द्रियकी स्थितिको प्राप्त एक
जीव, सगी पंचेन्द्रिय पर्याप्तिकोंमें उत्पन्न हुआ । तीन पक्ष, तीन दिक्क और अन्त-
र्मुहूर्तसे (१) प्रथमोपशमसम्यक्त्वको तथा संयमांसंयमको युगपत् प्राप्त हुआ (२) । प्रथ-
मोपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आचलियां अवशेष रहने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त
कर अन्तरको प्राप्त हुआ । मिथ्यात्वको जाकर अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण करके
अन्तिम पंचेन्द्रिय भयं सम्यक्त्वको ग्रहण कर दर्शनमोहनीयका क्षय कर और संसारके

खविय अंतोमुदुत्तावमेसे संसारे संजमांसंजमं च पडिवणो (३) अप्पमत्तो (४) । पमत्तो
(५) अप्पमत्तो (६) । उवरि छ मुदुत्ता । तिण्णिपम्भोहि तिण्णिदिवसेहि वारसअंतो-
मुदुत्तेहि य ऊणिया सगडिदी लद्धं संजदासंजदाणसुक्कस्संतरं । एंडिएसु क्किण्ण उप्पाइदो ?
लद्धमंतरं करिय उवरि मिज्झणकालादो मिच्छत्तं गंतूण एंडिएसु आउअं वंधिय
तत्थुप्पज्जणकालो संसेज्जणो चि एंडिएसु ण उप्पादिदो । उवरिमाणं पि एदमेव
कारणं वत्तव्वं ।

पमत्तस्स बुचदे- एकको एंडियद्विदिसच्छिदो मणुसेसु उव्वणो । गज्झादिअहु-
वस्सेहि उव्वसमसम्मत्तमप्पमत्तगुणं च जुगवं पडिवणो (१) पमत्तो जादो (२) । हेड्डा
पडिदूणंतरिदो सगडिदिं परिभमिय अपच्छिमे भेध मणुसो जादो । दंसणमोहणीयं खविय
अंतोमुदुत्तावमेसे संसारे अप्पमत्तो होदूण पमत्तो जादो (३) । लद्धमंतरं । भूजो अप्प-
मत्ता (४) उवरि छ अंतोमुदुत्ता । अहुहि वस्सेहि दसहि अंतोमुदुत्तेहि य ऊणिया सग-
डिदी पमत्तसुक्कस्संतरं लद्धं ।

अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवशेष रहने पर संयमांसंयमको प्राप्त हुआ (३) । पश्चात् अप्रमत्त-
संयत (४) प्रगत्तसंयत (५) अप्रमत्तसंयत (६) हुआ । इनमें अपूर्वकरणदिसम्बन्धी ऊपरके
छह मुहूर्तोंको मिलाकर तीन पक्ष, तीन दिक्क और वारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी
स्थितिप्रमाण संयतासंयतोंका उत्कृष्ट अन्तर है ।

शंका—उक्त जीवको एकेन्द्रियोंमें क्यों नहीं उत्पन्न कराया ?

समाधान—संयतासंयतका अन्तर लब्ध होतेके पश्चात् ऊपर सिद्ध होने तरुके
कालसे मिथ्यात्वको जाकर एकेन्द्रियोंमें आयुको बांधकर उनमें उत्पन्न होनेका काल
संब्यतागुणा है, इसलिए एकेन्द्रियोंमें नहीं उत्पन्न कराया । इसी प्रकार प्रमत्तादि उपरित्त
गुणस्थानवर्ती जीवोंके भी यही कारण कहना चाहिये ।

प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एकेन्द्रियस्थितिको प्राप्त एक जीव मनुष्योंमें
उत्पन्न हुआ और गर्भादि आठ वर्षोंसे उपशमसम्यक्त्व और अप्रमत्तगुणस्थानको एक-
साथ प्राप्त हुआ (१) । पश्चात् प्रमत्तसंयत हुआ (२) । पीछे नीचे निरकर अन्तरको प्राप्त
हो अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर अन्तिम भयं मनुष्य हुआ । दर्शनमोहनीयका
क्षयकर अन्तर्मुहूर्तकाल संसारके अवशिष्ट रहने पर अप्रमत्तसंयत होकर पुनः प्रमत्तसंयत
हुआ (३) । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । पुनः अप्रमत्तसंयत (४) हुआ । इनमें ऊपरके छह
अन्तर्मुहूर्त मिलाकर आठ वर्ष और दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थिति प्रमत्तसंयतका
उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है ।

अपमत्तस उच्यते- एको एहंदिद्यद्विमच्छिदो मणुसेसु उववणो गन्भादिअहु-
मसाणमुग्गि उमसममत्तमपमत्तगुणं च जुगवं पडिवणो । आदी दिट्ठा (१) । अंत-
रिदो अपच्छिमे पंचिदियभे मणुसेसु उववणो । दंसणमोहणीयं रविय अंतोमुहुचावसेसे
मंगरो विमुद्धो अपमत्तो जादो (२) । तदो पमत्तो (३) अपमत्तो (४) । उवरी छ
अंतोमुहुत्ता । एमद्वुस्सेहि दसहि अंतोमुहुत्तेहि य ऊणिया पंचिदियद्विदी उव्वकस्संतर ।

चट्ठमुहुवसामगणं गाणाजीवं पडि ओघं ॥ १२२ ॥

कुदो ? जहणेण एगसमओ, उव्वकस्सेण वासपुधत्तमिच्चैएहि ओघादो भेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२३ ॥

तिट्ठमुगमामगणमुग्गि चडिय हेट्ठा ओदिणो उवसंतकसायत्तं पडिवणो जहणमंतरं होदि । उवमंतकसायस्स
हेट्ठा ओदरिय पुणो सवजहणेण कालेण उवसंतकसायत्तं पडिवणो जहणमंतरं होदि ।

उव्वकस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणव्वमहियाणि,
सागरोवमसदधुत्तं ॥ १२४ ॥

अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एकेन्द्रियकी स्थितिमें स्थित एक जीव
मनुष्यमें उत्पन्न हुआ और गर्भादि आठ वर्गोंसे ऊपर उपशमसम्यक्त्व तथा अप्रमत्तगुण-
स्थानको युगपत् प्राप्त हुआ । इस प्रकार इस गुणस्थानका आरंभ दिखाई दिया । पश्चात्
अन्तरको प्राप्त हो अन्तिम पंचेन्द्रिय भवमें मनुष्यमें उत्पन्न हुआ । दर्शनमोहनीयका
संय कर ससारके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रहने पर विद्युद् हो अप्रमत्तसंयत हुआ (२) । पश्चात्
प्रमत्तसंयत (३) अप्रमत्तसंयत (४) हुआ । इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त मिलाने पर आठ
वर्ग जोर द्या अन्तर्मुहूर्तसे कम पंचेन्द्रियकी स्थिति अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर है ।
चार्गे उपशामकोंका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है ॥ १२२ ॥
क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे वर्धपृथक्त्व,
इस प्रकार ओगसे इनमें कोई भेद नहीं है ।

चार्गे उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२३ ॥

पूरुक्करणम्यत् आदि तीनों उपशामकोंका ऊपर चढकर नीचे उतरनेपर
जघन्य अन्तर होता है । किन्तु उपशान्तकयायका नीचे उतरकर पुनः सर्वजघन्य कालसे
उपशान्तकयायको प्राप्त होनेपर जघन्य अन्तर होता है ।

चार्गे उपशामकोंका उत्कृष्ट अन्तर पूरुक्कोटिपृथक्त्वसे अधिक सागरोपमसहस्र
और सागरोपमनपृथक्त्व है ॥ १२४ ॥

१ यत्पुनरुत्पन्नानां नानाजीवसंज्ञा मानान्तरम् । ७. नि १, ८.

२ पार्थिव इति उपशान्तकयायः । ८. नि १, ८.

३ अन्तरेण सागरोपमसहस्रं पूरुक्कोटिपृथक्त्वम् । ८. नि १, ८.

एवको एहंदिद्यद्विमच्छिदो मणुसेसु उववणो । गन्भादिअहुवस्सेहि विमुद्धो
उवसमसमत्तमपमत्तगुणं च जुगवं पडिवणो अंतोमुहुत्तेण (१) वेदगसम्मत्तं गदो । तदो
अंतोमुहुत्तेण (२) अणंताणुवंधो विसंजोजिय (३) विस्समिय (४) दंसणमोहणीयमुत्तममिय
(५) पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (६) उवसमसेदीपाओगअपमत्तो जादो (७) ।
अपुव्वो (८) अणियद्वी (९) सुहुमो (१०) उगसंतो (११) सुहुमो (१२) अणियद्वी (१३)
अपुव्वो (१४) । हेट्ठा ओदरिदूण पंचिदियद्विदि परिभमिय पच्छिमे भवे मणुसेसु उववणो ।
दंसणमोहणीयं खनिय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे विमुद्धो अपमत्तो जादो । पुणो पमत्ता-
पमत्तपरावत्तसहस्स कादूण उवसमसेदीपाओगअपमत्तो होदूण अपुव्वउवसामगो
जादो । लद्धमंतरं (१५) । तदो अणियद्वी (१६) सुहुमो (१७) उवसंतकसाओ (१८)
सुहुमो (१९) अणियद्वी (२०) अपुव्वो (२१) अपमत्तो (२२) पमत्तो (२३)
अपमत्तो (२४) । उवरी छ अंतोमुहुत्ता । एवं अट्ठहि वस्सेहि तीसहि अंतोमुहुत्तेहि
ऊणिया सगट्ठिदी अपुव्वकस्संतरं । एवं चेव तिण्हमुवसामगणं वत्तवं । गवरी अट्ठवीस-
छव्वीस-चट्ठवीसअंतोमुहुत्तेहि अव्वमहियअहुवस्सणा सगट्ठिदी अंतरं होदि ।

एकेन्द्रिय-स्थितिमें स्थित एक जीव, मनुष्यमें उत्पन्न हुआ । गर्भादि आठ वर्गोंसे
विद्युद् हो उपशमसम्यक्त्वको और अप्रमत्तगुणस्थानको युगपत् प्राप्त होता हुआ अन्त-
र्मुहूर्तसे (१) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पश्चात् अन्तर्मुहूर्तसे (२) अनन्तानुवन्धी
कयायचतुष्का विसंयोजन करके (३) विश्राम ले (४) दर्शनमोहनीयका उपशम कर (५)
प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थानसम्यन्धी परावर्तन सहस्रोंको करके (६) उपशमश्रेणीके प्रायोग्य
अप्रमत्तसंयत हुआ (७) । पश्चात् अपूर्वकरणसंयत (८) अनिवृत्तिकरणसंयत (९) सूक्ष्म-
साम्परायसंयत (१०) उपशान्तकयाय (११) सूक्ष्मसाम्पराय (१२) अनिवृत्तिकरण-
संयत (१३) अपूर्वकरणसंयत (१४) हो, नीचे उतरकर पंचेन्द्रियकी स्थितिप्रमाण परि-
अमणकर अन्तिम भवमें मनुष्यमें उत्पन्न हुआ । पश्चात् दर्शनमोहनीयका क्षयकर
संसारके अन्तर्मुहूर्तमात्र अवशेष रहनेपर विद्युद् हो अप्रमत्तसंयत हुआ । पुनः प्रमत्त-
अप्रमत्तपरावर्तन-सहस्रोंको करके उपशमश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत होकर अपूर्वकरण
उपशामक हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (१५) । पश्चात् अनिवृत्तिकरणसंयत (१६)
सूक्ष्मसाम्परायसंयत (१७) उपशान्तकयाय (१८) सूक्ष्मसाम्परायसंयत (१९) अनिवृत्ति-
करणसंयत (२०) अपूर्वकरणसंयत (२१) अप्रमत्तसंयत (२२) प्रमत्तसंयत (२३)
और अप्रमत्तसंयत हुआ (२४) । इसके ऊपर क्षपकश्रेणीसम्यन्धी छह अन्तर्मुहूर्त
होते हैं । इस प्रकार तीस अन्तर्मुहूर्त और आठ वर्गोंसे कम पंचेन्द्रियस्थितिप्रमाण
अपूर्वकरणका उत्कृष्ट अन्तर होता है । इसी प्रकारसे दोष तीनों उपशामकोंका भी अन्तर
कहना चाहिए । विदेश्य बात यह है कि उनके क्रमशः अट्ठवीस छव्वीस और चौवीस
अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्ग कम पंचेन्द्रिय-स्थितिप्रमाण अन्तर होता है ।

चटुणं खवा अजोगिकेवली ओघं ॥ १२५ ॥

णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एससमओ, उचरुमेण छम्भासा; एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतमिच्चेएहि ओघादो भेदाभावा ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ १२६ ॥

कुदो ? णाणेगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतमिच्चेएण ओघादो भेदाभावा ।

पंचिंदियअपज्जत्ताणं वेइंदियअपज्जत्ताणं भंगो ॥ १२७ ॥

णाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतं, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अणंतकालममंतेज्जपोगलपरियइमिच्चेएहि वेइंदियअपज्जत्तेहि तो पंचिंदियअपज्जत्ताणं भेदाभावा ।

एदमिंदियं पडुच्च अंतरं ॥ १२८ ॥

गुणं पडुच्च उभयदो वि गत्थि अंतरं, गिरंतं ॥ १२९ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एवमिंदियमग्गणा समत्ता ।

चारों क्षपक और अयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ १२५ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय ओर उत्कर्षसे छह मास अन्तर है, एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है. इस प्रकार ओघप्ररूपणसे कोई भेद नहीं है ।

सयोंगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ १२६ ॥

क्योंकि, नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है, इस प्रकार ओघसे कोई भेद नहीं है ।

पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तिकोंका अन्तर द्वीन्द्रिय लब्धपर्याप्तिकोंके समान है ॥ १२७ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है. एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे छुद्रभवग्रहणप्रमाण ओर उत्कर्षसे अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अन्तर होता है; इस प्रकार द्वीन्द्रिय लब्धपर्याप्तिकोंसे पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तिकोंके अन्तरमें कोई भेद नहीं है ।

यह गतिकी अपेक्षा अन्तर कहा है ॥ १२८ ॥

गुणस्थानकी अपेक्षा दोनों ही प्रकारसे अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १२९ ॥ ये दोनों ही सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार इन्द्रियमार्गणा समाप्त हुई ।

१ शेषाणी सामान्योक्तम् । स सि १, ८ २ एवमिन्द्रिय प्रत्यन्तपुलम् । स सि. १, ८

३ गुण प्रभुभयतोऽपि नास्त्यन्तम् । स सि १, ८

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-वादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ १३० ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदाभवग्गहणं ॥ १३१ ॥

कुदो ? एदमिणपिदअपज्जत्तएसु उप्पज्जिय सवत्थोवेण कालेण पुणो अप्पिदकायमागदाणं खुदाभवग्गहणमेत्तजहण्णंतरुवलंभा ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोगलपरियट्टं ॥ १३२ ॥

कुदो ? अप्पिदकायादो वणप्फदिक्काइएसुप्पज्जिय अंतरिदजीवो वणप्फदिक्काय-ट्टिदिं आवलियाए असंखेज्जदिभागपोगलपरियट्टमेत्तं परिभमिय अणप्पिदसेसकायट्टिदिं च, तदो अप्पिदकायमागदो जो होदि, तस्स सुत्तुत्तुक्कस्संतरुवलंभा ।

कायमार्गणके अनुवादसे पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, इनके वादर और सूक्ष्म तथा उन सबके पर्याप्तिक और अपर्याप्तिक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १३० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर अन्तर छुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १३१ ॥

क्योंकि, इन पृथिवीकायिकादि जीवोंका अविवक्षित अपर्याप्तिकोंमें उत्पन्न होकर सर्वस्तोक कालसे पुनः विवक्षित कायमें आये हुए जीवोंके शुद्रभवग्रहणप्रमाण जघन्य अन्तर पाया जाता है ।

उक्त पृथिवीकायिक आदि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ॥ १३२ ॥

क्योंकि, विवक्षित कायसे वनस्पतिकायिकोंमें उत्पन्न होकर अन्तरको प्राप्त हुआ जीव आवलीके असंख्यातवे भाग पुद्गलपरिवर्तन वनस्पतिकायिकी स्थिति तक परिभ्रमण कर और अविवक्षित शेष कायिक जीवोंकी भी स्थिति तक परिभ्रमण करके तत्पश्चात् विवक्षित कायमें जो जीव आता है उसके सूत्रोक्त उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है ।

१ कायावुवादेन पृथिव्यदेजोवपुमयिकानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तम् । स सि. १, ८

२ एगजीवं प्रति जघन्येन छुद्रभवग्रहणम् । स सि १, ८

३ उक्कस्सेणान्तः कालोऽसत्येया पुद्गलपरिवर्तिताः । स सि. १, ८

वणफदिकाइय-णिगोदजीव-चादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं
केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं,
णिरंतरं ॥ १३३ ॥

सुगममेदं सुत्त ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण खुद्दाभवगहणं ॥ १३४ ॥

कुदो ? अपिपदकायादो अणपिपदकायं गत्तुण अइलहुएण कालेण पुणो अपिपद-
कायमागदस्स खुद्दाभवगहणमेततरुलंभा ।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ १३५ ॥

कुदो ? अपिपदकायादो पुढवि-आउ-तेउ-नाउकाइएसु उपपज्जिय असंखेज्जलोग-
मेत्तकालं तथेयं परिभमिय पुणो अपिपदकायमागदस्स असंखेज्जलोगमेततरुलंभा ।

चादरवणफदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं
कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १३६ ॥
सुगममेदं सुत्त ।

वनस्पतिकारिक, निगोद जीव, उनके नादर व सूक्ष्म तथा उन सबके पर्याप्तक
और अपर्याप्तक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर
नहीं है, निरन्तर है ॥ १३३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्षुद्रभयग्रहणप्रमाण है ॥ १३४ ॥
क्योंकि, विवक्षित कायसे अविमक्षित कायको जाकर अतिलघु कालसे पुनः
विवक्षित कायमें आये हुए जीवके क्षुद्रभयग्रहणप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यत लोक है ॥ १३५ ॥

क्योंकि, विवक्षित वनस्पतिकार्यसे वृष्टिवा, जल, अग्नि और वायुकायिक जीवोंमें
उत्पन्न होकर अत्यन्त लोकमान काल तक उन्हींमें परिभ्रमण कर पुनः विवक्षित
वनस्पतिकार्यको पाये हुए जीवके असंख्यतलोकप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

नादर वनस्पतिकार्यप्रत्येकशरीर और उनके पर्याप्तक तथा अपर्याप्तक
जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर
है ॥ १३६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ स्वतन्त्र वैयर्थित्व, नानाजीवोंके अन्तर नास्ति ॥ १, ८

२ स्वतन्त्र वैयर्थित्व अन्तर नास्ति ॥ १, ८. ३ स्वतन्त्र वैयर्थित्व अन्तर नास्ति ॥ १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहणेण खुद्दाभवगहणं ॥ १३७ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं चेय ।

उक्कस्सेण अङ्गाइज्जपोगलपरियट्ठं ॥ १३८ ॥

कुदो ? अपिपदकायादो णिगोदजीवमुपपणस्स अङ्गाइज्जपोगलपरियट्ठाणि सेस-
कायपरिभ्रमणेण सादिरियाणि परिभमिय अपिपदकायमागदस्स अङ्गाइज्जपोगलपरियट्ठ-
मेत्ततरुलंभा ।

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १३९ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च जहणेण गत्थि अंतरं, णिरंतरं; एगजीवं पडुच्च
जहणेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण वे छावट्ठिसागरोरमाणि देसुणाणि; इच्चेदेहि मिच्छादिट्ठि-
ओघादो भेदाभावा ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छादिट्ठिणमंतरं केवचिरं कालादो
होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥ १४० ॥

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्षुद्रभयग्रहणप्रमाण है ॥ १३७ ॥
यह सूत्र भी सुगम ही है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर अङ्गाइ पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ १३८ ॥

क्योंकि, विवक्षित कायसे निगोद जीवोंमें उत्पन्न हुए, तथा उसमें अङ्गाइ पुद्गल-
परिवर्तन और शेष कार्यात्मक जीवोंमें परिभ्रमण करनेसे उनकी स्थितिप्रमाण साधक काल
परिभ्रमणकर विवक्षित कायमें आये हुए जीवके अङ्गाइ पुद्गलपरिवर्तन कालप्रमाण अन्तर
पाया जाता है ।

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर ओघके
समान है ॥ १३९ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा कोई अन्तर नहीं है, निरन्तर है, एक जीवकी
अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहुत्त अन्तर है और उत्कर्षमे देशोल दो छयासठ सागराणम अन्तर
है, इस प्रकार मिथ्यादृष्टि जीवोंके ओघ अन्तरसे इनके अन्तरमें कोई भेद नहीं है ।

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तक सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्भिध्यादृष्टि
जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान अन्तर
है ॥ १४० ॥

१ त्रसकायिक मिथ्यादृष्टि सामान्यतः । स. नि. १, ८.

२ सामान्यतः सम्यग्दृष्टि सामान्यतः । स. नि. १, ८.

कुदो ? जहण्णेण एगममओ, उक्कस्सेण पल्लोवमस्स असंखेज्जदिभागो; इच्चे-
एहि भेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पल्लोवमस्स असंखेज्जदिभागो,
अंतोमुहुत्तं ॥ १४१ ॥

मुगममेदं मुत्तं ।

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणञ्जहियाणि,
वे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ॥ १४२ ॥

तं जथा- एकको एंडियद्विदिमच्छिदो असण्णिपंचिदिएसु उववण्णो । पंचहि
पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्सतो (२) विमुद्धो (३) भवणवासिय-चाणवैतरदेवेषु
आउअं वंधिय (४) विस्सतो (५) मदो भवणवासिय-चाणवैतरदेवेषु उववण्णो । छहि
पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (६) विस्सतो (७) विमुद्धो (८) उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो
(९) सामणं गदो । मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो । तसिद्धिदिं परियद्धिदूण अवसाणे सासणं गदो ।
लद्धमंतरं । तदो तत्थ थावरपाओग्गमावलियाए असंखेज्जदिभागमच्छिदूण कालं गदो

प्याकिं, जघन्यसे एक समय और उत्तर्गसे पल्योपमके असंख्यातचै भागप्रमाण
अन्तर है, इस प्रकार ओघसे इनके अन्तरमें कोई भेद नहीं है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमके असं-
ख्यातमें भाग और अन्तर्मुहुत्तप्रमाण है ॥ १४१ ॥

यद् सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः पूर्वकोटिपृथक्त्वसे
अधिक दो हजार सागरोपम और कुछ कम दो हजार सागरोपम है ॥ १४२ ॥

जैसे- परेन्द्रियकी स्थितिमें स्थित कोई एक जीव असंखी पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न
हुआ । पाचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) भवनवासी
या वानव्यन्तर देवोंमें आयुको बांधकर (४) विश्राम ले (५) मरा और भवनवासी या
वानव्यन्तर देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (६) विश्राम ले (७)
निशुल हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हो (९) सासादनगुणस्थानको गया । पश्चात्
मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ और त्रस जीवोंकी स्थितिप्रमाण परिवर्तन
करके अन्तमें सासादनगुणस्थानको गया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । तत्पश्चात्
उस सासादनगुणस्थानमें स्थावरकायके योग्य आवलीके असत्यतावै भागप्रमाण काल

थावरकाएसु उववण्णो । आवलियाए असंखेज्जदिभागेण णवहि अंतोमुहुत्तेहि य ऊणिया
तसक्राड्य-तसक्राड्यपज्जत्तद्धिदी अंतरं होदि ।

सम्माभिच्छादिद्विस्स उच्चदे- एकको एंडियद्विदिमच्छिय जीवो असण्णि-
पंचिदिएसु उववण्णो । पंचहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्सतो (२) विमुद्धो (३)
भवणवासिय-चाणवैतरदेवेषु आउअं वंधिय (४) विस्समिय (५) पुव्वुत्तदेवेषु उववण्णो ।
छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (६) विस्सतो (७) विमुद्धो (८) उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो
(९) । सम्माभिच्छत्तं गदो (१०) । मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो सगिद्धिदिं परिभमिय अंतोमुहुत्ताव-
सेसाए तस-तसपज्जत्तद्धिदीए सम्माभिच्छत्तं गदो । लद्धमंतरं (११) । मिच्छत्तं गंतूण
(१२) एंडियएसु उववण्णो । वारसअंतोमुहुत्तेहि ऊणिया तस-तसपज्जत्तद्धिदी उक्क-
स्संतरं होदि ।

असंजदसम्मादिट्ठिपहुडि जाव अप्पमतसंजदाणमंतरं केवचिरं
कालादो होदि, गाणार्जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १४३ ॥
सुगममेदं ।

तक रह कर मरा और स्थावरकायिकोंमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार आवलीके असंख्यातवै
भाग और नौ अन्तर्मुहुत्तोंसे कम त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्तिकोंकी स्थितिप्रमाण
अन्तर होता है ।

त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्तिक सम्यग्मिथ्यादृष्टिका अन्तर कहते हैं-
एकेन्द्रिय जीवोंकी स्थितिको प्राप्त कोई एक जीव असंखी पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । पांच
पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) भवनवासी या वानव्यन्तर
देवोंमें आयुको बांधकर (४) विश्राम ले (५) पूर्वोक्त देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे
पर्याप्त हो (६) विश्राम ले (७) विशुद्ध हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (९) ।
पश्चात् सम्यग्मिथ्यात्वको गया (१०) । पुनः मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ
और अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण करके त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्तिककी
स्थितिके अन्तर्मुहुत्त अवशेष रह जानेपर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार
अन्तर लब्ध हुआ (११) । पीछे मिथ्यात्वको जाकर (१२) एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । इस
प्रकार इन वारह अन्तर्मुहुत्तोंसे कम त्रस और त्रसपर्याप्तिकोंकी स्थिति ही उक्त दोनों
प्रकारके सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर अप्रमतसंयत तक त्रसकायिक और त्रस-
कायिकपर्याप्तिक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर
नहीं है, निरन्तर है ॥ १४३ ॥

यद् सूत्र सुगम है ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४४ ॥

एदं पि सुगं ।

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुनवकोडिपुभतेणव्वभिहियाणि, वे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ॥ १४५ ॥

असंजदमम्मादिद्विस्स उच्चदे- एको एइदियद्विदिमच्छिदो असणिपंचिदियसस्युच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो । पंचहि पज्जत्तहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विमुद्धो (३) भरणमसिय-चाणवत्तदेवसु आउअं बंधिय (४) विस्संतो (५) कालं करिय भरणमसियएसु चाणवत्तरेसु वा देवसु उववण्णो । छहि पज्जत्तहि पज्जत्तयदो (६) विस्संतो (७) निमुद्धो (८) उवसममम्मत्तं पडिवण्णो (९) । उवसमसम्मत्तद्वए छावलिआसोमाए आमाणं गदो । अंतरिदो मिच्छत्तं गंतूण सगद्धिदिं परिभमिय अंते उवसममम्मत्तं पडिवण्णो (१०) । लद्धमंतं । पुणो सासणं गदो आवलिआए असंखे-अदिभागं कालमच्छिदूण एइदियसु उववण्णो । दसहि अंतोमुहुत्तहि ऊणिया तस-तस-पज्जत्तद्विदी उक्कस्संतं ।

उक्त जीवोक्ता एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १४४ ॥
यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त अमंयतादि चार्गे गुणस्थानवर्ती त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोक्ता उत्कृष्ट अन्तर पूर्वोक्तद्विपुत्र्यस्त्वमे अधिक दो सहस्रसागरोपम और कुछ कम दो सहस्र सागरोपम है ॥ १४५ ॥

इन्मेंसे पहले त्रस और त्रसपर्याप्तक असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एकेन्द्रियस्थितिको प्राप्त कोई एक जीव असंखी पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छिम पर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न हुआ । पाचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विमुद्ध हो (३) भरणगामी या चानव्यन्तर देवोंमें आयुको शायकर (४) विश्राम ले (५) काल कर भरणगामी या चानव्यन्तर देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (६) विश्राम ले (७) निमुद्ध हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (९) । उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलिआ अवशेष रहने पर सासादनगुणस्थानको गया और गन्तरको प्राप्त हो मिथ्यात्वमें जाकर अपनी स्थितिप्रमाण परिश्रमणकर अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१०) । इस प्रकार अन्तर लज्ज हुआ । पुनः सासादन-गुणस्थानको जाकर वहा प्राप्तीके अत्यंत्यतरे भागप्रमाण कालतक रहकर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार इन दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम त्रस और त्रसपर्याप्तिककी उत्कृष्ट स्थिति उन्हींके प्रमंयतसम्यग्दृष्टि जीवोक्ता उत्कृष्ट अन्तर है ।

१ उच्चदे- ए सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि । य नि १, ८

संजदासंजदस्स उच्चदे- एको एइदियद्विदिमच्छिदो सणिपंचिदियपज्जत्तएसु उववण्णो । असणिपस्युच्छिमपज्जत्तएसु किण्ण उप्पादिदो ? ण, तत्थ संजमासंजम-गहणाभावा । तिणिणपक्ख-तिणिणदिवसेहि अंतोमुहुत्तेण य पढमसम्मत्तं संजमासंजमं च जुगवं पडिवण्णो (१) । पढमसम्मत्तद्वए छावलिआओ अत्थि ति सासणं गदो । अंतरिदो मिच्छत्तं गंतूण सगद्धिदिं परिभमिय पच्छिमे तसभवे सम्मत्तं धेत्तूण दंसण-मोहणीयं खविय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारं संजमासंजमं पडिवण्णो (३) । लद्धमंतं । अप्पमत्तो (४) पमत्तो (५) अप्पमत्तो (६) । उवरि खवगसेदिमिह छ मुहुत्ता । एवं चारसअंतोमुहुत्ताहिय-अहेतालीसदिवसेहि ऊणिया तस-तसपज्जत्तद्विदी संजदा-संजदुक्कस्संतं ।

पमत्तस्स उच्चदे- एको एइदियद्विदिमच्छिदो मणुसेसु उववण्णो । गव्भादिअट्ठ-वस्सेण उवसमसम्मत्तमपमत्तगुणं च जुगवं पडिवण्णो (१) पमत्तो (२) हेट्ठा परिवदिय अंतरिदो । सगद्धिदिं परिभमिय अपच्छिमे भवे सम्मादिट्ठी मणुसो जादो । दंसणमोहणीयं

त्रस और त्रसपर्याप्तक संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एकेन्द्रिय जीवोक्ता स्थितिमें स्थित कोई एक जीव संखी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ ।

शंका-उक्त जीवको असंखी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें क्यों नहीं उत्पन्न कराया ? समाधान-नहीं, क्योंकि, उनमें संयमासंयमके ग्रहण करनेका अभाव है ।

पुनः उत्पन्न होनेके पश्चात् तीन पक्ष, तीन दिवस और अन्तर्मुहूर्तसे प्रथमोपशमसम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (१) । प्रथमोपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलिआं शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको गया और अन्तरको प्राप्त हो मिथ्यात्वमें जाकर अपनी स्थितिप्रमाण परिश्रमण करने अन्तिम त्रसभवमें सम्यक्त्वको ग्रहणकर और दर्शनमोहनीयका क्षय कर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण संसारके अवशिष्ट रहने पर संयमासंयमको प्राप्त हुआ (३) । इस प्रकार अन्तर लज्ज हुआ । पश्चात् अप्रमत्तसंयत (४) प्रमत्तसंयत (५) और अप्रमत्तसंयत (६) हुआ । इनमें क्षपकथेणीसम्यक्वी ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये । इस प्रकार चारह अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक अट्टतालीस दिनोंसे कम त्रस और त्रसपर्याप्तकोंको उत्कृष्ट स्थिति ही उन संयतासंयत जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर है ।

त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्त प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एकेन्द्रिय स्थितिको प्राप्त कोई एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और गर्भको आवि ले आठ वर्षके पश्चात् उपशमसम्यक्त्व और अप्रमत्त गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१) । पश्चात् प्रमत्तसंयत हो (२) नीचे गिर कर अन्तरको प्राप्त हुआ । अपनी उत्कृष्ट स्थिति-प्रमाण परिश्रमण करके अन्तिम भवमें सम्यग्दृष्टि मनुष्य हुआ । पुनः दर्शनमोहनीयिका

स्वयि अप्यमत्तो होदृण पमत्तो जादो (३) लद्धमंतरं । भूओ अप्यमत्तो (४) । उवरि छ अंतोमुहुत्ता । एवं अदृहि वस्सेहि दग्हि अंतोमुहुत्तेहि य ऊणा तस-तमपज्जत्तद्धिदी उक्कस्संतरं ।

अप्यमत्तस्स उच्चदे- एकको थावरद्विदिमच्छिदो मणुस्सेसु उवण्णो गन्भादिअहु-वस्सेण उवसमममत्तमप्यमत्तगुणं च जुगवं पडिचण्णो (१) । अंतरिदो सगद्धिदि परिभ-मिय पन्निछमे भं मणुमो जादो । सम्मत्तं पडिचण्णो दंसणमोहणीयं खविय अंतोमुहुत्ता-वस्सेमे ममारो विमुदो अप्यमत्तो जादो (२) । लद्धमंतरं । तदो पमत्तो (३) अप्यमत्तो (४) । उवरि छ अंतोमुहुत्ता । एवमदृहि वस्सेहि दग्हि अंतोमुहुत्तेहि य ऊणिया तस-तमपज्जत्तद्धिदी उक्कस्संतरं ।

चटुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच ओधं ॥ १४६ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४७ ॥

क्षय करते अप्रमत्तसंयत हो प्रमत्तसंयत हुआ (३) । इस प्रकार अन्तर लब्ध हो गया । पुनः अप्रमत्तमयत हुआ (४) । इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये । इस प्रकार दश अन्तर्मुहूर्त और आठ वर्षोंसे कम ब्रह्म और ब्रह्मपर्याप्तकी उत्कृष्ट स्थिति ही उन प्रमत्त-संयत जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर है ।

ब्रह्मकायिक और ब्रह्मकायिकपर्याप्त अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- स्थावरकायकी स्थितिमें विद्यमान कोई एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और गर्भको आदि ले आठ वर्षोंसे उपशमसम्यक्त्व और अप्रमत्त गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१) । पश्चात् अन्तरको प्राप्त हो अपनी स्थितिप्रमाण परिश्रमणकर अन्तिम भवमें मनुष्य हुआ । सम्यक्त्वको प्राप्त कर पुन दर्शनमोहनीयका क्षय कर संसारके अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जानेपर विमुक्त हो अप्रमत्तसंयत हुआ (२) । इस प्रकार अन्तर लब्ध हो गया । तत्पश्चात् प्रमत्तसंयत (३) और अप्रमत्तसंयत हुआ (४) । इनमें ऊपरके क्षपकश्रेणी-सम्यग्धी छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये । इस प्रकार आठ वर्ष और दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम ब्रह्म और ब्रह्मपर्याप्तकी उत्कृष्ट स्थिति ही उन अप्रमत्तसंयत जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर है । ब्रह्मकायिक और ब्रह्मकायिकपर्याप्त चारों उपशमकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान अन्तर है ॥ १४६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

चारों उपशमकोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १४७ ॥

१ चतुर्गुणप्रमत्तकी नानाजीवोंके सामान्यत् । स सि १, ८.

२ एतन्नि प्रति जघनेनान्तर्मुहूर्त । स. सि. १, ८.

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधंतेणभहियाणि, वे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ॥ १४८ ॥

जथा पंचिंदियमणणाए चटुण्हमुवसामगाणमंतरपरुवणा परुविदा, तथा एत्थ वि णिरवयवा परुवेदन्वा ।

चटुण्हं खवा अजोगिकेवली ओधं ॥ १४९ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली ओधं ॥ १५० ॥

एदं पि सुगमं ।

तसकाइयअपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्तभंगो ॥ १५१ ॥

कुदो ? गाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, एगजीवं पडुच्च जहणेण खुदाभवगगहणं, उक्कस्सेण अणंतकालमसंवेज्जपोगलपरियट्टिमिच्चेएहि पंचिंदियअपज्जत्तेहितो तसकाइय-अपज्जत्ताणं भेदाभावा ।

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो सहस्र सागरोपम तथा कुछ कम दो सहस्र सागरोपम है ॥ १४८ ॥

जिस प्रकारसे पंचेन्द्रियमार्गणमे चारों उपशमकोंकी अन्तरप्ररूपणा प्ररूपित की है, उसी प्रकार यहांपर भी सामस्यरूपसे अधिकल प्ररूपणा करना चाहिए ।

चारों क्षपक और अयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ १४९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सजोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ १५० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

ब्रह्मकायिक लब्धपर्याप्तकोंका अन्तर पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तकोंके अन्तरके समान है ॥ १५१ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे छुद्रभवग्रहणप्रमाण, उत्कर्षसे अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है, इस प्रकार पंचेन्द्रिय लब्धपर्याप्तकोंसे ब्रह्मकायिक लब्धपर्याप्तकोंके अन्तरमें कोई भेद नहीं है ।

१ उत्कर्षेण दे सागरोपमसहसे पूर्वकोटिपृथक्त्वैरव्यधिक । म सि १, ८.

२ शेषाणां पंचेन्द्रियवत् । स सि १, ८.

एदं कायं पडुच्च अंतरं । गुणं पडुच्च उभयदो वि णत्थि अंतरं,
णिरंतरं ॥ १५२ ॥

सुगममेदं सुनं ।

एवं कायगगणा समता ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगिपंचवचिजोगीसु कायजोगि-ओरा-
लियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत-
अपमतसंजद-सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेग-
जीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १५३ ॥

कुदो ? अप्पिदेजोगसहिदअप्पिदगुणद्वुण्णाणं सव्वकालं संभवादो । कधमेग-
जीमामेज अतरामो ? ण तां जोगतरगमणेणंतरं संभवदि, मग्गणाए विणासापत्तीदो ।
ण च अण्णगुणगमणेण अंतरं संभवदि, गुणंतरं गदस्स जीवस्स जोगंतरगमणेण विणा
पुणो आगमणाभावादो । तम्हा एगजीवस्स मि णत्थि चेव अंतरं ।

यह अन्तर कायकी अपेक्षा कहा है । गुणस्थानकी अपेक्षा दोनों ही प्रकारसे
अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १५२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई ।

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी और
औदारिककाययोगियोंमें, मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतामंयत, प्रमत्तसंयत, अप्र-
मत्तमंयत और सयोगिकैवलियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी और
एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १५३ ॥

क्योंकि, सूर्योक्त विवक्षित योगोंने सहित विवक्षित गुणस्थान सर्वकाल सम्भव हैं ।
श्रीकृष्ण—एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव कैसे कहा ?

समाधान—सूर्योक्त गुणस्थानोंमें न तो अन्य योगोंमें गमनद्वारा अन्तर सम्भव है,
क्योंकि, ऐसा मानने पर विवक्षित मार्गणाके विनाशकी आपत्ति आती है । और न अन्य
गुणस्थानमें ज्ञानेय भी अन्तर सम्भव है, क्योंकि, दूसरे गुणस्थानको गये हुए जीवके
अन्य योगको प्राप्त हुए विना पुनः आगमनका अभाव है । इसलिए सूर्यमें वनाये गये
ओगोंका एक ओगकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता है ।

१ शेषा पाठेन यदस्मादस्मानर्गोनिना विणादृष्टादृष्टादृष्टिगतामतरमत्तममत्तमयोगिदेवदिनां
तन्मयीशतेकेना दृष्टीरनेकेना ष ताम्बन्धगत् । म मि १, ८ २ ग्रन्थि 'अपगत' इति पाठः ।

सासनसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो
होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १५४ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १५५ ॥

कुदो ? दोण्हं रासीणं सांतरत्तादो । सांतरत्ते वि अहियमंतरं किण्ण होदि ?
सहावदो ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १५६ ॥

कुदो ? गुण-जोगंतरगमणेहि तदसंभवा ।

चटुण्हमुवसामगणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं
पडुच्च ओयं ॥ १५७ ॥

कुदो ? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण वासपुत्तमिच्चेहि ओघादो भेदाभावा ।

उक्त योगवाले सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने
काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ १५४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पर्य्योपमके असंख्यातवें भाग है ॥ १५५ ॥

क्योंकि, ये दोनों ही राशियां सांतर हैं ।

शुंका—राशियोंके सांतर रहने पर भी अधिक अन्तर क्यों नहीं होता है ?

समाधान—स्वभावसे ही अधिक अन्तर नहीं होता है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १५६ ॥

क्योंकि, अन्य गुणस्थानों और अन्य योगोंमें गमनद्वारा उनका अन्तर असंभव है ।

उक्त योगवाले चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी
अपेक्षा ओघके समान अन्तर है ॥ १५७ ॥

क्योंकि, जघन्यसे एक समय और उत्कर्णसे वर्गपृथक्त्व अन्तर है, इस प्रकार
ओघके अन्तरसे इनके अन्तरमें कोई भेद नहीं है ।

१ सासादनसम्यग्दृष्टिम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवोपेक्षया सामान्यवत् । म मि. १, ८.

२ एतद्वच्च गते नास्त्यन्तरम् । म मि. १, ८

३ चतुर्णापुष्पमरालां नानाजीवोपेक्षया सामान्यवत् । म मि. १, ८

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ १५८ ॥

जोग-गुणतमगणेण तदसंभवा । एगजोगपरिमणकालदो गुणकालो संसेजगुणो नि रुवं णब्बेदे ? एगजीवम्म अंतगभावपटुप्पायणसुत्तादो ।

चटुण्हं खवाणमोधं ॥ १५९ ॥

णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं, उक्कस्सेण छम्मासं; एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतमिच्चंदेहि भदाभावा ।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ १६० ॥

तम्मि जोग-गुणतसंकंतीए अभावादो ।

सासनसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओधं ॥ १६१ ॥

एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १५८ ॥

क्योंकि, अन्य योग और अन्य गुणस्थानमें गमनद्वारा उनका अन्तर असंभव है । शंका—एक योगके परिणमन कालसे गुणस्थानका काल संख्यातगुणा है, यह कैसे जाना जाता है ?

भूमाधान—एक जीवके अन्तरका अभाव वतानेवाले सूत्रसे जाना जाता है कि एक योगके परिवर्तन-कालसे गुणस्थानका काल संख्यातगुणा है ।

उक्त योगवाले चारों क्षपकोंका अन्तर ओघके समान है ॥ १५९ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे छह मास अन्तर है, तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, इस प्रकार ओघसे अन्तरमें कोई भेद नहीं है ।

औदारिकमिश्रक्राययोगीमं मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १६० ॥

क्योंकि, औदारिकमिश्रक्राययोगियोंमें योग और गुणस्थानके परिवर्तनका अभाव है ।

औदारिकमिश्रक्राययोगी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ १६१ ॥

१ एगजीव प्रति नास्त्यन्तर । स ति १, ८

२ श्रुतौ सप्तमगमयोगेचछिना च सामान्यत्वं । स. वि १, ८

कुदो ? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पल्लोवमस्स असंखेज्जदिभागो; इच्चंदेहि ओघादो भदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ १६२ ॥

कुदो ? तत्थ जोगंतरगमणाभावा । गुणंतरं गदस्स वि पडिणियत्तिय सासनगुणेण तम्मि चेव जोगे परिणमणाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १६३ ॥

कुदो ? देव-गेरह्य-मणुसअसंजदसम्मादिट्ठीणं मणुसेसु उप्पत्तीए विणा मणुस-असंजदसम्मादिट्ठीणं तिरिक्खेसु उप्पत्तीए विणा एगसमयं असंजदसम्मादिट्ठिविरहिद-ओरालियमिस्सकायजोगस्स संभवादो ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ १६४ ॥

तिरिक्ख-मणुसेसु वासपुधत्तमेत्तकालमसंजदसम्मादिट्ठीणमुवादाभावा ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ १६५ ॥

क्योंकि, जघन्यसे एक समय, और उत्कर्षसे पत्योपमका असंख्यातवां भाग अन्तर है, इस प्रकार ओघसे कोई भेद नहीं है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १६२ ॥

क्योंकि, औदारिकमिश्रक्राययोगकी अवस्थामें अन्य योगमें गमनका अभाव है । तथा अन्य गुणस्थानको गये हुए भी जीवके लौटकर सासादनगुणस्थानके साथ उसी ही योगमें परिणमनका अभाव है ।

औदारिकमिश्रक्राययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ १६३ ॥

क्योंकि, देव, नारकी और मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टियोंका मनुष्योंमें उत्पत्तिके विना, तथा मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टियोंका तिर्यचोंमें उत्पत्तिके विना असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे रहित औदारिकमिश्रक्राययोगका एक समयप्रमाण काल सम्भव है ।

औदारिकमिश्रक्राययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्प्रमाण है ॥ १६४ ॥

क्योंकि, तिर्यच और मनुष्योंमें वर्षपृथक्प्रमाण कालतक असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उत्पाद नहीं होता है ।

औदारिकमिश्रक्राययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १६५ ॥

तस्मिन् तस्मै गुण-जोतसंस्कृति एव अभावात् ।

सजोगिकेवलीणमन्तरं केवचिरं कालादौ होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १६६ ॥

कुदो ? त्ताउपज्जायिपिदिदेवलीणमेगसमयोपलंभा ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ १६७ ॥

त्ताउपज्जाएण पिणा केवलीणं वासपुधत्तच्छणमभवादो ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १६८ ॥

कुदो ? जोतसंस्कृतिं ओरालियमिस्सकायजोगे चैव द्विदस्स अतरासंभवा ।

वेउव्वियकायजोगीसु चटुट्ठाणीणं मणजोगिभंगो ॥ १६९ ॥

कुदो ? णाणेगजीवं पडुच्च अंतराभागेण साधम्ममादो ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठिणमन्तरं केवचिरं कालादौ होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७० ॥

स्म्योक्ति, औदारिकमिश्रकाययोगी अत्यन्तसम्यग्दृष्टि जीवमेव उक्त गुणस्थान और औदारिकमिश्रकाययोगिने परिचरितका अभाव है ।

औदारिकमिश्रकाययोगी मयोरिकेवली जिनका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जवन्यसे एक समय अन्तर पाया जाता है ।

स्म्योक्ति, कृपाटपर्यायसे रहित केवली जिनोंका एक समय अन्तर पाया जाता है । औदारिकमिश्रकाययोगी केवली जिनका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर मीपृथक् है ॥ १६७ ॥

स्म्योक्ति, कृपाटपर्यायके बिना केवली जिनोंका वर्णपृथक् तत्त्व रहना सम्भव है । औदारिकमिश्रकाययोगी केवली जिनोंका एक जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १६८ ॥

स्म्योक्ति, अन्य योग तो नहीं प्राप्त होकर औदारिकमिश्रकाययोगमें ही स्थित केवलीके अन्तरका होता जन्मभय है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों आदि के चारों गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्तर मनो-योगियोंके समान है ॥ १६९ ॥

स्म्योक्ति, नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे दोनोमें समानता है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जवन्यसे एक समय अन्तर है, ॥ १७० ॥

तं जहा-वेउव्वियमिस्सकायजोगिमिच्छादिट्ठिणो सव्वे वेउव्वियकायजोगं गदा । एगसमयं वेउव्वियमिस्सकायजोगो मिच्छादिट्ठिहि विरहिदो दिट्ठो । विदियसमए सत्तट्ठ जणा वेउव्वियमिस्सकायजोगे दिट्ठा । लद्धेगसमयमन्तरं ।

उक्कस्सेण वारस सुहुत्तं ॥ १७१ ॥

तं जघा-वेउव्वियमिस्समिच्छादिट्ठिसु सव्वेसु वेउव्वियकायजोगं गदेसु वारस-सुहुत्तमेतन्तरिय पुणो सत्तट्ठजणेसु वेउव्वियमिस्सकायजोगं पडिन्नणेसु वारससुहुत्तं होदि ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १७२ ॥

तथ जोग-गुणंतरगमणाभावात् ।

सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिण ओरालियमिस्सभंगो ॥ १७३ ॥

कुदो ? सामणसम्मादिट्ठिणं णाणाजीवं पडुच्च जहण्णुस्सस्सेण एगसमयं, पलिदो-वमस्स असंखेज्जदिभागे तेहि, एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं तेण; असंजदसम्मादिट्ठिणं

जैसे- सभी वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव वैक्रियिककाययोगको प्राप्त हुए । इस प्रकार एक समय वैक्रियिकमिश्रकाययोग, मिथ्यादृष्टि जीवोंने रहित विचार दिया । द्वितीय समयमें सात आठ जीव वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें दृष्टिगोचर हुए । इस प्रकार एक समय अन्तर उपलब्ध हुआ ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर बारह सुहुत्त है ॥ १७१ ॥

जैसे- सभी वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंके वैक्रियिककाययोगको प्राप्त हो जाने पर बारह सुहुत्तप्रमाण अन्तर होकर पुनः सात आठ जीवोंके वैक्रियिक-मिश्रकाययोगको प्राप्त होने पर बारह सुहुत्तप्रमाण अन्तर होता है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १७२ ॥

स्म्योक्ति, उन वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंके अन्य योग और अन्य गुणस्थानमें गमनका अभाव है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और अमंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान है ॥ १७३ ॥

स्म्योक्ति, सासादनसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जवन्य और उत्कृष्ट अन्तर कमदा- एक समय और पल्योपमका असंख्यतवां भाग है इनसे, एक

‘ वायतो ‘ मागेहि ’ ; याप्तो ‘ मागेचेहि ’, मयतो ‘ मागेवेहि ’ इति पाठ ।

पाणजीवं पडुच्च जहणुक्कस्सगयएगसमय-यामपुधत्तरेणं, एगजीवं पडुच्च अंतराभावेण च तदो भेदाभावा ।

आहारकायजोगीसु आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदाण-
मंतरं केवचिरं कालादो होदि, पाणजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं
॥ १७४ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ १७५ ॥

एदं पि सुगममेव ।

एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ १७६ ॥

तस्मि जोग-गुणंतरगहणाभावा ।

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-असंजद-
सम्मादिट्ठि-सजोगिकेवल्लोणं ओरालियमिस्सभंगो ॥ १७७ ॥

जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है इससे, असंयतराम्यगदृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जगन्मय एक समय और उत्कृष्ट मात्सपृथक्त्व अन्तर होनेसे, तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरज्ञा अभाव होनेसे इन वैकल्पिकमिश्रकाययोगी सासादन और असंयतसम्यग्दृष्टियोंके अन्तरमें कोई भेद नहीं है ।

आहारकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत्तोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जगन्मयसे एक समय अन्तर है ॥ १७४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ १७५ ॥

यह सूत्र भी सुगम ही है ।

आहारकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत्तोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १७६ ॥

क्योंकि, आहारकाययोग या आहारकमिश्रकाययोगमें अन्य योग या अन्य गुणस्थानके ग्रहण करनेका अभाव है ।

कार्मणकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवल्लियोंका अन्तर औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान है ॥ १७७ ॥

१ प्रतिगु 'पुष्यपणेन' इति पाठ ।

मिच्छादिट्ठिणं पाणेगजीवं पडुच्च अंतराभावेण; सासणसम्मादिट्ठिणं पाणजीव-
गयएयसमय-पलिदोवमात्तलेज्जदिभागंतरेहि, एगजीवगयअंतराभावेण; असंजदसम्मा-
दिट्ठिणं पाणजीवगयएयसमयमात्त-पुधत्तरेहि, एगजीवगयअंतराभावेण; सजोगिकेवल्लि-
पाणजीवगयएगसमय-वासपुधत्तेहि, एगजीवगयअंतराभावेण च दोणं सभाणचुवल्लभा ।

एव जोगसगणा समत्ता ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदेसु मिच्छादिट्ठिणमंतरं केवचिरं कालादो
होदि, पाणजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ १७८ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १७९ ॥

कुदो ? इत्थिवेदमिच्छादिट्ठिस्स दिट्ठसगस्स अण्णगुणं गंतूण पडिणियचिय लहुं
मिच्छत्तं पडिणणस्स अंतोमुहुत्तं तल्लंभा ।

उक्कस्सेण पणवण पलिदोवमाणि देसूणाणि ॥ १८० ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टियोंका नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, सासादनसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवगत जगन्मय एक समय और उत्कृष्ट पल्यो-
पमके असंख्यातवे भगवन्नाण अन्तरसे, तथा एक जीवगत अन्तरके अभावसे, असंयत-
सम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवगत जगन्मय अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर मात्स-
पृथक्त्वसे, तथा एक जीवगत अन्तरका अभाव होनेसे, सयोगिकेवल्लियोंका नाना
जीवोंकी अपेक्षा जगन्मय एक समय और उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व अन्तरसे, तथा एक जीवगत
अन्तरका अभाव होनेसे औदारिकमिश्रकाययोगी और कार्मणकाययोगी, इन दोनोंके
समानता पाई जाती है ।

इस प्रकार योगमार्गणा समाप्त हुई ।

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल
होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १७८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जगन्मय अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १७९ ॥

क्योंकि, दृष्टमार्गी स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंके अन्य गुणस्थानको जाकर और
लौटकर शीघ्र ही मिथ्यात्वको प्राप्त होनेपर अन्तर्मुहूर्त अन्तर पाया जाता है ।

स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम
पचवन पल्योपम है ॥ १८० ॥

१ वेदादुवादेन स्त्रीवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

२ एगजीव प्रति जगन्मयान्तर्मुहूर्तः । स सि. १, ८

३ उत्कर्षेण पचपचाशस्योपमानि देशोनानि । स सि १, ८.

तं जहा- एको पुरिसवेदो णउमयेवेदो वा अट्टवीसमोहसंतकम्मओ पणवण-
पल्लोवमाउट्टिदिदीमु' उवण्णो । छदि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२)
गिमुदो (३) वेदगममत्तं पडिक्खणो अंतरिदो अवसाणे आउअं वंधिय मिच्छत्तं गदो ।
लद्धमंतं (४) । सम्मत्तेण वद्धाउअत्तादो सम्मत्तेण गिगदो (५) मणुसो जादो ।
पंचहि अंतोमुहुरेवेहि ऊणाणि पणमण पल्लोवमाणि उक्कस्संतं हेदि । छपुढविणेइएसु
मोहम्मादिदेसु च सम्माइड्डी वद्धाउओ पुवं मिच्छत्तेण गिस्सारिदो । एत्थ पुण
पणमणपल्लोवमाउट्टिदिदीसु तहा ण गिस्सारिदो । एत्थ कारणं जाणिय वत्तव्यं ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छादिट्ठीणमंतं केवचिं कालादो
होदि, गाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥ १८१ ॥

सुगममेव ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण पल्लोवमस्स असंखेज्जदिभागो,
अंतोमुहुरं ॥ १८२ ॥

अन्ते-मोहनीयकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक पुरुषवेदी, अथवा
नपुंसकवेदी जीव, पचन पल्लोपमकी आयुस्थितिवाली देवियोंमें उत्पन्न हुआ । छहों
पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होकर
अन्यको प्राप्त हुआ और आयुके अन्तमें अगामी भवकी आयुको बांधकर मिथ्यात्वको
प्राप्त हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया (४) । सम्यक्त्वके साथ आयुके बाधनेसे
सम्यक्त्वके साथ ही निकला (५) और मनुष्य हुआ । इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे
कन पचन पल्लोपम स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि उच्छेद अन्तर होता है ।

पण्डे अंगप्रकरणमें छह पृथिवियोंके नारकियों तथा सोधर्मादि देवोंमें वद्धा-
गुरूक सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वके द्वारा निकाला था । किन्तु यहां पचन पल्लोपमकी
आयुस्थितिवाली देवियोंमें उग प्रकारने नहीं निकाला । यहापर इसका कारण जानकर
कहना चाहिए ।

स्त्रीवेदी मामादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल
होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान अन्तर है ॥ १८१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

स्त्रीवेदी मामादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका एक जीवकी अपेक्षा
अन्य अन्तर कमजः पल्लोपमका अंगस्थितनां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ १८२ ॥

१ 'अंग' शब्द पठ्य ।

२ 'मामादनसम्यग्दृष्टि' शब्दोक्तान्तरात्तस्य मानात्तर । म नि १, ८.

३ 'अंग' शब्द पठ्य । म नि १, ८

एदं पि सुत्तं सुगममेव ।

उक्कस्सेण पल्लोवमसदपुधत्तं ॥ १८३ ॥

तं जहा- एको अणवेददिट्ठिमिच्छिदो सासणद्वए एगो समओ अत्थि चि
इत्थिवेदेसु उवण्णो एगसमयं सासणगुणेण दिट्ठो । विदियसमए मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो ।
त्थिवेददिट्ठि परिभमिय अवसाणे त्थिवेददिट्ठि ए एगसमयावसेसाए सासणं गदो । लद्ध-
मंतं । मदे वेदंतं गदो । वेहि समएहि ऊणयं पल्लोवमसदपुधत्तमंतं लद्धं ।

सम्माभिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे- एको अट्टवीसमोहसंतकम्मओ अणवेदो देवीसु
उवण्णो । छदि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुदो (३) सम्मा-
मिच्छत्तं पडिक्खणो (४) मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो । त्थिवेददिट्ठि परिभमिय अते सम्मा-
मिच्छत्तं गदो (५) । लद्धमंतं । जेण गुणेण आउअं वद्धं तं गुणं पडिक्खज्जिय अणवेदे
उवण्णो (६) । एवं छदि अंतोमुहुरेहि ऊणिया त्थिवेददिट्ठि सम्माभिच्छुक्कस्संतं
हेदि ।

यह सूत्र भी सुगम ही है ।

स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा
उच्छेद अन्तर पल्लोपमशतपृथक्त्व है ॥ १८३ ॥

जैसे अन्य वेदकी स्थितिको प्राप्त कोई एक जीव सासादनगुणस्थानके कालमें
एक समय अवशिष्ट रहने पर स्त्रीवेदियोंमें उत्पन्न हुआ और एक समय सासादनगुण-
स्थानके साथ दिखाई दिया । द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ ।
स्त्रीवेदकी स्थितिप्रमाण परिश्रमण करके अन्तमें स्त्रीवेदकी स्थितिमें एक समय अवशेष
रहने पर सासादनगुणस्थानको गया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । पुनः मरा और
अन्य वेदको प्राप्त होगया । इस प्रकार दो समयोंसे कम पल्लोपमशतपृथक्त्वकाल
स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवका उत्पन्न अन्तर प्राप्त हुआ ।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि स्त्रीवेदी जीवका उत्पन्न अन्तर कहते हैं- मोहनीयकर्मकी
अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक अन्य वेदी जीव देवियोंमें उत्पन्न हुआ । छहों
पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त
हुआ (४) । पश्चात् मिथ्यात्वको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ । स्त्रीवेदकी स्थिति-
प्रमाण परिश्रमणकर अन्तमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (५) । इस प्रकार अन्तर लब्ध
हो गया । पछि जिस गुणस्थानसे आयुको बाधा था, उसी गुणस्थानको प्राप्त होकर अन्य
जीवोंमें उत्पन्न हुआ (६) । इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम स्त्रीवेदकी स्थिति सम्य-
ग्मिथ्यादृष्टि जीवका उत्पन्न अन्तर होता है ।

१ उच्चदेन पल्लोपमशतपृथक्त्व । म नि १, ८

असंजदसम्मादिद्विपुहृडि जाव अपमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं
कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ १८४ ॥
मुगममेदं ।

पगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ १८५ ॥

मुदो ? अण्णगुणं गंतूण पडिगियत्तिय तं चेव गुणसागदानमंतोमुहुत्तं चत्तलंभा ।

उक्कस्सेण पल्लिदोवमसदपुधत्तं ॥ १८६ ॥

असंजदसम्मादिद्विपुहृडि उच्चदे । तं जहा- एकको अहुवीसमत्तकमिओ देवसे
उमण्णो । छहि पज्जचीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुदो (३) वेदग-
सम्मत्तं पडिण्णो (४) भिच्छत्तं गदो अंतरिदो त्थीवेदद्विदि परिभमिय अंते उग्रसम-
सम्मत्तं पडिण्णो (५) । लद्धमंतरं । छागलियावसे पडममम्मत्तकाले सासणं गंतूण
मदो वेदंतरं गदो । पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणयं पल्लिदोवमसदपुधत्तमंतरं होदि । देखण-

अण्यत्तसम्यग्दृष्टिमे लेक अग्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती
स्वीडियोंका अन्तर किन्ने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है,
निगन्तर है ॥ १८४ ॥
यत् सून सुगम है ।

उक्त गुणस्थानमाले स्वीनेदियांका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त
है ॥ १८५ ॥

स्वीकि, अन्य गुणस्थानको जाकर और लौट कर उसी ही गुणस्थानको आये हुए
जीवोंका अन्तर्मुहूर्त अन्तर पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उग्रुष्ट अन्तर पल्लोपमशतपृथक्त्व है ॥ १८६ ॥

इसमेंसे पहले स्वीवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकी
अद्वार्त्त समप्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्ति-
योंमें पर्याप्ति हों (१) विग्राम ले (२) विग्रुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त
गुआ (४) । पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो, स्वीवेदीकी स्थितिप्रमाण
परिभ्रमणकर अन्तर्मुहूर्त उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (५) । इस प्रकार अन्तर लब्ध
गुआ । प्रथमोपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रहने पर सात्तादनगुण-
स्थानको जाकर मरा और अन्य वेदको गया । इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पल्लो-
पमशतपृथक्त्वप्रमाण अन्तर होता है ।

१ अग्रमत्तसम्यग्दृष्टिपमशतान्तानां नानाजीवपेक्षया नात्यन्तम् । स पि १, ८

२ पृच्छीय प्रति जघनान्तर्मुहूर्तं । य सि. १, ८.

३ उग्रं पण पल्लोपमशतपृथक्त्वम् । स पि. १, ८.

वयणं मुत्ते किण्ण कदं ? ण, पुधत्तणिहेसेणेव तस्स अन्नगमादो ।

संजदासंजदस्स उच्चदे- एकको अहुवीसमोहसंतकमिओ अण्णवेदो त्थीवेदसे
उवण्णो दे माये गवसे अच्छिदूण पिक्खंतो दिवसपुधत्तेण विसुदो वेदगसम्यक्त्वं संजग-
संजमं च जुगवं पडिण्णो (१) । भिच्छत्तं गंतूणतरिदो त्थीवेदद्विदि परिभमिय अंते
पडमसम्मत्तं देवसंजमं च जुगवं पडिण्णो (२) । आसाणं गंतूण मदो देवो जादो । वेहि
मुहुत्तेहि दिवसपुधत्ताहिय-नेमासेहि य ऊणा त्थीवेदद्विदी उक्कस्संतरं होदि ।

पमत्तस्स उच्चदे- एकको अहुवीसमोहसंतकमिओ अण्णवेदो त्थीवेदमणुसेसु
उवण्णो । गवमादिअहुवस्सिओ वेदगसम्मत्तसम्पत्तगुणं च जुगवं पडिण्णो (१) ।
पुणो पमत्तो जादो (२) । भिच्छत्तं गंतूणतरिदो त्थीवेदद्विदि परिभमिय पमत्तो जादो ।
लद्धमंतरं (३) । मदो देवो जादो । अहुवस्सेहि तीहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया त्थीवेदद्विदी
लद्धमुक्कस्संतरं । एदमपमत्तसत्तं वि उक्कस्संतरं भाणिव्वं, विसेसाभावा ।

शंका-स्वप्न 'देशोन' ऐसा वचन क्यों नहीं कहा ?

समाधान-नहीं, क्योंकि, 'पुधक्त्व' इस पदके निर्देशसे ही उस देशोनताका
ज्ञान हो जाता है ।

स्वीवेदी संयतासंयत जीवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहनीयकर्मकी अद्वार्त्त
प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक अन्य वेदी जीव, स्वीवेदियोंमें उत्पन्न हुआ । दो मास
गर्भमें रह कर निकला और दिवसपृथक्त्वसे विग्रुद्ध हो वेदकसम्यक्त्व और संयमा-
संयमको एक साथ प्राप्त हुआ (१) । पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो स्वी-
वेदकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर अन्तर्मुहूर्त प्रथमोपशमसम्यक्त्व और वेदसंयमको एक
साथ प्राप्त हुआ (२) । पुनः सात्तादन गुणस्थानको जाकर मरा और देव होगया । इस
प्रकार दो मुहूर्त और दिवसपृथक्त्वसे अधिक दो माससे कम स्वीवेदकी स्थिति स्वीवेदी
संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

स्वीवेदी प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अद्वार्त्त प्रकृतियोंकी
सत्तावाला कोई एक अन्य वेदी जीव, स्वीवेदी मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भको आदि
लेकर आठ वर्षका हो वेदकसम्यक्त्व और अग्रमत्त गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१) ।
पुनः प्रमत्तसंयत हुआ (२) । पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो स्वीवेदकी
स्थितिप्रमाण परिभ्रमणकर अन्तर्मुहूर्त प्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (३) ।
पश्चात् मरा और देव हुआ । इस प्रकार आठ वर्ष और तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम स्वीवेदकी
स्थितिप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर लब्ध हुआ ।

इसी प्रकारसे स्वीवेदी अग्रमत्तसंयतका भी उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिए,
क्योंकि, उसमें कोई विशेषता नहीं है ।

दोण्डमुवसामगणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च जहणुण एगसमयं ॥ १८७ ॥

इदो? एगसमय-नामपुधत्तेहि ओघादो भेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च जहणुण अंतोमुहत्तं ॥ १८८ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण पल्लिदोवमसपुधत्तं ॥ १८९ ॥

तं जहा-एक्को अण्णेदो अट्टमीसमोहमंतकम्मिओ त्थीवेदमणुमेसुवण्णो । अट्ट-
तस्मिओ मम्मत्तं मंनमं च जुगमं पडिण्णो (१) । अण्णताणुवंधी प्रिसंजोइय (२)
देमणमोहणीयुग्गाभिय (३) अप्पमत्तो (४) पमत्तो (५) अप्पमत्तो (६) अप्पुब्बो
(७) अणियट्ठो (८) मुहुमो (९) उयमत्तो (१०) भूओ पडिणियत्तो मुहुमो (११)
अणियट्ठी (१२) अप्पुब्बो (१३) हेट्ठा पडिट्ठंततिदो त्थीवेदुद्धिदिं भमिय अवसाणे
मंनमं पडिण्णिय कदरणिज्जो होदुण अप्पुब्बुअममगो जादो । लद्धमंतरं । तदो णिदा-

स्त्रीवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों उपशामकोंका अन्तर कितने
काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके
गमान है ॥ १८७ ॥

स्त्रीवेदि, जगन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है, इनकी अपेक्षा
ओघसे इनमें कोई भेद नहीं है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहत्तं है ॥ १८८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्लोपमशतपृथक्त्व है ॥ १८९ ॥

जैसे- मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक अन्य वेदी जीव,
स्त्रीवेदी मनुष्योंमें उपपन्न हुआ और आठ वर्षका होकर सम्यक्त्व और समयको एक साथ
प्राप्त हुआ (१) । पश्चात् भनत्तानुगन्धी कणायका प्रिसंयोजन कर (२) दर्शनमोहनीयका
उपशाम कर (३) अप्रमत्तसंयत (४) प्रमत्तसंयत (५) अप्रमत्तसंयत (६) अपूर्वकरण (७)
पतिवृत्तिकरण (८) मुहुमममगणाय (९) और उपशान्तकणाय (१०) होकर पुन
मतिनिवृत्त हो स्वसममगणाय (११) अनिवृत्तिकरण (१२) और अपूर्वकरणसंयत हो (१३)
नौवें विपरक अन्तरको प्राप्त हुआ और स्त्रीवेदी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर अन्तमें
संयमको प्रान्त हो एतदुत्प्रेयवत्क होकर अपूर्वकरण उपशामक हुआ । इस प्रकार

१ इसकावचनसे प्रामाण्योक्तता गणायत्त । म. वि. १, ८.

२ पृ. १८६ न. ३. उपशान्तकर्म । म. वि. १, ८.

३ १८९९ पदके अन्तर्गत । म. वि. १, ८.

पयलाणं वंधं वोच्छिण्णे मदो देवो जादो । अट्टधस्सेहि तेरसंतोमुहुत्तेहि य अपुल्लकरणद्वार
सत्तमभोगेण च ऊणिया सगड्ढिदी अंतरं । अणियट्ठिस्म वि एवं चेम । णवरि वारस
अंतोमुहुत्ता एगसमओ च वत्तन्वो ।

दोण्डं खवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च
जहणुण एगसमयं ॥ १९० ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ १९१ ॥

अप्पमत्तत्थीवेदाणं वासपुधत्तेण विणा अण्णस्स अंतरस्स अणुमलंभादो ।

एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १९२ ॥

सुगममेदं ।

पुरिसवेदएसु मिच्छादिट्ठी ओधं ॥ १९३ ॥

अन्तर लज्ज हुआ । पीछे निद्रा और प्रचलाके बंध विच्छेद हो जाने पर मरा और देव
होगया । इस प्रकार आठ वर्ष और तेरह अन्तर्मुहत्तोंसे, तथा अपूर्वकरण-कालके सातवें
भागसे हिन अपनी स्थितिप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर है । अनिवृत्तिकरण उपशामकका भी इसी
प्रकारसे अन्तर होता है । विशेष बात यह है कि उनके तेरह अन्तर्मुहत्तोंके स्थानपर बारह
अन्तर्मुहत्त और एक समय कम कहना चाहिए ।

स्त्रीवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों क्षपकोंका अन्तर वितने काल
होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यमे एक समय अन्तर है ॥ १९० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

स्त्रीवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण क्षपकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व
है ॥ १९१ ॥

स्त्रीवेदि, अप्रमत्तसंयत स्त्रीवेदियोंका वर्षपृथक्त्वके अतिरिक्त अन्य अन्तर नहीं
पाया जाता है ।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्तर नहीं है, निरन्तर
है ॥ १९२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

पुरुषोद्विगोमि मिथ्याद्विगोमि अन्तर ओघके समान है ॥ १९३ ॥

१ इदो क्षपणोर्नानाजीवपेक्षया जघन्यैक समयः । म. वि. १, ८

२ उत्तरेण वर्षपृथक्त्वम् । म. वि. १, ८

३ पृच्छीव मति नाल्लवण । म. वि. १, ८

४ पुत्तंयु विप्याट्ठे गालायत्त । म. वि. १, ८

कुटो ? पाणजीवं पडुच्च अंतगभावेण, एगजीवविसयअंतोमुहुत्त-देखणेच्छावडि-
मागरोपमंतरेहि य तदो भेदाभावा ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो
होदि, पाणजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ ११४ ॥

सुगममेदं ।

उक्कसेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११५ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो,
अंतोमुहुत्तं ॥ ११६ ॥

एदं पि सुगेहं ।

उक्कसेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ ११७ ॥

तं जहा- एकको अणवेदो उग्रमसम्मादिट्ठी सासणं गंतूण सासणद्वार, एगो
समओ अत्थि ति पुरिसवेदो जादो । सासणगुणेण एगसमयं दिट्ठो, विदियसमए मिच्छत्तं
फ्यंति, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरका शभाव होनेसे, एक जीवकी अपेक्षा
जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम दो ह्यासठ सागरोपम अन्तरकी अपेक्षा
ओधमिथ्यादृष्टि अन्तरसे पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टियोंके अन्तरमें कोई भेद नहीं है ।

पुरुषवेदी मासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल
होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ११४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमका असंख्यातवां भाग है ॥ ११५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा
जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ११६ ॥

यह सूत्र भी सुबोध है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्व है ॥ ११७ ॥

जैसे- अन्य वेदवाला एक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव, सासादन गुणस्थानमें जाकर,
सासादन गुणस्थानके कालमें एक समय अवशिष्ट रहने पर पुरुषवेदी होगया और
सासादन गुणस्थानके साथ एक समय दृष्टिगोचर हुआ । द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको

१ मासादनसम्यग्दृष्टिमप्यमिथ्याद्येनानिजीवोपेक्षया सामान्यवर । स वि १, ८

२ एगजीव प्रति जघन्येन पल्योपमासत्त्येयमगोडन्तर्मुहूर्तम् । स वि १, ८

३ उत्तरेण मागरोपमशतपृथक्त्वम् । स वि १, ८

गंतूणंतरिदो पुरिसवेदडिदिं भमिय अत्रसाणे उग्रमसम्मत्तं धेत्तूण सासणं पडिचणो ।
विदियसमए मदो देवेषु उववणो । एवं वि-समऊणसागरोवमसदपुधत्तमुक्कस्संतरं होदि ।

सम्माभिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे- एकको अट्ठावीससंतकम्मिओ अणवेदो देवेषु
उववणो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विमुट्ठो (३) सम्मा-
भिच्छत्तं पडिचणो (४) मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो सगडिदिं परिभमिय अंते सम्माभिच्छत्तं
गदो (५) । लद्धमंतरं । अण्णगुणं गंतूण (६) अणवेदे उववणो । छहि अंतोमुहुत्तेहि
ऊणं सागरोवमसदपुधत्तमुक्कस्संतरं होदि ।

असंजदसम्मादिट्ठिपहुडि जाव अपमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं
कालादो होदि, पाणजीवं पडुच्च जहणेण अंतरं, गिरंतरं ॥ ११८ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ११९ ॥

एदं पि सुगमं ।

जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ । पुरुषवेदकी स्थितिप्रमाण परिश्रमण करके आयुके अन्तमें
उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण कर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ । पश्चात् द्वितीय
समयमें मरा ओर देवोंमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार उक्त जीवोंका दो समय कम सागरोपम-
शतपृथक्त्व अन्तर होता है ।

पुरुषवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहरूर्मकी
अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक अन्य वेदी जीव, देवोंमें उत्पन्न हुआ, छहों
पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विमुट्ठ हो (३) सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त
हुआ (४) । पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो अपनी स्थितिप्रमाण परि-
श्रमण करके अन्तमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (५) । इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया ।
तत्पश्चात् अन्य गुणस्थानको जाकर (६) अन्य वेदमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार छह
अन्तर्मुहूर्तोंसे कम सागरोपमशतपृथक्त्व पुरुषवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट
अन्तर होता है ।

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अग्रमत्तसंयत गुणस्थान तक पुरुषवेदी जीवोंका अन्तर
कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ११८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त गुणस्थानवर्ती जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ११९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

१ असंयतसम्यग्दृष्ट्याग्रमत्तानां नानाजीवोपेक्षया नास्त्यन्तरम् । स वि. १, ८

२ एगजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तम् । स वि. १, ८.

उत्कस्सेण सागरोवमसदुधत्तं ॥ २०० ॥

यथाशममादिष्टस्य उन्नेदे- एस्को अङ्गानीसमंत्तस्मिओ अण्णवेदो देवेसु उपाण्णो । छदि पज्जनीहि पज्जत्तयो (१) विम्भतो (२) मिसुदो (३) वेदगमम्मत्तं पडिअण्णो (४) । मिच्छत्तं गंतूणंतिरो नगदिदि भमिय अत्ते उयसमसम्मत्तं पडिअण्णो (५) । छाअधियागमे उयसमसम्मत्तं जामाणं गंतूणं मद्दो देवेसु उययण्णो । पंचहि अत्तेमुदुचेहि उयं सागरोवमसदुधत्तं होदि ।

मंजदगंजदस्य उन्नेदे- एस्को अण्णवेदो पुरिमवेदेसु उययण्णो । वे मासे गन्धे अचिदूण निस्सतो दिव्यपुधत्तेण उयममसम्मत्तं मंजमागंजसं च जुगं पडिअण्णो । उयममसम्मत्तं द्वाए छाअधियाओ अनियं चि मागं गदो (१) मिच्छत्तं गंतूणं पुरिसवेद- विदि परिभमिय अत्ते मणुगेसु उययण्णो । कदकरणिज्जो होदूण संजमागंजं पडिअण्णो (२) । लद्धमंतं । मद्दो अप्पमत्तो (३) पमत्तो (४) अप्पमत्तो (५) । उवरि छ अतोमुदुत्ता । एअं नेहि मावेहि तीहि दिवमेहि एस्कारमेहि अंतोमुदुत्तोहि य ऊणा पुरिम- वेरदिदी उत्कस्सेणं होदि । किं कारणं अंतरे लद्धे मिच्छत्तं गेदूण अण्णवेदेसु ग

अमंयतादि नार गुणस्सानगनीं पुल्लेनेदियांका उन्नुट्ट अन्तर सागरोपमयत्त- रुपस्स है ॥ २०० ॥

अमंयतमयगददि पुरगयेदी जीवका उन्नुट्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्टारस मरुतिपोंको सत्तागला कोरै एक अन्य वेदी जीव वेयोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पयसियोंसे पयान हो (१) पिआम ने (२) रिगुद हो (३) वेदकसयस्सको प्राप्त हुआ (४) । पध्यात् मिथ्यागको जाकर अन्तरको प्राप्त हो अपनी स्थितिप्रमाण परिश्रमणकर अन्तमें उपशम- मयस्सको प्राप्त हुआ (५) । उपशमसयस्सके कालमें छह आयसियों अवशेष रहते पर मागादनको जाकर मरा और वेयोंमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार पाच अन्तमुदुत्तोसे काम सागरोपमयगदयस्स पुरगयेदी असयतसयगददि जीवोंका अन्तर होता है ।

मपतामयत पुरगयेदी जीवका उन्नुट्ट अन्तर कहते हैं- कोरै एक अन्य वेदी और पुल्लेनेदियोंमें उत्पन्न हुआ । दो मान गर्भमें रहकर निरुज्जता हुआ विचल पुरस्ससे उयममसम्मत्त और मंजमागंजको एक साथ प्राप्त हुआ । उय उपशमसयस्सके कालमें छह आयसियों रहतीं तर सत्तादनगुणस्थानको प्राप्त हो (१) मिथ्यात्वको जाकर पुरगयेदी स्थितिप्रमाण परिश्रमणकर अन्तमें मणुयोंमें उत्पन्न हुआ और वृत्तस्सवेद- होकर संयमागंजको प्राप्त हुआ (२) । इस प्रकार अन्तर लद्ध होगया । पध्यात् अमस- मयत्त (३) प्रमासंगत्त (४) और अयमत्तकयत्त हुआ (५) । इनमें उपरके गुणस्सानो- तस्सयेदी उय अन्तमुदुत्तं जीव मिलारे । इस प्रकार दो मान, तीन दिन और ग्यारह अन्त- मुदुत्तोंसे बन पुरगयेदी स्थिति ही पुरगयेदी मंजमागंजका उन्नुट्ट अन्तर होता है ।

शुक्ता-अन्तर प्राप्त हो जनेपर पुनः मिथ्यागको ले जाकर अन्य वेदियोंमें

१ उन्नेदं सागरोवमसदुधत्तं । म. वि. १, ८.

उपादिदो ? ग एम दोतो, जेण कालेण मिच्छत्तं गंतूणं आउअं वंधिय अण्णवेदेसु उवज्जदि, सो कालो सिज्जणकालादो संसेज्जणो चि कद्ध अणुप्पाइत्तादो । उवरिछाणं पि एदं चैय कारणं वत्तव्वं । पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणं पंचिदियपज्जत्तभंगो । गारि विसेसं जाणिय वत्तव्वं ।

दोणहसुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च ओर्धं ॥ २०१ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुदुत्तं ॥ २०२ ॥

एदं पि सुगमं ।

उत्कस्सेण सागरोवमसदुधत्तं ॥ २०३ ॥

उत्पन्न नहीं करताया, इसका क्या कारण है ?

समाधान—यह कोरै दोष नहीं है, क्योंकि, जिस कालसे मिथ्यात्वको जाकर और आयुको बांधकर अन्य वेदियोंमें उत्पन्न होता है, वह काल सिद्ध होनेवाले कालसे सत्तागतगुणा है, इस अपेक्षासे उसे मिथ्यात्वमें ले जाकर पुनः अन्य वेदियोंमें नहीं उत्पन्न कराया ।

उपरके गुणस्थानोंमें भी यही कारण कहना चाहिये । पुरगयेदी प्रमत्तसंयत और अमत्तसंयतोंका भी अन्तर पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान है । केवल इनमें जो विशेषता है उसे जानकर कहना चाहिये ।

पुरगयेदी अपूर्वकरण और अनिच्छितकरण, इन दो उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा इन दोनों गुणस्थानोंका अन्तर ओषके समान है ॥ २०१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तमुदुत्तं है ॥ २०२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमयतपुत्रक्य है ॥ २०३ ॥

१ इत्योषकमपानोर्नानाभावेसा सामान्यता । म. वि. १, ८.

२ पृच्छीव प्रति अप्येनानामुदुत्तः । स वि १, ८

३ उन्नेदं सागरोवमसदुधत्तं । म. वि. १, ८

तं जहा-एवको अट्टनीममंतकस्मिओ अणवेदो पुरिसवेदमणुमेसु उववण्णो अट्टस्मिओ जादो । मम्मत्तं मंजमं च जुगमं पडिण्णो (१) । अणंताणुवांधं विसंजोइय (२) दंयणमोहणीयधुवसासिय (३) अप्पमत्तो (४) पमत्तो (५) अप्पमत्तो (६) अप्पमत्तो (७) अणियट्ठी (८) मुट्ठमो (९) उवसंतकसाओ (१०) पडिणियत्तो मुट्ठमो (११) अणियट्ठी (१२) अप्पमत्तो (१३) हेट्ठा परियट्ठिय अंतरिदो । सागरो-यममदपुत्तं परिभमिय कदरुणज्जो नोदूण संजमं पडिवज्जिय अपुव्वो जादो । लट्ठमंतं । उमरि पंचिदियमंगो । एवमट्ठमस्सेहि एण्णतीमअतोसुहेचि य ऊणा सगट्ठिदी अंतं होदि । अणियट्ठिस्स वि एवं च वत्तवं । जवरि अट्ठवस्सेहि सत्तावीसअंतो-मुट्ठचेहि य ऊणं सागरोवमसदपुत्तमंतं होदि ।

दोणहं खवाणमंतं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २०४ ॥

सुगममेदं ।

जैसे- मोहकर्मकी अट्ठार्हस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक अन्यवेदी जीव पुरुषवेदी मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । आठ वर्षका होकर सम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त हुआ (१) । अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन कर (२) दर्शनमोहनीयका उपशमन कर (३) अप्रमत्तमयत (४) प्रमत्तमयत (५) अप्रमत्तसंयत (६) अपूर्वकरण (७) अनियुत्तिकरण (८) सूक्ष्मसाम्पराय (९) उपशान्तकामाय (१०) पुनः लौटकर सूक्ष्म-साम्पराय (११) अनियुत्तिकरण (१२) अपूर्वकरण (१३) होता हुआ नीचे गिरकर अन्तरको प्राप्त हुआ । सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण परिश्रमण कर कृतकत्ववेदकसम्यग्मन्वी होकर संयमको प्राप्त कर अपूर्वकरणमयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । इसके ऊपर का कथन पंचेन्द्रियोंके समान है । इस प्रकार आठ वर्ष और उनकी अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थितिप्रमाण पुरुषवेदी अपूर्वकरण उपशामकना उत्कृष्ट अन्तर होता है । अनियुत्तिकरण उपशामकना भी इसी प्रकारसे अन्तर कहना चाहिए । विशेष बात यह है कि आठ वर्ष और सत्तार्हस अन्तर्मुहूर्तोंसे कम सागरोपमशतपृथक्त्व इनका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

पुरुषवेदी अपूर्वकरणसंयत और अनियुत्तिकरणसंयत, इन दोनों क्षपकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २०४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ इत्यो क्षपक्योर्नानाजीवपेक्षया जघन्यैक समय । त सि १, ६.

उक्कस्सेण वासं सादिरैयं ॥ २०५ ॥

तं जहा-पुरिसवेदेण अपुव्वगुणं पडिण्णो सव्वे जीवा उवरिभगुणं गदा । अंतरिदमपुव्वगुणद्वयं । पुणो छमासेसु अदिकत्तेसु सव्वे इत्थिवेदेण चैव सव्वग-सेट्ठिमारूढा । पुणो चत्तारि वा पंच वा मासे अंतरिदूण खगसेट्ठि चट्ठमाणा णवुसय-वेदोदएण चट्ठिदा । पुणो वि एक्कदो मासे अंतरिदूण इत्थिवेदेण चट्ठिदा । एवं सखेज-वारमिलिय-णवुसयवेदोदएण चैव खगसेट्ठि चट्ठाविय पच्छा पुरिसवेदोदएण खगसेट्ठि चट्ठिदे वासं सादिरैयमंतरं होदि । कुदो ? णिरंतं छम्मासंतरस्स असंभादो । एवमणि-यट्ठिस्स वि वत्तवं । केसु वि सुत्तपोत्थएसु पुरिसवेदस्संतरं छम्मासा ।

एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २०६ ॥

कुदो ? सव्वगणं पडिणियत्तीए असंभा ।

णउंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २०७ ॥

उक्त दोनों क्षपकोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है ॥ २०५ ॥

जैसे-पुरुषवेदके द्वारा अपूर्वकरणक्षपक गुणस्थानको प्राप्त हुए सभी जीव ऊपरके गुणस्थानोंको चले गए और अपूर्वकरणगुणस्थान अन्तरको प्राप्त होगया । पुनः छह मास व्यतीत हो जाने पर सभी जीव खीवेदके द्वारा ही क्षपकश्रेणी पर आरूढ हुए । पुनः चार या पाच मासका अन्तर करके नपुंसकवेदके उदयसे कुछ जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़े । पुनः एक दो मास अन्तरकर कुछ जीव खीवेदके द्वारा क्षपकश्रेणीपर चढ़े । इस प्रकार संख्यात वार खीवेद और नपुंसकवेदके उदयसे ही क्षपकश्रेणीपर चढ़ा करके पीछे पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणी चढ़नेपर साधिक वर्षप्रमाण अन्तर हो जाता है, क्योंकि, निरन्तर छह मासके अन्तरसे अधिक अन्तरका होता असम्भव है । इसी प्रकार पुरुषवेदी अनियुत्तिकरणक्षपकका भी अन्तर कहना चाहिए । कितनी ही सूत्रपेथियोंमें पुरुषवेदका उत्कृष्ट अन्तर छह मास पाया जाता है ।

दोनों क्षपकोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २०६ ॥

क्योंकि, क्षपकोंका पुनः लौटना असम्भव है ।

नपुंसकवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २०७ ॥

१ उत्तर्येण सव्वत्तर सातिके । त सि १, ८ २ एकजीव प्रति नात्त्यन्तर । त. सि १, ८

३ नपुंसकवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवपेक्षया नात्त्यन्तर । त सि १, ८.

दोहं स्वाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २११ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २१२ ॥

कुदो ? अपमत्तवेदत्तादो ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ २१३ ॥

सुगममेदं ।

अवगदेवदएसु अणियट्ठिउवसम-सुहुमउवसमाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २१४ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २१५ ॥

कुदो ? उवसमगत्तादो ।

नपुंसकनेदी अपूर्णरूपसंयत और अनिवृत्तिरूपसंयत, इन दोनों क्षपकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २११ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त दोनों नपुंसकनेदी क्षपकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २१२ ॥

स्म्यौकि, यह अमरास्त वेद है (और अमरास्त वेदसे क्षपकश्रेणी चढ़नेवाले जीव गृह्यत नहीं होते) ।

उक्त दोनों नपुंसकनेदी क्षपकोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २१३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अपगतवेदियोंमें अनिवृत्तिरूपण उपशामक और सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २१४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त दोनों अपगतनेदी उपशामकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २१५ ॥ स्म्यौकि, ये दोनों उपशामक गुणस्थान हैं (और ओघमें उपशामकोंका इतना ही उत्कृष्ट अन्तर बतलाया गया है) ।

१ रया क्षपको संविदवत् । स सि १, ८

२ अगतवेदेषु अनिवृत्तिरूपणसाम्पराययोपशामकयोर्नानाजीवोपेक्षया सामा योलेत् । स सि १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१६ ॥

कुदो ? उवरि चडिय हेड्डा ओदिणस्स अंतोमुहुत्तंतरुलंभा ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २१७ ॥

सुगममेदं ।

उवसंतकसायीदरागछुदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २१८ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २१९ ॥

कुदो ? एगवारसुवसमसेहिं चडिय ओदरिदूण हेड्डा पडिय अंतरिदे उक्कस्सेण उवसमसेदीए वासपुधत्तंतरुलंभा ।

उक्त दोनों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर है ॥ २१६ ॥ स्म्यौकि, ऊपर चढ़कर नीचे उतरनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्त दोनों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर है ॥ २१७ ॥ यह सूत्र सुगम है ।

उपशान्तकपायवीतरागछुदुमत्थोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २१८ ॥ यह सूत्र भी सुगम है ।

उपशान्तकपायवीतरागछुदुमत्थोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २१९ ॥ स्म्यौकि, एकवार उपशमश्रेणीपर चढ़कर तथा उतर नीचे गिरकर उत्कर्षसे उपशमश्रेणीका वर्षपृथक्त्वप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

१ एकजीव प्रति जघन्यमुल्लूह चान्तर्मुहूर्तः । स सि १, ८.

२ उपशान्तकपायस्य नानाजीवोपेक्षया सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २२० ॥

उवरि उवसंतकसायस्स चडणाभावा । हेट्ठा पडिदे वि अवगदेवेदत्तेण चेय उवसंतगुणद्वणपडिवज्जेणे संभवाभावा ।

अणियाट्टिखवा सुहुमखवा खीणकसायवीदरागछुदुमत्था अजोगि-
केवली ओघं ॥ २२१ ॥

कुदो ! अवगदेवेदत्तं पडि उहयत्थ अत्थविसेसाभावा ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ २२२ ॥

सुगममेदं ।

एव वेदमगणा समत्ता ।

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-भायकसाइ-लोहकसाइसु
मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा ति मणजोगि-
भंगो ॥ २२३ ॥

उपशान्तकपायका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २२० ॥

क्योंकि, उपशान्तकपायवीतरागके ऊपर चढ़नेका अभाव है । तथा नीचे गिरने पर भी अपगतवेदरूपसे ही उपशान्तकपाय गुणस्थानको प्राप्त होना सम्भव नहीं है ।

अपगतवेदियोंमें अनिवृत्तिकरणक्षपक, स्रस्मसाम्परायक्षपक, क्षीणकपायवीतराग-
छन्नस्य और अयोगिकिवली जीवोंका अन्तर ओघके समान है ॥ २२१ ॥

क्योंकि, अपगतवेदत्वके प्रति ओघप्ररूपणा और वेदमार्गणाकी प्ररूपणा, इन दोनोंमें कोई अर्थकी विशेषता नहीं है ।

सयोगिकिवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ २२२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार वेदमार्गणा समाप्त हुई ।

कपायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकपायी, मानकपायी, मायाकपायी और लोभ-
कपायियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर स्रस्मसाम्पराय उपशामक और क्षपक तक प्रत्येक
गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्तर मनोयोगियोंके समान है ॥ २२३ ॥

१ एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् । स ति १, ८ २ शेषाणां सामान्यवत् । स ति १, ८

३ कपायाद्युवादेन क्रोधमानमायालोभक्रयाणां मिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्त्युपशमकान्तानां मनोयोगिवत् । द्रव्योः
क्षपकयोर्नानाजीवपेक्षया जघन्यैर्नैक समय । उत्तर्येण सवत्सरः सातिरेक । केवललोभस्य स्रस्मसात्परापोषमस्य
नानाजीवपेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् । क्षपकस्य तस्य सामान्यवत् । स ति १, ८

मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणं मण-
जोगिभंगो होदु, णाणेगजीवं पडि अंतराभावेण साधम्माम्मदो । सासणसम्मादिट्ठि-सम्मा-
मिच्छादिट्ठिणं मणजोगिभंगो होदु णाम, णाणाजीविजहणुक्कस्स-एगसमय-पलिदोवमस्स
असंखेज्जिभांगंतरेहि, एगजीवं पडि अंतराभावेण च साधम्माम्मदो । तिण्हसुवसामगाणं
वि मणजोगिभंगो होदु णाम, णाणाजीविजहणुक्कस्सेण एगसमयवासपुधत्तरेहि, एग-
जीवसंतराभावेण च साधम्माम्मदो । किंतु तिण्हं खवाणं मणजोगिभंगो ण धडदे । कुदो ?
मणजोगिभंगेव कसायाणं छम्ममासांतराभावा । तं हि कथं णव्वदे ? अप्पिदकसायवदिरित्तेहि
तिहि कसाएहि एग-दु-ति-संजोगकमेण खवगसेट्ठिं चडमाणानं चहुवंतरुवलंभा ? ण एस
देसो, ओघेण सहप्पिदमणजोगिभंगणहाणुववत्तीदो । चटुण्हं कसायाणसुक्कस्संतरस्स
छम्माम्ममेत्तस्सेव सिद्धीदो । ण पाहुडसुत्तेण वियहिचारो, तस्स भिणोवदेसत्तादो ।

शंका—मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्र-
मत्तसंयतोंका अन्तर भले ही मनोयोगियोंके समान रहा आवे, क्योंकि, नाना जीव और
एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे समानता पाई जाती है । सासादनसम्यग्दृष्टि
और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका भी अन्तर मनोयोगियोंके समान रहा आवे, क्योंकि, नाना
जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्योपमके असंख्यातवें
भागकी अपेक्षा, तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे समानता पाई जाती है ।
तीनों उपशामकोंका भी अन्तर मनोयोगियोंके समान रहा आवे, क्योंकि, नाना जीवोंके
जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः एक समय और वर्षपृथक्त्वकालसे, तथा एक जीवकी
अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे समानता पाई जाती है । किन्तु तीनों क्षपकोंका अन्तर
मनोयोगियोंके समान घटित नहीं होता है, क्योंकि, मनोयोगियोंके समान कपायोंका
अन्तर छह मास नहीं पाया जाता है ?

प्रतिशंका—यह कैसे जाना जाता है ?

प्रतिसमाधान—विवक्षित कपायसे व्यतिरिक्त शेष तीन कपायोंके द्वारा एक,
दो और तीन सयोगके क्रमसे क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीवोंका बहुत अन्तर पाया
जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, ओघके साथ विवक्षित मनोयोगियोंके
समान कथन अन्यथा बन नहीं सकता है, तथा चारों कपायोंका उत्कृष्ट अन्तर छह
मासमात्र ही सिद्ध होता है । ऐसा माननेपर पाहुडसूत्रके साथ व्यभिचार भी नहीं
आता है, क्योंकि, उसका उपदेश भिन्न है ।

॥ ५७ ॥

अकसाईसु उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ २२४ ॥

सुगममेदं ।

उवकस्सेण वासपुधत्तं ॥ २२५ ॥

उमममेदिमयत्तादो ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ २२६ ॥

हेट्ठा ओदरिय अकसायत्ताविणासेण पुणो उवसंतपज्जाएण परिणमणाभात्ता ।

स्वीणकसायवीदरागछुदुमत्था अजोगिकेवली ओधं ॥ २२७ ॥

सजोगिकेवली ओधं ॥ २२८ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एव कसायमगणा समत्ता ।

अरुपायिओं उपगान्तरुपायवीतरागछुदुमत्थोंका अन्तर कितने काल होता है ?

नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २२४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २२५ ॥

क्योंकि, यह गुणस्थान उपशमश्रेणीका विषयभूत है (ओर उपशमकोंका उत्कृष्ट अन्तर इतना हो बतलाया गया है) ।

उपशान्तरुपायवीतरागछुदुमत्थका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २२६ ॥

क्योंकि, नीचे उतरकर अकयायताका विनाश हुए विना पुनः उपशान्तपर्यायके परिणमनका अभाव है ।

अरुपायी जीवोंमें क्षीणरुपायवीतरागछुदुमत्थ और अयोगिकेवली जीवोंका अन्तर ओधके समान है ॥ २२७ ॥

सयोगिकेवली जीवोंका अन्तर ओधके समान है ॥ २२८ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार कयायमगणा समान्त हुई ।

१ चरुपांगु उपशान्तरुपायस्य नानाजीवपेक्षया सामान्यवत् । स मि १, ८

२ एकजीव प्रति नास्त्यन्तस्य । स. मि. १, ८

३ द्वेपापी वराना सामान्यवत् । स. मि १, ८

गाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ २२९ ॥

अच्छिण्णपवाहत्तादो गुणसंकतीए अभावादो ।

सासणसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च ओधं ॥ २३० ॥

कुदो ? जहणुक्कस्सेण एगममय-पलिदेवमासंखेजिभागोहि साधम्मादो ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ २३१ ॥

कुदो ? गाणंतरगमणे मग्गणविणासादो ।

आभिणिवोहिय-सुद-ओहिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ २३२ ॥

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्तज्ञानी, श्रुताज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी ओर एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २२९ ॥

क्योंकि, इन तीनों अज्ञानबोले मिथ्यादृष्टियोंका अधिच्छिन्न प्रवाह होनेसे गुण-स्थानके परिवर्तनका अभाव है ।

तीनों अज्ञानबोले सासादनसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओधके समान है ॥ २३० ॥

क्योंकि, जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्योपमके असंख्यतवें भागकी अपेक्षा समानता है ।

तीनों अज्ञानबोले सासादनसम्यग्दृष्टियोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २३१ ॥

क्योंकि, प्ररूपणा किए जानेबोले ज्ञानोंसे भिन्न ज्ञानोंको प्राप्त होने पर विवक्षित मार्गणाका विनाश हो जाता है ।

आभिनिवोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानबोले असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २३२ ॥

१ ज्ञानावुवादेन मत्तज्ञानश्रुताज्ञानविमग्गज्ञानिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवपेक्षया एक जीवपेक्षया च नास्त्यन्तस्य । स मि १, ८. २ सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवपेक्षया सामान्यवत् । स. मि १, ८.

३ एकजीव प्रति नास्त्यन्तस्य । स मि १, ८.

४ आभिनिवोधिकश्रुतावधिज्ञानिषु असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवपेक्षया नास्त्यन्तस्य । स मि. १, ८.

हुदो ? सब्बकालमविच्छिण्णपवाहत्तादो ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २३३ ॥

तं जहा- एको असंजदसम्मदिट्ठी संजमासंजमं पडिक्खणो । तत्थ सब्बलहुमंतो-
मुहुत्तमच्छिय पुणो वि असंजदसम्मदिट्ठी जादो । लद्धमंतोमुहुत्तमंतरं ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसुणं ॥ २३४ ॥

तं जहा- जो कोई जीवो अट्ठावीससंततम्मिओ पुव्वकोडाड्डिदिग्गिणिसम्मच्छिम-
पज्जत्तएसु उव्वण्णो । छहि पज्जत्तोहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) तिसुदो (३)
वेदगसम्मत्तं पडिक्खणो (४) अंतोमुहुत्तेण तिसुदो संजमासंजमं गंतूणंतरिदो । पुव्व-
कोडिकालं संजमासंजममणुपालिदूण मदो देवो जादो । लद्धं चट्ठहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया
पुव्वकोडी अंतरं ।

ओधिणाणिअसंजदसम्मदिट्ठिस्म उच्चदे- एको अट्ठावीससंततम्मिओ मणि-
सम्मच्छिमपज्जत्तएसु उव्वण्णो । छहि पज्जत्तोहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२)
तिसुदो (३) वेदगसम्मत्तं पडिक्खणो (४) । तदो अंतोमुहुत्तेण ओधिणाणी जादो ।

स्वोकि, तीनों ज्ञानवाले असंयतसम्यग्दृष्टियोंका सर्वकाल अविच्छिन्न प्रवाह
रहता है ।

तीनों ज्ञानवाले असंयतसम्यग्दृष्टियोंका एक जीवकी अपेक्षा जयन्य अन्तर
अन्तर्मुहूर्त है ॥ २३३ ॥

जैसे- एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संयमास्यमको प्राप्त हुआ । वहा पर सर्व
लघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके फिर भी असंयतसम्यग्दृष्टि होगया । इस प्रकार अन्त-
र्मुहूर्तप्रमाण अन्तर लब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटी है ॥ २३४ ॥

मोहकर्मको अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई जीव पूर्वकोटीकी आयुस्थिति-
वाले सभी सम्मुखिष्ठम पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१)
विश्राम ले (२) विगुह हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४) और अन्तर्मुहूर्तसे
विगुह हो संयमास्यमको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ । पूर्वकोटीकालप्रमाण
संयमास्यमको परिपालन कर मरा और देव हुआ । इस प्रकार चार अन्तर्मुहूर्तोंसे कम
पूर्वकोटीप्रमाण मति-श्रुतशानी असंयतसम्यग्दृष्टिका अन्तर लब्ध हुआ ।

अवधिज्ञानी असंयतसम्यग्दृष्टिका अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृति-
योंकी सत्तावाला कोई एक जीव सभी सम्मुखिष्ठम पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ । छहों
पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विगुह हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त
हुआ (४) । पश्चात् अन्तर्मुहूर्तसे अवधिज्ञानी होगया । अन्तर्मुहूर्त अवधिज्ञानके साथ रह

१ एकजीव प्रति जयनेनान्तर्मुहूर्त । त मि १, ८

२ उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशीना । त मि १, ८

अंतोमुहुत्तमच्छिय (५) मंजमासंजमं पडिक्खणो । पुव्वकोडिं मंजमासंजममणुपालिदूण
मदो देवो जादो । पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया पुव्वकोडी लद्धमंतरं ।

**संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च
णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २३५ ॥**

सुगममदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २३६ ॥

एदं पि सुगमं, ओचादो एदस्स भेदाभावा ।

उक्कस्सेण छावट्टिसागरोवमाणि सादिरियाणि ॥ २३७ ॥

तं जहा- एको अट्ठावीससंततम्मिओ मणुसेसु उव्वण्णो । अट्ठवस्मिओ मजमा-
मंजमं वेदगसम्मत्तं च जुगवं पडिक्खणो (१) । अंतोमुहुत्तेण मंजमं गंतूणंतरिय संजमेण
पुव्वकोडिं गणिय अणुत्तरेदेसु तेत्तोमाड्डिदिग्गसु उव्वण्णो (३३) । तदो चुदो पुव्व-
कोडाउगेसु मणुसेसु उव्वण्णो । सडयं पट्ठविय मंजममणुपालिय पुणो ममऊणतेत्तिस-

रर (५) संयमास्यमको प्राप्त हुआ । पूर्वकोटीप्रमाण संयमास्यमको परिपालनकर मरा
और देव होगया । इस प्रकार पंच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटीकालप्रमाण अन्तर
लब्ध हुआ ।

मतिज्ञानादि तीनों ज्ञानवाले संयतासंयतोंका अन्तर कितने काल होता है ?
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २३५ ॥

यह सन सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जयन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २३६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है, स्वीकिक, ओघप्ररूपणासे इसका कोई भेद नहीं है ।

तीनों ज्ञानवाले संयतासंयतोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर माधिक
छयासठ मागरोपम है ॥ २३७ ॥

जैसे- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न
हुआ । आठ वर्षका होकर संयमास्यम और वेदकसम्यक्त्वको एक साथ प्राप्त हुआ (१) ।
पुनः अन्तर्मुहूर्तसे संयमको प्राप्त करके अन्तरको प्राप्त हो, संयमके साथ पूर्वकोटीप्रमाण
काल विता कर तेनीत मागरोपमकी आयुस्थितिवाले अनुत्तरविमानवासी देवोंमें उत्पन्न
हुआ (३३) । वहांसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । तय क्षायिक-
सम्यक्त्वको धारणकर ओर संयमको परिपालनकर पुन- एक समय कम तेतीस

१ सयतासंयतस्य नानजीवासेसा नास्त्यन्तर । त मि १, ८

२ एकजीव प्रति जयनेनान्तर्मुहूर्तः । त मि १, ८

३ उत्कर्षेण पट्ठवियाणोपमानि सादिरियाणि । त मि १, ८

मागरोवमाउद्धिदिएसु देवेषु उववण्णो । तदो चुदो पुव्वकोडाउगेषु मणुसेसु उववण्णो । दीहकालमच्छिदूण संजमासंजम पडिवण्णो (२) । लद्धमंतरं । तदो संजमं पडिवण्णो (३) । पमत्तापमत्तपरावत्तमहस्सं कादूण (४) सनगसेदीपाओगअप्पमत्तो जादो (५) । उवरि छ अंतोमुहुत्ता । एमहुत्तमेदि एक्कारमअंतोमुहुत्तेहि य ऊणियाहि तीहि पुव्वकोडीहि सादियेयाणि छावडिसागरोवमाणि उमकस्संतरं । एवमोहिणाणिसंजदासंजदस्स वि । णवरि आभिनिवोहियणाणस्स आदीदो अंतोमुहुत्तेण आदि कादूण अंतराविय वारमअंतोमुहुत्तेहि ममहियअडुत्तस्वणन्तीहि पुव्वकोडीहि सादियेयाणि छावडिसागरोवमाणि ति मत्तवं ।

एदं वमणां ण भइयं, अप्यंतरपरूवणादो । तदो दीहंतरद्वमणा परूवणा कीरेदे । एमको अट्टागीसमंतकम्मिओ सणिसम्मच्छिदमपज्जत्तएसु उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्सतो (२) विमुदो (३) वेदगसम्मत्तं संजमासंजमं च समगं पडिवण्णो । अंतोमुहुत्तमच्छिय (४) अमजदसम्मादिड्डी जादो । पुव्वकोडिं गमिय

सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहा दीर्घकाल तक रहकर संयमासंयमको प्राप्त हुआ (२) । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । पश्चात् समयको प्राप्त हुआ (३) और प्रमत्त-अप्रमत्त-गुणस्थानसम्बन्धी सत्त्वों परावर्तनोंको करने (४) क्षपकश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (५) । इनमें ऊपरके क्षपकश्रेणीसम्बन्धी छह अन्तर्मुहूर्त मिलायें । इस प्रकार आठ वर्ष और ग्यारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तीन पूर्वकोटियोंसे अधिक दयासठ सागरोपम तीनों जानवाले संयतासंयतोका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

इसी प्रकारसे अवशिलानी संयतासंयतका भी उत्कृष्ट अन्तर जानना चाहिए । विशेष बात यह है कि आभिनिवोधिकगान्की आदिके अन्तर्मुहूर्तसे प्रारम्भ करने अन्तरको प्राप्त करार करार अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्षसे कम तीन पूर्वकोटियोंसे साधिक दयासठ सागरोपमकाल अन्तर होता है, ऐसा कहना चाहिए ।

शंका—उपर्युक्त व्याख्यान ठीक नहीं है, क्योंकि, इस प्रकार अल्प अन्तरकी प्ररूपणा होती है । अतः दीर्घ अन्तरके लिए अन्य प्ररूपणा की जाती है—मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव, संज्ञी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदक-सम्यन्त्वको और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ । संयमासंयमके साथ अन्तर्मुहूर्त रक्षकर (४) असंयतसम्यग्दृष्टि होगया । पुनः पूर्वकोटीकाल वितार कर तेरह सागरो-

लंतय-क्काविद्धेदेवेषु तेरससागरोवमाउद्धिदिएसु उववण्णो (१३) । तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो । तत्थ संजमणुपालिय वावीससागरोवमाउद्धिदिएसु देवेषु उववण्णो । (२२) । तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो । तत्थ संजमणुपालिय खइयं पट्टविय एकक्कीससागरोवमाउद्धिदिएसु देवेषु उववण्णो (३१) । तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो अंतोमुहुत्तावत्तेसे ससारं संजमासजम गदो । लद्धमंतरं (५) । विमुदो अप्पमत्तो जादो (६) । पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (७) खवगसेदीपाओग-अप्पमत्तो जादो (८) । उवरि छ अंतोमुहुत्ता । एवं चोदसेहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणचदुपुव्वकोडीहि सादियेयाणि छावडिसागरोवमाणि उमकस्संतरं । एवमोधिणाणिसंजदासंजदस्स वि अंतरं वत्तवं । णवरि आभिनिवोहियणाणस्स आदिदो अंतोमुहुत्तेण आदि कादूण अंतरा-वेदव्वो । पुणो णणारसहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि चट्ठहि पुव्वकोडीहि सादियेयाणि छावडि-सागरोवमाणि उपोदेदव्वमाणि ? णेदं वडदे, सणिसम्मच्छिमपज्जत्तएसु संजमासंजमस्सेव ओहिणाणुवसमसम्मत्तचानं संभवाभावादो । तं कथं णवदे ? 'पंचिदिएसु उवसामेतो

पमकी आयुवाले लांतव-क्कापिठ देवोंमें उत्पन्न हुआ । पश्चात् वहाँसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहाँ पर संयमको परिपालन कर वारिस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ (२२) । वहाँसे च्युत होकर पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहाँ पर समयको परिपालन कर और क्षायिक-सम्यन्त्वको धारणकर इक्कीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ (३१) । तत्पश्चात् वहाँसे च्युत होकर पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और संसारके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रह जानेपर संयमासंयमको प्राप्त हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (५) । पश्चात् विशुद्ध हो अप्रमत्तसंयत हुआ (६) । पुनः प्रमत्त-अप्रमत्तगुणस्थान-सम्बन्धी सत्त्वों परावर्तनोंको करने (७) क्षपकश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (८) । इनमें ऊपरके क्षपकश्रेणीसम्बन्धी छह अन्तर्मुहूर्त और मिलायें । इस प्रकार चोदह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम चार पूर्वकोटियोंसे साधिक दयासठ सागरोपम उत्पन्न करना चाहिए ?

समाधान—उपर्युक्त शंकामें बतलाया गया यह अन्तरकाल घटित नहीं होता है, क्योंकि, संज्ञी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें संयमासंयमके समान अवधिदान और उपशम-सम्यन्त्वकी समवताका अभाव है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है कि संज्ञी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तक जीवोंमें अवधि-ज्ञान और उपशमसम्यन्त्वका अभाव है ?

॥ ६१ ॥

सादिरयाणि उक्कस्संतरं । एतं विमेषमजोएदणं उच्चं । विमेषे जोहज्जमाणे अंतरंभंगदो अपमत्तद्वाओ तासि अंतरंवाहिरिया एक्का सवगसेदीपाओमअपमत्तद्वा तत्थेगद्वादो दुगुणा चरिमा चि अणेदव्वा । पुणो अंतरंभंगदोओ छ उवमामगद्वाओ अत्थि, तासि चादिरिल्लाए सुअमिदुमचसु अंतोमुहुत्तेसु तिणि सवगद्वाओ अणेदव्वा । एक्कस्से उवमत्तद्वाए एगवगद्वाद्दं विमोहिदं अमिद्विहि अद्रुडुत्तोमुहुत्तेहि ऊणियाए पुव्वकोडीए नादिरियाणि तेचीमं सागरोवमाणि अंतरं होदि । ओधिणिपमत्तंसजदमपमत्तदिगुणं णेदणं अंतराप्रिय पुव्वं व उक्कस्संतरं वत्तव्वं, णत्थि एत्थ विसेसो ।

अपमत्तस उच्चदे- एक्को अपमत्तो अपुव्वो (१) अणियद्दी (२) सुहुमो (३) उमंतो (४) होदणं पुणो वि सुहुमो (५) अणियद्दी (६) अपुव्वो होदणं (७) कालं गदो ममअणेतोचीममागरोवमाउद्धिदिपसु देवसु उववणो । ततो बुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववणो । अंतोमुहुत्तामसेसे संसारे अपमत्तो जादो । लद्धमंतरं (१) । तदो मत्तो (२) अपमत्तो (३) । उवरी छ अतोमुहुत्ता । अंतरस्स अबंभतरिमाओ छ उवमामगद्वाओ अत्थि, तासि अंतरंवाहिरिल्लाओ तिणि सवगद्वाओ अणेदव्वा । अंतर-

मंतोव सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है । इस प्रकारसे यह अन्तर विशेषको नहीं जोड़ करके करता है । विशेषकं जोड़ जाने पर अन्तरके आभ्यन्तरसे अप्रमत्तसंयतका काल और उनके अन्तरका वाहिरि एक क्षपकश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयतका काल होता है । उनमें एक गुणस्थानके तालने दुगुणा सदृशकाल निजाल देना चाहिए । पुनः अन्तरके आभ्यन्तर एक उपशामककाल होते हैं । उनके वाहिरि अवशिष्ट सात अन्तर्मुहुत्तोंसे तीन क्षपक गुणस्थानोंवाले क्षपककाल निजाल देना चाहिए । एक उपशान्तकालमेंसे एक क्षपककालका आधा भाग नष्टा देनेपर अवशिष्ट साढ़े तीन अन्तर्मुहुत्तोंसे कम पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपमकालप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है । अधिजानी प्रमत्तसंयतको अप्रमत्त गादि गुणस्थानमें ले जाकर और अन्तरको प्राप्त करार पूर्वके समान हो उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिए, इसमें और कोई विशेषता नहीं है ।

तीनों ज्ञानवाले अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एक अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण (१) अनिवृत्तिकरण (२) सूक्ष्मसाम्पराय (३) उपशान्तकपाय (४) हो करके फिर भी सूक्ष्मसाम्पराय (५) अनिवृत्तिकरण (६) और अपूर्वकरण हो कर (७) मरणतो प्राप्त हुआ और एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहासे च्युत होकर पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । संसारके अन्तर्मुहुत्त अवशेष रह जाने पर अप्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (१) । पश्चात् प्रमत्तसंयत (२) अप्रमत्तसंयत हुआ (३) । इनमें क्षपकश्रेणीसम्बन्धी ऊपरके छह अन्तर्मुहुत्त मिलाने । अन्तरके आभ्यन्तर उपशामकसम्बन्धी छह काल होते हैं । उनके अन्तरसे वाहिरि तीन क्षपककाल कम कर देना चाहिए । अन्तरके आभ्यन्तरवाले उपशान्त

नंभंतरिमाए उवसंतद्वाए अंतरंवाहिरिसवगद्वाए अद्रुडुत्तोमुहुत्तेहि अद्रुडुत्तोमुहुत्तेहि ऊणपुव्वकोडीए सादिरियाणि तेचीसं सागरोवमाणि उक्कस्संतरं होदि । सरिस-पक्खे अंतरस्समंतरसत्तअंतोमुहुत्तेसु अंतरंवाहिरिणअंतोमुहुत्तेसु सोहिदेसु अवसेसा वे अंतोमुहुत्ता । एदेहि ऊणाए पुव्वकोडीए सादिरियाणि तेचीसं सागरोवमाणि उक्कस्संतरं होदि । एवमोहिणाणिणो नि वत्तव्वं, विसेसाभावा ।

चटुणहुवसामगणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुव्व जहणेण एगसमयं ॥ २४१ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २४२ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुव्व जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २४३ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण छावट्ठि सागरोवमाणि सादिरियाणि ॥ २४४ ॥

कालमेंसे अन्तरसे वाहिरि क्षपककालका आधा काल निजालना चाहिए । अवशिष्ट वच्चे हुए साढ़े पांच अन्तर्मुहुत्तोंसे कम पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपम उत्कृष्ट अन्तर होता है । सदृश पक्षमें अन्तरके भीतरी सात अन्तर्मुहुत्तोंको अन्तरके वाहरी नौ अन्तर्मुहुत्तोंमेंसे घटा देने पर अवशेष दो अन्तर्मुहुत्त रहते हैं । इनसे कम पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है । इसी प्रकारसे अधिजानीका भी अन्तर कहना चाहिए, न्यौकि, उसमें कोई विशेषता नहीं है ।

तीनों ज्ञानवाले चारों उपशामकोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जवन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २४१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २४२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जवन्य अन्तर अन्तर्मुहुत्त है ॥ २४३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक छयासठ सागरोपम है ॥ २४४ ॥

१ चतुर्ण्युपशमकाना नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स. सि. १, ८

२ एक्काव गति जपनेनान्तर्मुहुत्तः । स. सि. १, ८

३ उत्तर्येण पट्यष्टिमागरोपमाणि सादिरियाणि । स. सि. १, ८

तं जहा- एकको अद्वीवीसंतकीम्मओ पुव्वकोडाउअमणुसेसु उववणो । अहु-
वसिसओ वेदगसम्मत्तमत्तगुणं च जुगवं पडियणो (१) । तदो पमत्तापमत्तपरामत्त-
सहस्सं कादूण (२) उवसमसेदीपाओगविसोहीए विसुद्धो (३) अपुवो (४) अणि-
यद्दी (५) सुहुमो (६) उवसंतो (७) पुणो वि सुहुमो (८) अणियद्दी (९)
अपुवो (१०) होदूण हेद्दा पडिय अंतरिदो । देसूणपुव्वकोडिं संजमणुपालेदूण मदो
तेत्तीससागरोमआडिदिएसु देवेषु उववणो । तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उव-
वणो । खइयं पडुविय संजमं कादूण कालं गदो तेत्तीससागरोवमाउडिदिएसु देवेषु उव-
वणो । तदो चुदो पुव्वकोडाउओ मणुसो जादो संजमं पडियणो । अंतोमुहुचावसेसे
संसारे अपुवो जादो । लद्धमंतरं (११) । अणियद्दी (१२) सुहुमो (१३) उवसंतो
(१४) भूओ सुहुमो (१५) अणियद्दी (१६) अपुवो (१७) अप्पमत्तो (१८)
पमत्तो (१९) अप्पमत्तो (२०) । उवरि छ अंतोमुहुत्ता । अहुहि वस्मेहि छन्नीसंतो-
मुहुत्तेहि य ऊणा तीहि पुव्वकोडीहि सादियेयाणि छावडिडिसागरोवमाणि उक्कस्संतरं होदि ।
अथवा चत्तारि पुव्वकोडीओ तेरसन्नावीस-एक्कत्तीससागरोवमाउडिदिदेवेषु उप्पाइय

जैसे- मोहकर्मकी अहुईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव पूर्वकोटीकी
आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । आठ वर्षका हाकर वेदकसम्यक्त्व और अप्रमत्त-
गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१) । तत्पश्चात् प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थान-
सम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके (२) उपशमश्रेणिके प्रायोग्य विद्युद्विसे नियुद्ध
होता हुआ (३) अपूर्वकरण (४) अनिवृत्तिकरण (५) सूक्ष्मसाम्पराय (६) उपशान्त-
कपाय (७) होकर फिर भी सूक्ष्मसाम्पराय (८) अनिवृत्तिकरण (९) अपूर्वकरण (१०)
होकर तथा नीचे निरकर अन्तरको प्राप्त हुआ । कुछ कम पूर्वकोटीकालप्रमाण
संयमको परिपालन कर मरा और तेतीस सागरोपम आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ ।
पश्चात् च्युत होकर पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और क्षायिकसम्यक्त्वको
धारण कर और संयम धारण करके मरणको प्राप्त हो तेतीस सागरोपमनी आयुस्थिति-
वाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहासि च्युत होकर पूर्वकोटी आयुवाला मनुष्य हुआ और
यथासमय संयमको प्राप्त हुआ । पुनः संसारके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रह जाने पर अपूर्व-
करणगुणस्थानवर्ती हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (११) । पश्चात् अनिवृत्ति-
करण (१२) सूक्ष्मसाम्पराय (१३) उपशान्तकपाय (१४) होकर पुनः सूक्ष्मसाम्पराय (१५)
अनिवृत्तिकरण (१६) अपूर्वकरण (१७) अप्रमत्तसंयत (१८) प्रमत्तसंयत हुआ (१९) ।
पुनः अप्रमत्तसंयत हुआ (२०) । इनमें ऊपरके क्षपकश्रेणीसम्बन्धी ओर भी छह अन्त-
र्मुहूर्त मिलाने । इस प्रकार आठ वर्ष और छब्बीस अन्तर्मुहूर्तोंसि कम तीन पूर्वकोटियोंसे
साधिक द्यासठ सागरोपम उत्कृष्ट अन्तर होता है । अथवा, तेरह, बाईस और इकतीस

वत्तवाओ । एवं चैव तिण्हमुवसामगणं । णवरि चट्ठीस त्रीस अंतोमुहुत्ता
ऊणा कादव्वा । एवमोहिणाणीणं पि वत्तव्वं, विसेसाभावा ।

चट्ठुहं खवगाणमोधं । णवरि विसेसो ओधिणाणीसु खवाणं
वासपुधत्तं ॥ २४५ ॥

कुदो ? ओधिणाणीणं पाएणं संभवाभावा ।

मणपजवणाणीसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो
होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २४६ ॥
सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २४७ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २४८ ॥

सागरोपम आयुकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न कराकर मनुष्यभवसम्बन्धी चार पूर्वकोटियां
कहना चाहिए । इसी प्रकारसे शेष तीन उपशमकोंका भी अन्तर कहना चाहिए । विशेष
वात यह है कि अनिवृत्तिकरणके चोवीस अन्तर्मुहूर्त, सूक्ष्मसाम्परायके बाईस अन्तर्मुहूर्त
और उपशान्तकपायके बीस अन्तर्मुहूर्त कम कहना चाहिए । इसी प्रकारसे उपशामक
अवधिशानियोंका भी अन्तर कहना चाहिए, क्योंकि, उसमें भी कोई विशेषता नहीं है ।

तीनों ज्ञानत्राले चारों क्षपकोंका अन्तर ओघके समान है । विशेष वात यह है
कि अवधिज्ञानियोंमें क्षपकोंका अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २४५ ॥

क्योंकि, अवधिशानियोंके प्राय होनेका अभाव है ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्त और अप्रमत्त संयतोंका अन्तर कितने काल होता है ?
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २४६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २४७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २४८ ॥

१ चट्ठुणां सपमाणां सामान्यवत् । मित्तु अवधिज्ञानियु नानाजीववैषया जघन्येनैक समय , उत्कर्षेण
वर्षपृथक्त्वम् । पृच्छन्ति अस्मि मात्स्यन्तस्य । स सि १, ८ २ प्रतिषु 'उप्पाण' इति पाठः ।

३ मनःपर्ययज्ञानियु प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीववैषया मात्स्यन्तस्य । स सि १, ८

४ पृच्छन्ति अस्मि जघन्यपृथक्त्व चान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

तं जहा- एकको पमत्तो मणपञ्जवणाणी अपमत्तो होदूण उवरी चडिय हेडा ओडगिण्ण पमत्तो जादो । लद्धमंतरं । अपमत्तस्स उच्चदे- एकको अपमत्तो मणपञ्जवणाणी पमत्तो होदूणतरिय मच्चिरेण कालेण अपमत्तो जादो । लद्धमंतरं । उवसमसेदि नद्धागिय किण्णतरविदो ? ण, उवसमसेदिमच्चद्वहिंतो पमत्तद्वा एक्का चेव संखेजगुणा ति गुरुच्चदेवादो ।

चदुण्हमुवसामगणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ २४९ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २५० ॥

एदं पि सुगमं ।

जैसे- एक मनःपर्ययज्ञानी प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत हो ऊपर चढ़कर और नीचे उतर कर प्रमत्तसंयत हो गया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । मनःपर्ययज्ञानी अप्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं- एक मनःपर्ययज्ञानी अप्रमत्तसंयत जीव प्रमत्तसंयत होकर अन्तरको प्राप्त हो अति दीर्घकालसे अप्रमत्तसंयत होगया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ ।

अंक्षा-मनःपर्ययज्ञानी अप्रमत्तसंयतको उपशमश्रेणी पर चढ़ाकर पुनः अन्तरको प्राप्त क्यों नहीं कराया ?

समाधान-नहीं, क्योंकि, उपशमश्रेणीसम्बन्धी सभी अर्थात् चार चढ़नेके ओर तीन उतरनेके, इन सब गुणस्थानोंसम्बन्धी कालोंसे अकेले प्रमत्तसंयतका काल ही संव्याप्तगुणा होता है, ऐसा श्रुतका उपदेश है ।

मनःपर्ययज्ञानी चारों उपशमकोक्षा अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २४९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २५० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

१ षट्पञ्चमसंज्ञानां नानाजीवविषया मामान्यवरं । स. ति. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५१ ॥
सुगममेदं ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसुणं ॥ २५२ ॥

तं जहा- एकको पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववणो अंतोमुहुत्तवभहियअट्टवस्सेहि संजमं पडिवणो (१) । पमत्तापमत्तसंजदद्वणे सादासादवंधपरावत्तसहस्सं कादूण (२) विसुद्धो मणपञ्जवणाणी जादो (३) । उवसमसेदीपाओगअप्यमत्तो होदूण सेडीमुवगदो (४) । अपुव्वो (५) अणियट्ठी (६) सुहुमो (७) उवसंतो (८) पुणो वि सुहुमो (९) अणियट्ठी (१०) अपुव्वो (११) पमत्तापमत्तसंजदद्वणे (१२) पुव्वकोडि-मच्छिदूण अणुदिसादिसु आउअं वंधिदूण अंतोमुहुत्तावसेसे जीविए विसुद्धो अपुव्ववसामगो जादो । णिदा-पयलाणं वधवोच्छिण्णे कालं गदो देवो जादो । अट्टवस्सेहि वारसअंतो-मुहुत्तेहि य ऊणिया पुव्वकोडी उक्कस्संतरं । एवं तिण्हमुवसामगणं । णवरि जहाकमेण दस णव अट्ट अंतोमुहुत्ता समओ य पुव्वकोडीदो ऊणा ति वत्तवणं ।

मनःपर्ययज्ञानी चारों उपशमकोक्षा एक जीवकी अपेक्षा अन्तर जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटी है ॥ २५२ ॥
जैसे- कोई एक जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और अन्तर्-मुहूर्तसे अधिक आठ वर्षके द्वारा संयमको प्राप्त हुआ (१) । पुनः प्रमत्त-अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें जाता और असाताप्रकृतियोंके सहस्रों वंध परिवर्तनोंको करके (२) विसुद्ध हो मनःपर्ययज्ञानी हुआ (३) । पश्चात् उपशमश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत होकर श्रेणीको प्राप्त हुआ (४) । तब अपूर्वकरण (५) अनिवृत्तिहरण (६) सूक्ष्मसाम्पराय (७) उपशान्तकयय (८) पुनरपि सूक्ष्मसाम्पराय (९) अनिवृत्तिकरण (१०) अपूर्वकरण (११) होकर प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें (१२) पूर्वकोटीकाल तक रहकर अनुदिश आदि विमानवासी देवोंमें आयुको बांधकर जीवनके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रहने पर विसुद्ध हो अपूर्वकरण उपशमक हुआ । पुनः निद्रा तथा प्रचला, इन दो प्रकृतियोंके वंध-विच्छेद हो नाने पर मरणको प्राप्त हो देव हुआ । इस प्रकार आठ वर्ष और वारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटी कालप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है । इसी प्रकार शेष तीन मनःपर्ययज्ञानी उप-शमकोक्षा भी अन्तर होता है । विशेषता यह है कि उनके यथाक्रमसे दश, नौ और आठ अन्तर्मुहूर्त तथा एक समय पूर्वकोटीसे कम कहना चाहिए ।

१ एकजीव प्रति जन्मवैमान्तर्मुहूर्त । स. ति. १, ८.

२ इत्येवमपि पूर्वकोटी देशोक्तम्-स. ति. १, ८.

चटुण्हं खवगणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ २५३ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २५४ ॥

कुदो ? मणपज्जवणाणेण खप्पसेहिं चट्टमाणं पडरं संभवाभावा ।

एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ २५५ ॥

एदं पि सुगमं ।

केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं ॥ २५६ ॥

गाणेगजीवअंतराभावेण साधम्मादो ।

अजोगिकेवली ओघं ॥ २५७ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एव गाणमगणा समत्ता ।

मनःपर्ययज्ञानी चारों क्षपकोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २५४ ॥

क्योंकि, मनःपर्ययज्ञानके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीवोंका प्रचुरतासे होना संभव नहीं है ।

मनःपर्ययज्ञानी चारों क्षपकोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २५५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

केवलज्ञानी जीवोंमें सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ २५६ ॥

क्योंकि, नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे समानता है ।

अयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ २५७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई ।

१ चतुर्णां क्षपकाणामवधिज्ञानिद्वत् । स सि १, ८

२ द्वयो केवलज्ञानिनो सामान्यम् । स सि १, ८

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसाय-वीदरागछट्टमत्था ति मणपज्जवणाणिभंगो ॥ २५८ ॥

पमत्तापमत्तसंजदाणं गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं; एगजीवं पडुच्च जहणुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । चटुण्हमुवसामगाणं गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमओ, उक्कस्सेण चासपुधत्तं; एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण देहणपुव्वकोडी अंतरमिदि तदो विसेसाभावा ।

चटुण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं ॥ २५९ ॥

सुगमं ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ २६० ॥

एदं पि सुगमं ।

सामाइय-छेदोवट्टावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तापमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ २६१ ॥

गयत्थं ।

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोमें प्रमत्तसंयतको आदि लेकर उपशान्तकपाय-वतिरागछट्टस्य तक संयतोंका अन्तर मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है ॥ २५८ ॥

प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है; एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । चारों उपशामकोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण अन्तर है, इसलिए उससे यहांपर कोई विशेषता नहीं है ।

चारों क्षपक और अयोगिकेवली संयतोंका अन्तर ओघके समान है ॥ २५९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सयोगिकेवली संयतोंका अन्तर ओघके समान है ॥ २६० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोमें प्रमत्त तथा अप्रमत्त संयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २६१ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले कहा जा चुका है ।

१ सयमाहुवादेन सामायिकच्छेदोपस्थापनशुद्धिसयतेषु प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवपेक्षया नास्त्यन्तरस्य । स सि १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहणणे अंतोमुहुत्तं ॥ २६२ ॥

तं जहा- पमत्तो अप्पमत्तगुणं गंतूण सव्वजहणणे कालेण पुणो पमत्तो जादो । लद्धमंतरं । एत्तमपमत्तस्म वि वत्तव्वं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २६३ ॥

तं जहा- एगो पमत्तो अप्पमत्तो होदूण चिरकालमच्छिय पमत्तो जादो । लद्धमंतरं । अप्पमत्तस्म उच्चदे- एकको अप्पमत्तो पमत्तो होदूण सव्वचिरमंतोषुदुत्तमच्छिय अप्पमत्तो जादो । लद्धमंतरं ।

दोण्हसुवसामगणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहणणे एगसमयं ॥ २६४ ॥

अवगयत्थं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २६५ ॥

सुगममेदं ।

उक्त संयत्तोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २६२ ॥

जैसे- एक प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तगुणस्थानको जाकर सर्वजघन्य कालसे पुनः प्रमत्तसंयत होगया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । इसी प्रकार अप्रमत्तसंयतका भी अन्तर कहना चाहिए ।

उक्त संयत्तोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २६३ ॥

जैसे- एक प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत होकर और दीर्घ अन्तर्मुहूर्तकाल तक रह करके प्रमत्तसंयत होगया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । अप्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं- एक अप्रमत्तसंयत जीव प्रमत्तसंयत हो करके सबसे बड़े अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहकर अप्रमत्तसंयत होगया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ ।

मामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २६४ ॥

इस सूत्रका अर्थ ज्ञात हो ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथस्त है ॥ २६५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ पृच्छीम प्रति जघन्यसुष्ट वातर्मुहूर्त । स. सि. १, ८.

२ द्रोविषजमन्त्रोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यम् । स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहणणे अंतोमुहुत्तं ॥ २६६ ॥

तं जहा- एकको ओदरमाणो अपुब्बो अप्पमत्तो पमत्तो पुणो अप्पमत्तो होदूण अपुब्बो जादो । लद्धमंतरं । एवमणियड्डिस्स वि । गवरि पंच अंतोमुहुत्ता जहणंतरं होदि ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥ २६७ ॥

तं जहा- एकको पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववणो । अट्ठक्कसाणमुवरि संजमं पडिवणो (१) । पमत्तापमत्तसजदद्वाने सादासादवंधपरावचित्सहस्सं कादूण (२) उवससो उवससेडीपाओगअप्पमत्तो (३) अपुब्बो (४) अणियड्डि (५) सुहुमो (६) उवसतो (७) पुणो वि सुहुमो (८) अणियड्डि (९) अपुब्बो (१०) हेड्डा पडिय अंतरिदो । पमत्तापमत्तसजदद्वाने पुव्वकोडिमच्छिदूण अनुदिसादिसु आउअं वंधिय अंतोमुहुत्तावसेसे जीविए अपुव्वुवसामगो जादो । णिदा-पयलाणं वंधे वोच्छिण्णे कालं गदो देवो जादो । अट्ठहि वस्सेहि एक्कारसअंतोमुहुत्तोहि य ऊणिया पुव्वकोडी अंतरं । एवमणियड्डिस्स वि ।

सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी दोनों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २६६ ॥

जैसे- उपशामश्रेणीसे उतरनेवाला एक अपूर्वकरणसंयत, अप्रमत्तसंयत व प्रमत्तसंयत होकर पुनः अप्रमत्तसंयत हो अपूर्वकरणसंयत होगया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । इसी प्रकार अनिवृत्तिकरणसंयतका भी अन्तर कहना चाहिए । विशेषता यह है कि इनके पांच अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तर होता है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटी है ॥ २६७ ॥

जैसे- कोई एक जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और आठ वर्षके पश्चात् संयमको प्राप्त हुआ (१) । पुनः प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें साता और असातावेदनीयके सहस्रों वंध परावर्तनोंको करके (२) उपशामश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (३) । पश्चात् अपूर्वकरण (४) अनिवृत्तिकरण (५) सूक्ष्मसाम्पराय (६) उपशान्तकपाय (७) होकर फिर भी सूक्ष्मसाम्पराय (८) अनिवृत्तिकरण (९) अपूर्वकरण (१०) हो नीचे गिरकर अन्तरको प्राप्त हुआ । प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें पूर्वकोटी काल तक रहकर अनुदिश आदि विमानोंमें आयुको बांधकर जीवनके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अत्रशिष्ट रहनेपर अपूर्वकरण उपशामक हुआ और निद्रा तथा प्रचला प्रकृतियोंके वंधसे व्युच्छिन्न होनेपर मरणको प्राप्त हो देव हुआ । इस प्रकार आठ वर्ष और ग्यारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटीप्रमाण सामायिक ओर छेदोपस्थापनासंयमी अपूर्वकरण उपशामकोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है । इसी प्रकार सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी अनिवृत्तिकरण उपशामकोंका भी उत्कृष्ट अन्तर है । विशेषता यह है कि

१ पृच्छीम प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त । स. सि. १, ८. २ उत्तर्येण पूर्वकोटी देवोना । स. सि. १, ८.

णवरि समयाहियणवअंतोमुहुत्ता ऊणा कादब्बा ।

दोण्हं ख्वाणमोघं ॥ २६८ ॥

सुगममेदं ।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्तापमत्तसंज्ञाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ २६९ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २७० ॥

तं जहा- एकको पमत्तो परिहारसुद्धिसंज्ञदो अप्पमत्तो होदूण सव्वलहुं पमत्तो जादो । लद्धमंतरं । एवमप्पमत्तस्स वि पमत्तगुणेण अंतराविय वत्तव्वं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २७१ ॥

एदस्सत्थो जथा जहणस्स उत्तो, तथा वत्तव्वो । णवरि सव्वचिरेण कालेण पल्लट्टवेदव्वो ।

इनका अन्तर एक समय अधिक नौ अन्तर्मुहूर्त काम करना चाहिये ।

सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी अपूर्वकरण और अनिष्टचक्रण, इन दोनों क्षपकोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है ॥ २६८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

परिहारशुद्धिसंयतोमै प्रमत्त और अप्रमत्त संयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २६९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २७० ॥

जैसे- परिहारशुद्धिसंयमवाला कोई एक प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत होकर सर्वलघु कालसे प्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हो गया । इसी प्रकार परिहारशुद्धिसंयमी अप्रमत्तसंयतको भी प्रमत्तगुणस्थानके द्वारा अन्तरको प्राप्त कराकर अन्तर कहना चाहिये ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २७१ ॥

इस सूत्रका अर्थ जैसा जघन्य अन्तर बतलाते हुए कहा है, उसी प्रकारसे कहना चाहिये । विशेषता यह है कि इसे यहां पर सर्व दीर्घकालसे पलटाना चाहिये ।

१ द्वयोः क्षपकयोः सामान्यवत् । स सि १, ८

२ परिहारशुद्धिसंयतेषु प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवपेक्षया नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

३ एकजीव प्रति जघन्यमुत्कृष्ट चातर्मुहूर्तः । स सि १, ८

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयउवसमाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ २७२ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २७३ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ २७४ ॥

कुदो ? अधिगदंसंजमाविणासेण अंतरावणे उवायाभावां ।

ख्वाणमोघं ॥ २७५ ॥

कुदो ? गाणाजीवगदहणुक्कस्सेगसमय-छम्मासेहि एगजीवस्संतराभावेण य साधम्मादो ।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु अकसाइभंगो ॥ २७६ ॥

सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतोमै सूक्ष्मसाम्पराय उपशाम्कोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २७२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २७३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २७४ ॥

क्योंकि, प्राप्त किये गये संयमके विनाश हुए बिना अन्तरको प्राप्त होनेके उपायका अभाव है ।

सूक्ष्मसाम्परायसंयमी क्षपकोंका अन्तर ओघके समान है ॥ २७५ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह मासके साथ, तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे ओघके साथ समानता पाई जाती है ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोमै चारों गुणस्थानोंके संयमी जीवोंका अन्तर अकपायी जीवोंके समान है ॥ २७६ ॥

१ सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतेषूपशम ऋत्य नानाजीवपेक्षया सामान्यवत् । स सि. १, ८.

२ एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् । स सि. १, ८.

३ अ प्रती ' अतरावणो उवाया- ' आ-क़ालो ' अतरावणो उवाया- ' इति पाठ ।

४ तस्यैव क्षपकस्य सामान्यवत् । स सि १, ८.

५ यथाख्याते अकपायवत् । स सि १, ८

१, ६, २८२.]

छक्कडागमे जीवद्वान

[१३५]

असंजदसम्मादिद्विस्स उक्कस्संतरं णादमवि' मंदमेहाविज्जाणुगहं पुरुवेमो-
एकको अणादियमिच्छादिद्वी तिणि वि ऋणाणि कादूण अद्रुपोगलपरियट्ठादिसमए
पढमसम्मत्तं पडिवणो (१) । उवसमसम्मत्तद्वए छावलिआओ अत्थि चि सासणं गदो ।
अंतरिदो अद्रुपोगलपरियट्ठं परियट्ठिदूण अपच्छिमे भवगहणे असंजदसम्मादिद्वी जादो ।
लद्धमंतरं (२) । तदो अणताणुवंधी विसंजोइय (३) विस्संतो (४) दंसमोहं खविय
(५) विस्संतो (६) अप्पमत्तो जादो (७) । पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (८)
खवगसेदीपाओगअप्पमत्तो जादो (९) । उवरि छ अंतोमुहुत्ता । एवं पणारसेहि अंतो-
मुहुत्तेहि ऊगमद्रुपोगलपरियट्ठमसंजदसम्मादिद्विस्स उक्कस्संतरं ।

एव सजमगणा समत्ता ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिद्वीणमोघं ॥ २८२ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च अंतराभावेण, एगजीवगयअंतोमुहुत्तमेत्तजहणंतरेण

असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर यथापि ज्ञात है, तथापि मंदबुद्धि जनोके अनु-
ग्रहार्थ प्ररूपण करते हैं- एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव तीनों कारणोंको करके अर्धपुद्गल-
परिवर्तनके आदि समयमें प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१) । उपशमसम्यक्त्वके
कालमें छह आवलिआं अवशिष्ट रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ । पश्चात्
अन्तरको प्राप्त हो अर्धपुद्गलपरिवर्तन तक परिवर्तन करके अन्तिम भवमें असंयतसम्य-
ग्दृष्टि हुआ । इस प्रकार अन्तर प्राप्त होगया (२) । तत्पश्चात् अन्तानुबन्धीकी विसंयोजना
करके (३) विश्राम ले (४) दर्शनमोहनीयका क्षय करके (५) विश्राम ले (६) अग्रमत्त-
संयत हुआ (७) । पुनः प्रमत्त और अग्रमत्त गुणस्थानसम्यग्धी सहस्रों परिवर्तनोंको
करके (८) क्षपकश्रेणीके प्रायोग्य अग्रमत्तसंयत हुआ (९) । इनमें ऊपरके छह अन्त-
मुहूर्त और मिलाये । इस प्रकार पन्द्रह अन्तमुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल असंयत-
सम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

इस प्रकार संयममार्गणा समाप्त हुई ।

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर ओघके
समान है ॥ २८२ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, तथा एक जीवगत

१ प्रतिपु 'णादमदि' इति पाठ । २ प्रतिपु 'पमो' इति पाठ ।

३ दर्शनानुवादेन चक्षुदर्शनीयु मित्यादौ सामायवत् । स सि १, ८

४ अ प्रती 'जीवेसु' इति पाठ ।

१३६]

अतराणुगमे चक्खुदसणि-अतरपरुवण

[१, ६, २८५.

देवण-वे-छावद्विसागरोवमेत्तउक्कस्संतरेण य तदो भेदाभावा ।

सासणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो
होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥ २८३ ॥

कुदो ? णाणाजीवगयएगसमय-पलिदोवमासंखेज्जदिभागजहणुक्कस्संतरेहि
साधम्भुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो,
अंतोमुहुत्तं ॥ २८४ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ॥ २८५ ॥

तं जहा-एको भमिदअचक्खुदंसणद्विदो असणिणपंचिदियसु उववणो । पंचहि
पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विमुद्धो (३) भवणवासिय-चाणवैतरदेवसु

अन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्य अन्तर होनेसे और कुछ कम दो छयासठ सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट
अन्तर होनेकी अपेक्षा ओघसे कोई भेद नहीं है ।

चक्षुदर्शनी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल
होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ २८३ ॥

क्योंकि, नाना जीवगत जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमका
असंख्यातवा भाग है, इस प्रकार इन दोनोंकी अपेक्षा ओघके साथ समानता पाई
जाती है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका
असंख्यातवा भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ २८४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो हजार सागरोपम
है ॥ २८५ ॥

जैसे-अचक्षुदर्शनकी स्थितिप्रमाण परिश्रमण किया हुआ कोई एक जीव अंशभी
पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । पाचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध
हो (३) भवनवासी या वानव्यन्तर देवोंमें आयुको बाधकर (४) विश्राम ले (५)

१ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स. सि. १, ८

२ पुरुजीव इति जघनेन पल्योपमासंख्येयमागोऽन्तर्मुहूर्तम् । स. सि. १, ८.

३ उत्तरार्धेण द्वे सागरोपमसहस्रे देवोने । स. सि. १, ८

आउअं वंधिय (४) विस्संतो (५) देवेषु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (६) विस्संतो (७) विमुदो (८) उवममम्मत्तं पडिवण्णो (९) सासणं गदो। मिच्छत्तं गंतूणमिय चस्सुदंसणिद्धिदिं परिममिय अममाणे सासणं गदो। लद्धमंतरं। अचक्खु-दंसणिपाओगमागलियाए अमरोज्जदिभागमच्छिदूण मदो अचक्खुदंसणी जादो। एवं पण्णि अंतोमुद्रेचेहि आवलियाए अमरोज्जदिभागेण य जणिग्या चस्सुदंसणिद्धिदी सामणुक्कसंतरं।

मम्मामिच्छादिद्धिस्स उच्चदे- एको अचक्खुदंसणिद्धिदिमच्छिदो असणिपंचि-टिगमु उववण्णो। पंचहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विमुदो (३) भागमागमिय-वाणंत्तदेवेषु आउअं वंधिय (४) विस्संतो (५) देवेषु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (६) विस्संतो (७) विमुदो (८) उवममम्मत्तं पडिवण्णो (९) मम्मामिच्छत्तं गदो (१०)। मिच्छत्तं गंतूणतरिदो चक्खुदंसणिद्धिदिं परिममिय अममाणे सम्मामिच्छत्तं गदो (११)। लद्धमंतरं। मिच्छत्तं गंतूण (१२) अचक्खु-दंसणीसु उववण्णो। एवं वारसअंतोमुद्रेचेहि जणिग्या चस्सुदंसणिद्धिदी उक्कसंतरं।

देवेषु उतग हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (६) विग्राम ले (७) विग्रह हो (८) उग्रशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (९)। पश्चात् सासादनगुणस्थानको गया। पुनः मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो चक्षुदर्शनीकी स्थितिप्रमाण परित्यगण करके अन्तर्मासादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया। पुनः अचक्षु-दर्शनीके वंश प्रयोग्य आवलीके असत्यात्वं भागप्रमाण काल रह कर मरा और अचक्षु-दर्शनी होगया। इस प्रकार नो अन्तर्मुहूर्तोंसे और आवलीके असत्यात्वं भागसे कम चक्षुदर्शनीकी स्थिति चक्षुदर्शनी मासादनसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर है।

चक्षुदर्शनी सम्यग्मिथ्यादृष्टिका अन्तर कहते हैं- अचक्षुदर्शनीकी स्थितिको प्राप्त हुआ एक जीव अमर्जी पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। पाँचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विग्राम ले (२) विग्रह हो (३) भवनवासी या वानव्यन्तर देवोंमें आयुको बांधकर (४) विग्राम ले (५) मरा और देवोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (६) विग्राम ले (७) विग्रह हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (९)। पश्चात् सम्यग्मिथ्यात्वको गया (१०) और मिथ्यात्वको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ। चक्षु-दर्शनीकी स्थितिप्रमाण परित्यगण कर अन्तर्मासादनसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (११)। इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया। पुनः मिथ्यात्वको जाकर (१२) अचक्षुदर्शनीमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार वारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम चक्षुदर्शनीकी स्थिति चक्षुदर्शनी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर है।

असंसदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अपमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालदो होदि, पाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २८६ ॥ सुगममेदं।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २८७ ॥

कुदो ? एदेसिं सव्वेसिं पि अण्णगुणं गंतूण जहणकालेण अपिपदगुणं गदाणमंतो-मुहुत्तं तरुवलंभा ।

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ॥ २८८ ॥

तं जथा- एको अचक्खुदंसणिद्धिदिमच्छिदो असणिपंचिदिदिसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो। पंचहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विमुदो (३) भागमागमिय-वाणंत्तदेवेषु आउअं वंधिय (४) विस्संतो (५) कालं गदो देवेषु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (६) विस्संतो (७) विमुदो (८) उवममम्मत्तं पडिवण्णो (९)। उवममम्मत्तद्वाए छ आवलियाओ अत्थि चि सासणं गंतूणतरिदो। मिच्छत्तं गंतूण

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक चक्षुदर्शनियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २८६ ॥ यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २८७ ॥

क्योंकि, इन सभी गुणस्थानवर्ती जीवोंके अन्य गुणस्थानको जाकर पुनः जघन्य कालसे विवक्षित गुणस्थानको प्राप्त होनेपर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो हजार सागरोपम है ॥ २८८ ॥

जैसे- अचक्षुदर्शनी जीवोंकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव असंख्य पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छिम पर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न हुआ। पाँचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विग्राम ले (२) विग्रह हो (३) भवनवासी या वानव्यन्तरोंमें आयुको बांध कर (४) विग्राम ले (५) मरणको प्राप्त हुआ और देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (६) विग्राम ले (७) विग्रह हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (९)। उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रहने पर सासादनको जाकर अन्तरको प्राप्त

१ असंयतसम्यग्दृष्टिप्राप्तप्रमाणात् नानाजीवोपेक्षया नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८.

२ एगजीव इति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स सि. १, ८.

३ उत्तर्येण द्वे सागरोपमसहस्रे देक्षते । स सि. १, ८.

चक्खुदंसणिद्धिदिं भमिय अवसाणे उवसमसम्मत्तं पडिवणो (१०) । लद्धमंतरं । पुणो सांसणं गदो अचक्खुदंसणीसु उववणो । दसहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया सगद्धिदी असंजद-सम्मादिट्ठीणमुक्कस्संतरं ।

संजदासंजदस्स उच्चदे । तं जहा-एक्को अचक्खुदंसणिद्धिदिमच्छिदो गब्भो-चक्खंतियपंचिदियपज्जत्तएसु उववणो । सणिपंचिदियसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु किण्ण उप्पा-दिदो ? ण, सम्मुच्छिमेसु पढमसम्मत्तुप्पत्तीए असंभवादो । ण च असंखेज्जेलोगमणंतं वा कालमचक्खुदंसणीसु परिभमियाण वेदगसम्मत्तगहणं संभवदि, विरोहा । ण च धोव-कालमच्छिदो चक्खुदंसणिद्धिदीए समाणणक्खमा । तिणिण पक्ख तिणिण दिवस अंतो-मुहुत्तेण य पढमसम्मत्तं संजमासंजमं च जुगवं पडिवणो (२) । पढमसम्मत्तद्वाए छावीलयाओ अत्थि चि सासणं गदो । अंतरिदो मिच्छत्तं गंतूण सगद्धिदिं परिभमिय अपच्छिमे भवे कदकरणिज्जो होदूण संजमासंजमं पडिवणो (३) । लद्धमंतरं । अपमत्तो

हुआ । पुनः मिथ्यात्वको जाकर चक्षुदर्शनकी स्थितिप्रमाण परिश्रमण कर अन्तमें उपशम-सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । पुनः सासादनको गया और अचक्षुदर्शनी जीवोंमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थिति चक्षुदर्शनी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

चक्षुदर्शनी संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं । जैसे-अचक्षुदर्शनकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव गर्भोपकान्तिक पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ ।

शंका—उक्त जीवको संक्षी पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें क्यों नहीं उत्पन्न कराया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सम्मूर्च्छिम जीवोंमें प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्ति असम्भव है । तथा असंख्यात लोकप्रमाण या अनन्तकाल तक अचक्षुदर्शनियोंमें परिश्रमण किये हुए जीवोंके वेदकसम्यक्त्वका ग्रहण करना सम्भव नहीं है, क्योंकि, ऐसे जीवोंके सम्यक्त्वोत्पत्तिका विरोध है । और न अल्पकाल तक रहा हुआ जीव चक्षुदर्शनकी स्थितिके समाप्त करनेमें समर्थ है ।

पुनः वह जीव तीन पक्ष, तीन दिवस और अन्तर्मुहूर्तसे प्रथमोपशमसम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (२) । प्रथमोपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलिया अवशिष्ट रह जाने पर सासादनको प्राप्त हुआ । पुनः अन्तरको प्राप्त हो मिथ्यात्वको जाकर अपनी स्थितिप्रमाण परिश्रमणकर अन्तिम भवमें कृतकृत्यवेदक होकर संयमासंयमको प्राप्त हुआ (३) । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । पुनः अप्रमत्तसंयत (४)

(४) पमत्तो (५) अपमत्तो (६) । उवरि छ अंतोमुहुत्ता । एवमडदालीसदिवेसहि चारसअंतोमुहुत्तेहि य ऊणा सगद्धिदी संजदासंजदुक्कस्संतरं ।

पमत्तस्म उच्चदे-एक्को अचक्खुदंसणिद्धिदिमच्छिदो मणुसेसु उववणो गब्भादि-अट्ठवस्सेण उवसमसम्मत्तमपमत्तगुणं च जुगवं पडिवणो । (१) । पुणो पमत्तो जादो (२) । हेट्ठा पडिदणंतिरिदो । चक्खुदंसणिद्धिदिं परिभमिय अपच्छिमे भवे मणुसो जादो । कदकरणिज्जो होदूण अंतोमुहुत्तावेसे जीए अपमत्तो होदूण पमत्तो जादो (३) । लद्धमंतरं । भूओ अपमत्तो (४) । उवरि छ अंतोमुहुत्ता । एवमड्ठवस्सेहि दसअंतो-मुहुत्तेहि ऊणिया सगद्धिदी पमत्तस्सुक्कस्संतरं ।

(अपमत्तस्स उच्चदे-एक्को अचक्खुदंसणिद्धिदिमच्छिदो मणुसेसु उववणो । गब्भादिअट्ठवस्सेण उवसमसम्मत्तमपमत्तगुणं च जुगवं पडिवणो (१) । हेट्ठा पडिदूण अंतरिदो चक्खुदंसणिद्धिदिं परिभमिय अपच्छिमे भवे मणुसेसु उववणो । कदकरणिज्जो होदूण अंतोमुहुत्तावेसे संसारे विमुद्धो अपमत्तो जादो (२) । लद्धमंतरं । तदो पमत्तो

प्रमत्तसंयत (५) और अप्रमत्तसंयत हुआ (६) । इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाने । इस प्रकार अडतालीस दिवस और बारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थिति चक्षुदर्शनी संयतासंयतोंका उत्कृष्ट अन्तर है ।

चक्षुदर्शनी प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं-अचक्षुदर्शनी जीवोंकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और गर्भको आदि लेकर आठ वर्षसे उपशम-सम्यक्त्व और अप्रमत्तगुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१) । पुनः प्रमत्तसंयत हुआ (२) । पश्चात् नीचेके गुणस्थानोंमें गिरकर अन्तरको प्राप्त हुआ । चक्षुदर्शनीकी स्थितिप्रमाण परिश्रमण करके अन्तिम भवमें मनुष्य हुआ । पश्चात् कृतकृत्यवेदक होकर जीवनके अन्तर्मुहूर्तकाल अवशेष रह जाने पर अप्रमत्तसंयत होकर प्रमत्तसंयत हुआ (३) । इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया । पुनः अप्रमत्तसंयत हुआ (४) । इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाने । इस प्रकार आठ वर्ष और दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थिति चक्षुदर्शनी प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर है ।

चक्षुदर्शनी अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं-अचक्षुदर्शनी जीवोंकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भको आदि लेकर आठ वर्षके द्वारा उपशमसम्यक्त्व और अप्रमत्तगुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१) । फिर नीचे गिरकर अन्तरको प्राप्त हो अचक्षुदर्शनीकी स्थितिप्रमाण परिश्रमणकर अन्तिम भवमें मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । पुनः कृतकृत्यवेदकसम्यक्त्व होकर संसारके अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण अवशिष्ट रहने पर विशुद्ध हो अप्रमत्तसंयत हुआ (२) । इस प्रकार अन्तर प्राप्त

(३) अप्पमत्तो (४) । उवरि छ अंतोमुहत्ता । एवमद्वयस्सेहि दसअंतोमुहुत्तेहि उणिया चामुदंयणिद्धिदी अप्पमत्तुक्कस्संतरं होदि ।

चदुण्हमुवसामगणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च ओयं ॥ २८९ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २९० ॥

एदं पि सुगमं ।

उयक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ॥ २९१ ॥

तं जहा- एकको अचममुदंयणिद्धिमच्छिदो मणुत्तेसु उववणो । गन्भादिअद्दु- तस्सण उयमममत्तमपमत्तगुणं च जुगवं पडिवणो (१) । अंतोमुहुत्तेण वेदगसम्मत्तं मतो (२) । तदो अंतोमुहुत्तेण अणंताणुवंधिं विंसजोविदो (३) । दंसणमोहणीयमुव- सामिय (४) पमत्तापमत्तपरावत्तमहस्सं कादूण (५) उवसमसेडीपाओगअप्पमत्तो जादो (६) । अपुब्बो (७) अणियद्धी (८) सुहुमो (९) उवसंतो (१०) सुहुमो आ । पुन. प्रमत्तस्यत हो (३) अप्रमत्तस्यत हुआ (४) । इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये । इस प्रकार आठ वर्ष और दश अन्तर्मुहूर्तसे कम चक्षुदर्शनीकी स्थिति हो नानुदर्शनी प्रमत्तस्यतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

चक्षुदर्शनी चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी ओपथा अन्तर ओपथके समान है ॥ २८९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवभी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २९० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो हजार सागरोपम है ॥ २९१ ॥

जैसे- अचक्षुदर्शनी जीवोंकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भको गादि लेकर आठ वर्षके द्वारा उपशामस्यत्त्व और अप्रमत्तस्यत गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१) । अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् वेदकस्यस्त्वको प्राप्त हुआ (२) । पुनः अन्तर्मुहूर्तसे अनन्तायुवन्धीका विषयोजन किया (३) । पुनः दर्शनमोहनीयको उपशाम कर (४) प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके (५) उप- शामोपणीके योग्य अप्रमत्तस्यत हुआ (६) । पुनः अपूर्वकरण (७) अनिवृत्तिकरण (८)

१ चतुर्गुणयुग्मवर्ना नानाजीवपेक्षया सामान्यत् । स. सि. १, ८

२ एतन्तीति नित्येयानामर्तुहृतः । म. सि. १, ८

३ उत्तरेण वे सागरोपमादूले दर्शने । स. सि. १, ८.

(११) अणियद्धी (१२) अपुब्बो (१३) हेड्डा ओदरिय अंतरिदो चक्षुदसणिद्धिदि परिभमिय अंतिमे भवे मणुत्तेसु उववणो । कदकरणिज्जो होदूण अंतोमुहत्तापमेसे संसारे विसुद्धो अप्पमत्तो जादो । सादासादवंधपरावत्तमहस्सं कादूण उवसमसेडीपाओगअप्पमत्तो होदूण अपुब्बवसामगो जादो (१४) । लद्धमंतरं । तदो अणियद्धी (१५) सुहुमो (१६) उवसंतो (१७) पुणो वि सुहुमो (१८) अणियद्धी (१९) अपुब्बो (२०) अप्पमत्तो (२१) पमत्तो (२२) अप्पमत्तो (२३) होदूण खवगसेडीमारूढो । उवरि छ अंतो- मुहुत्ता । एवमद्वयस्सेहि एगूणत्तीसअंतोमुहुत्तेहि य ऊणिया सगिद्धिदो अपुब्बकरणुक्कस्संतरं । एवं चेव तिण्हमुवसामगणं । णवरि सत्तावीस पंचवीस तेवीस अंतोमुहुत्ता ऊणा कायव्वा ।

चदुण्हं खवाणमोयं ॥ २९२ ॥

सुगममेदं ।

सूक्ष्मसाम्पराय (९) उपशान्तमोह (१०) सूक्ष्मसाम्पराय (११) अनिवृत्तिकरण (१२) और अपूर्वकरणसंयत होकर (१३) तथा नीचे उतरकर अन्तरको प्राप्त हो चक्षुदर्शनीकी स्थितिप्रमाण परिधमणकर अन्तिम भवमें मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहांपर कृतकृत्यवेदक- सम्यक्त्वी होकर ससारके अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर विद्युद्द हो अप्रमत्तसंयत हुआ । वहापर साता और असाता वेदनीयके बंध-परावर्तन-सहस्रोंको करके उपशाम- श्रेणीके योग्य अप्रमत्तस्यत होकर अपूर्वकरण उपशामक हुआ (१४) । इस प्रकार अन्तर प्राप्त होगया । तत्पश्चात् अनिवृत्तिकरण (१५) सूक्ष्मसाम्पराय (१६) उपशान्तकपाय (१७) पुनरपि सूक्ष्मसाम्पराय (१८) अनिवृत्तिकरण (१९) अपूर्वकरण (२०) अप्रमत्त- संयत (२१) प्रमत्तसंयत (२२) और अप्रमत्तसंयत होकर (२३) क्षपकश्रेणीपर चढ़ा । इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये । इस प्रकार आठ वर्ष और अनतीस अन्तर्मुहूर्तसे कम अपनी स्थिति चक्षुदर्शनी अपूर्वकरण उपशामकका उत्कृष्ट अन्तर है ।

इसी प्रकार चक्षुदर्शनी शेष तीन उपशामकोंका भी अन्तर जानना चाहिये । विशेषता यह है कि अनिवृत्तिकरण उपशामकके सत्ताईस अन्तर्मुहूर्त, सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकके पचीस अन्तर्मुहूर्त और उपशान्तकपायके तेवीस अन्तर्मुहूर्त कम करना चाहिये ।

चक्षुदर्शनी चारों क्षपकोंका अन्तर ओपथके समान है ॥ २९२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अचम्बदुंसणीसु मिच्छादिद्विण्हुडि जाव खीणकसायवीद-
रागछदुमत्था ओर्ध्वं ॥ २९३ ॥

कुदो ? ओघादो भेदाभावा ।

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ॥ २९४ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ २९५ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एव दसणमग्गणा समत्ता ।

लेस्सायुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु
मिच्छादिद्वि-असंजदसम्मादिद्वीणमंतरं केवचिरं कालदो होदि, णाणा-
जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २९६ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २९७ ॥

अचक्षुदर्शनयोमं मिथ्याद्वटिसे लेकर धीणकयायवीतरागछन्नस्य गुणस्थान तक
प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोका अन्तर ओघके समान है ॥ २९३ ॥

क्योंकि, ओघसे इनके अन्तरसे कोई भेद नहीं है ।

अवधिदर्शनी जीवोका अन्तर अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ २९४ ॥

केवलदर्शनी जीवोका अन्तर केवलज्ञानियोंके समान है ॥ २९५ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई ।

लेस्याभार्गणके अनुवादसे कृष्णलेस्या, नीललेस्या और कापोत लेस्यावालोंमें
मिथ्याद्वटि और असंयतसम्पद्वटि जीवोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना
जीवोकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २९६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २९७ ॥

१ अचक्षुदर्शनीसु मिथ्याद्वटिदीर्घाण्णायान्ताना सामा-योगित्तमत्तम् । स सि १, ८

२ अवधिदर्शनीनोऽवधिज्ञानिवत् । स सि १, ८ ३ केवलदर्शनीनः केवलज्ञानिवत् । स सि १, ८

४ लेस्याबुद्धादनं कृष्णनीलरूपोत्पत्त्येषु मिथ्याद्वट्यसंयतसम्पद्वट्योर्नानाजीवोपेक्षया नास्त्यन्तरम् ।

स सि १, ८

५ एवञ्जीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । स सि १, ८

तं जहा- सत्तम-पंचम-पठमपुढविमिच्छादिद्वि-असंजदसम्मादिद्विणो किण्ह-णील-
काउलेस्सिया अण्णगुणं गंतूण थोवकालेण पडिणियचिय तं चेव गुणमागदा । लद्धं
दोण्हं जहण्णंतरं ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सत्तारस सत्त सागरोवमाणि देसूणाणि
॥ २९८ ॥

तं जहा- तिण्ण मिच्छादिद्विणो किण्ह-णील-काउलेस्सिया सत्तम-पंचम-त्तदिय-
पुढवीसु कमेण उववणा । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदा (१) विस्संता (२) विमुद्धा
(३) सम्मत्तं पडिवणा अंतरिदा अवसाणे मिच्छत्तं गदा । लद्धमंतरं (४) । मदा
मणुसेसु उववणा । गवरि सत्तमपुढवीणेरुओ तिरिस्खाउअं वंधिय (५) विस्समिय
(६) तिरिस्खेसु उववज्जदि त्ति घेत्तवं । एवं छ-चहु-चहुअंतोमुहुत्तं चेहि ऊणाणि तेत्तीस-
सत्तारस-सत्त-सागरोवमाणि किण्ह-णील-काउलेस्सियमिच्छादिद्विउक्कस्संतरं होदि । एवम-
संजदसम्मादिद्विस्स वि घत्तवं । गवरि अट्ट-पंच-पंचअंतोमुहुत्तं चेहि ऊणाणि तेत्तीस-सत्तारस-

जैसे- सातवां पृथिवीके कृष्णलेस्यावाले, पांचवीं पृथिवीके नीललेस्यावाले और
प्रथम पृथिवीके कापोतलेस्यावाले मिथ्याद्वटि और असंयतसम्पद्वटि नारकी जीव अन्य
गुणस्थानको जाकर अल्प कालसे ही लौटकर उसी गुणस्थानको प्राप्त हुए । इस प्रकार
दोनों गुणस्थानोंका जघन्य अन्तर लब्ध हुआ ।

उक्त जीवोका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः कुछ कम तेतीस,
सत्तरह और सात सागरोपम है ॥ २९८ ॥

जैसे- कृष्ण, नील और कापोत लेस्यावाले तीन मिथ्याद्वटि जीव क्रमसे सातवीं,
पांचवीं और तीसरी पृथिवीमें उत्पन्न हुए । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम
ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यक्त्वको प्राप्त कर अन्तरको प्राप्त हो आयुके अन्तमें
मिथ्यात्वको प्राप्त हुए । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (४) । पश्चात् मरण कर मनुष्योंमें
उत्पन्न हुए । विशेषता यह है कि सातवीं पृथिवीका नारकी तिर्यच आयुको बांध कर (५)
विश्राम ले (६) तिर्यचोंमें उत्पन्न होता है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए । इस प्रकार
छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपम कृष्णलेस्याका उत्कृष्ट अन्तर है । चार अन्त-
र्मुहूर्तोंसे कम सत्तरह सागरोपम नीललेस्याका उत्कृष्ट अन्तर है । तथा चार अन्तर्मुहूर्तोंसे
कम सात सागरोपम कापोतलेस्याका उत्कृष्ट अन्तर होता है । इसी प्रकार असंयत-
सम्पद्वटिका भी अन्तर कहना चाहिए । विशेषता यह है कि कृष्णलेस्यावाले
असंयतसम्पद्वटिका उत्कृष्ट अन्तर आठ अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपम,
नीललेस्यावाले असंयतसम्पद्वटिका उत्कृष्ट अन्तर पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम सत्तरह

१ उत्तर्येण त्रयस्त्रिंशसत्तदशसत्तासागरोपमाणि देशोनानि । स सि १, ८

मत्त-सागरोवमाणि उत्तरसंतरे ।

मासणसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छादिट्ठिणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च ओवं ॥ २९९ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥ ३०० ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सत्तारस सत्त सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३०१ ॥

तं जहा- निणि मिच्छादिट्ठि जीवा सत्तम-पंचम-तदियपुढवीसु किण्ह-णील-काउ-लेमिया उपण्णा । छहि पज्जत्तयदा (१) विस्सता (२) विमुद्दा (३) उप्पममममं पडिक्कणा (४) सात्तणं गदा । मिच्छत्तं गंतूणंतदिदा । अंतोमुहुत्तवसे

सागरोपम और तपोतलेइयावाले नसंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर पांच अन्त-मुहूर्तोंत कम सान सागरोपम होता है ।

उक्त तीनों अशुभलेइयावाले मारादनमम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ २९९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असं-रयातना भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागरोपम, मत्तरह सागरोपम और सात सागरोपम है ॥ ३०१ ॥

जैसे- कृण, नील और कापोतलेइयावाले तीन मिथ्यादृष्टि जीव क्रमशः सातवीं, पांचवीं और तीसरी पृथिवीमें उत्पन्न हुए । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विद्युत् हो (३) उपरामसम्यक्त्वको प्राप्त हुए (४) । पुनः सासादनगुण-स्थानको गये । पद्मान् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुए । पुनः जीवनके अन्तर्मुहूर्त

१ सागरोपम-ए-म्यग्मिथ्या-एयोगोर्नानाजीवपेक्षया सामान्यत्वं । स. सि ९, ८

२ पृच्छीतं यति जल्पेन पत्त्योपमामरयेयगोऽन्तर्मुहूर्तश्च । स. सि १, ८

३ उत्तरेण पार्श्विकमस्तदशमनसागरोवमाणि देशोनानि । स. पि १, ८.

जीविण उवसममममत्तं पडिक्कणा । सासणं गंतूण विदियसमए मदा मणुसेसु उगवण्णा । णवरि सत्तमपुढवीए माम्मा मिच्छत्तं गंतूण (५) तिरिकरोववज्जंति चि वत्तवं । एवं पंच-चटु-अंतोमुहुत्तेहि उणाणि तेत्तीस-सत्तारस-सत्त-सागरोवमाणि किण्ह-णील-काउलेस्सियसासणु-इस्संतरं होदि । एगसमओ अंतोमुहुत्तवत्तरे पविट्ठो चि पुध ण उत्तो । एवं सम्माभिच्छादिट्ठिस्स वि । णवरि छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि तेत्तीस-सत्तारस-सत्त-सागरोवमाणि किण्ह-णील-काउलेस्सियसम्माभिच्छादिट्ठिउक्कस्संतरं ।

तेउलेस्सिय-पम्मेलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिअसंजदसम्मादिट्ठिणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च पत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३०२ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३०३ ॥

तं जहा- चत्तारि जीवा मिच्छादिट्ठि-सम्मादिट्ठिणो तेउ-पम्मेलेस्सिया अण्णगुणं

अवशिष्ट रहने पर उपरामसम्यक्त्वको प्राप्त हुए । पश्चात् सासादनगुणस्थानमें जाकर क्रितीय समयमें मेरे और मनुष्योंमें उत्पन्न हुए । विशेषता यह है कि सातवी पृथिवीके सासादनसम्यग्दृष्टि नारत्ती मिथ्यात्वको प्राप्त होकर (५) तिर्यचोंमें उत्पन्न होते हैं, ऐसा कहना चाहिए । इस प्रकार पाच, चार और चार अन्तर्मुहूर्तोंसे कम क्रमशः तेतीस, सत्तरह और सात सागरोपम कालप्रमाण कृण, नील और कापोत लेइयावाले सासादन-सम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है । सासादनगुणस्थानमें जाकर रहनेका एक समय अन्तर्मुहूर्तके ही भीतर प्रविष्ट है, इसलिये पृथक् नहीं कहा । इसी प्रकार तीनों अशुभ-लेइयावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका भी उत्कृष्ट अन्तर जानना चाहिए । विशेषता यह है कि यहाँपर छह-छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस, सत्तरह और सात सागरोपमकाल क्रमशः कृण, नील और कापोत लेइयावालोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

तेजोलेइया और पबलेइयावालोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३०२ ॥ यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०३ ॥

जैसे- तेजोलेइया और पबलेइयावाले मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि चार जीव

१ तेजःपबलेइययोर्मिथ्यादृष्टयस्यतसम्यग्दृष्टयोनानाजीवपेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि १, ८.

२ पृच्छीतं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । स. पि १, ८.

१, ६, ३०४.]

छत्रलङ्गामे जीवदुण

[१४७

गंतूण सव्वजहण्णकालेण पडिणियत्तिय तं चेव गुणमागदा । लद्धमंतरं ।

उक्कस्सेण वे अट्टारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ३०४ ॥

तं जहा- वे मिच्छादिद्विणो तेउ-पम्मलेस्सिया सादिरेय-वे-अट्टारससागरोवमाउ-
द्विदिप्पु देवेषु उव्वण्णा । छहि पज्जचीहि पज्जत्तयदा (१) विस्सता (२) विमुद्धा
(३) सम्मत्तं घेत्तूणंतरिदा । सगद्धिदिं जीविय अवसाणे मिच्छत्तं गदा (४) । लद्धं
सादिरेय-वे-अट्टारससागरोवममेत्तरं । एवं सम्मादिद्विस्स वि । णनरि पंचहि अंतोसुहुत्तेहि
ऊणियाओ सगद्धिदीओ अंतरं ।

**सासनसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छादिद्विणमंतरं केवचिरं कालादो
होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओर्ध्वं ॥ ३०५ ॥**

सुगमभेदं ।

अन्य गुणस्थानको जाकर सर्वजन्य कालसे लौटकर उसी ही गुणस्थानको आगये ।
इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागरोपम और
साधिक अट्टारह सागरोपम है ॥ ३०४ ॥

जैसे- तेज और पद्म लेख्यावाले दो मिथ्यादृष्टि जीव साधिक दो सागरोपम और
साधिक अट्टारह सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुए । छहों पर्याप्तियोंसे
पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विमुद्ध हो (३) और सम्यक्त्वको ग्रहण कर अन्तरको
प्राप्त हुये । पुनः अपनी स्थितिप्रमाण जीवित रहकर आयुके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त
हुए (४) । इस प्रकार साधिक दो सागरोपमकाल तेजोलेख्यावाले मिथ्यादृष्टिका और
साधिक अट्टारह सागरोपमकाल पद्मलेख्यावाले मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त
होगया । इसी प्रकार तेज और पद्म लेख्यावाले असयतसम्यग्दृष्टि जीवका भी अन्तर कहना
चाहिए । विशेषता यह है कि पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण अन्तर
होता है ।

तेजोलेख्या और पद्मलेख्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि
जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान
है ॥ ३०५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ उत्तरपेण दे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेक्काणि । स सि १, ८

२ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टोर्नानाजीनापेक्षया सामा यवत् । स सि १, ८

१४८]

अताराणुगमे तेउ-पम्मलेस्सिय-अतरपरव्वण

[१, ६, ३०८.

**एगजीवं पडुच्च जहणेण पल्लिदोवसस्स असंख्वेज्जदिभागो,
अंतोसुहुत्तं ॥ ३०६ ॥**

एदं पि सुगम ।

उक्कस्सेण वे अट्टारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ३०७ ॥
तं जहा- वे सासणा तेउ-पम्मलेस्सिया सादिरेय-वे-अट्टारससागरोवमाउद्विदिप्पु
देवेषु उव्वण्णा । एगसमयमच्छिय विट्ठियसमए मिच्छत्तं गंतूणंतरिदा । अवसाणे वे नि
उव्वसमसम्भत्तं पडिक्कणा । पुणो सासनं गंतूण विट्ठियसमए सदा । एवं सादिरेय-वे-अट्टारस-
सागरोवमाणि दुग्गमऊणाणि सासणुक्कस्संतरं होदि । एवं सम्माभिच्छादिद्विस्स नि ।
णवरि छहि अंतोसुहुत्तेहि ऊणियाओ उच्चट्ठिदीओ अंतरं ।

**संजदांसजद-पमत्त-अपमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि,
णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३०८ ॥**

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जवन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमके
असंख्यात्वेन भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः साधिक दो सागरोपम
और अट्टारह सागरोपम है ॥ ३०७ ॥

जैसे- तेज और पद्म लेख्यावाले दो सासादनसम्यग्दृष्टि जीव साधिक दो सागरो-
पम और साधिक अट्टारह सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुए । वहाँ एक
समय रहकर दूसरे समयमें मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुए । आयुके अन्तमें दोनों
ही उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुए । पश्चात् सासादनयुगस्थानको जाकर दूसरे समयमें
मरे । इस प्रकार दो समय कम साधिक दो सागरोपम और साधिक अट्टारह सागरोपम
उक्त दोनों लेख्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है । इसी प्रकार
उक्त दोनों लेख्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका भी अन्तर जानना चाहिए । विशेषता
यह है कि इनके छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी उक्त स्थितियोंप्रमाण अन्तर होता है ।

तेज और पद्म लेख्यावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंका
अन्तर कितने काल होता है ? नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर
है ॥ ३०८ ॥

१ एक्कींय प्रति जवनेन पल्लोपमामल्येयमागोऽन्तर्मुहूर्तत्र । स सि १, ८.

२ उत्तरपेण दे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेक्काणि । स सि १, ८

३ संयतामपमत्तप्रमत्तसंयतानां नानाजीनापेक्षया एक्कीवापेक्षया च नाल्यन्तरम् । स सि १, ८

कुटो ? णाणाजीवमहवोच्छेदाभावा । एगजीमस्स वि, लेस्सद्वादो गुणद्वाए वधुमुदेसा ।

मुक्कलेस्सिण्णु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३०९ ॥

गुणममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३१० ॥
तं जहा- ने देवा मिच्छादिट्ठि-मम्मादिट्ठिणो मुक्कलेस्सिया गुणंतरं गंतूण जहण्णेण कालेण अपिदगुणं पडिण्णा । लद्धमंतोमुहुत्तमंतरं ।

उक्कस्सेण एकक्कीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३११ ॥
तं जहा- ने जीवा मुक्कलेस्सिया मिच्छादिट्ठी दब्बलिंगिणो एकक्कीससागरो-
वमिण्णु दोण्णु उअण्णा । छदि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदा (१) विस्संता (२) विसुद्धा
(३) गम्मत्तं पडिण्णा । तत्थेगो मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो (४) अवरो सम्मत्तेणेव । अत्रसाणे

पर्याप्ति, उक्त गुणस्थानवाले नाना जीवोंके प्रवाहका कभी विच्छेद नहीं होता है । तथा एक जीवकी अपेक्षा भी अन्तर नहीं है, क्योंकि, लेय्योके कालसे गुणस्थानका काल गत होता है, यन्मा उपदेश पाया जाता है ।

शुक्लेश्यावालोमं मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३०९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१० ॥

जैसे- शुक्लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दो देव अन्य गुणस्थानको जाकर जगन्म कालसे विवक्षित गुणस्थानको प्राप्त हुए । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल-
प्रमाण अन्तर लब्ध होता है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागरोपम है ॥ ३११ ॥

जैसे- शुक्लेश्यावाले दो मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिङ्गी जीव इकतीस सागरोपमकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुए । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विद्याम ले (२) विदुत्त हो (३) सम्यक्त्वको प्राप्त हुए । उनमेंसे एक मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको

१ 'इन्द्रेणु' सिण्णत्तयगतमग्गदत्तोत्तान्तीतपेक्षया नास्त्यन्तस्स । स ति १, ८.

२ एगजीम प्रति चण्णेनान्तर्मुहूर्तः । स ति १, ८.

३ अन्तर्गतीं गगरोवमाणि देवोत्तानि । स ति १, ८.

जहाकमेण वे वि मिच्छत्त-रम्मत्ताणि पडिण्णा (५) । चट्ठ-पंचअंतोमुहुत्तेहि उणाणि एकक्कीसं सागरोवमाणि मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमुक्कस्संतरं ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥ ३१२ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पल्लिवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥ ३१३ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण एकक्कीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३१४ ॥

एदं पि सुगमं ।

प्राप्त हुआ (४) । दूसरा जीव सम्यक्त्वके साथ ही रहा । आयुके अन्तमें यथाकमसे दोनों ही जीव मिथ्यात्व और सम्यक्त्वको प्राप्त हुए (५) । इस प्रकार चार अन्तर्मुहूर्तोंसे कम इकतीस सागरोपमकाल शुक्लेश्यावाले मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर है और पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम इकतीस सागरोपमकाल असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर है ।

शुक्लेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ ३१२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागरोपम है ॥ ३१४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

१ सामादनसम्यग्दृष्टिमम्यग्मिथ्यादृष्टयोत्तान्तीतपेक्षया सामान्यत्वं । स ति १, ८.

२ एगजीम प्रति जघन्येन पल्योपमासख्येयमागोत्तर्मुहूर्तम् । स ति. १, ८.

३ उत्तर्गतीं विश्रुतागरोवमाणि देवोत्तानि । स ति. १, ८.

संजदासंजद-पमतसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेग-
जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३१५ ॥

कुदो ? णाणजीवपवाहस्स वोच्छेदाभावा, एगजीवस्स लेस्सद्वादो गुणद्वाए
नहुसुवदेसादो ।

अपमतसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणजीवं पडुच्च
गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३१६ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३१७ ॥

तं जहा- एको अपमतो सुक्कलेस्साए अच्चिदो उवसमसेहिं पडिदणंतरिय
सव्वजहणकालेण पडिणियत्तिय अपमतो जादो । लद्धमंतरं ।

उक्कस्समंतोमुहुत्तं ॥ ३१८ ॥

शुक्कलेश्यावाले संयतासंयत और प्रमतसंयतोका अन्तर कितने काल होता है ?
नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३१५ ॥

क्योंकि, उक्त गुणस्थानवर्ती नाना जीवोंके प्रवाहका कभी व्युच्छेद नहीं होता
है । तथा एक जीवकी अपेक्षा भी अन्तर नहीं है, क्योंकि, लेश्याके कालसे गुणस्थानका
काल बहुत होता है, ऐसा उपदेश पाया जाता है ।

शुक्कलेश्यावाले अप्रमतसंयतोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी
अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३१६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१७ ॥

जैसे- शुक्कलेश्यामें विद्यमान कोई एक अप्रमतसंयत उपशमश्रेणीपर चढ़कर
अन्तरको प्राप्त हो सर्वजघन्य कालसे लौटकर अप्रमतसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर
प्राप्त होगा ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१८ ॥

१ संयतासंयतप्रमतसंयतोस्तेजोलेश्यावत् । स सि १, ८

२ अप्रमतसंयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

३ एकजीव प्रति जघन्यमुत्कृष्ट चान्तर्मुहूर्तः । स सि १, ८

एदस्स जहणभंगो । णवरि सव्वचिरेण कालेण उवसमसेदीदो ओदिणस्स
वचव्वं ।

तिण्हमुवसामाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणजीवं
पडुच्च जहणणेण एगसमयं ॥ ३१९ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३२० ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३२१ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३२२ ॥

एदेसि दोण्हं सुत्ताणमत्थे भणमाणे खिप्प-चिरकालेहि उवसमसेहिं चडिय ओदि-
ण्णाणं^१ जहणुक्कस्सकाला वत्तन्वा ।

इसका अन्तर भी जघन्य अन्तरप्ररूपणाके समान है । विशेषता यह है कि
सर्वदीर्घकालात्मक अन्तर्मुहूर्त द्वारा उपशमश्रेणीसे उतरे हुए जीवके उत्कृष्ट अन्तर
कहना चाहिए ।

शुक्कलेश्यावाले अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती
तीनों उपशामक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे
एक समय अन्तर है ॥ ३१९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

शुक्कलेश्यावाले तीनों उपशामकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ ३२० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२१ ॥

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२२ ॥

इन दोनों सूत्रोंका अर्थ कहने पर क्षिप्र (लघु) कालसे उपशमश्रेणी पर चढ़कर
उतरे हुए जीवोंके जघन्य अन्तर कहना चाहिए, तथा चिर (दीर्घ) कालसे उपशमश्रेणी
पर चढ़कर उतरे हुए जीवोंके उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिए ।

१ त्रयाणामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स सि १, ८

२ एकजीव प्रति जघन्यमुत्कृष्ट चान्तर्मुहूर्तः । स सि १, ८

३ प्रतिपु ' ओधिणण ' इति पाठ ।

उवसंतकसायवीद्रागछुटमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि,
णाणाजीवं पडुच्च जहणणेण एगसमयं ॥ ३२३ ॥

गुणमेवं ।

उवकस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३२४ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३२५ ॥

उवसंतोदो उवारे उवसंतकसायण पडिबज्जमाणगुणद्वयाभावा, हेद्वा ओदिणस्स पि लेसंतगमं किंमंतरेण पुणो उवयंतगुणमहणाभावा ।

चटुण्हं खवगा ओधं ॥ ३२६ ॥

शुक्लेस्यावाले उपशान्तरुपायवीतरागछग्रस्थोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जवन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ३२३ ॥

यह नून सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ ३२४ ॥

यह स्तर भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३२५ ॥

क्योंकि, उपशान्तरुपाय गुणस्थानसे ऊपर उपशान्तरुपायी जीवके द्वारा प्रतिपद्यमान गुणस्थानका अभाव है, तथा नीचे उतरे हुए जीवके भी अन्य लेख्याके संक्रमणके बिना पुनः उपशान्तरुपाय गुणस्थानका ग्रहण हो नहीं सकता है ।

विशिष्टार्थ—उपशान्तरुपायगुणस्थानके अन्तरका अभाव वतानेका कारण यह है कि ग्यारहवें गुणस्थानसे ऊपर तो वह चढ़ नहीं सकता है, क्योंकि, वहांपर क्षपकोंका ही गमन होता है । और यदि नीचे उतरकर पुनः उपशमश्रेणीपर चढ़े, तो नीचेके गुणस्थानमें शुक्लेस्यासे पीत पद्मादि लेख्याका परिवर्तन हो जायगा, क्योंकि, वहांपर एक लेख्याके कालसे गुणस्थानका काल बहुत वताया गया है ।

शुक्लेस्यावाले चारों क्षपकोंका अन्तर ओधके समान है ॥ ३२६ ॥

१ उपशान्तरुपाय नानाजीवपेक्षा सामान्यत्व । न सि १, ८

२ पृच्छीम प्रती नास्त्यन्तस्य । स सि १, ८.

४ चतुर्णां क्षपसर्गा मयोरन्तर्वलिमालेश्यानां च सामान्यत्व । स सि १, ८.

सजोगिकेवली ओधं ॥ ३२७ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एव लेस्सामगणां समत्ता ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव अजोगि-
केवलि ति ओधं ॥ ३२८ ॥

कुदो ? सव्वपयारेण ओवपरूवणादो भेदाभावा ।

अभवसिद्धियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च
णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३२९ ॥

कुदो ? अववपवाहवोच्छेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३३० ॥

कुदो ? गुणंतरसंकतीए तत्थाभावा ।

एव भवियमगणा समत्ता ।

शुक्लेस्यावाले सयोगिकेवलीका अन्तर ओधके समान है ॥ ३२७ ॥
ये दोनों सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार लेख्यामार्गणा समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणके अनुयादसे भव्यसिद्धिकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती भव्य जीवोंका अन्तर ओधके समान है ॥ ३२८ ॥

क्योंकि, सर्व प्रकार ओघप्ररूपणाले भव्यमार्गणकी अन्तरप्ररूपणामें कोई भेद नहीं है ।

अभव्यसिद्धिक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३२९ ॥

क्योंकि, अवव्य जीवोंके प्रवाहका कभी विच्छेद नहीं होता है ।

अभव्य जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३३० ॥

क्योंकि, अवव्योंमें अन्य गुणस्थानके परिवर्तनका अभाव है ।

इस प्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई ।

१ प्रतिपु 'लेस्समगणा' इति पाठ ।

२ भव्यानुवादेन भव्येषु मियादृष्टयाद्योगेनैव्यन्तानां सामान्यत्व । स. सि १, ८.

३ अवव्यानां नानाजीवपेक्षा पृच्छीमपेक्षा च नास्त्यन्तस्य । स. सि. १, ८.

सम्पत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥३३१॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३३२ ॥

तं जहा- एगो असंजदसम्मादिट्ठी संजमासजमगुणं गंतूणं सव्वजहणेण कालेण पुणो असंजदसम्मादिट्ठी जादो । लद्धमंतरं ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥ ३३३ ॥

तं जहा- एगो भिच्छदिट्ठी अट्ठवीससत्ताकम्मिओ पंचिदियतिभिस्खसणिस्सम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उव्वण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिण्णो (४) । संजमासंजमगुणं गंतूणंतरिदो पुव्वकोडि जीविय मदो देवो जादो । एवं चदुहि अंतोमुहुत्तेहि जणिया पुव्वकोडी उक्कस्संतरं ।

‘संजदासंजदपट्ठुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछट्टुमत्था ओधि-
णाणिभंगो ॥ ३३४ ॥

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टियेमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३३१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३३२ ॥

जैसे- एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव सयमासंयम गुणस्थानको प्राप्त होकर सर्व-जघन्य कालसे पुनः असंयतसम्यग्दृष्टि होगया । इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटी है ॥ ३३३ ॥

जैसे- मोहकर्मकी अट्ठईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव पंचेन्द्रिय संस्त्री सम्मूर्च्छिम पर्याप्तक तिर्यचोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४) । पुनः संयमासंयम गुणस्थानको जाकर अन्तरको प्राप्त हो पूर्वकोटी वर्तक जीवित रह कर मरा और देव हुआ । इस प्रकार चार अन्तर्मुहूर्तोंस कम पूर्वकोटी वर्ष असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकपायवीतरागछग्रस्य गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टियोंका अन्तर अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ ३३४ ॥

१ नतिपु ‘सज्जरपट्ठुडि’ इति पाठ ।

जथा ओधिणाणममणाए संजदासंजदादिणमंतरपरूजणा कदा, तथा कादव्वा, गत्थि एत्थ कोड विसेसो ।

चटुण्हं खवगा अजोगिकेवली ओघं ॥ ३३५ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ ३३६ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३३७ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३३८ ॥

तं जहा- एक्को असंजदसम्मादिट्ठी अणगुणं गंतूण सव्वजहणेणकालेण असंजद-सम्मादिट्ठी जादो । लद्धमंतरं ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥ ३३९ ॥

जिस प्रकारसे अवधिशान्तमार्गणमें सयतासंयत आदिकोंके अन्तरकी प्ररूपणा की है, उसी प्रकार यहां पर भी करना चाहिए, क्योंकि, उससे यहां पर कोई विशेषता नहीं है ।

सम्यग्दृष्टि चारों क्षपक और अयोगिकेवलियोंका अन्तर ओघके समान है ॥ ३३५ ॥

सम्यग्दृष्टि सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ३३६ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम है ।

क्षाधिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३३७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३३८ ॥

जैसे- एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव अन्य (संयतासंयतादि) गुणस्थानको जाकर सर्वजघन्य कालसे पुनः असंयतसम्यग्दृष्टि होगया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटी वर्ष है ॥ ३३९ ॥

१ सम्यक्त्वावुवादेन क्षापितसम्यग्दृष्टिचसयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवपेक्षया नास्त्यन्तरस्य स ति. १, ८.

२ एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । स ति १, ८ ३ उत्तरेण पूर्वकोटी देवोना । स ति. १, ८

तं जन्ता- एकतो पुण्वकोडाउएसु मणुसेसुवजिय गन्भादिअहुवस्सियो जादो ।
दंगणमोहणीय गीय रश्यमम्मादिही जादो (१) । अंतोमुहुत्तमाच्छिद्रण (२) संजमासंजमं
मंजमं या पडिचजिय पुण्वकोडिं गमिय काल गदो देवो जादो । अहुवस्सेहि वि-
अंतोमुहुत्तेहि य ऊणिया पुण्वकोडी अंतरं ।

संजदासंजद-पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि णाणा-
जीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३४० ॥

मुममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३४१ ॥

एदं पि मुगमं ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरैयाणि ॥ ३४२ ॥

तं जन्ता- एकको पुण्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो । गन्भादिअहुवस्साणमुवरी
अंतोमुहुत्तेण (१) राह्यं पडुमिय (२) विस्मिय (३) संजमासंजमं पडिचजिय (४)

जेमे- एक जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर गर्भसे लेकर आठ
वर्षका हुआ और अर्धमोहनीयता क्षय करके क्षायिकसम्यग्दृष्टि होगया (१) । वहां
अन्तर्मुहूर्त रह करके (२) संयमासंयम या संयमको प्राप्त होकर और पूर्वकोटी वर्ष
विनाकर मरणको प्राप्त हो देन हुआ । इस प्रकार आठ वर्ष और दो अन्तर्मुहूर्तोंसे कम
पूर्वकोटी वर्ष अत्यंत क्षायिकसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयत्तासंयत और प्रमत्तमयत जीवोंका अन्तर कितने काल
होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३४० ॥

यत्त मूत्र सुगम हे ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३४१ ॥

यत्त मूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेत्तीस सागरोपम
है ॥ ३४२ ॥

जंने- एक जीव पूर्वकोटी वर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भको आदि
लेकर आठ वर्षोंके पश्चात् अन्तर्मुहूर्तसे (१) क्षायिकसम्यग्दृष्टिका प्रस्थापनकर (२)
विश्राम ले (३) संयमासंयमको प्राप्त कर (४) संयमको प्राप्त हुआ । संयमसहित

* गणनायनप्रमाणचगणानां नानाजीवोपेक्षया नास्त्यन्तरं । स सि १, ८.

२ दृष्टीनां नाना जघन्येनात्तर्मुहूर्तं । स. सि. १, ८.

३ उक्कस्सेण पडिचसागरोपमाणि सादिरैयाणि । स. सि १, ८. ४ यत्तिणु 'पडुमिय' इति पाठ ।

संजमं पडिचण्णो । पुण्वकोडिं गमिय मदो समऊणतेत्तीससागरोवमाउद्धिदिएसु उव-
वण्णो । तदो चुदो पुण्वकोडाउएसु मणुसेसुववण्णो । थोवानसेसे जीविए संजमासंजमं
गदो (५) । तदो अप्पमत्तादिणवहि अंतोमुहुत्तेहि सिद्धो जादो । अहुवस्सेहि चोदस-
अंतोमुहुत्तेहि य ऊणदोपुण्वकोडीहिं सादिरैयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि उक्कस्संतरं
संजदासंजदस्स ।

पमत्तस्स उच्चदे- एकको पमत्तो अप्पमत्तो (१) अपुव्वो (२) अणियद्धी
(३) सुहुमो (४) उवसंतो (५) पुणो वि सुहुमो (६) अणियद्धी (७) अपुव्वो
(८) अप्पमत्तो (९) अद्वाखएण कालं गदो । समऊणतेत्तीससागरोवमाउद्धिदिएसु
देवेषु उववण्णो । तदो चुदो पुण्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो । अंतोमुहुत्तावसेसे जीविए
पमत्तो जादो । लद्धमंतरं (१) । तदो अप्पमत्तो (२) । उवरी छ अंतोमुहुत्ता । अंतरस्स
चाहिरा' अहु अंतोमुहुत्ता, अंतरस्स अवभंतरिमा वि णत्त, तेणगंतोमुहुत्तवभहियपुण्वकोडीए
सादिरैयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि उक्कस्संतरं ।

पूर्वकोटीकाल विताकर मरा और एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले
देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहासे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । जीव-
नके अल्प अवशेष रह जाने पर संयमासंयमको प्राप्त हुआ (५) । इसके पश्चात्
अप्रमत्तादि गुणस्थानसम्बन्धी नौ अन्तर्मुहूर्तोंसे (श्रेण्यारोहण करता हुआ) सिद्ध
होगया । इस प्रकार आठ वर्ष और चौदह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम दो पूर्वकोटियोंसे साधिक
तेतीस सागरोपमकाल क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयत्तासंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एक क्षायिकसम्यग्दृष्टि
प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत (१) अपूर्वकरण (२) अनिदृष्टिकरण (३) सूक्ष्मसाप्प-
राय (४) उपरान्तक्रपाय (५) पुनः सूक्ष्मसाप्पराय (६) अनिदृष्टिकरण (७) अपूर्व-
करण (८) अप्रमत्तरायत (९) होकर (गुणस्थान और आयुके) कालक्षयसे मरणको
प्राप्त हो एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । पुनः
वहासे च्युत होकर पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहां जीवनके अन्तर्मुहूर्त
अवशिष्ट रह जाने पर प्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया (१) । पश्चात्
अप्रमत्तसंयत हुआ (२) । इसमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाए । अन्तरके बाहरी
आठ अन्तर्मुहूर्त हैं और अन्तरके भीतरी नौ अन्तर्मुहूर्त हैं, इसलिये नौमेंसे आठके घटा
देने पर दोष बचे हुए एक अन्तर्मुहूर्तसे अधिक पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपम
क्षायिकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

अथवा अंतरस्वभंतराओ दो अप्पमत्तद्वाओ, तासि बाहिरिया एक्का पमत्तद्वा सुद्धा । अंतरभंतराओ छ उवसामगद्वाओ, तासि बाहिरियाओ तिणि खवगद्वाओ सुद्धाओ । अंतरभंतरिमाए उवसंतद्वाए एक्किक्किस्से खवगद्वाए अद्धं सुद्धं । अवसेसा अद्धुद्धा अंतोमुहुत्ता । तेहि जणियाए पुव्वकोडीए सादिरियाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि पमत्तस्सुक्कस्संतरं ।

अप्पमत्तस्स उच्चदे- एक्को अप्पमत्तो खइयस्समादिट्ठी अपुव्वो (१) अणियट्ठी (२) सुहुमो (३) उवसंतो (४) पुणो वि सुहुमो (५) अणियट्ठी (६) अपुव्वो होदूण (७) कालं गदो समज्जतेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसुवण्णो । तदो जुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो, अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे अप्पमत्तो जादो । लद्धमंतरं (१) । तदो पमत्तो (२) पुणो अप्पमत्तो (३) । उवरी छ अंतोमुहुत्ता । अंतरस्स अबभंतरिमाओ छ उवसामगद्वाओ बाहिरिल्लियासु तिसु खवगद्वासु सुद्धाओ । अबभ-

अथवा, अन्तरके आभ्यन्तरी दो अप्रमत्तकाल है और उनके बाहरी एक प्रमत्तकाल शुद्ध है । (अतएव घटाने पर शून्य शेष रहा, क्योंकि, अप्रमत्तसंयतके कालसे प्रमत्तसंयतका काल दुना होता है ।) तथा अन्तरके भीतरी छह उपशामककाल हैं, और उनके बाहरी तीन क्षपककाल शुद्ध हैं । (अतएव घटा देने पर शेष कुछ नहीं रहा, क्योंकि उपशामकेणिके कालसे क्षपकश्रेणीका काल दुगुना होता है ।) अन्तरके भीतरी उपशामककालमेंसे एक क्षपककालके आधा घटाने पर क्षपककालका आधा शेष रहता है । इस प्रकार सब मिलाकर साढ़े तीन अन्तर्मुहूर्त अवशेष रहे । उन साढ़े तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपमकाल क्षायिकसम्पद्दष्टि प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

क्षायिकसम्पद्दष्टि अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एक अप्रमत्तसंयत क्षायिकसम्पद्दष्टि जीव अपूर्वकरण (१) अनिवृत्तिकरण (२) सूक्ष्मसाम्पराय (२) उपशान्तकपाय (४) होकर पुनरपि सूक्ष्मसाम्पराय (५) अनिवृत्तिकरण (६) अपूर्वकरण (७) होकर मरणको प्राप्त हुआ और एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहांसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और ससारके अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर अप्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया (१) । पश्चात् प्रमत्तसंयत (२) पुनः अप्रमत्तसंयत (३) हुआ । इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलीये । अन्तरके आभ्यन्तरी छह उपशामककाल हैं और बाहरी तीन क्षपककाल हैं, अतएव घटा देने पर शेष कुछ नहीं रहा ।

तरिमाए उवसंतद्वाए खवगद्वाए अद्धं सुद्धं । अवसेसा एअद्धुद्धं अंतोमुहुत्ता । एदेहि जण-पुव्वकोडीए सादिरियाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि अप्पमत्तुक्कस्संतरं ।

चटुप्पमुवसामगणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३४३ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३४४ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३४५ ॥

एदं पि अवगदत्थं ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरियाणि ॥ ३४६ ॥

तं जहा- एक्को पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो । अट्ठवस्सेहि अंतोमुहुत्त-बभहिएहि (१) अप्पमत्तो जादो (२) । पमत्तापमत्तपरवत्तसहस्सं कादूण तम्मि चैव

अन्तरके भीतरी उपशान्तकालमेंसे क्षपककालका आधा घटाने पर आधा काल शेष रहा । अवशिष्ट साढ़े पांच अन्तर्मुहूर्त रहे । उनसे कम पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपमकाल क्षायिकसम्पद्दष्टि अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

क्षायिकसम्पद्दष्टि चारों उपशामकोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ३४३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंमें उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ ३४४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३४५ ॥

इस सूत्रका भी अर्थ ज्ञात है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागरोपम है ॥ ३४६ ॥

जैसे- एक जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । अन्तर्मुहूर्तसे अधिक आठ वर्षोंके द्वारा (१) अप्रमत्तसंयत हुआ (२) । पुनः प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत संबंधी सहस्रों परिवर्तनोंको करके उसी कालमें क्षायिकसम्पद्दष्टि भी प्रस्थापनकर (३)

गडयं पट्टनिय (३) उग्रममेडीपाओगविओहीए विमुद्रो (४) अपुओ (५) अणियड्डी (६) मुद्रुओ (७) उग्रमंतो (८) पुणो मुद्रुओ (९) अणियड्डी (१०) अपुओ जाओ (११) अनिओ । पुअकोडिं मंजमणुपालिय तेत्तीससागरोवमाउड्डिओगु देवेसु उअण्णो । नंदो चुदो पुअकोडाउओसु मणुओसु उअण्णो । अंतोसुहुत्तावमेस जीविए अपुओ जाओ (१२) । लद्धमंतरं । नंदो अणियड्डी (१३) सुद्रुओ (१४) उअसंतो (१५) पुणो मुद्रुओ (१६) अणियड्डी (१७) अपुओ जाओ (१८) । उअरि अप्प-मत्ताटिणअंतोमुद्रुत्तेहि सिद्धि गदो । ग्वमद्वस्मेहि सत्तावीसअंतोसुहुत्तेहि उणदोपुअ-कोटीहि माटिओणि तेत्तीमे मागोवमाणि अंतरं । एवं चेप तिण्हमुवसममाणं । गवारे पंनमीम तेओम एअरवीम मुद्रुत्ता उणा कादव्वा ।

चटुणहं खवा अजोगिकेवली ओघं ॥ ३४७ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ ३४८ ॥

उपशमोपेणोकिं योस्य त्रिगुह्निने निगुह्नि हो (४) अपूर्वरुण (५) अनिवृत्तिरुण (६) सूक्ष्मसांपराय (७) उपशान्तकपाय (८) हो, पुन सूक्ष्मसांपराय (९) अनिवृत्ति-रुण (१०) गपूर्वरुण हुआ (११) और अन्तरको प्राप्त होगया । पुन-पूर्वकोटि तक संगमको परिपालन कर तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँसे ज्युन तो पूर्वकोटि की आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । जीवनेके अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर अपूर्वरुण हुआ (१२) । इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया । पुन-अनिवृत्ति-रुण (१३) सूक्ष्मसांपराय (१४) उपशान्तकपाय (१५) पुनः सूक्ष्मसांपराय (१६) अनिवृत्तिरुण (१७) और अपूर्वरुण (१८) हुआ । पश्चात् ऊपरके अग्रमत्ताडि गुण-स्थानसम्पन्नी नो अन्तर्मुहूर्तमि सिद्धिको प्राप्त हुआ । इस प्रकार आठ वर्षोंसे और सत्ताईस अन्तर्मुहूर्तोंसे कम दो पूर्वकोटियोंसे साधिक तेतीस सागरोपमकाल क्षायिक-साम्यगदृष्टि गपूर्वरुणस्यतका उत्कृष्ट अन्तर है । इसी प्रकार शेष तीन उपशामकोंका भी अन्तर जानना चाहिए । विदोयता यह है कि अनिवृत्तिसयन उपशामके पञ्चीस अन्तर्मुहूर्त, सूक्ष्मसांपराय उपशामके तेवीस अन्तर्मुहूर्त और उपशान्तकपायके रक्षीस अन्तर्मुहूर्त कम करना चाहिए ।

क्षायिकसम्यगदृष्टि चागें क्षपक और अयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ३४७ ॥

क्षायिकसम्यगदृष्टि सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ३४८ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

वेदगसम्मादिद्वीसु असंजदसम्मादिद्वीणं सम्मादिद्विभंगो ॥ ३४९ ॥
सम्मत्तमगणाए ओघमिह जधा असंजदसम्मादिद्वीणमंतरं परुविदं तथा एत्थ वि परुविदव्वं ।

संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च-
णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३५० ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोसुहुतं ॥ ३५१ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण छावट्ठि सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३५२ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

वेदकसम्यगदृष्टियोंमें असंयतसम्यगदृष्टियोंका अन्तर सम्यगदृष्टिसामान्यके समान है ॥ ३४९ ॥

जिस प्रकारसे सूत्रस्वमार्गणके ओघमें असंयतसम्यगदृष्टियोंका अन्तर कहा है, उसी प्रकारसे यहां पर भी कहना चाहिए ।

वेदकसम्यगदृष्टियोंमें संयतासंयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३५० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३५१ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छयासठ सागरोपम है ॥ ३५२ ॥

१ क्षायोपशमिसम्यगदृष्टिचगयतमम्यगदृष्टेर्नानाजीनापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनात-
थुद्धतं । उत्तरेण पूर्वगोटी देशेना । स पि १, ८.

२ सयतासयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

३ एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि १, ८

४ उत्तरेण पट्टष्टिसागरोपमाणि देशेनानि । स. पि १, ८.

तं जहा- एकको भिच्छादिद्वी वेदगसम्ममं संजमासंजमं च जुगवं पडिवण्णो । अंतोमुहुत्तमच्छिय संजमं पडिवण्णो अंतरिदो । जत्तियं कालं संजमासंजयेण संजमेण च अच्छिदो तेत्तियमेत्तेणूणतेत्तीससागरोवमाउड्डिदेवेसु उववण्णो । तदो चुदो मणुसेसु उववण्णो । तत्थ जत्तियं काल अत्तजमेण सजमेण वा अच्छदि, पुणो सग्गादो मणुसगदि-मांगत्तूण जं वासपुत्तादिकालमच्छिस्सदि तेहि दोहि वि कालेहि ऊणतेत्तीससागरोवमाउ-ड्डिदिस्सु देवेसु उववण्णो । तदो चुदो मणुसो जादो । वे अंतोमुहुत्तावसेसे वेदगसम्मत्त-काले परिणामपच्चएण संजनासंजमं पडिवण्णो । लद्धमंतरं । तदो अंतोमुहुत्तेण दंसण-मोहणीयं खविय खइयसम्मादिद्वी जादो । आदिल्लमेक्कं अंतिल्ला दुवे^१ अंतोमुहुत्ता, एदेहि तीहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि छावड्डिसागरोवमाणि संजदासंजदुक्कसंतरं ।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, निरंतरं ॥ ३५३ ॥

सुगममेदं ।

जैसे- पूरु मिथ्यादृष्टि जीव वेदकसम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ । अन्तर्मुहूर्त रह कर पुनः संयमको प्राप्त हो अन्तरको प्राप्त हुआ । पुनः मरणकर जितने काल संयमासंयम और संयमके साथ रहा था उतने ही कालसे कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँसे च्युत हो मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहा पर जितने काल असंयमके अथवा संयमके साथ रहा है और स्वर्गसे मनुष्य-गतिमें आकर जितने वर्षपृथक्स्वादि काल असंयम अथवा संयमके साथ रहेगा उन दोनों ही कालोसे कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँसे च्युत हो मनुष्य हुआ । इस प्रकार वेदकसम्यक्त्वके कालमें दो अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाते पर परिणामोंके निमित्तसे संयमासंयमको प्राप्त हुआ । तब अन्तर लब्ध हुआ । पुनः अन्तर्मुहूर्तसे दर्शनमोहनीयका क्षणकर क्षायिकसम्यग्दृष्टि होगया । इस प्रकार आदिका एक और अन्तके दो अन्तर्मुहूर्त, इन तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम छयासठ सागरोपमकाल वेदकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर है ।

वेदकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३५४ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरैयाणि ॥ ३५५ ॥

तं जहा- एकको पमत्तो अप्पमत्तो होदूण अंतोमुहुत्तमच्छिय तेत्तीससागरोवमाउ-ड्डिदिस्सु देवेसुवण्णो । तदो चुदो पुव्वकोडाएस्सु मणुसेसुवण्णो । अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे पमत्तो जादो । लद्धमंतरं । खइयं पडुविय खवगसेडीपाओगअप्पमत्तो होदूण (२) खवगसेडिमारुढो अपुव्वादि छअंतोमुहुत्तेहि णिव्वुदो । अंतरस्स आदिल्लमेक्कमंतो-मुहुत्तं अंतरवाहिरैसु अट्टअंतोमुहुत्तेसु सोहिदे अवसेसा सत्त अंतोमुहुत्ता । एदेहि ऊण-पुव्वकोडीए सादिरैयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि पमत्तसंजदुक्कसंतरं ।

अप्पमत्तरस उच्चदे- एकको अप्पमत्तो पमत्तो होदूण अंतोमुहुत्तमच्छिय (१) समऊणतेत्तीससागरोवमाउड्डिदिदेवेसु उववण्णो । तदो चुदो पुव्वकोडाएस्सु मणुसेसु उव-

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३५४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागरोपम है ॥ ३५५ ॥

जैसे- एक प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत हो अन्तर्मुहूर्त रहकर तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । ससारके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवशिष्ट रह जाने पर प्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । पुनः क्षायिकसम्यक्त्वको प्रस्थापितकर क्षपकश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत हो (२) क्षपकश्रेणीपर चढ़ा और अपूर्वकरणादि छह अन्तर्मुहूर्तोंसे निर्वर्णको प्राप्त हुआ । अन्तरके आदिके एक अन्तर्मुहूर्तको अन्तरके बाहिरी आठ अन्तर्मुहूर्तोंमेंसे कम कर देने पर अवशिष्ट सात अन्तर्मुहूर्त रहते हैं, इनसे कम पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपमकाल प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर है ।

वेदकसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं- एक अप्रमत्तसंयत जीव, प्रमत्तसंयत हो अन्तर्मुहूर्त रहकर (१) एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थिति-वाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ ।

三三三

वज्रं । अतोपुद्गुत्तामये आउण् अप्पमत्तो जाढो । लद्धमंतरं (१) । पमत्तापमत्तसंजद-
द्वेणे मठयं पट्टयि (२) सुवगमेडीपाजोगअप्पमत्तो होदूण (३) सवगसेडीमारुढो
अपुब्बादिद्वि अतोपुद्गुत्तेहि गिणुदो । अंतग्ग्सादिल्लमेक्कं चाहिरेसु णवसु अतोपुद्गुत्तेसु
मोहिं उअममा जट्ठ । एदेहि उणपुव्वकोडीए सादियेयाणि तेत्तीसं सागरोवमणि
अणमसुक्कम्पंतरं ।

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो
होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३५६ ॥

शिरंतगमुनयमगममचं पट्टिमज्जपाणजीमशाय ।

उग्रस्मेण सत्त रादिंदियाणि ॥ ३५७ ॥

किमृत्यो मत्तगदिन्दियविरुणियमो ? सभावदो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोसुहुत्तं ॥ ३५८ ॥

तं जहा—पृम्को उासमसईदां ओदरिय असंजदो जादो । अंतोमुहुत्तमच्छिदूण

आयुक्त अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाँने पर अप्रमत्तसंयत हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया (१)। तत्पश्चात् प्रमत्त या अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षयिकसम्यक्त्वको प्रस्थापितकर (२) क्षपकश्रेणीक प्रायोग्य अप्रमत्तसंयत होकर (३) क्षपकश्रेणीपर चढ़ा और भूयस्वरगादि छह अन्तर्मुहूर्तसे निर्वर्णको प्राप्त हुआ। अन्तरके आदि का एक अन्तर्मुहूर्त ग्राह्यरी नों अन्तर्मुहूर्तोंमेंसे घटा देने पर अवशिष्ट आठ अन्तर्मुहूर्त रहे। इनसे कम पूर्वकेंटीसे सांघिक तैतीस रागरोपगकाल घेदकसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

उपग्रमम्यगृष्टिर्योमं असंयतमम्यगृष्टि जीवोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जयन्य अन्तर एक समय है ॥ ३५६ ॥

‘त्ययिंति, निरन्तर उपशममप्यस्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंका अभाव है।

उक्त जीविका उत्कृष्ट अन्तर सात रात-दिन (अहोरात्र) है ॥ ३५७ ॥

शुभं—सात रात दिनोंके अन्तरका नियम किसलिण है ?

अभाधान—अभाधानं ही हे ।

उक्त जीवोंका एक जीमकी अपेक्षा लघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३५८ ॥

जैसे- एक संयता उपशमश्रेणीसे उत्तरकर असंयतसम्यग्द्वष्टि हुआ और अन्तमुद्धत

१ औपशान्तिप्रमथरटि-मपतसाम्पदष्टेर्नाजिवापेक्षया जघन्येनैक ममय । स सि १, ८.

२ उत्तरीय गज साभिधानि । स वि १, ८

१. पूरुषोऽपि प्राणि जायमानस्य चान्तर्यद्वयः । म. सि. १, ८

उक्त्वास्मिन् अंतोमुहुतं ॥ ३५९ ॥

तं जहा- एको मेडीदो ओदरिय असंजदो जादो । तत्थ अंतोमुहुचमन्छिय
संजमासंजमं पडियणो । तदो अप्पमत्तो पमत्तो होदूण असंजदो जादो । लद्धमुक्कस्संतरं ।

संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च
जहण्णेण एगसमयं ॥ ३६० ॥

सुगममेदं ।

उवकस्मेण चोद्दस राद्धिदियाणि ॥ ३६१ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीविं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३६२ ॥

तं जग-एकको उवसमसेढीदो ओदरिय सजमांसजमं पडिवण्णो । अंतोमुहुत्त-

रहकर संयमासयमको प्राप्त हुआ। अन्तर्मुहूर्तसे पुनः अक्षयत होगया। इस प्रकार जवन्व अन्तर लब्ध हुआ।

उक्त जीविका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३५९ ॥

जैसे- एक संयत उपशमश्रेणीसे उत्तरकर असंयतसम्यग्दृष्टि हुआ। वहाँ अन्त-
मुहूर्त रहकर संयमासंयमज्ञे प्राप्त हुआ। पश्चात् अप्रमत्त और प्रमत्तसंयत होकर
असंयतसम्यग्दृष्टि होगया। इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर लब्ध हुआ।

उपशमसम्पद्यष्टि संयतासंयतोक्ता अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीर्णोक्ती
अपेक्षा लघन्य अन्तर एक समय है ॥ ३६० ॥

यह सब सुगम है ।

उक्त जीर्णोष्ण उत्कृष्ट अन्तर चौदह रात-दिन है ॥ ३६१ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोक्ता एक जीवकी अपेक्षा जगन्मय अन्तर अन्तर्गुह्य है ॥ ३६२ ॥

जैसे- एक सयत उपशमश्रेणीसे उतरकर संयमासंयमको प्राप्त हुआ और अन्त-

२ सयतासयतस्य नानाजीवापेक्षया जघन्येनैक समय । स. मि १, ८

२ उत्तर्येण चतुर्दश रात्रिदिनानि । स वि. १, ८.

३ एरुन्नीन गति जघन्यमुत्कृष्ट चान्तर्गुह्यतः । स सि, १, ८.

१, ६, ३६३]

छक्खंडागमे जीवद्वण

[११७

मच्छिय असंजदो जादो । पुणो वि अंतोमुहुत्तेण संजमांसंजमं पडियणो । लद्धं जहणंतरं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३६३ ॥

तं जहा- एक्को सेडीदो ओदरिय संजदासंजदो जादो । अंतोमुहुत्तमच्छिय अप्पमत्तो पमत्तो असंजदो च होदूण संजदासंजदो जादो । लद्धमुक्कस्संतरं ।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणार्जीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३६४ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण पणारस रादिदियाणि ॥ ३६५ ॥

एद पि सुगमं ।

एगर्जीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३६६ ॥

तं जहा- एक्को उवसमसेडीदो ओदरिय पमत्तो होदूण अंतोमुहुत्तमच्छिय अप्प-

मुहुत्तं रहकर असंयतसम्यग्दृष्टि होगया । फिर भी अन्तर्मुहुत्तसे समयमांसंयमको प्राप्त हुआ । इस प्रकार जघन्य अन्तर लब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहुत्तं है ॥ ३६३ ॥

जैसे- एक संयत उपशमश्रेणीसे उतरकर संयतासंयत हुआ । अन्तर्मुहुत्तं रहकर अप्रमत्तसंयत, प्रमत्तसंयत और असंयतसम्यग्दृष्टि होकर संयतासंयत होगया । इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर लब्ध हुआ ।

उपशमसम्यग्दृष्टि प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है ॥ ३६४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह रात-दिन है ॥ ३६५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहुत्तं है ॥ ३६६ ॥

जैसे- एक संयत उपशमश्रेणीसे उतरकर प्रमत्तसंयत हो अन्तर्मुहुत्तं रह कर

१ प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवोपेक्षया जघन्येनैकः समयः । स ति १, ८

२ उत्कर्षेण पचदश रात्रिदिनानि । स ति १, ८

३ एवञ्जीव प्रति जघन्यमुत्कृष्ट चात्तर्मुहुत्तः । स ति १, ८.

१६८]

अतराणुगमे उवसमसम्मादिट्ठि-अतरपरुवण

[१, ६, ३६९.

मत्तो जादो । पुणो वि पमत्तचं गदो । लद्धमंतरं । एवं चेव अप्पमत्तस्स वि जहणंतरं वत्तव्वं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३६७ ॥

तं जहा- एक्को उवसमसेडीदो ओदरिय पमत्तो होदूण पुणो संजदासंजदो असंजदो अप्पमत्तो च होदूण पमत्तो जादो । लद्धमंतरं । अप्पमत्तस्स उच्चदे- एक्को सेडीदो ओदरिय अप्पमत्तो जादो । पुणो पमत्तो असंजदो संजदासंजदो च होदूण भूओ अप्पमत्तो जादो । लद्धमुक्कस्संतरं ।

तिण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणार्जीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३६८ ॥

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३६९ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

अप्रमत्तसंयत हुआ । फिर भी प्रमत्त गुणस्थानको प्राप्त हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । इसी प्रकारसे उपशमसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयतका भी जघन्य अन्तर कहना चाहिये ।

उपशमसम्यग्दृष्टि प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहुत्तं है ॥ ३६७ ॥

जैसे- एक संयत उपशमश्रेणीसे उतरकर प्रमत्तसंयत होकर पुनः संयतासंयत, असंयत और अप्रमत्तसंयत होकर प्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । उपशमसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एक संयत उपशमश्रेणीसे उतरकर अप्रमत्तसंयत हुआ । पुनः प्रमत्तसंयत, असंयत और संयतासंयत होकर फिर भी अप्रमत्तसंयत होगया । इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर लब्ध हुआ ।

उपशमसम्यग्दृष्टि अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय, इन तीनों उपशमकोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ३६८ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ ३६९ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

१ त्रयाणामुपशमकाना नानार्जीवोपेक्षया जघन्येनैक समय । स ति १, ८

२ उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम् । स ति १, ८

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३७० ॥

तं जला-उगममेदिं चट्टिय आदिं करिय पुणो उमरिं गंतूण ओदरिय अपिद-
गुणं पटिगणम्म थोमुदुत्तमंतरं होदि ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३७१ ॥

पदम जहण्णमंगो । गवरि विमिता विदियवारं चडमाणस्स जहण्णंतरं, पदमवारं
चट्टिय ओदिण्णस्स उक्कस्संतरं वत्तन्वं ।

उवसंतकसायवीदरागछुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि,
णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३७२ ॥

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३७३ ॥

एदाणि दो नि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३७४ ॥

उक्त तीनों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त
है ॥ ३७० ॥

झेडे-उपशमश्रेणीपर चढ़कर आदि करके फिर भी ऊपर जाकर ओर उतरकर
विपश्चित गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवमें अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तर होता है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३७१ ॥

इस उत्कृष्ट अन्तरकी प्ररूपणा भी जघन्य अन्तरकी प्ररूपणाके समान जानना
चाहिए । किन्तु विवेकता यह है कि उपशमश्रेणीपर छितीय बार चढ़नेवाले जीवके जघन्य
अन्तर होना है और प्रथम बार चढ़कर उतरे हुए जीवके उत्कृष्ट अन्तर होता है, ऐसा
कहना चाहिए ।

उपशान्तरूपायवीतरागछन्नस्य जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना
जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है ॥ ३७२ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षप्रयवत्त है ॥ ३७३ ॥

ये दोनों ही सूर सुगम हैं ।

उपशान्तरूपायवीतरागछन्नस्योका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर
है ॥ ३७४ ॥

१ पृच्छीतं प्रति जरायुत्कृष्टं चात्तर्मुहूर्तं । म सि १, ८

२ उपशान्तरूपाय नानाजीवापेक्षया सामान्यम् । म सि १, ८.

३ पृच्छीतं प्रति नास्त्यन्तरम् । म सि १, ८.

हेट्ठिमगुणद्वारेणु अंतराविय सव्वजहण्णेण कालेण पुणो उवसंतकसायभावं गयस्स
जहण्णंतरं किण्ण उच्चदे ? ण, हेट्ठा ओइण्णस्स वेदगसम्मत्तमपडिचज्जिय पुब्बुगसम-
सम्मचेणुवसमसेदीसमारुहणे संभवाभावादो । तं पि कुदो ? उवसमसेदीसमारुहणपा-
ओगकालादो सेसुवसमसम्मत्तद्वारेण त्थोवत्तुवलंभादो । तं पि कुदो णच्चदे ? उवसंत-
कसायएगजीवस्संतराभाण्णहाणुवत्तनीदो ।

सासणसम्भामिच्छादिट्ठिणमंतरं केवचिरं कालादो
होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३७५ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण पल्लोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३७६ ॥

एदं पि सुगमं ।

शंका-नीचके गुणस्थानमें अन्तरको प्राप्त करकर सर्वजघन्य कालसे पुनः
उपशान्तकपायताको प्राप्त हुए जीवके जघन्य अन्तर क्यों नहीं कहते हैं ?

समाधान-नहीं, क्योंकि, उपशमश्रेणीसे नीचे उतरे हुए जीवके वेदकसम्भ-
क्तको प्राप्त हुए बिना पहलेवाले उपशमसमयस्त्वके द्वारा पुनः उपशमश्रेणीपर
समारोहणकी सम्भावनाका अभाव है ।

शंका-यह कैसे जाना ?

समाधान-क्योंकि, उपशमश्रेणीके समारोहणयोग्य कालसे शेष उपशम-
सम्यक्त्वका काल अल्प पाया जाता है ।

शंका-यह भी कैसे जाना ?

समाधान-उपशान्तकपायवीतरागछन्नस्थके एक जीवके अन्तरका अभाव
अन्यथा बन नहीं सकता, इससे जाना जाता है कि उपशान्तकपाय गुणस्थान एक जीवकी
अपेक्षा अन्तर रहित है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता
है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ३७५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्लोपमका असंख्यातवां भाग है ॥ ३७६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

१ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समय । म सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण पल्लोपमासंख्येयमात्र । म सि. १, ८.

१, ६, ३७७]

छक्कडागमे जीवद्वगण

[१७१

एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३७७ ॥

गुणसंकीर्ण असंभवादो ।

मिच्छादिद्विगुणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणेगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३७८ ॥

कुदो ? गाणाजीवपमाहस्स वोच्छेदाभावा, गुणंतरसंकीर्ण अभावादो ।

एव सम्मत्तमगणा समत्ता ।

सणिगयाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिद्विगुणमोघं ॥ ३७९ ॥

कुदो ? गाणाजीवं पडुच्च अंतराभावेण, एगजीवं पडुच्च अंतोमुहुत्तं देखेणवे-
छावड्डिसागरोपमसत्तजहणुक्कस्संतरेहि य साधम्मवुलंभा ।

सासनसम्भादिद्विगुणमोघं जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था
ति पुरिसवेदभंगो ॥ ३८० ॥

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३७७ ॥

क्योंकि, इन दोनोंके गुणस्थानका परिवर्तन असम्भव है ।

मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना और एक जीवकी
अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३७८ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंके प्रवाहका कभी विच्छेद नहीं होता है । तथा एक जीवका
अन्य गुणस्थानोंमें संक्रमण भी नहीं होता है ।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

संज्ञीमार्गणके अनुवादसे संज्ञी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर ओघके समान
है ॥ ३७९ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, एक जीवकी अपेक्षा
जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम दो छयासठ सागरोपममात्र अन्तरोंकी अपेक्षा
ओघसे समानता पाई जाती है ।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर उपशान्तकपायवीतरागछदस्य तक संज्ञी जीवोंका
अन्तर पुरुषवेदियोंके अन्तरके समान है ॥ ३८० ॥

१ एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

२ मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवपेक्षया एकजीवपेक्षया च नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

३ सत्तादुवादेन सत्तेषु मिथ्यादृष्टे सामान्यवत् । स सि १, ८

४ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवपेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येन पश्योपमा-

१७२]

अंतराणुगमे असणि-अतरपरवणं

[१, ६, ३८३-

कुदो ? सागरोपमसदपुधत्तद्विदं पडि दोण्हं साधम्मवुलंभा । गवरि असणिगद्विदि-
मच्छिय सण्णीसुगणस्स उन्नक्कस्सद्विदी वत्तव्वा ।

चटुण्हं खवाणमोघं ॥ ३८१ ॥

सुगममोघं ।

असणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च
गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३८२ ॥

कुदो ? असणिपवाहस्स वोच्छेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३८३ ॥

कुदो ? गुणसंकीर्ण अभावादो ।

एव सणिगमगणा समत्ता ।

क्योंकि, सागरोपमशतपृथक्त्वस्थितिकी अपेक्षा दोनोंके अन्तरोंमें समानता पाई
जाती है । विशेषता यह है कि असंज्ञी जीवोंकी स्थितिमें रहकर संज्ञी जीवोंमें उत्पन्न हुए
जीवके उत्कृष्ट स्थिति कहना चाहिए ।

संज्ञी चारों क्षपकोंका अन्तर ओघके समान है ॥ ३८१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

असंज्ञी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर
नहीं है, निरन्तर है ॥ ३८२ ॥

क्योंकि, असंज्ञी जीवोंके प्रवाहका कभी विच्छेद नहीं होता है ।

असंज्ञी जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३८३ ॥

क्योंकि, असंज्ञियोंमें गुणस्थानके परिवर्तनका अभाव है ।

इस प्रकार संज्ञीमार्गणा समाप्त हुई ।

सत्योपमागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्तरेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् । असयततम्यदृष्टयायमचानानां नानाजीवपेक्षया
नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्तरेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् । चतुर्णां पुपशमकानां नानाजीवा-
पेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्तरेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् । स सि १, ८

१ चतुर्णां क्षपकानां सामान्यवत् । स सि १, ८

२ अमक्षिनां नानाजीवपेक्षयैकजीवपेक्षया च नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

आहाराणुवादेण आहारएणु मिच्छादिद्विणमोघं ॥ ३८४ ॥

सुगममेदं ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छादिद्विणमंतरं केवचिरं कालादो होदि,
पाणाजीवं पडुच्च ओवं ॥ ३८५ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो,
अंतोमुहुत्तं ॥ ३८६ ॥

एदं पि अगमयत्थं ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ
ओसपिणि-उस्सपिणीओ ॥ ३८७ ॥

तं जहा- एस्सो सामणद्वाए दो समया अत्थि ति कालं गदो । एगविगहं

आहारमार्गणके अनुवादसे आहारक जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर ओवके
ममान है ॥ ३८४ ॥

यह मूल नुगम है ।

आहारक नामादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल
होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओवके समान है ॥ ३८५ ॥

यह मूल भी नुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असं-
ख्यातां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३८६ ॥

इस सूत्रका अर्थ प्राप्त है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्याता-
मंस्थान उत्तमर्षिणी और अवसर्षिणी काल है ॥ ३८७ ॥

नैम- एक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सासादनगुणस्थानके कालमें दो समय

१ भागप्रमाण आहारएणु भिन्नाष्टे गमान्तरत् । स मि १, ८.

२ नामादनसम्यग्दृष्टिमन्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवोपेक्षया सामायकत् । स मि १, ८

३ एस्सो जघनेन पत्तोपमानस्येयमसोन्तर्मुहूर्तश्च । स मि १, ८

४ उत्तमर्षिणी आहारोपमगायासहेया उन्मर्षिणमर्षिण्य । स मि. १, ८

कादूण विदियसमए आहारी होदूण तदियसमए मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो । असंखेज्जा-
संखेज्जाओ ओसपिणि-उस्सपिणीओ परिभमिय अंतोमुहुत्तमवसेसे आहारकाले उवसम-
सम्मत्तं पडिवण्णो । एगसमयावसेसे आहारकाले सासणं गंतूण विगहं गदो । होदि
समएहि ऊणो आहारककस्सकालो सासणुक्कस्संतरं ।

एकौ अट्टानीसंतकम्मिओ निगहं कादूण देवेसुनण्णो । छहि पज्जचीहि
पज्जचयदो (१) निस्संतो (२) विसुद्धो (३) सम्माभिच्छत्तं पडिवण्णो (४) ।
मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो । अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं परिभमिय सम्माभिच्छत्तं पडिवण्णो
(५) । लद्धमंतरं । तदो सम्मत्तेण वा मिच्छत्तेण वा अंतोमुहुत्तमच्छिदूण (६) विगहं
गदो । छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणओ आहारकालो सम्माभिच्छादिद्विस्स उक्कस्संतरं ।

असंजदसम्मादिट्ठिपुहुडि जाव अपमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं
कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३८८ ॥

सुगममेदं ।

अवशिष्ट रहने पर मरणको प्राप्त हुआ । एक विग्रह (मोड़ा) करके द्वितीय समयमें
आहारक होकर और तीसरे समयमें मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ । असे-
ख्यातासंख्यात अवसर्षिणियों और उत्तमर्षिणियों तक परिश्रमणकर आहारककालमें
अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुनः आहारककालके एक
समयमात्र अवशिष्ट रहने पर सासादनको जाकर विग्रहको प्राप्त हुआ । इस प्रकार दो
समयोंसे कम आहारकता उत्कृष्ट काल ही आहारक सासादनसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट
अन्तर होता है ।

मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्पावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह करके
देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्यक्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३)
सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (४) और मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ ।
अंगुलके असंख्यातवें भाग कालप्रमाण परिश्रमण कर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (५) ।
इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया । पछि सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्वके साथ अन्तर्मुहूर्त रह
कर (६) विग्रहगतिको प्राप्त हुआ । इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम आहारककाल
ही आहारक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

असंप्रतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक आहारक जीवोंका अन्तर
कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३८८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ असंप्रतसम्यग्दृष्ट्यावयमचान्ताना नानाजीवोपेक्षया नास्त्यन्तरम् । य मि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३८९ ॥

कुदो ? गुणंतरं गंतूण सव्वजहणकालेण पुणो अपिदगुणपडियणस्स जहणं-
तरवलंभा ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ ओस-
पिणि-उस्सपिणीओ ॥ ३९० ॥

असंजदसम्मादिद्विस्स उच्चदे- एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ विग्गहं कादूण
देवसुवण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जचयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं
पडिचण्णो (४) । मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं परिभमिय अंतो उवसम-
सम्मत्तं पडिचण्णो (५) । लद्धमंतरं । उवसमसम्मत्तद्वारा छावलिवावसेसाए सासणं
गंतूण विग्गहं गदो । पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणओ आहारकालो उक्कस्संतरं ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३८९ ॥

क्योंकि, विवक्षित गुणस्थानसे अन्य गुणस्थानको जाकर और सर्वजघन्य
कालसे लौटकर पुनः अपने विवक्षित गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके जघन्य अन्तर
पाया जाता है ।

उक्त असंयतादि चार गुणस्थानवर्ती आहारक जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा
उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवै भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और
उत्सर्पिणी काल है ॥ ३९० ॥

आहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं-मोहकर्मकी अट्ठाईस
प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह करके देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों
पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त
हुआ (४) । पीछे मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ और अंगुलके असंख्यातवै
भागप्रमाण कालतक परिभ्रमण करके अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (५) ।
इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया । पुनः उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलिओं अवशिष्ट
रह जाने पर सासादनमें जाकर विग्रहको प्राप्त हुआ । इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम
आहारकाल ही आहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

१ एक्कीव प्रति जघयेनान्तर्मुहूर्त । स सि १, ८

२ उत्तर्पणशुल्लताख्येमाणा असत्थेया उत्तर्पिण्यवसर्पिण्य । स सि १, ८

संजदासंजदस्स उच्चदे- एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ विग्गहं कादूण सम्मु-
च्छिमेसु उवण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जचयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३)
वेदगसम्मत्तं संजमासंजमं च समगं पडिचण्णो (४) । मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो अंगुलस्स
असंखेज्जदिभागं परिभमिय अंतो पढमसम्मत्तं संजमासंजमं च समगं पडिचण्णो (५) ।
लद्धमंतरं । उवसमसम्मत्तद्वारा छावलिवावसेसाए सासणं गंतूण विग्गहं गदो । पंचहि
अंतोमुहुत्तेहि ऊणओ आहारकालो उक्कस्संतरं ।

पमत्तस्स उच्चदे- एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ विग्गहं कादूण मणुसेसुवण्णो ।
गन्धमादिद्वयस्सेहि अप्पमत्तो (१) पमत्तो होदूण (२) मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो ।
अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं परिभमिय अंतो पमत्तो जादो । लद्धमंतरं (३) । कालं
कादूण विग्गहं गदो । तिहि अंतोमुहुत्तेहि अट्ठवस्सेहि य ऊणओ आहारकालो उक्कस्संतरं ।

अप्पमत्तस्स एवं चेव । णवरि अप्पमत्तो (१) पमत्तो होदूण अंतरिदो सगद्धिदि
परिभमिय अप्पमत्तो होदूण (२) पुणो पमत्तो जादो (३) । कालं करिय विग्गहं

आहारक संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं-मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी
सत्तावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह करके पंचेन्द्रिय सम्मुखिच्छामें उत्पन्न हुआ ।
छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्व
और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (४) । पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको
प्राप्त हो अंगुलके असंख्यातवै भागप्रमाण काल तक परिभ्रमणकर अन्तमें प्रथमोपशम-
सम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (५) । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ ।
पश्चात् उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलिओं अवशेष रहने पर सासादनको जाकर
विग्रहको प्राप्त हुआ । इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम आहारकाल ही आहारक
संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर है ।

आहारक प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं-मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी
सत्तावाला एक जीव विग्रह करके मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भको आदि ले आठ वर्षोंसे
अप्रमत्तसंयत (१) और प्रमत्तसंयत हो (२) मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ ।
अंगुलके असंख्यातवै भागप्रमाण कालतक परिभ्रमण करके अन्तमें प्रमत्तसंयत होगया ।
इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (३) । पश्चात् मरण करके विग्रहगतिको प्राप्त हुआ । इस
प्रकार तीन अन्तर्मुहूर्त और आठ वर्षोंसे कम आहारकाल ही आहारक प्रमत्तसंयतका
उत्कृष्ट अन्तर है ।

आहारक अप्रमत्तसंयतका भी अन्तर इसी प्रकार है । विशेषता यह है कि अप्रमत्त-
संयत जीव (१) प्रमत्तसंयत होकर अन्तरको प्राप्त हो अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर
अप्रमत्तसंयत हो (२) पुनः प्रमत्तसंयत हुआ (३) । पश्चात् मरण करके विग्रहको प्राप्त

गदो । निहि अंतोमुहुचेहि ऊगओ आहारकालो उक्कसंतरं ।

चटुहमुवसामगणमंतरं केवचिरं कालदो होदि, पाणाजीवं पडुच ओघभंगो ॥ ३११ ॥

मुगममेदं, वट्टुमो उत्तचादो ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३१२ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ असप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ॥ ३१३ ॥

तं जह्वा- एक्को अट्ठावीमसंतकम्मिओ विग्गहं कादूण मणुसेसुववणो । अट्ठ- वस्सिओ सम्मत्तं अप्पमत्तभावेण संजमं च समगं पडिवणो (१) । अणताणुबंधी विसंजोए- ण (२) दंयणमोहणीयपुरमाप्पिय (३) पमत्तापमत्तपरावत्तहस्सं कादूण (४) तदो अपुब्बो (५) अणियट्ठी (६) सुहुमो (७) उवमत्तो (८) पुणो वि पविडमाणो

हुआ । इस प्रकार तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम आहारककाल ही आहारक अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर है ।

आहारक चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी ओपक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ ३११ ॥

या सूर सुगम है, क्योंकि, इसका अर्थ पहले बहुत बार कहा जा चुका है ।

उक्त जीवोंका एक जीवनी ओपक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१२ ॥

या सूर भी सुगम है ।

आहारक चारों उपशामकोंका एक जीवकी ओपक्षा उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यतयं भागप्रमाण अमंख्यतामंख्यत उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी है ॥ ३१३ ॥

मोक्षकर्मकी अट्ठारस प्रकृतियोंकी सत्तावादा एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह करके मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । आठ वर्षका होकर सम्यक्त्वको ओर अप्रमत्तभावके साग संयमको पक्त साग प्राप्त हुआ (१) । पुन अन्तानुवन्द्याका विसंयोजन करके (२) दर्शनमोह- नीयता उपशमनकर (३) प्रमत्त ओर अप्रमत्त गुणस्थानसम्यन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके (४) पञ्चात् अपूर्वकरण (५) अनिवृत्तिकरण (६) सूक्ष्मसाम्पराय (७) और उप-

१ चतुर्णां उपशमनानां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् । सासादत्तसम्पद्येर्नानाजीवा-

२ एकजीव भी नापेनान्मूर्तः । स सि. १, ८.

३ उन्तरेर्नानासंखेयभागा अगलेसामहोया उन्मर्षिणमवर्षिण्य । स सि १, ८

सुहुमो (९) अणियट्ठी (१०) अपुब्बो जादो (११) । हेडा ओदरिदूर्णतिरिदो अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं परिभमिय अत्ते अपुब्बो जादो । लद्धमंतरं । तदो णिदा-पयलाणं बंधे वोच्छिण्णे मरिय विग्गहं गदो । अट्ठवस्सेहि वारसअंतोमुहुचेहि य ऊगओ आहारकालो उक्कसंतरं । एवं चेव तिण्हमुवसामगणं । णवरि दस णव अट्ठ अंतोमुहुत्ता समयाहिया ऊणा कादव्वा ।

चटुहं खवाणमोघं ॥ ३१४ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ३१५ ॥

एदं पि सुगमं ।

अणाहारा कम्मइयकायजोगिभंगो ॥ ३१६ ॥

शान्तकराय होकर (८) फिर भी गिरता हुआ सूक्ष्मसाम्पराय (९) अनिवृत्तिकरण (१०) और अपूर्वकरण हुआ (११) । पुनः नीचे उत्तरकर अन्तरको प्राप्त हो अंगुलके असंख्यातयं भाग कालप्रमाण परिध्रमणकर अन्तमें अपूर्वकरण उपशामक हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । तत्पश्चात् निद्रा ओर प्रचला, इन दोनों प्रकृतियोंके बधसे व्युत्थित होनेपर मरकर विग्रहको प्राप्त हुआ । इस प्रकार आठ वर्ष और बारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम आहारक- काल ही अपूर्वकरण उपशामकका उत्कृष्ट अन्तर है । इसी प्रकार शेष तीनों उपशामकोंका भी अन्तर कहना चाहिए । विशेषता यह है कि आहारककालमें अनिवृत्तिकरण उप- शामकके दश, सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकके नौ और उपशान्तकपाय उपशामकके आठ अन्तर्मुहूर्त और एक समय कम करना चाहिए ।

आहारक चारों क्षपकोका अन्तर ओघके समान है ॥ ३१४ ॥

यह सूर सुगम है ।

आहारक सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ३१५ ॥

यह सूर भी सुगम है ।

अनाहारक जीवोंका अन्तर कर्मणकाययोगियोंके समान है ॥ ३१६ ॥

१ चतुर्णां क्षपणानां सयोगिकेवल्लिना च मामान्यतम् । स सि १, ८.

२ त्रितयु 'अणाहार' इति पाठ ।

३ अनाहारानेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् । सासादत्तसम्पद्येर्नानाजीवा- पेक्षया जघन्यनैकः समः । उत्तरेण पत्योपसामत्येयमाणः । एकजीव इति नाम्बन्तम् । अमयतसम्पद्येर्नाना- नीवापेक्षया जघन्यनैकः समः । उत्तरेण मासपृथक्त्वम् । एकजीव इति नास्त्यन्तरम् । सयोगिभिर्निलिनां नाना- नीवापेक्षया जघन्यनैकः समः । उत्तरेण वर्षपृथक्त्वम् । एकजीव इति नास्त्यन्तरम् । म. सि. १, ८.

मिच्छादिद्विणीं गाणेगजीवं पडुच्च अंतराभावेण, सासणसम्मादिद्विणीं गाणाजीवं पडुच्च एगसमयपलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागजहणुक्कस्संतरेहि य, एगजीवं पडुच्च अंतराभावेण य, असंजदसम्मादिद्विणीं गाणाजीवं पडुच्च एगसमय-मासपुधत्तरेहि य, एगजीवं पडुच्च अंतराभावेण य, सजोगिकेवलीं गाणाजीवं पडुच्च एगसमय-वासपुधत्त-जहणुक्कस्संतरेहि य, एगजीवं पडुच्च अंतराभावेण य दोण्हं साधम्मवुलंभादो ।

विसेसपदुप्पायणद्वुत्तरसुत्तं भणदि-

णवरि विसेसा, अजोगिकेवली ओधं ॥ ३९७ ॥

सुगममेदं ।

(एव आहारसगणा समत्ता ।)

एवमंतराणुगमो ति समत्तमणिओगहारं ।

क्योंकि, मिथ्यादृष्टियोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे सात्तादनसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पल्यो-पमका असंख्यतवां भाग अन्तरेसे, तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, असंयतसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट मास पृथक्त्व अन्तरोंके द्वारा, और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, सयोगिके-वलियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट वर्णपृथक्त्व अन्तरसे, तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे दोनोंमें समानता पाई जाती है ।

अनाहारक जीवोंमें विशेषता प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं-

किन्तु विशेषता यह है कि अनाहारक अयोगिकेवलीका अन्तर ओधके समान है ॥ ३९७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार आहारमार्गणा समान्त हुई ।

इस प्रकार अन्तरानुगम अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

१ अयोगिकेवलियों नानाजीवपेक्षया जघन्यैकः समयः । उत्कर्षेण यण्णालाः । एकजीव प्रति नास्त्य-न्तस्य । स. सि १, ८.

२ अन्तःसमगतम् । स सि १, ८

भारत

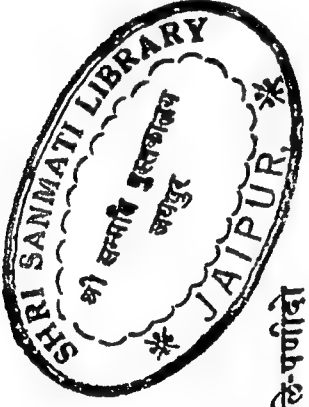
भावो । तस्य द्रव्यभावो दुविहो आगम-गोआगमभेएण । भावपाहुडजाणओ अणुव-
जुवो आगमद्रव्यभावो होदि । जो गोआगमद्रव्यभावो सो तिविहो जाणुगसरीर-भवि-
तव्वदिरित्थेएण । तस्य गोआगमजाणुगसरीरद्रव्यभावो तिविहो भवि-नडुमाण-समुज्झाद-
भेएण । भावपाहुडपज्जायपरिणदजीवस्स आहारो जं होसदि सरीरं तं भविं गाम ।
भावपाहुडपज्जायपरिणदजीव जमेगीभूदं सरीरं तं वडुमाणं गाम । भावपाहुडपज्जाएण
परिणदजीवण एगत्तमुवणमिय जं पुधभूदं सरीरं तं समुज्झादं गाम । भावपाहुडपज्जाय-
सरूवेण जो जीवो परिणमिस्सदि सो गोआगमभविदव्यभावो गाम । तव्वदिरित्त-
गोआगमद्रव्यभावो तिविहो सचिच्चचित्त-मिस्सभेएण । तस्य सचित्तो जीवद्वं । अचित्तो
पोगल-धम्मधम्म-कालागासदव्वणि । पोगल-जीवद्वणं संजोगो कंधं चि जच्चतरत्तमा-
वणो गोआगममिस्सदव्यभावो गाम । कंधं दव्वस्स भावव्वएसो ? ण, भवन्नं भावः,
भूतिर्वा भाव इति भावमहस्स विउप्पत्तिअवलंणादो । जो भावभावो सो दुविहो आगम-
गोआगमभेएण । भावपाहुडजाणओ उवजुत्तो आगमभावभावो गाम । गोआगमभावभावो
पंचविहं ओदइओ ओवसमिओ खइओ खओवसमिओ पारिणामिओ चेदि । तस्य कम्मोदय-

नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है । भावप्राभृतक्षायक किन्तु वर्तमानमे अनुपयुक्त जीव
आगमद्रव्यभाव कहलाता है । जो नोआगमद्रव्य भावनिक्षेप है वह क्षायकशरीर, भव्य
और तदव्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकार होता है । उनमे नोआगमक्षायकशरीर द्रव्यभाव-
निक्षेप भव्य, वर्तमान और समुज्झितके भेदसे तीन प्रकारका है । भावप्राभृतपर्यायसे
परिणत जीवका जो शरीर आधार होगा, वह भव्यशरीर है । भावप्राभृतपर्यायसे परि-
णत जीवके साथ जो एकीभूत शरीर है, वह वर्तमानशरीर है । भावप्राभृतपर्यायसे परि-
णत जीवके साथ एकत्वको प्राप्त होकर जो पृथक् हुआ शरीर है वह समुज्झितशरीर है ।
भावप्राभृतपर्यायस्वरूपसे जो जीव परिणत होगा, वह नोआगमभव्यद्रव्य भावनिक्षेप है ।
तदव्यतिरिक्त नोआगमद्रव्य भावनिक्षेप, सचित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन
प्रकारका है । उनमें जीवद्रव्य सचित्तभाव है । पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, काल
और आकाश द्रव्य अचित्तभाव है । कथंचित् जाल्यन्तर भावको प्राप्त पुद्गल और जीव
द्रव्योंका संयोग नोआगमभिश्रद्रव्य भावनिक्षेप है ।

शृंक्षा—द्रव्यके 'भाव' ऐसा व्यपदेश कैसे हो सकता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, 'भवन्नं भाव.' अथवा 'भूतिर्वा भाव' इस प्रकार
भावशब्दकी व्युत्पत्तिके अवलम्बनसे द्रव्यके भी 'भाव' ऐसा व्यपदेश वन जाता है ।

जो भावनामक भावनिक्षेप है, वह आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका
है । भाव प्राभृतका क्षायक और उपयुक्त जीव आगमभावनामक भावनिक्षेप है । नोआगम-
भाव भावनिक्षेप औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिकके भेदसे



सिरि-भगवंत-पुष्पदंत-भूदयलि-पणीदो

छवखंडागमो

सिरि-धीरसेणाहरिय-विरइय-धवला-टीका-समणिदे

तस्स

पढमखंडे जीवट्टाणे

भावाणुगमो

अवगयअसुद्धभावे उवगयकम्मखडउच्चउव्वभावे ।

पणमिय सव्वरहते भावणिओगं परूवेसो ॥

भावाणुगमेण दुविहो णिदेसो, ओवेण आदेसेण यं ॥ १ ॥

णाम-द्वयणा-द्रव्य-भावो ति चउव्विहो भावो । भावसदो वज्झत्यणिरवेक्खो
अप्पाणग्धि चेव पयडो णामभावो होदि । तस्य उवणभावो सन्भावसन्भावभेएण दुविहो ।
विराग-सरागादिभावे अणुहरती उवणा सन्भावद्वयणभावो । तव्विवरीदो असन्भावद्वयण-

अशुद्ध भावोंसे रहित, कर्मक्षयसे प्राप्त हुए हैं चार अनन्तभाव जिनको, ऐसे
सर्व अरहंतोंको प्रणाम करके भावायुयोगद्वाराका प्ररूपण करते हैं ।

भावाणुगमद्वारकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेश-
निर्देश ॥ १ ॥

नाम, स्थापना, द्रव्य और भावकी अपेक्षा भाव चार प्रकारका है । वाह्य अर्थसे
निरपेक्ष अपने आपमें प्रवृत्त 'भाव' यह शब्द नामभावनिक्षेप है । उन चार निक्षेपोंमेंसे
स्थापनाभावनिक्षेप, सद्भाव और असद्भावके भेदसे दो प्रकारका है । उनमेंसे विरागी
और सरागी आदि भावोंका अनुकरण करनेवाली स्थापना सद्भावस्थापना भावनिक्षेप
है । उससे विपरीत असद्भावस्थापना भावनिक्षेप है । द्रव्यभावनिक्षेप आगम और

चण्डो मां ओददुओ गाम । कृपुसमेण समुबूदो ओवगमिओ गाम । कम्मानं गोण पयडिभूदुओ मांओ रुदुओ गाम । कम्मेदए सेते नि जं जीनगुणवसुंमुवलेभदि सो तओवसमिओ मांओ गाम । जो चउहि भवेहि पुन्नुचेहि वडिरिओ जीवाजीवगओ मो पारिणामिओ गाम' (५) ।

परंतु चट्टु मांसे कुण भवेण अहियारो ? गोआसमभानभावेण । तं कथं गचो ? गामाटिसेभोभेहि चोदसजीवगसमागणपभूदेहि इह पओजणाभाया । निणि चैत उर गिसेमा होदु, गाम-हुवणां विसंगाभावादो ? न, गामे गामवत-दुवज्जारोणियमाभावादो, गामस्स दुवणणियमाभावा, हुवणाए इव आयरागुगहाणम-पांन प्रकारका हे । उनमेंने कर्मोदयजनित भावका नाम ओदयिक हं । कर्मणि उपशमसे ज्ञप्त एव गत्यका नाम ओपशमिक हे । कर्मोक्ति क्षयसे प्रकट होनेवाला जीवका भाव क्षयिक हे । कर्मोक्ति उदय तेते गुण भी जो जीवगुणका सड (अज्ञा) उपलब्ध रहता है, यह शायोपशमिकभाव ए । जो पूर्णतक चारों भावोंसे व्यतिरिक्त जीव और अजीवगत भाव है, तत् पारिणामित भाव है ।

अंका—ऊक चार निक्षेपत्य भानोंमेंसे यहा पर किस भावसे अधिकार या प्रयोजन हे ?

समाधान—यहा नोआगमभावभावसे अधिकार हे ।

अंका—यह कैसे जाना जाता हे ?

समाधान—ओदए जीनसमासीके छिए अनात्मभूत नामादि दोष भावनिक्षेपोंसे यहाँ पर कोई प्रयोजन नहीं हे. इसीसे जाना जाता हे कि यहाँ नोआगमभाव भाव-निर्वापरो हो प्रयोजन हे ।

अंका—यहाँ पर तीन ही निक्षेप होना चाहिए, क्योंकि, नाम और स्थापनामें कोई विशेषता नहीं हे ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, नामनिक्षेपमें नामवत द्रव्यके अध्यारोपका कोई नियम नहीं हे इसलिये, तथा नामवाली वस्तुकी स्थापना होती ही चाहिए, ऐसा कोई नियम नहीं हे इसलिये, एवं स्थापनाके समान नामनिक्षेपमें आदर और अनुग्रहका भी

१ गोी 'जागम गः' इति पाठः ।

२ समुत्तमस्मि उपपत्तागो गीपमि गहरामो ३ । उदतो जत्तस गुणो खोचममिओ हवे

भाता ॥ समुत्तमस्मिओ जीनियो तय होदि मांओ ३ । ताल्लिपोसमओ समावियो होदि परिणामो ॥

मे - ८१८८५

३ त्रित्तु 'आता' इति पाठ ।

भावादो च' । भणिदं च—

अपिदआदरभाओ अनुगहभाओ य धम्मभाओ ।
ठवणाए कीरते ण हेति गाममि एए दु ॥ १ ॥
णामिणि धम्मवयोरो गाम हुवणा य जस्स त ठपिद ।
तद्धमे ण नि जादो सुगाम-उज्जाणमविसेस ॥ २ ॥

तन्हा चउडिहो चैव गिखेवो चि सिद्धं । तत्थ पंचसु भागेसु केण भावेण इह पओजणं ? पंचहि मि । कुदो ? जीनेसु पंचभावाणमुवलंभा । ण च सेसदवोसु पंच भावा अत्थि, पोमलदवोसु ओदइय-पारिणामियाणं दोणहं चैव भावाणमुवलंभा, धम्म-कालागासदवोसु एवकस्स पारिणामियभावसेसुवलंभा । भावो गाम जीवपरिणामो तिन्व-मंदणिज्जरा नवादिरेवण ओणोपयारो । तत्थ तिन्व-मंदभावो गाम—

समत्तुणत्तीय वि सावयविदे अणत्तकमसे ।
दसणमोहुरखए कसायउवसाए य उवसेते ॥ ३ ॥
खए य खीणमोहे जिणे य णियमा भे असलेउजा ।
तव्विरीदो कालो सखेज्जगुणाए सेडीए ॥ ४ ॥

अभाव है, इसलिये दोनो निक्षेपोंमें भेद है ही । त्हा भी हे—

विनक्षित वस्तुके प्रति आदरभान, अनुग्रहभाव और धर्मभाव स्थापनामें किया जाता है । किन्तु ये बातें नामनिक्षेपमें नहीं होती हैं ॥ १ ॥

नामप धर्मका उपचार करना नामनिक्षेप है, और जहाँ उस धर्मकी स्थापना की जाती है, वहाँ स्थापनानिक्षेप है । इस प्रकार धर्मके विषयमें भी नाम और स्थापनाकी अविशेषता अर्थात् एकता सिद्ध नहीं होती ॥ २ ॥

इसलिये निक्षेप चार प्रकारका ही है, यह बात सिद्ध हुई ।

अंका—पूर्वोक्त पांच भावोंमेंसे यहाँ किस भावसे प्रयोजन हे ?

समाधान—पांचों ही भावोंसे प्रयोजन हे, क्योंकि, जीवोंमें पांचों भाव पाये जाते हैं । किन्तु दोष द्रव्योंमें तो पांच भाव नहीं हैं, क्योंकि, पुद्गल द्रव्योंमें ओदयिक और परिणामिक, इन दोनों ही भावोंकी उपलब्धि होती हे, और धर्मोस्तिकाय अवर्मास्ति-काय, आकाश और काल द्रव्योंमें केवल एक पारिणामिक भाव ही पाया जाता है ।

अंका—भावनाम जीवके परिणामका है, जो कि तीन, मंद निर्जरभाव आदिके रूपसे अनेक प्रकारका हे । उनमें तीव्र मंदभाव नाम हे—

सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें, श्रावकमें, चिरत्तमें, अनन्तानुबन्धी कपायके विमंयोजनमें, दर्शनमोहेके श्रवणमें, कपायोंके उपशमकोंमें, उपशान्तकपायमें, क्षपकोंमें, क्षीणमोहमें, और जिन भगवान्में नियमसे असंख्यातगुणीनिर्जरा होती हे । किन्तु कालका प्रमाण उक्त गुणश्रेणी निर्जरामें संख्यात गुणश्रेणी क्रमसे विपरित अर्थात् उत्तरोत्तर हीन हे ॥ ३-४ ॥

१ नामस्थापनयोरेत्त्व, सबान्मोविशेषादिति चैव, आदरावग्रहाकाशिलास्थापनायाम् । त. ग. वा १, ५.

२ गो जी ६६-६७.

१, ७, १.]

छम्बखण्डगमे जीवद्वानं

[१८७]

एदेसिं सुच्छुद्विपरिणामाणं पगरिसापगरिसत्तं तिब्ब-मंदभावो गाम । एदेहि चैव परिणामेहि असंखेज्जगुणाए सेडीए कम्मसडणं कम्मसडणजणिदजीवपरिणामो वा णिज्जारा-भावो गाम । तम्हा पंचेव जीवभावा इदि णियमो ण जुज्जेदं ? ण एस दोसो, जदि जीवादिव्वादो तिब्ब-मंददिभावा अभिण्णा होति, तो ण तेसिं पंचभावेषु अंतवभावो, दवत्तादो । अह भेदो अवलंबेज्ज, पंचण्हमणदरो होज्ज, एदेहिं तो पुधभूदछड्ढावाणु-वलंभा । भणिंदं च-

ओदइओ उवसमिओ खइओ तह वि य खओवसमिओ य ।

परिणामिओ दु भावो उदएण दु पोगलण तु ॥ ५ ॥

भावो गाम किं ? दव्वपरिणामो पुन्नावरकोडिवदिरित्तवट्टमाणपरिणामुवलंबिय-दव्वं वा । कस्स भावो ? छण्हं दव्वानं । अथवा ण कस्सइ, परिणामि-परिणामाणं

इन सूत्रोद्विष्ट परिणामोंकी प्रकर्षताका नाम तीव्रभाव और अप्रकर्षताका नाम मंदभाव है । इन्हीं परिणामोंके द्वारा असंख्यत गुणश्रेणीरूपसे कर्मोंका झरना, अथवा कर्म-झरनेसे उत्पन्न हुए जीवके परिणामोंको निर्जराभाव कहते हैं । इसलिये पांच ही जीवके भाव हैं, यह नियम युक्तिसंगत नहीं है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यदि जीवादि द्रव्यसे तीव्र, मंद आदि भाव अभिन्न होते हैं, तो उनका पांच भावोंमें अन्तर्भाव नहीं होता है, क्योंकि, वे स्वयं द्रव्य ही होते हैं । अथवा, यदि भेद माना जाय, तो पांचों भावोंमेंसे कोई एक होगा, क्योंकि, इन पांच भावोंसे पृथग्भूत छठा भाव नहीं पाया जाता है । कहा भी है—

औदयिकभाव, औपशमिकभाव, क्षायिकभाव, क्षायोपशमिकभाव और पारि-णामिकभाव, ये पांच भाव होते हैं । इनमें पुद्गलोंके उदयसे (औदयिकभाव) होता है ॥५॥

(अब निर्देश, स्वामित्व आदि प्रसिद्ध छह अनुयोगद्वारासे भावनामक पदार्थका निर्णय किया जाता है—)

शंका—भाव नाम किस वस्तुका है ?

समाधान—द्रव्यके परिणामको अथवा पूर्वपर कोटिसे व्यतिरिक्त वर्तमान पर्यायसे उपलक्षित द्रव्यको भाव कहते हैं ।

शंका—भाव किसेक होता है, अर्थात् भावका स्वामी कौन है ?

समाधान—छहों द्रव्योंके भाव होता है, अर्थात् भावोंके स्वामी छहों द्रव्य हैं । अथवा, किसी भी द्रव्यके भाव नहीं होता है, क्योंकि, पारिणामी और पारिणामके सग्रह-

१८८]

भावाणुगमे णिंदिसपरुवणं

[१, ७, १-

संगहणयादो भेदाभावा । केण भावो ? कम्माणमुदएण खएण खओवसमेण कम्माणमुवसमेण सभावदो वा । तत्थ जीवदव्वस्स भावा उचपंचकारणेहिं तो होति । पोगलदव्वभावा पुण कम्मोदएण विस्सादो वा उप्पज्जंति । सेसाणं चटुण्ह दव्वानं भावा सहावदो उप्पज्जंति । कत्थ भावो ? दव्वमिह चैव, गुणिव्वदिरेणेण गुणाणमसंभवा । केवचिरो भावो ? अणादियो अपज्जविसिदो जहा-अभव्वाणमसिद्धा, धम्मत्थिअस्स गमणहेटुत्तं, अधम्मत्थिअस्स ठिदिहेउत्तं, आगासस्स ओगाहणलक्खणत्तं, कालदव्वस्स परिणामहेटुत्तमिच्चादि । अणा-दिओ सपज्जविसिदो जहा-भवस्स असिद्धदा भवत्तं मिच्छत्तमसंजमो इच्चादि । सादिओ अपज्जविसिदो जहा-केवलणाणं केवलदंसणमिच्चादि । सादिओ सपज्जविसिदो जहा-सम्मत्तंसंजमपच्छायदानं मिच्छत्तासंजमा इच्चादि । कदिविधो भावो ? ओदइओ उवसमिओ खइओ खओवसमिओ पारिणामिओ ति पंचविहो । तत्थ जो सो ओदइओ जीवदव्वभावो नयसे कोई भेद नहीं है ।

शंका—भाव किससे होता है, अर्थात् भावका साधन क्या है ?

समाधान—भाव, कर्मोंके उदयसे, क्षयसे, क्षयोपशमसे, कर्मोंके उपशमसे, अथवा स्वभावसे होता है । उनमेंसे जीवद्रव्यके भाव उक्त पांचों ही कारणोंसे होते हैं, किन्तु पुद्गलद्रव्यके भाव कर्मोंके उदयसे, अथवा स्वभावसे उत्पन्न होते हैं । तथा शेष चार द्रव्योंके भाव स्वभावसे ही उत्पन्न होते हैं ।

शंका—भाव कहां पर होता है, अर्थात् भावका अधिकरण क्या है ?

समाधान—भाव द्रव्यमें ही होता है, क्योंकि गुणोंके बिना गुणोंका रहना असंभव है ।

शंका—भाव कितने काल तक होता है ?

समाधान—भाव अनादि-निधन है । जैसे-अभव्यजीवोंके असिद्धता, धर्मास्ति-कायके गमनहेतुता, अधर्मास्तिकायके स्थितिहेतुता, आकाशद्रव्यके अवगाहनस्वरूपता, और कालद्रव्यके परिणमनहेतुता, इत्यादि । अनादि-सान्तभाव, जैसे-भव्यजीवकी असिद्धता, भव्यत्व, मिथ्यात्व, असंयम, इत्यादि । सादि-अनन्तभाव जैसे-केवलज्ञान, केवलदर्शन, इत्यादि । सादि-सान्त भाव, जैसे-सम्यक्त्व और संयम धारणकर पछे आए हुए जीवोंके मिथ्यात्व, असंयम इत्यादि ।

शंका—भाव कितने प्रकारका होता है ?

समाधान—औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिकके भेदसे भाव पांच प्रकारका है । उनमेंसे जो औदयिकभाव नामक जीवद्रव्यका भाव

१ औपशमिकभावको भावो मिअन्न जीवस्य रत्तत्त्वमौदयियपारिणामिकौ च । त ए २, १

मो ठाणदो अडुविहो, वियप्पदो एक्कवीमविहो। किं ठाणं? उप्पचिहेऊ द्वाणं। उतं च-

गदि-लिंग-रुक्माया वि य मिच्छादसणममिद्धदण्णाण ।

त्मेस्सा असन्मो चिय होति उदयत्स द्वाणाड ॥ ६ ॥

मंपहि एदेसिं वियापो उच्चदे- गई चउव्विहो गिरय-तिरिय-णर-देवगई चेदि । लिंगमिदि तिदिहं त्थी-पुरिम णंमुसं चेदि । रुमाओ चउव्विहो कोहो माणो माया लोहो चेदि । मिच्छादंमणमेयविहं । असिद्धत्तमेयविहं । फिमसिद्धत्तं ? अट्ठकम्मोदयसामणं । अण्णाणमेयविहं । लेस्सा छव्विहा । असंजमो एयविहो । एदे सव्वे वि एक्कवीस वियप्पा होंति' (२१) । पंचजादि-छसंठाण-छसंघडणादियोदइया भावा कत्थ णिवदंति ? गदीए, एदेमिमुदयस्स गदिउदयपिण्णाभाविचादो । ण लिंगादीहि वियहिचारो, तत्थ तहविह-मिक्कसाभावादो ।

हे, यह स्थानकी अपेक्षा आठ प्रकारका ओर विकल्पको अपेक्षा इकोस प्रकारका है ।

शंका—स्थान क्या वस्तु है ?

समाधान—भावकी उत्पत्तिके कारणको स्थान कहते हैं । कहा भी है-

गति, लिंग, क्वाय, मिथ्यादर्शन, असिद्धत्व, अज्ञान, लेख्या और असंयम, ये औदयिक भावके आठ स्थान होते हैं ॥ ६ ॥

अथ इन आठ स्थानोंके विकल्प कहते हैं । गति चार प्रकारकी है- नरकगति, तिर्यचगति, मनुष्यगति और देवगति । लिंग तीन प्रकारका है- खल्लिंग, पुरुषलिंग और नपुंसकलिंग । क्वाय चार प्रकारका है- कोय, मान, माया और लोभ । मिथ्यादर्शन एक प्रकारका है । अमिद्धत्व एक प्रकारका है ।

शंका—असिद्धत्व क्या वस्तु है ?

समाधान—अष्ट कर्मोंके सामान्य उदयको असिद्धत्व कहते हैं ।

अज्ञान एक प्रकारका है । लेख्या छह प्रकारका है । असंयम एक प्रकारका है । इस प्रकार ये सप्त मिलकर औदयिकभावके इक्कीस विकल्प होते हैं (२१) ।

शंका—पांच जातियां, छह सत्स्थान, छह संहजन आदि औदयिकभाव कहाँ, अर्थात् किस भावमें अन्तर्गत होते हैं ?

समाधान—उक्त जातियों आदि का गतिनामक औदयिकभावमें अन्तर्भाव होता है, क्योंकि, इन जाति, संस्थान आदिका उदय गतिनामकर्मके उदयका अविनाभावी है । इस व्ययस्यामें लिंग, क्वाय आदि औदयिकभावोंसे भी व्यभिचार नहीं आता है, क्योंकि, उन भावोंमें उस प्रकारकी विचक्षाका अभाव है ।

उवसमिओ भावो ठाणदो दुविहो । वियप्पदो अडुविहो । भणिदं च-

समत्त चारितं दो चैय द्वाणाइसुसमे होति ।

अडुवियप्पा य तहा कोहाईया सुणेदव्वा ॥ ७ ॥

ओवसमियस्स भावस्स सम्मत्तं चारितं चेदि दोणि द्वाणाणि' । कुदो ? उवसम-सम्मत्तं उवसमचारितमिदि दोणं चे उवलंभा । उवसमसम्मत्तमेयविहं । ओवसमियं चारितं सत्तविहं । तं जहा - णंमुसयेदुवसामणद्वाए एयं चारितं, इत्थिवेदुवसामणद्वाए विदियं, पुरिस-छणोक्सायउवसामणद्वाए तदियं, कोहुवसामणद्वाए चउत्थं, माणुव-सामणद्वाए पंचमं, माओवसामणद्वाए छंडं, लोहुवसामणद्वाए सत्तममोवसमियं चारितं । भिण्णकज्जलिंगेण कारणभेदसिद्धीदो उवसमियं चारितं सत्तविहं उतं । अण्णाहा पुण अणेषयपारं, समयं पडि उवसमसेडिंभिह पुध पुध असंखेज्जगुणसेडिणिज्जराणिमित्त-परिणामुवलंभा । खइओ भावो ठाणदो पंचविहो । वियप्पादो णवविहो । भणिदं च—

ओपशमिकभावस्थानकी अपेक्षा दो प्रकार और विकल्पकी अपेक्षा आठ प्रकारका है । कहा भी है-

ओपशमिकभावमें सम्यक्त्व और चारित्र ये दो ही स्थान होते हैं । तथा ओप-शमिकभावके विकल्प आठ होते हैं, जो कि क्रोधादि कपायोंके उपशमनरूप जानना चाहिए ॥ ७ ॥

ओपशमिकभावके सम्यक्त्व और चारित्र, ये दो ही स्थान होते हैं, क्योंकि, ओपशमिकसम्यक्त्व और ओपशमिकचारित्र ये दो ही भाव पाये जाते हैं । इनमेंसे ओप-शमिकसम्यक्त्व एक प्रकारका है और ओपशमिकचारित्र सात प्रकारका है । जैसे- नपुं-सकवेदके उपशमनकालमें एक चारित्र, खविदेके उपशमनकालमें दूसरा चारित्र, पुरुष-वेद और छह नोरुपायोंके उपशमनकालमें तीसरा चारित्र, क्रोधसंज्वलनमें उपशमन-कालमें चौथा चारित्र, मानसंज्वलनके उपशमनकालमें पांचवां चारित्र, मायासंज्वलनके उपशमनकालमें छठा चारित्र और लोभसंज्वलनके उपशमनकालमें सातवां ओपशमिक-चारित्र होता है । भिन्न-भिन्न कार्योंके लिंगसे कारणोंमें भी भेदकी सिद्धि होती है, इसलिये ओपशमिकचारित्र सात प्रकारका कहा है । अन्यथा, अर्थात् उक्त प्रकारकी विवक्षा न की जाय तो, वह अनेक प्रकारका है, क्योंकि, प्रति समय उपशमनेमें पृथक् पृथक् असंख्यात-गुणश्रेणी निर्जराके निमित्तभूत परिणाम पाये जाते हैं ।

क्षायिकभाव स्थानकी अपेक्षा पांच प्रकारका है, और विकल्पकी अपेक्षा नौ प्रकारका है । कहा भी है—

लक्ष्मीओ सम्मत्त चारित्त दसण तहा गाण ।

ठाणाइ पच खइए भावे जिणभासियाइ तु ॥ ८ ॥

लक्ष्मी सम्मत्तं चारित्तं गाणं दंसणमिदि पंच ठाणाणि । तत्थ लक्ष्मी पंच वियप्पा दाण-ल्लाह-भोगुवभोग-वीरियमिदि । सम्मत्तमेयवियप्यं । चारित्तमेयवियप्यं । केवलणाण-मेयवियप्यं । केवलदंसणमेयवियप्यं । एवं खइओ भावो णववियप्पो^१ । खओवसमिओ भावो ठाणदो सत्तविहो । वियप्पदो अट्टारसविहो । भणिदं च—

गाणण्णाण च तहा दसण-लक्ष्मी तहेव सम्मत्त ।

चारित्त देसजमो सत्तेव य होति ठाणाइ ॥ ९ ॥

गाणमण्णाणं दंसणं लक्ष्मी सम्मत्तं चारित्तं संजमांसंजमो चेदि सत्त द्वाणाणि । तत्थ गाणं चउत्विह मदि-सुद-ओधि-मणपज्जवणाणमिदि । केवलणाणं किण्ण गहिदं ? ण, तस्स खाइयभावादो । अण्णाणं तिविहं मदि-सुद-विहंगअण्णाणमिदि । दंसणं तिविहं चक्खु-अचक्खु-ओधिदंसणमिदि । केवलदंसण ण गहिदं । कुदो ? अप्पणो विरोहिकम्मस्स

दानादि लब्धियां, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, क्षायिक दर्शन, तथा क्षायिक ज्ञान, इस प्रकार क्षायिक भावमें जिन-भाषित पांच स्थान होते हैं ॥ ८ ॥

लब्धि, सम्यक्त्व, चारित्र, ज्ञान, दर्शन, ये पांच स्थान क्षायिकभावमें होते हैं । उनमें लब्धि पांच प्रकारकी है— क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उप-भोग, और क्षायिक वीर्य । क्षायिक सम्यक्त्व एक विकल्पात्मक है । क्षायिक चारित्र एक भेदरूप है । केवलज्ञान एक विकल्पात्मक है और केवलदर्शन एक विकल्परूप है । इस प्रकारसे क्षायिक भावके नौ भेद हैं । क्षायोपशमिकभाव स्थानकी अपेक्षा सात प्रकार और विकल्परूपकी अपेक्षा अठारह प्रकारका है । कहा भी है—

ज्ञान, अज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व, चारित्र और देशसंयम, ये सात स्थान क्षायोपशमिक भावमें होते हैं ॥ ९ ॥

ज्ञान, अज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व, चारित्र और संयमासयम, ये सात स्थान क्षायोपशमिकभावके हैं । उनमें मति, श्रुत, अवधि और मन-पर्ययके भेदसे ज्ञान चार प्रकारका है ।

शंका—यहांपर ज्ञानमें केवलज्ञानका ग्रहण क्यों नहीं किया गया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वह क्षायिक भाव है ।

कुमति, कुश्रुत और विभगके भेदसे अज्ञान तीन प्रकारका है । चक्षु, अचक्षु और अवधिके भेदसे दर्शन तीन प्रकारका है । यहांपर दर्शनोंमें केवलदर्शनका ग्रहण नहीं

^१ ज्ञानदर्शनदानलामभोगोपमोनीयाणि च । त सू २, ४

खाएण समुत्थवादो । लक्ष्मी पंचविहा दाणादिभेएण । सम्मत्तमेयविहं वेदगसम्मत्तत्रदिरैकेण अण्णसम्मत्तानमणुवलंभा । चारित्तमेयविहं, सामाइयछेदोवट्ठावण-परिहारसुद्धिसंजम-विकल्पाभावा । संजमांसंजमो एयविहो । एवमेदे सव्वे वि वियप्पा अट्टारस होति^१ (१८) । पारिणामिओ तिविहो भव्वाभव्व-जीवत्तमिदि^२ । उच्चं च—

एय ठाण तिणिण वियप्पा तह पारिणामिए होति ।

भव्वाभव्वा जीवा अत्तवणदो^३ चैव वोद्धव्वा^४ ॥ १० ॥

एदेसिं पुवुत्तभाववियप्पाणं संगहगाहा—

इगिवीस अह तह णव अट्टारस तिणिण चैव वोद्धव्वा ।

ओदइयादी भावा वियप्पदो आणुपुव्वीए^५ ॥ ११ ॥

किया गया है, क्योंकि, वह अपने विरोधी कर्मके क्षयसे उत्पन्न होता है । दानादिकके भेदसे लब्धि पांच प्रकारकी है । सम्यक्त्व एक प्रकारका है, क्योंकि, इस भावमें वेदक-सम्यक्त्वको छोड़कर अन्य सम्यक्त्वोंका अभाव है । चारित्र एक विकल्परूप ही है, क्योंकि, यहांपर सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धिसंयमकी विवक्षाका अभाव है । संयमासंयम एक भेदरूप है । इस प्रकार मिलकर ये सब विकल्प अठारह होते हैं (१८) । पारिणामिकभाव, भव्य, अभव्य और जीवत्वके भेदसे तीन प्रकारका है । कहा भी है—

पारिणामिकभावमें स्थान एक तथा भव्य, अभव्य और जीवत्वके भेदसे विकल्प तीन प्रकारके होते हैं । ये विकल्प आत्माके असाधारण भाव होनेसे ग्रहण किये गये जानना चाहिए ॥ १० ॥

इन पूर्वोक्त भावोंके विकल्पोक्तोंको बतलानेवाली यह संग्रह-गाथा है—

औदयिक आदि भाव विकल्पोक्तोंकी अपेक्षा आनुपूर्वीसे इक्कीस, आठ, नौ, अट्टारह और तीन भेदवाले हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥ ११ ॥

^१ ज्ञानज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुविधिरिपवभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासयमाश्च । त सू २, ५

^२ जीवमव्यामव्यव्यानि च । त सू २, ७

^३ अ रूप्यो 'वट्ठवणदो' आपत्तो 'अट्ठणवदो' मपत्तो 'अधवणदो' मपत्तो 'अधवणदो' इति पाठ ।

^४ असाधारणा जीवस्य भावा पारिणामिकस्य एव । स लि २, ७ अन्यद्व्यासाधारणास्य पारिणामिसा । $X \times X$ अस्तित्वादयोऽपि पारिणामिका, भावा सन्ति $X \times X$ सूते तेषां ग्रहण कस्यात्र कृत ? अन्यद्व्यसाधारणत्वादयूचिता । त रा वा २, ७

^५ द्विनवाट्ठादयैः कर्तव्यताविभेदा यथाक्रमम् । त सू २, २

अथवा मणिमादियं पदत्रय छत्तीसभंग' । सण्णिवदिएत्ति का सण्णा ? एकमिह गुणद्वयेण जीवममसे वा वदन्तो भाना जमिह सण्णिवदंति तेसिं भावाणं सण्णिवदिएत्ति सण्णा । एग-द-ति-न-द-पंचमंजोगेण भंगा परुवज्जंति । एगसंजोगेण जथा- ओदइओ ओदइओ ति ' मिच्छादिद्वि अमंजदो य ' । दंयणमोहणीयरम उदएण मिच्छादिद्वि ति भावो, अमंजदो ति मंजमत्रादीणं कम्ममाणमुदएण । एदएण कमेण मन्वे नियप्पा परुवेदव्वा । एत्थं मुत्तगाहा-

एत्तोत्तणपदद्वयो रूपोपेयोचित च पदद्वयेः ।

गच्छः सपानफल समाहृत. सविपाताफल' ॥ १२ ॥

एदस्स भावस्स अणुगमो भावाणुगमो । तेण दुयिहो णिहेसो, ओधेण संगहिदो, जादेमेण अमंगहिदो ति णिहेसो दुयिहो होदि, तदियस्स णिहेसस्स संभवाभावा ।

अथवा. सान्निपातिकी अपेक्षा भावोंके छत्तीस भंग होते हैं ।

शंका--सान्निपातिक यह कौनसी संज्ञा है ?

समाधान--एक ही गुणस्थान या जीवसमासमें जो बहुतसे भाव आकर एकत्रित होते हैं, उन भावोंकी सान्निपातिक ऐसी संज्ञा है ।

अब उक्त भावोंके एक, दो, तीन, चार और पांच भावोंके संयोगसे होनेवाले भग होते जाते हैं । उनमेंसे परकसंयोगी भग इस प्रकार हैं- ओदयिक-ओदयिकभाव, जेन-यह जीव मिथ्यादृष्टि और असंयत है । दर्शनमोहनीयकर्मके उदयसे मिथ्यादृष्टि यह भाव उत्पन्न होता है । सयममार्तो कर्मोंके उदयसे ' असंयत ' यह भाव उत्पन्न होता है । इसी क्रमसे सभी निकल्पोंकी प्ररूपणा करना चाहिए । इस विषयमें सूत्र गाथा है-

एक एक उत्तर पउमै गइते गुण गच्छको रूप (एक) आदि पदप्रमाण बढ़ाई हुई सजिमे भाजिन करे, और परस्पर गुणा करे, तब सम्पातफल अर्थात् एक-मंयोगी, क्रिसंयोगी आदि भगोत्ता प्रमाण आता है । तथा इन एक, दो, तीन आदि भगोंको जोर देन पर सपेपातफल अर्थात् साविपातिकभग प्राप्त हो जाते हैं ॥ १२ ॥

(इस सरणगाथाका विशेष अर्थ और भंग निकालनेका प्रकार समझनेके लिए देखें भाग ५, गुण १३३ का विशेषार्थ ।)

इस उक्त प्रकारके भावके अणुगमको भावानुगम कहते हैं । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका होता है । आद्यमे रंगुहीत और आदेशसे असंगृहीत, इस प्रकार निर्देश दो प्रकारका होता है, क्योंकि, तीसरे निर्देशका होना संभव नहीं है ।

१ जगोत्तकः साविपातिकः कतिमिह दययेच्यते-यु-जानीविष पदार्थविषय एकत्वविशिष्टिभ

इत्येवमारिणमे उच ॥ त रा मा २, ७

२ अथ मंदरत नृगणमिदि स्तेन इदे । लद्ध मिच्छवउळे देसे सजोगुणगाता ॥ गो क ७९९

ओधेण मिच्छादिद्वि ति को भावो, ओदइओ भावो ॥ २ ॥

' जहा उदेसो तहा णिहेसो ' ति जाणावणद्वमोघेणेत्ति भणिदं । अत्थाहिहाण-पच्चया तुल्लणामयेया इदि गायादो इदि-करणपरो' मिच्छादिद्विसदो मिच्छत्तभानं भणदि । पंचसु भावेसु एसो को भावो ति पुच्छिदे ओदइओ भावो ति तित्थयरयणादो दिव-ज्जुणी विणिग्गया । को भावो, पंचसु भावेसु कदमो भावो ति भणिदं होदि । उदये भवो ओदइओ, मिच्छत्तकम्मस्स उदएण उप्पणमिच्छत्तपरिणामो कम्मोदयजणिदो सि ओदइओ । णण मिच्छादिद्विस्स अण्णे वि भावा अत्थि, णाण-दंसण-गदि-लिंग-कसाय-मव्वाभव्वादिविभावाभावे जीवस्स संसारिणो अभवप्पसंगा । भणिदं च-

मिच्छत्ते दस भगा आसादण-मिस्सए वि बोद्धव्वा ।

तिगुणा ते चट्ठुहणा अविरदसग्गत्स एमेव ॥ १३ ॥

देसे खओवसमिए विदे खवगाण ऊणवीसं तु ।

ओसामगेसु पुध पुध पणतीस भावदो भगा ॥ १४ ॥

ओधानिर्देशकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि यह कौनसा भाव है ? औदयिक भाव है ॥ २ ॥

' जेसा उदएण होता है उसी प्रकार निर्देश होता है ' इस न्यायके आपनार्थ सूत्रमें ' ओघ ' ऐसा पद कहा । अर्थ, अभिधान (शब्द) और प्रत्यय (ज्ञान) तुल्य नामवाले होते हैं, इस न्यायसे ' इति ' करणपरक अर्थात् जिसके पश्चात् हेतुवाचक इति शब्द आया है, ऐसा ' मिथ्यादृष्टि ' यह शब्द मिथ्यात्वके भावको कहता है । पांचों भावोंमेंसे यह कौन भाव है ? ऐसा पूछनेपर यह औदयिक भाव है, इस प्रकार तीर्थकरके मुखसे दिव्यध्वनि निकली है । यह कौन भाव है, अर्थात् पांचों भावोंमेंसे यह कौनसा भाव है, यह तात्पर्य होता है । उदयसे जो हो, उसे औदयिक कहते हैं । मिथ्यात्वकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाला मिथ्यात्वपरिणाम कर्मोदयजनित है, अतएव औदयिक है ।

शंका--मिथ्यादृष्टिके अन्य भी भाव होते हैं, उन ज्ञान, दर्शन, गति, लिंग, कपाय, भव्यत्व, अभव्यत्व आदि भावोंके अभाव माननेपर संसारी जीवके अभावका प्रसंग प्राप्त होता है । कहा भी है-

मिथ्यात्वगुणस्थानमें उक्त भावोंसम्वन्धी दश भंग होते हैं । सामादन और मिश्र-गुणस्थानमें भी इसी प्रकार दश दश भंग जानना चाहिए । अविरतसम्यग्दृष्टि गुण-स्थानमें वे ही भंग त्रिगुणित और चतुर्हीन अर्थात् (१० × ३ - ४ = २६) छब्बीस होते हैं । इसी प्रकार ये छब्बीस भंग क्षायोपशमिक देशविरत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें भी होते हैं । क्षयज्येणीवाले चारों क्षयकोंके उच्चीस उच्चीस भंग होते हैं ।

' सामान्तेन तावत् मिथ्यादृष्टित्यौदयिको मात्र । स. सि १, ८ मिच्छे खलु ओदइओ । गो. जी. १९.

२ प्रतिपु ' इदिकणपे ' इति पाठ ।

उपशमश्रेणीवाले चारो उपशमकामे पृथक् पृथक् पैतृस भंग भावकी अपेक्षा होते हैं ॥ १३-१४ ॥

विशेषार्थ—ऊपर बतलाये गये भंगोंका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—औदयिकादि पाँचों मूल भावोंसे मिथ्यात्वगुणस्थानमे औदयिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक, ये तीन भाव होते हैं। अतः असंयोगी या प्रत्येकसंयोगकी अपेक्षा ये तीन भंग हुए। इनके द्विसंयोगी भंग भी तीन ही होते हैं—औदयिक क्षायोपशमिक, औदयिक-पारिणामिक और क्षायोपशमिक-पारिणामिक। तीनों भावोंका संयोगरूप त्रिसंयोगी भंग एक ही होता है। इन सात भंगोंके सिवाय स्वसंयोगी तीन भंग और होते हैं। जैसे—औदयिक-औदयिक, क्षायोपशमिक-क्षायोपशमिक और पारिणामिक-पारिणामिक। इस प्रकार ये सब मिलाकर (३ + ३ + १ + ३ = १०) मिथ्यात्वगुणस्थानमें दश भंग होते हैं। ये ही दश भंग सासादन और मिथ्य गुणस्थानमें भी जानना चाहिए। अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें पाँचों मूलभाव होते हैं, इसलिए यहाँ प्रत्येकसंयोगी पाँच भंग होते हैं। पाँचों भावोंके द्विसंयोगी भंग दश होते हैं। किन्तु उनमेंसे इस गुणस्थानमें औपशमिक और क्षायिकभावना संयोगी भंग सम्भव नहीं, क्योंकि, वह उपशमश्रेणीमें ही सम्भव है। अतः दशमेंसे एक घटा देने पर द्विसंयोगी भंग नौ ही पाये जाते हैं। पाँचों भावोंके त्रिसंयोगी भंग दश होते हैं। किन्तु उनमेंसे यहापर क्षायिक-औपशमिक-औदयिक, क्षायिक-औपशमिक-पारिणामिक और क्षायिक औपशमिक-क्षायोपशमिक, ये तीन भंग सम्भव नहीं हैं, अतएव शेष सात ही भंग होते हैं। पाँचों भावोंके चतुःसंयोगी पाँच भंग होते हैं। उनमेंसे यहापर औदयिक-क्षायोपशमिक क्षायिक-पारिणामिक, तथा औदयिक क्षायोपशमिक औपशमिक पारिणामिक, ये दो ही भंग सम्भव हैं, शेष तीन नहीं। इसका कारण यह है कि यहापर क्षायिक और औपशमिकभाव साथ साथ नहीं पाये जाते हैं। इसी कारण पंचसंयोगी भंगना भी यहा अभाव है। इनके अतिरिक्त स्वसंयोगी भंगों-मेंसे क्षायोपशमिक-क्षायोपशमिक, औदयिक-औदयिक और पारिणामिक-पारिणामिक, ये तीन भंग और भी होते हैं। औपशमिक और क्षायिकके स्वसंयोगी भंग यहाँ सम्भव नहीं है। इस प्रकार प्रत्येकसंयोगी पाँच, द्विसंयोगी नौ, त्रिसंयोगी सात, चतुःसंयोगी दो और स्वसंयोगी तीन, ये सब मिलाकर (५ + २ + ७ + २ + ३ = २९) असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें छब्बीस भंग होते हैं। ये ही छब्बीस भंग देशविरत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें भी होते हैं। क्षपकश्रेणीसम्बन्धी चारों गुणस्थानोंमें औपशमिक भावोंके बिना शेष चार भाव ही होते हैं। अतएव उनके प्रत्येकसंयोगी भंग चार, द्विसंयोगी भंग छह, त्रिसंयोगी भंग चार और चतुःसंयोगी भंग एक होता है। तथा चारों भावोंके स्वसंयोगी चार भंग और भी होते हैं। इस प्रकार सब मिलाकर (४ + ६ + ४ + १ + ४ = १९) उन्नीस भंग क्षपकश्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें होते हैं। उपशमश्रेणीसम्बन्धी चारों गुणस्थानोंमें पाँचों ही मूल भाव सम्भव हैं, क्योंकि, यहापर क्षायिकसम्यक्त्वके साथ औपशमिकचारित्र भी पाया जाता है। अतएव पाँचों भावोंके प्रत्येकसंयोगी पाँच भंग, द्विसंयोगी दश भंग, त्रिसंयोगी दश भंग, चतुःसंयोगी पाँच

तदो मिच्छादिद्विस्स ओदइओ चेव भावो अत्थि, अण्णे भावा गत्थि ति णेदं वडदे ? ण एस दोसो, मिच्छादिद्विस्स अण्णे भावा गत्थि ति सुत्ते पडिसेहाभावा । किंतु मिच्छत्तं मोचूण जे अण्णे गदि-लिंगादओ साधारणभावा ते मिच्छादिद्विस्स कारणं ण होति । मिच्छत्तोदओ एकओ चेव मिच्छत्तस्स कारणं, तेण मिच्छादिदिट्ठि ति भावो ओदइओ ति परूषिदो ।

सासनसम्मादिट्ठि ति को भावो, पारिणामिओ भावो ॥ ३ ॥

एत्थ चोदओ भणदि—भावो पारिणामिओ ति णेदं वडदे, अण्णेहिंतो अणु-पण्णस्स परिणामस्स अत्थिचत्तिरोहा । अह अण्णेहिंतो उप्पत्ती इच्छिज्जदि, ण सो पारिणामिओ, णिककारणस्स सकारणचत्तिरोहा इदि । परिहारो उच्चदे । तं जहा—जो कम्माणमुदय-उत्तम-वइय-खओवसेहि विणा अण्णेहिंतो उप्पणो परिणामो सो पारि-णामिओ भणदि, ण णिककारणो कारणमंतरेणुपण्णपरिणामाभावा । सत्त-पमेयत्तादओ भंग होते हैं और पंचसंयोगी एक भंग होता है । तथा स्वसंयोगी भंग चार ही होते हैं, क्योंकि यहापर क्षायिकसम्यक्त्वके साथ क्षायिकभावका अन्य भेद सम्भव नहीं है । इस प्रकार सब मिलाकर (५ + १० + १० + ५ + १ + ४ = ३५) पैतृस भंग उपशमश्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें होते हैं ।

इसलिए मिथ्यादृष्टि जीवके केवल एक औदयिक भाव ही होता है, और अन्य भाव नहीं होते हैं, यह कथन घटित नहीं होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, 'मिथ्यादृष्टिके औदयिक भावके अतिरिक्त अन्य भाव नहीं होते हैं, इस प्रकारका सूत्रमे प्रतिषेध नहीं किया गया है । किन्तु मिथ्यात्वको छोड़कर जो अन्य गति, लिंग आदिक साधारण भाव हैं, वे मिथ्या-दृष्टित्वके कारण नहीं होते हैं । एक मिथ्यात्वका उदय ही मिथ्यादृष्टित्वका कारण है, इसलिए 'मिथ्यादृष्टि' यह भाव औदयिक कहा गया है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? पारिणामिक भाव है ॥ ३ ॥

शंका—यहाँ पर शंकाकार कहता है कि 'भाव पारिणामिक है' यह बात घटित नहीं होती है, क्योंकि, दूसरोसे नहीं उत्पन्न होनेवाले पारिणामिके अस्तित्वका विरोध है । यदि अन्यसे उत्पत्ति मानी जावे तो पारिणामिक नहीं रह सकता है, क्योंकि, निष्कारण वस्तुके सकारणत्वका विरोध है ?

समाधान—उक्त शंकाका परिहार कहते हैं । वह इस प्रकार है—जो कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपमेके बिना अन्य कारणोंसे उत्पन्न हुआ परिणाम है, वह पारिणामिक कहा जाता है । न कि निष्कारण भावको पारिणामिक कहते हैं, क्योंकि,

मात्रा निष्कारणा उपलब्धंतीति चे न, विसेसगतदिसत्त्वेण अपरिणमतसत्तादिसामणानु-
श्लेषा । सामण्यममादिद्वित्वं पि ममत्त-चारित्तुभयविरोहिअणंताणुगंधिचउक्कस्सुदय-
मतेण न होति ति ओदइयमिदि किण्णेच्छिज्जदि ? सच्चमेयं, किंतु न तथा अप्पणा
अत्थि, आदिमनदुणुणद्वानभासपूरुणाए ढंसणमोहवदिरित्तसेसकम्मसेसु विवक्खाभावा ।
ततो अपिदस्स ढंसणमोहणीयस्स कम्मस्स उदण्ण उवममेण राएण खओवसमेण वा न
होति ति निष्कारणं सामणसम्मत्तं, अदो चेव पारिणामियत्तं पि । अपेण गाएण सब्ब-
मात्राणं पारिणामियत्तं पमज्जदीदि चे होदु, न कोह दोमो, विरोहाभावा । अण्णभावेसु
पारिणामियत्तहोरो किण्ण कीरदे ? न, सासणसम्मत्तं मोच्छेण अपिदकम्मदो पुप्पणस्स
अण्णस्स भासस्स अनुपलंभा ।

कारणं विना उत्पन्न होनेवाले परिणामका अभाव है ।

शंका—मत्त, प्रमेयत्व आदिक भाव कारणके विना भी उत्पन्न होनेवाले पाये
जाते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, विशेष सत्त्व आदिके स्वरूपसे नहीं परिणत होने-
वाले मत्तगदि सामान्य नहीं पाये जाते हैं ।

शंका—सासादनसम्यग्दृष्टिपना भी सम्यक्त्व ओर चारित्र्य, इन दोनोंके विरोधी
गन्तानुगन्धी चतुर्णके उदयके विना नहीं होता है, इसलिये इसे ओदयिक क्यों नहीं
मानते हैं ?

समाधान—यह कहना सत्य है, किन्तु उस प्रकारकी यहां विवक्षा नहीं है,
क्योंकि, आदिन चार गुणस्थानोंसम्यग्धी भावोंकी प्ररूपणमें दर्शनमोहनीय कर्मके
सिमाय दोष कर्मोंके उदयकी विवक्षाका अभाव है । इसलिये विवक्षित दर्शनमोहनीयकर्मके
उदयमें, उपशममें, क्षयमें अथवा क्षयोपशमसे नहीं होता है, अतः यह सासादन-
सम्यक्त्व निष्कारण है ओर इसीलिये इसके पारिणामिकरूपना भी है ।

शंका—इस न्यायके अनुसार तो सभी भावोंके पारिणामिकरूपनेका प्रसंग प्राप्त
होता है ?

समाधान—यदि उक्त न्यायके अनुसार सभी भावोंके पारिणामिकरूपनेका प्रसंग
आता है, तो आने दो, कोई दोष नहीं है, क्योंकि, इसमें कोई विरोध नहीं आता ।

शंका—यदि ऐसा है, तो फिर अन्य भावोंमें पारिणामिकरूपनेका व्यवहार क्यों
नहीं किया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सासादनसम्यक्त्वको छोड़कर विवक्षित कर्मसे नहीं
उत्पन्न होनेवाला अन्य कोई भाव नहीं पाया जाता ।

१ एहे माणा भियमा दसमोहं पडुच्च मणिना द्धु । चारिष पत्थि जदो भविरदज्जेस ण्णेस ॥ गो जी. १२.

सम्मामिच्छादिद्वि ति को भावो, खओवसमिओ भावो ॥ ४ ॥

पडिचंधिक्कमोदए सते वि जो उवल्लभइ जीवगुणावयवो सो खओवसमिओ
उच्चइ । कुदो ? सवधादणसचीए अभाओ खओ उच्चदि । खओ चेव उवसमो खओव-
समो, तम्हि जादो भाओ सओवसमिओ । न च सम्मामिच्छुदए सते सम्मत्तस्स कणिया
वि उव्वरदि, सम्मामिच्छत्तस्स सवधादित्तणहाणुववत्तीदो । तदो सम्मामिच्छत्तं खओव-
समियमिदि न घडदे ? एत्थ परिहारो उच्चदे— सम्मामिच्छत्तुदए सते सदहणासदहण-
पओ कंचिओ जीवपरिणामो उप्पज्जइ । तत्थ जो सदहणसो सो सम्मत्तानयवो । ते
सम्मामिच्छत्तुदओ न विणासेदि ति सम्मामिच्छत्त खओवसमियं । असदहणभागेण विणा
सदहणभागस्सेव सम्मामिच्छत्तवएसो णत्थि ति न सम्मामिच्छत्तं खओवसमियमिदि चे
एवंविद्विवक्खाए सम्मामिच्छत्तं खओवसमियं मा होदु, किंतु अवयववयवनिराकरणानिरा-
करणं पडुच्च खओवसमियं सम्मामिच्छत्तदव्वकम्मं पि सवधादी चेव होदु, जंचंतरस्स
सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह कौनसा भाव है ? क्षयोपशमिक भाव है ॥ ४ ॥

शंका—प्रतिबंधी कर्मके उदय होनेपर भी जो जीवके गुणका अवयव (अंश)
पाया जाता है, वह गुणांश क्षयोपशमिक कहलाता है, क्योंकि, गुणोंके सम्पूर्णरूपसे
घातनेकी शक्तिका अभाव क्षय कहलाता है । क्षयरूप ही जो उपशम होता है, वह क्षयो-
पशम कहलाता है । उस क्षयोपशममें उत्पन्न होनेवाला भाव क्षयोपशमिक कहलाता
है । किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके उदय रहते हुए सम्यक्त्वकी कणिका भी अवशिष्ट नहीं
रहती है, अन्यथा, सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके सर्वघातीपना बन नहीं सकता है । इसलिये
सम्यग्मिथ्यात्वभाव क्षयोपशमिक है, यह कहना घटित नहीं होता ?

समाधान—यहां उक्त शंकाका परिहार करते हैं— सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके उदय
होने पर श्रद्धानाश्रद्धानात्मक कंचित अर्थात् शवलित या मिश्रित जीवपरिणाम उत्पन्न
होता है, उसमें जो श्रद्धानाश है, वह सम्यक्त्वका अवयव है । उसे सम्यग्मिथ्यात्व
कर्मका उदय नहीं नष्ट करता है, इसलिये सम्यग्मिथ्यात्वभाव क्षयोपशमिक है ।

शंका—अश्रद्धान भागके विना केवल श्रद्धान भागके ही 'सम्यग्मिथ्यात्व' यह
संज्ञा नहीं है, इसलिये सम्यग्मिथ्यात्वभाव क्षयोपशमिक नहीं है ?

समाधान—उक्त प्रकारकी विवक्षा होने पर सम्यग्मिथ्यात्वभाव क्षयोपशमिक
भले ही न होवे, किन्तु अवयवोंके निराकरण और अवयवके अनिराकरणकी अपेक्षा वह
क्षयोपशमिक है । अर्थात् सम्यग्मिथ्यात्वके उदय रहते हुए अवयवीरूप शुद्ध आत्माका
तो निराकरण रहता है, किन्तु अवयवरूप सम्यक्त्वगुणका अंश प्रगट रहता है । इस
प्रकार क्षयोपशमिक भी वह सम्यग्मिथ्यात्व द्रव्यकर्म सर्वघाती ही होवे, क्योंकि,

१ सम्यग्मिथ्यादृष्टिति क्षायोपशमिको भाव । घ. वि. १, ८ मिले सओमणिओ । गो जी. १२.

२ प्रतियु 'त ओवमणिय' इति पाठ ।

सम्माभिच्छत्तस्म सम्मत्ताभावो । किन्तु सद्वहणभागो असद्वहणभागो न होदि, सद्वहणा-सद्वहणाभेयत्तविरोहा । न च सद्वहणभागो कम्मोदयजणिओ, तत्थ विवरीयत्ताभावा । न य तत्थ सम्माभिच्छत्तववएसभावो, समुदाएसु पयद्वगणं तदेगसे वि पउत्तिदंसणादो । तदो सिद्धं सम्माभिच्छत्तं खओवसमियमिदि । मिच्छत्तस्स सव्वधादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेन संतोवसमेण सम्मत्तस्स देसधादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुदओवसमेण वा सम्माभिच्छत्तस्स सव्वधादिफहयाणमुदएण सम्माभिच्छत्तभावो होदि त्ति सम्माभिच्छत्तस्स खओवसमियत्तं केई परूयत्ति, तण्ण घडदे, मिच्छत्तभावस्स वि खओवसमियत्तप्पसंगा । जुदो ? सम्माभिच्छत्तस्स सव्वधादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण सम्मत्तदेसधादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुदओवसमेण वा मिच्छत्तस्स सव्वधादिफहयाणमुदएण मिच्छत्तभावुप्पत्तीए उवलंभा ।

असंजदसम्माइट्टि ति को भावो, उवसमिओ वा खइओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ ५ ॥

जात्यन्तरभूत सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके सम्यक्त्वताका अभाव है । किन्तु श्रद्धानभाग अश्रद्धान-भाग नहीं हो जाता है, क्योंकि, श्रद्धान और अश्रद्धानके एकताका विरोध है । और श्रद्धानभाग कर्मोदय-जनित भी नहीं है, क्योंकि, इसमें विपरीतताका अभाव है । और न उनमें सम्यग्मिथ्यात्व संज्ञाका ही अभाव है, क्योंकि, समुदायोंमें प्रवृत्त हुए शब्दोंकी उनके एक देशमें भी प्रवृत्ति देखी जाती है । इसलिए यह सिद्ध हुआ कि सम्यग्मिथ्यात्व क्षायोपशमिक भाव है ।

कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदय-क्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे, सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदय-क्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे, अथवा अनुदयरूप उपशमसे और सम्यग्मिथ्यात्व कर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे सम्यग्मिथ्यात्वभाव होता है, इसलिए सम्यग्मिथ्यात्वके क्षायोपशमिकता सिद्ध होती है । किन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, ऐसा मानने पर तो मिथ्यात्वभावके भी क्षायोपशमिकताका प्रसंग प्राप्त होगा, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे और सम्यक्त्वदेशघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे, अथवा अनुदयरूप उपशमसे, तथा मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे मिथ्यात्वभावकी उत्पत्ति पार्ई जाती है ।

असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव भी है, क्षायिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ ५ ॥

१ असंयतसम्यग्दृष्टिरेति औपशमिको वा क्षायिको वा क्षायोपशमिको वा भाव । स ति १, ८. भविदसम्माइट्टि तिण्णव ॥ गो जी १२

तं जहा—मिच्छत्त-सम्माभिच्छत्तसव्वधादिफहयाणं सम्मत्तदेसधादिफहयाणं च उवसमेण उदयाभावलक्खणेण उवसमसम्मत्तमुप्पज्जदि त्ति तमोवसमियं । एदेसिं चेव खएण उप्पण्णो खइओ भावो । सम्मत्तस्स देसधादिफहयाणमुदएण सह वट्टमाणो सरसत्त-परिणामो खओवसमिओ । मिच्छत्तस्स सव्वधादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण सम्माभिच्छत्तस्स सव्वधादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुद-ओवसमेण वा सम्मत्तस्स देसधादिफहयाणमुदएण खओवसमिओ भावो त्ति केई भणत्ति, तण्ण घडदे, अइवत्तिदेसप्पसंगादो । कथं पुण घडदे ? जहट्टियइसद्वहणधायाणसत्ती सम्मत्तफहएसु खीणा त्ति तेसिं खइयसणा । खयाणमुवसमो पसण्णदो खओवसमो । तत्थुप्पणत्तादो खओवसमियं वेदगसम्मत्तमिदि घडदे । एतं सम्मत्तं तिणिण भावा, अण्णे गत्थि । गदिलिगादओ भावा तत्थुवलंभंत इदि चे होदु णाम तेसिमत्थित्तं, किन्तु ण तेहिंतो सम्मत्तमुप्पज्जदि । तदो सम्माइट्टी वि ओइयादिववएसं ण लहदि त्ति घेत्तव्वं ।

जैसे—मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके तथा सम्यक्त्व-प्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयाभावरूप लक्षणवाले उपशमसे उपशमसम्यक्त्व उत्पन्न होता है, इसलिए 'असंयतसम्यग्दृष्टि' यह भाव औपशमिक है । इन्ही तीनों प्रकृतियोंके क्षयसे उत्पन्न होनेवाले भावको क्षायिक कहते हैं । सम्यक्त्वप्रकृतिके देश-घाती स्पर्धकोंके उदयके साथ रहनेवाला सम्यक्त्वपरिणाम क्षायोपशमिक कहलाता है । मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयाभावरूप क्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, तथा उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे अथवा अनुदयोपशमनसे, और सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे क्षायोपशमिक भाव कितने ही आचार्य कहते हैं, किन्तु यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, ऐसा मानने पर अतिव्याप्ति दोषका प्रसंग आता है ।

शंका—तो फिर क्षायोपशमिकभाव कैसे घटित होता है ?

समाधान—यथास्थित अर्थके श्रद्धानको घात करनेवाली शक्ति जब सम्यक्त्व-प्रकृतिके स्पर्धकोंमें क्षीण हो जाती है, तब उनकी क्षायिकसंज्ञा है । क्षीण हुए स्पर्धकोंके उपशमको अर्थात् प्रसन्नताको क्षयोपशम कहते हैं । उसमें उत्पन्न होनेसे वेदकसम्यक्त्व क्षायोपशमिक है, यह कथन घटित हो जाता है । इस प्रकार सम्यक्त्वमें तीन भाव होते हैं, अन्य भाव नहीं होते हैं ।

शंका—असंयतसम्यग्दृष्टिमें गति, लिंग आदि भाव पाये जाते हैं, फिर उनका ग्रहण यहाँ क्यों नहीं किया ?

समाधान—असंयतसम्यग्दृष्टिमें भले ही गति, लिंग आदि भावोंका अस्तित्व रहा आवे, किन्तु उनसे सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता है, इसलिए सम्यग्दृष्टि भी औदयिक आदि भावोंके व्यपदेशको नहीं प्राप्त होता है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।

१ प्रतिपु 'पसण्णदो' इति पाठः ।

ओदइण्ण भावेण पुणो असंजदो' ॥ ६ ॥

मम्मट्टिणीए तिणि भावे भणिउण अमंजदत्तस्स कदमो भावो हेदि ति जाणा-
णट्टमेदं मुत्तमागदं । मंजमयादीणं कम्ममाणमुदएण जेणसो असंजदो तेण असंजदो ति
ओदइओ भावो । हेट्टिल्लणं गुणट्टाणणमोदइयमंजदत्तं क्रिण्ण परूविदं ? ण एस दोसो,
पट्टेणो तेमिमादइयमंजदमात्रोपलदीदो । जेणदमंतदीपयं सुचं तेणंते ठाइएण अइकंत-
मच्चगुणाणमवयामहं पडियज्जदि, तत्थ अप्पो अत्थितं वा पयासेदि, तेण अदीद-
गुणट्टाणणं मच्चेमिमोदइओ असंजमभावो अत्थि ति सिद्धं । एदमादीए अभणिय एत्थ
मणंतस्स तो अभिप्पाओ ? उच्चदे- असंजमभावस्स पज्जवसाणपरूवणट्टमुवरिमाणम-
मंजमयागडिसेहट्टं नेत्थेदं उच्चदे ।

संजदासंजद-पमत-अपमतसंजदा ति को भावो, खओवसमिओ भावो' ॥ ७ ॥

किन्तु असंयतसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदयिकभावसे है ॥ ६ ॥

सम्यग्दृष्टिके तीनों भाव कहकर असंयतके उसके असंयतत्वकी अपेक्षा
कौनसा भाव होता है, इस गतके बतलानेके लिए यह सूत्र आया है । चूंकि संयमके
यात फलोगाने कर्मोंके उदयसे यह असंयतरूप होता है, इसलिए 'असंयत' यह
औसंयिकभावन है ।

शंका—अवस्तन गुणस्थानोंके असंयतपनेको ओदयिक क्यों नहीं कहा ?

समाधान—यह कोई दोग नहीं, क्योंकि, इसी ही सूत्रसे उन अवस्तन गुण-
स्थानोंके औदयिक असंयतभावकी उपलब्धि होती है । चूंकि यह सूत्र अन्तदीपक है,
इसलिए असंयतभावको अन्तमें रख देनेसे वह पूर्वोक्त सभी सूत्रोंका अंग बन जाता है ।
अथवा, अतीत सर्व सूत्रोंमें अपने अस्तित्वको प्रकाशित करता है, इसलिए सभी अतीत
गुणस्थानोंका असंयमभाव औदयिक होता है, यह बात सिद्ध हुई ।

शंका—यह 'असंयत' पद आदिमें न रूढ़कर यहापर कहनेका न्या अभिप्राय है ?

समाधान—यहां तर्कके गुणस्थानोंके असंयमभावकी अन्तिम सीमा बतानेके
लिए और ऊपरके गुणस्थानोंके असंयमभावके प्रतिषेध करनेके लिए यह असंयत पद
यहापर कहा है ।

संयतासंयत, प्रमतसंयत और अप्रमतसंयत, यह कौनसा भाव है ? शायोप-
शुभिक भाव है ॥ ७ ॥

१ अथवा पुनोसंयतेन भावेन । स. मि १, ८.

२ यथातथातः प्रमतसंयतोऽप्यनसंयत इति च शायोपशुभिको भाव । स. मि १, ८. देखिये
पमेरे हरे य गजोपनिमामो ३ । सो सुउ चरित्तोह पडुव मणिय वहा उवरी । गो. जी १२.

तं जहा- चारित्तमोहणीयकम्मोदए खओवसमसण्णिदे संते जदो संजदासंजद-
पमतसंजद-अपमतसंजदत्तं च उपपज्जदि, तेणेदे तिणिण वि भावा खओवसमिया ।
पच्चक्खाणावरण-चटुसंजलण-णवणोक्तायाणमुदयस्स सवप्पणा चारित्तविणासाणसत्तीए
अभावो तस्स खयसण्णा । तेसिं चैव उपपण्णचारित्तं सेडिं वानारंतस्स उवसमसण्णा ।
तेहि दोहितो उपपणा एदे तिणिण वि भावा खओवसमिया जादा । एनं संते पच्चक्खाणा-
वरणस्स सवधादिचं फिट्ठिदि ति उचं ण फिट्ठिदि, पच्चक्खाणं सव्वं धादयदि
त्ति तं सवधादी उच्चदि । सव्वमपच्चक्खाणं ण धादेदि, तस्स तत्थ वावारा-
मावा । तेण तप्परिणदस्स सवधादिसण्णा । जस्सोदए संते जमुपपज्जमाणु-
वल्लभदि ण तं पडि तं सवधाइवएसं लहइ, अहप्पसंगादो । अपच्चक्खाणा-
वरणचउक्कस्स सवधादिफइयाणमुदयक्खएण तेसिं चैव संतोवसमेण चटुसंज-
लण-णवणोक्तायाणं सवधादिफइयाणमुदयक्खएण तेसिं चैव सतोवसमेण देस-
धादिफइयाणमुदएण पच्चक्खाणावरणचटुक्कस्स सवधादिफइयाणमुदएण देससंजमो

चूंकि क्षयोपशमनामक चारित्रमोहनीयकर्मका उदय होने पर सयतासंयत,
प्रमतसंयत और अप्रमतसंयतपना उत्पन्न होता है, इसलिए ये तीनों ही भाव शायोप-
शुभिक हैं । प्रत्याख्यानावरणचतुष्क, संव्वलनचतुष्क और नव नोरुपायोंके उदयके सर्व
प्रकारसे चारित्र विनाश करनेकी शक्तिका अभाव है, इसलिए उनके उदयकी क्षय संज्ञा
है । उन्हीं प्रकृतियोंकी उत्पन्न हुए चारित्रको अथवा श्रेणीको आवरण नहीं करनेके कारण
उपशम सज्ञा है । क्षय और उपशम, इन दोनोंके द्वारा उत्पन्न हुए ये उक्त तीनों भाव भी
क्षायोशुभिक हो जाते हैं ।

शंका—यदि पेसा माना जाय, तो प्रत्याख्यानावरण कपायका सर्वधातिपना
नष्ट हो जाता है ?

समाधान—वैसा माननेपर भी प्रत्याख्यानावरण कपायका सर्वधातिपना नष्ट
नहीं होता है, क्योंकि, प्रत्याख्यानावरण कपाय अपने प्रतिपक्षी सर्व प्रत्याख्यान (संयम)
गुणको घातता है, इसलिए वह सर्वधाती कहा जाता है । किन्तु सर्व अप्रत्याख्यानको
नहीं घातता है, क्योंकि, उसका इस विषयमें व्यापार नहीं है । इसलिए इस प्रकारसे
परिणत प्रत्याख्यानावरण कपायके सर्वधाती संज्ञा सिद्ध है । जिस प्रकृतिके उदय होने
पर जो गुण उत्पन्न होता हुआ देखा जाता है, उसकी अपेक्षा वह प्रकृति सर्वधाति
संज्ञाको नहीं प्राप्त होती है । यदि पेसा न माना जाय तो अतिप्रसंग दोष आजायगा ।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके सर्वधाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे और उन्हींके सद-
वस्थारूप उपशमसे, तथा चारों संव्वलन और नवों नोरुपायोंके सर्वधाती स्पर्धकोंके
उदयाभावी क्षयसे और उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे तथा देशधाती स्पर्धकोंके उदयसे
और प्रत्याख्यानावरण कपायचतुष्कके सर्वधाती स्पर्धकोंके उदयसे देशसंयम उत्पन्न होता

उप्यज्जदि । वारसकसायाणं सव्वधादिफहयणमुदयक्खएण तेसिं चैव संतोवसेण चटु-
सेजुलण-णवणोक्कसायाणं सव्वधादिफहयणमुदयक्खएण तेसिं चैव संतोवसेण देसधादि-
फहयणमुदएण पमत्तापमत्तसंजमां उपपज्जंति, तेणेदं तिणिण वि भावा खओवसमिया
इदि के वि भणंति । ण च एदं समजसं । कुदो ? उदयाभावो उवसमो चि क्खु उदय-
विरहिदसव्वपयडीहि द्विदि-अणुभागफहयहि अ उवसमसण्णा लद्धा । संपहि ण क्खओ
अत्थि, उदयस्स विज्जमाणस्स खयव्वएसविवोहादो । तदो एदं तिणिण भावा उदओव-
समियत्तं पत्ता । ण च एवं, एदसिमुदओवसमियत्तपटुप्पायणसुत्ताभावा । ण च फलं
दाज्जण णिज्जरियगयकम्मक्खंडाणं खयव्वएसं काज्जण एदेसिं खओवसमियत्तं वोसुं
जुत्तं, मिच्छादिद्विआदि सव्वभावाणं एवं सेंते खओवसमियत्तपसंगा । तस्सा पुब्बिल्लो
चेय अत्थो धेत्तव्वो, णिरवज्जत्तादो । दंसणमोहणीयकम्मस्स उवसम-खय-खओवसमे
अस्सिदूण संजदासंजदादीणमोवसमियादिभावा किण्ण पुरुविदो ? ण, तदो संजमासंजमादि-
भावाणमुपपत्तीए अभावादो । ण च एत्थ सम्मत्तिसया पुच्छा अत्थि, जेण दंसण-

है । अनन्तावुबन्धी आदि चारह कपायोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सद-
वस्थारूप उपशमसे चारों सञ्चलन और नवों नोकपायोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदय-
क्षयसे, तथा उन्हींके सदवस्थारूप उदयसे और देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे प्रमत्त
और अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी संयम उत्पन्न होता है, इसलिये एक तीनों ही भाव
क्षायोपशमिक हैं, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं । किन्तु उनका यह कथन युक्तिसंगत
नहीं है, क्योंकि, उदयके अभावको उपशम कहते हैं, ऐसा अर्थ करके उदयसे विरहित
सर्वप्रकृतियोंको तथा उन्हींके स्थिति और अनुभागके स्पर्धकोंको उपशमसंज्ञा प्राप्त हो
जाती है । अभी वर्तमानमें क्षय नहीं है, क्योंकि, जिस प्रकृतिका उदय विद्यमान है,
उसके क्षय संज्ञा होनेका विरोध है । इसलिये ये तीनों ही भाव उदयोपशमिकपनेको
प्राप्त होते हैं । किन्तु ऐसा माना नहीं जा सकता है, क्योंकि, एक तीनों गुणस्थानोंके
उदयोपशमिकपना प्रतिपादन करनेवाले सूत्रका अभाव है । और, फलतो देकर एवं
निर्जराको प्राप्त होकर गये हुए कर्मस्पर्धकोंके 'क्षय' संज्ञा करके एक गुणस्थानोंको
क्षायोपशमिक कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि ऐसा होनेपर भिष्यादृष्टि आदि सभी
भावोंके क्षायोपशमिकताका प्रसंग प्राप्त हो जायगा । इसलिये पूर्वोंक ही अर्थ ग्रहण
करना चाहिये, क्योंकि, वही निरवयव (निर्दोष) है ।

शंका—दर्शनमोहनीयकर्मके उपशम, क्षय और क्षयोपशमका आश्रय करके
सयतासंयतादिकोंके औपशमिक्तादि भाव क्यों नहीं बताये गये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, दर्शनमोहनीयकर्मके उपशमादिकसे सयमासंयमादि
भावोंकी उत्पत्ति नहीं होती । दूसरे, यहां पर सम्यक्त्वविषयक पृच्छा (प्रश्न) भी नहीं है,

मोहविबंधणओवसमियादिभावेहि संजदासंजदादीणं ववएसो होज्ज । ण च एवं,
तथाणुवलंभा ।

चटुण्हमुवसमां ति को भावो, ओवसमिओ भावो ॥ ८ ॥

तं जहा—एकत्रीसपयडीओ उवसामेति ति चटुण्ह ओवसमिओ भावो । होटु
णाम उवसंतकसायस्स ओवसमिओ भावो उवसमिदासेसकसायत्तादो । ण सेसाणं, तत्थ
असेसमोहसुवसमाभावा ? ण, अणियद्विवादसांपराइय-सुहुमसांपराइयाणं उवसमिद-
ओवकसायजणिदुवसमपरिणामाणं ओवसमियभावस्स अत्थिच्चाविरोहा । अपुवकरणस्स
अणुवसंतासेसकसायस्स कधमोवसमिओ भावो ? ण, तस्स त्रि अपुवकरणेहि पडि-
समयमसंखेज्जज्जणुणाए सेडीए कम्मक्खंडे णिज्जरंतस्स द्विदि-अणुभागखंडयाणि घादिदूण
कमेण ठिदि-अणुभागो संखेज्जाणंतणुणहीणे करेतस्स पारदुवसमणकिरियस्स तदनिरोहा ।
जिससे कि दर्शनमोहनीय निमित्तक औपशमिकादि भावोंकी अपेक्षा संयतासंयतादिकके
औपशमिकादि भावोंका व्यपदेश हो सके । ऐसा है नहीं, क्योंकि, उस प्रकारकी व्यवस्था
नहीं पाई जाती है ।

अपूर्वकरण आदि चारों गुणस्थानवर्ती उपशमक यह कौनसा भाव है ?
औपशमिक भाव है ॥ ८ ॥

यह इस प्रकार है—चारित्रमोहनीयकर्मकी इक्कीस प्रकृतियोंका उपशमन करते
हैं, इसलिये चारों गुणस्थानवर्ती जीवोंके औपशमिकभाव माना गया है ।

शंका—समस्त कपाय और नोकपायोंके उपशमन करनेसे उपशान्तकपायवीत-
रागछद्मस्थ जीवके औपशमिक भाव भले ही रहा आवे, किन्तु अपूर्वकरणदि शेष गुण-
स्थानवर्ती जीवोंके औपशमिक भाव नहीं माना जा सकता है, क्योंकि, उन गुणस्थानोंमें
समस्त मोहनीयकर्मके उपशमका अभाव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, कुछ कपायोंके उपशमन किए जानेसे उत्पन्न हुआ
है उपशम परिणाम जिनके, ऐसे अनिवृत्तिकरण चादरसाम्पराय और सूक्ष्मसाम्पराय-
संयतके उपशमभावका अस्तित्व माननेमें कोई विरोध नहीं है ।

शंका—नहीं उपशमन किया है किसी भी कपायका जिसने, ऐसे अपूर्वकरण-
संयतके औपशमिक भाव कैसे माना जा सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अपूर्वकरण परिणामोंके द्वारा प्रतिसमय असंख्यत-
गुणधेणीरूपसे कर्मस्पर्धकोंकी निर्जरा करनेवाले, तथा स्थिति और अनुभागकांडोंको
घात करके क्रमसे कपायोंकी स्थिति और अनुभागको असंख्यात और अनन्तगुणित हीन
करनेवाले, तथा उपशमनक्रियाका प्रारंभ करनेवाले, ऐसे अपूर्वकरणसंयतके उपशम-
भावके माननेमें कोई विरोध नहीं है ।

कम्मानुसममेण उप्पण्णो भावो ओत्तममिओ भण्ह । अपुब्बकरणस्स तदभावा णोवममिओ भावो इट्ठि चे ण, उत्तममणत्तिसमण्हिअपुब्बकरणस्स तदरियत्ताविरोहा । नत्था च उत्तमे जाते उत्तममियकम्मानुसमण्हं जादो वि ओवसमिओ भावो त्ति भिदं । अयत्ता मत्तिस्समाणे भूदोवयादाओ अपुब्बकरणस्स ओत्तममिओ भावो, सयलानंतेमे पयद्वन्तकहरस्स तिल्लयववत्तो व्व ।

चटुण्हं खवा सजोगिकेवली अजोगिकेवलि त्ति को भावो, खइओ भावो ॥ ९ ॥

मजोगि-अजोगिकेवलीं राभिदवाइकम्माणं हेतु णाम खइओ भावो । खीण-ज्जायम्य मि हेतु, खविदमोहणीयत्तादो । ण सेसाणं, तत्थ कम्मक्खयाणुनलंभा १ ण, चादर-मुहुममांपराइयाणं पि सवियमोहेयदेसाणं कम्मक्खयजणिदभावोवलंभा । अपुब्ब-

शंका—लोगोंके उपशमनसे उत्पन्न होनेवाला भाव औपशमिक कहलाता है । किन्तु अपूर्णकरणसंयतके कर्मोंके उपशम का अभाव है, इसलिए उसके औपशमिक भाव नहीं मानना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमनशक्तिसे समन्वित अपूर्वकरणसंयतके औपशमिकभावके अस्तित्वको माननेमें कोई विरोध नहीं है ।

इस प्रकार उपशम होनेपर उत्पन्न होनेवाला और उपशमन होने योग्य कर्मोंके उपशमनार्थ उत्पन्न हुआ भी भाव औपशमिक कहलाता है, यह बात सिद्ध हुई । अथवा, भगिन्यमें होनेवाले उपशम भावमें भूतकालका उपचार करनेसे अपूर्वकरणके औपशमिक भाव यत्न जाता है, जिस प्रकार कि सर्व प्रकारके असंयममें प्रवृत्त हुए चक्रवर्ती तीर्थकरके 'तीर्थन्तर' यह व्यग्रदेश यत्न जाता है ।

चारों क्षपक, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, यह कौनसा भाव है ? क्षायिक भाव है ॥ ९ ॥

शंका—वातिकर्मोंके क्षय करनेवाले सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीके क्षायिक भाव भले ही रहा आने । क्षीणकृपाय वीतरागछद्मस्थके भी क्षायिक भाव रहा आवे, क्योंकि, उसके भी मोहनीयकर्मका क्षय हो गया है । किन्तु सूक्ष्मसाम्पराय आदि शेष क्षणभौतिक क्षायिक भाव मानना शुक्ति संगत नहीं है, क्योंकि, उनमें किसी भी कर्मका क्षय नहीं पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मोहनीयकर्मके एक देशके क्षपण करनेवाले चादर-साम्पराय और सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकोंके भी कर्मक्षय-जनित भाव पाया जाता है ।

१ चतुर्थ शतके सयोगिणेकेवलीोभ शरीरों भावः । स सि ३, ६. सबगुह खओ भावो भिक्खमा अजोगिणिल्लो सि भिदे ५ ॥ गो जी. १४.

करणस्स अविण्हकम्मस्स कधं खइओ भावो १ ण, तस्स वि कम्मक्खयणिमित्तपरिणासु-वलंभा । एत्थ वि कम्ममाणं खए जादो खइओ, खयंहं जाओ' वा खइओ भावो इदि दुविहा सदउप्पत्ती वेत्तव्वा । उवयारेण वा अपुब्बकरणस्स खइओ भावो । उवयारे आसइज्जमाणे अहप्पसंगो किण्ण हेदीदि चे ण, पच्चासत्तीदो अहप्पसंगपडिसेहादो ।

ओघाणुगमो समत्तो ।

आदेसेण गइयाणुवादेण णिरयगईए णेरइए सु मिच्छादिट्ठि त्ति को भावो, ओदइओ भावो ॥ १० ॥

कुदो ? मिच्छजुदयजणिदअसइहणपरिणासुवलंभा । सम्मामिच्छत्तसव्वधादि-फइयाणमुदयक्खएण तेसिं चैव संतोवसेमण सम्मत्तेदसधादिफइयाणमुदयक्खएण तेसिं चैव संतोवसमेण' अणुदओत्तमेण वा मिच्छत्तसव्वधादिफइयाणमुदएण मिच्छाइही

शंका—किसी भी कर्मके नष्ट नहीं करनेवाले अपूर्वकरणसंयतके क्षायिकभाव कैसे माना जा सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उसके भी कर्मक्षयके निमित्तभूत परिणाम पाये जाते हैं ।

यहां पर भी कर्मोंके क्षय होने पर उत्पन्न होनेवाला भाव क्षायिक है, तथा कर्मोंके क्षयके लिए उत्पन्न हुआ भाव क्षायिक है, ऐसी दो प्रकारकी शब्द-व्युत्पत्ति ग्रहण करना चाहिए । अथवा उपचारसे अपूर्वकरण संयतके क्षायिक भाव मानना चाहिए ।

शंका—इस प्रकार सर्वत्र उपचारके आश्रय करने पर अतिप्रसंग दोग कर्मों नहीं प्राप्त होगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रत्यासत्ति अर्थात् समीपवर्ती अर्थके प्रसंगसे अति-प्रसंग दोगका प्रतिषेध हो जाता है ।

इस प्रकार ओघ भावाणुगम समाप्त हुआ ।

आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गोंके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि यह कौनसा भाव है ? औदयिक भाव है ॥ १० ॥

क्योंकि, वहां पर मिथ्यात्वके उदयसे उत्पन्न हुआ अश्रद्धानरूप परिणाम पाया जाता है ।

शंका—सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सद-यस्त्वरूप उपशमसे, तथा सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदवस्त्वरूप उपशमसे अथवा अनुदयोपशमसे और मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती

१ प्रतिगु 'खट्टज्जाओ' इति पाठः ।

२ विक्षेपेण गणमुत्पादेन नरकगतौ प्रयमाणां पृथिव्यां नारकानां मिथ्यादृष्टयत्ततसम्यक्दृष्टकृत्तानां क्षामान्वयत् । स सि १, ६. ३ अत्रौ 'सम्मपदेसवादि' . ततोवसेमण' इति पाठस्य द्वाविधिः ।

उप्यज्जदि त्ति खओवसमिओ सो किण्ण होदि ? उच्चदे- ण ताव सम्मत्त-सम्माभिच्छत्त-
देसवादिफहयाणमुदयक्खओ संतोवसमो अणुदओवसमो वा मिच्छादिद्वीए कारणं, सव्वहि-
चारिआदो । जं जदो णियमेण उप्यज्जदि तं तस्स कारणं, अण्णहा अणवत्थाप्पसंगादो ।
जदि मिच्छुप्यज्जणकाले विज्जमाणा तक्कारणत्तं पडिवज्जंति तो णाण-दंसण-अंसजमा-
दओ वि तक्कारणं होति । ण चेवं, तहाविहवहारभावा । मिच्छादिद्वीए पुण
मिच्छुदुओ कारणं, तेण विणा तदणुप्पत्तीए ।

सासणसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, पारिणामिओ भावो ॥ ११ ॥

अणंताणुबंधीणमुदण्णेन सासणसम्मादिट्ठो होदि त्ति ओदइओ भावो किण्ण
उच्चदे ? ण, आइल्लेसु चट्ठसु वि गुणद्वानेसु चारित्तवरणतिव्वोदएण पत्तासंजमेसु दंसण-
मोहणिवंधणेसु चारित्तमोहविवाखाभावा । अपिदस्स दंसणमोहणीयस्स उदएण उवसमेण
खएण खओवसमेण वा सासणसम्मादिट्ठो ण होदि त्ति पारिणामिओ भावो ।

स्पर्धकोके उदयसे मिथ्यादृष्टिभाव उत्पन्न होता है, इसलिये उसे क्षायोपशमिक क्यों न
माना जाय ?

समाधान—न तो सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंके देशघाती
स्पर्धकोका उदयक्षय, अथवा सदवस्थारूप उपशम, अथवा अनुदयरूप उपशम मिथ्यादृष्टि-
भावका कारण है, क्योंकि, उसमें व्यभिचार दोष आता है । जो जिससे नियमतः उत्पन्न
होता है, वह उसका कारण होता है । यदि ऐसा न माना जावे, तो अनवस्था दोषका
प्रसंग आता है । यदि यह कहा जाय कि मिथ्यात्वके उत्पन्न होनेके कालमें जो भाव
विद्यमान हैं, वे उसके कारणपनेको प्राप्त होते हैं । तो फिर ज्ञान, दर्शन, असंयम आदि भी
मिथ्यात्वके कारण हो जावेंगे । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, उस प्रकारका व्यवहार नहीं
पाया जाता है । इसलिये यही सिद्ध होता है कि मिथ्यादृष्टिका कारण मिथ्यात्वका उदय
ही है, क्योंकि, उसके बिना मिथ्यात्वभावकी उत्पत्ति नहीं होती है ।

नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? पारिणामिक भाव है ॥ ११ ॥

शंका—अनन्तानुबन्धी चारों कपायोंके उदयसे ही जीव सासादनसम्यग्दृष्टि
होता है, इसलिये उसे औदयिकभाव क्यों नहीं कहते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, दर्शनमोहनीयनिवन्धनक आदिके चारों ही गुणस्थानोंमें
चारित्रको आवरण करनेवाले मोहकर्मके तीव्र उदयसे असंयमभावके प्राप्त होनेपर भी
चारित्रमोहनीयकी विवक्षा नहीं की गई है । अतएव विवक्षित दर्शनमोहनीय कर्मके
उदयसे, उपशमसे, क्षयसे, अथवा क्षयोपशमसे सासादनसम्यग्दृष्टि नहीं होता है, इसलिये
वह पारिणामिक भाव है ।

सम्माभिच्छादिट्ठि त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो ॥ १२ ॥

कुदो ? सम्माभिच्छत्तुदए संते त्ति सम्मदंसणेगेदेसमुत्तलभा । सम्माभिच्छत्तभावे
पत्तजच्चंतरे अंससीभावो णलिय त्ति ण तत्थ सम्मदंसणस्स एगेदेस इदि चे, होहु णाम
अभेदिविक्खाए जच्चंतरत्तं । भेदे पुण विविक्षेदे सम्मदंसणभागो अत्थि चेव, अण्णहा
जच्चत्तरविरोहा । ण च सम्माभिच्छत्तस्स सव्वधाइत्तमेवं संते विरुज्झइ, पत्तजच्चंतरे
सम्मदंसणभावादो तस्स सव्वधाइत्ताविरोहा । मिच्छत्तसव्वधाइफहयाणं उदयक्खएण
तोसं चेव संतोवसमेण सम्मत्तस्स देसवादिफहयाणमुदयक्खएण तोसं चेव संतोवसमेण
अणुदओवसमेण वा सम्माभिच्छत्तसव्वधादिफहयाणमुदएण सम्माभिच्छत्तं होदि त्ति तस्स
खओवसमियत्तं केइं भणंति, तण्ण घडदे । कुदो ? सव्वहिचारिआदो । विउचारो पुब्बं
परूविदो त्ति णेह परूविज्जदे ।

**असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, उवसमिओ वा, खइओ वा,
खओवसमिओ वा भावो ॥ १३ ॥**

नारकी सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह कौनसा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ १२ ॥
क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके उदय होनेपर भी सम्यग्दर्शनका एक देश पाया
जाता है ।

शंका—जात्यन्तरत्व (भिन्न जातीयता) को प्राप्त सम्यग्मिथ्यात्वभावमें अंशांशी
(अवयव-अवयवी) भाव नहीं है, इसलिये उसमें सम्यग्दर्शनका एक देश नहीं है ?

समाधान—अभेदकी विवक्षामें सम्यग्मिथ्यात्वके भिन्नजातीयता भले ही रही
आवे, किन्तु भेदकी विवक्षा करनेपर उसमें सम्यग्दर्शनका एक भाग (अंश) है ही ।
यदि ऐसा न माना जाय, तो उसके जात्यन्तरत्वके माननेमें विरोध आता है । और, ऐसा
माननेपर सम्यग्मिथ्यात्वके सर्वघातिपना भी विरोधको प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि,
सम्यग्मिथ्यात्वके भिन्नजातीयता प्राप्त होनेपर सम्यग्दर्शनके एक देशका अभाव है, इस-
लिये उसके सर्वघातिपना माननेमें कोई विरोध नहीं आता ।

कितने ही आचार्य, मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोके उदयक्षयसे, उन्हीके
सदवस्थारूप उपशमसे, तथा सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोके उदयक्षयसे और
उन्हीके सदवस्थारूप उपशम, अथवा अनुदयरूप उपशमसे, और सम्यग्मिथ्यात्वके सर्व-
घाती स्पर्धकोके उदयसे सम्यग्मिथ्यात्वभाव होता है, इसलिये उसके क्षायोपशमिकता
कहते हैं । किन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, उक्त लक्षण सव्यभिचारी
है । व्यभिचार पहले प्ररूपण किया जा चुका है, (देखो पृ १९९) इसलिये यहां नहीं कहते हैं ।

नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव भी है, क्षायिक-
भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ १३ ॥

मोहणीयावयवस्स देसघादिलक्खणस्स उदयादो उप्पणसम्मादिट्ठिभावो खओवसमिओ । वेदगसम्मत्तफदयाणं खयसण्णा, सम्मतपडिबंधणसत्तीए तत्थाभावा । मिच्छत्त-सम्मा-मिच्छत्तानुदयाभावो उवसमो । तेहि देहि उप्पणत्तादो सम्माइट्ठिभावो खइओव-समिओ । खइओ भावो किण्णोवलम्भेदो ? ण, विदियादिसु पुढीसु खइयसम्मादिट्ठिण-मुप्पत्तीए अभावा ।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ १८ ॥

सम्मादिट्ठित्तं दुभावसण्णदं सोच्चा असंजदभावावगमत्थं पुच्छदसिस्ससंदेह-

विशेषार्थ—गति, जाति आदि पिंड-प्रकृतियोंमेंसे जिस किसी विवक्षित एक प्रकृतिके उदय आने पर अनुदय-प्राप्त शेष प्रकृतियोंका जो उसी प्रकृतिमें संक्रमण होकर उदय आता है, उसे स्तिवुकसंक्रमण कहते हैं । जैसे—एकेन्द्रिय जीवोंके उदय-प्राप्त एकेन्द्रिय जातिनामकमें अनुदय-प्राप्त द्वीन्द्रिय जाति आदिका संक्रमण होकर उदयमें आना । गति नामकमें भी पिंड-प्रकृति है । उसके चारों भेदोंमेंसे किसी एकके उदय होने पर अनुदय-प्राप्त शेष तीनों गतियोंका स्तिवुकसंक्रमणके द्वारा संक्रमण होकर विपाक होता है । प्रकृतमें यही बात देवगतिको लक्ष्यमें रखकर कही गई है कि देवगति नाम-कर्मके उदयकालमें शेष तीनों गतियोंका स्तिवुकसंक्रमणके द्वारा उदय पाया जाता है ।

दर्शनमोहनीयकर्मकी अवयवस्वरूप और देशघाती लक्षणवाली वेदकसम्यक्त्व-प्रकृतिके उदयसे उत्पन्न होनेवाला सम्यग्दृष्टिभाव क्षायोपशमिक कहलाता है । वेदक-सम्यक्त्वप्रकृतिके स्पर्धकोंकी क्षय संज्ञा है, क्योंकि, उसमें सम्यग्दर्शनके प्रतिबन्धनकी शक्तिका अभाव है । मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंके उदयाभावको उपशम कहते हैं । इस प्रकार उपर्युक्त क्षय और उपशम, इन दोनोंके द्वारा उत्पन्न होनेसे सम्यग्दृष्टिभाव क्षायोपशमिक कहलाता है ।

शंका—यहां क्षायिक भाव क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, द्वितीयादि पृथिवियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंकी उत्पत्तिका अभाव है ।

किन्तु उक्त नारकी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ १८ ॥

द्वितीयादि पृथिवियोंके सम्यग्दृष्टिको औपशमिक और क्षायोपशमिक, इन दो भावोंसे संयुक्त सुन कर वहां असंयतभावके परिक्षानार्थ प्रश्न करनेवाले शिष्यके

विणासण्डुमागदमिदं सुत्तं । संजमघादिचारित्तमोहणीयकर्मोदयसमुप्पणत्तादो असंजद-भावो ओदइओ । अदीदगुणट्ठाणेषु असंजदभावस्स अत्थित्तं एदेण सुत्तेण परूविदं ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियपज्जत्त-पंचि-दियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव संजदासंजदाण-मोघं ॥ १९ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठि त्ति ओदइओ, सासणसम्मादिट्ठि त्ति पारिणमिओ, सम्मा-मिच्छादिट्ठि त्ति खओवसमिओ, सम्मादिट्ठि त्ति ओवसमिओ खइओ खओवसमिओ चा; ओदइएण भावेण पुणो असंजदो, संजदासंजदो त्ति खओवसमिओ भावो इच्चेदेहि ओघादो चउब्बिहतिरिक्खणं भेदाभावा । पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु भेदपदुप्पायण्डु-मुत्तरसुत्तं भणदि—

णवरि विसेसो, पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, ओवसमिओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ २० ॥

संदेहको विनाश करनेके लिए यह सूत्र आया है । द्वितीयादि पृथिवीगत असंयतसम्य-ग्दृष्टि नारकियोंका असंयतभाव संयमघाती चारित्रमोहनीयकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेके कारण औदयिक है । तथा, इस सूत्रके द्वारा अतीत गुणस्थानोंमें असंयतभावके अस्तित्वका निरूपण किया गया है ।

तिर्यचगतिमें तिर्यच, पंचेन्द्रियतिर्यच, पंचेन्द्रियतिर्यचपर्याप्त और पंचेन्द्रिय-तिर्यच योनिमतियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ १९ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि यह औदयिकभाव है, सासादनसम्यग्दृष्टि यह पारिणामिक-भाव है, सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह क्षायोपशमिकभाव है, सम्यग्दृष्टि यह औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव है, तथा औदयिकभावकी अपेक्षा वह असंयत है, संयतासंयत यह क्षायोपशमिक भाव है । इस प्रकार ओघसे चारों प्रकारके तिर्यचोंकी भावप्ररूपणमें कोई भेद नहीं है ।

अब पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमें भेद प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेष बात यह है कि पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ २० ॥

कुदो ? उनसम-वेदयसम्मादिद्वीणं चेय तत्थ संभगदो । खइओ भावो किण्ण तत्थ संभाइ ? सदयसम्मादिद्वीणं व द्वाउआणं त्थिवेदएसु उपपत्तीए अभावा, मणुसगइ-वदिरित्तयेसगसु दंसणमोहणीयसराणाए अभावादो च ।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ २१ ॥

सुगमभेदं ।

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव अजोगिकेवल्लि ति ओघं ॥ २२ ॥

तिविहमणुससयलुणुण्डाणाणं ओघसयलुणुण्डाणेहिंतो भेदाभावा । मणुसअपज्जत्त-तिरिक्खअपज्जत्तमिच्छादिद्वीणं सुत्ते भावो किण्ण परुविदो ? ण, ओघपरुवणादो चेय तन्भावावगमादो पुथ ण परुविदो ।

क्योंकि, पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमें उपशमसम्यग्दृष्टि और क्षायोपशमिक-सम्यग्दृष्टि जीवोंका ही पाया जाना सम्भव है ।

शंका—उनमें क्षायिकभाव क्यों नहीं सम्भव है ?

समाधान—क्योंकि, वद्धयुक्क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंकी ह्रीवेदियोंमें उत्पत्ति नहीं होती है, तथा मनुष्यगतिके अतिरिक्त शेष गतियोंमें दर्शनमोहनीयकर्मकी क्षपणाका अभाव है, इसलिये पचेन्द्रियतिर्यच योनितियोंमें क्षायिकभाव नहीं पाया जाता ।

किन्तु तिर्यच असंयतसम्यग्दृष्टियोंका असंयतत्व औदयिकभावेसे है ॥ २१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियामें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ २२ ॥

क्योंकि, तीनों प्रकारके मनुष्योंसम्बन्धी समस्त गुणस्थानोंकी भावप्ररूपणामें ओघके सकल गुणस्थानोंसे कोई भेद नहीं है ।

शंका—लब्धपर्याप्तक मनुष्य और लब्धपर्याप्तक तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीवोंके भावोंका सूत्रमें प्ररूपण क्यों नहीं किया गया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ओघसम्बन्धी भावप्ररूपणासे ही उनके भावोंका परि-
ज्ञान हो जाता है, इसलिये उनके भावोंका सूत्रमें पृथक् निरूपण नहीं किया गया ।

१ मनुष्यगती मनुष्याणां भिष्यादृष्टयपयोगेस्त्वन्तानां सामान्यत्वं । स. ति. १, ८.

देवगदीए देवेषु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि ति ओघं ॥ २३ ॥

कुदो ? मिच्छादिद्वीणमोदएण, सासणाणं पारिणमिण्ण, सम्माभिच्छादिद्वीणं खओवसमिण्ण, असंजदसम्मादिद्वीणं ओवसमिय-खइय-सओगसमिण्हि भावेहि ओघ-मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिद्वीहि साधम्मवुलंभा ।

भवणवासिय-चाणवेंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप-वासियदेवीओ च मिच्छादिद्वी सासणसम्मादिद्वी सम्माभिच्छादिद्वी ओघं ॥ २४ ॥

कुदो ? एदेसि सुत्तुत्तगुण्डाणाणं सचपयारेण ओघादो भेदाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठि ति को भावो, उवसमिओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ २५ ॥

कुदो ? तत्थ उवसम-वेदगसम्मत्तणं दोण्हं चेय संभवादो । खइओ भानो एत्थ

देवगतिमें देवोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक भाव ओघके समान हैं ॥ २३ ॥

क्योंकि, देवमिथ्यादृष्टियोंकी औदयिकभावसे, देवसासादनसम्यग्दृष्टियोंकी पारिणामिकभावसे, देवसम्यग्मिथ्यादृष्टियोंकी क्षायोपशमिकभावसे और देवअसंयत-सम्यग्दृष्टियोंकी औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भावोंकी अपेक्षा ओघ मिथ्या-दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके भावोंके साथ समानता पाई जाती है ।

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देव एवं देवियां, तथा सौधर्म ईशान कल्पवासी देवियां, इनके मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि ये भाव ओघके समान हैं ॥ २४ ॥

क्योंकि, इन सूत्रोक्त गुणस्थानोंका सर्व प्रकार ओघसे कोई भेद नहीं है ।

असंयतसम्यग्दृष्टि उक्त देव और देवियोंके कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ २५ ॥

क्योंकि, उनमें उपशमसम्यक्त्व और क्षायोपशमिकसम्यक्त्व, इन दोनोंका ही पाया जाना सम्भव है ।

१ देवगती देवानां भिष्यादृष्टयपसंयतसम्यग्दृष्टयान्तानां सामान्यत्वं । स. भि. १, ८.

किण पल्लवो ? ण, भवणवासिय-चाणेवत्तर-जोदिसिय-विदियादिछुपुढविणेइय-सन्व-विगल्लिदिय-लद्धिअपज्जत्तिथीवेदेसु सम्मादिट्ठीणमुववादाभावा, मणुसगइवदिरित्तिणगईसु दंसणमोहणीयस्स खवणाभावा च ।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ २६ ॥

सुगमभेदं ।

सोधम्मीसाणपहुडि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छा-दिट्ठिणहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि ति ओवं ॥ २७ ॥

हुदो ? एत्थतणुणट्ठाणणं ओघचदुगुणट्ठाणेहिंतो अप्पिदभावहि भेदाभावा ।

अणुदिसादि जाव सन्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मा-दिट्ठि ति को भावो, ओवसमिओ वा खइओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ २८ ॥

शंका—उक्त भवनविक आदि देव और देवियोंमें क्षायिकनाव क्यों नहीं बतलाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क देव, द्वितीयादि उह पृथिवियोंके नारकी, सर्व विकलेन्द्रिय, सर्व लब्धपर्याप्तक और छावेदियोंमें सम्य-ग्दृष्टि जीवोंकी उत्पत्ति नहीं होती है, तथा मनुष्यगतिके अतिरिक्त अन्य गतियोंमें दर्शन-मोहनीयकर्मकी क्षपणाका अभाव है, इसलिए उक्त भवनविक आदि देव और देवियोंमें क्षायिकभाव नहीं बतलाया गया ।

किन्तु उक्त असंयतसम्यग्दृष्टि देव और देवियोंका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ २६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सौधर्म-ईशानकल्पसे लेकर नव त्रैवेयक पर्यंत विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक भाव ओषके समान है ॥ २७ ॥

क्योंकि, सौधर्मादि विमानवासी चारों गुणस्थानवर्ती देवोंके ओघसम्बन्धी चारों गुणस्थानोंकी अपेक्षा विवक्षित भावोंके साथ कोई भेद नहीं है ।

अनुदिश आदिसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भी है, क्षायिक भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ २८ ॥

तं जहा—वेदगसम्मादिट्ठीणं खओवसमिओ भावो, खइयसम्मादिट्ठीणं खइओ, उवससम्मादिट्ठीणं ओवसमिओ भावो । तत्थ मिच्छादिट्ठीणमभावे संते कथमुवसम-सम्मादिट्ठीणं संभवो, कारणाभावे क्खज्जस्स उप्पत्तिविरोहादो ? ण एस दोसो, उवसम-सम्मत्तेण सह उवसमसेडि चंडंत-ओदरताणं संजदणं कालं करिय देवेसुप्पण्णाणमुवसम-सम्मत्तुवलंभा । तिसु ट्ठाणेसु पउत्तो वासदो अणत्थओ, एगेणेव इड्ढकज्जसिद्धिदो ? ण, मंदवुद्धिमिस्साणुगहट्ठचादो ।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ २९ ॥

सुगमभेदं ।

एव गइमगणा सम्मत्ता ।

इंदियाणुवादेण पंचिदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओवं ॥ ३० ॥

जैसे—वेदकसम्यग्दृष्टि देवोंके क्षायोपशमिक भाव, क्षायिकसम्यग्दृष्टि देवोंके क्षायिक भाव और उपशमसम्यग्दृष्टि देवोंके औपशमिक भाव होता है ।

शंका—अनुदिश आदि विमानोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अभाव होते हुए उपशम-सम्यग्दृष्टियोंका होना कैसे सम्भव है, क्योंकि, कारणके अभाव होनेपर कार्यकी उत्पत्तिका विरोध है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, उपशमसम्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणी-पर चढ़ते और उतरते हुए मरणकर देवोंमें उत्पन्न होनेवाले संयतोंके उपशमसम्यक्त्व पाया जाता है ।

शंका—सूत्रमें तीन स्थानोंपर प्रयुक्त हुआ 'वा' शब्द अनर्थक है, क्योंकि, एक ही 'वा' शब्दसे इष्ट कार्यकी सिद्धि हो जाती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मंदवुद्धि शिष्योंके अनुग्रहार्थ सूत्रमें तीन स्थानोंपर 'वा' शब्दका प्रयोग किया गया है ।

किन्तु उक्त असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका असंयतत्व औदयिकभावसे है ॥ २९ ॥ यह सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई ।

इन्द्रियमार्गणके अनुवादेसे पंचेन्द्रियपर्याप्तकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगि-केवली गुणस्थान तक भाव ओषके समान हैं ॥ ३० ॥

१ इन्द्रियावुवादेन एकेन्द्रियविकलेन्द्रियाणामौदयिको भाव । पंचेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्ट्यायोगकेवत्यन्तानां सामान्यवत् । स मि १, ८.

कुदो ? पन्थगुणद्वयगुणमोघगुणद्वयगुणोहिंतो अपिदमां पडि भेदाभावा । पन्थिय-नेन्द्रिय-चउत्तिन्द्रिय-पन्थिदियअपज्जत्तिन्द्रियं भावो किण्ण परुविदो ? ण मम देवो, परुणाए विणा णि तत्थ भावोवलदीदो । परुणा कीरेदे परावोहण्डं, ण च आगयअट्ठपरुणा फलन्ता, परुणाऊज्जस्स अगमस्स पुब्बमेवुप्पण्णचादो ।

एवमिन्द्रियमगणा समत्ता ।

कायगुणवादेण तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तए सु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव अजोगिकेवल्ले ति ओघं ॥ ३१ ॥

कुदो ? ओघगुणद्वयगुणोहिंतो एत्थतणगुणद्वयगुणमपिदमांवि भेदाभावा । सब्ब-पुडवी-सब्वआउ-मवतेउ-मवनाउ-सब्ववणप्फदि-तमअपज्जत्तमिच्छादिट्ठिणं भावपरुणा मुत्ते ण रुदा, अगदपरुणाए फलाभावा । तस-तसपज्जत्तगुणद्वयगुणभावो ओघादो चेव णज्जदि ति तवभाउपरुणमणत्थयमिदि तप्परुणं पि मा किज्जहु ति मणिदे ण, तत्थ

क्योकि, पचेन्द्रियपर्याप्तिकामें होनेवाले गुणस्थानोंका ओघगुणस्थानोंकी अपेक्षा विगतिष्ठित भावोंके प्रति तेई भेद नहीं है ।

गुंका—यहांपर पचेन्द्रिय, छीन्द्रिय, व्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पंचेन्द्रिय अप-र्याप्तक मिच्छादि जीवोंके भावोंकी प्ररूपणा क्यों नहीं की ?

समाधान—यह तोई दोष नहीं, क्योंकि, प्ररूपणाके विना भी उनमें होनेवाले भावोंका ज्ञान पाया जाता है । प्ररूपणा दूसरोंके परिज्ञानके लिये की जाती है, किन्तु जाने हुए अर्थकी प्ररूपणा फलती नहीं होती है, क्योंकि, प्ररूपणाका कार्यभूत ज्ञान प्ररूपणा करनेके पूर्वमें ही उत्पन्न हो चुका है ।

इस प्रकार इन्द्रियमार्गणा समाप्त हुई ।

कायमार्गणाके अनुवादने त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तिकामें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवाली गुणस्थान तक भान ओघके समान हैं ॥ ३१ ॥

क्योंकि, जोगगुणस्थानोंकी अपेक्षा त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्तिकामें होने-वाले गुणस्थानोंका विविधित भावोंके साथ कोई भेद नहीं है । सर्वं पृथिवीकायिक, सर्वं जलकायिक, सर्वं तेजस्कायिक, सर्वं वायुकायिक, सर्वं वनस्पतिकायिक और त्रस लब्ध-पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि जीवोंकी भावप्ररूपणा सूत्रमें नहीं की गई है, क्योंकि, जाने हुए भावोंकी प्ररूपणा करनेमें कोई फल नहीं है ।

अंका—त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंमें सम्भव गुणस्थानोंके भान ओघसे ही गत हो जाते हैं, इसलिए उनके भावोंका प्ररूपण करना अनर्थक है, अतः उनका प्ररूपण भी नहीं करना चाहिए ?

१ योगाद्वयेन स्मारत्तमित्तानोदयितो मा । त्रसकायिकानां सामान्यमेव । स. वि. १, ८.

बहुसु गुणद्वयगुणसु संतेसु किण्ण कस्सइ अण्णो भावो होदि, ण होदि ति संदेहो मा होहदि ति तप्पडिसेहं तप्परुणाकरणादो ।

एव कायमगणा समत्ता ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-ओरा-लियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव सजोगिकेवल्ले ति ओघं ॥ ३२ ॥

सुगमभेदं ।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठिणं ओघं ॥ ३३ ॥

एदं पि सुगमं ।

असंजदसम्मादिट्ठि ति को भावो, खइओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ ३४ ॥

कुदो ? खइय-वेदगसम्मादिट्ठिणं देव-गएइय-मणुसाणं तिरिक्ख-मणुसेसु उत्पज्ज-समाधान—नहीं, क्योंकि, त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्तिकामें बहुतसे गुण-स्थानोंके होनेपर स्या किसी जीवके कोई अन्य भाव होता है, अथवा नहीं होता है, इस प्रकारका सन्देह न होवे, इस कारण उसके प्रतिषेध करनेके लिए उनके भावोंकी प्ररूपणा की गई है ।

इस प्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई ।

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवाली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ३२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टियोंके भाव ओघके समान हैं ॥ ३३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? धार्मिक भाव भी है और धायोपशमिक भाव भी है ॥ ३४ ॥

क्योंकि, तिर्यक् और मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले क्षायिकसम्यग्दृष्टि तथा चेदक-

१ योगाद्वयेन कायवाङ्मनसयोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादिसंयोगिकेव्यतानामयोगिकेवल्लिनां च सामान्यमेव । स. वि. १, ८.

माणमुवलंभा । ओवसमिओ भावा एत्थ किण्ण परूविदो ? ण, चउग्गइउवससम्मा-
दिट्ठीणं मण्णाभावादो ओरालियमिस्सिग्गिह उवससम्मतस्सुवलंभाभावा । उवसमसेडिं
चढत-ओअंतंसजदणमुवससम्मतत्तेण मरणं अत्थि ति चे सच्चमत्थि, किंतु ण ते
उवससम्मतत्तेण ओरालियमिस्सकायजोगिणो होति, देवगदिं मोचूण तेसिम्णत्थ
उप्पत्तीए अभावा ।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ ३५ ॥

सुगमेदं ।

सजोगिकेवलि ति को भावो, खइओ भावो ॥ ३६ ॥

एदं पि सुगमं ।

वेउन्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठिण्हडि जाव असंजदसम्मा-
दिट्ठि ति ओघमंगो ॥ ३७ ॥

सम्यग्दृष्टि देव, नारकी और मनुष्य पाये जाते हैं ।

शंका—यहां, अर्थात् औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें, औपशमिकभाव क्यों
नहीं बतलाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, चारों गतियोंके उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका मरण नहीं
होनेसे औदारिकमिश्रकाययोगमें उपशमसम्यक्त्वका सद्भाव नहीं पाया जाता ।

शंका—उपशमश्रेणीपर चढ़ते और उतरते हुए संयत जीवोंका उपशमसम्यक्त्वके
साथ तो मरण पाया जाता है ?

समाधान—यह कथन सत्य है, किन्तु उपशमश्रेणीमें मरनेवाले वे जीव उपशम-
सम्यक्त्वके साथ औदारिकमिश्रकाययोगी नहीं होते हैं, क्योंकि, देवगतिको छोड़कर
उनकी अन्यत्र उत्पत्तिका अभाव है ।

किन्तु औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदयिक
भावसे है ॥ ३५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली यह कौनसा भाव है ? क्षायिक भाव
है ॥ ३६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

वैक्रियिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक
भाव ओघके समान है ॥ ३७ ॥

एदं पि सुगमं ।

वेउन्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असं-
जदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ३८ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठीणमोदइएण, सासणसम्मादिट्ठीणं, पारिणामिएण, असंजद-
सम्मादिट्ठीणं ओवसमिय-खइय-खओवसमियभावोहि ओघमिच्छादिट्ठिआदीहि साध-
मुवलंभा ।

आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमतसंजदा ति को
भावो, खओवसमिओ भावो ॥ ३९ ॥

कुदो ? चारित्तावरणचटुसंजलण-सत्तणोकोकायाणमुदए सेंते वि पमादाणुविद्धसंज-
मुवलंभा । कधमेत्थ खओवसमो ? पत्तोदयएक्कारसचारित्तमोहणीयपयडिदेसघादिफह-
याणमुवसमसण्णा, णिरवसेसेण चारित्तघायणसत्तीए तथुवसमुवलंभा । तेसिं चेव सन्व-
घादिफहयाणं खयसण्णा, णट्ठोदयभावत्तादो । तेहि देहिं मि उप्पणो संजमो खओव-

यह सूत्र भी सुगम है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्य-
ग्दृष्टि ये भाव ओघके समान हैं ॥ ३८ ॥

क्योंकि, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंके औदयिकभावसे, सासादन-
सम्यग्दृष्टियोंके पारिणामिकभावसे, तथा असंयतसम्यग्दृष्टियोंके औपशमिक, क्षायिक
और क्षायोपशमिक भावोंकी अपेक्षा ओघ मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंके भावोंके साथ
समानता पाई जाती है ।

आहारकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत यह कौनसा
भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ३९ ॥

क्योंकि, यथाव्यायतचारित्र्यके आवरण करनेवाले चारों संज्वलन और सात
नोकपयोंके उदय होने पर भी प्रमादसंयुक्त संयम पाया जाता है ।

शंका—यहां पर क्षायोपशमिकभाव कैसे कहा ?

समाधान—आहारक और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें क्षायोपशमिकभाव
होनेका कारण यह है कि उदयको प्राप्त चार संज्वलन और सात नोकपाय, इन ग्यारह
चारित्र्यमोहनीय प्रकृतियोंके देशघाती स्पर्धकोकी उपशमसंज्ञा है, क्योंकि, सम्पूर्णरूपसे
चारित्र्य घातनेकी शक्तिका वहां पर उपशम पाया जाता है । तथा, उन्हीं ग्यारह चारित्र्य-
मोहनीय प्रकृतियोंके सर्वघाती स्पर्धकोकी क्षयसंज्ञा है, क्योंकि, वहां पर उनका उदयमें
आना नष्ट हो चुका है । इस प्रकार क्षय और उपशम, इन दोनोंसे उत्पन्न होनेवाला

ममिथो । अथवा एतत्ताम्यमकृमाणमुदयस्तेव खओमसमसण्णा । कुदो ? चारित्तघायण-
मत्तीए अमान्म्येन तव्यएमादो । तेण उप्पण्णा इटि खओवसमिथो पमादाणुविद्धसंजमो ।

कमडयकायजोगीसु मिच्छादिद्वी सासणसम्मादिद्वी असंजद-
सम्मादिद्वी सजोगिकेवली ओघं ॥ ४० ॥

हुदो ? भिच्छादिद्वीणमोडइएण, सासणणं पारिणामिएण, कम्मइयकायजोगिअंसं-
जदग्गमादिद्वीणं ओपसमिय-सइय-एओवसमियभावोहि, सजोभिकेवल्लिणं खइएण भावेण
ओघस्मि' गदरुणद्वणेहि साधम्मपलंभा ।

एय जोगमगणा समत्ता ।

वेदाणुवादेण हत्थिवेद-पुरिसवेद-णउंसयेवदएसु
पहुडि जाव अणियट्ठि ति ओघं ॥ ४१ ॥

मुगममं, गुदसप्तपल्लवाए विणा वि अत्थावल्लदीदो ।

संयम शायोपशमिक कहलता है। अथवा, चारित्र्यमोहसम्बन्धी उक्त ग्यारह कर्ममूह्तियोंके उदयकी ही क्षयोपशमसंज्ञा है, क्योंकि, चारित्र्यके घातनेकी शक्तिके अभावकी ही क्षयोपशमसंज्ञा है। इस प्रकारके क्षयोपशमसे उत्पन्न होनेवाला प्रमादयुक्त संयम शायोपशमिक है।

कार्मणकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेकली ये भाव आघके समान हैं ॥ ४० ॥

भयौक्ति, तर्माणकाययोगी मित्याहृष्टियों के औद्यिकभावसे, सासादनसम्यग्दृष्टियों के पारिणामितभावेसे, असत्यतसम्यग्दृष्टियों के औपशमिक, क्षायिक और क्षायोप-
दामित भावों की अपेक्षा, तथा सयोगिकविलियों के क्षायिकभावों की अपेक्षा ओयमें कहे गये
गुणस्थानों के भावों के साथ समानता पाई जाती है ।

इस प्रकार योगमार्गणा समाप्त हुई ।

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदियोंमें मित्यादृष्टिसे लेकर जानियुत्तिकरण गुणस्थान तक भाव ओघक समान हैं ॥ ४१ ॥

यह सूत्र सुगम है, फ़ोपॉनि, इसके अर्थकी प्ररूपणाके बिना भी अर्थका ज्ञान हो जाता है।

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-भाणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु
मिच्छादिट्ठिण्हडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा ओघं ॥४३॥
सुगममेदं ।

अकसाईसु चटुडणी ओघं ॥ ४४ ॥

चोदओ भणदि- कसाओ गाम जीवगुणो, ण तस्स विणासो अत्थि, णाण-दंस-
णाणमिव । विणासे वा जीवस्स विणासेण होदन्तं, णाण-दंसणविणासेणेव । तदो ण
अकसायत्तं घडदे इदि ? होदु णाण-दंसणाणं विणासमिद्दि जीवविणासो, तेसिं तल्लक्खण-
त्तादो । ण कसाओ जीवस्स लक्खणं, कम्मजणिदिदस्स तल्लक्खणत्तविरोहा । ण कसायाणं
कम्मजणिदत्तमसिद्धं, कसायवड्डीए जीवलक्खणणाहणिअणहाणुवत्तीदो तस्स कम्म-
जणिदत्तसिद्धीदो । ण च गुणो गुणंतरविरोहे, अणत्थ तहाणुवलंभा । सेसं सुगमं ।

एव कसायमगणा समत्ता ।

कपायमार्गणके अनुवादसे क्रोधकपायी, मानकपायी, मायकपायी और लोभ-
कपायी जीवोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर स्रष्टृसाम्प्रदाय उपशामक और क्षपक गुणस्थान तक
भाव ओघके समान हैं ॥ ४३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अकपायी जीवोंमें उपशान्तकपाय आदि चारों गुणस्थानवर्ती भाव ओघके
समान हैं ॥ ४४ ॥

शंका— यहा शंकाकार कहता है कि कपाय नाम जीवके गुणका है । इसलिये
उसका विनाश नहीं हो सकता, जिस प्रकार कि ज्ञान और दर्शन, इन दोनों जीवके
गुणोंका विनाश नहीं होता है । यदि जीवके गुणोंका विनाश माना जाय, तो ज्ञान और
दर्शनके विनाशके समान जीवका भी विनाश हो जाना चाहिए । इसलिये सूत्रमें कही
गई अकपायता घटित नहीं होती है ?

समाधान—ज्ञान और दर्शनके विनाश होनेपर जीवका विनाश भले ही हो
जावे, क्योंकि, वे जीवके लक्षण हैं । किन्तु कपाय तो जीवका लक्षण नहीं है, क्योंकि,
कर्मजनित कपायको जीवका लक्षण माननेमें विरोध आता है । और न कपायोंका कर्मसे
उत्पन्न होना असिद्ध है, क्योंकि, कपायोंकी वृद्धि होनेपर जीवके लक्षणभूत ज्ञानकी
हानि अन्यथा बन नहीं सकती है । इसलिये कपायका कर्मसे उत्पन्न होना सिद्ध है ।
तथा गुण गुणान्तरका विरोधी नहीं होता, क्योंकि, अन्यत्र वेसा देखा नहीं जाता ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

इस प्रकार कपायमार्गणा समाप्त हुई ।

१ कपायाउवादेन कोधमानमायालोभनपायाणा $\times \times$ सामान्यवत् । स सि १, ८
२ $\times \times \times$ अकपायणी च सामान्यवत् । स सि १, ८ ३ प्रतिगु 'तदो शुक्कायच' इति पाठ ।

णाणानुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणाणीसु मिच्छा-
दिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ४५ ॥

कथं मिच्छादिट्ठिणाणस्स अण्णाणत्तं ? णाणकज्जाकरणादो । किं णाणकज्जं ?
णादत्थसद्वहणं । ण तं मिच्छादिट्ठिमिद्दि अत्थि । तदो णाणमेव अण्णाणं, अण्णाहा
जीवविणासप्यसंगा । अवगयदवधम्मणाइसु मिच्छादिट्ठिमिद्दि सद्वहणमुवलंभए चे ण,
अत्तागमपयत्थसद्वहणविरहियस्स दवधम्मणाइसु जहडसद्वहणविरोहा । ण च एस ववहारो
लोभे अप्पसिद्धो, पुत्तकज्जमज्जुणंते पुत्ते वि लोभे अपुत्तववहारदंसणादो । तिसु
अण्णाणसु गिरुद्धेसु सम्माभिच्छादिट्ठिभावो किण्ण परूविदो ? ण, तस्स सद्वहणासद्वहणेहि

ज्ञानमार्गणके अनुवादसे मत्तज्ञानी, श्रुताज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवोंमें
मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि भाव ओघके समान है ॥ ४५ ॥

शंका—मिथ्यादृष्टि जीवोंके ज्ञानको अज्ञानपना कैसे कहा ?

समाधान—स्यौकि, उनका ज्ञान ज्ञानका कार्य नहीं करता है ।

शंका—ज्ञानका कार्य क्या है ?

समाधान—जाने हुए पदार्थका श्रद्धान करना ज्ञानका कार्य है ।

इस प्रकारका ज्ञानकार्य मिथ्यादृष्टि जीवमें पाया नहीं जाता है । इसलिये उनके
ज्ञानको ही अज्ञान कहा है । (यहांपर अज्ञानका अर्थ ज्ञानका अभाव नहीं लेना चाहिए)
अन्यथा (ज्ञानरूप जीवके लक्षणका विनाश होनेसे लक्ष्यरूप) जीवके विनाशका प्रसंग
प्राप्त होगा ।

शंका—दयाधर्मेसे रहित जातियोंमें उत्पन्न हुए मिथ्यादृष्टि जीवमें तो श्रद्धान
पाया जाता है (फिर उसके ज्ञानको अज्ञान क्यों माना जाय) ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, आस, आगम और पदार्थके श्रद्धानसे रहित जीवके
दयाधर्म आदिमें यथार्थ श्रद्धानके होनेका विरोध है (अतएव उनका ज्ञान अज्ञान ही है) ।
ज्ञानका कार्य नहीं करने पर ज्ञानमें अज्ञानका व्यवहार लोकमें अप्रसिद्ध भी नहीं है,
क्योंकि, पुत्रकार्यको नहीं करनेवाले पुत्रमें भी लोकके भीतर अपुत्र कहनेका व्यवहार
देखा जाता है ।

शंका—तीनों अज्ञानोंको निरुद्ध अर्थात् आश्रय कर उनकी भावप्ररूपणा करते
हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका भाव क्यों नहीं बतलाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, श्रद्धान और अश्रद्धान, इन दोनोंसे एक साथ अनुविद्ध

१ ज्ञानानुवादेन मयज्ञानिश्रुताज्ञानिविभंगणाणिनां $\times \times$ सामान्यवत् । स सि १, ८

देहिं मि अकमेण अणुविद्रुम संजटासंजटो व्व पत्तज्जंतस्स णाणेषु अण्णाणेषु वा अत्यिचरिरोहा । मेयं सुगमं ।

आभिणिवोहिय-सुद-ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिपहुडि जाव खीणकसायवीदरागछुदुमत्था ओघं ॥ ४६ ॥

सुगममेदं, ओघादो मानं पडि भेदाभावा ।

मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदपहुडि जाव खीणकसायवीदराग-छुदुमत्था ओघं ॥ ४७ ॥

पदं पि सुगमं ।

केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं ॥ ४८ ॥

कुदो ? राइयभावं पडि भेदाभावा । सजोगो सि को भावो ? अणादिपारिणामिओ भावो । णोसत्तमिओ, मोहणीए अणुसंते वि जोगुवलंभा । ण खइओ, अणप्पसरूवस्स कम्माणं उण्णप्पत्तिनिरोहा । ण घादिकम्मोदयजणिओ, णट्टे वि घादिकम्मोदए केव-

होनेके कारण नयतामयतके समान भिन्नजातीयताको प्राप्त सम्यग्मिथ्यात्वका पांचों नानार्थ, जयता तीनों धनानोंमें अस्तित्व होनेका विरोध है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

आभिनिमोधिक्रजानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर क्षीणकसायवीतरागछद्वय गुणस्थान तत्र भाव ओघके समान हैं ॥ ४६ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, ज्ञानमार्गणामें ओघसे भावकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है । मनःपर्यायज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयतसे लेकर क्षीणकसायवीतरागछद्वय गुणस्थान तत्र भाव ओघके समान हैं ॥ ४७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली भाव ओघके समान है ॥ ४८ ॥

क्योंकि, क्षायािकभावके प्रति कोई भेद नहीं है ।

शंका—‘सयोग’ यह कौनसा भाव है ?

समाधान—‘सयोग’ यह अनादि पारिणामिक भाव है । इसका कारण यह है कि यह योग न तो ओपशमिक भाव है, क्योंकि, मोहनीयकर्मके उपशम नहीं होने पर भी योग पाया जाता है । न यह क्षायिक भाव है, क्योंकि, आत्मस्वरूपसे रहित योगकी कर्मोंके क्षयसे उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है । योग घातिकर्मोदय-जनित भी नहीं है,

१ ४४ x नति शुतामधिगम पयरेवल्लहानिना च सत्ताम्यवत् । स सि. १, ८.

लिप्पिह जोगुवलंभा । णो अघादिकम्मोदयजणिदो वि, संते वि अघादिकम्मोदए अजोगिम्हि जोगाणुवलंभा । ण सरीरणामकम्मोदयजणिदो वि, पोगगलविवाइयाणं जीवपरिफुट्ठणेहुउत्त-विरोहा । कम्मइयसरीरं ण पोगगलविवाइ, तदो पोगगलाणं वण्ण-रस-गंध-फास-संठाणा-गमणादीणमणुवलंभा । तदुप्पाइदो जोगो होहु चे ण, कम्मइयसरीरं पि पोगगलविवाइ चेव, सव्वकम्माणमासयत्तादो । कम्मइओदयविणट्ठसमए चेव जोगविणासंदसणादो कम्मइयसरीरजणिदो जोगो चे ण, अघाइकम्मोदयविणासाणंतं विणसंतंभविचत्तस पारिणामियस्स ओदइयत्तप्पसंगा । तदो सिद्धं जोगस्स पारिणामियत्तं । अधवा ओदइओ जोगो, सरीरणामकम्मोदयविणासाणंतं जोगविणासुवलंभा । ण च भवियत्तेण विउवचारे, कम्मसंबंधविरोहिणो तस्स कम्मजणिदत्तविरोहा । सेसं सुगमं ।

एव णाणसगणा समत्ता ।

क्योंकि, घातिकर्मोदयके नष्ट होने पर भी सयोगिकेवलीमें योगका सद्भाव पाया जाता है । न योग अघातिकर्मोदय-जनित भी है, क्योंकि, अघातिकर्मोदयके रहने पर भी अयोगिकेवलीमें योग नहीं पाया जाता । योग शरीरनामकर्मोदय-जनित भी नहीं है, क्योंकि, पुद्गलविपाकी प्रकृतियोंके जीव-परिस्पंदनका कारण होनेमें विरोध है ।

शंका—कर्मणशरीर पुद्गलविपाकी नहीं है, क्योंकि, उससे पुद्गलोंके वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श और संस्थान आदिका आगमन आदि नहीं पाया जाता है । इसलिए योगको कर्मणशरीरसे उत्पन्न होनेवाला मान लेना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सर्व कर्मोंका आश्रय होनेसे कर्मणशरीर भी पुद्गल-विपाकी ही है । इसका कारण यह है कि वह सर्व कर्मोंका आश्रय या आधार है ।

शंका—कर्मणशरीरके उदय विनष्ट होनेके समयमें ही योगका विनाश देखा जाता है । इसलिए योग कर्मणशरीर-जनित है, ऐसा मानना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यदि ऐसा माना जाय तो अघातिकर्मोदयके विनाश होनेके अनन्तर ही विनष्ट होनेवाले पारिणामिक भव्यत्वभावके भी औदयिकपनेका प्रसंग प्राप्त होगा ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचनसे योगके पारिणामिकरूपना सिद्ध हुआ । अथवा, ‘योग’ यह औदयिकभाव है, क्योंकि, शरीरनामकर्मके उदयका विनाश होनेके पश्चात् ही योगका विनाश पाया जाता है । और, ऐसा माननेपर भव्यत्वभावके साथ व्यभिचार भी नहीं आता है, क्योंकि, कर्मसम्वन्धके विरोधी पारिणामिकभावकी कर्मसे उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई ।

१ निरूपमोगमत्तयम् । त ए. २, ४४ । अन्ते समगत्तयम् । किं तत् ? कर्मणम् । इत्थियप्रगालिकया चन्ददीनापुणलविचरपमोगः । तदमावात्रिचसोगम् । स. सि. ३, ४४.

संज्ञमाणुवादेण संज्ञदेसु पमत्तसंज्ञदण्हडि जाव अजोगिकेवली ओधं ॥ ४९ ॥

सुगममेदं ।

सामाइयछेदेवद्वानसुद्धिसंज्ञदेसु पमत्तसंज्ञदण्हडि जाव आणि यहि ति ओधं ॥ ५० ॥

एदं पि सुगमं ।

परिहारसुद्धिसंज्ञदेसु पमत्त-अप्रमत्तसंज्ञदा ओधं ॥ ५१ ॥

कुदो ? खओवसमियं भावं पडि विसेसाभावा । पमत्तापमत्तसंज्ञदेसु अणो वि भावा संति, एत्थ ते किण्ण परूविदा ? ण, तेसिं पमत्तापमत्तसंज्ञमत्ताभावा । पमत्ता-पमत्तसंज्ञदणं भावेसु पुच्छिदेसु ण हि सम्मत्तादिभावानं परूवणा णाओववणोत्तिं ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंज्ञदेसु सुहुमसांपराइया उवसमा खवा ओधं ॥ ५२ ॥

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोमं प्रमत्तसंयतसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ४९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोमं प्रमत्तसंयतसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ५० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

परिहारशुद्धिसंयतोमं प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत ये भाव ओघके समान हैं ॥ ५१ ॥

क्योंकि, क्षायोपशमिक भावके प्रति दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है ।

शंका — प्रमत्त और अप्रमत्त संयत जीवोंमें अन्य भाव भी होते हैं, यहांपर वे क्यों नहीं कहे ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, वे भाव प्रमत्त और अप्रमत्त संयम होनेके कारण नहीं हैं । दूसरी बात यह है कि प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोमं भाव पूछनेपर सम्यक्त्व आदि भावोंकी प्ररूपणा करना न्याय सगत नहीं है ।

सूक्ष्मसांप्रसारिकशुद्धिसंयतोमं सूक्ष्मसांप्रसारिक उपशमक और क्षपक भाव ओघके समान हैं ॥ ५२ ॥

१ संयमावुवादेन सर्वेषां संयतानां $\times \times \times$ सामान्यवत् । स सि १, ८

२ प्रतिपु ' णाओववणो ' ति ' इति पाठ ।

उवसमगणसुवसमिओ भावो, खवगणं खइओ भावो ति उत्तं होदि ।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंज्ञदेसु चटुट्ठाणी ओधं ॥ ५३ ॥

सुगममेदं ।

संज्ञदासंज्ञदा ओधं ॥ ५४ ॥

एदं पि सुगमं ।

असंज्ञदेसु मिच्छादिट्ठिपहडि जाव असंज्ञदसम्मादिट्ठि ति ओधं ॥ ५५ ॥

सुगममेदं, पुवं परूविदत्तादो ।

एव संज्ञमगणा समत्ता ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि-अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिपहडि जाव खीणकसायीदरागछटुमत्ता ति ओधं ॥ ५६ ॥

उपशमकोंके औपशमिक भाव और क्षपकोंके क्षायिक भाव होता है, यह अर्थ सूत्रद्वारा कहा गया है ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोमं उपशान्तकषाय आदि चारों गुणस्थानवर्ती भाव ओघके समान हैं ॥ ५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संयतासंयत भाव ओघके समान है ॥ ५४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

असंयतोमं मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ५५ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, पहले प्ररूपण किया जा चुका है ।

इस प्रकार संयममार्गणा समाप्त हुई ।

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछट्ठस्य गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ५६ ॥

१ $\times \times \times$ संयतासंयतानां $\times \times \times$ सामान्यवत् । स सि १, ८

२ $\times \times \times$ असंयतानां च सामान्यवत् । स सि १, ८

३ दर्शनावुवादेन चक्षुदर्शनाचक्षुदर्शनावधिदर्शनैवत्वदर्शनिनां सामान्यवत् । स सि १, ८

द्वेष्टे ? मिच्छादिद्विप्लवृद्धिं स्त्रीणकसायपज्जंतस्यगुणद्व्याणां चक्षु-अचक्षु-
दंशणभिरद्वियणमणुलंभा ।

ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो ॥ ५७ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ ५८ ॥

पदाणि द्वे त्रि मुत्तारिण सुगमाणि ।

एवं दत्तमगमणा समत्ता ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिसयणील्लेस्सिसय काउलेस्सिएसु चटु-
ट्टाणी ओधं ॥ ५९ ॥

चटुहं टाणाणं समाहारो चटुट्टाणी । केण समाहारो ? एगलेस्साए । सेसं सुगमं ।

तेउलेस्सिसय-पमलेस्सिएसु मिच्छादिद्विप्लवृद्धिं जाव अपमत्त-
संजदा त्ति ओधं ॥ ६० ॥

एतदं सुगमं ।

एतदं, मिथ्यादृष्टिसे लेकर दर्शनरूपाय पर्यंत कोई गुणस्थान चक्षुदर्शन और
अचक्षुदर्शननाले जीवोंसे रहित नहीं पाया जाता है ।

अग्निदर्शनी जीवोंके भाव अवधिज्ञानियोंके भावोंके समान हैं ॥ ५७ ॥

केवलदर्शनी जीवोंके भाव केवलज्ञानियोंके भावोंके समान हैं ॥ ५८ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई ।

लेस्सामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या बालोंमें
आदिके चार गुणस्थानत्रयी भाव ओषके समान हैं ॥ ५९ ॥

चार स्थानोंके नमाहारको चतु-स्थानी कहते हैं ।

शंका—चारों गुणस्थानोंका समाहार किस अपेक्षासे है ?

यमाधान—एक लेश्यानी अपेक्षासे है, अर्थात् आदिके चारों गुणस्थानोंमें एकसी
लेश्या पाई जाती है ।

दोम सूत्रार्थ सुगम है ।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्या बालोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अग्रमत्तसंयत गुणस्थान
तक भाव ओषके समान हैं ॥ ६० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ लेश्यादर्शन परलेश्यानामलेश्यानां च सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिद्विप्लवृद्धिं जाव सजोगिकेवलं त्ति
ओधं ॥ ६१ ॥

सुगममेदं ।

एवं लेस्सामगमणा समत्ता ।

भविष्याणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिद्विप्लवृद्धिं जाव अजोगि-
केवलं त्ति ओधं ॥ ६२ ॥

कुदो ? एत्थतणगुणद्व्याणां ओघगुणद्व्याणोहिंतो भवियत्तं षडि भेदाभावा ।

अभवसिद्धिय त्ति को भावो, पारिणाभिओ भावो ॥ ६३ ॥

कुदो ? कम्मणसुदएण उवसमेण सएण सओवसमेण वा अभवियत्ताणप्पत्तीदो ।
भवियत्तस्स त्रि पारिणाभिओ चेय भावो, कम्मणसुदय-उवसम-खय-खओवसमेहि भविय-
त्ताणुप्पत्तीदो । गुणद्व्याणस्स भावमभणिय मगगणद्व्याणभावं परूवत्तस्स कोभिप्पाओ ?

शुक्कलेश्यानालोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर त्रयोविक्रवली गुणस्थान तक भाव ओषके
समान हैं ॥ ६१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार लेश्यामार्गणा समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोविक्रवली
गुणस्थान तक भाव ओषके समान हैं ॥ ६२ ॥

क्योंकि, भव्यमार्गणासम्बन्धी गुणस्थानोंका ओघ गुणस्थानोंसे भव्यत्व नामक
पारिणामिकभावके प्रति कोई भेद नहीं है ।

अभव्यसिद्धिक यह कौनसा भाव है ? पारिणामिक भाव है ॥ ६३ ॥

क्योंकि, कर्मोंके उदयसे, उपशमसे, क्षयसे, अथवा क्षयोपशमसे अभव्यत्व भाव
उत्पन्न नहीं होता है । इसी प्रकार भव्यत्व भी पारिणामिक भाव ही है, क्योंकि, कर्मोंके
उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशमसे भव्यत्व भाव उत्पन्न नहीं होता ।

शंका—यहांपर गुणस्थानके भावको न कह कर मार्गणास्थानसम्बन्धी भावका
प्ररूपण करते हुए आचार्यका क्या अभिप्राय है ?

१ मव्यानुवादेन मव्यानां भिष्यादृष्टयायोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ अव्ययानां पारिणामिको भावः । स. सि. १, ८.

गुणद्वयभावो अउत्तो वि णाणिज्जओ । अभवियत्तं पुण उवेदसमेवस्वेदं, पुब्बमपरू-
विदसरूचत्तादो । तेण मग्गणाभावो उत्तो ति ।

एव भवियमग्गणा समत्ता ।

समत्ताणुवेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिण्हडि जाव
अजोगिकेवलि ति ओघं ॥ ६४ ॥

सुगममेदं ।

खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठि ति को भावो, खइओ
भावो ॥ ६५ ॥

कुदो ? दंसणमोहणीयस्स णिम्मूलक्खएणुप्पणसम्मत्तादो ।

खइयं सम्मत्तं ॥ ६६ ॥

खइयसम्मादिट्ठीसु सम्मत्तं खइयं चेव होदि ति अनुत्तसिद्धीदो णेदं सुत्तमादवे-
दव्वं ? ण एस दोसो । कुदो ? ण ताव खइयसम्मादिट्ठी सण्णा खइयस्स सम्मत्तस्स

समाधान—गुणस्थानसम्बन्धी भाव तो विना कहे भी जाना जाता है । किन्तु
अभव्यत्व (कौनसा भाव है यह) उपदेशकी अपेक्षा रखता है, क्योंकि, उसके स्वरूपका
पहले प्ररूपण नहीं किया गया है । इसलिए यहांपर (गुणस्थानका भाव न कह कर)
मार्गणासम्बन्धी भाव कहा है ।

इस प्रकार भव्यमार्गणा समान्य हुई ।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगि-
केवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ६४ ॥
यह सूत्र सुगम है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? क्षायिक भाव
है ॥ ६५ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीयकर्मके निर्मूल क्षयसे क्षायिकसम्यक्त्व उत्पन्न होता है ।

उक्त जीवोंके क्षायिक सम्यक्त्व होता है ॥ ६६ ॥

शंका—क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें सम्यग्दर्शन क्षायिक ही होता है, यह यात अनुक्त-
सिद्ध है, इसलिए इस सूत्रका आरम्भ नहीं करना चाहिए ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि यह संज्ञा क्षायिक-

१ सम्यक्त्वानुवादेन क्षापिक्तसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टेः क्षायिको भाव । स. सि १, ८.

२ क्षायिक सम्यक्त्वम् । स. सि १, ८

अत्थित्तं गमयदि, तवण-भक्खरादिणामस्स अणुअट्ठस्स वि उवलंभा । ण च अण्णं किंचि
खइयसम्मत्तस्स अत्थित्तमिह चिण्हमत्थि । तदो खइयसम्मादिट्ठिस्स खइयं चेव सम्मत्तं
होदि ति जाणाविदं । अवरं च ण सव्वे सिस्सा उपपण्णा चेव, किंतु अउप्पण्णा
वि अत्थि । तेहि खइयसम्मादिट्ठीणं किंखुवसमसम्मत्तं, किं खइयसम्मत्तं, किं वेदगसम्मत्तं
होदि ति पुच्छेदे एदस्स सुत्तस्स अवयारो जादो, खइयसम्मादिट्ठीणं खइयं चेव सम्मत्तं
होदि, ण सेसदोसम्मत्ताणि ति जाणावण्हं अपुव्वकरणक्खवयाणं खइयभावाणं खइय-
चरित्तसेव दंसणमोहखवयाणं पि खइयभावाणं तस्सबंधेण वेदयसम्मत्तोदए संते वि
खइयसम्मत्तस्स अत्थित्तप्पसंगे तप्पडिसेहण्डं वा ।

ओदइएण भवेण पुणो असंजदो ॥ ६७ ॥

सुगममेदं ।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ति को भावो, खओवसमिओ
भावो ॥ ६८ ॥

सम्यक्त्वके अस्तित्वका ज्ञान नहीं कराती है । इसका कारण यह है लोकमें तपन, भास्कर
आदि अनन्वर्थ (अर्थयूत्य या रूढ) नाम भी पाये जाते हैं । इसके अतिरिक्त अन्य कोई
चिन्ह क्षायिकसम्यक्त्वके अस्तित्वका है नहीं । इसलिए क्षायिकसम्यग्दृष्टिके क्षायिक
सम्यक्त्व ही होता है, यह बात इस सूत्रसे स्थापित की गई है । दूसरी बात यह भी है कि
सभी शिष्य व्युत्पन्न नहीं होते, किन्तु कुछ अव्युत्पन्न भी होते हैं । उनके द्वारा क्षायिक-
सम्यग्दृष्टियोंके क्या उपशमसम्यक्त्व है, किंवा क्षायिकसम्यक्त्व है, किंवा वेदकसम्यक्त्व
होता है, ऐसा पूछने पर क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके क्षायिक ही सम्यक्त्व होता है, शेष
दो सम्यक्त्व नहीं होते हैं, इस बातके जतलानेके लिए, अथवा क्षायिकभाववाले अपूर्व-
करण गुणस्थानवर्ती क्षपकोंके क्षायिक चारित्रिके समान क्षायिकभाववाले भी जीवोंके
दर्शनमोहनीयका क्षपण करते हुए उसके सम्बन्धसे वेदकसम्यक्त्वप्रकृतिके उदय रहने
पर भी क्षायिकसम्यक्त्वके अस्तित्वका प्रसंग प्राप्त होनेपर उसका प्रतिषेध करनेके लिए
इस सूत्रका अवतार हुआ है ।

किन्तु क्षायिकसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ ६७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत यह कौनसा
भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ६८ ॥

१ असंयतत्वमौदयिकेन भावेन । स. सि १, ८

२ संयतासंयतप्रमत्तप्रमत्तसंयतानां क्षायोपशमिको भाव । स. सि १, ८

कृदो ? चारित्तारणकृमोदए गंते नि जीवसहचरित्तेगदेसस्स संजमासंजम-
पमतअप्पमतसंजमम् आनिग्गामस्सुवलंभा ।

खइयं सम्मत्तं ॥ ६९ ॥

सुगममेदं ।

चटुण्हमुवसमा ति को भावो, ओवसमिओ भावो ॥ ७० ॥
मोहणीयस्सुवमेणुप्पण्णचरित्तादो, मोहोवसमण्हदुचारित्तसमणिदत्तादो य ।

खइयं सम्मत्तं ॥ ७१ ॥

पारददंमणोहणीयस्सुवणो कदकरणिज्जो वा उवसमसेडिं ण चडदि ति जाणा-
यण्डुमेदं मुत्तं भणिटं । सेमं सुगमं ।

चटुण्हं खवा सजोगिकेवली अजोगिकेवलि ति को भावो,
खइओ भावो ॥ ७२ ॥

न्यायिकि, चारित्रावरणकर्मके उदय होने पर भी जीवके स्वभावभूत चारित्रके
एक देशरूप संस्मागयम, प्रगतसयम और अग्रमतसंयमका (उक्त जीवोंके क्रमशः)
आभिर्भात पाया जाता है ।

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन क्षायिक ही होता है ॥ ६९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानोंके क्षायिकसम्यग्दृष्टि उपशामक यह कौनसा
भाव है ? औपशामिक भाव है ॥ ७० ॥

न्यायिकि, उपशान्तकपायकं मोहनीयकर्मके उपशमसे उत्पन्न हुआ चारित्र पाया
जानेसे और शेष तीन उपशामकोंके मोहोपशमके कारणभूत चारित्रसे समन्वित होनेसे
औपशामिकभाव पाया जाता है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि चारों उपशामकोंके सम्यग्दर्शन क्षायिक ही होता है ॥ ७१ ॥
यदान्तमोहनीयकर्मके क्षरणका प्रारम्भ करनेवाला जीव, अथवा कृतकृत्यवेदक
सम्यग्दृष्टि जीव, उपशामधेणीपर नहीं चढ़ता है, इस बातका ध्यान करनेके लिए यह सूत्र
कहा गया है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि चारों गुणस्थानोंके क्षपक, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली
यह कौनसा भाव है ? क्षायिक भाव है ॥ ७२ ॥

१ साधितं सम्यक्त्वम् । स सि. १, ८.

२ गुणोपशममगमोपचरित्तो मातः । स. सि. १, ८.

३ शान्तिक गम्यत्वम् । य नि १, ८.

४ क्षेपात्तं गमन्यत्वम् । स सि. १, ८

कृदो ? मोहणीयस्स सुवण्हदुअपुव्वसणिणदचारित्तसमणिदत्तादो मोहक्सएणु-
प्पण्णचारित्तादो वादिकखएणुप्पण्णवकेवलल्लीहिंतो ।

खइयं सम्मत्तं ॥ ७३ ॥

सुगममेदं ।

वेदयसम्मादिट्ठिसु असंजदसम्मादिट्ठि ति को भावो, खओव-
समिओ भावो ॥ ७४ ॥

सुगममेदं ।

खओवसमियं सम्मत्तं ॥ ७५ ॥

ओवसमि असंजदसम्मादिट्ठिस्स तिणिण भावा सामणेण परुविदा, एदं सम्मत्त-
मोवसमियं सइयं खओवसमियं वेत्ति ण परुविदं । संपहि सम्मत्तमग्गणाए एदं सम्मत्त-
मोवसमियं सइयं खओवसमियं वेत्ति एदेहि सुत्तेहि जाणाविदं । सेसं सुगमं ।

न्यायिकि, अपूर्वकरण आदि तीन क्षपकोंका मोहनीयकर्मके क्षपणके कारणभूत
अपूर्वसंज्ञावाले चारित्रसे समन्वित होनेके कारण, क्षीणकपायवीतरागछद्मस्थके मोहक्षयसे
उत्पन्न हुआ चारित्र होनेके कारण, तथा सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीके धातिया
कर्मोंका क्षय हो जानेसे उत्पन्न नन केवललब्धियोंकी अपेक्षा क्षायिक भाव पाया जाता है ।

चारों क्षपक, सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीके सम्यग्दर्शन क्षायिक ही होता
है ॥ ७३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? क्षायोपशामिक
भाव है ॥ ७४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके सम्यग्दर्शन क्षायोपशामिक होता है ॥ ७५ ॥

ओद्यप्ररूपणोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके सामान्यसे तीन भाव कहे हैं, किन्तु
उनका यह सम्यग्दर्शन औपशामिक है, या क्षायिक है, किंवा क्षायोपशामिक है, यह प्ररूपण
नहीं किया है । अब सम्यन्तत्वमार्गणोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका यह सम्यग्दर्शन
औपशामिकसम्यक्त्वियोंके औपशामिक होता है, क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके क्षायिक होता है
और वेदकसम्यग्दृष्टियोंके क्षायोपशामिक होता है, यह बात इन सूत्रोंसे सूचित की गई
है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

१ क्षायोपशामिसम्यग्दृष्टि अक्षयतसम्यग्दृष्टे क्षायोपशामिको मातः । स. सि. १, ८.

२ क्षायोपशामिक सम्यक्त्वम् । स. सि. १, ८.

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो^१ ॥ ७६ ॥

अवगयत्थमेदं ।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ति को भावो, खओवसमिओ भावो^२ ॥ ७७ ॥

णादट्ठमेयं ।

खओवसमियं सम्मत्तं^३ ॥ ७८ ॥

कुदो ? दंसणमोहोदए संते वि जीवगुणीभूदसदहणस्स उप्पत्तीए उवलंभा ।

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठि ति को भावो, उवसमिओ भावो^४ ॥ ७९ ॥

कुदो ? दंसणमोहवसेमणुप्पणसम्मत्तादो ।

उवसामियं सम्मत्तं^५ ॥ ८० ॥

किन्तु वेदकसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ ७६ ॥

इस सूत्रका अर्थ जाना हुआ है ।

वेदकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अग्रमत्तसंयत यह कौनसा भाव है ? क्षायोपशमिकभाव है ॥ ७७ ॥

इस सूत्रका अर्थ ज्ञात है ।

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन क्षायोपशमिक होता है ॥ ७८ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीयके (अंगभूत सम्यक्त्वप्रकृतिके) उदय रहने पर भी जीवके गुणस्वरूप श्रद्धानकी उत्पत्ति पाई जाती है ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव है ॥ ७९ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टियोंका सम्यक्त्व दर्शनमोहनीयकर्मके उपशमसे उत्पन्न हुआ है ।

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन औपशमिक होता है ॥ ८० ॥

^१ अमयत पुनरौदयिनेन भावेन । स सि १, ८

^२ सयतासयतप्रमत्तप्रमत्तसयताना क्षायोपशमिको भाव । स सि १, ८,

^३ क्षायोपशमिक सम्यक्त्वम् । स सि १, ८

^४ औपशमिसम्यग्दृष्टिषु असयतसम्यग्दृष्टेरौपशमिको भाव । स सि १, ८

^५ औपशमिक सम्यक्त्वम् । स सि १, ८

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो^१ ॥ ८१ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ति को भावो, खओवसमिओ भावो^२ ॥ ८२ ॥

सुगममेदं ।

उवसमियं सम्मत्तं^३ ॥ ८३ ॥

एदं वि सुगमं ।

चटुण्हसुवसमा ति को भावो, उवसमिओ भावो^४ ॥ ८४ ॥

उवसमियं सम्मत्तं^५ ॥ ८५ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी ओव^६ ॥ ८६ ॥

किन्तु उपशमसम्यक्त्वी असंयतसम्यग्दृष्टि जीविका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ ८१ ॥

ये दोनो ही सूत्र सुगम हैं ।

उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अग्रमत्तसंयत यह कौनसा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ८२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन औपशमिक होता है ॥ ८३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानोंके उपशमसम्यग्दृष्टि उपशमिक यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव है ॥ ८४ ॥

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन औपशमिक होता है ॥ ८५ ॥

ये दोनो ही सूत्र सुगम हैं ।

सासादनसम्यग्दृष्टि भाव ओवके समान है ॥ ८६ ॥

^१ असयत पुनरौदयिनेन भावेन । स सि १, ८

^२ सयतासयतप्रमत्तप्रमत्तसयताना क्षायोपशमिको भावः । स सि १, ८

^३ औपशमिक सम्यक्त्वम् । स सि १, ८

^४ चतुर्ण्युपशमकानामौपशमिको भावः । स सि १, ८

^५ आपशमिक सम्यक्त्वम् । स सि १, ८ ^६ सासादनसम्यग्दृष्टे पाणिणिको भाव । स सि १, ८

सम्मामिच्छादिद्वौ ओषं ॥ ८७ ॥

मिच्छादिही लोभं ॥ ८८ ॥

निष्णिञि चि मुत्ताणि अवगयत्थाणि ।

एतु सम्प्रतमगणा समत्ता ।

सणिगणुवदेण सणीसु मिच्छादिङ्गिण्हुडि जाव खणिक्साय-
वीदरागच्छमत्था ति ओवं ॥ ८९ ॥

सुगामयेदं ।

असंख्येति को भावो, ओदृष्टो भावो ॥ ९० ॥

सुदो ? गोत्रदियानरगस्स सब्वादिफइयाणमुदएण असणित्तुप्पचीदो । असणि-
गुणट्ठणभानो किण्ण परुविदो ? ण, उयडेसमंतरेण तदवगमादो ।

७३ सृष्टिमगणा समस्ता ।

सम्यग्मिश्रयादृष्टि भाव ओघके समान है ॥ ८७ ॥

मिथ्याग्रष्टि भाव ओवर्के समान है ॥ ८८ ॥

इन तीनों ही सूत्रोंका अर्थ बात है।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

मंतिमार्गणाङ्गे अनुवादसे संज्ञियेमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणक्रपायवीतराग-
छत्रम्य तक मात्र ओघके समान हैं ॥ ८९ ॥

या मूर मृगन ह ।

जंगली यह कौनसा भाव है ? औदयिक भाव है ॥ ९० ॥

‘ययौकि, नोगनिद्रियावरणकर्मके सर्वघाती स्पर्धभौके उदयसे असंशित्व भाव उत्पन्न होता है।

गंगा—याहांग असंदी जीवोंके गुणस्थानसम्यन्धी भावको फ्यों नहीं चतलाया ? समाधान—नहीं, फ्योंकि, उपदेशके विना ही उसका ज्ञान हो जाता है ।

इम प्रकार संक्षीमार्गेणा समाप्त हुई ।

१ मन्मथनिष्पद्यते. ज्ञायोगपशुनिर्गो भावः । त मि १, ८

७ निष्पाद्येर्गैरिति भा० । य नि १, ८. ३ सप्तनुवादेन सक्तीनां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

४ अ। सिनमोडिपो भाग। स. नि १, ८. ५ तदुभयव्यपदेशतद्वितानां सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

ಆತ್ಮವಿಶ್ವಾಸ



सिरि-भगवंत-पुष्पदन्त-भूदचलि-पणीन्द्रो

छवखंडागमो

सिरि-धीरसेणादरिय-विरड्य-धचला-दीक्षा-समणिपेदो

तस्स

पठमखंडे जीवट्टाणे

अप्पावहुगाणुगमो

केवलणाणुजोडयलोयलोए जिणे णमंसिचा ।

अण्णहुआणिओअं जहोवएसं पस्सेमो ॥

अप्पावहुआणुगमेण दुविहो णिहेसो, ओधेण आदेसेण यं ॥१॥

तत्तय णाम-ट्टाणा-द्वय-भावेण अप्पावहुअसदो णामप्पा-
नहुअं । एदम्हादो एदम्स बहुत्तमपत्तं वा एदमिदि एयत्तज्जारेवेण इविदं ठवणप्पा-
नहुअं । दव्यप्पावहुअं दुविहं आगम-णोआगमभेएण । अप्पाहुअपाहुडजाणओ अणुवजुओ

केवलजानके द्वारा लोक ओर अलोकको प्रकाशित करनेवाले श्री जिनेन्द्र देवोंको
नमस्कार करके जिस प्रकारसे उपदेश प्राप्त हुआ है, उसके अनुसार अल्पबहुत्व अनुयोग-
पारता प्रकरण करते हैं ॥

अल्पाहुत्तानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओवनिर्देश और आदेश-
निर्देश ॥ १ ॥

नाम, स्थापना इव्य ओर भावके भेदसे अल्पबहुत्व चार प्रकारका है । उनमेंसे
अन्यत्राद शब्द नामअल्पबहुत्व है । यह इससे बहुत है, यद्यपि यह इससे अल्प है,
इस प्रकार एतन्नेन अच्यारोपने स्थापना करना स्थापनाअल्पबहुत्व है । इव्यअल्प-
बहुत्व आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है । जो अल्पबहुत्व-विषयक प्राश्रुतको
जाननेवाला है, परंतु वर्तमानमें उसके उपयोगसे रहित है उसे आगमद्रव्य अल्पबहुत्व

१ अल्पबहुत्तानुगमे । तत् त्रित्ति तान्नेन विषेण च । त ति १, ८

आगमद्रव्यप्पावहुअं । नोआगमद्रव्यप्पावहुअं ति विहं जाणुअसरीर-भवि-तव्वदिरित्तभेदा ।
तत्तय जाणुअसरीरं भवि-वड्डमाण-समुज्झादमिदि ति विहमवि अवगयत्थं । भवियं भविस्स-
काले अप्पावहुअपाहुडजाणओ । तव्वदिरित्तअप्पावहुअं ति विहं सचित्तमचित्तं मिस्समिदि ।
जीवद्रव्यप्पावहुअं सचित्तं । सेसद्रव्यप्पावहुअमचित्तं । दोणं पि अप्पावहुअं मिस्सं ।
भावप्पावहुअं दुविहं आगम-णोआगमभेएण । अप्पावहुअपाहुडजाणओ उवजुत्तो आगम-
भावप्पावहुअं । णाण-दंसणाणुभाग-जोगादिविसयं णोआगमभावप्पावहुअं ।

एदेसु अप्पावहुएसु केण पयदं ? सचित्तद्रव्यप्पावहुएण पयदं । किमप्पावहुअं ?
सखाधम्मो, एदम्हादो एदं ति गुणं चट्टुणमिदि दुद्धिगेज्झो । कस्सप्पावहुअं ? जीव-
द्रव्यस्स, धम्मवदिरित्तसंखाधम्मणुवलंभा । केणप्पावहुअं ? पाणिमिएण भवेण ।

कहते हैं । नोआगमद्रव्यअल्पबहुत्व शायकशरीर, भावी और तदव्यतिरिक्तके भेदसे तीन
प्रकारका है । उनमेंसे भावी, वर्तमान और अतीत, इन तीनों ही प्रकारके शायकशरीरका
अर्थ जाना जा चुका है । जो भविष्यकालमें अल्पबहुत्व प्राप्तका जाननेवाला होगा, उसे
भावी नोआगमद्रव्य अल्पबहुत्वनिक्षेप कहते हैं । तदव्यतिरिक्त अल्पबहुत्व तीन प्रकारका
है—सचित्त, अचित्त और मिश्र । जीवद्रव्य विषयक अल्पबहुत्व सचित्त है, शेष द्रव्य-
विषयक अल्पबहुत्व अचित्त है, और इन दोनोंका अल्पबहुत्व मिश्र है । आगम और
नोआगमके भेदसे भाव-अल्पबहुत्व दो प्रकारका है । जो अल्पबहुत्व-प्राश्रुतका जानने-
वाला है ओर वर्तमानमें उसके उपयोगसे युक्त है उसे आगमभाव अल्पबहुत्व कहते हैं ।
आत्माके ज्ञान और दर्शनको, तथा पुद्गलकर्मोंके अनुभाग और योगादिको विषय करने-
वाला नोआगमभाव अल्पबहुत्व है ।

शंका—इन अल्पबहुत्वोंमेंसे प्रकृतमें किससे प्रयोजन है ?

समाधान—प्रकृतमें सचित्त द्रव्यके अल्पबहुत्वसे प्रयोजन है ।

(अब निर्देश, स्वामित्वादि प्रसिद्ध छह अनुयोगद्वारासे अल्पबहुत्वका निर्णय
क्रिया जाता है ।)

शंका—अल्पबहुत्व क्या है ?

समाधान—यह उससे तिगुणा है, अथवा चतुर्गुणा है, इस प्रकार बुद्धिके द्वारा
ग्राहण करने योग्य संख्याके धर्मको अल्पबहुत्व कहते हैं ।

शंका—अल्पबहुत्व किसके होता है, अर्थात् अल्पबहुत्वका स्वामी कौन है ?

समाधान—जीवद्रव्यके अल्पबहुत्व होता है, अर्थात् जीवद्रव्य उसका स्वामी है,
पर्यंकि, धर्माको छोड़कर संख्याधर्म पृथक् नहीं पाया जाता ।

शंका—अल्पबहुत्व किससे होता है, अर्थात् उसका साधन क्या है ?

समाधान—अल्पबहुत्व पारिणामिक भावसे होता है ।

कथप्पावहुअं ? जीवदन्वे । केवचिरमप्पावहुअं ? अणादि-अपज्जवसिदं । कुदो ? सव्वेसिं गुणद्वान्णमेदेण पमाणेण सव्वकालमवद्वान्णादो । कइविहमप्पावहुअं ? मग्गणभेयभिण्ण-गुणद्वान्णमेत्तं ।

अप्यं च बहुअं च अप्पावहुआणि । तेसिमगुणमो अप्पावहुआणुगमो । तेण अप्पावहुआणुगमेण गिहेसो दुनिहो हेदि ओघो ओदेसो ति । संगहिदवयणकलावो द्ववट्टियणिंघणो ओघो गाम । असंगहिदवयणकलाओ पुब्बिच्छत्थं वयणविंघो पज्जव-द्वियणिविंघो ओदेसो गाम ।

ओघेण तिसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवां ॥ २ ॥

तिसु अद्वासु ति वयणं चत्तारि अद्वाओ पडिसेहड्डं । उवसमा ति वयणं खवया-दिपडिसेहफलं । पवेसणेण ति वयणं संचयपडिसेहफलं । तुल्ला ति वयणेण विसरिस-च-पडिसेहो कदो । आदिमसु तिसु गुणद्वान्णसु उवसामया पवेसणेण तुल्ला सरिसा । कुदो ?

शंका—अल्पवहुत्व किसमें होता है, अर्थात् उसका अधिकरण क्या है ?

समाधान—जीवद्रव्यमें, अर्थात् जीवद्रव्य अल्पवहुत्वका अधिकरण है ।

शंका—अल्पवहुत्व कितने समय तक होता है ?

समाधान—अल्पवहुत्व अनादि और अनन्त है, क्योंकि, सभी गुणस्थानोंका इसी प्रमाणसे सर्वकाल अवस्थान रहता है ।

शंका—अल्पवहुत्व कितने प्रकारका है ?

समाधान—मार्गणाओंके भेदसे गुणस्थानोंके जितने भेद होते हैं, उतने प्रकारका अल्पवहुत्व होता है ।

अल्प और बहुत्वको अर्थात् हीनता और अधिकताको अल्पवहुत्व कहते हैं । उनका अनुगम अल्पवहुत्वानुगम है । उससे अर्थात् अल्पवहुत्वानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । जिसमें सम्पूर्ण वचन-कलाप संगृहीत है, और जो द्रव्यार्थिकनय-निमित्तक है, वह ओघनिर्देश है । जिसमें सम्पूर्ण वचन-कलाप संगृहीत नहीं है, जो पूर्वीक अर्थवयव अर्थात् ओघानुगममें वतलाये गये भेदोंके आश्रित है और जो पर्यायार्थिकनय-निमित्तक है वह आदेशनिर्देश है ।

ओघनिर्देशसे अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा परस्पर तुल्य हैं, तथा अन्य सब गुणस्थानोंके प्रमाणसे अल्प हैं ॥ २ ॥

‘तीनों गुणस्थानोंमें’ यह वचन चार उपशामक गुणस्थानोंके प्रतिषेध करनेके लिए दिया है । ‘उपशामक’ यह वचन क्षपकादिके प्रतिषेधके लिए दिया है । ‘प्रवेशकी अपेक्षा’ इस वचनका फल संचयका प्रतिषेध है । ‘तुल्य’ इस वचनसे विसदृशताका प्रतिषेध किया है । श्रेणीसम्बन्धी आदिके तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी

१ प्रतिपु ‘पुब्बिच्छत्ता’ इति पाठ । मज्झिमे तु स्वीकृतपाठ ।

२ सामान्येन तावत् तय उपशामकाः सर्वत स्तोत्रा स्वगुणस्थानकालेषु प्रवेगेन तुल्यमस्या । स सि १, ८

एआदिचउण्णमेत्तजीवाण पनेसं पडि पडिसेहाभावा । ण चं सव्वद्वं तिसु उवसामगेषु पविस्तंतजीवाहि सरिसत्तणियमो, संभवं पडुच्च सरिसत्तउचीदो । एदेसिं संचओ सरिसो असरिसो चि वा क्रिण्ण परूविदो ? ण एम दोसो, पवेससारिच्छेण तेसिं संचयसारिच्छस्स वि अवगमादो । पविस्समाणजीवाणं विसरिससे संते संचयस्स विसरिसत्तं, अण्णहा दिट्ठविरोहादो । अणुत्तादिअद्वानं थोव-बहुत्तादो विसरिसत्तं संचयस्स क्रिण्ण होदि ति पुच्छिदे ण हेदि, तिण्हसुवसामगणमद्वाहिंतो उक्कस्सपवेसंतरस्स बहुत्तुवेसादो । तम्हा तिण्हं संचओ वि सरिसो चेय । थोवा उवरि उच्चमाणगुणद्वान्ण सख पेक्खिय थोवा चि भणिदा ।

अपेक्षा तुल्य अर्थात् सदृश होते हैं, क्योंकि, एकसे लेकर चौपन मात्र जीवोंके प्रवेशके प्रति कोई प्रतिषेध नहीं है । किन्तु सर्वकाल तीनों उपशामकोंमें प्रवेश करनेवाले जीवोंकी अपेक्षा सदृशताका नियम नहीं है, क्योंकि, संभावनाकी अपेक्षा सदृशताका कथन किया गया है ।

शंका—इन तीनों उपशामकोंका संचय सदृश होता है, या असदृश होता है, इस बातका प्ररूपण क्यों नहीं किया ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, प्रवेशकी सदृशतासे उनके संचयकी सदृशताका भी ज्ञान हो जाता है । प्रविश्यमान जीवोंकी विसदृशता होने पर ही संचयकी विसदृशता होती है, यदि ऐसा न माना जाय तो प्रत्यक्षसे विरोध आता है ।

शंका—अपूर्वकरण आदिके कालोंमें परस्पर अल्पवहुत्व होनेसे संचयके विसदृशता क्यों नहीं हो जाती है ?

समाधान—ऐसी आशंकापर आचार्य उत्तर देते हैं कि अपूर्वकरण आदिके कालके हीनाधिक होनेसे संचयके विसदृशता नहीं होती है, क्योंकि, तीनों उपशामकोंके कालोंसे उत्कृष्ट प्रवेशान्तरका काल बहुत है ऐसा उपदेश पाया जाता है । इसलिये तीनोंका संचय भी सदृश ही होता है ।

विशेषार्थ—यहां पर शंकाकारने यह शंका उठाई है कि जब अपूर्वकरण आदि गुणस्थानोंका काल हीनाधिक है, अर्थात् अपूर्वकरणका जितना काल है, उससे संख्यात-गुणा हीन अनित्युत्तिकरणका काल है और उससे संख्यातगुणा हीन सूक्ष्मसाम्परायका काल है, तब इन गुणस्थानोंमें संचित होनेवाली जीवराशिका प्रमाण भी हीनाधिक ही होना चाहिए, सदृश नहीं होना चाहिए ? इसके समाधानमें यह कहा गया है कि तीनों उपशामकोंके कालोंसे उत्कृष्ट प्रवेशान्तरके बहुत होनेका उपदेश पाया जाता है । इसका अभिप्राय यह है कि यद्यपि अपूर्वकरण आदि गुणस्थानोंका काल हीनाधिक है, तथापि वह प्रत्येक अन्तर्मुहूर्त या असंख्यात समयप्रमाण है । किन्तु इन गुणस्थानोंमें प्रवेश कर संचित होनेवाले जीव संख्यात अर्थात् उपशामकोंके प्रत्येक गुणस्थानमें अधिकसे अधिक तीन

१ प्रतिपु ‘पडिसेहमात्राण च’ इति पाठ ।

२ अतिपु ‘णण्णहा’ इति पाठ ।

उपसंतकसायवीदरागछदुमत्या तत्तिया चेय' ॥ ३ ॥

पुथगुनारंभो हिमदो ? उरगतकसायस्य कयाउवसाभगणं च पचामचीए
अभासस्य मंदमणकलो । जेहि पचामची अनिय तेभिमेगजोगो, इदरेमिं भिणजेगो
तेदि ति गेरेण जणादिं ।

स्वा संखेजगुणां ॥ ४ ॥

करो ? उगामगुणद्वणमुक्कस्सेण पविस्समाणचउवणजिमेहिंतो खवगेगुण-

गो चार (३०४) आर क्षपत्तथेणिके प्रत्येक गुणस्थानमें अधिकसे अधिक छह सो आठ
(२०८) ही होते हैं । यदि सर्वान्तर्य प्रमाणकी भी अपेक्षासे एक समयमें एक ही जीवका
प्रवेश माना जाय, तो भी प्रत्येक गुणस्थानके प्रवेशकालके समय संख्यात अर्थात्
उपशमधेर्णिके प्रत्येक गुणस्थानमें अधिकसे अधिक तीन सो चार और क्षपत्तथेणिके
प्रत्येक गुणस्थानमें अधिकसे अधिक छह सो आठ ही होंगे । यहाँ यह स्मरण रखना
चाहिए कि उपशम या क्षपत्तथेणीमें निरन्तर प्रवेश करनेका सर्वोत्कृष्ट काल आठ समय
ही है । इससे ऊपर जितना भी प्रवेशकाल है, वह सब सान्तर ही है । इससे यह अर्थ
निरकृता है कि अपूर्वकरणदि गुणस्थानोंमें प्रवेशान्तर अर्थात् जीवोंके प्रवेश नहीं
करनेका काल अनन्यत नमयप्रमाण है । चूँकि, सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानसे अतिवृत्ति-
करणका काल संख्यातगुणा है इसलिए उसके प्रवेशान्तरका उत्कृष्ट काल भी संख्यात-
गुणा ही होगा । इसी प्रकार चूँकि अतिवृत्तिकरणके कालसे अपूर्वकरणका काल संख्यात-
गुणा है, अतः उसके प्रवेशान्तरका काठ भी संख्यातगुणा ही होगा । इसका यही निष्कर्ष
निरकृता है कि तीनों उपशममार्गोंके कालोंसे तीनोंके उत्कृष्ट प्रवेशान्तरका काल बहुत है,
यद्यपि प्रवेश करनेके समय समान है, अतएव उनका संचय भी सदृश ही होता है ।

उपसंतक जीव आगे कही जानेवाली गुणस्थानोंकी संख्याको 'देराकर अल्प है'
ऐसा कहा है ।

उपजान्नहपायवीतरागछदुमत्या पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ३ ॥

अंश—पृथक् सूत्रका प्रारम्भ किस लिये किया है ?

समाधान—उपशान्तकपायका और कपायके उपशम करनेवाले उपशममार्गोंकी
परस्पर प्रत्यासत्तिका अभाव दिखाना इसका फल है । जिनकी प्रत्यासत्ति पाई जाती है
उनका ही एक योग अर्थात् एक समास हो सकता है और दूसरोंका भिन्न योग होता
है, यह बात इस सूत्रसे सूचित की गई है ।

उपशान्तकपायवीतरागछदुमत्यासे क्षपक संख्यातगुणित हैं ॥ ४ ॥

क्योंकि, उपशममार्गके गुणस्थानमें उत्कर्षसे प्रवेश करनेवाले चोपन जीवोंकी

१ उपशान्तकपायवीतरागछदुमत्या पा । म. नि. १, ८

२ उपशम करनेवाला । म. नि. १, ८

सुक्कस्सेण पविस्समाणअहुत्तरसदजीवाणं दुगुणचुवलंभा, पंचूण-चदुरुत्तरातिसदमेत्तेगुण-
सामगुणद्वणमुक्कस्समंचयादो वि सवगेगुणद्वणमुक्कस्समंचयस्स दुरुउणछस्सद-
मेत्तस्स दुगुणचदसगादो ।

खीणकसायवीदरागछदुमत्या तत्तिया चेय' ॥ ५ ॥

पुथसुचारंभस्स कारणं पुवं व वत्तवं । सेसं सुगमं ।

सजोगकेवली अजोगकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया
चेय' ॥ ६ ॥

वाइयवादिक्कम्माणं छदुमत्येहि पच्यासचीए अभावादो पुथसचारंभो जादो ।
पवेसणेण तेत्तिया चेवेत्ति उत्ते पवेस-संचएहि अहुत्तरसददुरुउणछस्सदमेत्ता कमेण होति
चि वेत्तवं । दो वि तुल्ला चि उत्ते दो वि अणणेणेण सरिसा चि भणिदं होदि ।
अजोगिकेवलिसंचओ पुच्चिल्लगुणद्वणसंचएहि सरिसो जथा, तथा सजोगिकेवलि-
संचयस्स वि सरिसत्ती । विसरिसत्तपदुपायणद्वगुत्तरसुत्तं भणदि-

अपेक्षा क्षपकके एक गुणस्थानमें उत्कर्षसे प्रवेश करनेवाले एकसो आठ जीवोंके दुगुणता
पाई जाती है । तथा संचयकी अपेक्षा उपशममार्गके एक गुणस्थानमें उत्कृष्टरूपसे पांच
कम तीनसो चार अर्थात् दो सो नित्यान्वे (२९९) संचयसे भी क्षपकके एक गुणस्थानको
दो कम छह सो (५९८) रूप संचयके दुगुणता देखी जाती है ।

क्षीणकपायवीतरागछदुमत्या पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ५ ॥

पृथक् सूत्र बनानेका कारण पहलेके समान कहना चाहिए । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

सयोगिकेवली और अयोगिकेवली प्रवेशकी अपेक्षा दोनों ही तुल्य और पूर्वोक्त
प्रमाण हैं ॥ ६ ॥

वात्तिकर्मोंका वात करनेवाले सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीकी छद्मस्थ
जीवोंके साथ प्रत्यासत्तिका अभाव होनेसे पृथक् सूत्र बनाया गया है । प्रवेशकी अपेक्षा
पूर्वोक्त प्रमाण ही है, ऐसा कहनेपर प्रवेशसे एक सो आठ (१०८) और संचयसे दो कम
छह सो अर्थात् पांच सो अष्टानवे (५९८) क्रमसे होते हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना
चाहिए । दोनों ही तुल्य हैं, ऐसा कहनेसे दोनों ही परस्पर समान हैं, ऐसा अर्थ सूचित
होता है । जिस प्रकार अयोगिकेवलीका संचय पूर्ण गुणस्थानोंके संचयके सदृश होता
है, उसी प्रकार सयोगिकेवलीके संचयके भी सदृशताकी प्राप्ति होती है, अतएव उनके
संचयकी विसदृशताके प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं-

१ क्षीणकपायवीतरागछदुमत्यास्तान्त एव । म. नि. १, ८.

२ सयोगिकेवलिनोऽजोगिकेवलिनम प्रवेशेन तुल्यमस्या । म. नि. १, ८.

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणां ॥ ७ ॥

कुदो ? दुरुवृणछस्सदमेत्तजीवहिंतो अट्टलक्ख-अट्टणउदिसहस्स-दुराहियपंचद-
मेत्तजीवानं संखेज्जगुणुवलंभा । हेट्ठिमरासिणा उवरिमरासिं छेचूण गुणयारो उप्पोदेव्वो ।
अपमत्तसंजदा अक्खवा अनुवसमा संखेज्जगुणां ॥ ८ ॥
खवगुवसामगअपमत्तसंजदपडिसेहो किमद्धं कीरेदे ? ण, अपमत्तसामणेण
तेसिं पि गहणपसंगा । सजोगिरासिणा वेकोडि-छणउदिलक्ख-णवणउइसहस्स-तिउत्तर-
सदमेत्तअपमत्तरासिंभि भागे हिदे जं लद्ध सो गुणगारो होदि ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणां ॥ ९ ॥

को गुणगारो ? दोणिण रुवाणि । कुदो णव्वदे ? आहरियपरंपरागदुव्वेसादो ।

सयोगिकेवली कालकी अपेक्षा संख्यातगुणित है ॥ ७ ॥

क्योंकि, दो कम छह सौ, अर्थात् पांच सौ अट्टानवे मात्र जीवोंकी अपेक्षा आठ
लाख, अट्टानवे हजार पांच सौ दो संख्याप्रमाण जीवोंके संख्यातगुणितता पाई जाती
है । यहाँ पर अधस्तनराशिसे उपरिम राशिको छेदकर (भाग देकर) गुणकार उत्पन्न
करना चाहिए ।

सयोगिकेवलियोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यात-
गुणित है ॥ ८ ॥

शंका—यहाँपर क्षपक और उपशामक अप्रमत्तसंयतोंका निषेध किस लिए
किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'अप्रमत्त' इस सामान्य पदसे उनके भी ग्रहणका
प्रसंग आता है, इसलिये क्षपक और उपशामक अप्रमत्तसंयतोंका निषेध किया गया है ।
सयोगिकेवलीकी राशिसे दो करोड़ छयानवे लाख नित्यानवे हजार एक सौ तीन संख्या-
प्रमाण अप्रमत्तसंयतोंकी राशिमें भाग देनेपर जो लब्ध आवे, वह यहाँ पर गुणकार
होता है ।

अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित है ॥ ९ ॥

गुणकार क्या है ? दो संख्या गुणकार है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आचार्य-परम्पराके द्वारा आये हुये उपदेशसे जाना जाता है ।

१ सयोगिकेवलिन सम्मलिन समुदिताः सख्येयगुणाः । (८९८५०२) । स सि १, ८

२ अप्रमत्तमयता सख्येयगुणाः (२९६९९१०३) । स सि १, ८

३ प्रमत्तमयताः सख्येयगुणा (५९३९८२०६) । स सि १, ८

पुव्वुत्तअपमत्तरासिणा पंचकोडि-तिण्णउइलक्ख-अट्टणउइसहस्स-छब्भहियदोसदमेत्तभिं-
पमत्तरासिंभि भागे हिदे जं भागलद्धं सो गुणगारो ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणां ॥ १० ॥

कुदो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तचादो । माणुसखेत्तब्भंतरे चेय
संजदासंजदा होंति, गो वहिद्धा; भोगभूमिंभि संजमांसंजमभावविरोहा । ण च माणुस-
खेत्तब्भंतरे असंखेज्जाणं सजदासंजदाणमत्थि संभवो, तेत्थिमेत्तानमेत्थैवद्वानविरोहा ।
तदो संखेज्जगुणेहि संजदासंजदेहि होदव्वमिदि ? ण, सयंपहपव्वदपरभागे असंखेज्ज-
जोयणवित्थडे कम्मभूमिपडिभाए तिरिक्खणमसंखेज्जाणं संजमांसंजमगुणसहिदाण-
मुवलंभा । को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढम-
वगमूलाणि । को पडिभागो ? अंतोमुहुत्तगुणिदपमत्तसंजदरासी पडिभागो ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणां ॥ ११ ॥

पूर्वोक्त अप्रमत्तराशिसे पांच करोड़ तिरानवे लाख, अट्टानवे हजार, दो सौ छह
संख्याप्रमाण प्रमत्तसंयतराशिमें भाग देनेपर जो भाग लब्ध आवे, वह यहाँपर गुणकार है ।

प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत असंख्यातगुणित है ॥ १० ॥

क्योंकि, वे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

शंका—संयतासंयत मनुष्यक्षेत्रके भीतर ही होते हैं, बाहर नहीं, क्योंकि, भोग-
भूमिमें संयमांसयमके उत्पन्न होनेका विरोध है । तथा मनुष्यक्षेत्रके भीतर असंख्यात संयता-
संयतोंका पाया जाना सम्भव नहीं है, क्योंकि, उतने संयतासंयतोंका यहाँ मनुष्यक्षेत्रके
भीतर अवस्थान माननेमें विरोध आता है । इसलिये प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत
संख्यातगुणित होना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, असंख्यात योजन विस्तृत एवं कर्मभूमिके प्रतिभाग-
रूप स्वयंप्रभ पर्वतके परभागमें संयमांसयम गुणसहित असंख्यात तिर्यच पाये जाते हैं ।

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो पल्योपमके
असंख्यात प्रथम वर्गमूल प्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? अन्तर्मुहूर्तसे प्रमत्तसंयतराशिको
गुणित करनेपर जो लब्ध आवे, वह प्रतिभाग है ।

संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित है ॥ ११ ॥

१ संयतासंयता असंख्येयगुणाः । स सि १, ८.

२ प्रतिपु 'मेता-' इति पाठः ।

३ सासादनसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणा । स सि १, ८

हुदो ? निनिहमममचट्टिदमंजदमंजदेहिंतो एगुमममसमत्तादो सामणगुणं पडि-
गज्जिय छुनु आनरियायु मंचिदजीपाणममरेज्जगुणवुवेदसादो । तं पि कथं गव्वदे ?
परागमयन्ति मंजममंजमं पडिवज्जमाणजीवेहिंतो एककसमयमिह चैव मासणगुणं पडि-
गज्जमाणजीपाणममरेज्जगुणचंदसादो । तं पि' कुदो ? अणंतसंसारविच्छेयहेउसंजमा-
मंजमलंभम्म अट्टुल्लभत्तादो । को गुणगारो ? आवलियाए असरेज्जदिभागो । हेड्डिम-
गमिणा उरिभगमिमिह्ति भागे हिंदे गुणगारो आगच्छदि, उवरिमरासिअवहारकालेण
अट्टिमगमिअवहार कालं भागे हिंदे गुणगारो हेदि, उवरिमरासिअवहारकालगुणिदेहेड्डिम-
रासिणा पल्लितोमं भागे हिंदे गुणगारो हेदि । एवं तीहि पयरेहि गुणयारो समाण-
भज्जमाणगामीसु मव्वत्थ साहेद्व्यो । गवरि हेड्डिमरासिणा उवरिमरासिमिह भागे हिंदे
गुणगारो आगच्छदि ति एदं समाणममाणभज्जमाणरामीणं साहारणं, दोसु नि एदस्स
पउचीए वाहाणुलभा ।

क्योंकि, तीन प्रकारके सम्यग्ज्वके साथ स्थित संयतासंयतोंकी अपेक्षा एक
उपशमसम्यग्ज्वके मामादनगुणस्थानको प्राप्त होकर छह आवलियोंसे संचित जीव
शरणागतगुणित हैं, ऐसा उपदेश पाया जाता है ।

अंता — यह भी कैसे जाना जाता है ?

रामायान—एक समयमें संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंसे एक समयमें
ही सामान्यगुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीव असंख्यातगुणित देते जाते हैं ।

अंता—इसका भी कारण क्या है ?

रामायान—सर्वांक, अनन्त संसारके विच्छेदका कारणभूत संयमासंयमका
पाना अनितुल्यं भवे ।

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । अद्यस्तनराशिसे
उपरिमराशिमें भाग देनेपर गुणकारका प्रमाण आता है । अथवा, उपरिमराशिके अवहार-
कालमें अद्यस्तनराशिके अवहारकालमें भाग देनेपर गुणकार होता है । अथवा, उपरिम-
राशिके अवहारकालसे अद्यस्तनराशिको गुणित करके जो लब्ध आवे उसका पल्योपममें
भाग देनेपर गुणकार आता है । ऐसे इन तीन प्रकारोंसे समान भज्यमान राशियोंमें सर्वत्र
गुणकार साधित कर लेना चाहिए । केवल विशेषता यह है कि अद्यस्तनराशिका उपरिम-
राशिमें भाग देनेपर गुणकार आता है, यह नियम समान और असमान, दोनों भज्यमान
राशियोंमें साधारण है, क्योंकि, उक्त दोनों राशियोंमें भी इस नियमकी प्रवृत्ति होनेमें
काथा नहीं पाई जाती है ।

१ चरितु 'तं हि' इति पाठः ।

समामिच्छादिद्वी संखेज्जगुणां ॥ १२ ॥

एदस्सत्थो उच्चदे- सम्मामिच्छादिद्विअद्वा अतोमुहुत्तमेत्ता, सासणसम्मादिद्वि-
अद्वा वि छावलियमेत्ता । किंतु सासणसम्मादिद्विअद्वादो सम्मामिच्छादिद्विअद्वा संखेज्ज-
गुणा । संखेज्जगुणद्वाए उवक्कमणकालो वि सासणद्वावक्कमणकालादो संखेज्जगुणो
उवक्कमणविरोहा निरहकालाणमुहयत्थ साधम्मादो । तेण दोगुणद्वाणि पडिवज्जमाण-
रासी जदि वि सरिसो, तो वि सासणसम्मादिद्विहिंतो सम्मामिच्छादिद्वी संखेज्जगुणा
होति । किंतु सासणगुणसुवसमसम्मादिद्विणो चैय पडिवज्जंति, सम्मामिच्छत्तगुणं पुण
वेदगुवसमसम्मादिद्विणो अट्टवीसंतकम्मियमिच्छादिद्विणो य पडिवज्जंति । तेण सासणं
पडिवज्जमाणरासीदो^१ सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जमाणरासी संखेज्जगुणो । तदो संखेज्ज-
गुणायादो संखेज्जगुणउवक्कमणकालादो च सासणेहिंतो सम्मामिच्छादिद्विणो संखेज्ज-
गुणा, उवसमसम्मादिद्विहिंतो वेदगसम्मादिद्विणो असंखेज्जगुणा, 'कारणाणुसरिणा कज्जेण
होद्वचमिदि' गायदो । सासणेहिंतो सम्मामिच्छादिद्विणो असंखेज्जगुणा किण होति
त्ति उत्ते ण होति, अणेयणिगमादो । जदि तेहि पडिवज्जमाणगुणद्वाणमेक्कं^२ चैव होदि,

सासादनसम्यग्दृष्टिोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १२ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं- सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र
है और सासादनसम्यग्दृष्टिका काल भी छह आवलीप्रमाण है, किन्तु फिर भी सासादन-
सम्यग्दृष्टिके कालसे सम्यग्मिथ्यादृष्टिका काल संख्यातगुणा है । संख्यातगुणित कालका
उपक्रमणकाल भी सासादनके कालके उपक्रमणकालसे संख्यातगुणा है । अन्यथा उपक्रमण-
कालमें विरोध आजायगा, क्योंकि, विरहकाल दोनों जगह समान है । इसलिए इन दोनों
गुणस्थानोंको प्राप्त होनेवाली राशि यद्यपि समान है तो भी सासादनसम्यग्दृष्टिोंसे
सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित है । किन्तु सासादन गुणस्थानको उपशमसम्यग्दृष्टि ही
प्राप्त होते हैं, परन्तु सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और
मोहकर्मकी अट्टईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जीव भी प्राप्त होते हैं । इसलिये
सासादनगुणस्थानको प्राप्त होनेवाली राशिसे सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाली
राशि संख्यातगुणी है । अतः संख्यातगुणी आय होनेसे और संख्यातगुणा उपक्रमणकाल
होनेसे सासादनसम्यग्दृष्टिोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं । उपशम-
सम्यग्दृष्टिोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि, 'कारणके अनुसार
कार्य होता है' ऐसा न्याय है । सासादनसम्यग्दृष्टिोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित
क्यों नहीं होते हैं, ऐसा पूछने पर आचार्य उत्तर देते हैं कि नहीं होते हैं, क्योंकि,
निर्गमके अर्थात् जानेके मार्ग अनेक हैं । यदि वेदकसम्यग्दृष्टिोंके द्वारा प्राप्त किया

१ सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संखेयगुणाः । स. सि १, ८.

२ प्रतियु 'पडिमाणरासीदो' इति पाठ ।

३ प्रतियु 'मेघ' इति पाठ ।

तो एस ण्णाओ वोतुं' जुत्तो । किंतु वेदसम्मदिट्ठिणो मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं च पडिवज्जंति, सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जमाणेहिंत्तो मिच्छत्तं पडिवज्जमाणवेदसम्मामिच्छिणो असंखेज्जगुणा, तेण पुव्वुत्तं ण घडदे इदि । ण चासंखेज्जगुणरासिवओ अण्णरासिम-वेक्खियं होदि, तस्स अप्पणो आयाणुसरणसहावत्तादो । एदमेवं चेव होदि त्ति कथं णव्वेदो ? सासणेहिंत्तो सम्मामिच्छादिट्ठिणो संखेज्जगुणा त्ति मुत्तण्णहाणुववत्तीदो णव्वेदो ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणां ॥ १३ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । सम्मामिच्छादिट्ठिरासी अंतो-मुहुत्तसंचिदो, असंजदसम्मामिच्छिरासी पुण वेसागरोवमसंचिदो । सम्मामिच्छादिट्ठिअद्वादो वेसागरोवमकालो पल्लिवमसंखेज्जदिभागगुणो । सम्मामिच्छादिट्ठिउक्कमणकालादो वि असंजदसम्मामिच्छिउक्कमणकालो पल्लिवमस्स संखेज्जदिभागगुणो, उक्कमण-कालस्स अद्वाणुसारिचदसणादो । तेण पल्लिवमस्स असंखेज्जदिभागो गुणगारोण होद्वचमिदि ? ण, असंजदसम्मामिच्छिरासिस्स असंखेज्जपल्लिवमपणपसणा । तं

जानेवाला गुणस्थान एक ही हो, तो यह न्याय कहते योग्य है । किन्तु वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों गुणस्थानोंको प्राप्त होते हैं । तथा सम्य-निमिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले वेदकसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले वेदक-सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, इसलिये पूर्वोक्त कथन घटित नहीं होता है । दूसरी बात यह है कि असंख्यातगुणी राशिका व्यय अन्य राशिकी अपेक्षासे नहीं होता है, क्योंकि, वह अपने आयके अनुसार व्ययशील स्वभाववाला होता है ।

शंका—यह इसी प्रकार होता है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं, यह सूत्र अन्यथा बन नहीं सकता है, इस अन्यथानुपपत्तिसे जाना जाता है कि सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १३ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शंका—सम्यग्मिथ्यादृष्टि राशि अन्तर्मुहूर्त संचित है और असंयतसम्यग्दृष्टि राशि दो सागरोपम संचित है । सम्यग्मिथ्यादृष्टिके कालसे दो सागरोपमकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग गुणितप्रमाण है । सम्यग्मिथ्यादृष्टिके उपक्रमकालसे भी असंयत-सम्यग्दृष्टिका उपक्रमकाल पल्योपमके संख्यातवें भागगुणित है, क्योंकि, उपक्रम-काल गुणस्थानकालके अनुसार देखा जाता है । इसलिये पल्योपमके असंख्यातवें भाग-प्रमाण गुणकार होना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, गुणकारको पल्योपमके असंख्यातवें भाग मानने पर असंयतसम्यग्दृष्टि राशिको असंख्यात पल्योपमप्रमाण होनेका प्रसंग प्राप्त होगा ।

१ प्रतिगु 'जोतु' इति पाठ ।

३ म २ प्रती 'दो वि असंजदसम्मामिच्छि उक्कमणकालो' इति पाठो नास्ति ।

२ अन्यतसम्यग्दृष्टयोऽसंखेयगुणा । स सि १, ८

जघा—'एदेहि पल्लिवममवहिरिदि अंतोमुहुत्तेण कालेणेत्ति' दव्वाणिओगहारसुत्तादो णव्वदि जघा पल्लिवममंतोमुहुत्तेण खंडिदेयखंडमेत्ता सम्मामिच्छादिट्ठिणो होति त्ति । पुणो एदं रासिं पल्लिवमस्स असंखेज्जदिभागोण गुणिदे असंखेज्जपल्लिवममेत्तो असं-जदसम्मामिच्छिरासी होदि । ण चेदं, एदेहि पल्लिवममवहिरिदि अंतोमुहुत्तेण कालेणेत्ति एदेण सुत्तेण सह विरोहा । कथं पुण आवलियाए असंखेज्जदिभागगुणारस्स सिद्धी ? उच्चदे—सम्मामिच्छादिट्ठिअद्वादो तप्पाओगअसंखेज्जगुणद्वए संचिदो असंजदसम्मा-दिट्ठिरासी घेत्तव्वा, एदिस्से अद्वाए सम्मामिच्छादिट्ठिउक्कमणकालादो असंखेज्जगुण-उक्कमणकालुवलंभा । एत्थ संचिद-असंजदसम्मामिच्छिरासीए वि आवलियाए असंखे-ज्जदिभागोण गुणिदेमेत्तो होदि । अधवा दोणं उक्कमणकाला जदि वि सरिसा होति त्ति तो वि सम्मामिच्छादिट्ठिहिंत्तो असंजदसम्मामिच्छि आवलियाए संखेज्जभागगुणा । कुदो ? सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जमाणरासीदो सम्मत्तं पडिवज्जमाणरासिस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागगुणत्तादो ।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणां ॥ १४ ॥

उसका स्पर्शकरण इस प्रकार है—इन सासादनसम्यग्दृष्टि आदि जीवोंकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्योपम अपहृत होता है, इस द्रव्यानुयोगद्वारेके सूत्रसे जाना जाता है कि पल्योपमको अन्तर्मुहूर्तसे खंडित करने पर एक खंडप्रमाण सम्यग्मिथ्यादृष्टि होते हैं । पुनः इस राशिको पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणित करने पर असंख्यात पल्यो-पमप्रमाण असंयतसम्यग्दृष्टिराशि होती है । परंतु यह ठीक नहीं है, क्योंकि, 'इन गुण-स्थानवर्ती जीवोंकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्योपम अपहृत होता है' इस सूत्रके साथ पूर्वोक्त कथनका विरोध आता है ।

शंका—फिर आवलीके असंख्यातवें भागरूप गुणकारकी सिद्धि कैसे होती है ?

समाधान—सम्यग्मिथ्यादृष्टिके कालसे उसके योग्य असंख्यातगुणित कालसे संचित असंयतसम्यग्दृष्टि राशि ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, इस कालका सम्यग्मिथ्या-दृष्टिके उपक्रमकालसे असंख्यातगुणा उपक्रमकाल पाया जाता है । यहां पर संचित असंयतसम्यग्दृष्टि राशि भी आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र है । अथवा, दोनोंके उपक्रमकाल यद्यपि सदृश होते हैं, तो भी सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्य-दृष्टि जीव आवलीके संख्यात भागगुणित हैं, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाली राशिसे सम्यग्मत्वको प्राप्त होनेवाली राशि आवलीके असंख्यातवें भागगुणित है ।

असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ १४ ॥

१ दव्वाणु ६ (भा. ३ पृ ६३)

२ व स्तयो 'पल्लिवमेत्तो' इति पाठः ।

३ मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणा । स सि १, ८ प्रतिगु 'अणंतगुणो' इति पाठ ।

कृता ? मिच्छादिद्वीणमाणंतियादो । को गुणगरो ? अभवमिद्विह्मि अणंतगुणो,
मिद्वेहि वि अणंतगुणो, अणंताणि मच्चजीवराभियदभवग्गमूलाणि । को पडिभागो ?
अमन्नदग्गममादिद्वी पडिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठिणाणे सन्वथोवा उवसमसम्मादिट्ठो ॥ १५ ॥
मंजदामंजदादिट्ठानपडिमहंठं असंजदसम्मादिट्ठिणवयणं । उवरिसुच्चमाणारासि-
नोमंठं मञ्जथोववयणं । सेसमम्मादिट्ठिपडिसेहट्ठपुवसमसम्मादिट्ठिवयणं ।

खट्वसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ १६ ॥

उत्तममगममत्तादौ सङ्ख्यमममचमडुहहं, दंसणमोहणीयवत्तएण उक्कस्सेण छम्मास-
मंतारिय उक्कस्सेण अट्टुत्तरसदमेत्ताणं चेत्त उप्पज्जमाणत्तादौ । सङ्ख्यसम्मत्तादौ उत्तमम-
गममत्तामगुलहं, सत्तादिदिद्याणि अंतारिय एगसमएण पल्लिदेवमस्स असंखेज्जदिभाग-
भेत्तजीनेसु तट्टप्पत्तिदंणत्तादौ । तदो सङ्ख्यसम्मादिट्ठीहिंतो उत्तमसमस्मादिट्ठीहिं असंखेज-
गणेहि होद्वन्नाभिदि ? सत्तमेदं, किंतु मंचयत्तालमाह^१पेण उत्तमसमस्मादिट्ठीहिंतो सङ्ख्य-

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि अनन्त होती है ।

गंगा—गणकार क्या है ?

ममायान — अव्यभिर्ज्ञोस अनन्तगुणा और सिद्धोस भी अनन्तगुणा गुणकार
दे, जो सम्पूर्ण जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमन्त्रप्रमाण है ।

ज्ञान—प्रतिभा क्या है ?

समाधान --- अस्य तत्त्वम्यद्वाष्टि रशिका प्रमाण प्रतिभाग हे ।

अन्यतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सवसे कम है ॥ १५ ॥
 अन्यतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानोंका निषेध करनेके लिये सूत्रमें 'असयतसम्यग्दृष्टि-
 स्थान' यह रचन दिया है। आगे कही जानेवाली राशियोंकी अपेक्षा 'सवसे कम' यह
 गनन किया है। शेष सम्यग्दृष्टियोंका प्रतिषेध करनेके लिये 'उपशमसम्यग्दृष्टि' यह वचन
 दिया है।

असंयतगम्यगृष्टि गुणस्थानम् उपशमसम्यगृष्टियोसे श्वायिकसम्यगृष्टि जीव
अमंस्यतगणित है ॥ १६ ॥

शुद्धा—उपशमसम्यक्त्वमे क्षायिकसम्यक्त्व अतिदुर्लभ है, क्योंकि, दर्शन-
मोहनीयते क्षयत्वात् उत्कृष्ट छद्म मासके अंतरालसे अधिक एकसौ आठ
जीर्णोंकी ही उत्पत्ति होती है। परंतु क्षायिकसम्यक्त्वसे उपशमसम्यक्त्व अतिदुर्लभ है,
क्योंकि, नात रात दिनेके अंतरालसे एक समयमें पल्लोपमेके असंख्यातवें भागप्रमित
जीर्णोंमें उपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्ति देखी जाती है। इसलिये क्षायिकसम्यक्त्वप्रियाँसे
उपशमसम्यक्त्वप्रियाँ असंख्यातगुणिन होना चाहिए ?

समाधान—यह कृष्णा सत्य है, किन्तु संचयकाल के माहात्म्यसे उपशमसम्य-

सम्माइट्टिणो असंखेज्जगुणा जादा । तं जहा- उवसमसम्मत्तद्धा उक्कस्सिया वि अंतो-
मुहुत्तमेत्ता चेय । खइयसम्मत्तद्धा पुण जहणिया अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सिया दोपुवकोडि-
अवभाहियेत्तेत्तिसागरोवममेत्ता । तथ मज्झिमकालो दिवट्ठपल्लिदोवममेत्तो । एत्थ
अंतोमुहुत्तमंतरिय संखेज्जोवक्कमणसमएसु धेप्पमाणेसु पल्लिदोवमस्स असंसेज्जदिभाग-
मेतोवक्कमणकालो लब्भइ । एदेण कालेण संचिदजीवा वि पल्लिदोवमस्स असंसेज्जदि-
भागमेत्ता होदूण आत्रलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तुवक्कमणकालेण समयं पडि उवक्कंत-
पल्लिदोवमस्स असंसेज्जदिभागमेत्तजीवेण संचिदुवसमसम्मादिट्ठोहंतो असंखेज्जगुणा
होति । ण सेसवियप्पा संभवंति, ताणमसंखेज्जगुणसुत्तेण सह विरोहा ।

एत्थ चोदओ भणदि- आवलियाए असंखेज्जदिभागमेचंतरेण खइयसम्मदिट्ठणिण सोहम्मं जइ संचओ कीरदि पवेसाणुसारिणिगमादो मणुसेस्सु असंखेज्जा खइयसम्मदिट्ठिणो पावेंति । अह संखेज्जानलियंतरेण ण्डिसंचओ कीरदि, तो संखेज्जावलियाहि यलिदोवेमे संडिदे एयक्खंडमेत्ता खइयसम्मदिट्ठिणो पावेंति । ण च एवं, आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तभागहारुबुगमादो । तदो दोहि वि पयांरहि दोसो चेय द्वयक्खदि

गृहप्रियाँसे धार्थिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हो जाते हैं। वह इस प्रकार है— उपशम-सम्यग्त्वका उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्तमात्र ही है। परन्तु क्षायिकसम्यग्त्वका ज्ञान्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल दो पूर्वकोटिसे अधिक तेजीस सागरोपमप्रमाण है। उसमें मध्यम काल डेढ़ पल्योपमप्रमाण है। यहां पर पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उप-उपक्रमणके सख्यात समयोंके ग्रहण करने पर पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उप-क्रमणकाल प्राप्त होता है। इस उपक्रमणकालके द्वारा संचित हुए जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र हो करके भी आवलीके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकालके द्वारा प्रत्येक समयमें प्राप्त होनेवाले पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र जीवोंसे संचित हुए उपशमसम्यग्दृष्टियोंकी अपेक्षा असंख्यातगुणित होते हैं। यहां दोष विकल्प संभव नहीं है, क्योंकि, उन विकल्पोंका असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें 'उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे धार्थिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित है' इस सूत्रने साथ विरोध आता है।

शुंका—यहा पर शुंकाकार कहता है कि आवलीके असल्यातवें भागमात्र अन्तरसे क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका सौधर्म स्वर्गमें यदि संचय किया जाता है तो प्रवेशके अनुसार निर्गम होनेसे अर्थात् आयके अनुसार व्यय होनेसे मनुष्योंमें असंख्यान क्षायिक-सम्यग्दृष्टि जीव प्राप्त होते हैं। और यदि संख्यात आवलियोंके अन्तरालसे स्थितिका संचय करते हैं तो संख्यात आवलियोंसे पल्योपमके संडित करने पर एक संडमात्र क्षायिकसम्यग्दृष्टि प्राप्त होते हैं। परंतु ऐसा है नहीं, क्योंकि, आवलिके असंख्यातवें भागमात्र भागहार स्वीकार किया गया है। इसलिष्ट दोनों प्रकारोंसे भी दोष ही प्राप्त होता है ?

त्ति ? ण एस दोसो, खइयसम्मादिट्ठीणं पमाणगमणं पल्लोदोवमस्स संखेज्जावलियमेत्त-
भागहारस्स जुत्तीए उवलंभादो । तं जहा—अट्टसमयवभहियल्लम्मासंभंतरे जदि संखेज्जुव-
क्कमणसमया लभंति, तो दिवड्डुपल्लोदोवमंभंतरे किं लभामो त्ति पमाणेण फलगुणि-
दिच्छाए ओवड्डिदाए उवक्कमणकालो लभदि । तम्मि संखेज्जजीवेहि गुणिदे संखेज्जाव-
लियाहि ओवड्डिदपल्लोदोवमेत्ता खइयसम्मादिट्ठीणो लभंति । तेण आवलियाए असंखे-
ज्जदिभागो भागहारो त्ति ण धेत्तव्वो । उवक्कमणंतरे आवलियाए असंखेज्जदिभागो संते
एदं ण घडदि त्ति णासंक्खिज्जं, मणुसेसु खइयसम्मादिट्ठीणं असंखेज्जाणमल्लित्तप्पसंगादो ।
एवं संते सासणादीणमसंखेज्जावलियाहि भागहारेण होदव्वं ? ण एस दोसो, इड्डादो ।
ण अण्णेस्सिमाहरियाणं वक्खणेण विरुद्धं त्ति एदस्स वक्खणस्स अभदत्तं, सुत्तेण सह
अविरुद्धस्स अभदत्तविरोहादो । एदेहि पल्लोदोवमवहरिदि अंतोपुड्डुत्तेण कालोत्ते सुत्तेण
वि ण विरोहो, तस्स उवयारणिबंधणात्तादो ।

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके प्रमाण
लानेके लिए पल्लोपमका संख्यात आवलिमात्र भागहार युक्तिके प्राप्त हो जाता है ।
जैसे—आठ समय अधिक छह मासके भीतर यदि संख्यात उपक्रमणके समय प्राप्त होते
हैं, तो इष्ट पल्लोपमके भीतर कितने समय प्राप्त होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर
प्रमाणराशिसे फलराशिको गुणित करके और इच्छाराशिसे भाजित कर देने पर उप-
क्रमणकाल प्राप्त होता है । उसे संख्यात जीवोंसे गुणित कर देने पर पल्लोपममें संख्यात
आवलियोंका भाग देने पर जो लब्ध आवे उतने क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव प्राप्त होते हैं ।
इसलिए यहा आवलीका असंख्यातवां भाग भागहार है, ऐसा नहीं ग्रहण करना चाहिए ।

उपक्रमणकालका अन्तर आवलीका असंख्यातवां भाग होने पर उपर्युक्त व्याख्यान
घटित नहीं होता है, ऐसी आशंका भी नहीं करना चाहिए, क्योंकि, ऐसा मानने पर
मनुष्योंमें असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके अस्तित्वका प्रसंग आता है ।

शंका—यदि ऐसा है तो सासादनसम्यग्दृष्टि आदिके असंख्यात आवलियां
भागहार होना चाहिए ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, वह इष्ट ही है ।

तथा, यह व्याख्यान अन्य आचार्योंके व्याख्यानसे विरुद्ध है, इसलिये इस-
व्याख्यानके अभद्रता (अयुक्ति-संगतता) भी नहीं है, क्योंकि, इस व्याख्यानका सूत्रके
साथ विरोध नहीं है, इसलिये उसके अभद्रताके माननेमें विरोध आता है । 'इन राशि-
योंके प्रमाणकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्लोपम अपहृत होता है' इस द्रव्यानुयोग-
द्वारेके सूत्रके साथ भी उक्त व्याख्यानका विरोध नहीं आता है, क्योंकि, वह सूत्र उप-
चार-निमित्तक है ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १७ ॥

कुदो ? दंसणमोहणीयक्खएणुप्पणखइयसम्मात्तादो खओवसमियेवेदगसम्मात्तस्स
सुड्डु सुलहत्तुवलंभा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? ओघसोहम्म-
असंजदसम्मादिट्ठीभागहारस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागपमाणत्तादो ।

संजदांसजदट्ठाणे सवत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ १८ ॥

कुदो ? अणुव्वयसिहदखइयसम्मादिट्ठीणमइदुल्लभत्तादो । ण च तिरिक्खेसु
खइयसम्मात्तेण सह संजमांसजमो लब्भदि, तत्थ दंसणमोहणीयक्खवणाभावा । तं पि कुदो
णव्वदे ? 'णियमा मणुसगदीए' इदि सुत्तादो । जे वि पुवं वदत्तिरिक्खालआ मणुसा
तिरिक्खेसु खइयसम्मात्तेणुप्पज्जंति, तेसिं ण संजमांसजमो अत्थि, भोगभूमिं मोत्तूण
अणत्थुप्पत्तीए असंभवादो । तेण खइयसम्मादिट्ठीणो संजदांसजदा संखेज्जा चेय,

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव
असंख्यातगुणित हैं ॥ १७ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीय कर्मके क्षयसे उत्पन्न हुए क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा
क्षायोपशमिक वेदकसम्यक्त्वका पाना अति सुलभ है ।

शंका—गुणकार क्या है ?

समाधान—आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, सामान्यसे
सौधर्मस्वर्गके असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका भागहार आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण
होता है ।

संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १८ ॥

क्योंकि, अणुवत्तसहित क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका होना अत्यन्त दुर्लभ है । तथा
तिर्यंचोंमें क्षायिकसम्यक्त्वके साथ संयमासंयम पाया नहीं जाता है, क्योंकि, तिर्यंचोंमें
दर्शनमोहनीयकर्मकी क्षणका अभाव है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—'दर्शनमोहनीयका क्षण करनेवाले जीव नियमसे मनुष्यगतिके
होते हैं' इस सूत्रसे जाना जाता है ।

तथा जिन्होंने पहले तिर्यंचायुका बंध कर लिया है ऐसे जो भी मनुष्य क्षायिक
सम्यक्त्वके साथ तिर्यंचोंमें उत्पन्न होते हैं उनके संयमासंयम नहीं होता है, क्योंकि,
भोगभूमिको छोड़कर उनकी अन्यत्र उत्पत्ति असंभव है । इसलिये क्षायिकसम्यग्दृष्टि
संयतासंयत जीव संख्यात ही होते हैं, क्योंकि, संयमासंयमके साथ क्षायिकसम्यक्त्व

१ दंसणमोहसंखवणपट्टवगो कम्मभूमिजादो इ । णियमा मणुसगदीए णिट्टगो चावि सवत्थ ॥१॥
कसायपाड्डे, खवणादियारो, १.

मणुपपञ्चत्वे मोक्षेण अण्णन्याभावा । अदो नेय मणिस्समाणासंखेज्जरासीहिंतो थोवा ।
उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १९ ॥

को गुणगारो ? पल्लोपमस्य अमयेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पल्लोपमपदम-
गगमृत्वाणि । को पडिभागो ? गड्यमसम्मादिट्ठिमंजदासंजदमेत्तसंखेजरूपडिभागो । कुदो ?
अमयेज्जापत्रियाहि पल्लोपमे रंजिदे तत्थ एयंतुंमेत्ताणमुवममसम्मेत्तेण सह संजदा-
संजदाणमप्रसंभा ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २० ॥

को गुणगारो ? आतलियाए असंखेज्जदिभागो । एसो उवमसम्मादिट्ठिउक्कस्स-
मंचयादो वेदगसम्मादिट्ठिउक्कस्समंचयस्स सांतरस्स' गुणगारो, अण्णहा पुण पल्लो-
पमस अमयेज्जदिभागो गुणगारो, उवसमसम्मादिट्ठिरासिस्स सांतरस्स कयाइ एग-
जीत्तम्प मि उवलंभा । वेदगसम्मादिट्ठिरामी पुण सब्बकालं पल्लोपमस्स असंखेज्जदि-
भागमेत्तो नेय, णिरंतरम्प ममाणावव्वयस्स अण्णरूवात्तिविरोहा ।

पर्याप्त मनुष्यों का छोटा घर दूसरी गतिमें नहीं पाया जाता है । और इसीलिये संयता-
स्यत शायिक्रमस्यगृष्टि आगे ऊँची जानेवाली असंख्यात राशियोंसे कम होते हैं ।

संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिक्रमस्यगृष्टियोंसे उपशमसम्यगृष्टि संयतासंयत
असंख्यातगुणित है ॥ १९ ॥

गुणकार क्या है ? पल्लोपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्लोपमके
असंख्यात प्रथम वर्गसूत्रप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? क्षायिक्रमस्यगृष्टि संयतासंयतोंकी
जिनकी संख्या है तद्वर्माण सत्यातरूप प्रतिभाग है, क्योंकि, असंख्यात आचलियोंसे
पल्लोपमके गणित करते पर उनमेंसे एक सड़ मात्र उपशमसम्यक्त्वके साथ संयता-
संयत तीन पाये जाते हैं ।

संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यगृष्टियोंसे वेदकसम्यगृष्टि असंख्यातगुणित
है ॥ २० ॥

गुणकार क्या है ? आचलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है । उपशमसम्यगृष्टि-
योंके उल्हाए संचयने वेदकसम्यगृष्टियोंके उल्हाए सांतर संचयका यह गुणकार है ।
अन्यथा पल्लोपमका असंख्यातवा भाग गुणकार होता है, क्योंकि, उपशमसम्यगृष्टिराशि
सांतर है, इसलिए कहाचित् एक जीवकी भी उपलब्धि होती है । परंतु वेदकसम्यगृष्टि-
राशि सर्वत्राल पल्लोपमके असंख्यातवै भागमात्र ही रहती है, क्योंकि, जिस राशिका
आप और व्यय समान है और जो अन्तर-रहित है, उसको अन्यरूप माननेमें विरोध
भावा है ।

१ 'सोदत्त' इति पाठः 'वेदक म १ प्रती अस्ति, अन्यप्रतिपु नास्ति ।

पमत्तापमत्तसंजदट्ठोणे सब्बथोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ २१ ॥
कुदो ? अंतोमुहुत्तत्तासंचयादो, उवसमसम्मेत्तेण सह पाएण संजमं पडिवज्जं-
ताणमभावादो च ।

खड्यसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २२ ॥

अंतोमुहुत्तेण संचिदउवसमसम्मादिट्ठीहिंतो देखणपुव्वकोडीसंचिदखड्यसम्मा-
दिट्ठीणं संखेज्जगुणत्तं पडि विरोहाभावो । को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २३ ॥

कुदो ? खड्यादो खओवसमियस्स सम्मत्तस्स पाएण संभवा । को गुणगारो ?
संखेज्जा समया ।

एवं तिसु वि अद्वासु ॥ २४ ॥

जथा पमत्तापमत्तसंजदाणं सम्मत्तप्पावहुअं पल्लिदं, तहा तिसु उवसामगद्वासु
परूखेदव्वं । तं जहा- सब्बथोवा उवसमसम्मादिट्ठी । खड्यसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।

प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यगृष्टि जीव सवमे कम
हैं ॥ २१ ॥

क्योंकि, एक तो उपशमसम्यगृष्टियोंके संचयका काल अन्तर्मुहुत्तमात्र है, और
दूसरे उपशमसम्यक्त्वके साथ बहुलतासे संयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंका अभाव है ।

प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यगृष्टियोंसे क्षायिक-
सम्यगृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २२ ॥

अन्तर्मुहुत्तसे संचित होनेवाले उपशमसम्यगृष्टियोंकी अपेक्षा कुछ कम पूर्वकोटि
कालसे संचित होनेवाले क्षायिकसम्यगृष्टियोंके संख्यातगुणित होनेमें कोई विरोध नहीं
है । गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिक्रमस्यगृष्टियोंसे वेदकसम्यगृष्टि
जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३ ॥

क्योंकि, क्षायिक्रमस्यक्त्वकी अपेक्षा क्षायोपशमिक्रमस्यक्त्वका होना अधिक-
तासे सम्भव है । गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

इसी प्रकार अपूर्वकरण आदि तीन उपशामक गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी
अल्पबहुत्व है ॥ २४ ॥

जिस प्रकार प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंके सम्यक्त्वका अल्पबहुत्व कहा
है, उसी प्रकार आदिके तीन उपशामक गुणस्थानोंमें भी प्ररूपण करना चाहिए । वह इस
प्रकार है- तीनों उपशामक गुणस्थानोंमें उपशमसम्यगृष्टि जीव सवसे कम हैं । उनसे

कारणं, दन्वाहियत्तादो । वेदगसम्मादिद्वी गत्थि, तेण सह उवसमसेडीआरोहणाभावा । उवसंतत्ताएसु सम्मत्तप्पावहुगं किण्ण परूविदं ? न एस दोसो, तिखु अद्वासु सम्मत्तप्पावहुगे अवगदे तत्थ वि तदवगमादो । सुहं गहण्डं चदुसु उवसमाएसु ति' किण्ण परूविदं ? न, 'एगजोगणिदिट्ठणमेगदेसो गाणुवट्ठदि' ति गायदो उवरे चदुहमणुउत्तिप्पसंगां । होदु चे न, पडिजोगीणं चदुण्हसुवसामगणमभावा ।

संवत्थोवा उवसमा ॥ २५ ॥

कुदो ? थोवायुपदेसादो^१ संकलितसचयस्स^२ वि थोवत्तस्स गायसिद्धत्तादो ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित है, क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका यहां द्रव्यप्रमाण अधिक पाया जाता है । उपशमश्रेणीमें वेदकसम्यग्दृष्टि जीव नहीं पाये जाते हैं, क्योंकि, वेदकसम्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणीके आरोहणका अभाव है ।

शंका—उपशान्तकपाय गुणस्थानवर्ती जीवोंमें सम्यक्त्वका अल्पवहुत्व क्यों नहीं कहा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, तीनों उपशामक गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वका अल्पवहुत्व ज्ञात हो जाने पर उपशान्तकपाय गुणस्थानमें भी उसका ज्ञान हो जाता है ।

शंका—सुख अर्थात् सुगमतापूर्वक ज्ञान होनेके लिए 'चारों उपशामक गुणस्थानोंमें' ऐसा सूत्रमें क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'जिनका निर्देश एक समासके द्वारा किया जाता है उनके एक देशकी अनुवृत्ति नहीं होती है' इस न्यायके अनुसार आगे कहे जानेवाले सूत्रोंमें चारों गुणस्थानोंकी अनुवृत्तिका प्रसंग प्राप्त होगा ।

शंका—यदि आगे चारों उपशामकोंकी अनुवृत्तिका प्रसंग आता है, तो आने दो, क्या दोष है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, चारों उपशामकोंके प्रतियोगियोंका अभाव है । अर्थात् जिस प्रकार अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंके भीतर उपशामक और उनके प्रतियोगी क्षपक पाये जाते हैं, उसी प्रकार चौथे उपशामक अर्थात् ग्यारहवें गुणस्थानमें उपशामकोंके प्रतियोगी क्षपक नहीं पाये जाते हैं ।

अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ २५ ॥
क्योंकि, अल्प आयका उपदेश होनेसे सचित होनेवाली राशिके स्तोकपना अर्थात् कम होना न्यायसिद्ध है ।

१ प्रतिपु 'उवसामए सुवे' इति पाठः ।

२ प्रतिपु 'अणउत्तिप्पसगा' इति पाठः ।

३ प्रतिपु 'थेनए पदेसादो' इति पाठः ।

४ प्रतिपु 'मगलितसचयस्स' इति पाठः ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ २६ ॥

कुदो ? संखेज्जगुणायादो संचउवलंभा । उवसम-खवगणमेदमप्पावहुगं पुवं परूविदिमिदि एत्थ न परूविदवं ? न, पुवमुवसामग-खवगपेसगाणमप्पावहुगकथणादो । तदो चेव संचयप्पावहुगसिद्धीए होदीदि चे सच्चं होदि, उच्चोदो । उच्चिवादे अणिउणसत्ताणुगहट्ठेमेदमप्पावहुअं पुणो वि परूविदं । खवगसेडीए सम्मत्तप्पावहुअं किण्ण परूविदं ? न, तेसि खइयसम्मत्तं मोत्तूण अण्णसम्मत्ताभावा । तं कुदो णव्वदे ? खवगेसु उवसम-वेदगसम्मादिट्ठिद्ववादिपरूवयसुत्ताणुवलंभा । उवसमा खवा ति सदा उवसम-सम्मत्त-खइयसम्मत्ताणं वाचया ण होति ति भणंताणमभिप्पाएण खइयसम्मत्तस्स

अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानवर्ती उपशामकोंसे तीनों गुणस्थानवर्ती क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २६ ॥

क्योंकि, संख्यातगुणित आयसे क्षपकोंका संचय पाया जाता है ।

शंका—उपशामक और क्षपकोंका यह अल्पवहुत्व पहले कह आये हैं, इसलिये यहां नहीं कहना चाहिये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पहले उपशामक और क्षपक जीवोंके प्रवेशकी अपेक्षा अल्पवहुत्व कहा है ।

शंका—उसीसे संचयके अल्पवहुत्वकी सिद्धि हो जायगी (फिर उसे पृथक् क्यों कहा) ?

समाधान—यह सत्य है कि युक्तिसे अल्पवहुत्वकी सिद्धि हो सकती है । किन्तु जो शिष्य युक्तिवादमें निपुण नहीं हैं, उनके अनुग्रहके लिये यह अल्पवहुत्व पुनः भी कहा है ।

शंका—क्षपकश्रेणीमें सम्यक्त्वका अल्पवहुत्व क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, क्षपकश्रेणीवालोंके क्षायिकसम्यक्त्वको छोड़कर अन्य सम्यक्त्व नहीं पाया जाता है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि, क्षपकश्रेणीवाले जीवोंमें उपशमसम्यग्दृष्टि और वेदक-सम्यग्दृष्टि जीवोंके द्रव्य अर्थात् संख्या और आदि पदसे क्षेत्र, स्पर्शन आदिके प्ररूपक सूत्र नहीं पाये जाते हैं । उपशामक और क्षपक, ये दोनों शब्द क्रमशः उपशमसम्यक्त्व और क्षायिकसम्यक्त्वके वाचक नहीं हैं, ऐसा कथन करनेवाले आचार्योंके अभिप्रायसे

१ प्रतिपु 'अणिउणसत्ताणुगहट्ठ' इति पाठः ।

नानादृशरूपानि, पुनरप्यविदुस्तुवसागमंचयस्म अपावहुवपस्त्वयाणि वा दोषि मुक्ताणि चि धेत्तव्यं ।

५१ ओपपन्नूणा समत्वा ।

आदेसेण गदियाणुवादेण गिरयगदीए णेरइएसु सन्वथोवा सासणसम्मादिद्धी' ॥ २७ ॥

आदेसमणं ओचपडिसेहकलं । सेसमगणादिपडिसेहकलं गदियाणुवादेवयणं । मेसमदिपडिसेहकलं गिरयगदिणिदेसो । सेसगुणद्वानपडिसेहकलं सासणणिदेसो । उवरि उच्चमाणगुणद्वान्नेहिंतो सामणा दव्यपमाणेण थोवा अप्पा इदि उच्चं होदि ।

सम्माभिच्छादिद्धी संखेज्जगुणा' ॥ २८ ॥

कुदो ? सासणुपत्तनणकालादो सम्माभिच्छादिद्धिउवक्कमणकालस्स संखेज्जगुणस्स उअलंभा । को गुणगारो ? संखेज्जसमया । हेडिमरासिणा उवरिमरासिन्दि भागे

ये गंतो मर श्रायिजसम्यक्त्वे अरपयहुत्वेके प्ररूपक हैं, तथा पहले नहीं प्ररूपण किये गये क्षणिक और उपशान्तमन्मन्धी संचयके अल्पमहुत्वेके प्ररूपक हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।

इस प्रकार ओघप्ररूपणा रामान्त हुई ।

ओददासी अपेक्षा गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें सासादनमम्यग्दृष्टि जीव मचने कम हैं ॥ २७ ॥

सूत्रमें 'ओदेश' यह वचन ओघका प्रतिषेध करनेके लिए है । शेष मार्गणा आग्निं प्रतिषेध करनेके लिए 'गतिमार्गणाके अनुवादसे' यह वचन कहा है । शेष गतियोंके प्रतिषेधके लिए 'नरकगति' इस पदका निर्देश किया । शेष गुणस्थानोंके प्रतिषेधार्थ 'नासादन' इस पदका निर्देश किया । ऊपर कहे जानेवाले शेष गुणस्थानोंके द्रव्यप्रमाणोंकी अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणसे स्तोक अर्थात् अल्प होते हैं, यह अर्थ कहा गया है ।

नारकियोंमें सासादनमम्यग्दृष्टियांसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २८ ॥

क्योंकि, सासादनसम्यग्दृष्टियोंके उपक्रमणकालसे सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका उपक्रमणकाय संचयनगुणा पाया जाता है । गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । अपस्तनराशिना उपरिमराशियोंमें भाग देने पर गुणकारका प्रमाण आता है । अधस्तन-

१ तिलेन दन्तादेन नगराग्नौ मर्वासु पृथिवीसु सर्पतः स्तोत्राः मापादनसम्यग्दृष्टय । स. सि. १, ८.

२ सम्यग्मिथ्यादृष्टय मल्लेयगुणाः । स. सि. १, ८.

हिदे गुणगारो आगच्छदि । को हेडिमरासी ? जो थोवो । जो पुण बहु सो उवरिमरासी । एदमत्थपदं जहावसरं सन्वत्य वत्तव्वं ।

असंजदसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा' ॥ २९ ॥

कुदो ? सम्माभिच्छादिद्धिउवक्कमणकालादो असंजदसम्मादिद्धिउवक्कमणकालस्स असंखेज्जगुणस्स संभवुअलंभा, सम्माभिच्छात्तं पडिउज्जमाणजीवेहिंतो सम्मत्तं पडिउज्जमाणजीवाणमसंखेज्जगुणत्तादो वा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । हेडिमरासिणा उवरिमरासिमोवद्विय गुणगारो साहेयव्वो ।

भिच्छादिद्धी असंखेज्जगुणा' ॥ ३० ॥

को गुणगारो ? असंखेज्जाओ सेडीओ पदरस्स असंखेज्जदिभागो । तारिं सेठीणं विक्खंभद्धची अंगुलस्म असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि अंगुलवगमूलाणि निदियवगमूलस्स असंखेज्जभागमेत्ताणि । तं जथा - असंजदसम्मादिद्धीहि द्वाविंशगुलविदियवगमूलं गुणेदूण तेण द्वाविंशगुले भागे हिदे लद्धमंगुलस्स असंखेज्जदिभागो । असंखेज्जाणि अंगुलवगमूलाणि गुणगारविक्खंभद्धची होदि चि कथं णव्वदे ? उच्चदे - असंजदसम्मादिद्धीहि राशि कौनसी है ? जो अरुप होती है, वह अधस्तनराशि है, और जो वरुत होती है, वह उपरिमराशि है । यह अर्थपद यथावसर सर्वत्र कहना चाहिए ।

नारकियोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ २९ ॥ क्योंकि, सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके उपक्रमणकालसे असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उपक्रमणकाल असंख्यातगुणा पाया जाता है । अथवा, सम्यग्मिथ्यादृष्टिको प्राप्त होनेवाले जीवोंसे सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीव असंख्यातगुणित होते हैं । गुणकार क्या है ? आवलीता असंख्यातवां भाग गुणकार है । अधस्तनराशिसे उपरिमराशिको अपवर्तित करके गुणकार सिद्ध कर लेना चाहिए ।

नारकियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३० ॥ गुणकार क्या है ? असंख्यात जगद्रेणियां गुणकार है, जो जगद्रेणियां जगत्तरके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । उन जगद्रेणियोंकी विक्कंभद्धची अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है । जिसका प्रमाण अंगुलके द्वितीय वर्गमूलके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात प्रथम वर्गमूल है, वह इस प्रकार है - असंयतसम्यग्दृष्टियोंके प्रमाणसे सूत्र्यंगुलके द्वितीय वर्गमूलको गुणित करके जो लब्ध थोवे, उससे सूत्र्यंगुलमें भाग देने पर अंगुलका असंख्यातवां भाग लब्ध आता है ।

शुक्रा—अंगुलके असंख्यात वर्गमूल गुणकार विक्कंभद्धची है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—असंयतसम्यग्दृष्टियोंके प्रमाणसे सूत्र्यंगुलके द्वितीय वर्गमूलके

१ असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंयतगुणा । स. सि. १, ८. २ मिथ्यादृष्टयोऽसंयतगुणा । स. सि. १, ८.

स्त्रिअंगुलविदियवगमूले भागे हिंदे लद्धम्मि जत्तियाणि रूवाणि तत्तियाणि अंगुलपटम-
वगमूलाणि । कुदो ? दब्बविकस्वंबध्वची घणंगुलविदियवगमूलेत्ता, असंजदसम्मा-
दिद्धीहि तम्मि घणंगुलविदियवगमूले ओवद्धिदे असंखेज्जाणि सूचिअंगुलपटमवगम-
मूलाणि होति त्ति तंत-जुत्तिसिद्धीदो । तत्थ जेत्तियाणि रूवाणि तेत्तियमेत्ता सेडीओ
गुणगारो होदि ।

असंजदसम्माइट्टिद्वणे सन्वथोवा उवसमसम्मादिद्धी ॥ ३१ ॥

कुदो ? अंतोपुहुत्तमेत्तुवसमसम्मतद्वाए उवक्कमणकालेण आवलियाए असंखेज्जिदि-
भागेण संचिदत्तादो उच्चमाणसब्बसम्मादिद्धिसीहिंतो उवसमसम्मादिद्धी थोवा होति ।

खइयसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा ॥ ३२ ॥

कुदो ? सहावदो चेव उवसमसम्मादिद्धीहिंतो असंखेज्जगुणसरूवेण खइयसम्मा-
इट्टिमणाइणिहणमवद्वाणादो, संखेज्जपलितोवम्भंतरे पलितोवमस असंखेज्जदिभाग-
मेत्तुवक्कमणकालेण संचिदत्तादो असंखेज्जगुणा त्ति बुत्तं होदि । एत्थतणखइयसम्मा-
दिद्धिणं भागहारो असंखेज्जावलियाओ । कुदो ? ओघासंजदसम्मादिद्धीहिंतो असंखेज्ज-

भाजित करने पर लब्धमें जितना प्रमाण आवे, उतने सूत्र्यगुलके प्रथम वर्गमूल गुणकार-
विक्रमसूत्रमें होते हैं, क्योंकि, द्रव्यविक्रमसूची घनांगुलके द्वितीय वर्गमूलमात्र है ।
इसलिए असंयतसम्यग्दृष्टियोंके प्रमाणसे उस घनांगुलके द्वितीय वर्गमूलके अपवर्तित
कर देनेपर सूत्र्यगुलके असंख्यात प्रथम वर्गमूल होते हैं, यह प्रकार आगम और युक्तिसे
सिद्ध है । अतएव वहांपर जितनी संख्या हो तन्मात्र जगश्रेणियां यहांपर गुणकार है ।

नारकियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कर्म हैं ॥ ३१ ॥

क्योंकि, अन्तर्मुहूर्तमात्र उपशमसम्यक्त्वके कालमें आवलीके असंख्यातवें भाग-
प्रमाण उपक्रमणकाल द्वारा संचित होनेके कारण आगे कहे जानेवाले सर्व प्रकारके
सम्यग्दृष्टियोंकी राशियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव थोड़े होते हैं ।

नारकियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि
असंख्यातगुणित हैं ॥ ३२ ॥

क्योंकि, स्वभावसे ही उपशमसम्यग्दृष्टियोंकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका
असंख्यातगुणितरूपसे अनादिनिधन अवस्थान है, जिसका तात्पर्य यह है कि संख्यात
पत्योपमके भीतर पत्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकाल द्वारा संचित होनेसे
क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे असंख्यातगुणित हैं । यहा नारकियोंमें जो
क्षायिकसम्यग्दृष्टि हैं उनके प्रमाणके लानेके लिए भागहारका प्रमाण असंख्यात आवलियां
हैं, क्योंकि, ओघ असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे असंख्यातगुणित हीन ओघ क्षायिकसम्यग्दृष्टि

गुणहीणओघखइयसम्मादिद्धिणं असंखेज्जदिभागमेत्तादो । ण वासपुधत्तंरसुत्तेण सह
विरोहो, सोहम्मीसाणकणं मोत्तुण अणत्थ द्दिदखइयसम्मादिद्धिणं वासपुधत्तस्स विउलत्त-
वाइणो' गहणादो । तं तहा धेप्पदि त्ति कुदो णव्वदे ? ओघुवसमसम्मादिद्धीहिंतो
ओघखइयसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा त्ति अप्पावहुअसुत्तादो ।

वेदगसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा ॥ ३३ ॥

कुदो ? खइयसम्मात्तादो खओवसमियस्स वेदगसम्मतस्स सुलहत्तुलंभा । को
गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कधमेदं णव्वदे ? आइरियपरंपरागदु-
वदसादो ।

एवं पटमाए पुठवीए णेरइया ॥ ३४ ॥

जहा सामण्णेरइयाणमप्पावहुअं परुविदं, तहा पटमपुठवीणेरइयाणमप्पावहुअं परू-
वेदव्वं, ओघेणेरइयअप्पावहुआलावादो पटमपुठवीणेरइयाणमप्पावहुआलावस्स भेदाभावा ।

जीव असंख्यातवें भाग ही होते हैं । इस कथनका वर्षपृथक्त्व अन्तर वतानेवाले सूत्रके
साथ विरोध भी नहीं आता है, क्योंकि, सौधर्म और पेशानकल्पको छोड़कर अन्यत्र
स्थित क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके अन्तरमें कहे गये वर्षपृथक्त्वके 'पृथक्त्व' शब्दको वैपुल्य-
वाची ग्रहण किया गया है ।

शंका—यहां पर पृथक्त्वका अर्थ वैपुल्यवाची ग्रहण किया गया है, यह कैसे
जाना जाता है ?

समाधान—'ओघ उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे ओघ क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव अस्सं-
ख्यातगुणित हैं' इस अल्पबहुत्वके प्रतिपादक सूत्रसे जाना जाता है ।

नारकियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि
असंख्यातगुणित हैं ॥ ३३ ॥

क्योंकि, क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा क्षायोपशमिक वेदकसम्यक्त्वकी प्राप्ति
सुलभ है । गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आचार्य परम्परासे आये हुए उपदेशके द्वारा जाना जाता है ।

इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें नारकियोंका अल्पबहुत्व है ॥ ३४ ॥

जिस प्रकार सामान्य नारकियोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार पहली पृथि-
वीके नारकियोंका अल्पबहुत्व कहना चाहिए, क्योंकि, सामान्य नारकियोंके अल्पबहुत्वके
कथनसे पहली पृथिवीके नारकियोंके अल्पबहुत्वके कथनमें कोई भेद नहीं है । किन्तु

१ पुठुत्तदो बहुत्तवाई । क. प वृणि

पञ्चाङ्गिणं अलंकिज्जमाणे अत्थि विमो. सो जाणिय वत्तवो ।

**विद्याए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइए सु सव्वथोवा सासण-
सम्मादिद्वी ॥ ३५ ॥**

विद्यादिद्विष्टं पुढवीणं सामणमम्मादिद्विष्टो बुद्धीए पुथ पुथ इविय सव्वथोवा
ति उचं । इदो ? छण्डमप्यावद्ग्राणमेयचचिराहदो । सव्वेहितो थोवा सव्वथोवा ।
आदिअंतं णेरइए सु णिदिद्वे सु सेसमल्लिसणेरइया सव्वे णिदिद्वि चय, जावसद्वच्चार-
णणहाणपत्तीदो । जामदेण सत्तमपुढवीणेरइयाणं मज्जादत्ताए ठविदाए, विदियपुढवी-
णेरइयाणमाटिचमात्तादिदं । आदी अंता न मज्जेण पिणा ण होति ति चट्ठणं पुढवी-
णेरइयाणं मज्जिमचं पि जामदेणेन पत्तिदं । तदो पुथ पुथ पुढवीणमुच्चारणा ण कदा ।

सम्माभिच्छादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ३६ ॥

विदियपुढवीआदिसत्तमपुढवीपज्जंतसासणाणसुवरि पुथ पुथ छपुढवीसम्माभिच्छा-
दिद्विष्टो संखेज्जगुणा, मासणसम्मादिद्विउक्कमणकालादो सम्माभिच्छादिद्विउक्कमण-
पयायिअन्यया अयलम्यन करने पर कुछ विदोपता है, सो जानकर कहना चाहिए ।
(येनो भाग ३, पृ. १६२ इत्यादि ।)

नारकियोंमें दूसरीमें लेकर सातवीं पृथिवी तक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे
क्रम है ॥ ३५ ॥

दूसरीको आदि लेकर ऊहों पृथिवियोंके सासादनसम्यग्दृष्टियोंको बुद्धिके द्वारा
पृथक् पृथक् स्थापित करने प्रत्येक सबसे कम हैं, ऐसा अर्थ कहा गया है, क्योंकि, छहों
पल्लवद्वयोंको एक माननेमें विरोध आता है । सबसे थोड़ोंको सर्वस्तोक कहते हैं ।
आदिम और अन्तिम नारकियोंके निर्देश कर देने पर दोष मध्यम सभी नारकियोंका
निर्देश हो ही जाता है, अन्यथा यावत् शब्दका उच्चारण नहीं बन सकता है । यावत्
शब्दके द्वारा सातवीं पृथिवीके नारकियोंके मर्यादारूपसे स्थापित किये जानेपर
दूसरी पृथिवीके नारकियोंके आविपना अपने आप आ जाता है । आदि और अन्त मध्यके
पिना नहीं होते हैं, इसलिए चार पृथिवियोंके नारकियोंके मध्यमपना भी यावत् शब्दके
द्वारा ही प्रकृति कर दिया गया । इसी कारण पृथक् पृथक् रूपसे पृथिवियोंका नाम-
निर्देशपूर्ण उच्चारण नहीं किया गया है ।

नारकियोंमें दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्य-
ग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३६ ॥

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक सासादनसम्यग्दृष्टियोंके ऊपर पृथक्
पृथक् छह पृथिवियोंके सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकी संख्यातगुणित हैं, क्योंकि, सासादन-
सम्यग्दृष्टियोंके उपक्रमणकालसे सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका उपक्रमणकाल युक्तिके संख्यात-

१ आ ह्यतोः 'नेरसा' इति पाठः ।

२ प्रतिपु 'अविदा' इति पाठ ।

कालस्स जुचीए संखेज्जगुणचुवलंभा । को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ३७ ॥

कुदो ? छपुढविस्सम्माभिच्छादिद्विउक्कमणकालेहितो छपुढविअसंजदसम्मा-
दिद्विउक्कमणकालाणमसंखेज्जगुणचंदसणादो, एरसमएण सम्माभिच्छत्तमुक्कमंतजीवेहितो
एरसमएण वेदयसम्मत्तमुक्कमंतजीवाणमसंखेज्जगुणत्तादो वा । को गुणगारो ? आव-
लियाए असंखेज्जदिभागो । कथमेदं णव्वेदे ? 'एदेहि पल्लिवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण
कालेणोत्ति' सुत्तादो । असंखेज्जावलियाहि अंतोमुहुत्तं किण्ण विरुज्झदि ति उत्ते ण,
ओअसंजदसम्मादिद्विअवहारकालं मोत्तूण सेसगुणपडिवाणामवहारकालस्स कज्जे
कारणोवयारेण अंतोमुहुत्तसिद्धीदो ।

मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ३८ ॥

छणं पुढवीणमसंजदसम्मादिद्वीहितो सेडीवारस्स-दसम-अट्टम-छट्ठ-तइय-विदियवग-

गुणा पाया जाता है । गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

नारकियोंमें दूसरीसे सातवीं पृथिवी तक सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि
जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३७ ॥

न्यायिक, छह पृथिवियोंसम्बन्धी सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके उपक्रमणकालोंसे छह
पृथिवीगत असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उपक्रमणकाल असंख्यातगुणा देखा जाता है । अथवा,
एक समयके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी अपेक्षा एक समयके
द्वारा वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीव असंख्यातगुणित होते हैं । गुणकार क्या है ?
आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—'इन जीवराशियोंके द्वारा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्योपम अपहृत होता
है,' इस द्रव्यानुयोगद्वारेके सूत्रसे जाना जाता है ।

शंका—अन्तर्मुहूर्तका अर्थ असंख्यात आवलियां लेनेसे उसका अन्तर्मुहूर्तपना
विरोधको क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ओअअसंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके अवहारकालको छोड़-
कर दोष गुणस्थान-प्रतिपक्ष जीवोंके अवहारकालका कार्यमें कारणका उपचार कर लेनेसे
अन्तर्मुहूर्तपना सिद्ध हो जाता है ।

नारकियोंमें दूसरीसे सातवीं पृथिवी तक असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि
जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३८ ॥

द्वितीयादि छहों पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे अगश्रेणीके बारहवें, दशवें,

मूलेष्वदिसेडीमेत्तच्छुधुविमिच्छादिद्विणो असंखेज्जगुणा हँति । को गुणगारो ? सेडीए असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि सेडीपढमवगममूलाणि । को पडिभागो ? असंखेज्जाणि सेडीवारसम-दसम-अडुम-छट्ट-तदिय-विदियवगममूलाणि । कुदो ? असंजदसम्मादिद्विरासिणा गुणिदत्तादो ।

असंजदसम्मादिद्विद्वाने सन्वत्थोवा उवसमसम्मादिद्वी ॥ ३९ ॥

सन्वेहि उच्चमाणद्वानेहिंतो त्थोवा त्ति सन्वत्थोवा । कुदो ? अवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तउवक्कमणकालेण संचिदत्तादो ।

वेदगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ४० ॥

एत्थ पुवं व तीहि पयरोहि सेचियसरूहेहि गुणयारो परूवेद्वो । एत्थ खइयसम्मादिद्विणो ण परूविदा, हेड्डिमछपुढवीसु तेसिसुववादाभावा, मणुसगइ मुच्चा अणत्थ दंसणमोहणीयखवणाभावादो च ।

आठवें, छठवें, तीसरे और दूसरे वर्गमूलसे भाजित जगश्रेणीप्रमाण छह पृथिवियोंके भिन्न्याद्वि नारकी असंख्यातगुणित होते हैं । गुणकार क्या है ? जगश्रेणीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो जगश्रेणीके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? जगश्रेणीके चारहवें, दशवें, आठवें, छठवें, तीसरे और दूसरे असंख्यात वर्गमूलप्रमाण प्रतिभाग है, क्योंकि, ये सब असंयतसम्यग्दृष्टिराश्रितसे गुणित हैं ।

नारकियोंमें द्वितीयादि छह पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशम-सम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ ३९ ॥

आगे कहे जानेवाले स्थानोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि थोड़े होते हैं, इसलिये वे सर्व-स्तोक कहलाते हैं, क्योंकि, आवलीके असंख्यातवे भागमात्र उपक्रमणकालसे उनका संचय होता है ।

नारकियोंमें द्वितीयादि छह पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशम-सम्यग्दृष्टियोंसे वेदमसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ४० ॥

यहां पर पहलेके समान सेचिकस्वरूप अर्थात् मापके विशेष भेदस्वरूप तीनों प्रकारोंसे गुणकारका प्ररूपण करना चाहिए (देखो पृ २४९) । यहा क्षयिकसम्यग्दृष्टियोंका प्ररूपण नहीं किया है, क्योंकि, नीचेकी छह पृथिवियोंमें क्षयिकसम्यग्दृष्टियोंकी उत्पत्ति नहीं होती है, और मनुष्यगतिको छोड़कर अन्य गतियोंसे दर्शनमोहनीयकी क्षणता नहीं होती है ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्ख-पंचिदियपज्जत्त-तिरिक्ख-पंचिदियजोणिणीसु सन्वत्थोवा संजदासंजदा ॥ ४१ ॥

पयदचउव्विहतिरिक्खेसु जे देसव्वइणो ते तेसिं चैव सेसगुणद्वानजिहिंतो थोवा त्ति चट्ठण्हमप्पावड्डुआणं मूलपदमेदेण परूविदं । किमइं देसव्वइणो थोवा ? संजया-संजमुवलभस्स सुदुल्लहत्तादो ।

सासणसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ४२ ॥

चउव्विहतिरिक्खाणं जे सासणमम्मादिद्विणो ते सग-सगसंजदासंजदेहिंतो असंखेज्जगुणा, संजमासंजमुवलभदो सासणगुणलभस्स सुलहत्तुवलभा । को गुणगारो ? अवलियाए असंखेज्जदिभागो । तं कथं णव्वेदं ? अंतोसुहुचसुत्तादो, आहरियपरंपरा-गदुवेदादो वा ।

सम्माभिच्छादिद्विणो संखेज्जगुणा ॥ ४३ ॥

तिर्यचगतिमे तिर्यच, पंचेन्द्रियतिर्यच, पंचेन्द्रियपर्याप्त और पंचेन्द्रिययोनिमती तिर्यच जीवोंमें संयतासंयत सबसे कम हैं ॥ ४१ ॥

प्रकृत चारो प्रकारोंके तिर्यचोंमे जो तिर्यच देशव्रती है, वे अपने ही नेप गुण-स्थानवर्ती जीवोंसे थोड़े हैं, इस प्रकार इससे चारों प्रकारके तिर्यचोंके अल्पबहुत्वका मूलपद प्ररूपण किया गया है ।

शंका—देशव्रती अल्प क्यों होते हैं ?

समाधान—क्योंकि, संयमासंयमकी प्राप्ति अतिदुर्लभ है ।

उक्त चारों प्रकारके तिर्यचोंमें संयतासंयतोसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यात-गुणित हैं ॥ ४२ ॥

चारों प्रकारके तिर्यचोंमें जो सासादनसम्यग्दृष्टि जीव हैं, वे अपने अपने संयता-संयतोसे असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि, संयमासंयम-प्राप्तिकी अपेक्षा सासादन गुण-स्थानकी प्राप्ति सुलभ है । गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—अन्तर्मुहूर्त अवहारकालके प्रतिपादक सूत्रसे और आचार्य परम्परासे आवे हुए उपदेशसे यह जाना जाता है ।

उक्त चारो प्रकारके तिर्यचोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्याद्वि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ४३ ॥

二、三、四、五

चउन्विनतिक्विपसामणसम्मादिदुर्द्धतो मग-सगसम्माभिच्छादिद्विणो सखेज्ज-
गुणा । इदं । मानयु । स्क्रमणकालादो मम्मामिच्छादिद्विणमुववरुमणकालस्स तंत-जुत्तीए
मगेज्जगुणनुगंभ । को गुणगरो ? सखेज्जसमया ।

असंजदसमादिद्धी असंखेज्जगुणा ॥ ४४ ॥

चउन्निहतिरिस्मग्गम्मामिच्छादिद्विहितो तेमिं चेप अस्सजसम्ममादिद्विणो अरांखेज-
गुणा । बुदो ? गम्मामिच्छत्तमवुक्कमंतजिहिहो सम्मत्तमुवक्कमंतजिवाणमसंखेजगुण-
त्ताओ । को गुणगाओ ? आपलियाए असरेज्जदिभागो । तं कुदो णव्वदे ? ‘ पल्लिदोवमम-
यहिंदि अतोमपुत्तेणत्ति ’ सुचादो, आहरियपरंपरागदुव्वदेसादो वा ।

मिच्छादिद्वी अणंतगुणा, मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥४५॥
नदुदं तिरिस्सयाणमसंजडस्समादिद्वीहिंतो तेसिं चेव मिच्छादिद्वी अणंतगुणा
अमगेज्जगुणा य । पिप्पडिसिदुमिदं । जदि अणंतगुणा, कधमसंखेज्जगुणाचं ? अह

नारो प्रकारके मासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यचोभसे अपने अपने सम्यग्मित्र्याद्वष्टि निर्गुण सग्यातगुणित है, क्योंकि, मासादत्तसम्यग्दृष्टियोंके उपक्रमणकालसे सम्यग्मित्र्याद्वष्टियोंका उपक्रमणकाल आगम और श्रुक्तिसे संख्यातगुणा पाया जाता है। गुणकार क्या है? सग्यात नमय गुणकार है।

उक्त चार्गे प्रत्नार्गे तिर्यचामे मम्यग्मिथ्याद्विद्योसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीवि ॥ ४४ ॥

चार्ग प्रकाशको सम्यग्मिथ्याद्यष्टि तिर्यचोत्से एनके ह्री असंयतसम्यग्दष्टि जीव संन्यातगुणित हं, स्योकि, सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोत्से सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीव तत्सत्यातगुणित होतें हं। गुणकार न्या है? आवर्ताना असंन्यातवां प्राम गुणकार हं।

अंश—यह किसे जाना जाता है ?

समाधान--' इन जीवराशियोंके प्रमाणडारा अन्तर्मुहूर्त कालसे पल्योपम अपट्टन जाता है' इस उच्ययुगोक्तद्वारेके सूत्रसे और आचार्य परम्परासे आये हुए उपदेशसे जाना जाता है ।

उक्त चारों प्रकारके तिर्यचोमे असंयतसम्बद्घष्टयोसे भिन्न्यादृष्टि जीव अनन्त-
जेत हैं, और भिन्न्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ४५ ॥

चारों प्रकारके असंयतसम्यग्गुण्डि तिर्यचोसे उनके ही भिख्याद्यष्टि तिर्यच अनन्त-
जित ए आर अमंन्यातगुणित भी हे ।

शंका—यह बात तो विप्रतिपिन्दु अर्थात् परस्पर विरोधी है। यदि अनन्त-
गुणित है, तो महा असंख्यातगुणत्व नहीं बन सकता है, और यदि असंख्यातगुणित है, तो

असंखेज्जगुणा, कथयणंतगुणचं; दोण्हमक्कमेण एयत्थ पउत्तिविरोहा ? एत्थ परिहारो उच्चवे- ' जहा उद्देसो तथा णिद्देसो ' ति णायदो ' तिरिक्खमिच्छादिद्वी केनाडिया, अणंता, सेसतिरिक्खतियमिच्छादिद्वी असंखेज्जा ' इदि सुचादो वा एवं संवंधो कीरेद- तिरिक्खमिच्छादिद्वी अणंगुणा, सेसतिरिक्खतियमिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ति, अणहा दोण्हमुच्चारणाए विहलचप्पसंगा । को गुणगारो ? तिरिक्खमिच्छादिद्वीणगभवसिद्धि एहि अणंतगुणो, सिद्धेहि त्रि अणंतगुणो, अणंताणि सव्वजीवरासियदमग्गमूलाणि गुणगारो । को पडिभागो ? तिरिक्खअसजदसम्मादिट्ठिरासी पडिभागो । तेसतिरिक्खतियमिच्छा- दिट्ठिणिं गुणगारो पदरस्य असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ असंरोज्जसेडीपढमवग्ग- मूलमेवाओ । को पडिभागो ? घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, पल्लोदवमस्सासखेज्जदि- भागमेचपदंगुलाणि वा पडिभागो । अधवा सग-सगइत्तगणमसंखेज्जदिभागो (गुणगारो) । को पडिभागो ? सग-सगअसंजदसम्मादिद्वी पडिभागो ।

असंजदसम्भादिद्विहाणे सन्वत्थोवा उवसमसम्भादिह्वा ॥ ४६ ॥

अवलगुणत्व कैसे बन सकता है, क्योंकि, दोनोंकी एक साथ एक अर्थमें प्रगुत्ति होनेका विरोध है ?

समाधान—इस शंकाका परिहार करते हैं— ‘उद्देशके अनुसार निर्देश क्रिया जाता है’ इस न्यायसे, अथवा ‘मिथ्यादृष्टि सामान्य तिर्यच पतितने है? अनन्त है, शेष तीन प्रकारके मिथ्यादृष्टि तिर्यच असल्यात है’ इस सूत्रसे इस प्रकार सरल व्यवहरना चाहिए— मिथ्यादृष्टि सामान्यतिर्यच अनन्तगुणित है और शेष तीन प्रकारके मिथ्यादृष्टि तिर्यच असल्यातगुणित हैं। यदि ऐसा न माना जायगा, तो दोनों पर्याप्तोपचारणोके विफलताका प्रसंग प्राप्त होगा।

यह उपर गुणकार क्या है ? अव्ययसिद्धोंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंसे भी अनन्तगुणा तिर्यच मिथ्यादृष्टियोंका गुणकार है, जो सम्पूर्ण जीवराजिके अनन्त प्रथम वर्गमूल-प्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यचराशि प्रतिभाग है । दोष तिर्यच प्रकारके तिर्यच मिथ्यादृष्टियोंका गुणकार जगप्रतरका असंख्यातवा भाग है, जो जग-श्रेणीके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमित असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवा भाग प्रतिभाग है । अथवा, पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमित प्रतरांगुल प्रतिभाग है । अथवा, अपने अपने द्रव्यका असंख्यातवा भाग गुणकार है । प्रतिभाग क्या है ? अपने अपने असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका प्रमाण प्रतिभाग है ।

तिर्यचोमै असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमे उपजामसम्यग्दृष्टि जीव सर्वसे क्रम
॥ ४६ ॥

तं जहा- चउज्जिहेसु तिरिक्खेसु भणिस्समाणसव्वसम्माइद्विदव्वादो उवसम-
सम्माइदी थोवा, आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तउवक्कमणकालब्भंतरे संचिदत्तादो ।

खइयसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ४७ ॥

कुदो ? असंखेज्जवस्साउगेसु पल्लोवस्स असंखेज्जदिभागमेत्तकालेण संचि-
दत्तादो, अणाइणिहणसरूवेण उवसमसम्मादिद्वीहितो खइयसम्मादिद्विणिं आवलियाए
असंखेज्जदिभागगुणत्तेण अवट्ठणादो वा । आवलियाए असंखेज्जदिभागो गुणगारो त्ति
कथं णव्वदे ? आइरियपरंपरागदुवदेसादो ।

वेदगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ४८ ॥

कुदो ? दंसणमोहणीयक्खएणुप्पणखइयसम्मत्ताणं सम्मत्तुणत्तीदो पुव्वमेव
नद्धतिरिक्खाउआणं पउरं संभवाभावा । ण य लोए सारदव्वणं दुल्लहत्तमप्पसिद्धं, अस्स-
हत्थि-पत्थरादिसु साराणं लोए दुल्लहत्तुवलंभा ।

चह इस प्रकार है- चारों प्रकारके तिर्यचोंमें आगे कहे जानेवाले सर्व सम्यग्दृष्टि-
योंके द्रव्यप्रमाणसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव अल्प हैं, क्योंकि, आवलीके असंख्यातवें भाग-
मात्र उपक्रमणकालके भीतर उनका संचय होता है ।

तिर्यचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि
जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ४७ ॥

क्योंकि, असंख्यात वर्षकी आयुवाले जीवोंमें पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र
कालके द्वारा संचित होनेसे, अथवा अनादिनिधनस्वरूपसे उपशमसम्यग्दृष्टियोंकी
अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका आवलीके असंख्यातवें भाग गुणितप्रमाणसे अवस्थान
पाया जाता है ।

शंका—यहां आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आचार्य परम्परासे आप हुए उपदेशसे जाना जाता है ।

तिर्यचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि
जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ४८ ॥

क्योंकि, जिन्होंने सम्यक्त्वकी उत्पत्तिसे पूर्व ही तिर्यच आयुका बंध कर लिया
है, ऐसे दर्शनमोहनयिके क्षयसे उत्पन्न हुए क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका प्रचुरतासे होना
संभव नहीं है । और, लोकमें सार पदार्थोंकी दुर्लभता अप्रसिद्ध भी नहीं है, क्योंकि,
अरुच, हस्ती ओर पाषाणादिकोंमें सार पदार्थोंकी सर्वत्र दुर्लभता पाई जाती है ।

संजदासंजदट्ठाणे सव्वथोवा उवसमसम्माइदी ॥ ४९ ॥

कुदो ? देसव्वयाणुविद्धुवसमसम्मत्तस्स दुल्लहत्तादो ।

वेदगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ५० ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । एदम्हदो गुणगारादो णव्वदे
समयं पडि तदुवचयादो असंखेज्जगुणत्तेणुवचिदा त्ति असंखेज्जगुणत्तं । एत्थ खइय-
सम्माइदीणमप्पावहुअं किण्णा परूविदं ? ण, तिरिक्खेसु असंखेज्जवस्साउएसु चैय खइय-
सम्मादिद्वीणमुववादुवलंभा । पंचिदियतिरिक्खजोणिणिसु सम्मत्तप्पावहुअविसेसपदु-
प्पायणदुत्तसुत्तं भणदि-

**णवरि विसेसो, पंचिदियतिरिक्खजोणिणीसु असंजदसम्मादिद्वि-
संजदासंजदट्ठाणे सव्वथोवा उवसमसम्माइदी ॥ ५१ ॥**

सुगममेदं ।

वेदगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ५२ ॥

तिर्यचोंमें संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम है ॥४९॥
क्योंकि, देशव्रतसहित उपशमसम्यक्त्वका होना दुर्लभ है ।

तिर्यचोंमें संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव
असंख्यातगुणित हैं ॥ ५० ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । इस गुणकारसे
यह जाना जाता है कि प्रतिसमय उनका उपचय होनेसे वे असंख्यातगुणित संचित हो
जाते हैं, इसलिए उनके प्रमाणके असंख्यातगुणितता वन जाती है ।

शंका—यहां संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि तिर्यचोंका अल्पवहुत्व
क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, असंख्यात वर्षकी आयुवाले भोगभूमियां तिर्यचोंमें
ही क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपाद पाया जाता है ।

अब पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमें सम्यक्त्वके अल्पवहुत्वसम्बन्धी विशेषके
प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेषता यह है कि पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और
संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ ५१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें
उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ५२ ॥

तो गुणगो ? आमल्याण् अमरेज्जदिमो । एत्थ सङ्गसम्मदिट्ठीणमप्या-
वुद्धं णत्थि, मत्तिट्ठीणु मन्मादिट्ठीणमुत्तादाभाज, मणुसगद्धवदिरित्तणगईसु दसण-
मोद्धणीयस्सणाणाभाज्ज ।

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु तिसु अद्वासु उव-
समा पवेसणेण तुल्ला ओवां ॥ ५३ ॥

तिनु रि मणुसु तिणि वि उत्तामया पवेसणेण अण्णेणमवेक्खिय तुल्ला
मरिमा, चउण्णमेत्तचादो । ने च्चेय थोच, उमरिमणुद्वण्णजीवावेक्खाए ।

उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्था तेत्तिया चेव ॥ ५४ ॥

हुदो ? देडिमणुद्वणे पडिक्खणीनाणं चेय उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्थ-
पज्जाण्ण परिणामुलंभा । मंचयस्स अप्पावहुअं किण्ण परुविदं ? ण, पेसप्पावहुएण
चेय तदवमामो । जदो संचओ णाम पवेसाहीणो, तदो पवेसप्पावहुएण सरिसो
मंचयप्पावहुओ चि पुत्र ण उत्तो ।

गुणकार क्या हे ? आबलीका जसंयानवांमग गुणकार हे । यहां पंचेन्द्रियतयंच
मोनिनिर्तामं मारित्तमय्यगट्ठि जीवोंका अत्तपवुत्त्व नहीं है, क्योंकि, सर्व प्रकारकी
मृत्युमें मरणादृष्टि जीवोंका उपपाद नहीं होता है, तथा मनुष्यगतिको छोड़कर अन्य
मृत्युमें दृष्टिमौलनीयकर्मही क्षणाला भी अभान है ।

मनुष्यगतिके मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन
गुणन्तानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ५३ ॥

मूर्खोक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंमें अपूर्वकरण आदि तीनों ही उपशामक जीव
प्रवेशके परस्परही अपेक्षा तुल्य रथानि सदा है, क्योंकि, एक समयमें अधिकसे अधिक
नोपन जीवोंका प्रवेश पाया जाता है । तथा, ये जीव ही उपरिम गुणन्तानोंके जीवोंकी
अपेक्षा अल्प हैं ।

उपशान्तहायवीतरागछग्रस्य जीव प्रवेशसे पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ५४ ॥

क्योंकि, अधन्तन गुणन्तानोंको प्राप्त हुए जीवोंका ही उपशान्तकपायवीतराग-
छग्रस्थरूप पर्यायमें परिणमण पाया जाता है ।

अज्ञा—यहां उपशामकोंके संचयका अल्पवहुत्व क्यों नहीं बतलाया ?

ममानान—नहीं, क्योंकि, प्रवेशसम्बन्धी अल्पवहुत्वसे ही उसका ज्ञान हो
जाता है । चूंकि, संचय प्रवेशके आधीन होता है, इसलिए प्रवेशके अल्पवहुत्वसे
संचयता अल्पवहुत्व सदा है, अतएव उसे पृथक् नहीं बतलाया ।

१ मणुसगदी मन्वानासुपगतमरिप्रमत्ततात्तानां मामान्यत् । स ति. १, ८.

२ व मां 'पवेसाहीणो' या सत्तो 'पवेसाहिणो' इति पाठः ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ ५५ ॥

हुदो ? अहुत्तरसदमेत्तचादो ।

खीणकसायवीदरागछुदुमत्था तेत्तिया चेव ॥ ५६ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तेत्तिया
चेय ॥ ५७ ॥

हुदो ? खीणकसायपज्जाएण परिणदाणं चेय उत्तरगुणद्वणुवक्कमुलंभा ।

सजोगिकेवली अद्दं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ ५८ ॥

मणुस-मणुसपज्जत्तएसु ओघसजोगिरासिं ठविय देडिमरासिणा ओवडिय गुणगारो
उपादेव्वो । मणुसिणीसु पुण तप्पाओगसंखेज्जसजोगिजीवे डविय अहुत्तरसदं मुच्चा
तप्पाओगसंखेज्जखीणकसाएहि ओवडिय गुणगारो उपादेव्वो ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें उपशान्तकपायवीतरागछग्रस्थेसे क्षपक जीव संख्यात-
गुणित हैं ॥ ५५ ॥

क्योंकि, क्षपकसम्बन्धी एक गुणस्थानमें एक साथ प्रवेश करनेवाले जीवोंका
प्रमाण एक लो आठ है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें क्षीणकपायवीतरागछग्रस्य जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही
हैं ॥ ५६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, ये दोनों भी प्रवेशसे
तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ५७ ॥

क्योंकि, क्षीणकपायरूप पर्यायसे परिणत जीवोंका ही आगेके गुणस्थानोंमें
उपक्रमण (गमन) पाया जाता है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित
हैं ॥ ५८ ॥

सामान्य मनुष्य और पर्याप्त मनुष्योंमेंसे ओघ सयोगिकेवलीराशिको स्थापित
करके और उसे अधस्तनराशिके भोजित करके गुणकार उत्पन्न करना चाहिए । किन्तु
मनुष्यनियोंमें उनके योग्य संख्यात सयोगिकेवली जीवोंको स्थापित करके एक लो आठ
संख्याको छोड़कर उनके योग्य संख्यात क्षीणकपायवीतरागछग्रस्थोंके प्रमाणसे भोजित
करके गुणकार उत्पन्न करना चाहिए ।

अपमत्तसंजदा अक्खवा अनुवसमा संखेज्जगुणा ॥ ५९ ॥

मणुस-मणुसपज्जत्ताणं ओघमिह उत्त-अप्पमत्तरासी चैव होदि । मणुसिणीसु पुण तप्पाओगसंखेज्जमेत्तो होदि । सेसं सुगमं ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ६० ॥

एदं पि सुगमं ।

संजदासंजदा संखेज्जगुणा ॥ ६१ ॥

मणुस-मणुसपज्जत्ताणसु संजदासंजदा संखेज्जकोडिमेत्ता । मणुसिणीसु पुण तप्पाओगसंखेज्जरूपमेत्ता ति वेत्तव्वा, वट्टमाणकाले एत्थिया ति उवदेसाभावा । सेसं सुगमं ।

सासणसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ६२ ॥

कुदो ? तत्तो संखेज्जगुणकोडिमेत्तत्तादो । मणुसिणीसु तदो संखेज्जगुणा, तप्पाओगसंखेज्जरूपमेत्तत्तादो । सेसं सुगमं ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सयोगिकेवलीसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्त-संयत संख्यातगुणित हैं ॥ ५९ ॥

ओघप्ररूपणमें कही हुई अप्रमत्तसंयतोंकी राशि ही मनुष्य-सामान्य और मनुष्य-पर्याप्तक अप्रमत्तसंयतोंका प्रमाण है । किन्तु मनुष्यनियोंमें उनके योग्य संख्यात भाग-मात्र राशि होती है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ ६० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत संख्यातगुणित हैं ॥ ६१ ॥ मनुष्य सामान्य और मनुष्य-पर्याप्तकोंमें संयतासंयत जीव संख्यात कोटिप्रमाण होते हैं । किन्तु मनुष्यनियोंमें उनके योग्य संख्यात रूपमात्र होते हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, वे इतने ही होते हैं, इस प्रकारका वर्तमान कालमें उपदेश नहीं पाया जाता । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६२ ॥

क्योंकि, वे संयतासंयतोंके प्रमाणसे संख्यातगुणित कोटिमात्र होते हैं । मनुष्य-नियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मनुष्य-सामान्य और मनुष्य-पर्याप्तक सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे संख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उनका प्रमाण उनके योग्य संख्यात रूपमात्र है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

१ प्रतिपु 'सजदा' इति पाठ । २ तत्त सत्तेयगुणा सयतासयता । स ति १, ८

३ सासादनसम्यग्दृष्टय सत्तेयगुणा । स ति १, ८

सम्माभिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ६३ ॥

एदं पि सुगमं ।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ६४ ॥

कुदो ? सत्तकोडिसयमेत्तत्तादो । सेसं सुगमं ।

भिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा, भिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ६५ ॥

असंखेज्ज-संखेज्जगुणामेगत्थ संभवाभावा एवं संबंधो कीरेदे- मणुसभिच्छा-दिट्ठी असंखेज्जगुणा । कुदो ? सेड्डीए असंखेज्जदिभागपरिमाणत्तादो । मणुसपज्जत्त-मणुसिणी भिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा, संखेज्जरूपपरिमाणत्तादो । सेसं सुगमं ।

असंजदसम्मादिट्ठिहाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ६६ ॥

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यात-गुणित हैं ॥ ६३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६४ ॥

क्योंकि, असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका प्रमाण सात सौ कोटिमात्र है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं, और मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६५ ॥

असंख्यातगुणित और संख्यातगुणित जीवोंका एक अर्थमें होना संभव नहीं है, इसलिए इस प्रकार सम्बन्ध करना चाहिए- असंयतसम्यग्दृष्टि सामान्य मनुष्योंसे मिथ्यादृष्टि सामान्य मनुष्य असंख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उनका प्रमाण जगत्रेणिके असंख्यातवै भाग है । तथा मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनी असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मनुष्य-पर्याप्त और मनुष्यनी मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उनका प्रमाण संख्यात रूपमात्र ही पाया जाता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ६६ ॥

१ सम्यग्मिथ्यादृष्टय सत्तेयगुणाः । स. ति १, ८

२ असंयतसम्यग्दृष्टय सत्तेयगुणा । स ति १, ८

३ मिथ्यादृष्टयोऽसंखेयगुणा । स ति १, ८

खइयसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ६७ ॥

वेदगसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ६८ ॥

एदानी तिणिं नि सुत्तानि सुगमाणि ।

संजदासंजदहाणे सव्वथोवा खइयसम्मादिद्वी ॥ ६९ ॥

रगीणदंणमोहणीयाणं देसमंजेमं वट्टताणं बहूणमभावा । रगीणदंणमोहणीयाणं अमंजदा होदूणं अज्जंति । ते संजम पडिबज्जंता पाएण महव्वयाइं चैव पडिबज्जंति, ण देसव्वयाइं नि उत्तं होदि ।

उवसमसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ७० ॥

मइयसम्मादिद्विसंजदासंजदोहंतो उवसमसम्मादिद्विसंजदासंजदाणं बहूणमुवलंभा ।

वेदगसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ७१ ॥

कुदो ? बहूवायत्तादो, संचयकालस्स बहूत्तादो वा, उवसमसम्मतं पेक्खिय वेदगसम्मतस्स सुलहत्तादो वा ।

उपशमसम्यग्दृष्टिं क्षायिकसम्यग्दृष्टिं संख्यातगुणितं है ॥ ६७ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टिं वेदकसम्यग्दृष्टिं संख्यातगुणितं है ॥ ६८ ॥

ये तीर्णा ही सूर सुगमं है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि सत्रसे कम है ॥ ६९ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीयकर्मका क्षय करनेवाले और देशसंयममें वर्तमान बहुत जीर्णता आभा है । दर्शनमोहनीयता क्षय करनेवाले मनुष्य प्रायः असंयमी होकर रहते हैं । ये संयम हो प्राप्त होते हुए प्रायः महाव्रतोंको ही धारण करते हैं, अणुव्रतोंको नहीं, यह अर्थ कहा गया है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टिसे उपशमसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणितं है ॥ ७० ॥

क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयत मनुष्य प्राप्त पाये जाते हैं ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टिसे वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणितं है ॥ ७१ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टिोंकी अपेक्षा वेदकसम्यग्दृष्टिोंकी आय अधिक है, अर्थात् संचयकाल बहुत हो, अथवा उपशमसम्यक्त्वको देखते हुए अर्थात् उसकी अपेक्षा वेदकसम्यक्त्वका पाना सुलभ है ।

पमत्त-अपमत्तसंजदहाणे सव्वथोवा उवसमसम्मादिद्वी ॥ ७२ ॥

कुदो ? धोवकालसंचयादो ।

खइयसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ७३ ॥

बहुकालसंचयादो ।

वेदगसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ७४ ॥

खइयसम्मतं संजमं पडिबज्जमाणजीवेहिंतो वेदगसम्मतं संजमं पडिबज्जमाणजीवाणं बहूतुवलंभा । मणुसिणीयविसेसपदुप्पायणं उवरिमसुत्तं भणदि-

णवरि विसेसो, मणुसिणीसु असंजद-संजदासंजद-पमत्तापमत्त-संजदहाणे सव्वथोवा खइयसम्मादिद्वी ॥ ७५ ॥

कुदो ? अप्पसत्थवेदोदएण दंसणमोहणीयं खंवत्तजीवाणं बहूणमणुवलंभा ।

उवसमसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ७६ ॥

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सत्रसे कम है ॥ ७२ ॥

क्योंकि, इनका संचयकाल अल्प है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टिसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणितं है ॥ ७३ ॥

क्योंकि, इनका संचयकाल बहुत है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टिसे वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणितं है ॥ ७४ ॥

क्योंकि, क्षायिकसम्यक्त्वके साथ संयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी अपेक्षा वेदकसम्यक्त्वके साथ संयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी अधिकता पाई जाती है । अब मनुष्यनियोंमें होनेवाली विशेषताके प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

केवल विशेषता यह है कि मनुष्यनियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सत्रसे कम हैं ॥ ७५ ॥

क्योंकि, अप्रमत्त वेदके उदयके साथ दर्शनमोहनीयको क्षपण करनेवाले जीव बहुत नहीं पाये जाते हैं ।

असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानवर्ती मनुष्यनियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टिसे उपशमसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणितं है ॥ ७६ ॥

अप्यसत्त्ववेदोदणं' दंसणमोहणीयं खर्वेतजीविहितो अप्यसत्त्ववेदोदणं चैव दंसणमोहणीयं उवसमेतजीवाणं मणुसेसु संखेज्जगुणसुखलंभा ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ७७ ॥
सुगममेदं ।

एवं तिसु अद्वासु ॥ ७८ ॥

एदस्सत्थो- मणुस-मणुसपज्जत्तएसु गिरुद्धेसु तिसु अद्वासु उवसमसम्मादिट्ठी थोवा, थोवकारणत्तादो । खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा, बहुकारणादो । मणुसिणीसु पुण खइयसम्मादिट्ठी थोवा, उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा । एत्थ पुव्वुत्तमेव कारणं । उवसामग-खवगाणं संचयस्स अप्पावहुअपरुवणहुमुत्तरसुत्तं भणदि-

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ ७९ ॥
थोवपवेसादो ।

क्योंकि, अग्रशस्त वेदके उदयके साथ ही दर्शनमोहनीयका क्षण करनेवाले जीवोंसे अग्रशस्त वेदके उदयके साथ ही दर्शनमोहनीयका उपशम करनेवाले जीव मनुष्योंमें संख्यातगुणित पाये जाते हैं ।

असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानवर्ती मनुष्यनियोंमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ७७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इसी प्रकार तीनों प्रकारके मनुष्योंमें अपूर्वकरण आदि तीन उपशमक गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ ७८ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं- मनुष्य-सामान्य और मनुष्य-पर्याप्तकोंसे निरुद्ध अपूर्वकरण आदि तीन उपशमक गुणस्थानोंमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव अल्प होते हैं, क्योंकि, उनके अल्प होनेका कारण पाया जाता है । उनसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उनके बहुत होनेका कारण पाया जाता है । किन्तु मनुष्यनियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव अल्प हैं, और उनसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं । यद्वा संख्यातगुणित होनेका कारण पूर्वोक्त ही है (देखो सूत्र नं ७५) । उपशमक और क्षपकोंके संचयका अल्पबहुत्व प्ररूपण करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं-

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें उपशमक जीव सबसे कम हैं ॥ ७९ ॥

क्योंकि, इनका प्रवेश अल्प होता है ।

१ प्रतिपु 'अप्यसत्त्ववेदोदण' इति पाठः ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ ८० ॥

बहुप्पवेसादो ।

देवगदीए देवेषु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी ॥ ८१ ॥

सम्माभिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ८२ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ८३ ॥

एदाणि तिणिण वि सुत्ताणि सुवोज्झाणि, बहुसो परूविदत्तादो ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ८४ ॥

को गुणगारो ? जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ । केत्तिय-मेत्ताओ ? सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणंगुलस्स असंखेज्जदि-भागो, असंखेज्जपदंगुलाणि वा पडिभागो । सेसं सुगमं ।

असंजदसम्मादिट्ठिद्वाने सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ८५ ॥
सुवोज्झमिदं सुत्तं ।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ८६ ॥

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें उपशमकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ८० ॥
क्योंकि, इनका प्रवेश बहुत होता है ।

देवगतिमें देवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ८१ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ ८२ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं ॥ ८३ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुवोच्य अर्थात् सरलतासे समझने योग्य हैं, क्योंकि, इनका बहुत बार प्ररूपण किया जा चुका है ।

देवोंमें अमंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ८४ ॥

गुणन्तार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातयों भाग गुणकार है, जो असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । वे जगश्रेणिया कितनी हैं ? जगश्रेणीके असंख्यातयों भागमात्र है ।

प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवा भाग प्रतिभाग है, अथवा असंख्यात प्रतरांगुल प्रतिभाग है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ८५ ॥

यह सूत्र सुवोच्य है ।

देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ८६ ॥

२ देवगतौ देवानां नारकवत् । स सि १, ८

को गुणगारो ? आपलियाए असंखेज्जदिभागो । मेसें सुवोच्चं ।

वेदगमम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ८७ ॥

को गुणगारो ? आपलियाए असंखेज्जदिभागो । मेसें सुगमं ।

भवनवाग्मिय-चाणवैतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप-
वासियदेवीओ च सत्तमाए पुढवीए भंगो ॥ ८८ ॥

पदेमिमिदि गत्यज्जहाहो कायवो, अण्णहा गंवंधाभावा । सह्यसम्मादिद्वीणम-
भारं पटि साभमुज्जलंभा सत्तमाए पुढवीए भंगो एदेमिं हेटि । अत्यदो गुण विसेसो
अन्थि, तं भणिम्माभो- नव्वत्थोवा भवणवासियसासणमम्माइही । सम्मामिच्छादिद्वी
संखेज्जगुणा । अयंजदमम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? आपलियाए असंखे-
ज्जदियागो । मिच्छाइही असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो,
असंखेज्जाओ मेडीओ । केत्तियमेत्ताओ ? घणंगुलपडमग्गमूलस्स असंखेज्जदिभाग-
मेत्ताओ । को पडिभागो ? अयंजदसम्मादिद्विरानी पडिभागो ।

गुणकार क्या है ? आवलीका असन्यातया भाग गुणकार है । शेष सूत्रार्थ
सुगम (सुगम) है ।

देवोंमें धार्मिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ८७ ॥

गुणकार क्या है ? आपलीका असन्यातया भाग गुणकार है । शेष सूत्रार्थ
सुगम है ।

देवोंमें भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क देव और देवियां, तथा सौधर्म-ईशान-
रूपवासिनी देवियां, इनका अल्पबहुत्व सातवीं पृथिवीके अल्पबहुत्वके समान है ॥ ८८ ॥

इस ग्रंथमें 'इनका' इस पदका अन्वयाहार करना चाहिए, अन्यथा प्रकृतमें
इसका सम्बन्ध नहीं बनता है । धार्मिकसम्यग्दृष्टियोंके अभावकी अपेक्षा समानता पाई
जानेमें इन सूत्रोंका देव-देवियोंका सातवीं पृथिवीके समान अल्पबहुत्व है । किन्तु अर्थकी
प्रवेष्टा कुछ विशेषता है, उसे कहते हैं- भवनवासी सासादनसम्यग्दृष्टि देव आगे कहीं
जानेवाली राशियोंकी अपेक्षा सरसे कम हैं । उनसे भवनवासी सम्यग्मिथ्यादृष्टि
सम्यातगुणित हैं । उनसे भवनवासी असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं । गुणकार
क्या है ? आपलीका असंख्यातया भाग गुणकार है । उनसे भवनवासी मिथ्यादृष्टि असं-
ख्यातगुणित हैं । गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातया भाग गुणकार है, जो असं-
ख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । वे जगश्रेणिया कितनी हैं ? घनांगुलके प्रथम वर्गमूलके
प्रसंख्यातये भागमात्र हैं । प्रतिभाग क्या है ? असंयतसम्यग्दृष्टि जीवरारि प्रतिभाग है ।

सव्वत्थोवा चाणवैतरसासणसम्मादिद्वी । सम्मामिच्छादिद्वी संखेज्जगुणा ।
अयंजदसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? आपलियाए असंखेज्जदिभागो ।
मिच्छादिद्वी अयंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ
मेडीओ । केत्तियमेत्ताओ ? सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणं-
गुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जपदंगुलाणि वा पडिभागो । एवं जोदिसियाणं पि
वत्तव्वं । सग-सगइत्थिवेदाणं सग-सगोघभंगो । मेसें सुगमं ।

सोहमीसाण जाव सदर-सहस्सारकपवासियदेवेषु जहा देवगह-
भंगो ॥ ८९ ॥

जहा देवोघमिह अप्पावहुअं उच्चं, तथा एदेसिमप्पावहुगं वत्तव्वं । तं जहा-
सव्वत्थोवा सग-सगकपत्था सासणा । सग-सगकपसम्मामिच्छादिद्विणो संखेज्जगुणा ।
सग-सगकपअयंजदसम्मादिद्विणो असंखेज्जगुणा । सग-सगमिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ।
एत्थ गुणगारो जाणिय वत्तव्वो, एगसरुत्तवाभावा । अणंतरउत्तकण्णेषु अयंजदसम्मा-

वानव्यन्तर सासादनसम्यग्दृष्टि देव आगे कहीं जानेवाली राशियोंकी अपेक्षा
सबसे कम हैं । उनसे वानव्यन्तर सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव संख्यातगुणित हैं । उनसे वान-
व्यन्तर असंयतसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं । गुणकार क्या है ? आवलीका असं-
ख्यातया भाग गुणकार है । वानव्यन्तर असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंसे वानव्यन्तर मिथ्यादृष्टि
देव असंख्यातगुणित हैं । गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातया भाग गुणकार है,
जो असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । वे जगश्रेणिया कितनी हैं ? जगश्रेणीके असंख्यातये
भागमात्र हैं । प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका असंख्यातया भाग प्रतिभाग है, अथवा
असंख्यात प्रतरांगुल प्रतिभाग है ।

इसी प्रकार ज्योतिष्क देवोंके अल्पबहुत्वको भी कहना चाहिए । भवनवासी
आदि निकायोंमें अपने अपने स्त्रीविधियोंका अल्पबहुत्व अपने अपने ओघ-अल्पबहुत्वके
समान है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

सौधर्म-ईशान कल्पसे लेकर शतार-सहस्रार कल्प तक कल्पवासी देवोंमें अल्प-
बहुत्व देवगति सामान्यके अल्पबहुत्वके समान हैं ॥ ८९ ॥

जिस प्रकार सामान्य देवोंमें अल्पबहुत्वका कथन किया है, उसी प्रकार इनके
अल्पबहुत्वको कहना चाहिए । वह इस प्रकार है- अपने अपने कल्पमें रहनेवाले सासा-
दनसम्यग्दृष्टि देव सबसे कम हैं । इनसे अपने अपने कल्पके सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव
संख्यातगुणित हैं । इनसे अपने अपने कल्पके असंयतसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं ।
इनसे अपने अपने कल्पके मिथ्यादृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं । यहांपर गुणकार जानकर
कहना चाहिए, क्योंकि, इन देवोंमें गुणकारकी एकरूपताका अभाव है । अभी इन पंडि-

दिट्ठिद्वारेण सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी । खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा । वेदगसमा-
दिट्ठी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? सव्वत्थ आवलियाए असंखेज्जदिभागो चि ।
सेसं सुगमं ।

आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु सव्वत्थोवा सासन-
सम्मादिट्ठी ॥ ९० ॥

सुगममेदं सुत्त ।

सम्माभिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ९१ ॥

एदं पि सुगमं ।

भिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ९२ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कधमेदं णव्वेदे ? दव्याणि-
ओगद्धारसुत्तादो ।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ९३ ॥

कहे गये कल्पोमं असंयतसम्यग्दष्टि गुणस्थानमं उपशमसम्यग्दष्टि देव सबसे कम हैं ।
इनसे क्षायिकसम्यग्दष्टि देव असंख्यातगुणित है । इनसे वेदकसम्यग्दष्टि देव असंख्यात-
गुणित हैं । गुणकार क्या है ? सर्वत्र आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । दोष
स्वार्थ सुगम है ।

आनत-प्राणत कल्पसे लेकर नवग्रेवैयक विमानों तक विमानवासी देवोंमें सासा-
दनसम्यग्दष्टि सबसे कम हैं ॥ ९० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त विमानोंमें सासादनसम्यग्दष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादष्टि देव संख्यातगुणित
हैं ॥ ९१ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त विमानोंमें सम्यग्मिथ्यादष्टियोंसे मिथ्यादष्टि देव असंख्यातगुणित
हैं ॥ ९२ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—द्रव्यानुरोगद्वारसूत्रसे जाना जाता है कि उक्त कल्पोंमें मिथ्यादष्टि
देवोंका गुणकार आवलीका असंख्यातवा भाग है ।

उक्त विमानोंमें मिथ्यादष्टियोंसे असंयतसम्यग्दष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ ९३ ॥

कुदो ? मणुसेहितो आणदादिसु उपपज्जमाणमिच्छादिट्ठी पेक्खिय तत्थुप्पज्ज-
माणसम्मादिट्ठीणं संखेज्जगुणात्तादो । देवलोए सम्मत्तमिच्छाणि पडिवज्जमाणजीवाणं
किण्ण पहाणत्तं ? ण, तेसिं मूलरासिस्स असंखेज्जदिभागत्तादो । को गुणगारो ?
संखेज्जसमया ।

असंजदसम्मादिट्ठिद्वारेण सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ९४ ॥

कुदो ? अंतोयुहुत्तकालसंचिदत्तादो ।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ९५ ॥

कुदो ? संखेजसागरोवमकालेण संचिदत्तादो । को गुणगारो ? आवलियाए
असंखेज्जदिभागो । संचयकालपडिभागेण पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागो गुणगारो
किण्ण उच्चदे ? ण, एगसमएण पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तजीवाणं उवसम-
सम्मत्तं पडिवज्जमाणसुवलंभा ।

क्योंकि, मनुष्योंसे आनत आदि विमानोंमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादष्टियोंकी
अपेक्षा वहांपर उत्पन्न होनेवाले सम्यग्दष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं ।

शंका—देवलोकेमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी प्रधानता क्यों
नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यादष्टि जीव मूलराशिके असंख्यातवे
भागमात्र होते हैं ।

उक्त विमानोंमें सम्यग्दष्टियोंका गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

आनत-प्राणत कल्पसे लेकर नवग्रेवैयक तक असंयतसम्यग्दष्टि गुणस्थानमें
उपशमसम्यग्दष्टि देव सबसे कम हैं ॥ ९४ ॥

क्योंकि, वे केवल अन्तर्बुद्धते कालके द्वारा संचित होते हैं ।

उक्त विमानोंमें उपशमसम्यग्दष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दष्टि देव असंख्यातगुणित
हैं ॥ ९५ ॥

क्योंकि, वे संख्यात सागरोपम कालके द्वारा संचित होते हैं । गुणकार क्या है ?
आवलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है ।

शंका—संचयकालरूप प्रतिभाग होनेकी अपेक्षा पल्योपमका असंख्यातवां भाग
गुणकार क्यों नहीं कहा है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, एक समयके द्वारा पल्योपमके असंख्यातवे भागमात्र
जीव उपशमसम्यग्दष्टिको प्राप्त होते हुए पाये जाते हैं ।

पर्याप्त, शायित्सम्य स्वरूपे साय मरण कर याणं उत्पन्न होनेवाले संयतोंकी

तदसंभवा । जदि एवं, तो आणदादिदेवसु वासपुत्रचंतेसु संखेज्जावलओवडिदपल्लो-
वममेत्ता जीवा क्रिणा हँति ? ण, तत्थतणमिच्छादिद्विआदीणमवहारकालस्स असंखेज्जा-
वलियत्तं फिड्ढिण संखेज्जावलियमेत्तअवहारकालप्पसंगा । होदु चे ण, 'आणद-पणद
जाव णवगेवज्जविमाणवासियेदेवसु मिच्छादिद्विपहुडि जाव असंजदसम्मादिद्वी दव्व-
पमाणेण केवडिया, पल्लोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एदेहि पल्लोवममवहिरदि अंतो-
मुहुत्तेण । अणुदिसादि जाव अत्राहदविमाणवासियेदेवसु असंजदसम्मादिद्वी दव्वपमाणेण
केवडिया, पल्लोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एदेहि पल्लोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेणेत्ति' ।
एदेण दव्वसुत्तेण जुत्तीए सिद्धअसंखेज्जावलियभागहारगम्भेण सह विरोहा ।

एव गदिसगणा समत्ता ।

शंका—यदि ऐसा है तो वर्षपृथक्त्वके अन्तरसे युक्त आनतादि कल्पवासी
देवोंमें संख्यात आवलियोंसे भाजित पर्योपमप्रमाण जीव क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ऐसा माननेपर वहाँके मिथ्यादृष्टि आदिकोंके अव-
हारकालके असंख्यात आवलीपना न रहकर संख्यात आवलीमात्र अवहारकाल प्राप्त
होनेका प्रसंग आ जायगा ।

शंका—यदि मिथ्यादृष्टि आदि जीवोंके अवहारकाल संख्यात आवलीप्रमाण
प्राप्त होते हैं, तो होने दो ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ऐसा मानने पर 'आनत-प्राणतकल्पसे लेकर नवत्रैवेयक
विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक
जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । इन
जीवरशियोंके द्वारा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्योपम अपहृत होता है । नव अनुदिशोंसे लेकर
अपराजितनामक अनुत्तर विमान तक विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीव
द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । इन जीव-
राशियोंके द्वारा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्योपम अपहृत होता है' । इस प्रकार युक्तिसिद्ध
असंख्यात आवलीप्रमाण भागहार जिनके गर्भमें हैं, ऐसे इन द्रव्यानुयोगद्वारके सूत्रोंके
साथ पूर्वोक्त कथनका विरोध आता है ।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई ।

इंदियाणुवादेण पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्तएसु ओधं । णवरि
मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणां ॥ १०३ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे- सेसिंदिएसु एगगुणद्वगणेसु अप्पावहुअस्साभाव-
पदुप्पायणमुहेण पंचिदियप्पावहुअपदुप्पायणदं पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्तगहणं कदं ।
जथा ओघम्मि अप्पावहुअं कदं, तथा एत्थ वि अण्णाहियमप्पावहुअं कायव्वं । णवरि
एत्थ असंजदसम्मादिद्वीहितो मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ति अभणिदूण असंखेज्जगुणा
त्ति वत्तव्वं, अणंतगं पंचिदियाणमभावा । को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो,
असंखेज्जाओ सेडीओ । केचियमेत्ताओ ? सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ?
घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पदंगुलाणि । अधवा पंचिदिय-पंचिदिय-
पज्जत्तमिच्छादिद्वीणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? सग-सगअसंजदसम्मादिद्विरासी ।

इन्द्रियमार्गणके अनुवादेसे पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्तिकोमें अल्पबहुत्व
ओघके समान है । केवल विशेषता यह है कि असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव
असंख्यातगुणित हैं ॥ १०३ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— शेष इन्द्रियवाले अर्थात् पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय-
पर्याप्तिकोंसे अतिरिक्त जीवोंमें एक गुणस्थान होता है, इसलिये उनमें अल्पबहुत्वके
अभावके प्रतिपादनद्वारा पंचेन्द्रियोंके अल्पबहुत्वके प्रतिपादन करनेके लिए सूत्रमें पंचे-
न्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तक पदका ग्रहण किया है । जिस प्रकार ओघमें अल्पबहुत्वका
कथन किया है, उसी प्रकार यहाँ भी हीनता और अधिकतासे रहित अल्पबहुत्वका कथन
करना चाहिए । केवल इतनी विशेषता है कि यहापर असंयतसम्यग्दृष्टि पंचेन्द्रियोंसे
मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय अनन्तगुणित हैं, ऐसा न कहकर असंख्यातगुणित हैं, ऐसा कहना
चाहिए, क्योंकि, अनन्त पंचेन्द्रिय जीवोंका अभाव है । पंचेन्द्रिय असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे
पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, यहाँ गुणकार क्या है ? जगप्रतरका
असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो असंख्यात जगत्रेणीप्रमाण है । वे जगत्रेणिया कितनी
हैं ? जगत्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवां
भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरंगुलप्रमाण है । अथवा, पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय-
पर्याप्तक मिथ्यादृष्टियोंका असंख्यातवा भाग गुणकार है । प्रतिभाग क्या है ? अपनी
अपनी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवराशि प्रतिभाग है ।

१ इन्द्रियाद्यवादेन पंचेन्द्रिय विच्छेदेषु गुणस्थानेदो नास्त्यल्पबहुत्वाभाव । इन्द्रिय प्रत्युच्यते-
पंचेन्द्रियाद्येनेन्द्रियान्ता उत्तरोत्तर बहवः । पंचेन्द्रियाणां सामान्यवत् । अयं तु विशेष-मिथ्यादृष्टयोऽसंख्यगुणा ।
स लि १, ८

मत्स्यागन्धर्वपत्न्याणाञ्चपावहृशाणि एत्य क्रिण्व परुतिदाणि ? न, परत्याणादो चैव तेमि
दोषप्रसाराय ।

एव उदियमगणा सम्मत्ता ।

कायाणुवादेण तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु ओधं । णवरि
मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणां ॥ १०४ ॥

गृह्मन्मन्त्रो- णगुणद्व्याण-मेयकाएसु अपावहृअं णत्थि त्ति जाणावण्हं तसकाइय-
तसकाइयपज्जत्तगद्वणं कटं । एदेसु देसु नि अपावहृअं जथा ओघम्मि कटं, तथा
तादन्तं, विवेयाभाया । णरि मग-सगअमजदसम्मादिद्वीहिंतो मिच्छादिद्वीणं अणंतगुणत्ते
पत्ते तापडिमेद्वमगंउगुणा त्ति उत्तं, तसकाइय-तसकाइयपज्जत्ताणमाणितियाभावादो ।
को गुणगो ? पदस्म अमंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ सेडीए असंखेज्जदि-

अंका-एस्थान अल्पवहुत्व और सर्वपरस्थान अल्पवहुत्व यहांपर क्यों नहीं कहे ?
गमाधान- नहीं, क्योंकि, परस्थान अल्पवहुत्वसे ही उन दोनों प्रकारके अल्प-
वहुत्वोंका ज्ञान हो जाता है ।

इस प्रकार इन्द्रियमार्गणा समाप्त हुई ।

कायमार्गणाके अनुवादसे त्रसकायिक और त्रसकायिक-पर्याप्तकोंमें अल्पवहुत्व
आनेके समान है । केवल विशेषता यह है कि अमंयतसम्पदृष्टियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव
अमंयत्वात्तगुणित हैं ॥ १०४ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं- एकमात्र मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवाले दोष स्थावर-
तारित और त्रसकायिक लक्ष्यपर्याप्तकोंमें अल्पवहुत्व नहीं पाया जाता है, यह ज्ञान
करनेके लिए सूत्रमें त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तक पदका ग्रहण किया है ।
त्रिस प्रकार ओषधप्रणाममें अल्पवहुत्व कहा आप है, उसी प्रकार त्रसकायिक और
त्रसकायिक पर्याप्तक, इन दोनोंमें भी अल्पवहुत्वका कथन करना चाहिए, क्योंकि, ओघ-
प्रत्यापत्ताने इनके अल्पवहुत्वमें कोई विशेषता नहीं है । केवल अपने अपने असंयत-
सम्पदृष्टियोंके प्रमाणसे मिथ्यादृष्टियोंके प्रमाणके अनन्तगुणत्व प्राप्त होनेपर उसके
प्रतिरोध करनेके लिए असंयतसम्पदृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंयत्वात्तगुणित हैं, ऐसा
कहा है, क्योंकि, त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तक जीवोंका प्रमाण अनन्त नहीं
है । गुणकार क्या है ? जगत्प्रसरका असंयत्वात्तवां भाग गुणकार है, जो जगत्त्रेणीके असं-

१ गणगुणत्ते स्यामगोणं तात्परात्तंदागोतात्पर्यबहुताभावात् । मय प्रयुच्यते । मन्तत्तेजस्वयिका
२ स्या । २ नो स्याः प्रमितीतापिचः । ततोऽप्यपिच । ततो ज्ञानमपिच । मन्तत्तेजस्वयिका वनस्यतय ।
३ मन्तत्तेजस्वयिका वनस्यतय । म नि १, ८ ।

भागमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जजणि पदंगुलणि ।
सेमं सुगमं ।

एव कायमगणा सम्मत्ता ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-ओरालिय-
कायजोगीसु तीसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवां ॥ १०५ ॥

एदेहि उत्तसवजोगेहि सह उवसमसेहि चंडताणं बुक्कस्सेण चउवणचमत्थि त्ति
तुल्लत्तं परुविदं । उवरिमगुणद्व्याणजीविहिंतो ऊणा त्ति थोवा त्ति परुविदा । एदेमि वारस-
ण्हमप्यावहुआणं तिसु अद्वासु द्विदउवसमगा मूलपदं जादा ।

उवसंतकसायवीदरागछुट्ठमत्था तेत्तिया चैव ॥ १०६ ॥
सुगममेदं ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १०७ ॥

अदुत्तरसदपरिमाणत्तादो ।

ख्यातवै भागमात्र असंयत्ता जगत्त्रेणीप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका असं-
ख्यातवां भाग प्रतिभाग है, जो असंयत्ता प्रतरंगुलप्रमाण है । दोष सूत्रार्थ सुगम है ।

इस प्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई ।

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचा मनोयोगी, पांचा वचनयोगी, काययोगी और
औदारिककाययोगियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी
अपेक्षा परस्पर तुल्य और अल्प हैं ॥ १०५ ॥

इन सूत्रोक्त सर्व योगोंके साथ उपशामक्रेणी पर चढ़नेवाले उपशामक जीवोंकी
संख्या उत्कर्षसे चोपन होती है, इसलिए उनकी तुल्यता कही है । तथा उपरिम अर्थात्
क्षपक्रेणीसम्बन्धी गुणस्थानवर्ती जीवोंसे कम होते हैं, इसलिए उन्हें अल्प कहा है ।
इस प्रकार पांचों मनोयोगी, पांचा वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगी, इन
चारह अल्पवहुत्वोंका प्रमाण लानेके लिए अपूर्वकरण आदि तीनों गुणस्थानोंमें स्थित
उपशामक मूलपद अर्थात् अल्पवहुत्वके आधार हुए ।

उक्त चारह योगवाले उपशान्तकपायवीतरागछुट्ठस्य जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही
हैं ॥ १०६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त चारह योगवाले उपशान्तकपायवीतरागछुट्ठस्यैसे क्षपक जीव संख्यात-
गुणित हैं ॥ १०७ ॥

स्वयंकि, क्षपकोंकी संख्याका प्रमाण एक सौ आठ है ।

१ योगद्वयादेन वाक्स्मानमयोशितं पचेन्द्रियवत् । काययोगिनां मामान्यवत् । स नि १, ८.

स्वीणकसायवीदरागछुमत्था तत्तिया चैव ॥ १०८ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली पवेसणेण तत्तिया चैव ॥ १०९ ॥

एदं पि सुगमं । जेसु जोगेसु सजोगिगुणद्वयं संभवदि, तेसिं चैवेदमप्याबहुअं वेत्तव्वं ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुव्व संखेज्जगुणा ॥ ११० ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । जहा ओघस्सिह संखेज्जसमयसाहर्णं कदं, तहा एत्थ वि कायव्वं ।

अपमत्तसंजदा अमखवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ १११ ॥

एत्थ वि जहा ओघस्सिह गुणगारो साहिदो तहा साहेदव्वो । गवरि अप्पिदजोग-जीवरासिपमाणं गादूण अप्पावहुअं कायव्वं ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ११२ ॥

उक्त वारह योगवाले क्षीणकृपायवीतरागछुमत्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १०८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सयोगिकेवली जीव प्रवेशकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ १०९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है । किन्तु उपर्युक्त वारह योगोंसे जिन योगोंमें सयोगिकेवली गुणस्थान सम्भव है, उन योगोंका ही यह अल्पबहुत्व ग्रहण करना चाहिए ।

सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ ११० ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । जिस प्रकार ओघमें संख्यात समयरूप गुणकारका साधन किया है, उसी प्रकार यहाँपर भी करना चाहिए ।

सयोगिकेवलीसे उपर्युक्त वारह योगवाले अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्त-संयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १११ ॥

जिस प्रकारसे ओघमें गुणकार सिद्ध किया है, उसी प्रकारसे यहाँपर भी सिद्ध करना चाहिए । केवल विदोषता यह है कि विवक्षित योगवाली जीवराशिके प्रमाणको जानकर अल्पबहुत्व करना चाहिए ।

उक्त वारह योगवाले अप्रमत्तमंतयोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ११२ ॥

सुगममेदं ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ ११३ ॥

को गुणगारो ? पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागस्स संखेज्जदिभागो । सेसं सुगमं ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ११४ ॥

को गुणगारो ? आनलियाए असंखेज्जदिभागो । कारणं जाणिदूण वत्तव्वं ।

सभामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ११५ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । एत्थ वि कारणं णिहालिय वत्तव्वं ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ११६ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । जोगद्वयं समासं कादूण तेण साम्मणरासिसोवड्डिय अप्पिदजोगद्वयए गुणिदे इच्छिद-इच्छिदरासीओ हेंति । अणेण पयारेण सब्बत्थ दव्वपमाणसुप्पाइय अप्पावहुअ वत्तव्वं ।

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त वारह योगवाले प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ११३ ॥ गुणकार क्या है ? पल्लोपमके असंख्यातवें भागका संख्यातवां भाग गुणकार है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

उक्त वारह योगवाले संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ११४ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । इसका कारण जानकर कहना चाहिए (देखो इसी भागका पृ २४९) ।

उक्त वारह योगवाले सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्भिध्यादृष्टि जीव संख्यात-गुणित हैं ॥ ११५ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । यहाँ पर भी इसका कारण स्मरण कर कहना चाहिए (देखो इसी भागका पृ २५०) ।

उक्त वारह योगवाले सम्यग्भिध्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यात-गुणित हैं ॥ ११६ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है । योगसम्बन्धी कालोंका समास (योग) करके उससे सामान्यराशिको भाजित कर पुनः विवक्षित योगके कालसे गुणा करनेपर इच्छित इच्छित योगवाले जीवोंकी राशियां हो जाती हैं । इस प्रकारसे सर्वत्र द्रव्यप्रमाणको उत्पन्न करके उनका अल्पबहुत्व कहना चाहिए ।

मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा, मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ॥१७॥

एतत् प्रं मंधो कायव्यो । तं जहा- पंचमणजोगि-पंचवचिजोगिअसंजदम्ममा-
दिद्वीहिंतो तेमिं नेर जोगाणं मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा । को गुणगरो ? पदस्स
असंखेज्जदिभागो, अमंखेज्जाओ मेडीओ । केतियेत्ताओ ? सेडीए असंखेज्जदिभाग-
मेत्ताओ । को पडिभागो ? घणंगुलम्म अमंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पदरंगुलाणि ।
कायजोगि-ओरालियकायजोगिअमंजदम्ममादिद्वीहिंतो तेसं चैव जोगाणं मिच्छादिद्वी
अणंतगुणा । को गुणगरो ? अभवमिदिएहिं अणंतगुणो, सिद्धेहिं वि अणंतगुणो,
अणंतानि मवाजीनरामिपडमवगमभूलाणि चि ।

असंजदसम्मादिद्वि-संजदासंजद-पमत्तापमत्तसंजदद्वीणे सम्भत्त-
प्पावहुअमोघं ॥ ११८ ॥

एदंमिं गुणद्वीणाणं जथा ओवमिह सम्भत्तप्पावहुअं उत्तं, तथा एतत्ति वि
अणूणादियं उत्तन्नं ।

उक्त वारह योगवाले अमंयतसम्यग्दृष्टियोंमें (पांचों मनोयोगी, पांचों वचन-
योगी) मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, और (ताययोगी तथा औदारिक-
काययोगी) मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ ११७ ॥

यद्यपि इत्थ प्रकार मन्थन करना चाहिए । जैसे- पांचों मनोयोगी और पांचों
वचनयोगी पंचयतसम्यग्दृष्टियोंमें उन्हीं योगोंके मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ।
गुणकार क्या हैं ? जगप्रतरका अमन्यताया भाग गुणकार है, जो असंख्यात जगध्रेणी-
प्रमाण हैं । ये जगध्रेणियों कितनी हैं ? जगध्रेणीके असंख्यातव भागप्रमाण है । प्रतिभाग
क्या है ? वनागुलका असंख्यातमा भाग प्रतिभाग है, जो अमंयतात प्रतरंगुलप्रमाण है ।
काययोगी और औदारिककाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे उन्हीं योगोंके मिथ्यादृष्टि
जीव अनन्तगुणित हैं । गुणकार क्या है ? अमध्यसिद्धोंसे अनन्तगुणित और सिद्धोंसे
भी अनन्तगुणित राशि गुणकार है, जो सभी जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

उक्त वारह योगवाले जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और
अप्रमत्तसंयत गुणन्यातमें मन्थस्त्वन्वन्धी अल्पवहुत्व ओषके समान हैं ॥ ११८ ॥

इत्थ प्रकार चारों गुणस्थानोंका जिस प्रकार ओषमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्प-
वहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहाँपर भी हीनता और अधिकतासे रहित अर्थात् तत्त्वमात्र
की अल्पवहुत्व कहना चाहिए ।

एवं तिसु अद्वासु ॥ ११९ ॥

सुगममेदं ।

संवत्थोवा उवसमा ॥ १२० ॥

एदं पि सुगमं ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १२१ ॥

अपिदजोगउवसाभगेहिंतो अपिदजोगाणं सवा संखेज्जगुणा । एतत् पदोव-
संखेवेण मूलरासिमाद्विय अपिदपक्खेवेण गुणिय इच्छिदरासिपमाणमुपपाएदव्वं ।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु संवत्थोवा सजोगिकेवली ॥१२२॥

कनाडे चडणोयरणक्रिययावावदचालीसजीवमनलंगादो थोवा जादा ।

असंजदसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ १२३ ॥

कुदो ? देव-गेरइय-मणुस्सेहिंतो आगंतूण तिरिक्खमणुसेसुप्पणाणं असंजद-
सम्मादिद्वीणमोरालियमिरसिम्ह सजोगिकेवलीहिंतो संखेज्जगुणाणमुवलंभा ।

इसी प्रकार उक्त वारह योगवाले जीवोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें
सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पवहुत्व है ॥ ११९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त वारह योगवाले जीवोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ १२० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त वारह योगवाले उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १२१ ॥

विवक्षित योगवाले उपशामकोंसे विवक्षित योगवाले क्षपक जीव संख्यातगुणित
होते हैं । यहाँपर प्रक्षेप प्रक्षेपके द्वारा मूलजीवराशिको भाजित करके विवक्षित प्रक्षेप-
राशिसे गुणा कर इच्छित राशिका प्रमाण उत्पन्न कर लेना चाहिए (देखो द्रव्यप्र
भाग ३ पृ. ४८-४९) ।

औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सयोगिकेवली सबसे कम हैं ॥ १२२ ॥

क्योंकि, कपाटसमुद्रातके समय आरोहण और अवतरणक्रियामें संलग्न चालीस
जीवोंके अवलम्बनसे औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सयोगिकेवली सबसे कम हो जाते हैं ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सयोगिकेवली जिनोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव
संख्यातगुणित हैं ॥ १२३ ॥

म्योंकि, देव, नारकी और मनुष्योंसे आकर तिर्यच और मनुष्योंमें उत्पन्न होने-
वाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोगोंमें सयोगिकेवली जिनोंसे संख्यात-
गुणित पाये जाते हैं ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १२४ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढम-
वग्गमूलाणि ।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ १२५ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिहं अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंतगुणो
सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठीणो सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ १२६ ॥

दंसणमोहणीयखएणुप्पणसइहणाणं जीवाणमइदुल्लभत्तादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १२७ ॥

खओवसमियसम्मत्ताणं जीवाणं बहूणमुवलंभा । को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

वेउव्वियकायजोगीसु देवगदिमंगो ॥ १२८ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगियोमैं असंयतसम्यग्दृष्टियोसैं सासादनसम्यग्दृष्टि जीव
असंख्यातगुणित हैं ॥ १२४ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोमैं सासादनसम्यग्दृष्टियोसैं मिथ्यादृष्टि जीव अनन्त-
गुणित हैं ॥ १२५ ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धौसैं अनन्तगुणित और सिद्धौसैं भी अनन्तगुणित
राशि गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोमैं असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमैं क्षायिकसम्यग्दृष्टि
जीव सबसे कम हैं ॥ १२६ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीयकर्मके क्षयसे उत्पन्न हुए श्रद्धानवाले जीवोंका होना
अतिदुर्लभ है ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोमैं असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमैं क्षायिकसम्यग्दृष्टियोसैं
वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ १२७ ॥

क्योंकि, क्षायोपशमिक सम्यक्त्ववाले जीव बहुत पाये जाते हैं । गुणकार क्या
है ? संख्यात समय गुणकार है ।

वैक्रियिककाययोगियोमैं (संभव गुणस्थानवर्ती जीवोंका) अल्पबहुत्व देवगतिके
समान है ॥ १२८ ॥

जधा देवगदिमिह अप्पाबहुअं उच्चं, तथा वेउव्वियकायजोगीसु वत्तव्वं । तं जधा-
सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी । सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा । असंजदसम्मादिट्ठी
असंखेज्जगुणा । मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा । असंजदसम्मादिट्ठीणो सव्वत्थोवा उवसम-
सम्मादिट्ठी । खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा । वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी ॥ १२९ ॥

कारण पुव्वं व वत्तव्वं ।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १३० ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । एत्थ कारणं संभालिय वत्तव्वं ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १३१ ॥

को गुणगारो ? पदस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ सेडीए
असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि
पदंगुलाणि ।

जिस प्रकार देवगतिमें जीवोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार वैक्रियिककाय-
योगियोमें कहना चाहिए । जैसे- वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे
कम हैं । उनसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं । उनसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव
असंख्यातगुणित हैं । उनसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं । असंयतसम्यग्दृष्टि
गुणस्थानमें वैक्रियिककाययोगी उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं । उनसे क्षायिक-
सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं । उनसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोमैं सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १२९ ॥

इसका कारण पूर्वके समान कहना चाहिए ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोमैं सासादनसम्यग्दृष्टियोसैं असंयतसम्यग्दृष्टि जीव
संख्यातगुणित हैं ॥ १३० ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । यहांपर कारण
संभालकर कहना चाहिए ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोमैं असंयतसम्यग्दृष्टियोसैं मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यात-
गुणित हैं ॥ १३१ ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो असंख्यात
जगश्रेणिप्रमाण है । वे जगश्रेणिया भी जगश्रेणिके असंख्यातवै भागमात्र हैं । प्रसिभाग
क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवा भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण है ।

॥ १४९ ॥

अमंजदसम्मादिट्ठिणो सव्वथोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ १३२ ॥

कुदो ? उवसमसम्मात्तेण मत्त उवसमेदिमिह मत्तजीनाणमइथोवत्तादो ।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १३३ ॥

उत्तामेगंतितां मरोज्जगुणअसंजदयम्मादिट्ठिआदिगुणद्वान्हितो संचयसंभवो ।

वेदगमम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १३४ ॥

तिगिगंतिजो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तवेदगसम्मादिट्ठिजीनाणं देवेसु उतादगंभादो । नो गुणगतो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदो-
वमपडमवगमूलाणि ।

आहारकायजोगिआहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तंसंजदट्ठिणे
सव्वथोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ १३५ ॥

सुगममेदं ।

नैत्तिकियमिअकाययोगियों असंयतसम्यग्दष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दष्टि
जीन सवये कम हैं ॥ १३२ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणीमें मेरे हुए जीवोंका प्रमाण अत्यन्त
न्यून होता है ।

नैतिकियमिश्रकाययोगियों असंयतसम्यग्दष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दष्टि-
गोंमे धायिकसम्यग्दष्टि जीन संख्यातगुणित हैं ॥ १३३ ॥

क्योंकि, उपशमश्रेणीमें मेरे हुए उपशमकोंसे संख्यातगुणित असंयतसम्यग्दष्टि
आदि गुणस्थानोंकी अपेक्षा धायिकसम्यग्दष्टियोंका संचय सम्भव है ।

नैतिकियमिश्रकाययोगियों अमंयतसम्यग्दष्टि गुणस्थानमें धायिकसम्यग्दष्टियोंसे
वेदकसम्यग्दष्टि जीन अमंख्यातगुणित हैं ॥ १३४ ॥

क्योंकि, तिर्यगोंसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र वेदकसम्यग्दष्टि जीवोंका
रोंमें उत्पन्न होता संभव है । गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग
गुणकार है, जो पल्योपमके अवस्थात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

आहारकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियों प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें
धायिकसम्यग्दष्टि जीन सबसे कम हैं ॥ १३५ ॥

यह मूल सुगम है ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १३६ ॥

एदं पि सुगमं । उवसमसम्मादिट्ठीणमेत्थ संभवाभावा तेसिम्पपवहुगं ण कहिदं ।
किमिदं उवसमसम्मात्तेण आहारिद्वी ण उप्वज्जदि ? उवसमसम्मात्तकालमिह अइदहरमिह
तदुपत्तीए संभवाभावा । ण उवसमसोडिमिह उवसमसम्मात्तेण आहारिद्वीओ लब्भइ,
तत्थ पमादाभावा । ण च तत्तो ओइण्णाण आहारिद्वी उवलब्भइ, जत्तियमेत्तेण कालेण
आहारिद्वी उप्वज्जइ, उवसमसम्मात्तस्स तत्तियमेत्तकालमवट्ठणाभावा ।

कम्मइयकायजोगीसु सव्वथोवा सजोगिकेवली ॥ १३७ ॥

कुदो ? पदर-लेणरूणेषु उक्कस्सेण सट्ठिमेत्तसजोगिगंलीणमुवलंभा ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १३८ ॥

कों गुणगतो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपडम-
वगमूलाणि ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियों प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें
धायिकसम्यग्दष्टियोंमे वेदकसम्यग्दष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १३६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है । इन दोनों योगोंमें उपशमसम्यग्दष्टि जीवोंका होना
सम्भव नहीं है, इसलिए उनका अल्पवहुत्व नहीं कहा है ।

शंका—उपशमसम्यक्त्वके साथ आहारककद्वि क्यों नहीं उत्पन्न होती है ?

समाधान—क्योंकि, अत्यन्त अल्प उपशमसम्यक्त्वके कालमें आहारककद्वि का
उत्पन्न होना सम्भव नहीं है । न उपशमसम्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणीमें आहारककद्वि पाई
जाती है, क्योंकि, बहुपर प्रमादका अभाव है । न उपशमश्रेणीसे उत्तरे हुए जीवोंके भी उप-
शमसम्यक्त्वके साथ आहारककद्वि पाई जाती है, क्योंकि, जितने कालके द्वारा आहारक-
कद्वि उत्पन्न होती है, उपशमसम्यक्त्वका उतने काल तक अवस्थान नहीं रहता है ।

कर्मणकाययोगियों सयोगिकेवली जिन सबसे कम हैं ॥ १३७ ॥

क्योंकि, प्रतर और लोकपूरणसमुदातमें अधिकसे अधिक केवल साठ सयोगि-
केवली जिन पाये जाते हैं ।

कर्मणकाययोगियों सयोगिकेवली जिनोंसे सासादनसम्यग्दष्टि जीव असंख्यात-
गुणित हैं ॥ १३८ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ १३९ ॥

को गुणगारा ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । एत्थ कारणं णादण वचनं ।

मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ॥ १४० ॥

को गुणगारो ? अममसिद्धिह्रि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंतगि सव्वजीवरासिपढमवगमभूलाणि ।

असंजदसम्मादिद्विहाणे सवत्थोवा उवसमसम्मादिद्वी ॥ १४१ ॥

कुदो ? उवसमसेडिग्गिह उवसमसम्मेणे मदसंजदणं संखेज्जत्तादो ।

खइयसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ १४२ ॥

पलिदोवमस असंखेज्जदिभागमेत्तखइयसम्मादिद्वीहिंतो असंखेज्जजीवा विगगं किण कंति ति उत्ते उच्चदे— ण ताव देवा खइयसम्मादिद्विणां असंखेज्जा अक्कमेण मंति, मणुसेसु असंखेज्जखइयसम्मादिद्विप्पसंगा । ण च मणुसेसु असंखेज्जा मंति,

कार्मणकाययोगियों सानादनसम्यग्दृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यात-गुणित हैं ॥ १३९ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । यहांपर इसका कारण जानकर कहना चाहिए । (देखो इसी भागका पृ. ४११)

कार्मणकाययोगियों असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ १४० ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंसे भी अनन्तगुणा गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

कार्मणकाययोगियों असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १४१ ॥

क्योंकि, उपशमश्रेणीमें उपशमसम्यग्दृष्टके साथ मरे हुए संयतोंका प्रमाण संख्यात ही होता है ।

कार्मणकाययोगियों असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १४२ ॥

शंका—पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे असंख्यात जीव विग्रह क्यों नहीं करते हैं ?

समाधान—पेली आशंकापर आचार्य कहते हैं कि न तो असंख्यात क्षायिक-सम्यग्दृष्टि देव एत राय मरते हैं, अन्यथा मनुष्योंमें असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके होनेका प्रसंग का जायगा । न मनुष्योंमें ही असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव मरते हैं,

तत्थासंखेज्जाणं सम्मादिद्वीणमभावा । ण तिरिक्खा असंखेज्जा मारणतियं कंति, तत्थ आपाणुसारिवयत्तादो । तेण विग्गहर्दए खइयसम्मादिद्विणो संखेज्जा चेव हेति । होंता वि उवसमसम्मादिद्वीहिंतो संखेज्जगुणा, उवसमसम्मादिद्विहारणादो खइयसम्मा-दिद्विकारणस्स संखेज्जगुणत्तादो ।

वेदगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ १४३ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग-मूलाणि । को पडिभागो ? खइयसम्मादिद्विरासिगुणिदअसंखेज्जावलियाओ ।

एव योगमगणा समत्ता ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदएसु दोसु वि अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवां ॥ १४४ ॥

क्योंकि, उनमें असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका अभाव है । न असंख्यात क्षायिक-सम्यग्दृष्टि तिर्यच ही मारणान्तिकसमुदात करते हैं, क्योंकि, उनमें आयके अनुसार व्यय होता है । इसलिए विग्रहगतिमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यात ही होते हैं । तथा संख्यात होते हुए भी वे उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे संख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उपशम-सम्यग्दृष्टियोंके (आयके) कारणसे क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके (आयका) कारण संख्यात-गुणा है ।

विशेषार्थ—कार्मणकाययोगमें पाये जानेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीव तो केवल उपशमश्रेणीसे मरकर ही आते हैं, किन्तु क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणीके आतिरिक्त असंयतसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानोंसे मरकर भी कार्मणकाययोगमें पाये जाते हैं । अतः उनका संख्यातगुणित पाया जाना स्वतः सिद्ध है ।

कार्मणकाययोगियों असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १४३ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? क्षायिकसम्यग्दृष्टि राशिसे गुणित असंख्यात आवलियां प्रतिभाग है ।

इस प्रकार योगमार्गणा समाप्त हुई ।

वेदमार्गणके अनुवादसे स्वीचिदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों ही गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १४४ ॥

॥ १५१ ॥

दमपरिमाणता दो ।

खुवा संखेज्जगुणा ॥ १४५ ॥

नीयपरिमाणता दो ।

अपमत्तसंजदा अखवा अनुवसमा संखेज्जगुणा ॥ १४६ ॥

को गुणगारो ? मंखेज्जगमया ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ १४७ ॥

को गुणगारो ? दो रुत्ताणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ १४८ ॥

को गुणगारो ? पलिदोपमस असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढम-
वगमूत्ताणि । को पडिगारो ? मंखेज्जरुगुणिदअसंखेज्जागलियाओ ।

सासनसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १४९ ॥

को गुणगारो ? आपलियाए असंखेज्जदिभागो । कि कारण ? असुहसासनगुणस्स

त्तोकि, त्तिंयिं उपशामक जीर्णोका प्रमाण कम हे ।

सीपेदियोंमे उपशामकोंगे क्षपक जीव मंख्यातगुणित हैं ॥ १४५ ॥

त्तराकि, उन्नत्ता परिमाण चीम हे ।

सीपेदियोंमे क्षपकोंगे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यात-
गुणित हैं ॥ १४६ ॥

गुणकार क्या है ? सख्यात समय गुणकार है ।

सीपेदियोंमे अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १४७ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

सीपेदियोंमे ममत्तसंयतोसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १४८ ॥

गुणकार क्या है ? पट्योपमका असख्यातवां भाग गुणकार है, जो पट्योपमके
भर्तव्यतात पढम तमोदूप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? सख्यात रूपोंसे गुणित असं-
ख्यात आरिगों प्रतिभाग है ।

सीपेदियोंमे संयतासंयतोसे सामादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १४९ ॥
गुणकार क्या है ? आवलीका नसंख्यातवां भाग गुणकार है ।

जोंहा — इसका कारण क्या है ?

सामादान—स्योकि, अनुभ सामादनगुणस्यानका पाना सुलभ है ।

१०) श्री ११०. सीपेदियोंमे. अक्ष. भा. ५३.

सुलहत्तादो ।

सम्मागिच्छइट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १५० ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । कि कारण ? मासणायदो संखेज्जगुणाय-
संभादो ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १५१ ॥

को गुणगारो ? आपलियाए असंखेज्जदिभागो । कि कारण ? सम्माभिन्नादिट्ठि-
आयं पेक्सिदूण असंखेज्जगुणायत्तादो ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १५२ ॥

को गुणगारो ? पदस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ सेडीए
असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, अमंखेज्जाणि
पदंगुलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठिसंजदासंजदट्ठणे सव्वथोवा खइयसम्मादिट्ठी

॥ १५३ ॥

स्त्रीवेदियोंमे मासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित
हैं ॥ १५० ॥

गुणकार क्या है ? सख्यात समय गुणकार है । इसका कारण यह है कि
सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानकी आयसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंकी मंख्यातगुणित आय
सम्भव है, जयत्ति दूस्से गुणस्थानमें जितने जीव आते हैं, उनसे मंख्यातगुणित जीव
तीसरे गुणस्थानमें आते हैं ।

स्त्रीवेदियोंमे सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित
हैं ॥ १५१ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असख्यातवा भाग गुणकार है । इसका कारण
यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंकी आयको देखते हुए असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंकी
असंख्यातगुणी आय होती है ।

स्त्रीवेदियोंमे असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १५२ ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो जगश्रेणीके
असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका
असंख्यातवा भाग प्रतिभाग है जो असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण है ।

स्त्रीवेदियोंमे असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि
जीव सबसे कम हैं ॥ १५३ ॥

संखेज्जस्वरमेतत्तादो ।

उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १५४ ॥

को गुणगारो ? पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पल्लिदोवमपढम-
वगमूलाणि । को पडिभागो ? असंखेज्जावलियपडिभागो ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १५५ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

पमत-अप्पमतसंजदद्वाने सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ १५६ ॥

उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १५७ ॥

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १५८ ॥

एदाणि तिणिण वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एवं दोसु अद्वासु ॥ १५९ ॥

क्योंकि, स्त्रीवेदियोंमें सख्यात रूपमात्र ही क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव पाये जाते हैं।
स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्य-
ग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १५४ ॥

गुणकार क्या है ? पल्लोपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्लोपमके
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात आवलियां प्रतिभाग है ।

स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे
वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १५५ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

स्त्रीवेदियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव
सबसे कम हैं ॥ १५६ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १५७ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित है ॥ १५८ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

इसी प्रकार अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें स्त्रीवेदियोंका
अल्पबहुत्व है ॥ १५९ ॥

सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी, उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा, इच्चेदेण साधम्मदो ।

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ १६० ॥

एदं सुत्तं पुणरुत्त क्रिण्ण होदि ? ण, एत्थ पवेसएहि अहियाराभावा । संचएण
एत्थ अहियारो, ण सो पुवं परूविदो । तदो ण पुणरुत्तत्तमिदि ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १६१ ॥

सुगममेदं ।

पुरिसवेदएसु दोसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा
॥ १६२ ॥

चउवणपमाणत्तादो ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १६३ ॥

अहुत्तरसदमेत्तत्तादो ।

क्योंकि, इन दोनों गुणस्थानोंमें स्त्रीवेदी क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं,
और उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उनसे संख्यातगुणित होते हैं, इस प्रकार ओघके साथ
समानता पाई जाती है ।

स्त्रीवेदियोंमें उपशमक जीव सबसे कम हैं ॥ १६० ॥

शंका—यह सूत्र पुनरुक्त क्यों नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यहां पर प्रवेशकी अपेक्षा इस सूत्रका अधिकार नहीं
है, किन्तु सचयकी अपेक्षा यहांपर अधिकार है और वह संवय पहले प्ररूपण नहीं किया
गया है । इसलिये यहांपर कहे गये सूत्रके पुनरुक्ता नहीं है ।

स्त्रीवेदियोंमें उपशमकोसे क्षपक जीव संख्यातगुणित है ॥ १६१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

पुरुषवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशमक
जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प है ॥ १६२ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चौपन है ।

पुरुषवेदियोंमें उक्त दोनों गुणस्थानोंमें उपशमकोमें क्षपक जीव संख्यात-
गुणित है ॥ १६३ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण एक सौ आठ है ।

॥ १५२ ॥

अपमत्तसंजदा अमलवा अनुवसमा संखेज्जगुणा ॥ १६४ ॥

तो गुणगणे ? मंगेज्जगमया ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ १६५ ॥

तो गुणगणे ? जेणि रुत्ताणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ १६६ ॥

को गुणगणे ? पल्लोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जानि पल्लोवमपडम-
ग्गमूलाणि ।

सासगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १६७ ॥

को गुणगणे ? आलियाण् असंखेज्जदिभागो । सेसं सुगमं ।

सममिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १६८ ॥

को गुणगणे ? मंगेज्जसमया । सेसं सुगमं ।

पुरुषोदियोंमें दोनों गुणस्थानोंमें क्षपकोमें अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्त-
मंयन संख्यातगुणित हैं ॥ १६४ ॥

गुणकार क्या है ? सव्यात समय गुणकार है ।

पुरुषोदियोंमें अप्रमत्तमंयतोमें प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १६५ ॥

गुणकार क्या है ? जे रूप गुणकार है ।

पुरुषोदियोंमें प्रमत्तमंयतोमें मंयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १६६ ॥

गुणकार क्या है ? पन्नापमत्ता अनख्यातवा भाग गुणकार है, जो पल्लोपमके
असख्यात मयम योगमूल्यप्रमाण है ।

पुरुषोदियोंमें संयतामंयतोमें सामादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित
हैं ॥ १६७ ॥

गुणकार क्या है ? आवर्तीका असंयतवा भाग गुणकार है । शेष स्वार्थ
सुगम है ।

पुरुषोदियोंमें सामादनसम्यग्दृष्टियोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित
हैं ॥ १६८ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । शेष स्वार्थ सुगम है ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १६९ ॥

को गुणगणे ? आलियाण् अमरोज्जदिभागो ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १७० ॥

को गुणगणे ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ मेडीओ सेडीए
असंखेज्जदिभागमेत्ताओ ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अपमत्तसंजदट्ठणे सम्मत्त-
प्पावहुअमोधं ॥ १७१ ॥

एदेसिं जथा ओघमिह सम्मत्तप्पावहुअं उतं तथा वत्तव्वं ।

एवं दोसु अद्वासु ॥ १७२ ॥

सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी, राहयसम्मादिट्ठी संसेजगुणा; इवेदेहि माधम्ममदो ।

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ १७३ ॥

पुरुषवेदियोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित
हैं ॥ १६९ ॥

गुणकार क्या है ? आवर्तीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

पुरुषवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित
हैं ॥ १७० ॥

गुणकार क्या है ? जगत्तरका असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो जगत्त्रेणीक
असंख्यातवे भागमात्र असंख्यात जगत्त्रेणीप्रमाण है ।

पुरुषवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत
गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान हैं ॥ १७१ ॥

इन गुणस्थानोंका जिस प्रकार ओघमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है,
उसी प्रकार यहाँपर कहना चाहिए ।

इसी प्रकार पुरुषवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें
सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ १७२ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम है और श्रायिकसम्यग्दृष्टि जीव
उनसे संख्यातगुणित है, इस प्रकार ओघके साथ समानता पाई जाती है ।

पुरुषवेदियोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ १७३ ॥

१ प्रतिपु 'एद' ददि पाठ ।

अवगदेवेदसु दोसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवां
॥ १९१ ॥

उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिआ चेव ॥ १९२ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १९३ ॥

कुदो ? अहुत्तरमदप्पमाणत्तादो ।

खीणकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिआ चेव ॥ १९४ ॥

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिआ
चेव ॥ १९५ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ १९६ ॥

एदं पि सुगमं ।

एव वेदमगणा समत्ता ।

अपगतवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें उप-
शामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १९१ ॥

उपशान्तकपायवीतरागछद्वयस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १९२ ॥
ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

अपगतवेदियोंमें उपशान्तकपायवीतरागछद्वयोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित
हैं ॥ १९३ ॥

क्योंकि, इनका प्रमाण एक सौ आठ है ।

अपगतोदियोंमें क्षीणकपायवीतरागछद्वय पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १९४ ॥
सयोगिकेवली और अयोगिकेवली ये दोनों ही प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और
पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १९५ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

सयोगिकेवली संवयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ १९६ ॥
यह सूत्र भी सुगम है ।

इस प्रकार वेदमार्गणा समाप्त हुई ।

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु
दोसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवां ॥ १९७ ॥

सुगममेदं ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १९८ ॥

को गुणगरो ? दो रूवाणि ।

णवरि विसेसा, लोभकसाईसु सुहुमसांपराइय-उवसमा विसेसा-
हिया ॥ १९९ ॥

दोउवसायपवेसएहिंतो संखेज्जगुणे^१ दोगुणद्विगुणपवेसयक्खवए पेविखदूण
कथं सुहुमसांपराइयउवसामया विसेसाहिया ? ण एस दोसो, लोभकसाएण खवएसु
पविसंतजीवे पेविखदूण तेसिं सुहुमसांपराइयउवसामएसु पविसंतताणं चउवणपरिमाणणं

कपायमार्गणोंके अनुवादसे क्रोधकपायी, मानकपायी, मायाकपायी और लोभ-
कपायियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशामक जीव
प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १९७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

चारो कपायवाले जीवोंमें उपशामकोंसे क्षपक संख्यातगुणित हैं ॥ १९८ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

केवल विशेषता यह है कि लोभकपायी जीवोंमें क्षपकोसे सूक्ष्मसाम्परायिक
उपशामक-विशेष अधिक हैं ॥ १९९ ॥

शंका—अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दो उपशामक गुणस्थानोंमें प्रवेश
करनेवाले जीवोंसे संख्यातगुणित प्रमाणवाले इन्हीं दो गुणस्थानोंमें प्रवेश करनेवाले
क्षपकोंको देखकर अर्थात् उनकी अपेक्षासे सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक विशेष अधिक
कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, लोभकपायके उदयसे क्षपकोंमें प्रवेश
करनेवाले जीवोंका देखते हुए लोभकपायके उदयसे सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामकोंमें
प्रवेश करनेवाले और चौपन संख्यारूप परिमाणवाले उन लोभकपायी जीवोंके विशेष

^१ यथापुत्रादिन कोयमानमायकपायाणां पुवेदवत् । ४×४ लोभकपायाणां द्वयोपशमक्रयोस्तुल्ला
सस्या । क्षपकां सखेयगुणा । सूक्ष्मसाम्परायगुणसुपुशमक्रसयता । विशेषाधिना । सूक्ष्मसाम्परायक्षणका
सखेयगुणा । शेषाणां मामायवत् । स. सि १, ८

२ प्रतिपु 'सखेज्जगुणे' इति पाठ. ।

विमोक्षयित्वा विमोक्षयित्वा । ततो १ लोभकर्मणो वि विमोक्षयित्वा ।

स्वया संखेज्जगुणा ॥ २०० ॥

उपनिषद्भाष्ये चतुर्विंशः

अपमत्तसंजदा अमत्तवा अनुवसमा संखेज्जगुणा ॥ २०१ ॥

को गुणगरो १ मतेज्जा ममया ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ २०२ ॥

को गुणगरो १ दो रूपाणि । चतुर्विंशः अपमत्तसंजदा मतेज्जा संखेज्जगुणा ॥ २०३ ॥

४। ७। पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ २०४ ॥

अधिक होने में कोई विशेष नहीं है । विशेष न होने का कारण यह है कि स्वयं 'लोभ-कर्मणी जीवों में' केवल विशेषण पर दिया गया है ।

लोभकर्मणी जीवों में स्वयंमात्रपर्यायिक उपशमकों में स्वयंमात्रपर्यायिक क्षपक संख्यातगुणित है ॥ २०० ॥

न्यायिक, उपशमकों से क्षपक जीवों का प्रमाण दुगुणा पाया जाता है ।

चारों कर्मायवाले जीवों में क्षपकों में अक्षपक और अनुपशमक अप्रमत्तसंयत मंल्यातगुणित है ॥ २०१ ॥

गुणकार क्या है १ संख्यात समय गुणकार है ।

चारों कर्मायवाले जीवों में अप्रमत्तसंयतों से प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित है ॥ २०२ ॥

गुणकार क्या है १ दो रूप गुणकार है । यहाँ चारों कर्मायवाले अप्रमत्तसंयतों का प्रमाण या तत्परायण्य उत्तमोत्तमोत्तम अक्षपक इस प्रकार है- २। ३। ४। ७। तथा चारों कर्मायवाले प्रमत्तसंयतों की अक्षपक ४। ६। ८ और १४ है ।

विशेषार्थ—यहाँ पर चतु कर्मायी अप्रमत्त और प्रमत्त संयतों के प्रमाण का ज्ञान करने के लिये जो अक्षपक वतलाई गई है, उसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य तिर्यचों में मान कर्मायका काल मनुष्य के कम है, उससे कोय, माया और लोभकर्मणका काल उत्तरोत्तर विशेष अधिक होता है । (देखो भाग ३, पृ. ४२५) । तदनुसार यहाँ पर अप्रमत्तसंयत और प्रमत्तसंयतों का अक्षपक गारा प्रमाण वतलाया गया है कि मान कर्मायवाले अप्रमत्तसंयत मनुष्य के कम है, जिनका प्रमाण अक्षपक (२) दो वतलाया गया है । इनमें लोभकर्मणयवाले अप्रमत्तसंयत विशेष अधिक होते हैं, जिनका प्रमाण अक्षपक (३) तीन वतलाया गया है । इनसे मायाकर्मणयवाले अप्रमत्तसंयत विशेष अधिक होते हैं, जिनका प्रमाण अक्षपक (४) चार वतलाया गया है । इनसे लोभकर्मणयवाले अप्रमत्तसंयत विशेष अधिक होते हैं, जिनका प्रमाण अक्षपक (७) सात वतलाया गया है । चूंकि अप्रमत्तसंयतों से प्रमत्तसंयतों का प्रमाण दुगुणा माना गया है, इसलिए यहाँ अक्षपक में भी उनका प्रमाण क्रमशः दूना ४, ६, ८ और १४ वतलाया गया है । यह अक्षपक का लक्षण है, और उसका अभिप्राय स्थूल रूप से चारों कर्मायों का

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ २०३ ॥

को गुणगरो १ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढम-वगमूलाणि ।

सासणसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ २०४ ॥

को गुणगरो १ आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

सम्माभिच्छादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ २०५ ॥

को गुणगरो १ संखेज्जा ममया ।

असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ २०६ ॥

को गुणगरो १ आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ॥ २०७ ॥

को गुणगरो १ अभवसिद्धिहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंतगुणो स्ववजीवरासिपढमवगमूलाणि ।

परस्पर आपेक्षिक प्रमाण वतलाना मात्र है । इसी हीनाधिकता के लिए देखो भाग ३, पृ. ४३४ आदि ।

चारों कर्मायवाले जीवों में प्रमत्तसंयतों से संयतासंयत असंख्यातगुणित है ॥ २०३ ॥ गुणकार क्या है १ पत्योपमत्ता असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पत्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

चारों कर्मायवाले जीवों में संयतासंयतों से सासादनसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित है ॥ २०४ ॥

गुणकार क्या है १ आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

चारों कर्मायवाले जीवों में सासादनसम्यग्दृष्टियों से सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित है ॥ २०५ ॥

गुणकार क्या है १ संख्यात समय गुणकार है ।

चारों कर्मायवाले जीवों में सम्यग्मिथ्यादृष्टियों से असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित है ॥ २०६ ॥

गुणकार क्या है १ आवलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है ।

चारों कर्मायवाले जीवों में असंयतसम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणित है ॥ २०७ ॥

गुणकार क्या है १ अभवसिद्धिसे अनन्तगुणा और सिद्धिसे भी अनन्तगुणा प्रमाण गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

१ प्रत्युः संजदासंजदासंखेज्जगुणा ' इति पाठः ।

२ अप तु विशेषः मिथ्यादृष्टोऽनन्तगुणा । स. मि. १, ८.

असंजदस्मादिट्टि-संजदासंजद-पमत्त-अपमत्तसंजदद्वारेण सम्मत्त-
प्पावहुअमोघं ॥ २०८ ॥

एदेसिं जधा ओघमिह सम्मत्त-प्पावहुअं उतं तथा वत्तवं, विसेसाभावादो ।

एवं दोसु अद्दासु ॥ २०९ ॥

जधा पमत्तापमत्ताण सम्मत्तप्पावहुअं परूविदं, तथा दोसु अद्दासु परूवेदवं ।
णवरि लोभकसायस्स एवं तिसु अद्दासु चि वत्तवं, जाव सुहुमसांपराइओ चि लोभ-
कसायउवलंभा । एवं सुत्ते किण्ण परूविदं ? परूविदमेव पवेसप्पावहुअसुत्तेण । तेणेव
एसो अत्थो णव्वदि चि पुध ण परूविदो ।

सन्वत्थोवा उवसमा ॥ २१० ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २११ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

चारों कपायवाले जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और
अप्रमत्तसंयत गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ २०८ ॥
इन सूत्रोंके गुणस्थानोंका जिस प्रकार ओघमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व
कहा है, उसी प्रकार यहापर कहना चाहिये, क्योंकि, दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है ।

इसी प्रकार अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें चारों कपाय-
वाले जीवोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ २०९ ॥

जिस प्रकारसे चारों कपायवाले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी
अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दो गुणस्थानोंमें
कहना चाहिये । किन्तु विशेषता यह है कि लोभकपायका इसी प्रकार अपूर्वकरण आदि
तीन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है, ऐसा कहना चाहिये, क्योंकि, सूक्ष्म-
साम्पराय गुणस्थान तक लोभकपायका सद्भाव पाया जाता है ।

शंका—यदि ऐसा है, तो इसी प्रकारसे सूत्रमें क्यों नहीं प्ररूपण किया ?

समाधान—प्रवेशसम्बन्धी अल्पबहुत्व सूत्रके द्वारा सूत्रमें उक्त बात प्ररूपित की
ही गई है । और उसी प्रवेशसम्बन्धी अल्पबहुत्व सूत्रके द्वारा यह ऊपर कहा गया अर्थ
जाना जाता है, इसलिए उसे यहांपर पृथक् नहीं कहा है ।

चारों कपायवाले उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ २१० ॥

उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २११ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

अकसाईसु सन्वत्थोवा उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था ॥ २१२ ॥
चउवणपरिमाणत्तादो ।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था संखेज्जगुणा ॥ २१३ ॥

अहुत्तरसदपरिमाणत्तादो ।

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया
वेव ॥ २१४ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ २१५ ॥

कुदो ? अणूणाधियओघरासिचादो ।

एवं कसायमगणा समत्ता ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणाणीसु सन्व-
त्थोवा सासणसम्मादिट्ठी ॥ २१६ ॥

अकपायी जीवोंमें उपशान्तकपायवीतरागछद्वयस्थ सबसे कम हैं ॥ २१२ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चोपन है ।

अकपायी जीवोंमें उपशान्तकपायवीतरागछद्वयस्थोंसे क्षीणकपायवीतरागछद्वयस्थ
संख्यातगुणित हैं ॥ २१३ ॥

क्योंकि, उनका परिमाण एक सौ आठ है ।

अकपायी जीवोंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, ये दोनों ही प्रवेशकी
अपेक्षा तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २१४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अकपायी जीवोंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ २१५ ॥
क्योंकि, उनका प्रमाण ओघराशिसे न कम है, न अधिक है ।

इस प्रकार कपायमार्गणा समाप्त हुई ।

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्तज्ञानी, श्रुताज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवोंमें
सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ २१६ ॥

कृतो ? पलितोऽस्मत्स अमंसेज्जज्जिभागपरिमाणत्वादे ।

मिच्छादिद्वी अणंतगुणा, मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥२१७॥

पत्य पत्यं मंच्यो श्रीरे- मदि-मुदअण्णाणिमासणेहितो मिच्छादिद्वी अणंतगुणा । को गुणगरो ? त्वज्जीवराभिस्म अमंसेज्जज्जिभागो । विभंगणानिमासणेहितो तेसिं चैव मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा । को गुणगरो ? पदरस्म असंखेज्जज्जिभागो, असंखेज्जाओ मेडीओ, मेडीए असंखेज्जज्जिभागमेचाओ । को पडिभागो ? वणंगुलस्म अमंसेज्जज्जिभागो, अमंसेज्जज्जि पदंगुलाणि ति । अणहा विप्पडिमेहत्तादे ।

**आभिणिचोहिय-मुद-ओधिणाणीसु तिसु अद्वासु उवसमा पवे-
सणेण तुल्ला थोवा ॥ २१८ ॥**

गुणममेदं ।

उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिया चैव ॥ २१९ ॥

स्वार्थिक, उक्तका गरिमाण गल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र है ।

उक्त तीनों अज्ञानी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणित हैं, मिथ्यादृष्टि असंख्यात-
गुणित हैं ॥ २१७ ॥

यहांपर इस प्रकार सूत्रार्थ सम्यक् करना चाहिए- मत्त्वज्ञानी और श्रुताज्ञानी
सामान्यतः सम्यग्दर्शियोंके मत्त्वज्ञानी और श्रुताज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ।
गुणकार क्या है ? मने जीवराशिका असंख्यातवां भाग गुणकार है । विभंगज्ञानी रासादन-
मत्त्वगुणियांस उनके ही मिथ्यादृष्टि अर्थात् विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यात-
गुणित हैं । गुणकार क्या है ? जगत्प्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो जगत्त्रेणिके
असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात जगत्त्रेणीप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? वनांगुलका
असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण है । यदि इस प्रकार
सूत्रका अर्थ न किया जायगा, तो परस्पर विरोध प्राप्त होगा ।

आभिनिचोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें अपूर्वकरण आदि तीन
गुणव्याप्तोंमें उपनामक प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ २१८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें उपशान्तकपायवीतरागछुदुमत्था पूर्वोक्त प्रमाण
ही है ॥ २१९ ॥

१ विपारयओअसंखेज्जगुणाः । म. सि. १, ८.

२ अणिगु 'ल्ल' इति पाठ ।

३ मरीगुवापरिकाणिपुं सर्वत लोकाभवा उपपन्नत्वा । क. सि. १, ८.

पदं पि सुगमं ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ २२० ॥

को गुणगरो ? दोष्णि रूपाणि ।

खीणकसायवीदरागछुदुमत्था तेत्तिया चैव ॥ २२१ ॥

सुगममेदं ।

अपमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ २२२ ॥

कुदो ? अणूणाहियओधरासिच्चादो ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ २२३ ॥

को गुणगरो ? दोष्णि रूपाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ २२४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें उपशान्तकपायवीतरागछुदुमत्थोंसे क्षपक जीव
संख्यातगुणित हैं ॥ २२० ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें क्षपकोंसे क्षीणकपायवीतरागछुदुमत्थ पूर्वोक्त
प्रमाण ही हैं ॥ २२१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें क्षीणकपायवीतरागछुदुमत्थोंसे अक्षपक और
अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २२२ ॥

स्वार्थिक, उक्तका प्रमाण ओधराशिसे न कम है, न अधिक है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे अप्रमत्तसंयत जीव संख्यात-
गुणित हैं ॥ २२३ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतसंयत जीव असंख्यात-
गुणित हैं ॥ २२४ ॥

१ चत्तार क्षपकाः सत्थेयगुणा । म. सि. १, ८.

२ अप्रमत्तमयता सत्थेयगुणा । म. सि. १, ८.

३ प्रमत्तमयता सत्थेयगुणा । म. सि. १, ८.

४ संयतामयता (अ-) सत्थेयगुणाः । म. सि. १, ८.

कुदो ? पल्लिदोवमस्म असंखेज्जदिभागपरिमाणत्तादो । को गुणगारो ? पल्लिदो-
वमस्म असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पल्लिदोवमपढमवग्गमूलानि ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा' ॥ २२५ ॥

कुदो ? पहाणीकयदेवअसंजदसम्मादिट्ठिरासित्तादो । को गुणगारो ? आवलियाए
असंखेज्जदिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अपमत्तसंजदद्वाने सम्मत्त-
प्पावहुगमोधं ॥ २२६ ॥

जधा ओवग्गि एदेसि सम्मत्तप्पावहुअं परुविंद, तथा परुवेदव्वमिदि वुत्तं होदि ।

एवं तिसु अद्वासु ॥ २२७ ॥

संवत्थोवा उवसमा ॥ २२८ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २२९ ॥

एदाणि तिणिण वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

क्योंकि, उनका परिमाण पल्लोपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । गुणकार क्या
है ? पल्लोपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्लोपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूल-
प्रमाण है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें संयतासंयतोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असं-
ख्यातगुणित है ॥ २२५ ॥

क्योंकि, यहापर असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंकी राशि प्रधानतासे स्वीकार की गई
है । गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत
और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ २२६ ॥

जिस प्रकार ओघमें इन गुणस्थानोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है,
उसी प्रकार यहापर भी प्ररूपण करना चाहिये, यह अर्थ कहा गया है ।

इसी प्रकार मति, श्रुत और अवधिज्ञानी जीवोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुण-
स्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ २२७ ॥

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ २२८ ॥

उपशामकोंसे धपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २२९ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

१ अमयतमग्ग'ट्ठय (अ) मल्लेयगुणा । स ति १, ८

मणपज्जवणाणीसु तिसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा'
॥ २३० ॥

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिथा चेव ॥ २३१ ॥

खवा संखेज्जगुणा' ॥ २३२ ॥

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिथा चेव ॥ २३३ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

अपमत्तसंजदा अम्बवा अणुवसमा संखेज्जगुणा' ॥ २३४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जरूवाणि ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा' ॥ २३५ ॥

को गुणगारो ? दोणिण रूवाणि ।

पमत्त-अपमत्तसंजदद्वाने संवत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ २३६ ॥

मनःपर्ययज्ञानियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव
प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ २३० ॥

उपशान्तकपायवीतरागछद्वस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २३१ ॥

उपशान्तकपायवीतरागछद्वस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३२ ॥

क्षीणकपायवीतरागछद्वस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २३३ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें क्षीणकपायवीतरागछद्वस्थोंसे अक्षपक और अनुपशामक
अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात रूप गुणकार है ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३५ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानोंमें उपशामसम्यग्दृष्टि
जीव सबसे कम हैं ॥ २३६ ॥

१ मन पर्ययज्ञानियु सर्वत स्तोकाश्रित्वा उपशामका । स ति १, ८. तेषां सख्या १० । गो. जी. ६३०

२ चत्वार क्षपकाः सल्लेयगुणा । स ति १, ८ तेषां सख्या २० । गो जी ६३०

३ अप्रमत्तसंयताः सल्लेयगुणा । स ति १, ८

४ प्रमत्तमयता सल्लेयगुणाः । स ति १, ८

उपशममर्द्धादौ त्रोटिणाणं उपशममर्द्धं तदुपमाणं वा उपशमसम्भवेण शोचणं जीवाणमुलंभा ।

खड्गसम्भट्टी संखेज्जगुणा ॥ २३७ ॥

तदयमयमत्तेण मणपज्जगुणाणिमुणित्तरणं बहुणमुलंभा ।

वेदगसम्भट्टी संखेज्जगुणा ॥ २३८ ॥

गुणमर्द्धं ।

एवं तिसु अद्वासु ॥ २३९ ॥

सन्वत्योवा उपसमा ॥ २४० ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २४१ ॥

पद्धानि तिणिण मुत्ताणि मुगमाणि, बहुसो परुविदत्तादो ।

केवलणाणीसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव ॥ २४२ ॥

स्योकि, उपशमश्रेणीत्वं उत्तरनेवाले, अथवा उपशमश्रेणीपर चढनेवाले मन.पर्यय-
जानी धादु जाय उपशमसम्यक्चकं साय पाये जाने हैं ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रसक्तसंयत और अप्रसक्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि-
नोंमें भागिरुसम्यग्दृष्टि जीव मंख्यातगुणित हैं ॥ २३७ ॥

स्योकि, उक्त गुणस्थानोंमें क्षायिकसम्यक्चकं साय बहुतसे मन.पर्ययजानी
मुनिर पाये जाने हैं ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रसक्तसंयत और अप्रसक्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्य-
ग्दृष्टियोंमें वेदकसम्यग्दृष्टि जीव मंख्यातगुणित हैं ॥ २३८ ॥

याह मूत्र मुगम है ।

इमी प्रकार मनःपर्ययज्ञानियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन उपशमक गुणस्थानोंमें
मम्यक्त्वमन्वयी अल्पाहुत्वं है ॥ २३९ ॥

मनःपर्ययज्ञानियोंमें उपशमक जीव सत्रसे कम है ॥ २४० ॥

उपशमक जीवोंमें क्षपक जीव मंख्यातगुणित हैं ॥ २४१ ॥

ये तीनों सत्र सुगम हैं, स्योकि, वे बहुत चार प्ररूपण किये जा चुके हैं ।

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिन प्रवेगकी अपेक्षा दोनों
ही तुल्य और तावन्मात्र ही हैं ॥ २४२ ॥

२ य मन्तो: ' चोक्षित्त ' जप्पतां ' शोचिणा ' इति पाठः ।

तुल्ला तत्तिया सदा हेउ-हेउमंतभावेण जोजेयव्वा । तं कथं ? जेण तुल्ला, तेण
तत्तिया त्ति । केत्तिया ते ? अहुत्तरसयसेत्ता ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणां ॥ २४३ ॥

पुव्वकोटिकालिम्हि संचयं गदा सजोगिकेवल्लिणो एगसमयपवेसणेहित्तो मंखेज्ज-
गुणा, संखेज्जगुणेण कालेण मिलिदत्तादो ।

एव णणमगणा समत्ता ।

संजमाणुवादेण संजदेसु तिसु अद्वासु उपसमा पवेसणेण तुल्ला
शोवा ॥ २४४ ॥

कुदो ? चउवणपमाणत्तादो ।

उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिया चेव ॥ २४५ ॥

सुगममेदं ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ २४६ ॥

तुल्य और तावन्मात्र, ये दोनों शब्द हेतु हेतुमद्रावने मन्वन्धित करना चाहिए।
शंका — नह कैसे ?

समाधान—चूँकि, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली परस्पर तुल्य हैं, इन्मलिण
वे तावन्मात्र अर्थात् पूर्वोक्त प्रमाण है ।

शंका—वे कितने हैं ?

ममाधान—वे एक सौ आठ संख्याप्रमाण हैं ।

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित है ॥ २४३ ॥
पूर्वकोटीप्रमाण कालमें संचयको प्राप्त हुए सयोगिकेवली एक समयमें प्रवेग
करनेवालोंकी अपेक्षा संख्यातगुणित है, स्योकि, वे मंख्यातगुणित कालसे संचित
हुए हैं ।

इस प्रकार शानमार्गणा समाप्त हुई ।

संयममार्गणके अनुवादसे संयतोमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उप-
शमक जीव प्रवेगकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ २४४ ॥

स्योकि, उनका प्रमाण चौपन है ।

संयतोमें उपशान्तकपायवीतरागछमस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २४५ ॥

यह सत्र सुगम है ।

संयतोमें उपशान्तकपायवीतरागछमस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २४६ ॥

१ केवलज्ञानियु अयोगिकेवल्लिय सयोगिकेवल्लिनः सख्येयगुणाः । य. ति १, ८

को गुणगारो ? दोणिण रूवाणि । किं कारणं ? जेण गाणवेदादिसव्ववियप्पेसु उवसमसेहिं चंडंतजीवेहिंतो खवगसेहिं चंडंतजीवा दुगुणा त्ति आइरिओवदेसादो । एण-समएण त्तिथयरा छ खवगसेहिं चंडंति । दस पत्तेयबुद्धा चंडंति, बोहियबुद्धा अट्टत्तर-सयमेत्ता, सग्गच्चुआ तत्तिथा चेव । उक्कस्सोगाहणाए दोणिण खवगसेहिं चंडंति, जहणोगाहणाए चत्तारि, मज्झिमोगाहणाए अट्ट । पुरिसवेदेण अट्टत्तरसयमेत्ता, णउंसय-वेदेण दस, इत्थिवेदेण वीस । एदेसिमद्वमेत्ता उवसमसेहिं चंडंति' त्ति धेतन्नं ।

खीणकसायवीदरागछट्टुमत्था तत्तिथा चेव ॥ २४७ ॥

केत्तिथा ? अट्टत्तरसयमेत्ता । कुदो ? संजमसामणणविवक्खादो ।

गुणकार स्या है ? दो रूप गुणकार है ।

शंका--क्षपकौका गुणकार दो होनेका कारण क्या है ?

समाधान--चूंकि, ज्ञान, वेद आदि सर्व विकल्पोंमें उपशमश्रेणीपर चढ़नेवाले जीवोंसे क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीव दुगुणे होते हैं, इस प्रकार आचार्योंका उपदेश पाया जाता है ।

एक समयमें एक साथ छह तीर्थंकर क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं । दश प्रत्येकबुद्ध, एक सौ आठ बोधितबुद्ध और स्वर्गसे च्युत होकर आये हुए उतने ही जीव अर्थात् एक सौ आठ जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं । उत्कृष्ट अवगाहनावाले दो जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं । जवय्य अवगाहनावाले चार और तीक मध्यम थवगाहनावाले आठ जीव एक साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं । पुरुषवेदेके उदयके साथ एक सौ आठ, नपुंसकवेदेके उदयसे दश और स्त्रीवेदेके उदयसे बीस जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं । इन उपर्युक्त जीवोंके आधे प्रमाण जीव उपशमश्रेणीपर चढ़ते हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।

संयतोमें क्षीणरूपायवीतरागछट्टस्य जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २४७ ॥

शंका--क्षीणरूपायवीतरागछट्टस्य कितने होते हैं ?

समाधान--एक सौ आठ होते हैं, क्योंकि, यहांपर सयम-सामान्यकी विवक्षा की गई है ।

१ दो चैवुजोमाए चउर जह्वाए मस्सिमाए उ । अट्टहिय मय खउ मिज्झह ओगाहणाइ तहा ॥ प्रवच डा ५०, ४७५

२ तौति खवा इमिस्समे येोहियबुद्धा य पुरिसवेदा य । उक्कस्सेणट्टवसयप्पमा सगदो य बुद्धा ॥ पसेयउद्धति यरारिपणउययमोहिणपद्धता । दमक्कवमिदममद्ववीम जहाक्कमो ॥ जेट्ठावररुद्धमस्मिओगाहणा इ चारि अट्टेव । ज्जाव इत्ति वपाप उयममा अट्टोदेमि ॥ गो जी. ३२९-५३१

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिथा चेव ॥ २४८ ॥

सुबोज्झमेदं ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ २४९ ॥

कुदो ? एगसमयादो संचयकालसमूहस्स संखेज्जगुणत्तुवलंभा ।

अपमत्तसंजदा अवखवा अनुवसमा संखेज्जगुणा ॥ २५० ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । एत्थ ओघकारणं वित्तिथ वत्तव्वं ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ २५१ ॥

को गुणगारो ? दोणिण रूवाणि ।

पमत्त-अपमत्तसंजदट्टाणे सव्वथोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ २५२ ॥

कुदो ? अतोसुहुत्तसंचयादो ।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २५३ ॥

संयतोमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिन ये दोनों ही प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २४८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संयतोमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ २४९ ॥

क्योंकि, एक समयकी अपेक्षा संचयकालका समूह संख्यातगुणा पाया जाता है ।

संयतोमें सयोगिकेवली जिनोंसे अक्षपक और अनुपशमक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५० ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । यहांपर राशिके ओघके समान होनेका कारण चिन्तवन कर कहना चाहिए । इसका कारण यह है कि दोनों स्थानोंपर सयम-सामान्य ही विवक्षित है (देखो सूत्र नं ८) ।

संयतोमें अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५१ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

संयतोमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २५२ ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

संयतोमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे अधिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५३ ॥

कुदो ? पुव्वकोडिमंचयादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २५४ ॥

नञोपममिअम्मत्तादो ।

एवं तिसु अद्वासु ॥ २५५ ॥

मन्वथोवा उवसमा ॥ २५६ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २५७ ॥

एदाणि तिणि नि सुत्ताणि सुगमाणि ।

सामाहयच्छेदोवद्वावणसुद्धिसंजदेसु दोसु अद्वासु उवसमा पवे-
सणेण तुह्वा थोवा ॥ २५८ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २५९ ॥

अप्पमत्तसंजदा अखवा अनुवसमा संखेज्जगुणा ॥ २६० ॥

क्याकि, उनका संचयकाल पूर्वकोटी वर्ष है ।

संयतोमं प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमे धायिकसम्यग्दृष्टियोमे
वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संन्यातगुणित है ॥ २५४ ॥

क्याकि, वेदकसम्यग्दृष्टियोके क्षायोपशमिक सम्यन्व होता है (जिसकी प्राप्ति
सुलभ है) ।

इसी प्रकार संयतोमं अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोमे नम्यक्त्वसम्बन्धी
अल्पवहुत्व है ॥ २५५ ॥

उक्त गुणस्थानोमे उपशामक जीव मवसे कम है ॥ २५६ ॥

उपशामकोसे शपक जीव संन्यातगुणित है ॥ २५७ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोमे अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण,
इन दोनों गुणस्थानोमे उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प है ॥ २५८ ॥

उपशामकोमे शपक जीव संन्यातगुणित है ॥ २५९ ॥

शपकोसे अप्रपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत संन्यातगुणित है ॥ २६० ॥

१ सम्यग्दृष्टिोमे सामायिकच्छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोमे द्योस्वपशमनोत्तुच्यमस्या । स सि १, ८.

२ नत मन्वथोवा उवसमा । म सि. १, ८.

३ उत्पत्तयामे नोद्ग्राणे । म सि १, ८

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ २६१ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदहाणे सव्वथोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ २६२ ॥

कुदो ? अंतोमुहुत्तसंचयादो ।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २६३ ॥

पुव्वकोडिमंचयादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २६४ ॥

सओवसमिअम्मत्तादो ।

एवं दोसु अद्वासु ॥ २६५ ॥

सव्वथोवा उवसमा ॥ २६६ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २६७ ॥

एदाणि तिणि नि सुत्ताणि सुगमाणि ।

अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत संन्यातगुणित है ॥ २६१ ॥

ये सूत्र सुगम है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोमे प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुण-
स्थानोमे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सवसे कम है ॥ २६२ ॥

क्याकि, उनका संचयकाल अन्तमुहूर्त है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोमे प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुण-
स्थानमे उपशमसम्यग्दृष्टियोसे धायिकसम्यग्दृष्टि जीव संन्यातगुणित है ॥ २६३ ॥

क्याकि, उनका संचयकाल पूर्वकोटी वर्ष है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोमे प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुण-
स्थानमे धायिकसम्यग्दृष्टियोसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संन्यातगुणित है ॥ २६४ ॥

क्याकि, वेदकसम्यग्दृष्टियोके क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है (जिसकी प्राप्ति
सुलभ है) ।

इसी प्रकार उक्त जीवोका अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोमे
सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पवहुत्व है ॥ २६५ ॥

उक्त जीवोमे उपशामक सवसे कम है ॥ २६६ ॥

उपशामकोमे शपक संन्यातगुणित है ॥ २६७ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम है ।

१ प्रमत्ताः मत्तगुणा । म सि १, ८.

परिहारसुद्धिसंजदेसु सन्वथोवा अप्पमत्तसंजदा' ॥ २६८ ॥
सुगममेदं ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा' ॥ २६९ ॥
को गुणगारो ? दो रूवाणि ।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदद्वष्टणे सन्वथोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ २७० ॥
कुदो ? खइयसम्मत्तस्स पउरं संभवाभावा ।
वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २७१ ॥

कुदो ? खओवसमियसम्मत्तस्स पउरं संभवादो । एत्थ उवसमसम्मत्तं णत्थि,
तीसं वासेण विणा परिहारसुद्धिसंजमस्स संभवाभावा । ण च तेत्तियकालसुवसमसम्म-
त्तस्सावद्वष्टाणमत्थि, जेण परिहारसुद्धिसंजमेण उवसमसम्मत्तस्सुवल्लो होज्ज ? ण च
परिहारसुद्धिसंजमल्लदंत्तस्स उवसमसेडीचडण्डं दंसणमोहणीयस्सुवसामण्णं पि संभवइ,
जेणुवसमसेडिग्गिह दोण्हं पि संजोगो होज्ज ।

परिहारसुद्धिसंयतोमं अग्रमत्तसंयत जीव सबसे कम हैं ॥ २६८ ॥
यह सूत्र सुगम है ।

परिहारसुद्धिसंयतोमं अग्रमत्तसंयतोसं प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ २६९ ॥
गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार हैं ।

परिहारसुद्धिसंयतोमं प्रमत्तसंयत और अग्रमत्तसंयत गुणस्थानमे क्षायिकसम्य-
ग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २७० ॥

क्योंकि, क्षायिकसम्यक्त्वका प्रचुरतासे होना संभव नहीं है ।

परिहारसुद्धिसंयतोमं प्रमत्तसंयत और अग्रमत्तसंयत गुणस्थानमे क्षायिकसम्य-
ग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २७१ ॥

क्योंकि, क्षायोपशमिकसम्यक्त्वका प्रचुरतासे होना संभव है । यहां परिहारसुद्धि-
संयतोमं उपशमसम्यक्त्व नहीं होता है, क्योंकि, तीस वर्षके विना परिहारसुद्धिसंयमका
होना संभव नहीं है । और न उतने काल तक उपशमसम्यक्त्वका अवस्थान रहता
है, जिससे कि परिहारसुद्धिसंयमके साथ उपशमसम्यक्त्वकी उपलब्धि हो सके ?
दूसरी बात यह है कि परिहारसुद्धिसंयमको नहीं छोड़नेवाले जीवके उपशमश्रेणीपर
चढ़नेके लिए दर्शनेमोहनीयकर्मका उपशमन होना भी संभव नहीं है, जिससे कि उपशम-
श्रेणीमें उपशमसम्यक्त्व और परिहारसुद्धिसंयम, इन दोनोंका भी संयोग हो सके ।

१ परिहातानसुद्धिसंयतेषु अग्रमत्तसंय प्रमत्ता मग्गेयगुणा । म सि १, ८

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयउवसमा थोवा'
॥ २७२ ॥

कुदो ? चउवण्णपमाणत्तादो ।

खवा संखेज्जगुणा' ॥ २७३ ॥

को गुणगारो ? दोणिण रूवाणि ।

जधाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु अकसाइभंगो' ॥ २७४ ॥

जधा अकसाईणमपवहुगं उत्तं तथा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदाणं पि कादन्व-
मिदि उत्तं हेदि ।

संजदासंजदेसु अप्पानवहुअं णत्थि' ॥ २७५ ॥

एयपदत्तादो । एत्थ सम्मत्तप्पानवहुअं उच्चवे । तं जहा-

संजदासंजदद्वष्टाणे सन्वथोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ २७६ ॥

कुदो ? संखेज्जपमाणत्तादो ।

सूक्ष्मसाम्परायिकसुद्धिसंयतोमं सूक्ष्मसाम्परायिक उपशमक जीव अल्प
हैं ॥ २७२ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चौपन है ।

सूक्ष्मसाम्परायिकसुद्धिसंयतोमं उपशमकोसे क्षपक जीव संख्यातगुणित
हैं ॥ २७३ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार हैं ।

यथाख्यातविहारसुद्धिसंयतोमं अल्पवहुत्व अकपायी जीवोंके समान हैं ॥ २७४ ॥

जिस प्रकार अकपायी जीवोंका अल्पवहुत्व कहा है, उसी प्रकार यथाख्यात-
विहारसुद्धिसंयतोका भी अल्पवहुत्व करना चाहिए, यह अर्थ कहा गया है ।

संयतासंयत जीवोंमें अल्पवहुत्व नहीं है ॥ २७५ ॥

क्योंकि, संयतासंयत जीवोंके एक ही गुणस्थान होता है । यहांपर सम्यक्त्व-
सम्बन्धी अल्पवहुत्व कहते हैं । वह इस इस प्रकार है-

संयतासंयत गुणस्थानमे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २७६ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण संख्यात ही है ।

१ सूक्ष्मसाम्परायिकसुद्धिसंयतेषु उपशमकेय्य संपपना मग्गेयगुणा । म सि १, ८

२ यथाख्यातविहारसुद्धिसंयतेषु उपशान्तार्यायेय्य क्षीणम्याया मग्गेयगुणा । अयोभिन्निवलिमस्तान्त
एव । सयोभिन्निवलिम मग्गेयगुणा । म सि १, ८.

३ मयतामयनानां नास्तत्त्वमहुवम् । म सि १, ८

उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २७७ ॥

को गुणगारो ? पल्लोवमस्य अमंखेज्जदिभागो, अमंखेज्जाणि पल्लोवमपडम-
सम्मादिट्ठी ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २७८ ॥

को गुणगारो ? आमलियाए अमंखेज्जदिभागो । कारणं जाणिदूण वत्तब्बं ।

असंजदेसु सब्बथोवा सासणसम्मादिट्ठी ॥ २७९ ॥

कुदो ? आमलियमंचयादो ।

सम्माभिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २८० ॥

कुदो ? मंखेज्जवल्लियसंचयादो ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २८१ ॥

को गुणगारो ? आमलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? साभावियादो ।

मंयतामंयत गुणस्थानमै क्षायिकसम्यग्दृष्टियोसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यात-
गुणित है ॥ २७७ ॥

गुणकार क्या है ? पल्लोवमका असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो पल्लोवमके
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

मंयतामंयत गुणस्थानमै उपशमसम्यग्दृष्टियोसे वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित
है ॥ २७८ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है । इसका कारण
ज्ञानकर जाना चाहिए । (वेदो मूत्र नं २०) ।

अमंयतोमै मासादनसम्यग्दृष्टि जीव सवसे कम हैं ॥ २७९ ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल छह आवलीमात्र है ।

अमंयतोमै मासादनसम्यग्दृष्टियोसे सम्यग्भिष्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित
है ॥ २८० ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल संख्यात आवलीप्रमाण है ।

अमंयतोमै नम्यग्भिष्यादृष्टियोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित
है ॥ २८१ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है, क्योंकि, यह
स्वाभाविक है ।

१ पल्लोव मंत. रीति मासादनसम्यग्दृष्टि । म वि. १, ८

२ मम्यग्भिष्यादृष्टि मंखेज्जगुणा । म वि. १, ८

३ अमंयतसम्यग्दृष्टियोसंयतगुणा । म वि. १, ८

भिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ २८२ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंतगुणि
सब्वजीवरासिपडमग्गमूलाणि । कुदो ? साभावियादो ।

असंजदसम्मादिट्ठिगुणे सब्बथोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ २८३ ॥

कुदो ? अंतोमुहुत्तसंचयादो ।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २८४ ॥

कुदो ? सागरोवमसंचयादो । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।
कुदो ? साभावियादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २८५ ॥

को गुणगारो ? आमलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? साभावियादो ।

एव सजममगणा समत्ता ।

अमंयतोमै असंयतसम्यग्दृष्टियोसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित है ॥ २८२ ॥
गुणकार क्या है ? अभवसिद्धिसे अनन्तगुणित ओर सिद्धिसे भी अनन्तगुणित
राशि गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है, क्योंकि, यह
स्वाभाविक है ।

अमंयतोमै असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमै उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सवसे कम
है ॥ २८३ ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल अनन्तमुहूर्त है ।

अमंयतोमै असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमै उपशमसम्यग्दृष्टियोसे क्षायिकसम्य-
ग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २८४ ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल सागरोपम है । गुणकार क्या है ? आवलीका असं-
ख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, यह स्वाभाविक है ।

अमंयतोमै असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमै क्षायिकसम्यग्दृष्टियोसे वेदकसम्य-
ग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २८५ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, यह
स्वाभाविक है ।

इस प्रकार संयममार्गेणा समान्त हुई ।

दंसणानुवादेण चक्खुदंसणी-अक्खवुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव खीणकसायवीदरागछुदुमत्था ति ओघं ॥ २८६ ॥

जथा ओघमिह एदेसिमप्पावहुगं परुविदं तथा एत्थ वि परुवेद्वं, विसेसाभावा । विसेसपरुवणहुमुत्तरसुत्तं भणदि-

णवरि चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठो असंखेज्जगुणा ॥ २८७ ॥
को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ, सेडीए^१ असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । कुदो ? साभावियादो ।

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ॥ २८८ ॥
केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ २८९ ॥
दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एव दसणमगणा समत्ता ।

दर्शनमार्गणके अनुवादसे चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकपायवीतरागलभस्य गुणस्थान तक अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ २८६ ॥
जित प्रकार ओघमें इन गुणस्थानवर्ती जीवोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहांपर भी कहना चाहिए, क्योंकि, दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है । अब चक्षुदर्शनी जीवोंमें सम्भव विशेषताके प्ररूपण करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेषता यह है कि चक्षुदर्शनी जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ २८७ ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो असंख्यात जगत्रेणिप्रमाण है । वे जगत्रेणिया भी जगत्रेणिके असंख्यातवें भागमात्र हैं । इसका कारण क्या है ? ऐसा स्वभावसे है ।

अवधिदर्शनी जीवोंका अल्पबहुत्व अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ २८८ ॥
केवलदर्शनी जीवोंका अल्पबहुत्व केवलज्ञानियोंके समान है ॥ २८९ ॥
वे दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई ।

१ दर्शनानुवादेन चक्षुदर्शनिना मनोयोगिनिवृत् । अचक्षुदर्शनिना काययोगिनिवृत् । स सि १, ८

२ प्रतिपू 'सेडीओ' स्वगसेडी असंखेज्जदिभागो मेडीए' इति पाठ ।

३ अवधिदर्शनिनापपभिन्नानि । स मि १, ८ ४ केवलदर्शनिना केवलज्ञानिनिवृत् । स सि १, ८

लेस्सानुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु सव्व-
त्थोवा सासणसम्मादिट्ठो ॥ २९० ॥

सुगममेदं ।

सम्माभिच्छादिट्ठो संखेज्जगुणा ॥ २९१ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया ।

असंजदसम्मादिट्ठो असंखेज्जगुणा ॥ २९२ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? साभावियादो ।

मिच्छादिट्ठो अणंतगुणा ॥ २९३ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंताणि सव्वजीवरासिपदमवग्गमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठिद्वाने सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठो ॥ २९४ ॥

लेस्यामार्गणके अनुवादसे कृष्णलेस्या, नीललेस्या और कापोतलेस्यावाले जीवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ २९० ॥
यह सूत्र सुगम है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेस्यावालोमे सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २९१ ॥
गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेस्यावालोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २९२ ॥
गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, यह स्वाभाविक है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेस्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनंतगुणित हैं ॥ २९३ ॥
गुणकार क्या है ? अभवसिद्धोसे अनंतगुणित और सिद्धोसे भी अनंतगुणित राशि गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनंत प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेस्यावालोमे असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिक-सम्यग्दृष्टि सबसे कम है ॥ २९४ ॥

कुदो ? मणुमकिरु-णीलेस्सियसंखेज्जखडयम्ममादिट्ठिपरिगहादो ।

उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९५ ॥

तो गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जिभागो । कुदो ? णेरइएसु किण्हलेस्सिएसु पन्निदोवमस्स अनंखेज्जिभागमेत्तउवसममम्मादिट्ठिणिमुवलंभा ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९६ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जिभागो । सेसं सुगमं ।

णवरि विमसो, काउलेस्सिएसु असंजदसम्मादिट्ठिणाणे सब्व-
त्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ २९७ ॥

कुदो ? अंतोपुट्टत्तमंचयादो ।

सइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९८ ॥

कुदो ? पढमपुड्ढिहिं मंचिदसइयसम्मादिट्ठिगहादो । को गुणगारो ? आन-
लियाए अयंखेज्जिभागो ।

क्योंकि, यहां पर कृष्ण और नीलेलेइयावालों संख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका प्राप्ति किया गया है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेइयावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिक-
सम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव अमंख्यातगुणित हैं ॥ २९५ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, कृष्ण-
लेइयावालों नारक्तियोंमें पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका
सद्धान पाया जाता है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेइयावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशम-
सम्यग्दृष्टियोंमें नेत्रकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २९६ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । शेष सूत्रार्थ
सुगम है ।

कैवल निर्गुणता यह है कि कापोतलेइयावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें
उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २९७ ॥

क्योंकि, उनका संनयकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

कापोतलेइयावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिक-
सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २९८ ॥

क्योंकि, यहां पर प्रथम पृथिवीमें संचित क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका ग्रहण
का गया है । गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९९ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए अमंखेज्जिदिभागो ।

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु सब्वत्थोवा अपमत्तसंजदा ॥ ३०० ॥
कुदो ? संखेज्जपरिमाणचादो ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ३०१ ॥

को गुणगारो ? दो रूचाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ ३०२ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जिदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढम-
वगमूलाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३०३ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जिदिभागो । कुदो ? सोहम्मीसाण-सणवकुमार-
मार्हिदराभिपरिगहादो ।

कापोतलेइयावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदक-
सम्यग्दृष्टि जीव अमंख्यातगुणित हैं ॥ २९९ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

तेजोलेइया और पब्रलेइयावालोंमें अप्रमत्तसंयत जीव सबसे कम हैं ॥ ३०० ॥

क्योंकि, उनका परिमाण संख्यात है ।

तेजोलेइया और पब्रलेइयावालोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित
हैं ॥ ३०१ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

तेजोलेइया और पब्रलेइयावालोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यात-
गुणित हैं ॥ ३०२ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

तेजोलेइया और पब्रलेइयावालोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव
असंख्यातगुणित हैं ॥ ३०३ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, यहां पर
सौधर्म ईशान और सनत्कुमार मोहेन्द्र कल्पसम्बन्धी देवराशिको ग्रहण किया गया है ।

१ तेजःपब्रलेइयानां संवत्. स्तोका कप्रमवा । स. सि १, ८

२ प्रमवाः मल्लेयगुणाः । स. सि. १, ८

३ पृथगितरेषां पवेन्द्रियवत् । स. सि १, ८.

सम्मामिच्छादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ३०४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समय ।

असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ३०५ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । सेसं सुवोज्जं ।

मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ३०६ ॥

को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ, सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? द्वाणगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पदंगुलाणि ।

असंजदसम्मादिद्वि-संजदासंजद-पमत-अपमतसंजदद्वाने सम्मत-प्पावहुअमेधं ॥ ३०७ ॥

जधा ओघमिह अप्पावहुअमेदेसि उत्तं सम्मतं पडि, तथा एत्थ सम्मतत्थावहुगं वत्तवमिदि वुत्तं होइ ।

तेजोलेश्या और पक्खलेश्यावालोंमे सासादनसम्यग्दृष्टियोसि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३०४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

तेजोलेश्या और पक्खलेश्यावालोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३०५ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । शेष स्वार्थ सुगम है ।

तेजोलेश्या और पक्खलेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोसि मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३०६ ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो जगश्रेणीके असंख्यातैव भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? घनागुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरागुलप्रमाण है ।

तेजोलेश्या और पक्खलेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान हैं ॥ ३०७ ॥

जिस प्रकार ओघमें इन गुणस्थानोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार यद्वापर सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहना चाहिए, यह अर्थ कहा गया है ।

सुक्खलेश्यासु तिसु अद्दासु उवसमा पवेसणेण^१, तुल्ला थोवां ॥ ३०८ ॥

सुगममेदं ।

उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३०९ ॥

कुदो ? चउवणपमाणत्तादो ।

खवा संखेज्जगुणा^२ ॥ ३१० ॥

अहुत्तरसदपरिमाणत्तादो ।

खीणकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३११ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली पवेसणेण तत्तिया चेव ॥ ३१२ ॥

एदं पि सुगमं ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा^३ ॥ ३१३ ॥

शुक्खलेश्यावालोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ३०८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

शुक्खलेश्यावालोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्य जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ३०९ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चौपन है ।

शुक्खलेश्यावालोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्योसि क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३१० ॥

क्योंकि, उनका परिमाण एक सो आठ है ।

शुक्खलेश्यावालोंमें क्षीणकषायवीतरागछद्मस्य जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३११ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

शुक्खलेश्यावालोंमें सयोगिकेवली प्रवेशकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ३१२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

शुक्खलेश्यावालोंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ ३१३ ॥

^१ शुक्खलेश्याना सर्वत स्तोका उपशमका । स मि १, ८

^२ क्षपका संखेयगुणा । स सि १, ८ ^३ सयोगिकेवलीन संखेयगुणा । स मि १, ८

को गुणगारो ? ओत्रमिदो ।

अपमत्तमंजदा अस्सवा अणुवसमा संखेज्जगुणां ॥ ३१४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जममया ।

पमत्तमंजदा संखेज्जगुणां ॥ ३१५ ॥

को गुणगारो ? दोणिग रुत्ताणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणां ॥ ३१६ ॥

को गुणगारो ? पल्लिदोममस्स अयंखेज्जदिभागो, अयंखेज्जाणि पल्लिदोवमपढम-
पगमूलाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणां ॥ ३१७ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए अयंखेज्जदिभागो ।

सम्माभिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३१८ ॥

गणकार क्या है ? ओत्रमें नतलाया गया गुणकार ही यहांपर गुणकार है ।

शुक्कलेश्यावालोमें ययोगिकेजली जिनोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत
जीव मंल्यातगुणित हैं ॥ ३१४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात नमय गुणकार है ।

शुक्कलेश्यावालोमें अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३१५ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

शुक्कलेश्यावालोमें प्रमत्तसंयतोसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३१६ ॥

गुणकार क्या है ? पन्द्येपमत्ता असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो पल्योपमके
प्रमत्त्यात प्रथम गमूलप्रमाण है ।

शुक्कलेश्यावालोमें संयतासंयतोसे सामादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित
हैं ॥ ३१७ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शुक्कलेश्यावालोमें सामादनसम्यग्दृष्टियोसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित
हैं ॥ ३१८ ॥

* प्रमत्तपमत्ता: सच्येयगुणा: । म. मि. १, ८.

२ प्रमत्तपमत्ता सल्येयगुणा: । स. मि. १, ८

३ सामादनपता: (अ) मत्तेयगुणा: । म. मि. १, ८.

४ सामादनसम्यग्दृष्टय: (अ) सल्येयगुणा । म. मि. १, ८.

५ सम्मानिपमत्तय: सल्येयगुणा । स. मि. १, ८.

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणां ॥ ३१९ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणां ॥ ३२० ॥

आणच्छुदरामिस्स पहाणत्तपरियप्पणादो ।

असंजदसम्मादिट्ठिडाणे सवत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ३२१ ॥
कुदो ? अंतोसुहुत्तमंचयादो ।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३२२ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३२३ ॥

खओवसमियसम्मत्तादो ।

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

शुक्कलेश्यावालोमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित
हैं ॥ ३१९ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शुक्कलेश्यावालोमें मिथ्यादृष्टियोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित
हैं ॥ ३२० ॥

क्योंकि, यहांपर आरण-अच्युतकल्पसम्बन्धी देवराशिकी प्रधानता विवक्षित है ।

शुक्कलेश्यावालोमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सन्ने
कम हैं ॥ ३२१ ॥

क्योंकि, उनका संख्यकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

शुक्कलेश्यावालोमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोसे धायिक-
सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३२२ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शुक्कलेश्यावालोमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें धायिकसम्यग्दृष्टियोसे वेदक-
सम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ३२३ ॥

क्योंकि, वेदकसम्यग्दृष्टियोके शायोपशमिक सम्यक्त्व होता है (जिसकी प्राप्ति
सुलभ है) ।

१ मिथ्यादृष्टयोऽसल्येयगुणा । स. मि. १, ८.

२ अपयतसम्यग्दृष्टयोऽयंखेयगुणा (?) । स. मि. १, ८.

संजदासंजद-पमत-अप्पमतसंजदद्वारेण

॥ ३२४ ॥

जथा ऐदसिमोघम्हि सम्मतप्पावहुगं वुत्तं, तहा वत्तव्वं ।

एवं तिसु अद्वासु ॥ ३२५ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ ३२६ ॥

खवा संवेज्जगुणा ॥ ३२७ ॥

एदाणि तिणिणं वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एव लेस्सामगणा^१ समत्ता ।

भविण्यणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छाह्दी जाव अजोगिकेव्वलि
त्ति ओघं^२ ॥ ३२८ ॥

एत्थ ओघअप्पावहुअं अणूणाहिणं वत्तव्वं ।

शुक्कलेइयावालोमं संयतासंयत, प्रमतसंयत और अप्रमतसंयत गुणस्थानोंमें
सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान हैं ॥ ३२४ ॥

जिस प्रकार इन गुणस्थानोंका ओघमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है,
उसी प्रकार यहापर भी कहना चाहिए ।

इसी प्रकार शुक्कलेइयावालोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्व-
सम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ ३२५ ॥

उक्त गुणस्थानोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ ३२६ ॥

उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३२७ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार लेब्ब्यामार्गणा समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेव्वली गुण-
स्थान तक जीवोंका अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३२८ ॥

यहापर ओघसम्बन्धी अल्पबहुत्व हीनता और अधिकतासे रहित अर्थात्
तत्प्रमाण ही कहना चाहिए ।

^१ व-आप्रलो 'लेस्सामगणा' इति पाठ ।

^२ भन्नावुवादेन भयानां माप्पावर् । म. सि १, ८

अभवसिद्धिएसु अप्पावहुअं णत्थि^१ ॥ ३२९ ॥

कुदो ? एगपदत्तादो ।

एव भवियमगणा समत्ता ।

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिद्दीसु ओधिणाणिभंगो ॥ ३३० ॥

जथा ओधिणाणीणमप्पावहुगं परूखिदं, तथा एत्थ परूखेदव्वं । णवरि सजोगि-
अजोगिपदाणि वि एत्थ अत्थि, सम्मतसामण्णे अहियारादो ।

खइयसम्मादिद्दीसु तिसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा^२
॥ ३३१ ॥

तप्पाओगसंखेज्जपमाणत्तादो ।

उवसंतकसायवीदरागछुमत्था तत्तिया चेव^३ ॥ ३३२ ॥
सुगममेदं ।

अभव्यसिद्धोंमें अल्पबहुत्व नहीं है ॥ ३२९ ॥

क्योंकि, उनके एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है ।

इस प्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई ।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि जीवोंमें अल्पबहुत्व अवधिज्ञानियोंके
समान है ॥ ३३० ॥

जिस प्रकार ज्ञानमार्गणमें अवधिज्ञानियोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार
यहापर भी कहना चाहिए । केवल विशेषता यह है कि सयोगिकेव्वली और अयोगि-
केव्वली, ये दो गुणस्थानपद यहापर होते हैं, क्योंकि, यहापर सम्यक्त्वसामान्यका
अधिकार है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव
प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ३३१ ॥

क्योंकि, उनका तत्त्वायोग्य संख्यात प्रमाण है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें उपशान्तकपायवीतरागछद्मस्य जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही
हैं ॥ ३३२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

^१ अव्यव्याना नास्त्यत्वबहुत्वम् । म. सि १, ८.

^२ सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु सर्वतः स्तोत्राश्रितार उपशमना । म. सि १, ८

^३ इतीषां प्रवृत्तानां सामान्यवत् । म. सि १, ८.

स्वप्ना संखेज्जगुणा ॥ ३३३ ॥

स्त्रीणकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३३४ ॥

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव ॥ ३३५ ॥

पद्दाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ ३३६ ॥

गुणगारे ओघमिद्धो, सहयसम्मचनिरिदिसजोगीणमभावा ।

अप्रमत्तसंजदा अक्खवा अनुवसमा संखेज्जगुणा ॥ ३३७ ॥

को गुणगारो ? तप्पाओगसंखेज्जरूपाणि ।

प्रमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ३३८ ॥

को गुणगारे ? दो रूपाणि ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें उपशान्तकषायवीतरागछन्नस्थिते क्षपक जीव संख्यात-
गुणित हैं ॥ ३३३ ॥

स्त्रीणकसायवीतरागछन्नस्य पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ३३४ ॥

सजोगिकेवली और अजोगिकेवली, ये दोनों ही प्रवेशक्री अपेक्षा तुल्य और
पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३३५ ॥

ये नून सुगम हैं ।

मयोंगिकेवली लिन संचयकालक्री अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ ३३६ ॥

यगापर गुणकार ओघ कथित है, क्योंकि, क्षायिकसम्यक्त्वसे रहित सजोगि-
केवली नहीं पाये जाते हैं ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यात-
गुणित हैं ॥ ३३७ ॥

गुणकार क्या है ? अप्रमत्तसंयतोंके योग्य सख्यातरूप गुणकार है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित
हैं ॥ ३३८ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

संजदासंजदा संखेज्जगुणा ॥ ३३९ ॥

मणुसगदि मोत्तूण अणत्थ खइयसम्मादिट्ठिसंजदासंजदाणमभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठि असंखेज्जगुणा ॥ ३४० ॥

को गुणगारो ? पल्लिदेवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पल्लिदेवमपडम-
वग्गमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-प्रमत्त-अप्रमत्तसंजदद्वारेण खइय-
सम्मतस्स भेदो णत्थि ॥ ३४१ ॥

एदस्स अहिप्पाओ-जेण खइयसम्मत्तस्स एदेसु गुणद्वारेणसु भेदो णत्थि, तेण
णत्थि सम्मतप्पावहुगं, एयपयत्तादो । एसो अत्थो एदेण परूविदो होदि ।

वेदगसम्मादिट्ठिसु सव्वत्थोवा अप्रमत्तसंजदा ॥ ३४२ ॥

कुदो ? तप्पाओगसंखेज्जपमाणत्तादो ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३३९ ॥
क्योंकि, मनुष्यगतिको छोड़कर अन्य गतियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत
जोंवोंका अभाव है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें संयतासंयतोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित
हैं ॥ ३४० ॥

गुणकार क्या है ? पल्लोपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्लोपमके
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और
अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यक्त्वका भेद नहीं है ॥ ३४१ ॥

इस सूत्रका अभिप्राय यह है कि इन असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चारों गुणस्थानोंमें
क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है, इसलिए उनमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्प-
बहुत्व नहीं है, क्योंकि, उन सबमें क्षायिकसम्यक्त्वरूप एक पद ही विवक्षित है । यह
अर्थ इस सूत्रके द्वारा प्ररूपित किया गया है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें अप्रमत्तसंयत जीव सत्रसे कम हैं ॥ ३४२ ॥

क्योंकि, उनका तत्प्रायोग्य संख्यातरूप प्रमाण है ।

१ तत्त. संयतासंयताः सखेयगुणा । स. मि. १, ८.

२ कस्ययतसम्यग्दृष्टयोऽसखेयगुणा । स. मि. १, ८.

३ क्षायोपशामिकसम्यग्दृष्टिषु सन्तं लोका अप्रपत्ताः । च. मि. १, ८.

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणां ॥ ३४३ ॥

को गुणगरो ? दो रूपाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणां ॥ ३४४ ॥

को गुणगरो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढम-
वगमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणां ॥ ३४५ ॥

को गुणगरो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अपमत्तसंजदद्वाने वेदग-
समत्तस्स भेदो णत्थि ॥ ३४६ ॥

एत्थ भेदसदो अप्पावहुअपज्जाओ धेत्तवो, सदाणमणेयत्थत्तादो । वेदगसम्मतस्स
भेदो अप्पावहुअं णत्थि ति उत्तं होदि ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३४३ ॥
गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें प्रमत्तसंयतोसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३४४ ॥
गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें संयतासंयतोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित
हैं ॥ ३४५ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्त-
संयत गुणस्थानोंमें वेदकसम्यक्त्वका भेद नहीं है ॥ ३४६ ॥

यहापर भेद शब्द अल्पबहुत्वका पर्यायवाचक ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि,
शब्दोंके अनेक अर्थ होते हैं । इस प्रकार इस सूत्र द्वारा यह अर्थ कहा गया है कि इन
गुणस्थानोंमें वेदकसम्यक्त्वका भेद अर्थात् अल्पबहुत्व नहीं है ।

१ नमणा मरुरेणुणा । म. सि. १, ८.

२ सततमयता (सं) मग्गेयणुणा स. सि. १, ८

३ अप्रमत्तसम्यग्दृष्टयो-नरो-णुणा । म. सि. १, ८.

उवसमसम्मादिट्ठीसु तिसु अद्दासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला
थोवां ॥ ३४७ ॥

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३४८ ॥

अपमत्तसंजदा अणुवसमा संखेज्जगुणां ॥ ३४९ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणां ॥ ३५० ॥

को गुणगरो ? दो रूपाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणां ॥ ३५१ ॥

को गुणगरो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढम-
वगमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणां ॥ ३५२ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव
प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ३४७ ॥

उपशान्तकषायवीतरागछद्वस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३४८ ॥

उपशान्तकषायवीतरागछद्वस्थोंसे अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित
हैं ॥ ३४९ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित
हैं ॥ ३५० ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें प्रमत्तसंयतोसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित
हैं ॥ ३५१ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें संयतासंयतोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित
हैं ॥ ३५२ ॥

१ औपशमिरूपम्यग्दृष्टीर्ना सर्वत स्तोकाश्रयत्वा उपशमका । स. सि. १, ८

२ अप्रमत्ताः सल्लेयगुणा । स. सि. १, ८

३ संयतामयता (अ-) सल्लेयगुणा । स. सि. १, ८

५ असंयतसम्यग्दृष्टयो-उमल्लेयगुणा । म. सि. १, ८

तो गुणगणे ? आसलियाए असंखेज्जदिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमतसंजदद्वुणे उव-
समसम्मत्तस्स भेदो णत्थि ॥ ३५३ ॥

सुगममेदं ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मा(मिच्छादिट्ठि)-मिच्छादिट्ठिणं णत्थि अप्पा-
वहुअं ॥ ३५४ ॥

कुदो ? एगपदत्तादो ।

एव नमत्तमगणा समत्ता ।

सणियाणुवादेण सणीसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव खीणकसाय-
वीदरागछदुमत्था ति ओघं ॥ ३५५ ॥

जया ओघन्नि अप्पानहुगं पुरुविदं तथा एत्थ पुरुवेद्वं, सणित्तं पडि उह-
यन् भेदाभावा । विमेषपदुप्पायणदुमुत्तरसुत्तं भणदि-

गुणकार स्या ते ? आबल्लोका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

उपग्रामसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्त-
संयत गुणस्थानमें उपग्रामसम्यक्त्वका अल्पबहुत्व नहीं है ॥ ३५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सागदानसम्यग्दृष्टि, सम्यगभिध्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंका अल्पबहुत्व
नहीं है ॥ ३५४ ॥

क्योंकि, तीनों प्रकारके जीवोंके एक गुणस्थानरूप ही पद है ।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

संज्ञिमार्गणाके अनुवादमें संज्ञियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपाय-
नीनरागद्वय गुणस्थान तक जीवोंका अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३५५ ॥

जिस प्रकार ओघमें इन गुणस्थानोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहां
पर भी प्रत्येक करना चाहिए, क्योंकि, सत्त्विकी अपेक्षा दोनों स्थानोंपर कोई भेद
नहीं है । पर संज्ञियोंमें संभव विशेषके प्रतिपादनके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

१ क्षेत्रागं गारुडवहुत्तम्, त्रिषो एहेत्थगुणस्थानप्रदान् । स मि. १, ८.

२ महाउत्तरेण सप्रित्तं चक्षुर्दृशेतिवत् । स. मि. १, ८.

णवरि मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३५६ ॥

ओघमिदि बुत्ते अणंतगुणत्तं पत्तं, तणिरायरण्हं असंखेज्जगुणा इदि उत्तं । गुण-
गारो पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ' सेडीओ, सेडीए असंखेज्जदि-
भागमेत्ताओ ।

असणीसु णत्थि अप्पावहुअं ॥ ३५७ ॥
कुदो ? एगपदत्तादो ।

एव सणिमगणा समत्ता ।

आहाराणुवादेण आहारएसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसेणेण
तुल्ला थोवा' ॥ ३५८ ॥

चउवण्णपमाणत्तादो ।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३५९ ॥
सुगममेदं ।

विशेषता यह है कि संज्ञियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असं-
ख्यातगुणित हैं ॥ ३५६ ॥

उपर्युक्त सूत्रमें 'ओघ' इस पदके कह देने पर असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे सजी
मिथ्यादृष्टि जीवोंके अनन्तगुणितता प्राप्त होती थी, उसके निराकरणके लिए इस सूत्रमें
'असंख्यातगुणित है' ऐसा पद कहा है । यहां पर गुणकार जगप्रतरका असंख्यातवां
भाग है, जो जगश्रेणीके असंख्यातवां भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है ।

असंज्ञी जीवोंमें अल्पबहुत्व नहीं है ॥ ३५७ ॥

क्योंकि, उनमें एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है ।

इस प्रकार संज्ञिमार्गणा समाप्त हुई ।

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारकोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें
उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ३५८ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चौपन है ।

आहारकोंमें उपशान्तकपायवीतरागद्वयस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३५९ ॥
यह सूत्र सुगम है ।

१ प्रतिपु 'जगतो गुणत्त' इति पाठः ।

२ प्रतिपु 'असंखेज्जदि' इति पाठः ।

३ असाक्षिनां गारुडवहुत्तम् । स. मि. १, ८

४ आहाराणुवादेन आहाराणो काययोगिवत् । स. सि. १, ८.

खवा संखेज्जगुणा ॥ ३६० ॥

अहुत्तसदपमाणत्तादो ।

खीणकसायवीदरागछुदमत्था तत्तिथा चेव ॥ ३६१ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली पवेसणेण तत्तिथा चेव ॥ ३६२ ॥

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ ३६३ ॥

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अनुवसमा संखेज्जगुणा ॥ ३६४ ॥

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ३६५ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ ३६६ ॥

को गुणमारो ? पल्लिदेवमस्त असंखेज्जदिभागो ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३६७ ॥

सम्भामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३६८ ॥

आहारकोमं उपशान्तकपायवीतरागछन्नत्थोसे क्षपक जीव संख्यातगुणित है ॥ ३६० ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण एक सौ आठ है ।

आहारकोमं क्षीणकपायवीतरागछन्न जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३६१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारकोमं सजोगिकेवली जिन प्रवेशकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३६२ ॥

सजोगिकेवली जिन संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित है ॥ ३६३ ॥

सजोगिकेवली जिनोसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३६४ ॥

अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३६५ ॥

ये सूत्र सुगम है ।

आहारकोमं प्रमत्तसंयतोसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३६६ ॥

गुणकार क्या है ? पल्लोपमका असंख्यातवा भाग गुणकार है ।

आहारकोमं संयतासंयतोसे सामादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३६७ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टियोमे सम्यग्भिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३६८ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३६९ ॥

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ ३७० ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठिसंजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्टाणे सम्मत्त-

प्पावहुअमोघं ॥ ३७१ ॥

एवं तिसु अद्वासु ॥ ३७२ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ ३७३ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ ३७४ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

अणाहारएसु सव्वत्थोवा सजोगिकेवली ॥ ३७५ ॥

कुदो ? सट्ठिपमाणत्तादो ।

अजोगिकेवली संखेज्जगुणा ॥ ३७६ ॥

कुदो ? दुरुज्जणछस्सदपमाणत्तादो ।

सम्यग्भिथ्यादृष्टियोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३६९ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टियोसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ ३७० ॥

ये सूत्र सुगम है ।

आहारकोमं असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत

गुणस्थानोमे सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३७१ ॥

इसी प्रकार अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोमे सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व

ओघके समान है ॥ ३७२ ॥

उक्त गुणस्थानोमे उपशाराक जीव सबसे कम हैं ॥ ३७३ ॥

उपशामकोसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३७४ ॥

ये सूत्र सुगम है ।

अनाहारकोमं सजोगिकेवली जिन सबसे कम हैं ॥ ३७५ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण साठ है ।

अनाहारकोमं अजोगिकेवली जिन संख्यातगुणित हैं ॥ ३७६ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण दोग कम छह सौ अर्थात् पांच सौ अठ्यानेव (५९८) है ।

१ अनाहारका समतः स्तोत्रा संयोगचालिनः । स ति १, ८.

२ अयोगचालिन संखेज्जगुणा । स. ति १, ८.

सासगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणां ॥ ३७७ ॥

को गुणगारो ? पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदेवमपढम-
पढममूलाणि ।

असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणां ॥ ३७८ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए अमंखेज्जदिभागो ।

मिच्छादिद्वी अणंतगुणां ॥ ३७९ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंतणि
सब्बजीवमपढममूलाणि ।

असंजदसम्मादिद्विद्वेण सव्वथोवा उपसमसम्मादिद्वी ॥ ३८० ॥

कूदो ? मंखेज्जजीवपमाणत्तादो ।

अनाहारकोमं अमंयतसम्यग्दृष्टिं जीवो तासादनसम्यग्दृष्टिं जीव अमंख्यातगुणित
है ॥ ३७७ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो पल्योपमके
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

अनाहारकोमं अमंयतसम्यग्दृष्टियोसे अमंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित
है ॥ ३७८ ॥

गुणकार क्या है ? आवलंकिता असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

अनाहारकोमं अमंयतसम्यग्दृष्टियोसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित है ॥ ३७९ ॥
गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धांसे अनन्तगुणित, सिद्धोंसे भी अनन्तगुणित
राशि गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

अनाहारकोमं अमंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सव्वसे कम
है ॥ ३८० ॥

क्योंकि, अनाहारक उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका प्रमाण संख्यात है ।

१ तासादनसम्यग्दृष्टोऽसंखेयगुणा । स वि १, ८.

२ अतयतसम्यग्दृष्टोऽमसंखेयगुणा । स वि. १, ८

३ मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । स वि. १, ८

खइयसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ३८१ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया ।

वेदगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ३८२ ॥

को गुणगारो ? पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदेवमस्स
पढमवग्गमूलाणि ।

(एत आहारमगणा समत्ता ।)

एवमप्यवहुगुणगो चि समत्तमणिओगदारं ।

अनाहारकोमं असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमे उपशमसम्यग्दृष्टियोसे क्षायिक-
सम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित है ॥ ३८१ ॥

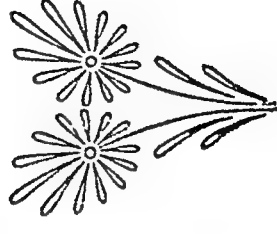
गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

अनाहारकोमं अमंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमे क्षायिकसम्यग्दृष्टियोसे वेदकसम्य-
ग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित है ॥ ३८२ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

(इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई ।)

इस प्रकार अल्पवहुत्यानुगम नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।





परिचय





पुस्तक



पुत्र संख्या	पुत्र	पुत्र संख्या	पुत्र	पुत्र
३६५	पमरमंजदा मंसेज्जगुणा ।	३४७	३७४ खवा संखेज्जगुणा ।	३४८
३६६	मंजदमंजदा असंसेज्जगुणा ।	"	३७५ अणाहारएसु सव्वत्योवा	"
३६७	मानणमम्मादिट्ठी असंसेज्जगुणा ।	"	मज्जीगिकेवली ।	"
३६८	मम्माभिच्छादिट्ठी संसेज्जगुणा ।	"	३७६ अजोगिकेवली संसेज्जगुणा ।	"
३६९	अमंजदमम्मादिट्ठी असंसेज्जगुणा ।	"	३७७ सासणसम्मादिट्ठी असंसेज्जगुणा ।	३४९
३७०	मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ।	३४८	३७८ असंजदसम्मादिट्ठी असंसेज्जगुणा ।	"
३७१	अमंजदमम्मादिट्ठी-मंजदा-मंजद-पमर-अप्पमत्तसंजद-गुणे सम्मत्तप्पमत्तमोघं ।	"	३७९ मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ।	"
३७२	एवं तिसु अद्वासु ।	"	३८० असंजदसम्मादिट्ठीगणे सव्वत्योवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	"
३७३	सज्जन्तोपा उवसमा ।	"	३८१ सइयसम्मादिट्ठी संसेज्जगुणा ।	३५०
		"	३८२ वेदगसम्मादिट्ठी असंसेज्जगुणा ।	"

२ अवतरण-गाथा-सूची

(भावप्ररूपणा)

+ २३ * ८८८

क्रम संख्या	गाथा	पुत्र	अन्यत्र कहा	क्रम संख्या	गाथा	पुत्र	अन्यत्र कहा
१	अग्निद्वारभायो	१८६		९	गाणण्णाणं च तथा	१९१	
११	इगिनीस अट्ट तार णव	१९२		१०	गाणिमि धम्मवयरो	१८६	
१२	पफोत्तरपट्टजो	१९३		११	१४ देसे सथोवसमिण	१९३	
१३	एवं काणं तिणिण विज-१९२			१२	१३ मिच्छते दस भगा	"	
५	ओदरजो उवसमिओ	१८७		१३	८ लद्धोभो सम्मत्तं	१९१	
४	रावप य राणिमोहे	१८६ परतंडा वेदनातंडा		१४	३ सम्मत्तुणत्तीय वि	१८६ परतंडा	
६	गदि-लिग-कसाया वि	१८९		१५	वेदनातंडा, गो जी. ६७		
				१६	७ सम्मत्तं चरित्तं दो	१९०	

३ न्यायोक्तियां

क्रम संख्या	न्याय	पुत्र	क्रम संख्या	न्याय	पुत्र
१	एगजोगणिदिट्ठाणमेगदेसो णाणुवट्ठदि ति णायोदो ।	२५९	३	कारणणुसारिणा कज्जेण होदव्वमिदि णायोदो ।	२५०
२	जहा उहेसो तथा णिहेसो ।	४, ९, २५, २७, ७१, १९४, २७०	४	समुदाणसु पयट्ठाणं तवेग-देसे वि पउत्तिदंसणादो ।	१९९

४ ग्रन्थोल्लेख

१ चूलियासुत्त

१ तं कथं णव्वेदे ? 'पंचिदिपसु उवसामेतो गम्भोवक्रंतिपसु उवसामेदि, गो सम्मुच्छिमेसु' ति चूलियासुत्तादो । ११८

२ दव्वाणिओगद्धार

१ एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुत्तेण कालेणेत्ति दव्वाणिओगद्धार-सुत्तादो णव्वेदि । २५२

२ आणद-पाणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिपट्ठि जाव असंजदसम्मादिट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया, पलिदोवमसस असंखेज्जविमाण-एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुत्तेण । अणुदिसादि जाव अवरारदविमाण-वासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया, पलिदोवमसस असंखेज्जवि-भाणो । एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुत्तेणेत्ति एदेण दव्वसुत्तेण । २८७

३ पाहुडसुत्त (कपायप्राभुत्त)

१. चट्ठण्हं कसायाणसु कससंतरस्स छम्मासमेत्तस्सेव सिद्धिदो । ण पाहुड-सुत्तेण वियहिचारो, तस्स भिण्णोवेदसत्तादो । ११२

२ तं पि कुदो णव्वेदे ? 'णियमा मणुगसदीए' इदि सुत्तादो । २५६

४ सूत्रपुस्तक

१. केसु वि सुत्तपोत्थणसु पुरिसेवेदसंतरं छम्मासा । १०६

५ परिभाषिक शब्दसूची

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
अ		आ	
अकृपायत्व	२२३	आगमद्रव्यान्तर	२२३
अवधुर्गोचरस्थिति	१३७, १३८	आगमद्रव्यभाव	१८४
अचिरतद्रव्यतिरिक्तद्रव्यान्तर	३	आगमद्रव्याल्पबहुत्व	२४२
अतिप्रसंग	२०६, २०९	आगमभावभाव	१८४
अद्यस्तनराशि	२४९, २६२	आगमभावान्तर	३
अनर्पित	४५	आगमभावाल्पबहुत्व	२४२
अनात्मभूतभाव	१८५	आवेष्टा	१, २४३
अनात्मस्वरूप	२२५	आवली	७
अनादिपरिणामिक	२२५	आसादन	२४
अनुदयोपशम	२०७	आहारकृच्छ्रि	२९८
अन्तर्दीपक	२०१, २००	आहारककाल	१७४
अन्तर	३		
अन्तरानुगम	१	उ	
अन्तर्मुहूर्त	९	उच्छेद	३
अन्यथानुपपत्ति	२२३	उत्कीर्णकाल	१०
अपगतवेदत्व	२२२	उत्तरप्रतिपत्ति	३२
अपक्षिप्त	४४, ७४	उत्तानशय्या	४७
अपूर्वाब्दा	५४	उद्देलनकाल	३४
अभिधान	१९४	उद्देलना	३३
अर्थ	१९४	उद्देलनाकांडिक	१०, २५
अर्थपुद्गलपरिवर्तन	११	उपक्रमणकाल	२५०, २५१, २५५
अर्पित	६३	उपदेश	३२
अवसान्तर	११७	उपरिभराशि	२४९, २६२
अवहारकाल	२४९	उपशम	२००, २०२, २०३, २११, २२०
अंशादिभाव	२०८	उपशमश्रेणी	११, १५१
असंज्ञिस्थिति	१७२	उपशमसम्यक्त्वाद्वा	१५, २५४
असंयम	१८८	उपशान्तकपायाद्वा	१९
असद्भावस्थापनान्तर	२	उपशामक	१२५, २६०
असद्भावस्थापनाभाव	१८४	उपशामकाद्वा	१५९, १६०
असिद्धता	१८८	ओ	
		ओघ	१, २४३

(३६)

परिभाषिक शब्दसूची

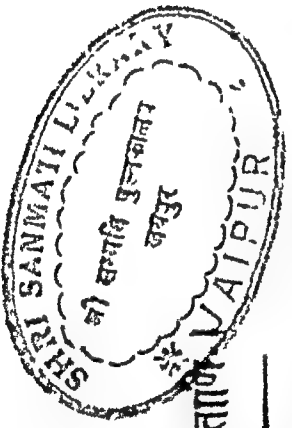
शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
औद्यिकभाव	१८५, १९४	ड	
औपशमिकभाव	१८५, २०४	डहरकाल	४२, ४४, ४७, ५६
		त	
कपाटपर्याय	९०	तद्व्यतिरिक्तभल्पबहुत्व	२४२
करण	११	तद्व्यतिरिक्तनोवागमद्रव्यभाव	१८४
कपाय	२२३	तीर्थकर	१९४, ३२३
कुरु	४१	तीव्र-भन्दभाव	१८७
कृतकरणीय	१४, १५, १६, ९९, १०५, १३९, २३३	असपर्यायस्थिति	८४, ८५
		असंस्थिति	६५, ८१
क्रोडोपशमनाद्वा	१९०	द	
क्षपक	१०५, १२४, २६०	दक्षिणप्रतिपत्ति	३२
क्षपकश्रेणी	१२, १०६	दिवसपृथक्त्व	९८, १०३
क्षपकाद्वा	१५९, १६०	दिव्यध्वनि	१९४
क्षय	१९८, २०२, २११, २२०	दीर्घान्तर	११७
क्षयिकभाव	१८५, २०५, २०६	दृष्टमार्ग	२२, ३८
क्षयिकसम्यक्त्वाद्वा	२५४	देवलोक	२८४
क्षयिकसंज्ञा	२००	देशाघातिस्पर्धक	१९९
क्षयोपशमिक	२००, २११, २२०	देशान्त	२७७
क्षयोपशमिकभाव	१८५, १९८	देशसंयम	२०२
क्षुद्रभवग्रहण	४५, ५६	द्रव्यविक्रमसूची	२६३
		द्रव्यान्तर	३
		द्रव्याल्पबहुत्व	२४१
		द्रव्यलिङ्गी	५८, ६३, १४९
ग		न	
गुणकार	२४७, २५७, २६२, २७४	नपुंसकवेदोपशमनाद्वा	१९०
गुणकाल	८९	नामभाव	१८३
गुणस्थानपरिपाटी	१३	नामान्तर	१
गुणाद्वा	१५१	नामाल्पबहुत्व	२४१
गुणान्तरसंक्रान्ति	८९, १५४, १७१	निदर्शन	६, २५, ३२
		निर्गन्तर	५६, २५७
घनांगुल	३१७, ३३५	निर्जराभाव	१८७
		निर्वाण	३५
चक्षुर्दृशेनस्थिति	१३७, १३९	नोवागमअचित्तद्रव्यभाव	१८४
		नोवागमद्रव्यभाव	१८४
जीवविपाकी	२२२	नोवागमद्रव्यान्तर	२
ज्ञानकार्य	२२४	नोवागमभल्पद्रव्यभाव	१८४

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
नो आगमभावाभावा	१८३	सम्यक्त्व	६	संचय	२४४, २७३
नो आगमभावाभावा	३	सम्यग्मिथ्यात्व	७	संचयकाल	२७७
नो आगममिथ्याभावा	१८४	सर्वघातित्व	१९८	संचयकालप्रतिभाग	२८४
नो आगममिथ्याभावा	२४२	सर्वघातिस्पर्धक	१९९, २३७	संचयकालमाहात्म्य	२५३
नो आगममिथ्याभावा	२४२	सर्वघाती	१९९, २०२	संचयराशि	३०७
नो आगममिथ्याभावा	१८४	सर्वपरस्थानात्पवहुत्व	२८९	संयम	६
नो आगममिथ्याभावा	२३७	सागरोपम	६	संयमासंयम	६
प		सागरोपमपृथक्त्व	१०	स्तितुकसंक्रमण	२१०
परमात्रे	७	सागरोपमशतपृथक्त्व	७२	स्थान	१८९
परमार्थान्तरपवहुत्व	२८९	सातासातवंधपरवृत्ति	१३०, १४२	स्थापनान्तर	२
परिपाटी	२०	साधारणभाव	१९६	स्थापनाभाव	१८३
पल्लोपम	७, ९	सान्तर	२५७	स्थापनाल्पवहुत्व	२४१
पारिणामिकभावा	१८५, २०७, १९६, २३०	साविपतिभाव	१९३	स्थावरास्थिति	८५
पुत्रालपरित्याग	५७	सासादनगुण	७	खविमस्थिति	१९०
पुत्रविपत्ति	२२२	सासादनपञ्चादागतमिथ्यावृष्टि	१०	स्वस्थानात्पवहुत्व	२८९
पुत्रलिंगाती	२२६	सासंयमसम्यक्त्व	१६		
पुत्रपरोपपदामनात्	१९०	सिद्धयत्काल	१०४		
पुत्रोद्दीप्यस्त्व	४२, ५२, ७२	सुद्धमात्रा	१९		
प्रक्षेपस्त्व	२९३	सोचिकस्वरूप	२६७		
प्रक्षेपगुण	३१७, ३३५				
प्रतिभावा	२७०, २९०				
प्रत्यय	१९४				
प्रत्ययगुण	३२३				
व					
वर्गमूल	२६७				
वर्गपृथक्त्व	१८, ५३, ५५, २६३				
वर्गपृथक्त्वान्तर	१८				
वर्गपृथक्त्वानु	३६				
विकल्प	१८९				
विग्रह	१७३				
विग्रहगति	३००				
विरह	३				
व्यभिचार	१८९, २०८				
श					
श्रेणी	१६६				
प					
पण्णोक्तपयोपशामनाद्वा	१९०				
पणमास	२१				
स					
सचित्तान्तर	३				
सदुपशम	२०७				
सद्भावस्थापनाभाव	१८३				
सद्भावस्थापनान्तर	२				
सम्पूजितम	४१				

ह

हेतुहेतुमद्भाव





अंतरपरुवणासुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	अंतराणुगमेण दूभिहो निदेसो, ओयेण आदेसेण य ।	१	११	उक्कस्सेण अद्वपोगलपरियट्ठं देखणे ।	१४
२	ओयेण मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिं निरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच पडुच गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	४	१२	चटुण्हवुवसमगाणमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच जहणेण एगसमयं ।	१७
३	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो-मुहुत्तं ।	५	१३	उक्कस्सेण वासपुघत्तं ।	१८
४	उक्कस्सेण वे छात्रद्विसागरोव-माणि देखणाणि ।	६	१४	एगजीवं पडुच जहणेण अंतो-मुहुत्तं ।	"
५	सासनसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छा-दिट्ठीणमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच जहणेण एगसमयं ।	७	१५	उक्कस्सेण अद्वपोगलपरियट्ठं देखणे ।	१९
६	उक्कस्सेण पल्लितमस्स असं-सेज्जदिभागो ।	८	१६	चटुण्हं सवग-अजोगिकेवलीणमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच जहणेण एगसमयं ।	२०
७	एगजीवं पडुच्च जहणेण पलि-दोयमस्स असंसेज्जदिभागो, अंतो-मुहुत्तं ।	९	१७	उक्कस्सेण छम्मासं ।	२१
८	उक्कस्सेण अद्वपोगलपरियट्ठं देखणे ।	११	१८	एगजीवं पडुच गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
९	असंजदमस्मादिट्ठि-पडुडि जाव अपमत्तमंजदा सि अंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	१३	१९	सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
१०	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो-मुहुत्तं ।	"	२०	एगजीवं पडुच गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
			२१	आदेसेण गदियणुवादेण गिरय-गदीए गेरहएसु मिच्छादिट्ठि-असं-जदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	२२

(२) अंतरपरुवणासुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२२	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो-मुहुत्तं ।	२२	३२	उक्कस्सेण पल्लितोवमस्स असंसे-ज्जदिभागो ।	२९
२३	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देखणाणि ।	२३	३३	एगजीवं पडुच्च जहणेण पलि-दोवमस्स असंसेज्जदिभागो, अंतो-मुहुत्तं ।	"
२४	सासनसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छा-दिट्ठीणमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	२४	३४	उक्कस्सेण सागरोवमं तिणिण सत्त दस सत्तास वार्वास तेत्तीसं सागरोवमाणि देखणाणि ।	"
२५	उक्कस्सेण पल्लितोवमस्स असंसे-ज्जदिभागो ।	"	३५	तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	३१
२६	एगजीवं पडुच्च जहणेण पलि-दोवमस्स असंसेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ।	२५	३६	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो-मुहुत्तं ।	"
२७	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देखणाणि ।	२६	३७	उक्कस्सेण तिणिण पल्लितोवमाणि देखणाणि ।	३२
२८	पडमादि जाव सत्तमीए पुढधीए गेरहएसु मिच्छादिट्ठि-असंजद-सम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	२७	३८	सासनसम्मादिट्ठि-पडुडि संजदासंजदा ति ओघं ।	३३
२९	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो-मुहुत्तं ।	"	३९	पंचिदियतिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	३७
३०	उक्कस्सेण सागरोवमं तिणिण सत्त दस सत्तास वार्वास तेत्तीसं सागरोवमाणि देखणाणि ।	"	४०	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो-मुहुत्तं ।	३८
३१	सासनसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छा-दिट्ठीणमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच जहणेण एगसमयं ।	२९	४१	उक्कस्सेण तिणिण पल्लितोवमाणि देखणाणि ।	"
			४२	सासनसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छा-दिट्ठीणमंतरं केवचिं कालादो	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
६७	संजदांसजदप्पहुडि जाव अप्पमत्त- संजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	५१	८२	एदं गदि पडुच्च अंतरं ।	५७
६८	एगजीवं पडुच्च जहणेण अतो- मुहुत्तं ।	"	८३	गुणं पडुच्च उभयदो वि गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
६९	उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं ।	५२	८४	देवगदीए देहेसु मिच्छादिट्ठि- अंसजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
७०	चटुण्हसुवसाभगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	५३	८५	एगजीवं पडुच्च जहणेण अतो- मुहुत्तं ।	"
७१	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"	८६	उक्कस्सेण एकक्कीसं सागरो- वमाणि देखणाणि ।	५८
७२	एगजीवं पडुच्च जहणेण अतो- मुहुत्तं ।	५४	८७	सासणसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छा- दिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	५९
७३	उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं ।	"	८८	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखे- ज्जदिभागो ।	"
७४	चटुण्हं खवा अजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	५५	८९	एगजीवं पडुच्च जहणेण पलिदो- वमस्स असंखेज्जदिभागो, अतो- मुहुत्तं ।	"
७५	उक्कस्सेण छम्मासं, वासपुधत्तं ।	"	९०	उक्कस्सेण एकक्कीसं सागरो- वमाणि देखणाणि ।	६०
७६	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	५६	९१	भवणवासिय-वाणवंतर-जोदिसिय- सोधम्मीसाणप्पहुडि जाव सदा- सहस्सारकप्पवासियदेहेसु मिच्छा- दिट्ठि-अंसजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	६१
७७	सजोगिकेवली ओघ ।	"	९२	एगजीवं पडुच्च जहणेण अतो- मुहुत्तं ।	"
७८	मणुमअपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	"			
७९	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखे- ज्जदिभागो ।	"			
८०	एगजीवं पडुच्च जहणेण सुदा- भवगगहणं ।	"			
८१	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज- योगलपरियट्ठं ।	५७			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
४३	होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	३८	५५	एदं गदि पडुच्च अंतरं ।	४६
४४	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखे- ज्जदिभागो ।	३९	५६	गुणं पडुच्च उभयदो वि गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
४५	एगजीवं पडुच्च जहणेण पलिदो- वमस्स असंखेज्जदिभागो, अतो- मुहुत्तं ।	"	५७	मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त- मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
४६	उक्कस्सेण तिणिण पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणभहियाणि ।	४०	५८	एगजीवं पडुच्च जहणेण अतो- मुहुत्तं ।	४७
४७	अंसजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	४१	५९	उक्कस्सेण तिणिण पलिदोवमाणि देखणाणि ।	"
४८	एगजीवं पडुच्च जहणेण अतो- मुहुत्तं ।	४२	६०	सासणसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छा- दिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	४८
४९	संजदांसजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	४३	६१	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखे- ज्जदिभागो ।	"
५०	एगजीवं पडुच्च जहणेण अतो- मुहुत्तं ।	"	६२	एगजीवं पडुच्च जहणेण पलि- दोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अतोमुहुत्तं ।	"
५१	उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं ।	४४	६३	उक्कस्सेण तिणिण पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणभहियाणि ।	४९
५२	पांचदियतिरिस्सअपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	४५	६४	अंसजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	५०
५३	एगजीवं पडुच्च जहणेण सुदा- भवगगहणं ।	"	६५	एगजीवं पडुच्च जहणेण अतो- मुहुत्तं ।	"
५४	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज- योगलपरियट्ठं ।	"	६६	उक्कस्सेण तिणिण पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणभहियाणि ।	"

पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	पृष्ठ
१३	उत्क्रस्तेण सागरोऽयं पलिदोवमं	६५	भगवद्गणं ।	१०३
१४	वे सत्तदम चोदम योलस अद्वारस	१०४	उत्क्रस्तेण वे सागरोवमसह-	१०४
१५	सागरोऽयमाणि सादिरयाणि ।	१०५	स्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणवम-	१०५
१६	मागणममादिट्टि-सम्माभिच्छा-	१०६	हियाणि ।	१०६
१७	दिट्ठीणं मत्थणोत्त ।	१०७	वादेइंदियाणमंतं केवचिं	१०७
१८	आणद जाण गवरोवज्जविमाण-	१०८	कालादो होदि, गाणाजीवं	१०८
१९	वासियेदेवसु मिच्छादिट्टि-असं-	१०९	पडुच्च गत्थि अंतं, गिरंतं ।	१०९
२०	जदममादिट्ठीणमंतं केवचिं	११०	एगजीवं पडुच्च जहणेण सुदा-	११०
२१	कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च	१११	भगवद्गणं ।	१११
२२	गत्थि अंतं, गिरंतं ।	११२	उत्क्रस्तेण अंगुलस्स असंखे-	११२
२३	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो-	११३	ज्जादिभागो, असंखेज्जासंखे-	११३
२४	मुदुत्तं ।	११४	ज्जाओ ओसपिणि-उत्सपि-	११४
२५	उत्क्रस्तेण वीमं वानीसं तेपीसं	११५	णीओ ।	११५
२६	चउरीसं पणवीसं छब्बीसं सत्ता-	११६	वीइंदिय-तीइंदिय-चदुरिंदिय-	११६
२७	नीसं अट्टनीसं जगत्तीमं तीसं	११७	तस्सेव पज्जत्त-अपज्जाणमंतं	११७
२८	एत्तत्तीमं सागरोऽयमाणि देस-	११८	केवचिं कालादो होदि, गाणा-	११८
२९	णाणि ।	११९	जीवं पडुच्च गत्थि अंतं,	११९
३०	मागणममादिट्टि-सम्माभिच्छा-	१२०	गिरंतं ।	१२०
३१	दिट्ठीणं सत्ताणमोचं ।	१२१	इंदियाणुआदेण एइंदियाणमंतं	१२१
३२	अणुदिसादि जाव सव्वहसिद्धि-	१२२	केवचिं कालादो होदि, गाणा-	१२२
३३	निमाणवासियेदेवसु असंज-	१२३	जीवं पडुच्च गत्थि अंतं,	१२३
३४	सम्मादिट्ठीणमंतं केवचिं	१२४	गिरंतं ।	१२४
३५	कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च	१२५	इंदियाणुआदेण एइंदियाणमंतं	१२५
३६	(गत्थि) अंतं, गिरंतं ।	१२६	केवचिं कालादो होदि, गाणा-	१२६
३७	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतं,	१२७	जीवं पडुच्च गत्थि अंतं, गिरंतं ।	१२७
३८	गिरंतं ।	१२८	एगजीवं पडुच्च जहणेण सुदा-	१२८
३९	इंदियाणुआदेण एइंदियाणमंतं	१२९	भगवद्गणं ।	१२९
४०	केवचिं कालादो होदि, गाणा-	१३०	उत्क्रस्तेण अणंतकालमसंखेज्ज-	१३०
४१	जीवं पडुच्च गत्थि अंतं, गिरंतं ।	१३१	वादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जाण-	१३१
४२	एगजीवं पडुच्च जहणेण सुदा-	१३२	मंतं केवचिं कालादो होदि,	१३२
४३	भगवद्गणं ।	१३३	गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतं,	१३३
४४	उत्क्रस्तेण अणंतकालमसंखेज्ज-	१३४	गिरंतं ।	१३४
४५	वादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जाण-	१३५	एगजीवं पडुच्च जहणेण सुदा-	१३५
४६	मंतं केवचिं कालादो होदि,	१३६	भगवद्गणं ।	१३६
४७	गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतं,	१३७	उत्क्रस्तेण असंखेज्जा लोगा ।	१३७
४८	गिरंतं ।	१३८	वादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरी-	१३८
४९	एगजीवं पडुच्च जहणेण सुदा-	१३९	पज्जत्त-अपज्जाणमंतं केव-	१३९
५०	भगवद्गणं ।	१४०	चिं कालादो होदि, गाणा-	१४०
५१	उत्क्रस्तेण अणंतकालमसंखेज्ज-	१४१	वादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जाण-	१४१
५२	वादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जाण-	१४२	मंतं केवचिं कालादो होदि,	१४२
५३	मंतं केवचिं कालादो होदि,	१४३	गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतं,	१४३
५४	गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतं,	१४४	गिरंतं ।	१४४
५५	गिरंतं ।	१४५	एगजीवं पडुच्च जहणेण सुदा-	१४५
५६	भगवद्गणं ।	१४६	भगवद्गणं ।	१४६
५७	उत्क्रस्तेण असंखेज्जा लोगा ।	१४७	उत्क्रस्तेण असंखेज्जा लोगा ।	१४७
५८	वादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरी-	१४८	पज्जत्त-अपज्जाणमंतं केव-	१४८
५९	पज्जत्त-अपज्जाणमंतं केव-	१४९	चिं कालादो होदि, गाणा-	१४९
६०	चिं कालादो होदि, गाणा-	१५०	वादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जाण-	१५०

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१३७	जीवं पडुच्च गतिथ अंतरं, गिरंतरं ।	७९	१४७	ओधं ।	८५
१३७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण सुदा- भवग्गहणं ।	८०	१४८	एगस्सेण वे सागरोवमसह- स्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहि- याणि, वे सागरोवमसहस्साणि देवणाणि ।	८६
१३८	उक्कस्सेण अद्दुहज्जयोगल- परिपटं ।	"	१४९	चटुण्हं खवा अजोगिकेवली ओधं ।	"
१३९	तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी ओधं ।	"	१५०	सजोगिकेवली ओधं ।	"
१४०	सासनसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छा- दिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च ओधं ।	"	१५१	तसकाइयअपज्जत्तणं पंचिंदिय- अपज्जत्तभंगो ।	"
१४१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलि- दोयमस्स असरेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ।	८१	१५२	एदं कायं पडुच्च अंतरं । गुणं पडुच्च उभयदो वि गतिथ अंतरं, गिरंतरं ।	८७
१४२	उक्कस्सेण वे सागरोवमसह- स्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहि- याणि, वे सागरोवमसहस्साणि देवणाणि ।	"	१५३	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि- पंचवचिजोगीसु कायजोगि- ओरालियकायजोगीसु मिच्छा- दिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-संजदा- संजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजद- सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणेगजीवं पडुच्च गतिथ अंतरं, गिरंतरं ।	८२
१४३	अमंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गतिथ अंतरं, गिरंतरं ।	८२	१५४	सासनसम्मादिट्ठि सम्माभिच्छा- दिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"
१४४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	८३	१५५	सासनसम्मादिट्ठि सम्माभिच्छा- दिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	८८
१४५	उक्कस्सेण वे सागरोवमसह- स्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहि- याणि, वे सागरोवमसहस्साणि देवणाणि ।	"	१५६	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंसे- ज्जदिभागो ।	"
१४६	चटुण्हमुवममगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च	"	१५६	एगजीवं पडुच्च गतिथ अंतरं	"

(८)	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	१५७	गिरंतरं ।	८८	१७०	णीणं मणजोगिभंगो ।	९१
	१५७	चटुण्हमुवममगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च ओधं ।	"	१७०	वेउविण्यमिस्सकायजोगीसु मि- च्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जह- ण्णेण एगसमयं ।	"
	१५८	एगजीवं पडुच्च गतिथ अंतरं, गिरंतरं ।	८९	१७१	उक्कस्सेण वासस मुहुत्तं ।	९२
	१५९	चटुण्हं खवाणमोधं ।	"	१७२	एगजीवं पडुच्च गतिथ अंतरं, गिरंतरं ।	"
	१६०	ओरालियमिस्सकायजोगीसु मि- च्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणेगजीवं पडुच्च गतिथ अंतरं, गिरंतरं ।	"	१७३	सासनसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मा- दिट्ठीणं ओरालियमिस्सभंगो ।	"
	१६१	सासनसम्मादिट्ठीणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च ओधं ।	"	१७४	आहारकायजोगीसु आहार- मिस्सकायजोगीसु पमत्तसंज- दाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जह- ण्णेण एगसमयं ।	९३
	१६२	एगजीवं पडुच्च गतिथ अंतरं, गिरंतरं ।	९०	१७५	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"
	१६३	असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समयं ।	"	१७६	एगजीवं पडुच्च गतिथ अंतरं, गिरंतरं ।	"
	१६४	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"	१७७	कम्मइयकायजोगीसु मिच्छा- दिट्ठि-सासनसम्मादिट्ठि-असं- जदसम्मादिट्ठि-सजोगिकेवलीणं ओरालियमिस्सभंगो ।	"
	१६५	एगजीवं पडुच्च गतिथ अंतरं, गिरंतरं ।	"	१७८	वेदाणुवादेण इतिथेवेदेसु मिच्छा- दिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गतिथ अंतरं गिरंतरं ।	९४
	१६६	सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	९१	१७९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"
	१६७	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"	१८०	उक्कस्सेण पणवण्ण पलिदोव- माणि देवणाणि ।	"
	१६८	एगजीवं पडुच्च गतिथ अंतरं, गिरंतरं ।	"			
	१६९	वेउविण्यत्रायजोगीसु चटुट्ठा-	"			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२०५	पठुच्च जहणेण एगसमयं । १०५		२१७	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । ११०	
२०५	उक्कस्सेण वासं सादियं । १०६		२१८	उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्था- णमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं । "	
२०६	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं । "		२१९	उक्कस्सेण वासपुधत्तं । "	
२०७	णुंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठीण- मंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं । १०६		२२०	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं । १११	
२०८	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं । १०७		२२१	अणियद्धिखवा सुहुमखवा सीणकसायवीदरागछुदुमत्था अजोगिकेवली ओधं । "	
२०९	उक्कस्सेण तेचीसं सागरोव- माणि देसणाणि । "		२२२	सजोगिकेवली ओधं । "	
२१०	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियद्धिउवसामिदो ति मूलोधं । "		२२३	कसायाणुवादेण कोधकसाइ- माणकसाइ-मायकसाइ-लोह- कसाईसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा ति मणजोगिमंगो । "	
२११	दोण्हं सवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं । १०९		२२४	अकसाईसु उवसंतकसायवीद- रागछुदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं । ११३	
२१२	उक्कस्सेण वासपुधत्तं । "		२२५	उक्कस्सेण वासपुधत्तं । "	
२१३	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं । "		२२६	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, णिरंतरं । "	
२१४	अवगदेवएसु अणियद्धिउव- सम-सुहुमउवसमाणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, णाणा- जीवं पडुच्च जहणेण एग- समयं । "		२२७	सीणकसायवीदरागछुदुमत्था अजोगिकेवली ओधं । "	
२१५	उक्कस्सेण वासपुधत्तं । "		२२८	सजोगिकेवली ओधं । "	
२१६	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं । ११०		२२९	णाणाणुवादेण मदिअणाणि- सुदअणाणि—विमंगणाणीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१८१	सायणमम्मादिट्टि-सम्माभिच्छा- दिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च ओघं ।	९५	१९३	पुरिसवेदएसु ओघं ।	१००
१८२	एगजीनं पडुच्च जहण्णेण पन्निदोवमस्स असंसेज्जदि- भागो, अंतोमुहुत्तं ।	"	१९४	सायणमम्मादिट्टि-सम्माभिच्छा- दिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	१०१
१८३	उक्कस्सेण पल्लिदोवमसद- पुघत्तं ।	९६	१९५	उक्कस्सेण पल्लिदोवमस्स असंसेज्जदिभागो ।	"
१८४	अयंजदसम्मादिट्टिप्पहुडि जाव अप्पमत्तंसजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	९७	१९६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पल्लिदोवमस्स असंसेज्जदि- भागो, अंतोमुहुत्तं ।	"
१८५	एगजीनं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"	१९७	उक्कस्सेण सागरोवमसद- पुघत्तं ।	"
१८६	उक्कस्सेण पल्लिदोवमसद- पुघत्तं ।	"	१९८	असंजदसम्मादिट्टिप्पहुडि जाव अप्पमत्तंसजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	१०२
१८७	दोण्हसुवसामागणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्समोघं ।	९९	१९९	एगजीनं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"
१८८	एगजीनं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"	२००	उक्कस्सेण सागरोवमसद- पुघत्तं ।	१०३
१८९	उक्कस्सेण पल्लिदोवमसद- पुघत्तं ।	"	२०१	दोण्हसुवसामागणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च ओघं ।	१०४
१९०	दोण्हं समाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणानीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	१००	२०२	एगजीनं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"
१९१	उक्कस्सेण वासपुघत्तं ।	"	२०३	उक्कस्सेण सागरोवमसद- पुघत्तं ।	"
१९२	एगजीनं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"	२०४	दोण्हं स्वाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणानीवं	"

परिशिष्ट (११)

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२३०	कालादो होदि, पाणेगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं । ११४		२४१	चटुण्हमुवसामगणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं । १२२	
२३१	सासनसम्मादिट्ठीणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, पाणा- जीवं पडुच्च ओघं ।		२४२	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	
२३२	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।		२४३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	
२३३	आभिणिचोहिय-सुद-ओहि- पाणीसु असंजदसम्मादिट्ठीण- मंतरं केवचिरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।		२४४	उक्कस्सेण छावट्ठिसागरो- वमाणि सादिरैयाणि ।	
२३४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।		२४५	चटुण्हं खवमाणमोघं । गव्वरि विसेसो ओधिणाणीसु खवाणं वासपुधत्तं । १२३	
२३५	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देखणं	११५	२४६	मणपज्जवणाणीसु पमत्त- अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	
२३६	संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं । ११६		२४७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	
२३७	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देखणं माणि सादिरैयाणि ।		२४८	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	
२३८	पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, पाणा- जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं । ११९		२४९	चटुण्हमुवसामगणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं । १२५	
२३९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।		२५०	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	
२४०	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरैयाणि ।		२५१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	
२४१	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देखणं ।	१२०	२५२	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देखणं ।	
२४२	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरैयाणि ।		२५३	चटुण्हं खवमाणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं । १२७	

(१२) अतरपरुवणासुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२५५	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं गिरंतरं । १२७		२७५	खवाणमोघं ।	
२५६	केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं ।		२७६	जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु अकसाइभंगो ।	
२५७	अजोगिकेवली ओघं ।		२७७	संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, पाणेगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं । १३३	
२५८	संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्त- संजदप्पहुडि जाव उवसंत- कसायवीदरागछदुमत्था चि मणपज्जवणाणिभंगो । १२८		२७८	असंजदेसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	
२५९	चटुण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं ।		२७९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	
२६०	सजोगिकेवली ओघं ।		२८०	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोव- माणि देखणाणि । १३४	
२६१	सामाहय-छेदोवट्ठावणसुद्धि- संजदेसु पमत्तापमत्तसंजदाण- मंतरं केवचिरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।		२८१	सासनसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छा- दिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमोघं ।	
२६२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । १२९				
२६३	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।				
२६४	दोण्हमुवसामगणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।				
२६५	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।				
२६६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । १३०				
२६७	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देखणं ।				
२६८	दोण्ह खवाणमोघं ।				
२६९	परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं				

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३५५	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरो- वमाणि सादिरेयाणि ।	१५७	३७०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	१६९
३५६	उवसमसम्मादिट्ठसु अंसजद- सम्मादिट्ठिणमंतरं केवचिंरं	"	३७१	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"
३५७	चदुण्हं खवा अजोगिक्खली ओघं ।	१६०	३७२	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था- णमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	"
३५८	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरो- वमाणि सादिरेयाणि ।	"	३७३	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"
३५९	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	१६१	३७४	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
३६०	संजदांसजदानमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	१६२	३७५	सासणसम्मादिट्ठि—सम्मा — मिच्छादिट्ठिणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	१७०
३६१	उक्कस्सेण चोदस रादिदियाणि ।	"	३७६	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असरेय- उज्जदिभागो ।	"
३६२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	१६३	३७७	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	१७१
३६३	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"	३७८	मिच्छादिट्ठिणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, पाणेगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
३६४	पमत्त—अप्पमत्तंसजदानमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, पाणा- जीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समयं ।	"	३७९	सण्णियाणुवादोण सण्णीसु मिच्छादिट्ठिणमोघं ।	"
३६५	उक्कस्सेण पणारस रादि- दियाणि ।	"	३८०	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था त्ति पुरिसेवेदभंगो ।	१७२
३६६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	१६८	३८१	चदुण्हं सवाणमोघं ।	"
३६७	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"	३८२	असण्णीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
३६८	तिण्हमुवसामागणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	"	३८३	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३२९	अमयासिद्वियाणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	१५४	३४२	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरो- वमाणि सादिरेयाणि ।	१५७
३३०	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"	३४३	चदुण्हमुवसामागणमंतरं केव- चिंरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	१६०
३३१	सम्मत्ताणुवादोण सम्मादिट्ठसु अंसजदसम्मादिट्ठिणमंतरं केव- चिंरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	१५५	३४४	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"
३३२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"	३४५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"
३३३	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देखणं ।	"	३४६	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरो- वमाणि सादिरेयाणि ।	"
३३४	संजदांसजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था ओधिणाणिभंगो ।	"	३४७	चदुण्हं खवा अजोगिक्खली ओघं ।	१६१
३३५	चदुण्हं खवा अजोगिक्खली ओघं ।	१५६	३४८	सजोगिक्खली ओघं ।	"
३३६	सजोगिक्खली ओघं ।	"	३४९	वेदगसम्मादिट्ठसु अंसजद- सम्मादिट्ठिणं सम्मादिट्ठिभंगो ।	१६२
३३७	सइयसम्मादिट्ठसु अंसजद- सम्मादिट्ठिणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"	३५०	संजदांसजदानमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
३३८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"	३५१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"
३३९	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देखणं ।	"	३५२	उक्कस्सेण छावडिसागरोवमाणि देखणाणि ।	"
३४०	संजदांसजद-पमत्तंसजदानमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, पाणा- जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	१५७	३५३	पमत्त—अप्पमत्तंसजदानमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	१६३
३४१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण	"	३५४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	१६४

परिशिष्ट

(१७)

सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३८३	एराजीवं पटुच्च नलिय अंतरं, गिरंतरं ।	१७२	अंतोमुहुत्तं ।	१७५
३८४	आदागणुवादेण आहारएसु मिच्छादिद्वीणमोघं ।	१७३	३९० उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखे- ज्जदिभागो असंखेज्जाओ ओसपिणि-उस्सपिणीओ ।	"
३८५	सागणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छा- दिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पटुच्च ओघं ।	"	३९१ चट्ठहुवुवसामगणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पटुच्च ओघमंगो ।	१७७
३८६	एराजीवं पटुच्च जहण्णेण पल्लेदानमम्म असंखेज्जदि- भागो, अंतोमुहुत्तं ।	"	३९२ एराजीवं पटुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"
३८७	उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखे- ज्जदिभागो, अयंखेज्जासंखे- ज्जाओ ओसपिणि-उस्स- पिणीओ ।	"	३९३ उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखे- ज्जदिभागो असंखेज्जासंखे- ज्जाओ ओसपिणि-उस्सपि- णीओ ।	"
३८८	असंजदसम्मादिद्विप्पहुडि जाव अपमचसंजदणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पटुच्च नलिय अंतरं, गिरंतरं ।	१७४	३९४ चट्ठहुं खवाणमोघं ।	१७८
३८९	एराजीवं पटुच्च जहण्णेण		३९५ सजोगिकेवली ओघं ।	"
			३९६ अणाहारा कम्मइयकायजोगि- मंगो ।	"
			३९७ गवरि विसेसा, अजोगि- केवली ओघं ।	१७९

भावपरुवणासुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	भाणुगमेण दुनिहो गिदेसो, ओघेण आदेसेण य ।	१८३	भावो, परिणामिओ भावो ।	१९६
२	ओघेण मिच्छादिद्वि त्ति को भावो, ओदइओ भावो ।	१९४	४ सम्माभिच्छादिद्वि त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो ।	१९८
३	सासणसम्मादिद्वि त्ति को		५ असंजदसम्मादिद्वि त्ति को भावो, उवसमिओ वा खइओ	

(१८)

भावपरुवणासुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
६	ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ।	१९९	वा खओवसमिओ वा भावो ।	२१०
७	संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्त- संजदा त्ति को भावो, खओव- समिओ भावो ।	२०१	१८ ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ।	२११
८	चट्ठहुवुवसमा त्ति को भावो, ओवसमिओ भावो ।	"	१९ तिरिक्खगदीए तिरिक्ख-पंचि- दियतिरिक्ख-पंचिदियपज्जत्त- पंचिदियतिरिक्खजोणिणीसु मि- च्छादिद्विप्पहुडि जाव संजदा- संजदाणमोघं ।	२१२
९	चट्ठहुं खवा सजोगिकेवली अजोगिकेवलि त्ति को भावो, खइओ भावो ।	२०४	२० गवरि विसेसो, पंचिदिय- तिरिक्खजोणिणीसु असंजद- सम्मादिद्वि त्ति को भावो, ओवसमिओ वा खओवसमिओ वा भावो ।	२१२
१०	आदेसेण गइयाणुवादेण गिरय- गईए गेरइएसु मिच्छादिद्वि त्ति को भावो, ओदइओ भावो ।	२०६	२१ ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ।	२१३
११	सासणसम्माइद्वि त्ति को भावो, परिणामिओ भावो ।	२०७	२२ मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त- मणुसिणीसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ।	"
१२	सम्माभिच्छादिद्वि त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो ।	२०८	२३ देवगदीए देवेसु मिच्छादिद्वि- प्पहुडि जाव असंजदसम्मादिद्वि त्ति ओघं ।	२१४
१३	असंजदसम्मादिद्वि त्ति को भावो, उवसमिओ वा खइओ वा खओवसमिओ वा भावो ।	"	२४ भवणवासिय-वाणवत्तर-जोदि- सियेदेवा देवीओ, सोधम्मसाण- कप्पवासियेदधीओ च मिच्छा- दिद्वी सासणसम्मादिद्वी सम्मा- भिच्छादिद्वी ओघं ।	"
१४	ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ।	२०९	२५ असंजदसम्मादिद्वि त्ति को भावो, उवसमिओ वा खओवसमिओ वा भावो ।	"
१५	एवं पढमाए पुढवीए गेरइयाणं ।	"	२६ ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ।	२१५
१६	विदियाए जाव सत्तमीए पुढवीए गेरइएसु मिच्छादिद्वि-सासण- सम्मादिद्वि-सम्माभिच्छादिद्वीण- मोघं ।	२१०	२७ सोधम्मसाणप्पहुडि जाव गव-	
१७	असंजदसम्मादिद्वि त्ति को भावो, उवसमिओ वा खओवसमिओ			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२८	गोपनीयमाणासियदेवसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाप असंजदसम्मादिद्वि ति ओघं ।	२१५	३७	खइओ भावो ।	२२९
२९	अणुदिमादि जाव सव्वद्वसिद्धि-निमाणमासियदेवसु असंजदसम्मादिद्वि ति को भावो, ओयममिओ ना खइओ वा खओममिओ ना भावो ।	"	३८	नेउज्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिद्वि सासणसम्मादिद्वि असंजदसम्मादिद्वि ओघं ।	"
२९	ओदइएण भावेण पुणो अमंजदो ।	२१६	३९	आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा ति को भावो, खओममिओ भावो ।	२२०
३०	इंदियाणुवादेण पंचिदियपज्जसएणु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव अजोगिकेवल ति ओघं ।	"	४०	कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिद्वि सासणसम्मादिद्वि असंजदसम्मादिद्वि सजोगिकेवली ओघं ।	"
३१	कायाणुवादेण तसकाइयत्तसकाइयपज्जसएणु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव अजोगिकेवल ति ओघं ।	२१७	४१	वेदाणुवादेण इत्थियेवद-पुरिस्सेवदणंसयवेदएणु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव अणियद्वि ति ओघं ।	२२१
३२	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवच्चिजोगि-कायजोगि-ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव सजोगिकेवल ति ओघं ।	"	४२	अवगदेवदएणु अणियद्विप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं ।	"
३३	ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिद्वि—सासणसम्मादिद्विणं ओघं ।	२१८	४३	कसायाणुवादेण कोषकसाइमाणकसाइ-भायकसाइ-लोभकसाइसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव सुहुमसापराइयउवसमा खवा ओघं ।	२२२
३४	अमंजदसम्मादिद्वि ति को भावो, खइओ ना खओममिओ वा भावो ।	"	४४	अकसाईसु चटुट्टणी ओघं ।	२२३
३५	ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ।	"	४५	गाणाणुवादेण मदियणाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणीसु मिच्छादिद्वि सासणसम्मादिद्वि ओघं ।	"
३६	मनेयिकेवल ति को भावो,	२१९			२२४

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
४६	आभिणिगोहिय-सुद-ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिद्विप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछुदु-मत्था ओघं ।	२२५	४७	मणपज्जवणणीसु पमत्तसंजद-प्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछुदुमत्था ओघं ।	"
४८	केवलणणीसु सजोगिकेवली (अजोगिकेवली) ओघं ।	"	४९	संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं ।	"
५०	सामाइयेदेवद्ववणसुदिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियद्वि ति ओघं ।	२२७	५१	परिहारसुदिसंजदेसु पमत्त-अप-मत्तसंजदा ओघं ।	"
५२	सुहुमसापराइयसुदिसंजदेसु सुहुमसापराइया उवसमा खवा ओघं ।	"	५३	जहाक्खादविहारसुदिसंजदेसु चटुट्टणी ओघं ।	"
५४	संजदासंजदा ओघं ।	२२८	५५	असंजदेसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिद्वि ति ओघं ।	"
५६	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि-अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछुदुमत्था ति ओघं ।	"			"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
५७	ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो ।	२२९	५८	केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ।	"
५९	लेससाणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीलेस्सिय-कालेस्सिएसु चटुट्टणी ओघं ।	"	६०	तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा ति ओघं ।	"
६१	सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव सजोगिकेवल ति ओघं ।	२३०	६२	भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव अजोगिकेवल ति ओघं ।	"
६३	अभवसिद्धिय ति को भावो, परिणामिओ भावो ।	"	६४	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिद्विअसंजदसम्मादिद्विप्पहुडि जाव अजोगिकेवल ति ओघं ।	२३१
६५	खइयसम्मादिद्विअसंजदसम्मादिद्वि ति को भावो, खइओ भावो ।	"	६६	खइयं सम्मत्तं ।	"
६७	ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ।	२३२	६८	संजदासंजद-पमत्त-अप-मत्तसंजदा ति को भावो, खओममिओ भावो ।	"
६९	खइयं सम्मत्तं ।	२३३			"

मन्त्र मन्त्र्या	मन्त्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
७० चद्रुणमुममा	ति को भावो,	२३३	८२ संजदासंजद-यमत्त-अप्यमत्त-		
७१ उह्यं सम्मत्तं ।	संजदा ति को भावो, खओव-		समिओ भावो ।	२३६	
७२ चद्रुणं रमा मजोगिकेवली	उवसमियं सम्मत्तं ।	"	८३ उवसमियं सम्मत्तं ।		
अजोगिकेवलि ति को भावो,	८४ चद्रुणमुवसमा ति को भावो,		उवसमिओ भावो ।	"	
रइओ भावो ।	उवसमिओ भावो ।	"	८५ उवममियं सम्मत्तं ।	"	
७३ सह्यं सम्मत्तं ।	८६ सासणसम्मादिह्दी ओधं ।	"	८७ सम्मामिच्छादिह्दी ओधं ।	२३७	
७४ वेदयसम्मादिह्दीसु असंजदसम्मा-	८८ मिच्छादिह्दी ओधं ।	"	८९ सणियाणुवादेण सणीसु मिच्छा-		
दिह्दि ति को भावो, सओव-	८९ सणियाणुवादेण सणीसु मिच्छा-		दिह्दिप्पहुडि जाव सीणकसाय-		
समिओ भावो ।	९० असणि ति को भावो, ओदइओ	"	वीदरागछुदुमत्था ति ओधं ।	"	
७५ सओरमियं सम्मत्तं ।	भावो ।	"	९१ आहाराणुवादेण आहारएसु		
७६ ओदइण भावेण पुणो असंजदो । २३५	मिच्छादिह्दिप्पहुडि जाव सजोगि-	"	केवलि ति ओधं ।	२३८	
७७ संजदासंजद-यमत्त-अप्यमत्त-	९२ अणाहाराणं कम्मइयभंगो ।	"	९३ णवरि विसेसो, अजोगिकेवलि		
संजदा ति को भावो, सओव-	ति को भावो, सहओ भावो ।	"			
ममिओ भावो ।		"			
७८ सओरमियं सम्मत्तं ।		"			
७९ उमममयम्मादिह्दीसु अमंजद-		"			
सम्मादिह्दि ति को भावो, उव-		"			
समिओ भावो ।		"			
८० उरसमियं सम्मत्तं ।		"			
८१ ओदइण भावेण पुणो असंजदो । २३६		"			

अपावहुगपरुवणासुत्ताणि ।

मन्त्र संख्या	मन्त्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१ अपावहुआणुमेण दुविहो	२ ओधेण तिसु अद्वासु उवसमा				
निदिमो, ओधेण आदेसेण य । २४१	पवेसणेण तुल्ला योवा ।	२४३			

मन्त्र संख्या	मन्त्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३ उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्था	तत्तिया चैय ।	२४५	२२ खइयसम्मादिह्दी संसेज्जगुणा ।	२५८	
४ खवा संसेज्जगुणा ।	"	"	२३ वेदगसम्मादिह्दी संसेज्जगुणा ।	"	
५ सीणकसायवीदरागछुदुमत्था त-	त्तिया चैय ।	२४६	२४ एवं तिसु वि अद्वासु ।	"	
६ सजोगिकेवली अजोगिकेवली	पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया		२५ सव्वत्थोवा उवसमा ।	२५९	
चैय ।	चैय ।	"	२६ खवा संसेज्जगुणा ।	२६०	
७ सजोगिकेवली अद्ध पडुच्च	संसेज्जगुणा ।	२४७	२७ आदेसेण गदियाणुवादेण गिरय-		
८ अपसत्तंसंजदा अवखवा अणुव-	समा संसेज्जगुणा ।	"	गदीए गेरइएसु सव्वत्थोवा	२६१	
९ पमत्तंसंजदा संसेज्जगुणा ।	"	"	सासणसम्मादिह्दी ।	"	
१० संजदासंजदा असंसेज्जगुणा । २४८	"	"	२८ सम्मामिच्छादिह्दी संसेज्जगुणा ।	"	
११ सासणसम्मादिह्दी असंसेज्जगुणा ।	"	"	२९ असंजदसम्मादिह्दी असंसेज्ज-	२६२	
१२ सम्मामिच्छादिह्दी संसेज्जगुणा । २५०	"	"	गुणा ।	"	
१३ असंजदसम्मादिह्दी असंसेज्ज-	गुणा ।	२५१	३० मिच्छादिह्दी असंसेज्जगुणा ।	"	
१४ मिच्छादिह्दी अणंतगुणा । २५२	"	"	३१ असंजदसम्मादिह्दिह्दुणे सव्व-	२६३	
१५ असंजदसम्मादिह्दिह्दुणे सव्व-	त्थोवा उवसमयम्मादिह्दी ।	२५३	३२ खइयसम्मादिह्दी असंसेज्ज-	"	
१६ राइयसम्मादिह्दी असंसेज्जगुणा ।	"	"	३३ वेदगसम्मादिह्दी असंसेज्जगुणा ।	२६४	
१७ वेदगसम्मादिह्दी असंसेज्जगुणा । २५६	"	"	३४ एवं पढमाए पुढवीए गेरइया ।	"	
१८ संजदासंजददुणे सव्वत्थोवा	सह्यसम्मादिह्दी ।	"	३५ विदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए		
१९ उवसमसम्मादिह्दी असंसेज्ज-	गुणा ।	२५७	गेरइएसु सव्वत्थोवा सासण-	२६५	
२० वेदगसम्मादिह्दी असंसेज्जगुणा ।	"	"	सम्मादिह्दी ।	"	
२१ पमत्तापमत्तंसंजददुणे सव्व-	"	"	३६ सम्मामिच्छादिह्दी संसेज्जगुणा ।	"	
	"	"	३७ असंजदसम्मादिह्दी असंसेज्ज-	२६६	
	"	"	३८ मिच्छादिह्दी असंसेज्जगुणा ।	"	
	"	"	३९ असंजदसम्मादिह्दिह्दुणे सव्व-	२६७	
	"	"	४० वेदगसम्मादिह्दी असंसेज्जगुणा ।	"	

सूत्र संख्या	सूत्र	परिशिष्ट	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
४१	तिरिक्त्तगदीए तिरिक्त्त-पंचि- दियतिरिक्त्त-पंचिदियपञ्जत्त- तिरिक्त्त-पंचिदियजोणिणिसु सन्वत्थोपा संजदासंजदा । २६८	५३ मणुसपदीए मणुस-मणुसपञ्जत्त- मणुसिणीसु तिसु अद्वासु उव- समा पयसणेण तुल्ला थोवा । २७३	२६८	५४	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तेत्तिया चैव ।	२७३
४२	सागणसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	५५ राधा संखेज्जगुणा ।	२७४	५५	राधा संखेज्जगुणा ।	२७४
४३	सम्मामिच्छादिट्ठो संखेज्ज- गुणा ।	५६ सीणकसायवीदरागछदुमत्था त- त्तिया चैव ।	२७४	५६	सीणकसायवीदरागछदुमत्था त- त्तिया चैव ।	२७४
४४	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	५७ सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला, तत्तिया चैव ।	२६९	५७	सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला, तत्तिया चैव ।	२६९
४५	मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा, मिच्छा- दिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	५८ सजोगिकेवली अद्द पडुच्च संखेज्जगुणा ।	२७०	५८	सजोगिकेवली अद्द पडुच्च संखेज्जगुणा ।	२७०
४६	असंजदसम्मादिट्ठिद्वारेण सन्व- त्थोपा उवसमसम्मादिट्ठी ।	५९ अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणु- वसमा संखेज्जगुणा ।	२७५	५९	अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणु- वसमा संखेज्जगुणा ।	२७५
४७	सइयसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	६० पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	२७१	६०	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	२७१
४८	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	६१ संजदासंजदा संखेज्जगुणा ।	२७१	६१	संजदासंजदा संखेज्जगुणा ।	२७१
४९	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	६२ सागणसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७६	६२	सागणसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७६
५०	संजदासंजदारेण सन्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	६३ सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७६	६३	सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७६
५१	मवरि विमो, पंचिदिय- तिरिक्त्तजोणिणिसु असंजद- सम्मादिट्ठि-संजदासंजदारेण सन्व- त्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	६४ असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७२	६४	असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७२
५२	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	६५ मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा, मिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७२	६५	मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा, मिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७२
५३	मवरि विमो, पंचिदिय- तिरिक्त्तजोणिणिसु असंजद- सम्मादिट्ठि-संजदासंजदारेण सन्व- त्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	६६ असंजदसम्मादिट्ठिद्वारेण सन्व- त्थोपा उवसमसम्मादिट्ठी ।	२७७	६६	असंजदसम्मादिट्ठिद्वारेण सन्व- त्थोपा उवसमसम्मादिट्ठी ।	२७७
५४	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	६७ सइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७७	६७	सइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७७
५५	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	६८ वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७७	६८	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७७
५६	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	६९ संजदासंजदारेण सन्वत्थोवा सइयसम्मादिट्ठी ।	२७७	६९	संजदासंजदारेण सन्वत्थोवा सइयसम्मादिट्ठी ।	२७७
५७	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	७० उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७७	७०	उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७७

(२४)	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	७१	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७७	८९	सोहम्मीसाण जाव सदर-सह- स्सारकप्पवासियदेवेषु जहा देवगहंभो ।	२८२
	७२	पमत्त-अप्पमत्तसंजदद्वारेण सन्व- त्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	२७८	९०	आणद जाव णवगेवज्जविमाण- वासियदेवेषु सन्वत्थोवा सागणसम्मादिट्ठी ।	३८३
	७३	सइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७८	९१	सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्ज- गुणा ।	३८३
	७४	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७८	९२	मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	३८३
	७५	मवरि विमो, मणुसिणीसु असंजद-संजदासंजद-पमत्तापमत्त- संजदद्वारेण सन्वत्थोवा सइय- सम्मादिट्ठी ।	२७९	९३	असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	३८३
	७६	उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७९	९४	असंजदसम्मादिट्ठिद्वारेण सन्व- त्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	२८४
	७७	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७९	९५	सइयसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	२८४
	७८	एवं तिसु अद्वासु ।	२७९	९६	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२८५
	७९	सन्वत्थोवा उवसमा ।	२८०	९७	अणुदिसादि जाव अवराहद- विमाणवासियदेवेषु असंजद- सम्मादिट्ठिद्वारेण सन्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	२८५
	८०	खावा संखेज्जगुणा ।	२८०	९८	सइयसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	२८५
	८१	देवगदीए देवेषु सन्वत्थोवा सागणसम्मादिट्ठी ।	२८०	९९	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२८५
	८२	सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२८०	१००	सन्वत्ठिसिद्धिमाणवासियदेवेषु असंजदसम्मादिट्ठिद्वारेण सन्व- त्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	२८६
	८३	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	२८०	१०१	सइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२८६
	८४	मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	२८०	१०२	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२८६
	८५	असंजदसम्मादिट्ठिद्वारेण सन्व- त्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	२८१	१०३	इंदियाणुवोदेण पंचिदिय-पंचि- दियपञ्जत्तएसु ओंघ । णवरि मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	२८८
	८६	सइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	२८१			
	८७	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	२८१			
	८८	मवणवासिय-वाणवत्तर-जोदि- सियदेवा देवीओ सोधम्मीसाण- कप्पवासियदेवीओ च सत्तमाए पुढवीए भंगो ।	२८१			

मूल मन्त्रा	मूल	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१०४ त्रायाणु तं त्रय तम त्राइय तम- त्राइयपञ्चतणु ओषं । णवरि मिच्छादिद्वी अमंसेज्जगुणा । २८९			मंजद--पमत्तापमत्तसंजदद्विणे मम्मत्तपावहुअमोवं ।	२९३
१०५ जोगाणुदेण पंचमणजोगि- पंचाचिजोगि--कायजोगि- ओगालियत्तायजोगीसु तीसु अद्रासु पवेसणेण तुल्ला थोवा । २९०			११९ एवं तिसु अद्रासु । १२० मन्वत्थोवा उवममा । १२१ खवा संसेज्जगुणा । १२२ ओगालियमिस्सकायजोगीसु सन्वत्थोवा मजोगिकेवली	२९४ " " "
१०६ उमंत्तरुमायमीदरागल्लुदुमत्था नेत्तिया चेत्त ।			१२३ असंजदसम्मादिद्वी संसेज्ज- गुणा ।	"
१०७ त्ता संसेज्जगुणा ।			१२४ सासणसम्मादिद्वी असंसेज्ज- गुणा ।	"
१०८ गीणरुसायदीदरागल्लुदुमत्था नेत्तिया चेत्त । २९१			१२५ मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ।	२९५
१०९ नजोगिहेत्तली पवेसणेण तत्तिया चेत्त ।			१२६ अमंजदसम्मादिद्विद्विणे सन्व- त्थोवा त्राइयसम्मादिद्वी ।	"
११० सजोगिहेत्तली अदं पडुच्च मंसेज्जगुणा ।			१२७ वेदगसम्मादिद्वी संसेज्जगुणा ।	"
१११ अपमत्तमंजदा अरुत्ता अणु- ममा मंसेज्जगुणा ।			१२८ वेउच्चियत्तायजोगीसु देवगदि- मंणे ।	"
११२ पमत्तमंजदा संसेज्जगुणा ।			१२९ वेउच्चियमिस्सकायजोगीसु सन्वत्थोवा सासणमम्मदिद्वी । २९६	"
११३ मंजदासंजदा अमंसेज्जगुणा । २९२			१३० असंजदसम्मादिद्वी संसेज्ज- गुणा ।	"
११४ मागणमम्मदिद्वी असंसेज्ज- गुणा ।			१३१ मिच्छादिद्वी असंसेज्जगुणा ।	"
११५ नम्मामिच्छादिद्वी संसेज्ज- गुणा ।			१३२ असंजदसम्मादिद्विद्विणे सन्व- त्थोवा उवसमसम्मादिद्वी । २९७	"
११६ अमंजदसम्मादिद्वी अमंसेज्ज- गुणा ।			१३३ त्राइयसम्मादिद्वी संसेज्जगुणा ।	"
११७ मिच्छादिद्वी असंसेज्जगुणा, मिच्छादिद्वी अणंतगुणा । २९३			१३४ वेदगसम्मादिद्वी असंसेज्ज- गुणा ।	"
११८ अमंजदसम्मादिद्वि--संजदा--			१३५ आहारकायजोगि-आहारमिस्स-	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१५२ कायजोगीसु पमत्तसंजदद्विणे सन्वत्थोवा त्राइयसम्मादिद्वी । २९७			१५२ मिच्छादिद्वी असंसेज्जगुणा । ३०२		
१३६ वेदगसम्मादिद्वी संसेज्जगुणा । २९८			१५३ असंजदसम्मादिद्वि-संजदासंजद- द्विणे सन्वत्थोवा खइयसम्मा- दिद्वी ।		"
१३७ रुम्मइयकायजोगीसु सन्व- त्थोवा सजोगिकेवली ।		"	१५४ उवसमसम्मादिद्वी असंसेज्ज- गुणा ।		३०३
१३८ सासणसम्मादिद्वी असंसेज्ज- गुणा ।		"	१५५ वेदगसम्मादिद्वी असंसेज्ज- गुणा ।		"
१३९ असंजदसम्मादिद्वी असंसेज्ज- गुणा । २९९			१५६ पमत्त-अप्पमत्तसंजदद्विणे सन्व- त्थोवा खइयसम्मादिद्वी ।		"
१४० मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ।		"	१५७ उवसमसम्मादिद्वी संसेज्जगुणा ।		"
१४१ असंजदसम्मादिद्विद्विणे सन्व- त्थोवा उवसमसम्मादिद्वी ।		"	१५८ वेदगसम्मादिद्वी संसेज्ज- गुणा ।		"
१४२ त्राइयसम्मादिद्वी संसेज्जगुणा ।		"	१५९ एवं दोसु अद्रासु ।		"
१४३ वेदगसम्मादिद्वी असंसेज्ज- गुणा । ३००			१६० सन्वत्थोवा उवसमा ।		३०४
१४४ वेदाणुवोदेण इत्थिवेदएसु दोसु वि अद्रासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।		"	१६१ खवा संसेज्जगुणा ।		"
१४५ खवा संसेज्जगुणा । ३०१			१६२ पुरिसवेदएसु दोसु अद्रासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।		"
१४६ अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा मंसेज्जगुणा ।		"	१६३ खवा संसेज्जगुणा ।		"
१४७ पमत्तमंजदा संसेज्जगुणा ।		"	१६४ अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संसेज्जगुणा । ३०५		
१४८ संजदासंजदा असंसेज्जगुणा ।		"	१६५ पमत्तसंजदा संसेज्जगुणा ।		"
१४९ सासणसम्मादिद्वी असंसेज्ज- गुणा ।		"	१६६ संजदासंजदा असंसेज्जगुणा ।		"
१५० सम्मामिच्छादिद्वी संसेज्ज- गुणा । ३०२			१६७ सासणसम्मादिद्वी असंसेज्ज- गुणा ।		"
१५१ असंजदसम्मादिद्वी असंसेज्ज- गुणा ।		"	१६८ सम्मामिच्छादिद्वी संसेज्ज- गुणा ।		"
		"	१६९ असंजदसम्मादिद्वी असंसेज्ज-		"

पृष्ठ संख्या	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	परिशिष्ट	(२७)
गुणा ।	३०६	गुणा ।	गुणा ।	३१०		
१७० मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ।	"	१८७ वेदगसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ।	गुणा ।	"	३१०	
१७१ अंगजदसम्मादिद्वि-संजदा-	"	१८८ एवं दोसु अद्वासु ।	१८८ एवं दोसु अद्वासु ।	"	"	
मंजद-पमत्त-अप्पमत्तमंजदद्विगणे	"	१८९ सवत्थोपा उवसमा ।	१८९ सवत्थोपा उवसमा ।	"	"	
सम्मत्तप्पावहुअमोघं ।	"	१९० सवा सखेज्जगुणा ।	१९० सवा सखेज्जगुणा ।	"	"	
१७२ एवं दोसु अद्वासु ।	"	१९१ अवगदेवदएसु दोसु अद्वासु	१९१ अवगदेवदएसु दोसु अद्वासु	"	"	
१७३ मज्जन्योपा उवसमा ।	"	१९२ उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	१९२ उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	"	३११	
१७४ राता संखेज्जगुणा ।	३०७	१९२ उवसंतक्रमायवीदरागछदुमत्था	१९२ उवसंतक्रमायवीदरागछदुमत्था	"	"	
१७५ णंउमयेदएसु दोसु अद्वासु	"	तत्तिया चेव ।	तत्तिया चेव ।	"	"	
उवसमा पवेसणेण तुल्ला	"	१९३ सवा संखेज्जगुणा ।	१९३ सवा संखेज्जगुणा ।	"	"	
थोवा ।	"	१९४ खीणकसायवीदरागछदुमत्था	१९४ खीणकसायवीदरागछदुमत्था	"	"	
१७६ सवा संखेज्जगुणा ।	"	तत्तिया चेव ।	तत्तिया चेव ।	"	"	
१७७ अप्पमत्तमंजदा अक्खवा अणु-	"	१९५ सजोगेक्खली अजोगेक्खली	१९५ सजोगेक्खली अजोगेक्खली	"	"	
वममा संखेज्जगुणा ।	"	पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया	पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया	"	"	
१७८ पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	"	चेव ।	चेव ।	"	"	
१७९ संजदामंजदा असंखेज्जगुणा ।	३०८	१९६ सजोगेक्खली अद्दं पडुच्च	१९६ सजोगेक्खली अद्दं पडुच्च	"	"	
१८० सामणमम्मादिद्वी असंखेज्ज-	"	संखेज्जगुणा ।	संखेज्जगुणा ।	"	"	
गुणा ।	"	१९७ कसायणुवादेण कोधकसाह-	१९७ कसायणुवादेण कोधकसाह-	"	"	
१८१ मम्माभिच्छादिद्वी संखेज्ज-	"	माणकसाह-मायकसाह-लोभ-	माणकसाह-मायकसाह-लोभ-	"	"	
गुणा ।	"	कसाहसु दोसु अद्वासु उवसमा	कसाहसु दोसु अद्वासु उवसमा	"	"	
१८२ असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्ज-	"	पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	"	३१२	
गुणा ।	"	१९८ सवा संखेज्जगुणा ।	१९८ सवा संखेज्जगुणा ।	"	"	
१८३ मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ।	"	१९९ णवरि विमसा, लोभकसाहसु	१९९ णवरि विमसा, लोभकसाहसु	"	"	
१८४ अमंजदसम्मादिद्वि-मंजदा-	"	सुहुममांपराहयउवसमा विसे-	सुहुममांपराहयउवसमा विसे-	"	"	
संजदद्विगणे मम्मत्तप्पावहुअ-	"	साहिया ।	साहिया ।	"	"	
मोघं ।	३०९	२०० सवा संखेज्जगुणा ।	२०० सवा संखेज्जगुणा ।	"	३१३	
१८५ पमत्त-अप्पमत्तमंजदद्विगणे सव-	"	२०१ अप्पमत्तमंजदा अक्खवा अणु-	२०१ अप्पमत्तमंजदा अक्खवा अणु-	"	"	
त्थोपा सवयमम्मादिद्वी ।	"	वसमा संखेज्जगुणा ।	वसमा संखेज्जगुणा ।	"	"	
१८६ उवसममम्मादिद्वी संखेज्ज-	"	२०२ पमत्तमंजदा संखेज्जगुणा ।	२०२ पमत्तमंजदा संखेज्जगुणा ।	"	"	

(२८)

अप्पावहुगपरुक्खणासुत्ताणि

पृष्ठ संख्या	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२०३ संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ।	३१४	२०३ संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ।	३१४	
२०४ सासनसम्मादिद्वी असंखेज्ज-	"	गुणा ।	गुणा ।	३१७
२०५ सम्माभिच्छादिद्वी संखेज्ज-	"	गुणा ।	गुणा ।	"
२०६ असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्ज-	"	गुणा ।	गुणा ।	३१८
२०७ मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ।	"	२०७ मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ।	२०७ मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ।	"
२०८ असंजदसम्मादिद्वि-संजदा-	"	संजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजद-	संजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजद-	"
द्विगणे सम्मत्तप्पावहुअमोघं ।	३१५	द्विगणे सम्मत्तप्पावहुअमोघं ।	द्विगणे सम्मत्तप्पावहुअमोघं ।	"
२०९ एवं दोसु अद्वासु ।	"	२०९ एवं दोसु अद्वासु ।	२०९ एवं दोसु अद्वासु ।	३१९
२१० सवत्थोपा उवसमा ।	"	२१० सवत्थोपा उवसमा ।	२१० सवत्थोपा उवसमा ।	"
२११ सवा संखेज्जगुणा ।	"	२११ सवा संखेज्जगुणा ।	२११ सवा संखेज्जगुणा ।	"
२१२ अकसाहसु सवत्थोपा उवसंत-	"	२१२ अकसाहसु सवत्थोपा उवसंत-	२१२ अकसाहसु सवत्थोपा उवसंत-	"
कसायवीदरागछदुमत्था ।	३१६	कसायवीदरागछदुमत्था ।	कसायवीदरागछदुमत्था ।	"
२१३ खीणकसायवीदरागछदुमत्था	"	संखेज्जगुणा ।	संखेज्जगुणा ।	"
२१४ सजोगेक्खली अजोगेक्खली	"	पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया	पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया	"
चेव ।	"	२१५ सजोगेक्खली अद्दं पडुच्च	२१५ सजोगेक्खली अद्दं पडुच्च	"
२१५ सजोगेक्खली अद्दं पडुच्च	"	संखेज्जगुणा	संखेज्जगुणा	"
२१६ णाणायुवादेण मदियणाणि-	"	सुदअण्णाणि-विभंगणाणीसु	सुदअण्णाणि-विभंगणाणीसु	"
सवत्थोपा सासनसम्मादिद्वी ।	"	२१७ मिच्छादिद्वी अणंतगुणा,	२१७ मिच्छादिद्वी अणंतगुणा,	"
२१७ मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ।	३१७	मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ।	मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ।	"
२१८ आभिणिचोदिय-सुद-ओधिणा-	"	२१८ आभिणिचोदिय-सुद-ओधिणा-	२१८ आभिणिचोदिय-सुद-ओधिणा-	"

पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ संख्या
२३६	पमत्त-अप्पमत्तसंजदद्वारेण सव्व- त्थोपा उवममम्मदिह्दी ।	३२०	त्थोपा उवममम्मदिह्दी ।	३२४
२३७	सुहयमम्मदिह्दी संजेज्जगुणा ।	३२१	गुणा ।	"
२३८	वेदगमम्मदिह्दी संजेज्जगुणा ।	"	२५४ वेदगमम्मदिह्दी संजेज्जगुणा ।	३२५
२३९	एवं तिसु अद्वासु ।	"	२५५ एवं तिसु अद्वासु ।	"
२४०	सव्वत्थोपा उवममा ।	"	२५६ सव्वत्थोपा उवममा ।	"
२४१	समा संजेज्जगुणा ।	"	२५७ समा संजेज्जगुणा ।	"
२४२	केवलणानीमु सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो पि तुल्ला तत्तिया चेव ।	"	२५८ सामाड्यच्छेदोवद्वारेणसुद्धिसंज- देसु दोसु अद्वासु उवममा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	"
२४३	सजोगिकेवली अद्दं पडुच्च संजेज्जगुणा ।	३२२	२५९ समा संजेज्जगुणा ।	"
२४४	संजमाणुदेण संजेदेसु तिसु अद्वासु उवममा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	"	२६० अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणु- वममा संजेज्जगुणा ।	"
२४५	उपसंतकमाययीदरागलुदुमन्या तत्तिया चेव ।	"	२६१ पमत्तसंजदा संजेज्जगुणा ।	३२६
२४६	समा संजेज्जगुणा ।	"	२६२ पमत्त-अप्पमत्तसंजदद्वारेण सव्व- त्थोवा उवममम्मदिह्दी ।	"
२४७	सीणरूमाययीदरागलुदुमन्या तत्तिया चेव ।	३२३	२६३ सुहयसम्मदिह्दी संजेज्जगुणा ।	"
२४८	सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो पि तुल्ला तत्तिया चेव ।	३२४	२६४ वेदगमम्मदिह्दी संजेज्जगुणा ।	"
२४९	मजोगिकेवली अद्दं पडुच्च संजेज्जगुणा ।	"	२६५ एवं देसु अद्वासु ।	"
२५०	अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवममा संजेज्जगुणा ।	"	२६६ सव्वत्थोपा उवममा ।	"
२५१	पमत्तसंजदा संजेज्जगुणा ।	"	२६७ समा संजेज्जगुणा ।	"
२५२	पमत्त-अप्पमत्तसंजदद्वारेण सव्व- त्थोवा उवममम्मदिह्दी ।	"	२६८ परिहारसुद्धिसंजेदेसु सव्व- त्थोवा अप्पमत्तसंजदा ।	३२७
			२६९ पमत्तसंजदा संजेज्जगुणा ।	"
			२७० पमत्त-अप्पमत्तसंजदद्वारेण सव्व- त्थोवा सुहयमम्मदिह्दी ।	"
			२७१ वेदगमम्मदिह्दी संजेज्जगुणा ।	"
			२७२ सुहुमसांपराड्यसुद्धिसंजेदेसु सु- हुमसांपराड्यउवममा थोवा ।	३२८

पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ संख्या
२७३	सवा संजेज्जगुणा ।	३२८	दिह्दी असंखेज्जगुणा ।	३३१
२७४	जधाक्खादविहारसुद्धिसंजेदेसु अक्खवाइभंगो ।	"	२८८ ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ।	"
२७५	संजदासंजेदेसु अप्पावहुअं णत्थि ।	"	२८९ केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ।	"
२७६	संजदासंजदद्वारेण सव्वत्थोवा सुहयसम्मदिह्दी ।	"	२९० लेस्साणुवादेण किण्हेलेस्सिएसु णीलेलेस्सिएसु- काउलेस्सिएसु	३३२
२७७	उवमसमम्मदिह्दी असंखेज्ज- गुणा ।	३२९	२९१ सम्मामिच्छादिह्दी संखेज्ज- गुणा ।	"
२७८	वेदगमम्मदिह्दी असंखेज्ज- गुणा ।	"	२९२ असंजदसम्मामिह्दी असंखेज्ज- गुणा ।	"
२७९	असंजेदेसु सव्वत्थोवा सासण- सम्मामिह्दी ।	"	२९३ मिच्छादिह्दी अणंतगुणा ।	"
२८०	सम्मामिच्छादिह्दी संखेज्ज- गुणा ।	"	२९४ असंजदसम्मामिह्दीद्वारेण सव्व- त्थोवा सुहयसम्मामिह्दी ।	"
२८१	असंजदसम्मामिह्दी असंखेज्ज- गुणा ।	"	२९५ उवमसमम्मामिह्दी असंखेज्ज- गुणा ।	३३३
२८२	मिच्छादिह्दी अणंतगुणा ।	३३०	३९६ वेदगमम्मामिह्दी असंखेज्ज- गुणा ।	"
२८३	असंजदसम्मामिह्दीद्वारेण सव्व- त्थोवा उवमसमम्मामिह्दी ।	"	२९७ णवरि विसेसो, काउलेस्सिएसु असंजदसम्मामिह्दीद्वारेण सव्व- त्थोवा उवमसमम्मामिह्दी ।	"
२८४	सुहयसम्मामिह्दी असंखेज्ज- गुणा ।	"	२९८ सुहयसम्मामिह्दी असंखेज्ज- गुणा ।	"
२८५	वेदगमम्मामिह्दी असंखेज्ज- गुणा ।	"	२९९ वेदगमम्मामिह्दी असंखेज्ज- गुणा ।	३३४
२८६	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि- अक्खुदंसणीसु मिच्छादिह्दी- प्पहुडि जाव सीणरूमाययीद- रागलुदुमन्या चि ओधं ।	३३१	३०० तेउलेस्सिएसु-पम्मलेस्सिएसु सव्वत्थोवा अप्पमत्तसंजदा ।	"
२८७	णवरि चक्खुदंसणीसु मिच्छा- त्थोवा उवमसमम्मामिह्दी ।	"	३०१ पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	"
			३०२ संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ।	"
			३०३ सासणसम्मामिह्दी असंखेज्ज- गुणा ।	"

सादिरेयाणि उक्कस्सेणं । एं विमेषमजोएण उच्चं । विंसे जोहज्जमाणे अंतरंभंगदो
अप्पमत्तंआओ तासिं अंतरंवाहिरिया एक्का सवगसेदीपाओगअप्पमत्तंआ तत्थेगद्वो
दुगुणा मग्गिमा चि अणेदव्या । पुणो अंतरंभंगदोओ छ उवममगद्वोओ अत्थि, तासिं
वाहिरिल्लगसु अमिदुमत्तसु अंतोमुहुत्तेसु तिणिण सवगद्वोओ अणेदव्या । एक्कस्से
उवमत्तंआए एगवगद्वं विमोहिद अमिद्विहि अद्रुडंतोमुहुत्तेहि छणियाए पुव्वकोडीए
सादिरेयाणि तेचीं सागरोवमाणि अंतरं होदि । ओथिणापिमत्तसंजदमप्पमत्तंआदिगुणं
णेदुण अंतराथि पुव्वं व उक्कस्सेणं वचचं, एत्थि एत्थि विसेमो ।

अप्पमत्तस उच्चं— एक्को अप्पमत्तो अपुव्वो (१) अणियट्ठी (२) सुहुमो
(३) उमंतो (४) होदुण पुणो वि सुहुमो (५) अणियट्ठी (६) अपुव्वो होदुण (७)
कालं गदो ममज्जतेचीमयागरोवमाडडिदिगसु देवसु उववणो । ततो बुदो पुव्वकोडाउएसु
मणुसेसु उववणो । अंतोमुहुत्तमसे संसारे अप्पमत्तो जादो । लद्धमंतं (१) । तदो
पमत्तो (२) अप्पमत्तो (३) । उअरि छ अंतोमुहुत्ता । अंतरस्स अंभंतरीमाओ छ उव-
ममगद्वोओ अत्थि, तासिं अंतरंवाहिरिल्लोओ तिणिण सवगद्वोओ अणेदव्या । अंतर-

ंतीस सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है । इस प्रकारसे यह अन्तर विशेषको नहीं
जोड़ करके कटा है । विशेषके जोड़ जाने पर अन्तरके आभ्यन्तरसे अप्रमत्तसंयतका काल
और उनके अन्तरका वाहिरा पक्ष क्षपकत्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयतका काल होता है ।
उनमें एक गुणस्थानके कालने दुगुणा सहस्रकाल निकाल देना चाहिए । पुनः अन्तरके
आभ्यन्तर पक्ष उपशामकाल होते हैं । उनके वाहिरा अवशिष्ट सात अन्तर्मुहूर्तोंसे तीन
क्षपक गुणस्थानोंके क्षपककाल निकाल देना चाहिए । एक उपशान्तकालमेंसे एक
क्षपककालका आधा भाग घटा देनेपर अवशिष्ट साढ़े तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटीसे
साधिक तेतीस सागरोपम कालप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है । अवधिनानी प्रमत्तसंयतको
अप्रमत्त जादि गुणस्थानमें ले जाकर और अन्तरको मात्र करार पूर्वके समान ही
उत्कृष्ट अन्तर कलना चाहिए, इसमें और कोई विशेषता नहीं है ।

तीनों ज्ञानवाले अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं— एक अप्रमत्तसंयत,
अपूर्वकरण (१) अनिदृष्टिकरण (२) सूक्ष्मसाम्पराय (३) उपशान्तकपाय (४) हो
करके फिर भी सूक्ष्मसाम्पराय (५) अनिदृष्टिकरण (६) और अपूर्वकरण हो कर (७)
मरणको प्राप्त हुआ और एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें
उत्पन्न हुआ । वहाले च्युत होकर पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । संसारके
अन्तर्मुहूर्त अवशेष रह जाने पर अप्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (१) ।
पश्चात् प्रमत्तसंयत (२) अप्रमत्तसंयत हुआ (३) । इनमें क्षपकत्रेणीसम्बन्धी ऊपरके
छह अन्तर्मुहूर्त मिलाने । अन्तरके आभ्यन्तर उपशामकसम्बन्धी छह काल होते हैं । उनके
अन्तरसे वाहिरा तीन क्षपककाल कम कर देना चाहिए । अन्तरके आभ्यन्तरवाले उपशान्त

अंतरागुमे उवमत्तंआए अंतरंवाहिरिवगद्वोए अद्रमणोदव्वं । अवसिद्धेहि अद्रुडंतो-
मुहुत्तेहि ऊणपुव्वकोडीए सादिरेयाणि तेचीं सागरोवमाणि उक्कस्सेणं होदि । सरिस-
पक्खे अंतरस्सभंगतसत्तंअंतोमुहुत्तेसु अंतरंवाहिरणअंतोमुहुत्तेसु सोहिदेसु अवसेसा वे
अंतोमुहुत्ता । एदेहि ऊणाए पुव्वकोडीए सादिरेयाणि तेचीं सागरोवमाणि उक्कस्सेणं
होदि । एवमोहिणाणिणो नि वचचं, विसेसाभा ।

चटुणहुमुवसमगणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं
पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ २४१ ॥
सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २४२ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २४३ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण छावट्ठि सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ २४४ ॥

कालमेंसे अन्तरसे वाहिरा क्षपककालका आधा काल निकालना चाहिए । अवशिष्ट बचे
हुए साढ़े पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपम उत्कृष्ट अन्तर
होता है । सट्ठा पक्षमें अन्तरके भीतरी सात अन्तर्मुहूर्तोंको अन्तरके वाहिरा नौ अन्त-
र्मुहूर्तोंमेंसे घटा देने पर अवशेष दो अन्तर्मुहूर्त रहते हैं । इनसे कम पूर्वकोटीसे साधिक
तेतीस सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है । इसी प्रकारसे अवधिनानीका भी अन्तर
कहना चाहिए, क्योंकि, उसमें कोई विशेषता नहीं है ।

तीनों ज्ञानवाले चारों उपशामकोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी
अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २४१ ॥
यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २४२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २४३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक छयासठ सागरोपम
है ॥ २४४ ॥

१ चतुर्णापुष्यमभाना नानाजीवापेक्षया सामान्यत् । स. सि. १, ८

२ एक्कात्रिंशति जघन्यनान्तर्मुहूर्तः । स. पि. १, ८

३ उत्तरेण पट्पट्टिमगरोपमाणि सातिरेकाणि । स. सि. १, ८

तं जहा- एकको अट्टावीससंतकीम्मओ पुव्वकोडाउअमणुसेसु उववणो । अट्ट-
वसिसओ वेदगसम्मत्तमत्तगुणं च जुगवं पडियणो (१) । तदो पमत्तापमत्तपरामत्त-
सहस्सं कादूण (२) उवसमसेदीपाओगविसोहीए विसुद्धो (३) अपुवो (४) अणि-
यद्दी (५) सुहुमो (६) उवसंतो (७) पुणो वि सुहुमो (८) अणियद्दी (९)
अपुवो (१०) होदूण हेड्डा पडिय अंतरिदो । देसूणपुव्वकोडिं संजमणुपालेदूण मदो
तेत्तीससागरोमआडिदिएसु देवेषु उववणो । तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उव-
वणो । खइयं पडुविय संजमं कादूण कालं गदो तेत्तीससागरोवमाउडिदिएसु देवेषु उव-
वणो । तदो चुदो पुव्वकोडाउओ मणुसो जादो संजमं पडियणो । अंतोमुहुचावसेसे
संसारे अपुवो जादो । लद्धमंतरं (११) । अणियद्दी (१२) सुहुमो (१३) उवसंतो
(१४) भूओ सुहुमो (१५) अणियद्दी (१६) अपुवो (१७) अप्पमत्तो (१८)
पमत्तो (१९) अप्पमत्तो (२०) । उवरि छ अंतोमुहुत्ता । अट्टहि वस्मेहि छन्नीसंतो-
मुहुत्तेहि य ऊणा तीहि पुव्वकोडीहि सादियेयाणि छावडिडिसागरोवमाणि उक्कस्संतरं होदि ।
अथवा चत्तारि पुव्वकोडीओ तेरसन्नावीस-एक्कत्तीससागरोवमाउडिदिदेवेषु उप्पाइय

जैसे- मोहकर्मकी अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव पूर्वकोटीकी
आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । आठ वर्षका हाकर वेदकसम्यक्त्व और अप्रमत्त-
गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१) । तत्पश्चात् प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थान-
सम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके (२) उपशमश्रेणिके प्रायोग्य विद्युद्विसे नियुद्ध
होता हुआ (३) अपूर्वकरण (४) अनिवृत्तिकरण (५) सूक्ष्मसाम्पराय (६) उपशान्त-
कपाय (७) होकर फिर भी सूक्ष्मसाम्पराय (८) अनिवृत्तिकरण (९) अपूर्वकरण (१०)
होकर तथा नीचे निरकर अन्तरको प्राप्त हुआ । कुछ कम पूर्वकोटीकालप्रमाण
संयमको परिपालन कर मरा और तेतीस सागरोपम आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ ।
पश्चात् च्युत होकर पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और क्षायिकसम्यक्त्वको
धारण कर और संयम धारण करके मरणको प्राप्त हो तेतीस सागरोपमनी आयुस्थिति-
वाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहासि च्युत होकर पूर्वकोटी आयुवाला मनुष्य हुआ और
यथासमय संयमको प्राप्त हुआ । पुनः संसारके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रह जाने पर अपूर्व-
करणगुणस्थानवर्ती हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (११) । पश्चात् अनिवृत्ति-
करण (१२) सूक्ष्मसाम्पराय (१३) उपशान्तकपाय (१४) होकर पुनः सूक्ष्मसाम्पराय (१५)
अनिवृत्तिकरण (१६) अपूर्वकरण (१७) अप्रमत्तसंयत (१८) प्रमत्तसंयत हुआ (१९) ।
पुनः अप्रमत्तसंयत हुआ (२०) । इनमें ऊपरके क्षपकश्रेणीसम्बन्धी ओर भी छह अन्त-
र्मुहूर्त मिलाने । इस प्रकार आठ वर्ष और छब्बीस अन्तर्मुहूर्तोंसि कम तीन पूर्वकोटियोंसे
साधिक द्यासठ सागरोपम उत्कृष्ट अन्तर होता है । अथवा, तेरह, बाईस और इकतीस

वत्तवाओ । एवं चैव तिण्हमुवसामगणं । णवरि चट्ठीस त्रीस अंतोमुहुत्ता
ऊणा कादव्वा । एवमोहिणाणीणं पि वत्तव्वं, विसेसाभावा ।

चट्ठुहं खवगाणमोधं । णवरि विसेसो ओधिणाणीसु खवाणं
वासपुधत्तं ॥ २४५ ॥

कुदो ? ओधिणाणीणं पाएणं संभवाभावा ।

मणपजवणाणीसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो
होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २४६ ॥
सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २४७ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २४८ ॥

सागरोपम आयुकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न कराकर मनुष्यभवसम्बन्धी चार पूर्वकोटियां
कहना चाहिए । इसी प्रकारसे शेष तीन उपशमकोंका भी अन्तर कहना चाहिए । विशेष
वात यह है कि अनिवृत्तिकरणके चौबीस अन्तर्मुहूर्त, सूक्ष्मसाम्परायके बाईस अन्तर्मुहूर्त
और उपशान्तकपायके बीस अन्तर्मुहूर्त कम कहना चाहिए । इसी प्रकारसे उपशामक
अवधिशानियोंका भी अन्तर कहना चाहिए, क्योंकि, उसमें भी कोई विशेषता नहीं है ।

तीनों ज्ञानत्राले चारों क्षपकोंका अन्तर ओघके समान है । विशेष वात यह है
कि अवधिज्ञानियोंमें क्षपकोंका अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २४५ ॥
क्योंकि, अवधिशानियोंके प्राय होनेका अभाव है ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्त और अप्रमत्त संयतोंका अन्तर कितने काल होता है ?
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २४६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २४७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २४८ ॥

१ चतुर्णां क्षपमाणं सामान्यवत् । नित्य अवधिज्ञानिन्यु नानाजीववैषया जघन्येनैक समय , उत्कर्षेण
वर्षपृथक्त्वम् । पृच्छन्ति अस्मि नाल्लयन्त्यम् । स सि १, ८ २ प्रतिषु 'उप्पाण' इति पाठः ।

३ मनःपर्ययज्ञानिन्यु प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीववैषया नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

४ पृच्छन्ति अस्मि जघन्यपृथक्त्वं चान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

तं जहा- एकको पमत्तो मणपञ्जवणाणी अपमत्तो होदूण उवरी चडिय हेडा ओदगिदूण पमत्तो जादो । लद्धमंतरं । अपमत्तस्स उच्चदे- एकको अपमत्तो मणपञ्जवणाणी पमत्तो होदूणतरिय मन्विचरेण कालेण अपमत्तो जादो । लद्धमंतरं । उवसमसेदि नद्धाभिय ऋणंतराविदो ? ण, उवसमसेदिमव्वद्धाहितो पमत्तद्धा एकका चेव संखेजगुणा चि शुब्बदेमादो ।

चदुण्हमुवसामगणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ २४९ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २५० ॥

एदं पि सुगमं ।

जैसे- एक मनःपर्ययज्ञानी प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत हो ऊपर चढ़कर और नीचे उतर कर प्रमत्तसंयत हो गया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । मनःपर्ययज्ञानी अप्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं- एक मनःपर्ययज्ञानी अप्रमत्तसंयत जीव प्रमत्तसंयत होकर अन्तरको प्राप्त हो अति दीर्घकालसे अप्रमत्तसंयत होगया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ ।

अंका-मनःपर्ययज्ञानी अप्रमत्तसंयतको उपशमश्रेणी पर चढ़ाकर पुनः अन्तरको प्राप्त क्यों नहीं कराया ?

समाधान-नहीं, क्योंकि, उपशमश्रेणीसम्यन्धी सभी अर्थात् चार चढ़नेके ओर तीन उतरनेके, इन सब गुणस्थानोंसम्यन्धी कालोंसे अकेले प्रमत्तसंयतका काल ही संप्रगतगुणा होता है, ऐसा श्रुतका उपदेश है ।

मनःपर्ययज्ञानी चारों उपशमकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २४९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २५० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

१ चतुर्णां उपशमरतां नानाजीवपेक्षया मामान्यवत् । स. ति. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५१ ॥
सुगममेदं ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसुणं ॥ २५२ ॥

तं जहा- एकको पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववणो अंतोमुहुत्तव्वभहियअट्टवस्सेहि संजमं पडिचणो (१) । पमत्तापमत्तसंजददूणे सादासादवंधपरावत्तसहस्सं कादूण (२) विसुद्धो मणपञ्जवणाणी जादो (३) । उवसमसेडीपाओगअपमत्तो होदूण सेडीमुवगदो (४) । अपुव्वो (५) अणियट्ठी (६) सुहुमो (७) उवसंतो (८) पुणो वि सुहुमो (९) अणियट्ठी (१०) अपुव्वो (११) पमत्तापमत्तसंजददूणे (१२) पुव्वकोडि-मच्छिदूण अणुदिसादिसु आउअं वंधिदूण अंतोमुहुत्तावसेसे जीविए विसुद्धो अपुव्ववसामगो जादो । णिदा-पयलाणं वंधयोच्छिण्णे कालं गदो देवो जादो । अट्टवस्सेहि वारसअंतो-मुहुत्तेहि य ऊणिया पुव्वकोडी उक्कस्संतरं । एवं तिण्हमुवसामगणं । णवरि जहाकमेण दस णव अट्ट अंतोमुहुत्ता समओ य पुव्वकोडीदो ऊणा ति वत्तव्वं ।

मनःपर्ययज्ञानी चारों उपशमकोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटी है ॥ २५२ ॥

जैसे- कोई एक जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और अन्तर्मुहूर्तसे अधिक आठ वर्षके द्वारा संयमको प्राप्त हुआ (१) । पुनः प्रमत्त-अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें जाता और असाताप्रकृतियोंके सहस्रों वंध परिवर्तनोंको करके (२) विद्युद्ध हो मनःपर्ययज्ञानी हुआ (३) । पश्चात् उपशमश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत होकर श्रेणीको प्राप्त हुआ (४) । तब अपूर्वकरण (५) अनिच्छित्तिहरण (६) सूक्ष्मसाम्पराय (७) उपशान्तकपाय (८) पुनरपि सूक्ष्मसाम्पराय (९) अनिच्छित्तिहरण (१०) अपूर्वकरण (११) होकर प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें (१२) पूर्वकोटीकाल तक रहकर अलुदिश आदि विमानवासी देवोंमें आयुको वंधकर जीवनके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रहने पर विद्युद्ध हो अपूर्वकरण उपशमक हुआ । पुनः निद्रा तथा प्रचला, इन दो प्रकृतियोंके वंध-विच्छेद हो माने पर मरणको प्राप्त हो देव हुआ । इस प्रकार आठ वर्ष और वारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटी कालप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है । इसी प्रकार शेष तीन मनःपर्ययज्ञानी उप-शमकोंका भी अन्तर होता है । विशेषता यह है कि उनके यथाक्रमसे दश, नौ और आठ अन्तर्मुहूर्त तथा एक समय पूर्वकोटीसे कम कहना चाहिए ।

१ एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । स. ति. १, ८.

२ इत्तरेण पूर्वकोटी देशोक्तम् । स. ति. १, ८.

चटुण्हं खवगणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ २५३ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २५४ ॥

कुदो ? मणपज्जवणाणेण खप्पसेहिं चट्टमाणं पडरं संभवाभावा ।

एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ २५५ ॥

एदं पि सुगमं ।

केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं ॥ २५६ ॥

गाणेगजीवअंतराभावेण साधम्मादो ।

अजोगिकेवली ओघं ॥ २५७ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एव गाणमगणा समत्ता ।

मनःपर्ययज्ञानी चारों क्षपकोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २५४ ॥

क्योंकि, मनःपर्ययज्ञानके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीवोंका प्रचुरतासे होना संभव नहीं है ।

मनःपर्ययज्ञानी चारों क्षपकोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २५५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

केवलज्ञानी जीवोंमें सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ २५६ ॥

क्योंकि, नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे समानता है ।

अयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ २५७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई ।

१ चतुर्णां क्षपकाणामवधिज्ञानिद्वत् । स सि १, ८

२ द्वयो केवलज्ञानिनो सामान्यम् । स सि १, ८

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसाय-वीदरागछट्टमत्था ति मणपज्जवणाणिभंगो ॥ २५८ ॥

पमत्तापमत्तसंजदाणं गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं; एगजीवं पडुच्च जहणुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । चटुण्हमुवसामगाणं गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमओ, उक्कस्सेण चासपुधत्तं; एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण देहणपुव्वकोडी अंतरमिदि तदो विसेसाभावा ।

चटुण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं ॥ २५९ ॥

सुगमं ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ २६० ॥

एदं पि सुगमं ।

सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तापमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ २६१ ॥

गयत्थं ।

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोमें प्रमत्तसंयतको आदि लेकर उपशान्तकपाय-वतिरागछट्टमत्थ तक संयतोंका अन्तर मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है ॥ २५८ ॥

प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है; एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । चारों उपशामकोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण अन्तर है, इसलिए उससे यहांपर कोई विशेषता नहीं है ।

चारों क्षपक और अयोगिकेवली संयतोंका अन्तर ओघके समान है ॥ २५९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सयोगिकेवली संयतोंका अन्तर ओघके समान है ॥ २६० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोमें प्रमत्त तथा अप्रमत्त संयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २६१ ॥

इस सूत्रका अर्थ पहले कहा जा चुका है ।

१ सयमाहुवादेन सामायिकच्छेदोपस्थापनशुद्धिसयतेषु प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवपेक्षया नास्त्यन्तर । स सि १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २६२ ॥

तं जहा- एगो पमत्तो अप्पमत्तगुणं गंतूण सव्वजहण्णेण कालेण पुणो पमत्तो जादो । लद्धमंतरं । एत्थमप्यमत्तस वि वत्तन्वं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २६३ ॥

तं जहा- एगो पमत्तो अप्पमत्तो होदूण चिरकालमच्छिय पमत्तो जादो । लद्ध- मंतरं । अप्पमत्तस्य उच्चदे- एक्को अप्पमत्तो पमत्तो होदूण सव्वचिरमंतोमुहुत्तमच्छिय अप्पमत्तो जादो । लद्धमंतरं ।

दोणहुसुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २६४ ॥

अवगयत्थं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २६५ ॥

सुगममेदं ।

उक्त संयत्तोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २६२ ॥

जैसे- एक प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तगुणस्थानको जाकर सर्वजघन्य कालसे पुनः प्रमत्तसंयत होगया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । इसी प्रकार अप्रमत्तसंयतका भी अन्तर कहना चाहिये ।

उक्त संयत्तोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २६३ ॥

जैसे- एक प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत होकर और दीर्घ अन्तर्मुहूर्तकाल तक रह करके प्रमत्तसंयत होगया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । अप्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं- एक अप्रमत्तसंयत जीव प्रमत्तसंयत हो करके सवसे बड़े अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहकर अप्रमत्तसंयत होगया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ ।

सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २६४ ॥

इस सूत्रका अर्थ ज्ञात है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथस्त्व है ॥ २६५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ एक्कीम प्रति जघन्यसु ३८ वातर्मुहूर्त । स. ति १, ८.

२ दोषोपरजम क्योनीनाजीमपेक्षया सामान्यम् । स. ति १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २६६ ॥

तं जहा- एक्को ओदरमाणो अपुब्बो अप्पमत्तो पमत्तो पुणो अप्पमत्तो होदूण अपुब्बो जादो । लद्धमंतरं । एवमणियट्ठिस्स वि । गवरि पंच अंतोमुहुत्ता जहण्णंतरं होदि ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥ २६७ ॥

तं जहा- एक्को पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो । अट्ठस्साणमुवरि संजमं पडिवण्णो (१) । पमत्तापमत्तसजदट्ठणो सादासादबंधपरावत्तिसहस्सं कादूण (२) उवसमसेडीपाओगअप्पमत्तो (३) अपुब्बो (४) अणियट्ठो (५) सुहुमो (६) उवसंतो (७) पुणो वि सुहुमो (८) अणियट्ठो (९) अपुब्बो (१०) हेड्डा पडिय अंतरिदो । पमत्तापमत्तसजदट्ठणो पुव्वकोडिमच्छिदूण अनुदिसादिसु आउअं बंधिय अंतोमुहुत्तावसेसे जीविए अपुब्बुवसामगो जादो । णिदा-पयलाणं बंधे वोच्छिण्णे कालं गदो देवो जादो । अट्ठहि वस्सेहि एक्कासअंतोमुहुत्तेहि य जणिया पुव्वकोडी अंतरं । एवमणियट्ठिस्स वि ।

सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी दोनों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २६६ ॥

जैसे- उपशामश्रेणीसे उतरनेवाला एक अपूर्वकरणसंयत, अप्रमत्तसंयत व प्रमत्तसंयत होकर पुनः अप्रमत्तसंयत हो अपूर्वकरणसंयत होगया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । इसी प्रकार अनिवृत्तिकरणसंयतका भी अन्तर कहना चाहिये । विशेषता यह है कि इनके पांच अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तर होता है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुल कम पूर्वकोटी है ॥ २६७ ॥

जैसे- कोई एक जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और आठ वर्षके पश्चात् संयमको प्राप्त हुआ (१) । पुनः प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें साता और असातावेदनीयके सहस्रों बंध परावर्तनोंको करके (२) उपशामश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (३) । पश्चात् अपूर्वकरण (४) अनिवृत्तिकरण (५) सूक्ष्मसाम्पराय (६) उपशान्तकयाय (७) होकर फिर भी सूक्ष्मसाम्पराय (८) अनिवृत्तिकरण (९) अपूर्वकरण (१०) हो नीचे गिरकर अन्तरको प्राप्त हुआ । प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें पूर्वकोटी काल तक रहकर अनुदिश आदि विमानोंमें आयुको बांधकर जीवत्तके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवशिष्ट रहनेपर अपूर्वकरण उपशामक हुआ और निद्रा तथा प्रचला प्रकृतियोंके बंधसे व्युच्छिन्न होनेपर मरणको प्राप्त हो वेच हुआ । इस प्रकार आठ वर्ष और ग्यारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटीप्रमाण सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी अपूर्वकरण उपशामकका उत्कृष्ट अन्तर होता है । इसी प्रकार सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी अनिवृत्तिकरण उपशामकका भी उत्कृष्ट अन्तर है । विशेषता यह है कि

१ एक्कीम प्रति जघन्यनान्तर्मुहूर्त । स. ति १, ८. २ उत्तर्येण पूर्वकोटी देवना । स. ति १, ८.

णवरि समयाहियणवअंतोसुहुत्ता उणा कादब्बा ।

दोण्हं खवाणमोघं ॥ २६८ ॥

सुगममेदं ।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्तापमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ २६९ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोसुहुत्तं ॥ २७० ॥

तं जहा- एकको पमत्तो परिहारसुद्धिसंजदो अपमत्तो होदूण सव्वलहुं पमत्तो जादो । लद्धमंतरं । एवमपमत्तस्स वि पमत्तगुणेण अंतराविय वत्तब्बं ।

उक्कस्सेण अंतोसुहुत्तं ॥ २७१ ॥

एदस्सत्थो जधा जहणस्स उत्तो, तथा वत्तब्बो । णवरि सव्वचिरेण कालेण पल्लडुवेदब्बो ।

इनका अन्तर एक समय अधिक नौ अन्तर्मुहूर्त कम करना चाहिये ।

सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी अपूर्वकरण और अनिष्टत्तिकरण, इन दोनों क्षपकोका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है ॥ २६८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

परिहारशुद्धिसंयतोमिं प्रमत्त और अप्रमत्त संयतोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २६९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २७० ॥

जैसे- परिहारशुद्धिसंयमवाला कोई एक प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत होकर सर्वलघु कालसे प्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हो गया । इसी प्रकार परिहारशुद्धिसंयमी अप्रमत्तसंयतको भी प्रमत्तगुणस्थानके द्वारा अन्तरको प्राप्त कराकर अन्तर कहना चाहिये ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २७१ ॥

इस सूत्रका अर्थ जैसा जघन्य अन्तर बतलाते हुए कहा है, उसी प्रकारसे कहना चाहिये । विशेषता यह है कि इसे यहां पर सर्व दीर्घकालसे पलटाना चाहिये ।

१ द्वयो क्षपकयोः सामान्यवत् । स मि १, ८

२ परिहारशुद्धिसंयतेषु प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवपेक्षया नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

३ एकजीव प्रति जघन्यलक्ष्यं चातर्धर्तम् । स सि १, ८

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयउवसमाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २७२ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २७३ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ २७४ ॥

कुदो ? अधिगदंसजमाविणोसेण अंतरावणे उवायाभावां ।

खवाणमोघं ॥ २७५ ॥

कुदो ? गाणाजीवगदजहणुक्कस्सेगसमय-छम्मासेहि एगजीवस्संतराभावेण य साधम्मोदो ।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु अकसाइभंगो ॥ २७६ ॥

सुद्धिसाम्परायशुद्धिसंयतोमिं सुद्धिसाम्पराय उपशामकोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २७२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २७३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २७४ ॥

क्योंकि, प्राप्त किये गये संयमके विनाश हुए बिना अन्तरको प्राप्त होनेके उपायका अभाव है ।

सुद्धिसाम्परायसंयमी क्षपकोका अन्तर ओघके समान है ॥ २७५ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह मासके साथ, तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे ओघके साथ समानता पाई जाती है ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोमिं चारों गुणस्थानोंके संयमी जीवोंका अन्तर अकपायी जीवोंके समान है ॥ २७६ ॥

१ सुद्धिसाम्परायशुद्धिसंयतेषुप्रथमकस्य नानाजीवपेक्षया सामान्यवत् । स सि. १, ८.

२ एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् । स सि. १, ८.

३ अ प्रती 'अंतरावणो उवाया-' आ-कखलो 'अंतरावणो उवाया-' इति पाठ ।

४ तस्यैव क्षपस्य सामान्यवत् । स मि १, ८.

५ यथाख्याते अकपायवत् । स सि १, ८

१, ६, २८२.]

छक्कडागमे जीवद्वान

[१३५

असंजदसम्मादिद्विस्स उक्कस्संतरं णादमवि' मंदमेहाविज्जाणुगहट्टं परुवेमो-
एकको अणादियमिच्छादिद्वी तिणि वि ऋणाणि कादूण अद्रुपोगलपरियट्ठादिसमए
पढमसम्मत्तं पडिवणो (१) । उवसमसम्मत्तद्वए छावलिआओ अत्थि त्ति सासणं गदो ।
अंतरिदो अद्रुपोगलपरियट्ठं परियट्ठिदूण अपच्छिमे भवगहणे असंजदसम्मादिद्वी जादो ।
लद्धमंतरं (२) । तदो अणताणुवंधी विसंजोइय (३) विस्संतो (४) दंसणमोहं खविय
(५) विस्संतो (६) अप्पमतो जादो (७) । पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (८)
खवगसेदीपाओगअप्पमतो जादो (९) । उवरि छ अंतोमुहुत्ता । एवं पणारसेहि अंतो-
मुहुत्तेहि ऊगमद्रुपोगलपरियट्ठमसंजदसम्मादिद्विस्स उक्कस्संतरं ।

एव सजमगणा समत्ता ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिद्वीणमोघं ॥ २८२ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च अंतराभावेण, एगजीवगयअंतोमुहुत्तमेत्तजहणंतरेण

असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर यथापि ज्ञात है, तथापि मंदबुद्धि जनोके अनु-
ग्रहार्थ प्ररूपण करते हैं- एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव तीनों कारणोंको करके अर्धपुद्गल-
परिवर्तनके आदि समयमें प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१) । उपशमसम्यक्त्वके
कालमें छह आवलिआं अवशिष्ट रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ । पश्चात्
अन्तरको प्राप्त हो अर्धपुद्गलपरिवर्तन तक परिवर्तन करके अन्तिम भवमें असंयतसम्य-
ग्दृष्टि हुआ । इस प्रकार अन्तर प्राप्त होगया (२) । तत्पश्चात् अन्तानुबन्धीकी विसंयोजना
करके (३) विश्राम ले (४) दर्शनमोहनीयका क्षय करके (५) विश्राम ले (६) अप्रमत्त-
संयत हुआ (७) । पुनः प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानसम्यग्धी सहस्रों परिवर्तनोंको
करके (८) क्षपकश्रेणीके प्रायोग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (९) । इनमें ऊपरके छह अन्त-
मुहूर्त और मिलाये । इस प्रकार पन्द्रह अन्तमुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल असंयत-
सम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

इस प्रकार संयममार्गणा समाप्त हुई ।

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर ओघके
समान है ॥ २८२ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, तथा एक जीवगत

१ प्रतिपु 'णादमदि' इति पाठ । २ प्रतिपु 'पमो' इति पाठ ।

३ दर्शनानुवादेन चक्षुदर्शनीयु मित्यादौ सामायवत् । स सि १, ८

४ अ प्रती 'जीवेसु' इति पाठ ।

१३६]

अतराणुगमे चक्खुदसणि-अंतरपरुवण

[१, ६, २८५.

देवण-वे-छावट्टिसागरोवममेत्तउक्कस्संतरेण य तदो भेदाभावा ।

सासणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो
होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥ २८३ ॥

कुदो ? णाणाजीवगयएगसमय-पलिदोवमासंखेज्जदिभागजहणुक्कस्संतरेहि
साधम्भुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो,
अंतोमुहुत्तं ॥ २८४ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ॥ २८५ ॥

तं जहा-एको भमिदअचक्खुदंसणद्विदो असणिणपंचिदियसु उववणो । पंचहि
पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विमुद्धो (३) भवणवासिय-चाणवैतरदेवसु

अन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्य अन्तर होनेसे और कुछ कम दो छयासठ सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट
अन्तर होनेकी अपेक्षा ओघसे कोई भेद नहीं है ।

चक्षुदर्शनी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल
होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ २८३ ॥

क्योंकि, नाना जीवगत जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमका
असंख्यातवा भाग है, इस प्रकार इन दोनोंकी अपेक्षा ओघके साथ समानता पाई
जाती है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका
असंख्यातवा भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ २८४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो हजार सागरोपम
है ॥ २८५ ॥

जैसे-अचक्षुदर्शनकी स्थितिप्रमाण परिश्रमण किया हुआ कोई एक जीव अंशभी
पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । पाचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध
हो (३) भवनवासी या वानव्यन्तर देवोंमें आयुको बाधकर (४) विश्राम ले (५)

१ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स. सि. १, ८

२ पुरुजीव इति जघनेन पल्योपमासंख्येयमागोऽन्तर्मुहूर्तम् । स. सि. १, ८.

३ उत्तरार्धेण द्वे सागरोपमसहस्रे देवोने । स. सि. १, ८

आत्मां बंधिय (४) विस्मृतो (५) देवेषु उपवण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (६) विस्मृतो (७) विमुदो (८) उवसमम्मत्तं पडिवण्णो (९) सासनं गदो। मिच्छत्तं भंग्गुन्नरिय चम्भुदुंसणिहिदिं परिमिय अपमाणे सासनं गदो। लद्धमंतरं। अचक्खु-
दंमणिपाओगमालियाण् अपरोज्जिभागमच्छिदूण मदो अचक्खुदंसणी जादो। एवं
पमदि अंतोमुदुत्तेहि आवलियाण् असंखेज्जिभागेण य ऊणिआ चम्भुदंसणिहिदी
सामणुक्कसंतरं।

मम्मामिच्छादिद्विस्स उच्चदे- एको अचक्खुदंसणिहिदिमिच्छदो असणिपंचि-
दिग्गु उपवण्णो। पंचहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विमुदो (३)
भागमामिय-वाण्वंतरदेवेषु आउअं बंधिय (४) विस्मृतो (५) देवेषु उपवण्णो। छहि
पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (६) विस्मृतो (७) विमुदो (८) उवसमम्मत्तं पडिवण्णो
(९) मम्मामिच्छत्तं गदो (१०)। मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो चम्भुदंसणिहिदिं परिमिय
अवमाणे सम्मामिच्छत्तं गदो (११)। लद्धमंतरं। मिच्छत्तं गंतूण (१२) अचक्खु-
दंसणीयु उपवण्णो। एवं वारसअंतोमुदुत्तेहि ऊणिआ चम्भुदंसणिहिदी उक्कसंतरं।

देवोंमें उताग्र हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (६) विग्रह ले (७) विग्रह हो (८)
उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (९)। पश्चात् सासादनगुणस्थानको गया। पुनः
मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो चक्षुदर्शनीकी स्थितिप्रमाण परित्यमण करके
अन्तमें सामादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया। पुनः अचक्षु-
दर्शनीके यंघ प्रायोग्य आवलीके असत्यात्वं भागप्रमाण काल रह कर मरा और अचक्षु-
दर्शनी होगया। इस प्रकार नो अन्तर्मुहूर्तोंसे ओर आवलीके असत्यात्वं भागसे कम
चक्षुदर्शनीकी स्थिति चक्षुदर्शनी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर है।

चक्षुदर्शनी सम्यग्मिथ्यादृष्टिका अन्तर कहते हैं- अचक्षुदर्शनकी स्थितिको प्राप्त
हुआ एक जीव अमर्जी पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। पांचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१)
विग्रह ले (२) विग्रह हो (३) भवनवासी या वानव्यन्तर देवोंमें आयुको बांधकर (४)
विग्रह ले (५) मरा और देवोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (६)
विग्रह ले (७) विग्रह हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (९)। पश्चात् सम्य-
ग्मिथ्यात्वको गया (१०) और मिथ्यात्वको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ। चक्षु-
दर्शनीकी स्थितिप्रमाण परित्यमण कर अन्तमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (११)। इस
प्रकार अन्तर लब्ध होगया। पुनः मिथ्यात्वको जाकर (१२) अचक्षुदर्शनीयोंमें उत्पन्न
हुआ। इस प्रकार वारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम चक्षुदर्शनीकी स्थिति चक्षुदर्शनी सम्य-
ग्मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर है।

असंजदसम्मादिट्ठिपहुडि जाव अपमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं
कालदो होदि, पाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ २८६ ॥
सुगममेदं।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २८७ ॥

कुदो ? एदेसिं सव्वेसिं पि अण्णगुणं गंतूण जहण्णकालेण अपिपदगुणं गदाणमंतो-
मुहुत्तं तरुलंभा ।

उक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि देस्सणाणि ॥ २८८ ॥

तं जथा- एको अचक्खुदंसणिहिदिमिच्छदो असणिपंचिदियसम्मच्छिमपज्जत्तएसु
उववण्णो। पंचहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विमुदो (३) भण-
वासिय-वाण्वंतरदेवेषु आउअं बंधिय (४) विस्संतो (५) कालं गदो देवेषु उपवण्णो।
छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (६) विस्संतो (७) विमुदो (८) उवसमम्मत्तं पडिवण्णो
(९)। उवसमम्मत्तद्वाए छ आवलियाओ अत्थि चि सासनं गंतूणंतरिदो। मिच्छत्तं गंतूण

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अग्रमत्तसंयत गुणस्थान तक चक्षुदर्शनियोंका अन्तर
कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २८६ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २८७ ॥

वर्णिकि, इन सभी गुणस्थानवर्ती जीवोंके अन्य गुणस्थानको जाकर पुनः जघन्य
कालसे विवक्षित गुणस्थानको प्राप्त होनेपर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो हजार सागरोपम
है ॥ २८८ ॥

जैसे- अचक्षुदर्शनी जीवोंकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव असंखी पंचेन्द्रिय
सम्मूर्च्छिम पर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न हुआ। पांचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विग्रह
ले (२) विग्रह हो (३) भवनवासी या वानव्यन्तरोंमें आयुको बांध कर (४) विग्रह
ले (५) मरणको प्राप्त हुआ और देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त
हो (६) विग्रह ले (७) विग्रह हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (९)। उपशम-
सम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवदोष रहने पर सासादनको जाकर अन्तरको प्राप्त

१ असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमाणात् नानाजीवोपेक्षया नास्त्यन्तरम् । स ति १, ८.

२ एकजीव इति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स ति. १, ८.

३ उत्तर्येण द्वे सागरोपमसहस्रे देवोने । स ति. १, ८.

चक्खुदंसणिद्धिदिं भमिय अवसाणे उवसमसम्मत्तं पडिवणो (१०) । लद्धमंतरं । पुणो सांसणं गदो अचक्खुदंसणीसु उववणो । दसहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया सगद्धिदी असंजद-सम्मादिट्ठीणमुक्कस्संतरं ।

संजदासंजदस्स उच्चदे । तं जहा-एक्को अचक्खुदंसणिद्धिदिमच्छिदो गब्भो-चक्खंतियपंचिदियपज्जत्तएसु उववणो । सणिपंचिदियसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु किण्ण उप्पा-दिदो ? ण, सम्मुच्छिमेसु पढमसम्मत्तुप्पत्तीए असंभवादो । ण च असंखेज्जेलोगमणंतं वा कालमचक्खुदंसणीसु परिभमियाण वेदगसम्मत्तगहणं संभवदि, विरोहा । ण च धोव-कालमच्छिदो चक्खुदंसणिद्धिदीए समाणणक्खमा । तिणिण पक्ख तिणिण दिवस अंतो-मुहुत्तेण य पढमसम्मत्तं संजमासंजमं च जुगवं पडिवणो (२) । पढमसम्मत्तद्वाए छावीलयाओ अत्थि चि सासणं गदो । अंतरिदो मिच्छत्तं गंतूण सगद्धिदिं परिभमिय अपच्छिमे भवे कदकरणिज्जो होदूण संजमासंजमं पडिवणो (३) । लद्धमंतरं । अपमत्तो

हुआ । पुनः मिथ्यात्वको जाकर चक्षुदर्शनकी स्थितिप्रमाण परिश्रमण कर अन्तमें उपशम-सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । पुनः सासादनको गया और अचक्षुदर्शनी जीवोंमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थिति चक्षुदर्शनी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

चक्षुदर्शनी संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं । जैसे-अचक्षुदर्शनकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव गर्भोपकान्तिक पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ ।

शंका—उक्त जीवको संक्षी पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें क्यों नहीं उत्पन्न कराया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सम्मूर्च्छिम जीवोंमें प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्ति असम्भव है । तथा असंख्यात लोकप्रमाण या अनन्तकाल तक अचक्षुदर्शनियोंमें परिश्रमण किये हुए जीवोंके वेदकसम्यक्त्वका ग्रहण करना सम्भव नहीं है, क्योंकि, ऐसे जीवोंके सम्यक्त्वोत्पत्तिका विरोध है । और न अल्पकाल तक रहा हुआ जीव चक्षुदर्शनकी स्थितिके समाप्त करनेमें समर्थ है ।

पुनः वह जीव तीन पक्ष, तीन दिवस और अन्तर्मुहूर्तसे प्रथमोपशमसम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (२) । प्रथमोपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलिया अवशिष्ट रह जाने पर सासादनको प्राप्त हुआ । पुनः अन्तरको प्राप्त हो मिथ्यात्वको जाकर अपनी स्थितिप्रमाण परिश्रमणकर अन्तिम भवमें कृतकृत्यवेदक होकर संयमासंयमको प्राप्त हुआ (३) । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । पुनः अप्रमत्तसंयत (४)

१ प्रतिपु 'असंखेज्जा लोगमणत्त' इति पाठ ।

(४) पमत्तो (५) अपमत्तो (६) । उवरि छ अंतोमुहुत्ता । एवमडदालीसदिवेसहि चारसअंतोमुहुत्तेहि य ऊणा सगद्धिदी संजदासंजदुक्कस्संतरं ।

पमत्तस्म उच्चदे-एक्को अचक्खुदंसणिद्धिदिमच्छिदो मणुसेसु उववणो गब्भादि-अट्ठवस्सेण उवसमसम्मत्तमपमत्तगुणं च जुगवं पडिवणो । (१) । पुणो पमत्तो जादो (२) । हेट्ठा पडिदणंतिरिदो । चक्खुदंसणिद्धिदिं परिभमिय अपच्छिमे भवे मणुसो जादो । कदकरणिज्जो होदूण अंतोमुहुत्तावेसे जीए अपमत्तो होदूण पमत्तो जादो (३) । लद्धमंतरं । भूओ अपमत्तो (४) । उवरि छ अंतोमुहुत्ता । एवमड्ठवस्सेहि दसअंतो-मुहुत्तेहि ऊणिया सगद्धिदी पमत्तस्सुक्कस्संतरं ।

(अपमत्तस्स उच्चदे-एक्को अचक्खुदंसणिद्धिदिमच्छिदो मणुसेसु उववणो । गब्भादिअट्ठवस्सेण उवसमसम्मत्तमपमत्तगुणं च जुगवं पडिवणो (१) । हेट्ठा पडिदूण अंतरिदो चक्खुदंसणिद्धिदिं परिभमिय अपच्छिमे भवे मणुसेसु उववणो । कदकरणिज्जो होदूण अंतोमुहुत्तावेसे संसारे विमुद्धो अपमत्तो जादो (२) । लद्धमंतरं । तदो पमत्तो

प्रमत्तसंयत (५) और अप्रमत्तसंयत हुआ (६) । इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये । इस प्रकार अडतालीस दिवस और बारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थिति चक्षुदर्शनी संयतासंयतोंका उत्कृष्ट अन्तर है ।

चक्षुदर्शनी प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं-अचक्षुदर्शनी जीवोंकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और गर्भको आदि लेकर आठ वर्षसे उपशम-सम्यक्त्व और अप्रमत्तगुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१) । पुनः प्रमत्तसंयत हुआ (२) । पश्चात् नीचेके गुणस्थानोंमें गिरकर अन्तरको प्राप्त हुआ । चक्षुदर्शनीकी स्थितिप्रमाण परिश्रमण करके अन्तिम भवमें मनुष्य हुआ । पश्चात् कृतकृत्यवेदक होकर जीवनके अन्तर्मुहूर्तकाल अवशेष रह जाने पर अप्रमत्तसंयत होकर प्रमत्तसंयत हुआ (३) । इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया । पुनः अप्रमत्तसंयत हुआ (४) । इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये । इस प्रकार आठ वर्ष और दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थिति चक्षुदर्शनी प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर है ।

चक्षुदर्शनी अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं-अचक्षुदर्शनी जीवोंकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भको आदि लेकर आठ वर्षके द्वारा उपशमसम्यक्त्व और अप्रमत्तगुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१) । फिर नीचे गिरकर अन्तरको प्राप्त हो अचक्षुदर्शनीकी स्थितिप्रमाण परिश्रमणकर अन्तिम भवमें मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । पुनः कृतकृत्यवेदकसम्यक्त्व होकर संसारके अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण अवशिष्ट रहने पर विशुद्ध हो अप्रमत्तसंयत हुआ (२) । इस प्रकार अन्तर प्राप्त

(३) अप्पमत्तो (४) । उवरि छ अंतोमुहत्ता । एवमद्वयस्सेहि दसअंतोमुहुत्तेहि उणिया चामुदंयणिद्धिदी अप्पमत्तुक्कस्संतरं होदि ।

चदुण्हमुवसामगणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च ओयं ॥ २८९ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ २९० ॥

एदं पि सुगमं ।

उयक्कस्सेण वे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ॥ २९१ ॥

तं जहा- एकको अचममुदंयणिद्धिमच्छिदो मणुत्तेसु उववण्णो । गब्भादिअद्दु- तस्सण उयमममत्तमपमत्तगुणं च जुगवं पडिवण्णो (१) । अंतोमुहुत्तेण वेदगसम्मत्तं मतो (२) । तदो अंतोमुहुत्तेण अणंताणुवंधिं विंसजोविदो (३) । दंसणमोहणीयमुव- सामिय (४) पमत्तापमत्तपरावत्तमहस्सं कादूण (५) उवसमसेडीपाओगअप्पमत्तो जादो (६) । अपुब्बो (७) अणियद्धी (८) सुहुमो (९) उवसंतो (१०) सुहुमो आ । पुन. प्रमत्तसंयत हो (३) अप्रमत्तसंयत हुआ (४) । इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये । इस प्रकार आठ वर्ष और दश अन्तर्मुहूर्तसे कम चक्षुदर्शनीकी स्थिति हो नानुदर्शनी प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

चक्षुदर्शनी चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी ओपथा अन्तर ओपथके समान है ॥ २८९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवभी ओपथा जवन्त्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २९० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी ओपथा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो हजार सागरोपम है ॥ २९१ ॥

जैसे- अचक्षुदर्शनी जीवोंकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भको गादि लेकर आठ वर्षके द्वारा उपशामसंयत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१) । अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् वेदकस्यस्त्वको प्राप्त हुआ (२) । पुनः अन्तर्मुहूर्तसे अनन्तायुवन्धीका विषयोजन किया (३) । पुनः दर्शनमोहनीयको उपशाम कर (४) प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके (५) उप- शामोपणीके योग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (६) । पुनः अपूर्वकरण (७) अनिवृत्तिकरण (८)

१ चतुर्गुणयुग्मवर्ना नानाजीवपेक्षया सामान्यत् । स. सि. १, ८

२ एतन्तीति नित्येयानात्तर्मुहूर्तः । म. सि. १, ८

३ उत्तरेण वे सागरोपमादूले दर्शने । स. सि. १, ८.

(११) अणियद्धी (१२) अपुब्बो (१३) हेड्डा ओदरिय अंतरिदो चक्षुदसणिद्धिदि परिभमिय अंतिमे भवे मणुत्तेसु उववण्णो । कदकरणिज्जो होदूण अंतोमुहुत्तापमेसे संसारे विसुद्धो अप्पमत्तो जादो । सादासादवंधपरावत्तमहस्सं कादूण उवसमसेडीपाओगअप्पमत्तो होदूण अपुब्बवसामगो जादो (१४) । लद्धमंतरं । तदो अणियद्धी (१५) सुहुमो (१६) उवसंतो (१७) पुणो वि सुहुमो (१८) अणियद्धी (१९) अपुब्बो (२०) अप्पमत्तो (२१) पमत्तो (२२) अप्पमत्तो (२३) होदूण खवगसेडीमारूढो । उवरि छ अंतो- मुहुत्ता । एवमद्वयस्सेहि एगूणत्तीसअंतोमुहुत्तेहि य ऊणिया सगिद्धिदो अपुब्बकरणुक्कस्संतरं । एवं चेव तिण्हमुवसामगणं । णवरि सत्तावीस पंचवीस तेवीस अंतोमुहुत्ता ऊणा कायव्वा ।

चदुण्हं खवाणमोयं ॥ २९२ ॥

सुगममेदं ।

सूक्ष्मसाम्पराय (९) उपशान्तमोह (१०) सूक्ष्मसाम्पराय (११) अनिवृत्तिकरण (१२) और अपूर्वकरणसंयत होकर (१३) तथा नीचे उतरकर अन्तरको प्राप्त हो चक्षुदर्शनीकी स्थितिप्रमाण परिधमणकर अन्तिम भवमें मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहांपर कृतकृलयेवक- सम्यक्त्वी होकर संसारके अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर विद्युद्द हो अप्रमत्तसंयत हुआ । वहापर साता और असाता वेदनीयके बंध-परावर्तन-सहस्रोंको करके उपशाम- श्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत होकर अपूर्वकरण उपशामक हुआ (१४) । इस प्रकार अन्तर प्राप्त होगया । तत्पश्चात् अनिवृत्तिकरण (१५) सूक्ष्मसाम्पराय (१६) उपशान्तकपाय (१७) पुनरपि सूक्ष्मसाम्पराय (१८) अनिवृत्तिकरण (१९) अपूर्वकरण (२०) अप्रमत्त- संयत (२१) प्रमत्तसंयत (२२) और अप्रमत्तसंयत होकर (२३) क्षपकश्रेणीपर चढ़ा । इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये । इस प्रकार आठ वर्ष और अनतीस अन्तर्मुहूर्तसे कम अपनी स्थिति चक्षुदर्शनी अपूर्वकरण उपशामकका उत्कृष्ट अन्तर है ।

इसी प्रकार चक्षुदर्शनी शेष तीन उपशामकोंका भी अन्तर जानना चाहिये । विशेषता यह है कि अनिवृत्तिकरण उपशामकके सत्ताईस अन्तर्मुहूर्त, सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकके पचीस अन्तर्मुहूर्त और उपशान्तकपायके तेवीस अन्तर्मुहूर्त कम करना चाहिये ।

चक्षुदर्शनी चारों क्षपकोंका अन्तर ओपथके समान है ॥ २९२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अचम्बुदंशणीसु मिच्छादिद्विपहुडि जाव खीणकसायवीद-

रागछदुमत्था ओवं ॥ २९३ ॥

कुदो ? ओघादो भेदाभावा ।

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ॥ २१४ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ २९५ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एव दसणमगणा समत्ता ।

लेस्मानुवादेण किण्हलेस्सिय-णिललेस्सिय-काडलेस्सिएसु
मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिङ्गणमंतरं केवचिरं कालदो होदि, णाणा-
जीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २९६ ॥

सुगममन्द ।

एगजीविं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २९७ ॥

अचक्षुदर्शनीयोंमें मिथ्यादृष्टिमें लेकर क्षणिकपायवीतरागद्वन्द्वस्थ
प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीविका अन्तर ओघके समान है ॥ २९३ ॥

गुणस्थानवर्ती जीविका अन्तर औषधे समान है ॥ २९३ ॥

क्योंकि, ओघसे इनके अन्तरमे कोई भेद नहीं है।

अवधिदर्शनी जीवोंका अन्तर अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ २९४ ॥

केवलदर्शनी जीवोंका अन्तर केवलज्ञानियोक समान है ॥ २१५ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई ।

लेख्याभारणिके अनुवादसे कृष्णलेख्या, नीललेख्या और कापोत लेख्यावालोमें मिथ्याद्यष्टि और असंयतसम्यग्द्यष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २९६ ॥

यह रूख सुगम है ।

उक्त जीवोका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥२९७॥

१ अचक्षुर्दोषेनपु मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणम्पयान्ताना सामायोत्तमन्तरम् । स सि १, ८

२ अवधिदर्शनिनोऽवधिज्ञानिवत् । स सि १, ८ ३ केवलदर्शनिनः केवलज्ञानिवत् । स सि १, ८.

४ लेख्यानुवादनं कृष्णनीलाभापोतलेश्यपु
मिथ्यादृष्टसप्ततसम्यग्दृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् ।

स सि १, ८

५ पृथ्वा वि प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त । स सि १, ८

तं जहा- सत्तम-पंचम-पटमपुढात्रिमिच्छादिद्वि-असंजदसम्मादिद्विणो किण्ह-णील-
काउलेस्सिया अण्णगुणं गंतूण थोवक्कालेण पडिणियत्तिय तं चेव गुणमागदा । लद्धं
दोण्हं जहण्णंतरं ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सत्तरस सत्त सागरोवमाणि देसूणाणि
॥ २९८ ॥

तं जहा- तिणिण मिच्छादिट्ठिणो किण्ह-णील-काउलेस्सिया सत्तम-पंचम-तोदिय-
पुढवीसु कमेण उववण्णा । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदा (१) विस्संता (२) विमुद्धा
(३) सम्मत्तं पडिक्खणा अंतरिदा अवसाणे मिच्छत्तं गदा । लद्धमंतरं (४) । मदा
मणुसेसु उववण्णा । णव्वरि सत्तमपुढवीणेणरडओ तिरिक्खाउअं वंधिय (५) विस्समिय
(६) तिरिक्खेसु उववज्जदि त्ति धेत्तनं । एवं छ-चटु-चटुअंतोसुहुत्तेहि ऊणाणि तेचीस-
सत्तारस-सत्त-सागरेवमाणि किण्ह-णील-काउलेस्सियमिच्छादिट्ठिउक्कस्संतरं होदि । एवम-
संजडमस्मादिट्ठिस्स वि वत्तनं । णव्वरि अट्ठ-पंच-पंचअंतोसुहुत्तेहि ऊणाणि तेचीस-सत्तारस-

जैसे- सातर्वा पृथिवीके कृष्णलेश्यावाले, पांचवी पृथिवीके नीललेश्यावाले और प्रथम पृथिवीके कापोतलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीव अन्य गुणस्थानको जाकर अल्प कालसे ही लौटकर उसी गुणस्थानको प्राप्त हुए। इस प्रकार दोनों गुणस्थानोंका जघन्य अन्तर लब्ध हुआ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः कुछ कम तैतीस, सत्तरह और सात सागरोपम है ॥ २९८ ॥

जैसे- कृष्ण, नील और कापोत लेइयावाले तीन मिथ्यादृष्टि जीव क्रमसे सातवीं, पांचवीं और तीसरी पृथिवीमें उत्पन्न हुए। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यक्चक्रो प्राप्त कर अन्तरको प्राप्त हो आयुके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुए। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (४)। पश्चात् मरण कर मनुष्योंमें उत्पन्न हुए। विशेषता यह है कि सातवीं पृथिवीका नारकी तिर्यच आयुको बांध कर (५) विश्राम ले (६) तिर्यचोंमें उत्पन्न होता है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपम कृष्णलेइयाका उत्कृष्ट अन्तर है। चार अन्तर्मुहूर्तोंसे कम सत्तरह सागरोपम नीललेइयाका उत्कृष्ट अन्तर है। तथा चार अन्तर्मुहूर्तोंसे कम सात सागरोपम कापोतलेइयाका उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी प्रकार असंयत-सम्यग्दृष्टिका भी अन्तर कहना चाहिए। विशेषता यह है कि कृष्णलेइयावाले असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर आठ अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपम, नीललेइयावाले असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम सत्तरह

१ उत्तरार्धेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमानि देशानि । स सि १, ८

मत्त-सागरोवमाणि उत्तरसंतरे ।

मासणसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छादिट्ठिणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च ओवं ॥ २९९ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥ ३०० ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण तेतीसं सत्तास सत्त सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३०१ ॥

तं जहा- निणि मिच्छादिट्ठि जीवा सत्तम-पंचम-तदियपुढवीसु किण्ह-णील-काउ-लेमिया उपण्णा । छहि पज्जत्तयदा (१) विस्सता (२) विमुद्दा (३) उप्पममममं पडिक्कणा (४) सासणं गदा । मिच्छत्तं गंतूणंतदिदा । अंतोमुहुत्तावसे

सागरोपम और तपोतलेइयावाले नसंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर पांच अन्त-मुहूर्तोंत कम सान सागरोपम होता है ।

उक्त तीनों अशुभलेइयावाले मारादनमम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ २९९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असं-रयातना भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागरोपम, मत्तरह सागरोपम और सात सागरोपम है ॥ ३०१ ॥

जैसे- कृण, नील और कापोतलेइयावाले तीन मिथ्यादृष्टि जीव क्रमशः सातवीं, पांचवीं और तीसरी पृथिवीमें उत्पन्न हुए । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विद्युत् हो (३) उपदामसम्यक्त्वको प्राप्त हुए (४) । पुनः सासादनगुण-स्थानको गये । पद्मान् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुए । पुनः जीवनके अन्तर्मुहूर्त

१ सागरोपम-ए-म्यग्मिथ्यादृष्टिजीवोंकीनिपेक्षया सामान्यत्वं । स. सि ९, ८

२ पृथ्वीतं यति जघन्येन पत्न्योपमामरयेयगोऽन्तर्मुहूर्तश्च । स. सि १, ८

३ उत्तरेण पार्श्विकमस्तदशमनसागरोवमाणि देशोनानि । स. पि १, ८.

जीविए उवसममममत्तं पडिक्कणा । सासणं गंतूण विदियसमए मदा मणुसेसु उगवण्णा । णवरि सत्तमपुढवीए माम्मा मिच्छत्तं गंतूण (५) तिरिकरोववज्जंति चि वत्तवं । एवं पंच-चटु-अंतोमुहुत्तेहि उणाणि तेतीस-सत्तास-सत्त-सागरोवमाणि किण्ह-णील-काउलेस्सियसासणु-संस्तरं होदि । एवासमओ अंतोमुहुत्त-अन्तरे पविट्ठो चि पुध ण उत्तो । एवं सम्माभिच्छादिट्ठिस्स वि । णवरि छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि तेतीस-सत्तास-सत्त-सागरोवमाणि किण्ह-णील-काउलेस्सियसम्माभिच्छादिट्ठिउक्कस्संस्तरं ।

तेउलेस्सिय-पम्मेलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिअसंजदसम्मादिट्ठिणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च पत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३०२ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३०३ ॥

तं जहा- चत्तारि जीवा मिच्छादिट्ठि-सम्मादिट्ठिणो तेउ-पम्मेलेस्सिया अण्णगुणं

अवशिष्ट रहने पर उपदामसम्यक्त्वको प्राप्त हुए । पद्मान् सासादनगुणस्थानमें जाकर द्वितीय समयमें मेरे और मनुष्योंमें उत्पन्न हुए । विशेषता यह है कि सातवीं पृथिवीके सासादनसम्यग्दृष्टि नारत्ती मिथ्यात्वको प्राप्त होकर (५) तिर्यचोंमें उत्पन्न होते हैं, ऐसा कहना चाहिए । इस प्रकार पाच, चार और चार अन्तर्मुहूर्तोंसे कम क्रमशः तेतीस, सत्तरह और सात सागरोपम कालप्रमाण कृण, नील और कापोत लेइयावाले सासादन-सम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है । सासादनगुणस्थानमें जाकर रहनेका एक समय अन्तर्मुहूर्तके ही भीतर प्रविष्ट है, इसलिये पृथक् नहीं कहा । इसी प्रकार तीनों अशुभ-लेइयावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका भी उत्कृष्ट अन्तर जानना चाहिए । विशेषता यह है कि यहाँपर छह-छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस, सत्तरह और सात सागरोपमकाल क्रमशः कृण, नील और कापोत लेइयावालोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

तेजोलेइया और पबलेइयावालोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३०२ ॥ यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०३ ॥

जैसे- तेजोलेइया और पबलेइयावाले मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि चार जीव

१ तेजःपबलेइयायोर्मिथ्यादृष्टयस्यतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीविपेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि १, ८.

२ पृथ्वीतं यति जघन्येन पत्न्योपमामरयेयगोऽन्तर्मुहूर्तश्च । स. पि १, ८.

१, ६, ३०४.]

छत्रलङ्गामे जीवदुण

[१४७

गंतूण सव्वजहण्णकालेण पडिणियत्तिय तं चेव गुणमागदा । लद्धमंतरं ।

उक्कस्सेण वे अट्टारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ३०४ ॥

तं जहा- वे मिच्छादिद्विणो तेउ-पम्मलेस्सिया सादिरेय-वे-अट्टारससागरोवमाउ-
द्विदिप्पु देवेषु उव्वण्णा । छहि पज्जचीहि पज्जत्तयदा (१) विस्सता (२) विमुद्धा
(३) सम्मत्तं घेत्तूणंतरिदा । सगद्धिदिं जीविय अवसाणे मिच्छत्तं गदा (४) । लद्धं
सादिरेय-वे-अट्टारससागरोवममेत्तरं । एवं सम्मादिद्विस्स वि । णनरि पंचहि अंतोसुहुत्तेहि
ऊणियाओ सगद्धिदीओ अंतरं ।

**सासनसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छादिद्विणमंतरं केवचिरं कालादो
होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओर्ध्वं ॥ ३०५ ॥**

सुगमभेदं ।

अन्य गुणस्थानको जाकर सर्वजघन्य कालसे लौटकर उसी ही गुणस्थानको आगये ।
इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागरोपम और
साधिक अट्टारह सागरोपम है ॥ ३०४ ॥

जैसे- तेज और पद्म लेख्यावाले दो मिथ्यादृष्टि जीव साधिक दो सागरोपम और
साधिक अट्टारह सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुए । छहों पर्याप्तियोंसे
पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विमुद्ध हो (३) और सम्यक्त्वको ग्रहण कर अन्तरको
प्राप्त हुये । पुनः अपनी स्थितिप्रमाण जीवित रहकर आयुके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त
हुए (४) । इस प्रकार साधिक दो सागरोपमकाल तेजोलेख्यावाले मिथ्यादृष्टिका और
साधिक अट्टारह सागरोपमकाल पद्मलेख्यावाले मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त
होगया । इसी प्रकार तेज और पद्म लेख्यावाले असयतसम्यग्दृष्टि जीवका भी अन्तर कहना
चाहिए । विशेषता यह है कि पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण अन्तर
होता है ।

तेजोलेख्या और पद्मलेख्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि
जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान
है ॥ ३०५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ उत्तरपेण दे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेक्काणि । स सि १, ८

२ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टोर्नानाजीनापेक्षया सामा यवत् । स सि १, ८

१४८]

अताराणुगमे तेउ-पम्मलेस्सिय-अतरपरव्वण

[१, ६, ३०८.

**एगजीवं पडुच्च जहणेण पल्लिदोवसस्स असंख्वेज्जदिभागो,
अंतोसुहुत्तं ॥ ३०६ ॥**

एदं पि सुगम ।

उक्कस्सेण वे अट्टारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ३०७ ॥
तं जहा- वे सासणा तेउ-पम्मलेस्सिया सादिरेय-वे-अट्टारससागरोवमाउद्विदिप्पु
देवेषु उव्वण्णा । एगसमयमच्छिय विट्ठियसमए मिच्छत्तं गंतूणंतरिदा । अवसाणे वे नि
उव्वसमसम्भत्तं पडिक्कणा । पुणो सासनं गंतूण विट्ठियसमए सदा । एवं सादिरेय-वे-अट्टारस-
सागरोवमाणि दुग्गमऊणाणि सासणुक्कस्संतरं होदि । एवं सम्माभिच्छादिद्विस्स नि ।
णवरि छहि अंतोसुहुत्तेहि ऊणियाओ उच्चट्ठिदीओ अंतरं ।

**संजदांसजद-पमत्त-अपमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि,
णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३०८ ॥**

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमके
असंख्यात्वेन भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः साधिक दो सागरोपम
और अट्टारह सागरोपम है ॥ ३०७ ॥

जैसे- तेज और पद्म लेख्यावाले दो सासादनसम्यग्दृष्टि जीव साधिक दो सागरो-
पम और साधिक अट्टारह सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुए । वहाँ एक
समय रहकर दूसरे समयमें मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुए । आयुके अन्तमें दोनों
ही उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुए । पश्चात् सासादनयुगस्थानको जाकर दूसरे समयमें
मरे । इस प्रकार दो समय कम साधिक दो सागरोपम और साधिक अट्टारह सागरोपम
उक्त दोनों लेख्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है । इसी प्रकार
उक्त दोनों लेख्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका भी अन्तर जानना चाहिए । विशेषता
यह है कि इनके छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी उक्त स्थितियोंप्रमाण अन्तर होता है ।

तेज और पद्म लेख्यावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंका
अन्तर कितने काल होता है ? नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर
है ॥ ३०८ ॥

१ एक्कींय प्रति जघनेन पल्लोपमामल्येयमागोऽन्तर्मुहूर्तत्र । स सि १, ८.

२ उत्तरपेण दे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेक्काणि । स सि १, ८

३ संयतामपमत्तप्रमत्तसंयतानां नानाजीनापेक्षया एक्कीवापेक्षया च नाल्यन्तरम् । स सि १, ८

कृते ? नाणानीयमहवेच्छेदाभावा । एगजीमस्स वि, लेसाद्वादो गुणद्वाए चतुस्रदेसा ।

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, नाणजीवं पडुच्च ओधं ॥ ३०९ ॥
सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३१० ॥
तं जहा-ने देवा मिच्छादिट्ठि-मम्मादिट्ठिणो सुक्कलेस्सिया गुणंतरं गंतूण जहण्णेण ऋप्पिदगुणं पडिक्कणा । लद्धमंतोमुहुत्तमंतरं ।

उक्कस्सेण एकक्कीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३११ ॥
तं जहा-ने जीमा सुक्कलेस्सिया मिच्छादिट्ठि दब्बलिंणिणो एकक्कीससागरो-
वमिएसु दोसु उअण्णा । छदि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदा (१) विस्संता (२) विसुद्धा
(३) मम्मत्तं पडिक्कणा । तल्लेगो मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो (४) अवरो सम्मत्तेणेव । अवसाणे

पर्याप्त, उक्त गुणस्थानवाले नाना जीवोंके प्रवाहका रुभी विच्छेद नहीं होता है । तथा एक जीवकी अपेक्षा भी अन्तर नहीं है, क्योंकि, लेख्योके कालसे गुणस्थानका काल मूल होता है, ऐसा उपदेश पाया जाता है ।

शुक्लेश्यावालोमं मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३०९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१० ॥

जैसे-शुक्लेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दो देव अन्य गुणस्थानको जानकर जगन्ना कालसे विवक्षित गुणस्थानको प्राप्त हुए । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल-प्रमाण अन्तर दृश्य होता है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागरोपम है ॥ ३११ ॥

जैसे-शुक्लेश्यावाले दो मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंणी जीव इकतीस सागरोपमकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुए । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विद्याम ले (२) विगुर हो (३) सम्यक्त्वको प्राप्त हुए । उनमेंसे एक मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको

१ शुक्लेसु गिण्यादृष्टयतम्यग्दृष्टोत्तानजीवोपेक्षया नास्त्यन्तरस्य । स ति १, ८.

२ एगजीम प्रति चान्तेनान्तर्मुहूर्तः । स ति १, ८.

३ अन्तर्गतीनां सागरोपमाणि देशानामि । स ति १, ८.

जहाकमेण वे वि मिच्छत्त-सम्मत्ताणि पडिक्कणा (५) । चहु-पंचअंतोमुहुत्तेहि उणाणि एकक्कीसं सागरोवमाणि मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठिणमुक्कस्संतरं ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छादिट्ठिणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, नाणजीवं पडुच्च ओधं ॥ ३१२ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण पल्लोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥ ३१३ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण एकक्कीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३१४ ॥

एदं पि सुगमं ।

प्राप्त हुआ (४) । दूसरा जीव सम्यक्त्वके साथ ही रहा । आयुके अन्तमें यथाक्रमसे दोनों ही जीव मिथ्यात्व और सम्यक्त्वको प्राप्त हुए (५) । इस प्रकार चार अन्तर्मुहूर्तोंसे कम इकतीस सागरोपमकाल शुक्लेश्यावाले मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर है और पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम इकतीस सागरोपमकाल असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर है ।

शुक्लेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओषके समान है ॥ ३१२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागरोपम है ॥ ३१४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

१ सासादनसम्यग्दृष्टिमिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवोपेक्षया सामान्यत्वं । स ति १, ८.

२ एगजीम प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयमागोत्तर्मुहूर्तस्य । स ति १, ८.

३ उत्तर्गतीनां सागरोपमाणि देशानामि । स ति १, ८.

संजदासंजद-पमतसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेग-
जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३१५ ॥

कुदो ? णाणजीवपवाहस्स वोच्छेदाभावा, एगजीवस्स लेस्सद्वादो गुणद्वाए
नहुसुवदेसादो ।

अपमतसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणजीवं पडुच्च
गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३१६ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३१७ ॥

तं जहा- एको अपमतो सुक्कलेस्साए अञ्छिदो उवसमसेहिं पडिदणंतरिय
सव्वजहणकालेण पडिणियत्तिय अपमतो जादो । लद्धमंतरं ।

उक्कस्समंतोमुहुत्तं ॥ ३१८ ॥

शुक्कलेश्यावाले संयतासंयत और प्रमतसंयतोका अन्तर कितने काल होता है ?
नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३१५ ॥

क्योंकि, उक्त गुणस्थानवर्ती नाना जीवोंके प्रवाहका कभी व्युच्छेद नहीं होता
है । तथा एक जीवकी अपेक्षा भी अन्तर नहीं है, क्योंकि, लेश्याके कालसे गुणस्थानका
काल बहुत होता है, ऐसा उपदेश पाया जाता है ।

शुक्कलेश्यावाले अप्रमतसंयतोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी
अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३१६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१७ ॥

जैसे- शुक्कलेश्यामें विद्यमान कोई एक अप्रमतसंयत उपशमश्रेणीपर चढ़कर
अन्तरको प्राप्त हो सर्वजघन्य कालसे लौटकर अप्रमतसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर
प्राप्त होगा ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१८ ॥

१ संयतासंयतप्रमतसंयतोस्तेजोलेश्यावत् । स सि १, ८

२ अप्रमतसंयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

३ एकजीव प्रति जघन्यमुत्कृष्ट चान्तर्मुहूर्तः । स सि १, ८

एदस्स जहणभंगो । णवरि सव्वचिरेण कालेण उवसमसेदीदो ओदिणस्स
वचव्वं ।

तिण्हमुवसामाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणजीवं
पडुच्च जहणणेण एगसमयं ॥ ३१९ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३२० ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३२१ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३२२ ॥

एदेसि दोण्हं सुत्ताणमत्थे भणमाणे खिप्प-चिरकालेहि उवसमसेहिं चडिय ओदि-
ण्णाणं^१ जहणुक्कस्सकाला वत्तन्वा ।

इसका अन्तर भी जघन्य अन्तरपरूवणाके समान है । विशेषता यह है कि
सर्वदीर्घकालात्मक अन्तर्मुहूर्त द्वारा उपशमश्रेणीसे उतरे हुए जीवके उत्कृष्ट अन्तर
कहना चाहिए ।

शुक्कलेश्यावाले अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती
तीनों उपशामक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे
एक समय अन्तर है ॥ ३१९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

शुक्कलेश्यावाले तीनों उपशामकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ ३२० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२१ ॥

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२२ ॥

इन दोनों सूत्रोंका अर्थ कहने पर क्षिप्र (लघु) कालसे उपशमश्रेणी पर चढ़कर
उतरे हुए जीवोंके जघन्य अन्तर कहना चाहिए, तथा चिर (दीर्घ) कालसे उपशमश्रेणी
पर चढ़कर उतरे हुए जीवोंके उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिए ।

१ त्रयाणामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स सि १, ८

२ एकजीव प्रति जघन्यमुत्कृष्ट चान्तर्मुहूर्तः । स सि १, ८

३ प्रतिपु ' ओधिणण ' इति पाठ ।

उवसंतकसायवीद्रागछटुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि,
णाणाजीवं पडुच्च जहणणेण एगसमयं ॥ ३२३ ॥

गुणमेवं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३२४ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३२५ ॥

उवसंतोदो उवरे उवसंतकसायण पडिबज्जमाणगुणद्वयाभावा, हेद्वा ओदिणस्स
पि लेसंतगं किंमंतरेण पुणो उवयंतगुणमहणाभावा ।

चटुण्हं खवगा ओधं ॥ ३२६ ॥

शुक्लेस्यावाले उपशान्तरुपायवीतरागछटुस्थोका अन्तर कितने काल होता है ?
नाना जीवोंकी अपेक्षा जवन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ३२३ ॥

यह नून सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ ३२४ ॥

यह स्तर भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३२५ ॥

क्योंकि, उपशान्तरुपाय गुणस्थानसे ऊपर उपशान्तरुपायी जीवके द्वारा प्रतिपद्य-
मान गुणस्थानका अभाव है, तथा नीचे उतरे हुए जीवके भी अन्य लेख्याके संक्रमणके
बिना पुन. उपशान्तरुपाय गुणस्थानका ग्रहण हो नहीं सकता है ।

विशिष्टार्थ—उपशान्तरुपायगुणस्थानके अन्तरका अभाव वतानेका कारण यह है
कि ग्यारहवें गुणस्थानसे ऊपर तो वह चटु नहीं सकता है, क्योंकि, वहांपर क्षपकोंका
ही गमन होता है । और यदि नीचे उतरकर पुन. उपशमश्रेणीपर चढ़े, तो नीचेके गुण-
स्थानमें शुक्लेस्यासे पीत पद्मादि लेख्याका परिवर्तन हो जायगा, क्योंकि, वहांपर एक
लेख्याके कालसे गुणस्थानका काल बहुत वताया गया है ।

शुक्लेस्यावाले चारों क्षपकोंका अन्तर ओधके समान है ॥ ३२६ ॥

१ उपशान्तरुपाय नानाजीवपेक्षा सामान्यत्व । न सि १, ८

२ पृच्छीय प्रती नास्त्यन्तस्य । स सि १, ८.

४ चतुर्णां क्षपसर्गा मयोल्लेखिनामलेख्यानां च सामान्यत्व । स सि १, ८.

सजोगिकेवली ओधं ॥ ३२७ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एव लेस्सामगणां समत्ता ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव अजोगि-
केवलि ति ओधं ॥ ३२८ ॥

कुदो ? सव्वपयारेण ओवपरूवणादो भेदाभावा ।

अभवसिद्धियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च
णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३२९ ॥

कुदो ? अववपवाहवोच्छेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३३० ॥

कुदो ? गुणंतरसंकतीए तत्थाभावा ।

एव भवियमगणा समत्ता ।

शुक्लेस्यावाले सयोगिकेवलीका अन्तर ओधके समान है ॥ ३२७ ॥
ये दोनों सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार लेख्यामार्गणा समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणाके अनुयादसे भव्यसिद्धिकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली
तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती भव्य जीवोंका अन्तर ओधके समान है ॥ ३२८ ॥

क्योंकि, सर्व प्रकार ओघप्ररूपणासे भव्यमार्गणाकी अन्तरप्ररूपणामें कोई
भेद नहीं है ।

अभव्यसिद्धिक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा
अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३२९ ॥

क्योंकि, अवव्य जीवोंके प्रवाहका कभी विच्छेद नहीं होता है ।

अभव्य जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३३० ॥

क्योंकि, अवव्योंमें अन्य गुणस्थानके परिवर्तनका अभाव है ।

इस प्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई ।

१ प्रतिपु 'लेस्समगणा' इति पाठ ।

२ भव्यानुवादेन भव्येषु मिथ्यादृष्ट्याद्योगेनैव्यन्तानां सामान्यत्व । स. सि १, ८.

३ अवव्यानां नानाजीवपेक्षा पृच्छीयपेक्षा च नास्त्यन्तस्य । स. सि. १, ८.

सम्पत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥३३१॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३३२ ॥

तं जहा- एगो असंजदसम्मादिट्ठी संजमासजमगुणं गंतूणं सव्वजहणेण कालेण पुणो असंजदसम्मादिट्ठी जादो । लद्धमंतरं ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥ ३३३ ॥

तं जहा- एगो भिच्छादिट्ठी अट्ठावीससत्तकम्मिओ पंचदियतिगिक्खसणिणिसम्मुच्छिमपज्जजएसु उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिक्खणो (४) । संजमासंजमगुणं गंतूणंतरिदो पुव्वकोडिं जीविय मदो देवो जादो । एवं चट्ठहि अंतोमुहुत्तेहि जणिगया पुव्वकोडी उक्कस्संतरं ।

‘संजदासंजदपहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछट्टमत्था ओधि-
णाणिभंगो ॥ ३३४ ॥

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादेसे सम्यग्दृष्टिओंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३३१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३३२ ॥

जैसे- एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव सयमासंयम गुणस्थानको प्राप्त होकर सर्वजघन्य कालसे पुनः असंयतसम्यग्दृष्टि होगया । इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटी है ॥ ३३३ ॥

जैसे- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव पंचेन्द्रिय विश्राम ले (२) विद्युद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४) । पुनः संयमासंयम गुणस्थानको जाकर अन्तरको प्राप्त हो पूर्वकोटी वर्तक जीवित रह कर मरा और देव हुआ । इस प्रकार चार अन्तर्मुहूर्तोंस कम पूर्वकोटी वर्ष असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

संयतासंयत गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकपायवीतरागछत्राद्य गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टियोंका अन्तर अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ ३३४ ॥

१ मतिपु ‘सव्वरण्णहृदि’ इति पाठ ।

जया ओधिणाणमगगाए संजदासंजदादीणिमंतरपरूवणा कदा, तथा कादव्वा, गत्थि एत्थ कोह विसेसो ।

चट्ठण्हं खवगा अजोगिकेवली ओघं ॥ ३३५ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ ३३६ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३३७ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३३८ ॥

तं जहा- एक्को असंजदसम्मादिट्ठी अणगुणं गंतूण सव्वजहणेणकालेण असंजदसम्मादिट्ठी जादो । लद्धमंतरं ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥ ३३९ ॥

जिस प्रकारसे अवधिज्ञानमार्गणमें सयतासंयत आदिकोंके अन्तरकी प्ररूपणा की है, उसी प्रकार यहां पर भी करना चाहिए, क्योंकि, उससे यहां पर कोई विशेषता नहीं है ।

सम्यग्दृष्टि चारों क्षपक और अयोगिकेवलियोंका अन्तर ओघके समान है ॥ ३३५ ॥

सम्यग्दृष्टि सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ३३६ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३३७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३३८ ॥

जैसे- एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव अन्य (संयतासंयतादि) गुणस्थानको जाकर सर्वजघन्य कालसे पुनः असंयतसम्यग्दृष्टि होगया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटी वर्ष है ॥ ३३९ ॥

१ सम्यक्त्वावुवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टिचसयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवपेक्षया नात्यन्तरस्य स ति. १, ८.

२ पुव्वजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । स ति १, ८ ३ उत्तरेण पूर्वकोटी देवोना । स ति. १, ८

तं जहा- एकतो पुंवकोडाउएसु मणुसेसुवजिय गन्भादिअट्टवसियो जादो ।
दंगमोहणीय मीय रइयमम्मादिही जादो (१) । अतोपुहुत्तमच्छिट्ठण (२) संजमासंजमं
मंजमं या पडिवजिय पुंवकोडिं गमिय काल गदो देवो जादो । अट्टवस्सेहि वि-
अतोपुहुत्तेहि य ऊणिया पुंवकोडी अंतरं ।

संजदासंजद-पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि णाणा-
जीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३४० ॥

मुगमपंदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३४१ ॥

पंदं पि मुगमं ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरैयाणि ॥ ३४२ ॥

तं जहा- एकको पुंवकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो । गन्भादिअट्टवस्साणमुविर
अतोपुहुत्तेण (१) राइयं पट्टमिय (२) विस्ममिय (३) संजमासंजमं पडिवजिय (४)

जैसे- एक जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर गर्भसे लेकर आठ
वर्षका हुआ और अर्धमोहनीयका अय करके क्षायिकसम्यग्दृष्टि होगया (१) । वहां
अन्तर्मुहूर्त रह करके (२) संयमासंयम या संयमको प्राप्त होकर और पूर्वकोटी वर्ष
निताकर मरणको प्राप्त हो देन हुआ । इस प्रकार आठ वर्ष और दो अन्तर्मुहूर्तोंसे कम
पूर्वकोटी वर्ष अत्यंत क्षायिकसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत और प्रमत्तसंयत जीवोंका अन्तर कितने काल
होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३४० ॥

यत् मूत्त सुगमं हे ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जयन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३४१ ॥

यत् रूत्त भी सुगमं हे ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेत्तीस सागरोपम
है ॥ ३४२ ॥

जैसे- एक जीव पूर्वकोटी वर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भको आदि
लेकर आठ वर्षोंके पश्चात् अन्तर्मुहूर्तसे (१) क्षायिकसम्यग्भवका प्रस्थापनकर (२)
विश्राम ले (३) संयमासंयमको प्राप्त कर (४) संयमको प्राप्त हुआ । संयमसहित

* मगगायनप्रवाणचरणानां नागजीवोपेक्षया नास्तन्ताप । स त्ति १, ८.

२ दृज्जी म्मि जज्ज्येनात्तर्मुहूर्तं । स. ति. १, ८.

३ उर्ध्वं पत्तिसागरोपमाणि सादिरैयाणि । म ति १, ८. ४ प्रतिपु 'पट्टमिय' इति पाठ ।

संजमं पडिवण्णो । पुंवकोडिं गमिय मदो समऊणतेत्तीससागरोवमाउट्टिदिएसु उव-
वण्णो । तदो चुदो पुंवकोडाउएसु मणुसेसुववण्णो । थोवानसेसे जीविए संजमासंजमं
गदो (५) । तदो अप्पमत्तादिणवहि अंतोपुहुत्तेहि सिद्धो जादो । अट्टवस्सेहि चोदस-
अंतोपुहुत्तेहि य ऊणदोपुंवकोडीहिं सादिरैयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि उक्कस्संतरं
संजदासंजदस्स ।

पमत्तस्स उच्चदे- एकको पमत्तो अप्पमत्तो (१) अपुव्वो (२) अणियट्ठी
(३) सुहुमो (४) उवसंतो (५) पुणो वि सुहुमो (६) अणियट्ठी (७) अपुव्वो
(८) अप्पमत्तो (९) अट्टाखएण कालं गदो । समऊणतेत्तीससागरोवमाउट्टिदिएसु
देवेषु उववण्णो । तदो चुदो पुंवकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो । अंतोपुहुत्तावसेसे जीविए
पमत्तो जादो । लद्धमंतरं (१) । तदो अप्पमत्तो (२) । उव्वरि छ अंतोपुहुत्ता । अंतरस्स
चाहिरा' अट्ट अंतोपुहुत्ता, अंतरस्स अन्तरिमा वि णत्त, तेणेतोपुहुत्तमहियपुंवकोडीए
सादिरैयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि उक्कस्संतरं ।

पूर्वकोटीकाल वितार मरा और एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले
वैषोंमें उत्पन्न हुआ । वहाले च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । जीव-
नके अल्प अवशेष रह जाने पर संयमासंयमको प्राप्त हुआ (५) । इसके पश्चात्
अप्रमत्तादि गुणस्थानसम्बन्धी नो अन्तर्मुहूर्तोंसे (श्रेण्यारोहण करता हुआ) सिद्ध
होगया । इस प्रकार आठ वर्ष और चौदह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम दो पूर्वकोटियोंसे साधिक
तेतीस सागरोपमकाल क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एक क्षायिकसम्यग्दृष्टि
प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत (१) अपूर्वकरण (२) अनिवृत्तिकरण (३) सूक्ष्मसाम्प-
राय (४) उपरान्तक्रयाय (५) पुनः सूक्ष्मसाम्पराय (६) अनिवृत्तिकरण (७) अपूर्व-
करण (८) अप्रमत्तरायत (९) होकर (गुणस्थान और आयुके) कालक्षयसे मरणको
प्राप्त हो एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले वैषोंमें उत्पन्न हुआ । पुनः
वहांसे च्युत होकर पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहां जीवनके अन्तर्मुहूर्त
अवशिष्ट रह जाने पर प्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया (१) । पश्चात्
अप्रमत्तसंयत हुआ (२) । इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त ओर मिलाए । अन्तरके बाहरी
आठ अन्तर्मुहूर्त है और अन्तरके भीतरी नौ अन्तर्मुहूर्त हैं, इसलिये नौमेंसे आठके घटा
देने पर शेष बचे हुए एक अन्तर्मुहूर्तसे अधिक पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपम
क्षायिकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

अथवा अंतरस्वभंतराओ दो अप्पमत्तद्वाओ, तासि बाहिरिया एक्का पमत्तद्वा सुद्धा । अंतरभंतराओ छ उवसामगद्वाओ, तासि बाहिरियाओ तिणि खवगद्वाओ सुद्धाओ । अंतरभंतरिमाए उवसंतद्वाए एक्किक्किस्से खवगद्वाए अद्धं सुद्धं । अवसेसा अद्धुद्धा अंतोमुहुत्ता । तेहि ऊणियाए पुव्वकोडीए सादिरियाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि पमत्तस्सुक्कस्संतरं ।

अप्पमत्तस्स उच्चदे- एक्को अप्पमत्तो खइयस्समादिट्ठी अपुव्वो (१) अणियट्ठी (२) सुहुमो (३) उवसंतो (४) पुणो वि सुहुमो (५) अणियट्ठी (६) अपुव्वो होदूण (७) कालं गदो समऊणतेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसुवण्णो । तदो जुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो, अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे अप्पमत्तो जादो । लद्धमंतरं (१) । तदो पमत्तो (२) पुणो अप्पमत्तो (३) । उवरी छ अंतोमुहुत्ता । अंतरस्स अबभंतरिमाओ छ उवसामगद्वाओ बाहिरिल्लियासु तिसु खवगद्वासु सुद्धाओ । अबभ-

अथवा, अन्तरके आभ्यन्तरी दो अप्रमत्तकाल है और उनके बाहरी एक प्रमत्तकाल शुद्ध है । (अतएव घटाने पर शून्य शेष रहा, क्योंकि, अप्रमत्तसंयतके कालसे प्रमत्तसंयतका काल दुना होता है ।) तथा अन्तरके भीतरी छह उपशामककाल हैं, और उनके बाहरी तीन क्षपककाल शुद्ध हैं । (अतएव घटा देने पर शेष कुछ नहीं रहा, क्योंकि उपशामकेणिके कालसे क्षपकश्रेणीका काल दुगुना होता है ।) अन्तरके भीतरी उपशामककालमेंसे एक क्षपककालके आधा घटाने पर क्षपककालका आधा शेष रहता है । इस प्रकार सब मिलाकर साढ़े तीन अन्तर्मुहूर्त अवशेष रहे । उन साढ़े तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपमकाल क्षायिकसम्पद्यटि प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

क्षायिकसम्पद्यटि अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एक अप्रमत्तसंयत क्षायिकसम्पद्यटि जीव अपूर्वकरण (१) अनिवृत्तिकरण (२) सूक्ष्मसाम्पराय (२) उपशान्तकपाय (४) होकर पुनरपि सूक्ष्मसाम्पराय (५) अनिवृत्तिकरण (६) अपूर्वकरण (७) होकर मरणको प्राप्त हुआ और एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहांसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और ससारके अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर अप्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया (१) । पश्चात् प्रमत्तसंयत (२) पुनः अप्रमत्तसंयत (३) हुआ । इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलायें । अन्तरके आभ्यन्तरी छह उपशामककाल हैं और बाहरी तीन क्षपककाल हैं, अतएव घटा देने पर शेष कुछ नहीं रहा ।

तरिमाए उवसंतद्वाए खवगद्वाए अद्धं सुद्धं । अवसेसा एअद्धुद्धं अंतोमुहुत्ता । एदेहि ऊण-पुव्वकोडीए सादिरियाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि अप्पमत्तुक्कस्संतरं ।

चटुप्पमुवसामगणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३४३ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३४४ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३४५ ॥

एदं पि अवगदत्थं ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरियाणि ॥ ३४६ ॥

तं जहा- एक्को पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो । अट्ठवस्सेहि अंतोमुहुत्त-बभहिएहि (१) अप्पमत्तो जादो (२) । पमत्तापमत्तपरवत्तसहस्सं कादूण तमिह चैव

अन्तरके भीतरी उपशान्तकालमेंसे क्षपककालका आधा घटाने पर आधा काल शेष रहा । अवशिष्ट साढ़े पांच अन्तर्मुहूर्त रहे । उनसे कम पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपमकाल क्षायिकसम्पद्यटि अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

क्षायिकसम्पद्यटि चारों उपशामकोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ३४३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंमें उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ ३४४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३४५ ॥

इस सूत्रका भी अर्थ ज्ञात है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागरोपम है ॥ ३४६ ॥

जैसे- एक जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । अन्तर्मुहूर्तसे अधिक आठ वर्षोंके द्वारा (१) अप्रमत्तसंयत हुआ (२) । पुनः प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत संबंधी सहस्रों परिवर्तनोंको करके उसी कालमें क्षायिकसम्पद्यक्त्वको भी प्रस्थापनकर (३)

१ प्रतिगु 'चट्ठ' इति पाठः ।

२ चतुर्णामुपशमरानां नानाजीवपेक्षया सामान्यवत् । स ति १, ८-

३ पुस्वीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स ति १, ८

४ उत्कर्षेण वयश्चिन्तासागरोपमाणि सातिरेमाणि । स ति १, ८

गडयं पट्टयि (३) उग्रममेदीपाओगविओहीर विमुद्रो (४) अपुओ (५) अणियड्डी (६) मुद्रुओ (७) उग्रमंतो (८) पुणो मुद्रुओ (९) अणियड्डी (१०) अपुओ जाओ (११) अनिओ । पुअकोडिं मंजमणुपालिय तेत्तीससागरोवमाउड्डिओगु देवेसु उअण्णो । नंदो चुदो पुअकोडोउओसु मणुओसु उअण्णो । अंतोसुहुत्तावमसे जीविए अपुओ जाओ (१२) । लद्धमंतरं । नंदो अणियड्डी (१३) सुद्रुओ (१४) उअसंतो (१५) पुणो मुद्रुओ (१६) अणियड्डी (१७) अपुओ जाओ (१८) । उअरि अप्प-मत्ताटिणअंतोमुद्रुत्तेहि सिद्धि गदो । ग्वमद्वस्सेहि सत्तावीसअंतोसुहुत्तेहि उणदोपुव्व-कोटीहि माटिओणि तेत्तीमं मागोवमाणि अंतरं । एवं चेत्तिणहुव्वसममाणं । गवारे पंत्तमीम तेत्तीमं ग्वमद्वीम मुद्रुत्ता उणा कादव्वा ।

चटुणहं खवा अजोगिकेवली ओघं ॥ ३४७ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ ३४८ ॥

उपशमोपेणिकं योस्य त्रिगुहिनं निगुहं हो (४) अपूर्वरुण (५) अनिवृत्तिरुण (६) सूक्ष्मसागराय (७) उपशान्तकणाय (८) हो, पुन सूक्ष्मसागराय (९) अनिवृत्ति-रुण (१०) गूर्वरुण नुआ (११) और अन्तरको प्राप्त होगया । पुन. पूर्वकोटि तक संगमको परिपालन कर तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँसे ज्युन तो पूर्वकोटि की आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । जीवनेके अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर अपूर्वरुण नुआ (१२) । इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया । पुन. अनिवृत्ति-रुण (१३) सूक्ष्मसागराय (१४) उपशान्तकणाय (१५) पुनः सूक्ष्मसागराय (१६) अनिवृत्तिरुण (१७) और अपूर्वरुण (१८) नुआ । पश्चात् ऊपरके अग्रमत्ताडि गुण-स्थानसम्पन्नी नो अन्तर्मुहूर्तमि सिद्धिको प्राप्त हुआ । इस प्रकार आठ वर्षोंसे और सत्ताईस अन्तर्मुहूर्तमि कम दो पूर्वकोटियोंसे साधिक तेतीस सागरोपमकाल क्षायिक-साम्यगृष्टि गूर्वरुणस्यनता उत्कृष्ट अन्तर है । इसी प्रकार शेष तीन उपशामकोंका भी अन्तर जानना चाहिए । विदोयता यह है कि अनिवृत्तिस्यन उपशामके पञ्चीस अन्तर्मुहूर्त, सूक्ष्मसागराय उपशामके तेवीस अन्तर्मुहूर्त और उपशान्तकणायके रक्षीस अन्तर्मुहूर्त कम करना चाहिए ।

क्षायिकसम्यगृष्टि चागे क्षपक और अयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ३४७ ॥

क्षायिकसम्यगृष्टि सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ३४८ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

वेदगसम्मादिद्वीसु असंजदसम्मादिद्वीणं सम्मादिद्विभंगो ॥ ३४९ ॥
सम्मत्तमगणाए ओघमिह जघा असंजदसम्मादिद्वीणमंतरं परुविदं तथा एत्थ वि परुविदव्वं ।

संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च-
णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३५० ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोसुहुत्तं ॥ ३५१ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण छावट्ठि सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३५२ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

वेदकसम्यगृष्टियोंमें असंयतसम्यगृष्टियोंका अन्तर सम्यगृष्टिसामान्यके समान है ॥ ३४९ ॥

जिस प्रकारसे सूत्रस्वमार्गणके ओघमें असंयतसम्यगृष्टियोंका अन्तर कहा है, उसी प्रकारसे यहां पर भी कहना चाहिए ।

वेदकसम्यगृष्टियोंमें संयतासंयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३५० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३५१ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छयासठ सागरोपम है ॥ ३५२ ॥

१ क्षायोपशमिसम्यगृष्टिचगयतमम्यगृष्टेर्नानाजीनापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनात-
थुद्धतं । उत्तरेण पूर्वगोटी देशेना । स पि १, ८.

२ सयतासयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

३ एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि १, ८

४ उत्तरेण पट्टष्टिसागरोपमाणि देशेनानि । स. पि १, ८.

१, ६, ३५३.]

छक्खंडागमे जीवहृण

[१६३]

तं जहा- एकको भिच्छादिद्वी वेदगसम्मसं संजमासंजमं च जुगवं पडिवण्णो । अंतोमुहुत्तमच्छिय संजमं पडिवण्णो अंतरिदो । जत्तियं कालं संजमासंजमेण संजमेण च अच्छिदो तेत्तियमेचेणूणतेत्तीससागरोवमाउड्डिदिदेवसु उववण्णो । तदो चुदो मणुसेसु उववण्णो । तत्थ जत्तियं काल असजमेण सजमेण वा अच्छदि, पुणो सग्गादो मणुसग्गदि-मांगत्तूण जं वासपुधुत्तादिकालमच्छिस्सदि तेहि दोहि वि कालेहि उणतेत्तीससागरोवमआउ-ड्डिदिएसु देवसु उववण्णो । तदो चुदो मणुसो जादो । वे अंतोमुहुत्तावसेसे वेदगसम्मत्त-काले परिणामपच्चएण संजनासंजमं पडिवण्णो । लद्धमंतरं । तदो अंतोमुहुत्तेण दंसण-मोहणीयं खविय खड्डयसम्मादिद्वी जादो । आदिल्लमेक्कं अंतिल्ला दुवे^१ अंतोमुहुत्ता, एदेहि तीहि अंतोमुहुत्तेहि उण्णाणि छावड्डिसागरोवमाणि संजदासंजदुक्कसंतरं ।

पमत-अपमतसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, पाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, निरंतरं ॥ ३५३ ॥

सुगममेदं ।

जैसे- एक मिथ्यादृष्टि जीव वेदकसम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ । अन्तर्मुहूर्त रह कर पुनः संयमको प्राप्त हो अन्तरको प्राप्त हुआ । पुनः मरणकर जितने काल संयमासंयम और संयमके साथ रहा था उतने ही कालसे कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँसे च्युत हो मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहा पर जितने काल असंयमके अथवा संयमके साथ रहा है और स्वर्गसे मनुष्य-गतिमें आकर जितने वर्षपृथक्त्वादि काल असंयम अथवा संयमके साथ रहेगा उन दोनों ही कालोसे कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँसे च्युत हो मनुष्य हुआ । इस प्रकार वेदकसम्यक्त्वके कालमें दो अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर परिणामोंके निमित्तसे संयमासंयमको प्राप्त हुआ । तब अन्तर लब्ध हुआ । पुनः अन्तर्मुहूर्तसे दर्शनमोहनीयका क्षणकर क्षायिकसम्यग्दृष्टि होगया । इस प्रकार आदिका एक और अन्तके दो अन्तर्मुहूर्त, इन तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम छयासठ सागरोपमकाल वेदकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर है ।

वेदकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

^१ मप्रतो 'दुवे' इति पाठ । = प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

१६४]

अंतराणुगमे वेदगसम्मादिद्वि-अंतरपरखण

[१, ६, ३५५]

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३५४ ॥

एदं वि सुगमं ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरैयाणि ॥ ३५५ ॥

तं जहा- एकको अप्पमत्तो होदूण अंतोमुहुत्तमच्छिय तेत्तीससागरोवमाउ-ड्डिदिएसु देवसु उववण्णो । तदो चुदो पुव्वक्कोडाएसु मणुसेसु उववण्णो । अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे पमतो जादो । लद्धमंतरं । खड्डयं पड्डविय खवगसेड्ढीपाओगअपमतो होदूण (२) खवगसेड्ढिसारुदो अपुव्वादि छअंतोमुहुत्तेहि णिव्वुदो । अंतरस्स आदिल्लमेक्कमंतो-मुहुत्तं अंतरवाहिरसु अड्डअंतोमुहुत्तेसु सोहिदे अवसेसा सत्त अंतोमुहुत्ता । एदेहि उण-पुव्वक्कोडाए सादिरैयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि पमतसंजदुक्कसंतरं ।

अपमतत्तरस उच्चदे- एकको अप्पमतो पमतो होदूण अंतोमुहुत्तमच्छिय (१) समउणतेत्तीससागरोवमाउड्डिदिदेवसु उववण्णो । तदो चुदो पुव्वक्कोडाएसु मणुसेसु उव-

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३५४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागरोपम है ॥ ३५५ ॥

जैसे- एक प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत हो अन्तर्मुहूर्त रहकर तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । ससारके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवशिष्ट रह जाने पर प्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । पुनः क्षायिकसम्यक्त्वको प्रस्थापितकर क्षपकश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत हो (२) क्षपकश्रेणीपर चढ़ा और अपूर्वकरणादि छह अन्तर्मुहूर्तोंसे निर्वाणको प्राप्त हुआ । अन्तरके आदिके एक अन्तर्मुहूर्तको अन्तरके बाहिरी आठ अन्तर्मुहूर्तोंमेंसे कम कर देने पर अवशिष्ट सात अन्तर्मुहूर्त रहते हैं, इनसे कम पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपमकाल प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर है ।

वेदकसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं- एक अप्रमत्तसंयत जीव, प्रमत्तसंयत हो अन्तर्मुहूर्त रहकर (१) एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थिति-वाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहाँसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ ।

^१ एक्कजीव इति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । स सि १, ८

^२ उत्तरेण त्रयविंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि । स सि १, ८

१, ६, ३६३]

छक्खंडागमे जीवद्वुण

[११७

मच्छिय असंजदो जादो । पुणो वि अंतोमुहुत्तेण संजमांसंजमं षडियणो । लद्धं जहणंतरं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३६३ ॥

तं जहा- एक्को सेडीदो ओदरिय संजदासंजदो जादो । अंतोमुहुत्तमच्छिय अप्पमत्तो पमत्तो असंजदो च होदूण संजदासंजदो जादो । लद्धमुक्कस्संतरं ।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणार्जीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ ३६४ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण पणारस रादिदियाणि ॥ ३६५ ॥

एद पि सुगमं ।

एगार्जीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३६६ ॥

तं जहा- एक्को उवसमसेडीदो ओदरिय पमत्तो होदूण अंतोमुहुत्तमच्छिय अप्प-

मुहुत्तं रहकर असंयतसम्यग्दृष्टि होगया । फिर भी अन्तर्मुहुत्तसे समयमांसंयमको प्राप्त हुआ । इस प्रकार जघन्य अन्तर लब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहुत्तं है ॥ ३६३ ॥

जैसे- एक संयत उपशमश्रेणीसे उत्तरकर संयतासंयत हुआ । अन्तर्मुहुत्तं रहकर अप्रमत्तसंयत, प्रमत्तसंयत और असंयतसम्यग्दृष्टि होकर संयतासंयत होगया । इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर लब्ध हुआ ।

उपशमसम्यग्दृष्टि प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है ॥ ३६४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह रात-दिन है ॥ ३६५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहुत्तं है ॥ ३६६ ॥

जैसे- एक संयत उपशमश्रेणीसे उत्तरकर प्रमत्तसंयत हो अन्तर्मुहुत्तं रह कर

१ प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवोपेक्षया जघन्येनैकः समयः । स ति १, ८

२ उत्कर्षेण पचदश रात्रिदिनानि । स ति १, ८

३ एवञ्जीव प्रति जघन्यमुत्कृष्ट चात्तर्मुहुत्तः । स ति १, ८.

१६८]

अतराणुगमे उवसमसम्मादिट्ठि-अतरपरुवण

[१, ६, ३६९.

मत्तो जादो । पुणो वि पमत्तचं गदो । लद्धमंतरं । एवं चेव अप्पमत्तस्स वि जहणंतरं वत्तव्वं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३६७ ॥

तं जहा- एक्को उवसमसेडीदो ओदरिय पमत्तो होदूण पुणो संजदासंजदो असंजदो अप्पमत्तो च होदूण पमत्तो जादो । लद्धमंतरं । अप्पमत्तस्स उच्चदे- एक्को सेडीदो ओदरिय अप्पमत्तो जादो । पुणो पमत्तो असंजदो संजदासंजदो च होदूण भूओ अप्पमत्तो जादो । लद्धमुक्कस्समंतरं ।

तिण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणार्जीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ॥ ३६८ ॥

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३६९ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

अप्रमत्तसंयत हुआ । फिर भी प्रमत्त गुणस्थानको प्राप्त हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । इसी प्रकारसे उपशमसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयतका भी जघन्य अन्तर कहना चाहिये ।

उपशमसम्यग्दृष्टि प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहुत्तं है ॥ ३६७ ॥

जैसे- एक संयत उपशमश्रेणीसे उत्तरकर प्रमत्तसंयत होकर पुनः संयतासंयत, असंयत और अप्रमत्तसंयत होकर प्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । उपशमसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एक संयत उपशमश्रेणीसे उत्तरकर अप्रमत्तसंयत हुआ । पुनः प्रमत्तसंयत, असंयत और संयतासंयत होकर फिर भी अप्रमत्तसंयत होगया । इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर लब्ध हुआ ।

उपशमसम्यग्दृष्टि अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय, इन तीनों उपशमकोका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ३६८ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ ३६९ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

१ त्रयाणामुपशमकाना नामार्जीवोपेक्षया जघन्येनैक समय । स ति १, ८

२ उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम् । स ति १, ८

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३७० ॥

तं जला- उग्रममेदिं चडिय आदिं करिय पुणो उतरिं गंतूण ओदरिय अपिद-
गुणं पट्टिणम्म अंतोमुहुत्तमंतरं होदि ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३७१ ॥

एदम्म जहण्णमंगो । णवरि विमिता विदियवारं चडमाणस्स जहण्णंतरं, पडमवारं
चडिय ओदिण्णस्स उक्कस्संतरं वत्तव्वं ।

उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि,
णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३७२ ॥

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३७३ ॥

एदाणि दो नि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३७४ ॥

उक्त तीनों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त
है ॥ ३७० ॥

जेभे- उपशमश्रेणीपर चढ़कर आदि करके फिर भी ऊपर जाकर ओर उतरकर
विपश्चित गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवमें अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तर होता है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३७१ ॥

इन उत्कृष्ट अन्तरकी प्ररूपणा भी जघन्य अन्तरकी प्ररूपणाके समान जानना
पारिए । किन्तु विदोषता यह है कि उपशमश्रेणीपर छितीय वार चढ़नेवाले जीवके जघन्य
अन्तर होता है और प्रथम वार चढ़कर उतरे हुए जीवके उत्कृष्ट अन्तर होता है, ऐसा
करना चाहिए ।

उपशान्तरूपायवीतरागछदस्य जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना
जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है ॥ ३७२ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ ३७३ ॥
ये दोनों ही स्र सुगम ह ।

उपशान्तरूपायवीतरागछदस्योका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर
है ॥ ३७४ ॥

१ पृच्छीत प्रति जगत्पृष्ठ वातर्मुहूर्त । म मि १, ८

२ उपशान्तरूपायस्य नानाजीवपेक्षया सामान्यत् । म मि १, ८.

३ पृच्छीत प्रति नास्त्यन्तर । म मि १, ८.

हेट्ठिमणुगद्वणेषु अंतराविय सव्वजहण्णेण कालेण पुणो उवसंतकसायभावं गयस्स
जहण्णंतरं किण्ण उच्चदे ? ण, हेट्ठा ओइणस्स वेदगसम्मचमपडिवज्जिय पुब्बुनसम-
सम्मचेणुवसमसेढीसमारुहणे संभवाभावादो । तं पि कुदो ? उवसमसेढीसमारुहणपा-
ओगकालादो सेसुवसमसम्मचद्वाए त्थोवत्तुवलंभादो । तं पि कुदो णव्वदे ? उवसंत-
कसायएगजीवसंतराभावणहाणुववचीदो ।

सासणसग्गामिच्छादिट्ठिणमंतरं केवचिरं कालादो
होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३७५ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३७६ ॥

एदं पि सुगमं ।

शंका—नीचके गुणस्थानमें अन्तरको प्राप्त कराकर सर्वजघन्य कालसे पुनः
उपशान्तकपायताको प्राप्त हुए जीवके जघन्य अन्तर क्यों नहीं कहते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमश्रेणीसे नीचे उतरे हुए जीवके वेदकसस्य-
कत्वको प्राप्त हुए बिना पहलेवाले उपशमसमयस्त्वके द्वारा पुनः उपशमश्रेणीपर
समारोहणकी सम्भावनाका अभाव है ।

शंका—यह कैसे जाना ?

समाधान—क्योंकि, उपशमश्रेणीके समारोहणयोग्य कालसे शेष उपशम-
सम्यक्त्वका काल अल्प पाया जाता है ।

शंका—यह भी कैसे जाना ?

समाधान—उपशान्तकपायवीतरागछदस्यके एक जीवके अन्तरका अभाव
अन्यथा वन नहीं सकता, इससे जाना जाता है कि उपशान्तकपाय गुणस्थान एक जीवकी
अपेक्षा अन्तर रहित है ।

सासादनसम्यग्दष्टि और सम्यग्मिथ्यादष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता
है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ३७५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्ल्योपमका असंख्यातवां भाग है ॥ ३७६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

१ सासादनसम्यग्दष्टिसम्यग्मिथ्यादष्टयोर्नानाजीवपेक्षया जघन्येनैकः समय । त मि. १, ८.

२ उत्तराण पल्ल्योपमासख्येयमाण । त मि. १, ८.

१, ६, ३७७]

छक्कडागमे जीवद्वगण

[१७१

एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३७७ ॥

गुणसंकीर्ण असंभवादो ।

मिच्छादिद्विगुणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणेगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३७८ ॥

कुदो ? गाणाजीवपमाहस्स वोच्छेदाभावा, गुणंतरसंकीर्ण अभावादो ।

एव सम्मत्तमगणा समत्ता ।

सणिगयाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिद्विगुणमोघं ॥ ३७९ ॥

कुदो ? गाणाजीवं पडुच्च अंतराभावेण, एगजीवं पडुच्च अंतोसुहुत्तं देखेणवे-
छावड्डिसागरोपमसत्तजहणुक्कस्संतरेहि य साधम्मवुलंभा ।

सासनसम्भादिद्विगुणमोघं जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था
ति पुरिसवेदभंगो ॥ ३८० ॥

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३७७ ॥

क्योंकि, इन दोनोंके गुणस्थानका परिवर्तन असम्भव है ।

मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना और एक जीवकी
अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३७८ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंके प्रवाहका कभी विच्छेद नहीं होता है । तथा एक जीवका
अन्य गुणस्थानोंमें संक्रमण भी नहीं होता है ।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

संज्ञीमार्गणके अनुवादसे संज्ञी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर ओघके समान
है ॥ ३७९ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, एक जीवकी अपेक्षा
जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम दो छयासठ सागरोपममात्र अन्तरोंकी अपेक्षा
ओघसे समानता पाई जाती है ।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर उपशान्तकपायवीतरागछदस्य तक संज्ञी जीवोंका
अन्तर पुरुषवेदियोंके अन्तरके समान है ॥ ३८० ॥

१ एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

२ मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवपेक्षया एकजीवपेक्षया च नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

३ सत्तादुवादेन सत्तेषु मिथ्यादृष्टे सामान्यवत् । स सि १, ८

४ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नानाजीवपेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येन पश्योपमा-

१७२]

अंतराणुगमे असणि-अतरपरवणं

[१, ६, ३८३-

कुदो ? सागरोपमसदपुधत्तद्विदं पडि दोण्हं साधम्मवुलंभा । गवरि असणिगद्विदि-
मच्छिय सण्णीसुगणस्स उन्नक्कस्सद्विदी वत्तव्वा ।

चटुण्हं खवाणमोघं ॥ ३८१ ॥

सुगममोघं ।

असणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च
गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३८२ ॥

कुदो ? असणिपवाहस्स वोच्छेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ॥ ३८३ ॥

कुदो ? गुणसंकीर्ण अभावादो ।

एव सणिगमगणा समत्ता ।

क्योंकि, सागरोपमशतपृथक्त्वस्थितिकी अपेक्षा दोनोंके अन्तरोंमें समानता पाई
जाती है । विशेषता यह है कि असंज्ञी जीवोंकी स्थितिमें रहकर संज्ञी जीवोंमें उत्पन्न हुए
जीवके उत्कृष्ट स्थिति कहना चाहिए ।

संज्ञी चारों क्षपकोंका अन्तर ओघके समान है ॥ ३८१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

असंज्ञी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर
नहीं है, निरन्तर है ॥ ३८२ ॥

क्योंकि, असंज्ञी जीवोंके प्रवाहका कभी विच्छेद नहीं होता है ।

असंज्ञी जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३८३ ॥

क्योंकि, असंज्ञियोंमें गुणस्थानके परिवर्तनका अभाव है ।

इस प्रकार संज्ञीमार्गणा समाप्त हुई ।

सत्योपमागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्तरोऽयं सागरोपमशतपृथक्त्वम् । असयततम्यदृष्टयायमचानानां नानाजीवपेक्षया
नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्तरोऽयं सागरोपमशतपृथक्त्वम् । चतुर्णां पुपशमकानां नानाजीवा-
पेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्तरोऽयं सागरोपमशतपृथक्त्वम् । स सि १, ८.

१ चतुर्णां क्षपकानां सामान्यवत् । स सि १, ८.

२ अमक्षिनां नानाजीवपेक्षयैकजीवपेक्षया च नास्त्यन्तरम् । स सि १, ८

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठीणमोघं ॥ ३८४ ॥

सुगममेदं ।

सासनसम्मादिट्ठि-सम्मादिट्ठिणमंतरं केवचिरं कालदो
होदि, पाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥ ३८५ ॥

एदं पि सुगमं ।

एराजीवं पडुच्च जहणेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो,
अंतोमुहुत्तं ॥ ३८६ ॥

एदं पि अगमयत्ये ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ
ओसपिणि-उस्सापिणीओ ॥ ३८७ ॥

तं जहा-एक्को सामणद्दाए दो समया अत्थि ति कालं गदो । एगविगहं

आहारमार्गणोके अनुदासे आहारक जीवोमं मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर ओघके
ममानं ह ॥ ३८४ ॥

यह मूल सुगम है ।

आहारक सामादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने
होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ ३८५ ॥

यह मूल भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असं-
ख्याता भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३८६ ॥

इस सूत्रका अर्थ ज्ञात है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्याता-
उत्तमर्षिणी और अवसर्पिणी काल है ॥ ३८७ ॥

नेमि-एक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सासादनगुणस्थानके कालमें दो समय

१ भाग्यपुराणे आहारए भिगाए गगान्यत् । स पि १, ८.

२ गगान्यत्तम्यग्दृष्टिमन्मिथ्यादृष्टीर्नानाजीवपेक्षया सामान्यम् । स पि १, ८

३ एतन्वी भूति जप्येन पन्नोपमानस्येयमाणोन्तर्मुहूर्तस्य । स पि १, ८

४ उत्तमर्षिणी आहारस्येयमाणा अतर्पेया उत्तमर्षिण्यमर्षिण्य । स पि. १, ८

कादूण विदियसमए आहारी होदूण तदियसमए मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो । असंखेज्जा-
संखेज्जाओ ओसापिणि-उस्सापिणीओ परिभमिय अंतोमुहुत्तावसेसे आहारकाले उवसम-
सम्मत्तं पडिवणो । एगसमयावसेसे आहारकाले सासनं गंतूण विगहं गदो । दोहि
समएहि ऊणो आहारकस्सकालो सासनुक्कस्संतरं ।

एको अट्ठानीसंतकाम्मिओ निगहं कादूण देवेसुनणो । छहि पज्जत्तोहि
पज्जत्तयदो (१) निस्सतो (२) विसुदो (३) सम्माभिच्छत्तं पडिवणो (४) ।
मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो । अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं परिभमिय सम्माभिच्छत्तं पडिवणो
(५) । लद्धमंतरं । तदो सम्मत्तेण वा मिच्छत्तेण वा अंतोमुहुत्तमच्छिदूण (६) विगहं
गदो । छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणओ आहारकालो सम्माभिच्छादिट्ठिस्स उक्कस्संतरं ।

असंजदसम्मादिट्ठिपहुडि जाव अपमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं
कालदो होदि, पाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३८८ ॥

सुगममेदं ।

अवशिष्ट रहने पर मरणको प्राप्त हुआ । एक विग्रह (मोड़ा) करके छितीय समयमें
आहारक होकर और तीसरे समयमें मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ । असं-
ख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों तक परिश्रमणकर आहारककालमें
अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुनः आहारककालके एक
समयमात्र अवशिष्ट रहने पर सासादनको जाकर विग्रहको प्राप्त हुआ । इस प्रकार दो
समयोंसे कम आहारकता उत्कृष्ट काल ही आहारक सासादनसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट
अन्तर होता है ।

मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सरावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह करके
देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्यक्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३)
सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (४) और मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ ।
अंगुलके असंख्यातवें भाग कालप्रमाण परिश्रमण कर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (५) ।
इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया । पीछे सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्वके साथ अन्तर्मुहूर्त रह
कर (६) विग्रहगतिको प्राप्त हुआ । इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम आहारककाल
ही आहारक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अग्रमत्तसंयत गुणस्थान तक आहारक जीवोंका अन्तर
कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३८८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ असंयतसम्यग्दृष्टयधमचान्ताना नानाजीवपेक्षया नास्त्यन्तरम् । म पि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहणणेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३८९ ॥

कुदो ? गुणंतरं गंतूण सव्वजहणकालेण पुणो अपिपदगुणपडिवणस्स जहण्णा-
तरल्लंसा ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ ओस-
पिणि-उस्सपिणीओ ॥ ३९० ॥

असंजदस्समादिद्विस्स उच्चदे- एकको अट्ठावीससंतकम्मिओ विगहं कादूण देवसुववणो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवणो (४) । मिच्छत्तं गंतूणतरिदो अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं परिभमिय अंतो उवसम-
सम्मत्तं पडिवणो (५) । लद्धमंतरं । उवसमसम्मत्तद्वाए छाविलयावसेसाए सासणं गंतूण विगहं गदो । पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणओ आहारकालो उक्कस्संतरं ।

उक्त जीवोका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३८९ ॥

क्योंकि, विवक्षित गुणस्थानसे अन्य गुणस्थानको जाकर और सर्वजघन्य कालसे लौटकर पुनः अपने विवक्षित गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके जघन्य अन्तर पाया जाता है ।

उक्त असंयतादि चार गुणस्थानवर्ती आहारक जीवोका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसरिणी और उत्सर्पिणी काल है ॥ ३९० ॥

आहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह करके देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४) । पीछे मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ और अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक परिभ्रमण करके अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (५) । इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया । पुनः उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशिष्ट रह जाने पर सासादनमें जाकर विग्रहको प्राप्त हुआ । इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम आहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

१ एकजीव प्रति जघनेनान्तर्मुहूर्त । स सि १, ८

२ जन्तेयेणुल्लासखेयमाणा असखेया उत्सर्पिण्यवसरिणि । स सि १, ८

संजदासंजदस्स उच्चदे- एकको अट्ठावीससंतकम्मिओ विगहं कादूण सममु-
च्छिमेसु उववणो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं संजमासंजमं च समगं पडिवणो (४) । मिच्छत्तं गंतूणतरिदो अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं परिभमिय अंतो पढमसम्मत्तं संजमासंजमं च समगं पडिवणो (५) । लद्धमंतरं । उवसमसम्मत्तद्वाए छाविलयावसेसाए सासणं गंतूण विगहं गदो । पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणओ आहारकालो उक्कस्संतरं ।

पमत्तस्स उच्चदे- एकको अट्ठावीससंतकम्मिओ विगहं कादूण मणुसेसुववणो । गन्भादिअट्ठवस्सेहि अप्पमत्तो (१) पमत्तो होदूण (२) मिच्छत्तं गंतूणतरिदो । अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं परिभमिय अंतो पमत्तो जादो । लद्धमंतरं (३) । कालं कादूण विगहं गदो । तिहि अंतोमुहुत्तेहि अट्ठवस्सेहि य ऊणओ आहारकालो उक्कस्संतरं ।

अप्पमत्तस्स एवं चेव । णवरि अप्पमत्तो (१) पमत्तो होदूण अंतरिदो समद्विदि परिभमिय अप्पमत्तो होदूण (२) पुणो पमत्तो जादो (३) । कालं करिय विगहं

आहारक संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह करके पंचेन्द्रिय सममूर्च्छिभूमिमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्व और समयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (४) । पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक परिभ्रमणकर अन्तमें प्रथमोपशम-सम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (५) । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । पश्चात् उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रहते पर सासादनको जाकर विग्रहको प्राप्त हुआ । इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम आहारककाल ही आहारक संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर है ।

आहारक प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक जीव विग्रह करके मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भको आदि ले आठ वर्षोंसे अप्रमत्तसंयत (१) और प्रमत्तसंयत हो (२) मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ । अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक परिभ्रमण करके अन्तमें प्रमत्तसंयत होगया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (३) । पश्चात् मरण करके विग्रहगतिको प्राप्त हुआ । इस प्रकार तीन अन्तर्मुहूर्त और आठ वर्षोंसे कम आहारककाल ही आहारक प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर है ।

आहारक अप्रमत्तसंयतका भी अन्तर इसी प्रकार है । विशेषतया यह है कि अप्रमत्त-संयत जीव (१) प्रमत्तसंयत होकर अन्तरको प्राप्त हो अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर अप्रमत्तसंयत हो (२) पुनः प्रमत्तसंयत हुआ (३) । पश्चात् मरण करके विग्रहको प्राप्त

गदो । निदि अंतोमुहुत्तेहि ऊगओ आहारकालो उक्कस्संतरं ।

चटुण्हमुवसामगणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं

पडुच्च ओघमंगो' ॥ ३११ ॥

सुगममेदं, चटुमो उच्चचादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं' ॥ ३१२ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ
ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ' ॥ ३१३ ॥

तं जहा- एत्थो अट्ठावीमसंतत्तम्मिओ विग्गहं कादूण मणुसेसुवण्णो । अट्ठ-
वस्सिओ सम्मचं अपमत्तभावणेण संजमं च समगं पडिवण्णो (१) । अणंताणुबंधी विसंजोए-
रूण (२) दंयणमोहणीयपुरमाप्पिय (३) पमत्तापमत्तपरावत्तहस्सं कादूण (४) तदो
अपुच्चो (५) अपिपट्ठी (६) सुहुमो (७) उवमत्तो (८) पुणो वि परिवडमाणो

पुत्ता । इस प्रकार तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम आहारककाल ही आहारक अप्रमत्तसंयतका
उत्कृष्ट अन्तर है ।

आहारक चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी
ओपक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ ३११ ॥

या सूर सुगम है, स्वोक्ति, इसका अर्थ पहले बहुत बार कहा जा चुका है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी ओपक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१२ ॥

या सूर भी सुगम है ।

आहारक चारों उपशामकोंका एक जीवकी ओपक्षा उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके
असंख्यतों भागप्रमाण अमंख्यतामंख्यता उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी है ॥ ३१३ ॥

मोक्षरूपकी अद्वारंग प्रकृतियोंकी सत्तावादा एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह करके
मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । आठ वर्षका होकर सम्यग्भवको ओर अप्रमत्तभावके साथ संयमको
पक्ष साथ प्राप्त हुआ (१) । पुन अनन्तानुवर्त्तिका विसंयोजन करके (२) दर्शनमोह-
नीयता उपशमनकर (३) प्रमत्त ओर अप्रमत्त गुणस्थानसम्यन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको
करके (४) पञ्चात् अपूर्णरूप (५) अनिवृत्तिकरण (६) सूक्ष्मसाम्पराय (७) और उप-

१ चतुर्चासुद्धम रानो नानाजीवोपेक्षया एकजीवोपेक्षया च नास्त्यन्तरम् । म. सि. १, ८

२ एवमीदं धीं चत्तरेनान्तर्मुहूर्तः । म. सि. १, ८.

३ उक्तो नानाजघन्यभागा अणक्केणगहणेण कन्वर्पिण्यवसर्पिण्य । म. सि. १, ८

सुहुमो (९) अपिपट्ठी (१०) अपुच्चो जादो (११) । हेड्डा ओदरिदण्णतरिदो अंगुलस्स
असंखेज्जदिभागं परिभमिय अंते अपुच्चो जादो । लद्धमंतरं । तदो णिदा-पयलाणं बंधे
चोच्छिण्णे मरिय विग्गहं गदो । अट्ठवस्सेहि वारस्सअंतोमुहुत्तेहि य ऊगओ आहारकालो
उक्कस्संतरं । एवं चेव तिण्हमुवसामगणं । णवरि दस णव अट्ठ अंतोमुहुत्ता समयहिंया
ऊणा कादच्चा ।

चटुण्हं खवाणमोवं' ॥ ३१४ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली ओघं' ॥ ३१५ ॥

एदं पि सुगमं ।

अणाहारा' कम्मइयकायजोगिभंगो' ॥ ३१६ ॥

शान्तकयाय होकर (८) फिर भी गिरता हुआ सूक्ष्मसाम्पराय (९) अनिवृत्तिकरण (१०)
और अपूर्वकरण हुआ (११) । पुनः नीचे उतरकर अन्तरको प्राप्त हो अंगुलके असंख्यतवें
भाग कालप्रमाण परिधमणकर अन्तमें अपूर्वकरण उपशामक हुआ । इस प्रकार अन्तर
लब्ध हुआ । तत्पश्चात् निद्रा ओर प्रचला, इन दोनों प्रकृतियोंके वधसे व्युत्किञ्चन होनेपर
मरकर विग्रहको प्राप्त हुआ । इस प्रकार आठ वर्ष और बारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम आहारक-
काल ही अपूर्वकरण उपशामकका उत्कृष्ट अन्तर है । इसी प्रकार शेष तीनों उपशामकोंका
भी अन्तर कहना चाहिए । विशेषता यह है कि आहारककालमें अनिवृत्तिकरण उप-
शामकके दश, सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकके नौ और उपशान्तकपाय उपशामकके आठ
अन्तर्मुहूर्त और एक समय कम करना चाहिए ।

आहारक चारों धपकोका अन्तर ओघके समान है ॥ ३१४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारक सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ३१५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अनाहारक जीवोंका अन्तर कर्मणकाययोगियोंके समान है ॥ ३१६ ॥

१ चतुर्णां धपराणां सयोगिकेवलिना च मामान्यतम् । स. सि. १, ८.

२ प्रतियु 'अणाहार' इति पाठ ।

३ अनाहाररेणु मियाद्वेनानाजीवोपेक्षया एकजीवोपेक्षया च नास्त्यन्तरम् । सासादनसम्यग्दृष्टेनानाजीवा-
पेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्तरेण पयोपमामर्येणमात्रम् । एकजीवः प्रति नास्त्यन्तरम् । अमयतसम्यग्दृष्टेनाना-
जीवोपेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्तरेण मासपृथक्त्वम् । एकजीवः प्रति नास्त्यन्तरम् । सयोगिकेवलिना नाना-
जीवोपेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्तरेण वर्षपृथक्त्वम् । एकजीवः प्रति नास्त्यन्तरम् । म. सि. १, ८.

मिच्छादिद्विणीं गाणेगजीवं पडुच्च अंतराभावेण, सासणसम्मदिद्विणीं गाणाजीवं पडुच्च एगसमयपलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागजहणुक्कस्संतरेहि य, एगजीवं पडुच्च अंतराभावेण य, असंजदसम्मदिद्विणीं गाणाजीवं पडुच्च एगसमय-मासपुधत्तरेहि य, एगजीवं पडुच्च अंतराभावेण य, सजोगिकेवलीं गाणाजीवं पडुच्च एगसमय-वासपुधत्त-जहणुक्कस्संतरेहि य, एगजीवं पडुच्च अंतराभावेण य दोण्हं साधम्मवुलंभादो ।

विसेसपटुप्पायणद्वुत्तरसुत्तं भणदि-

णवरि विसेसा, अजोगिकेवली ओधं ॥ ३९७ ॥

सुगममेदं ।

(एव आहारसगणा समत्ता ।)

एवमंतराणुगमो ति समत्तमणिओगहारं ।

क्योंकि, मिथ्यादृष्टियोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे सात्तादनसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पल्यो-पमका असंख्यतवां भाग अन्तरेसे, तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, असंयतसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट मास पृथक्त्व अन्तरोंके द्वारा, और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, सयोगिके-वलियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट वर्णपृथक्त्व अन्तरसे, तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे दोनोंमें समानता पाई जाती है ।

अनाहारक जीवोंमें विशेषता प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं-

किन्तु विशेषता यह है कि अनाहारक अयोगिकेवलीका अन्तर ओधके समान है ॥ ३९७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार आहारमार्गणा समान्त हुई ।

इस प्रकार अन्तरानुगम अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

१ अयोगिकेवलियों नानाजीवपेक्षया जघन्यैकः समयः । उत्कर्षेण पण्णालाः । एकजीव प्रति नास्त्य-न्तस्य । स. सि १, ८.

२ अन्तमवगतम् । स सि १, ८

भारत

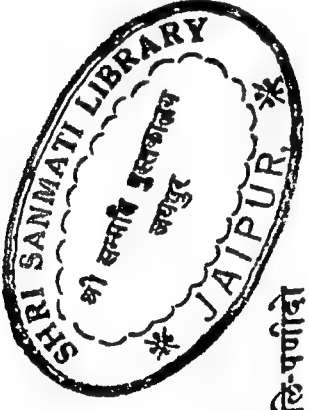
भावो । तस्य द्रव्यभावो दुविहो आगम-गोआगमभेएण । भावपाहुडजाणओ अणुव-
जुवो आगमद्रव्यभावो होदि । जो गोआगमद्रव्यभावो सो तिविहो जाणुगसरीर-भवि-
तव्वदिरित्थेएण । तस्य गोआगमजाणुगसरीरद्रव्यभावो तिविहो भवि-नडुमाण-समुज्झाद-
भेएण । भावपाहुडपज्जायपरिणदजीवस्स आहारो जं होसदि सरीरं तं भविंयं गाम ।
भावपाहुडपज्जायपरिणदजीव जमेगीभूदं सरीरं तं वडुमाणं गाम । भावपाहुडपज्जाएण
परिणदजीवण एगत्तमुवणमिय जं पुधभूदं सरीरं तं समुज्झादं गाम । भावपाहुडपज्जाय-
सरूवेण जो जीवो परिणमिस्सदि सो गोआगमभविद्व्यभावो गाम । तव्वदिरित्त-
गोआगमद्रव्यभावो तिविहो सचिच्चचित्त-मिस्सभेएण । तस्य सचित्तो जीवद्वं । अचित्तो
पोगल-धम्मधम्म-कालागासद्ववाणि । पोगल-जीवद्ववाणं संजोगो कंधंवि जच्चतरत्तमा-
वणो गोआगममिस्सद्व्यभावो गाम । कंधं द्रव्यस्स भावव्वएसो ? ण, भवन्नं भावः,
भूतिर्वा भाव इति भावमहस्स विउप्पत्तिअवलंणादो । जो भावभावो सो दुविहो आगम-
गोआगमभेएण । भावपाहुडजाणओ उवजुत्तो आगमभावभावो गाम । गोआगमभावभावो
पंचविहं ओदइओ ओवसमिओ खइओ खओवसमिओ पारिणामिओ चेदि । तस्य कम्मोदय-

नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है । भावप्राभृतक्षायक किन्तु वर्तमानमे अनुपयुक्त जीव
आगमद्रव्यभाव कहलाता है । जो नोआगमद्रव्य भावनिक्षेप है वह क्षायकशरीर, भव्य
और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकार होता है । उनमे नोआगमक्षायकशरीर द्रव्यभाव-
निक्षेप भव्य, वर्तमान और समुल्लिखितके भेदसे तीन प्रकारका है । भावप्राभृतपर्यायसे
परिणत जीवका जो शरीर आधार होगा, वह भव्यशरीर है । भावप्राभृतपर्यायसे परि-
णत जीवके साथ जो एकीभूत शरीर है, वह वर्तमानशरीर है । भावप्राभृतपर्यायसे परि-
णत जीवके साथ एकत्वको प्राप्त होकर जो पृथक् हुआ शरीर है वह समुल्लिखितशरीर है ।
भावप्राभृतपर्यायस्वरूपसे जो जीव परिणत होगा, वह नोआगमभव्यद्रव्य भावनिक्षेप है ।
तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्य भावनिक्षेप, सचित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन
प्रकारका है । उनमें जीवद्रव्य सचित्तभाव है । पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, काल
और आकाश द्रव्य अचित्तभाव है । कथंचित् जाल्यन्तर भावको प्राप्त पुद्गल और जीव
द्रव्योंका संयोग नोआगमभिश्रद्रव्य भावनिक्षेप है ।

शृंक्षा—द्रव्यके 'भाव' ऐसा व्यपदेश कैसे हो सकता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, 'भवन्नं भाव.' अथवा 'भूतिर्वा भाव' इस प्रकार
भावशब्दकी व्युत्पत्तिके अवलम्बनसे द्रव्यके भी 'भाव' ऐसा व्यपदेश वन जाता है ।

जो भावनामक भावनिक्षेप है, वह आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका
है । भाव प्राभृतका क्षायक और उपयुक्त जीव आगमभावनामक भावनिक्षेप है । नोआगम-
भाव भावनिक्षेप औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिकके भेदसे



सिरि-भगवंत-पुष्पदंत-भूदयलि-पणीदो

छवखंडागमो

सिरि-धीरसेणाहरिय-विरइय-धवला-टीका-समणिदे

तस्स

पढमखंडे जीवट्टाणे

भावाणुगमो

अवगयअसुद्धभावे उवगयकम्मखडउच्चउब्भवे ।

पणमिय सव्वरहते भावणिओगं परूवेमो ॥

भावाणुगमेण दुविहो णिंदसो, ओवेण आदेसेण यं ॥ १ ॥

णाम-द्वयणा-द्रव्य-भावो ति चउव्विहो भावो । भावसदो वज्झत्थणिरवेक्खो
अप्पाणग्धि चैव पयडो णामभावो होदि । तस्य उवणभावो सन्भावसन्भावभेएण दुविहो ।
विराग-सरागादिभावे अणुहरती उवणा सन्भावद्वयणभावो । तव्विवरीदो असन्भावद्वयण-

अशुद्ध भावोंसे रहित, कर्मक्षयसे प्राप्त हुए हैं चार अनन्तभाव जिनको, ऐसे
सर्व अरहंतोंको प्रणाम करके भावायुयोगद्वाराका प्ररूपण करते हैं ।

भावाणुगमद्वारकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेश-
निर्देश ॥ १ ॥

नाम, स्थापना, द्रव्य और भावकी अपेक्षा भाव चार प्रकारका है । वाह्य अर्थसे
निरपेक्ष अपने आपमें प्रवृत्त 'भाव' यह शब्द नामभावनिक्षेप है । उन चार निक्षेपोंमेंसे
स्थापनाभावनिक्षेप, सद्भाव और असद्भावके भेदसे दो प्रकारका है । उनमेंसे विरागी
और सरागी आदि भावोंका अनुकरण करनेवाली स्थापना सद्भावस्थापना भावनिक्षेप
है । उससे विपरीत असद्भावस्थापना भावनिक्षेप है । द्रव्यभावनिक्षेप आगम और

चण्डिदो भागं ओदुदुओ गाम । रुमुसमेण समुवूदो ओवममिओ गाम । कम्मणं नोण पवडीभूदुजीगो गइओ गाम । रुमोदए संते नि जं जीनमुणभूदंमुवलंभेदि सो नओवममिओ भागे गाम । जो चउहि भवेहि पुन्नुचेहि चडिदिओ जीवाजविगओ मो पारिणामिओ गाम' (५) ।

परंतु चट्टुसु भागेंसु केण भावेण अहियागे ? पोआगममानसोणे । तं कथं गणोरे ? गामाटियेभभोदि चोदसजीवमसामणपभूदेदि इह पओजणाभागा । निब्बिण चेप इह गिसंगेग होतु, गाम-हुवणाणं विसंगाभावो ? ग, गामे गामवत-दुवज्जारोणियमाभादो, गामस्स हुवणणियमाभागा, हुवणाए इव आयराणुगहाणम-पांन प्रकारका हे । उनमेंने कर्मोदयजनित भावना नाम ओदयिक हं । कर्मणि उपशमसे उन्नत भूए मत्तका नाम ओपजमिक हे । कर्मोत्ति श्रयसे प्रकट होनेवाला जीवका भाव शायिक हे । हमोंने उदय गेते गुण भी जो जीवगुणका सड (अश) उपलब्ध रहता है, गर शायोपशमिकभार ए । जो पूर्तक चारों भावोंसे व्यतिरिक्त जीव और अजीवगत भाव है, तत् पारिणामित भाव है ।

अंका—उक्त चार निश्चेपत्तु भावोंमेंसे यहा पर किल भावसे अधिकार या प्रयोजन हे ?

समाधान—यहा नोधानमभावभवसे अधिकार हे ।

अंका—यत् केने जाना जाता हे ?

समाधान—चोदत जीनसमासोंके लिए अनात्मभूत नामादि शेष भावनिश्चेपोंसे यहाँ पर कोई प्रयोजन नहीं है, इसीसे जाना जाता है कि यहाँ नोआगमभाव भाव-निर्वाणते ही प्रयोजन हे ।

अंका—यहाँ पर तीन ही निश्चेप होना चाहिए, क्योंकि, नाम और स्थापनामें कोई विशेषता नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, नामनिश्चेपमें नामवत द्रव्यके अध्यारोपका कोई निरूप नहीं है इसलिये, तथा नामवाली वस्तुकी स्थापना होती ही चाहिए, ऐसा कोई निरूप नहीं है इसलिये, एवं स्थापनाके समान नामनिश्चेपमें आदर और अनुग्रहका भी

१ गीय 'जागता नउ-' इति पाठः ।

२ समुत्तममि उगममागो गीगमि गइगामो इ । उदयो जीवस गुणो सजीवममिओ हवे मागो ॥ समुत्तममिओ जीवगिगो तय होदि मागो इ । गाल्पिरोसमो समावियो होदि परिणामो ॥

गो - ८१६८५५

३ श्रमिपु 'आगता' इति पाठ ।

भावदो च' । भणिदं च—

अप्पिआदरगतो अणुगहयावो य धम्मभागे ।
ठवणाए कीरते ग होति गाममि एए दु ॥ १ ॥
णामिणि धमुवयो गाम हुवणा ग जस्स त ठदि ।
तहमे ग नि जादो गुणम-उगणममिभिस ॥ २ ॥

तन्हा चउडिहो चैव गिहखेवो चि सिदं । तत्थ पंचसु भागेसु केण भावेण इह पओजणं ? पंचहि मि । कुदो ? जीनेसु पंचभावाणमुवलंभा । ग च सेसदवेसु पंच भावा अत्थि, पेगलदवेसु ओदइय-पारिणामियाणं दोणं चैव भावाणमुवलंभा, धम्म-कालागासदवेसु एवकस्स पारिणामियभावसेवुवलंभा । भावो गाम जीवपरिणामो तिग-मंदगिज्जरा नावादित्थेण अणेयपयो । तत्थ तिग-मंदभावो गाम—

समनुणचीय वि सावयविदे अणत्तकमसे ।
दसणमोहखवए कसायउवसाए य उवसेते ॥ ३ ॥
खवए य खीणमोहे जिये य गियमा भये असलेज्जा ।
तोविवरीदो कोलो सखेज्जगुणए सेडोए ॥ ४ ॥

अभाव है, इसलिये दोनो निश्चेपोंमें भेद है ही । कहा भी है—

विवक्षित वस्तुके प्रति आदरभान, अनुग्रहभाव और धर्मभाव स्थापनामें क्रिया जाता है । किन्तु ये बातें नामनिश्चेपमें नहीं होती हैं ॥ १ ॥

नामप धर्मका उपचार करना नामनिश्चेप है, और जहाँ उस धर्मकी स्थापना की जाती है, वहाँ स्थापनानिश्चेप है । इस प्रकार धर्मके विषयमें भी नाम और स्थापनाकी अविशेषता अर्थात् एकता सिद्ध नहीं होती ॥ २ ॥

इसलिये निश्चेप चार प्रकारका ही है, यह बात सिद्ध हुई ।

अंका—पूर्वोक्त पांच भावोंमेंसे यहाँ किस भावसे प्रयोजन हे ?

समाधान—पांचों ही भावोंसे प्रयोजन हे, क्योंकि, जीवोंमें पांचों भाव पाये जाते हैं । किन्तु शेष द्रव्योंमें तो पांच भाव नहीं हैं, क्योंकि, पुद्गल द्रव्योंमें औदयिक और परिणामिक, इन दोनों ही भावोंको उपलब्धि होती है, और धर्मोत्तिराय अचरमीस्ति-फाय, आकाश और काल द्रव्योंमें केवल एक पारिणामिक भाव ही पाया जाता है ।

अंका—भाजनाम जीवके परिणामका है, जो कि तीन, अर्ध निर्जराभाव आदिके रूपसे अनेक प्रकारका है । उनमें तीव्र मंदभाव नाम है—

सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें, श्रावकमें, विरतमें, अनन्तानुवन्धी कणायके विमंयोजनमें, दर्शनमोहके श्रपणमें, कणायोंके उपशमकोंमें, उपशान्तरूपयमें, श्रपकोंमें, क्षीणमोहमें, और जिन भगवान्में नियमसे असंख्यातगुणीनिर्जरा होती है । किन्तु कालका प्रमाण उक्त गुणश्रेणी निर्जरामें संख्यात गुणश्रेणी क्रमसे विपरित अर्थात् उत्तरोत्तर हीन है ॥३-४॥

१ नामस्थापनयोरेत्तल, सब्बाम्भविशेयादिति चेत्, आदरानुग्रहादंशिला स्थापनायाए । त. ग. वा १, ५.

२ गो जी ६६-६७.

१, ७, १.]

छन्दोगमे जीवद्वाणं

[१८७]

एदेसिं सुदुहिदपरिणामाणं परिसापरिसित्तं तिन्व-मंदभावो गाम । एदेहि चैव परिणामेहि असखेज्जगुणाए सेडीए कम्मसडणं कम्मसडणजणिदजीवपरिणामो वा णिज्जराभावो गाम । तम्हा पंचव जीवभावा इदि णियमो ण जुज्जेदो ? ण एस दोसो, जदि जीवादिदव्वादो तिन्व-मंददिभावा अभिण्णा होति, तो ण तेसिं पंचभावेसु अंतवभावो, दव्वत्तादो । अह भेदो अवलंबेज्ज, पंचण्हमणदरो होज्ज, एदेहितो पुथभूदछड्ढावाणु-वलंभा । भणिंदं च-

ओदइओ उवसमिओ खइओ तह वि य खओवसमिओ य ।

परिणामिओ दु भावो उदएण दु पोगलण तु ॥ ५ ॥

भावो गाम किं ? दव्वपरिणामो पुन्नावरकोडिविदिरित्तवट्टमाणपरिणामुवलंखिय-दव्वं वा । कस्स भावो ? छण्हं दव्वणं । अथवा ण कस्सइ, परिणामि-परिणामाणं

इन सूत्रोद्विष्ट परिणामोकी प्रकर्यताका नाम तीवभाव और अप्रकर्यताका नाम मंदभाव है । इन्ही परिणामोके द्वारा असख्यत गुणश्रेणीरूपसे कर्मोका श्ररणा, अथवा कर्म-श्ररसे उत्पन्न हुए जीवके परिणामोको निर्जराभाव कहते हैं । इसलिय पंच ही जीवके भाव हैं, यह नियम युक्तिसंगत नहीं है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यदि जीवादि द्रव्यसे तीव्र, मंद आदि भाव अभिन्न होते हैं, तो उनका पंच भावोमे अन्तर्भाव नहीं होता है, क्योंकि, वे स्वयं द्रव्य ही जाते हैं । अथवा, यदि भेद माना जाय, तो पाँचों भावोमेसे कोई एक होना, क्योंकि, इन पांच भावोसे पृथग्भूत छठा भाव नहीं पाया जाता है । कहा भी है—

औदयिकभाव, औपशमिकभाव, क्षायिकभाव, क्षायोपशमिकभाव और पारिणामिकभाव, ये पांच भाव होते हैं । इनमें पुद्गलके उदयसे (औदयिकभाव) होता है ॥५॥

(अब निर्देश, स्वामित्व आदि प्रसिद्ध छह अनुयोगद्वारासे भावनामक पदार्थका निर्णय किया जाता है—)

शंका—भाव नाम किस वस्तुका है ?

समाधान—द्रव्यके परिणामको अथवा पूर्वापर कोटिसे व्यतिरिक्त वर्तमान पर्यायसे उपलक्षित द्रव्यको भाव कहते हैं ।

शंका—भाव किसेक होता है, अर्थात् भावका स्वामी कौन है ?

समाधान—छहों द्रव्योंके भाव होता है, अर्थात् भावोके स्वामी छहों द्रव्य हैं । अथवा, किसी भी द्रव्यके भाव नहीं होता है, क्योंकि, पारिणामी और पारिणामके सग्रह-

१८८]

भावाणुगमे णिदिसपरुवणं

[१, ७, १-

संगहणयादो भेदाभावा । केण भावो ? कम्माणमुदएण खएण खओवसमेण कम्माणमुवसमेण सभावदो वा । तत्थ जीवदव्वस्स भावा उचपंचकारणेहिंतो होति । पोगलदव्वभावा पुण कम्मोदएण विस्सदादो वा उप्पज्जंति । सेसाणं चटुण्ह दव्वणं भावा सहावदो उप्पज्जंति । कत्थ भावो ? दव्वमिह चैव, गुणिव्वदिरेगेण गुणाणमसंभवा । केवचिरो भावो ? अणादियो अपज्जविसिदो जहा—अभव्वाणमसिद्धा, धम्मत्थिअस्स गमणहेदुत्तं, अधम्मत्थिअस्स णिदिहेउत्तं, आगासस्स ओगाहणलक्खणत्तं, कालदव्वस्स परिणामहेदुत्तमिच्चादि । अणादियो सपज्जविसिदो जहा—भवस्स असिद्धदा भवत्तं मिच्छत्तमसंजमो इच्चादि । सादियो अपज्जविसिदो जहा—केवलणाणं केवलदंसणमिच्चादि । सादियो सपज्जविसिदो जहा—सम्मत्तंसंजमपच्छायदानं मिच्छत्तासंजमा इच्चादि । कदिविधो भावो ? ओदइओ उवसमिओ खइओ खओवसमिओ पारिणामिओ ति पंचविहो । तत्थ जो सो ओदइओ जीवदव्वभावो नयसे कोई भेद नहीं है ।

शंका—भाव किससे होता है, अर्थात् भावका साधन क्या है ?

समाधान—भाव, कर्मोके उदयसे, क्षयसे, क्षयोपशमसे, कर्मोके उपशमसे, अथवा स्वभावसे होता है । उनमेंसे जीवद्रव्यके भाव उक्त पाँचों ही कारणोसे होते हैं, किन्तु पुद्गलद्रव्यके भाव कर्मोके उदयसे, अथवा स्वभावसे उत्पन्न होते हैं । तथा शेष चार द्रव्योंके भाव स्वभावसे ही उत्पन्न होते हैं ।

शंका—भाव कहाँ पर होता है, अर्थात् भावका अधिकरण क्या है ?

समाधान—भाव द्रव्यमें ही होता है, क्योंकि गुणोके विना गुणोका रहना असम्भव है ।

शंका—भाव कितने काल तक होता है ?

समाधान—भाव अनादि-निधन है । जैसे—अभव्यजीवोके असिद्धता, धर्मास्ति-कायके गमनहेतुता, अधर्मास्तिकायके स्थितिहेतुता, आकाशद्रव्यके अवगाहनस्वरूपता, और कालद्रव्यके परिणमनहेतुता, इत्यादि । अनादि-सान्तभाव, जैसे—भव्यजीवकी असिद्धता, भव्यत्व, मिथ्यात्व, असंयम, इत्यादि । सादि-अनन्तभाव जैसे—केवलज्ञान, केवलदर्शन, इत्यादि । सादि-सान्त भाव, जैसे—सम्यक्त्व और संयम धारणकर पछे आए हुए जीवोके मिथ्यात्व, असंयम इत्यादि ।

शंका—भाव कितने प्रकारका होता है ?

समाधान—औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिकके भेदसे भाव पांच प्रकारका है । उनमेंसे जो औदयिकभाव नामक जीवद्रव्यका भाव

१ औपशमिकभावो भावो मिश्र जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिपारिणामिकौ च । त ए २, १

मो ठाणदो अहुविहो, नियपदो एक्कवीमविहो। किं ठाणं ? उप्पत्तिहेऊ द्वाणं । उत्तं च-

गदि-ल्लिग-कनाया नि य मिच्छादसणमिद्धदण्णाण ।

त्तेन्ता असन्नो चिय होति उदयस्स द्वाणाड ॥ ६ ॥

मंपहि एदंति नियपो उच्चदे- गई चउव्विहो गिरय-तिरिय-गर-देवगई चेदि ।
लिंगमिदि तिनिहं ल्यी-पुरिम णंसयं चेदि । क्माओ चउव्विहो कोहो माणो माया लोहो
चेदि । मिच्छादयणमेयविहं । असिद्धत्तमेयविहं । किमसिद्धत्तं ? अहुक्कम्मोदयसामणं ।
अण्णाणमेयविहं । लेस्या छविह्वा । असंजमो एयविहो । एदे सवे वि एक्कवीस वियपा
होति' (२१) । पंचजादि-छसंठाण-छसंधउणादियोइया भावा कत्थ णिवदंति ? गदीए,
एदेमिमुदयस्स गदिउदयाणिणामाभिचादो । ण लिंगादीहि वियहिचारो, तत्थ तहविह-
मिक्कसामादाओ ।

हे, यह स्थानकी अपेक्षा आठ प्रकारका और विकल्पकी अपेक्षा इकोस प्रकारका है ।

ग्रंथा—स्थान क्या वस्तु है ?

समाधान—भावकी उत्पत्तिके कारणको स्थान कहते हैं । कहा भी है-

गति, लिंग, कपाय, सिध्यादर्शन, असिद्धत्व, अज्ञान, लेख्या और असंयम, ये
और्यिक भावके आठ स्थान होते हैं ॥ ६ ॥

अथ इन आठ स्थानोंके विकल्प कहते हैं । गति चार प्रकारकी है- नरकगति,
तिय्यगति, मनुष्यगति और देवगति । लिंग तीन प्रकारका है- खल्लिंग, पुरुषलिंग
और नपुंसकलिंग । कपाय चार प्रकारका है- कोथ, मान, माया और लोभ । सिध्यादर्शन
एक प्रकारका है । अभिद्धत्व एक प्रकारका है ।

ग्रंथा—असिद्धत्व क्या वस्तु है ?

समाधान—अष्ट कर्मोंके सामान्य उदयको असिद्धत्व कहते हैं ।

अज्ञान एक प्रकारका है । लेख्या छह प्रकारका है । असंयम एक प्रकारका है ।

इस प्रकार ये सत्र मिलकर ओदयिकभावके इकीस विकल्प होते हैं (२१) ।

ग्रंथा—पांच जातिया, छह सस्थान, छह संहनन आदि ओदयिकभाव कहाँ,
अर्थात् किस भावमें अन्तर्गत होते हैं ?

समाधान—उक्त जातियों आदिका गतिनामक ओदयिकभावमें अन्तर्भाव होता
है, क्योंकि, इन जाति, संस्थान आदिका उदय गतिनामकर्मके उदयका अविनाभावी है ।
इस व्ययस्वर्गमें लिंग, कपाय आदि ओदयिकभावोंसे भी व्यभिचार नहीं आता है, क्योंकि,
उन भावोंमें उस प्रकारकी विवक्षाका अभाव है ।

१ गतिग्रन्थादिभिगिरसंज्ञानामगतादिउल्लेखानुसृतस्वयैकेकेकस्सेवा । त ॥ २, ६

उवसमिओ भावो ठाणदो दुविहो । वियपदो अहुविहो । भणिदं च-

सम्मत्त चारितं दो चेय द्वाणाइमुसमे होति ।

अहुवियपा य तहा कोहार्हया मुणेदव्वा ॥ ७ ॥

ओवसमियस्स भावस्स सम्मत्तं चारितं चेदि दोणि द्वाणाणि' । कुदो ? उवसम-
सम्मत्तं उवसमचारितमिदि दोणं चे उवलंभा । उवसमसम्मत्तमेयविहं । ओवसमियं
चारितं सत्तविहं । तं जहा - णंसयवेदुवसामणद्धाए एयं चारितं, इत्थिवेदुवसामणद्धाए
विदियं, पुरिस-छण्णोक्कसायउवसामणद्धाए तदियं, कोहुवसामणद्धाए चउत्थं, माणुव-
सामणद्धाए पंचमं, माओवसामणद्धाए छहं, लोहुवसामणद्धाए सत्तममोवसमियं चारितं ।
भिण्णकज्जल्लिणेण कारणभेदिसिद्धीदो उवसमियं चारितं सत्तविहं उत्तं । अण्णाहा पुण
अण्यपयारं, समयं षडि उवसमसेडिंमिह पुथ पुथ असंखेज्जगुणसेडिणज्जराणिमित्त-
परिणामुवलंभा । खइओ भावो ठाणदो पंचविहो । वियपपादो णवविहो । भणिदं च-

ओपशमिकभावस्थानकी अपेक्षा दो प्रकार और विकल्पकी अपेक्षा आठ
प्रकारका है । कहा भी है-

ओपशमिकभावमें सम्यक्त्व और चारित्र ये दो ही स्थान होते हैं । तथा औप-
शमिकभावके विकल्प आठ होते हैं, जो कि क्रोधादि कपायोंके उपशमनरूप जानना
चाहिए ॥ ७ ॥

ओपशमिकभावके सम्यक्त्व और चारित्र, ये दो ही स्थान होते हैं, क्योंकि,
ओपशमिकसम्यक्त्व और औपशमिकचारित्र ये दो ही भाव पाये जाते हैं । इनमेंसे औप-
शमिकसम्यक्त्व एक प्रकारका है और औपशमिकचारित्र सात प्रकारका है । जैसे- नपुं-
सकवेदके उपशमनकालमें एक चारित्र, स्त्रीवेदके उपशमनकालमें दूसरा चारित्र, पुरुष-
वेद और छह नोकपायोंके उपशमनकालमें तीसरा चारित्र, क्रोधसंज्वलनमें उपशमन-
कालमें चौथा चारित्र, मानसंज्वलनके उपशमनकालमें पांचवां चारित्र, मायासंज्वलनके
उपशमनकालमें छठा चारित्र और लोभसंज्वलनके उपशमनकालमें सातवां औपशमिक-
चारित्र होता है । भिन्न-भिन्न कार्योंके लिंगसे कारणोंमें भी भेदकी सिद्धि होती है, इसलिय
ओपशमिकचारित्र सात प्रकारका कहा है । अन्यथा, अर्थात् उक्त प्रकारकी विवक्षा न की
जाय तो, वह अनेक प्रकारका है, क्योंकि, प्रति समय उपशमयणीमें पृथक् पृथक् असंख्यात-
गुणश्रेणी निर्जराके निमित्तभूत परिणाम पाये जाते हैं ।

स्वाधिकभाव स्थानकी अपेक्षा पांच प्रकारका है, और विकल्पकी अपेक्षा नौ
प्रकारका है । कहा भी है-

१ सम्यक्वचारित्रे । त. पृ. २, १.

लक्ष्मीओ सम्मत्त चारित्त दसण तहा णाण ।

ठाणाइ पच खइए भावे जिणभासियाइ तु ॥ ८ ॥

लक्ष्मी सम्मत्त चारित्तं णाणं दंसणमिदि पंच ठाणाणि । तत्थ लक्ष्मी पंच वियप्पा दाण-लाह-भोगुवभोग-वीरियमिदि । सम्मत्तमेयवियप्पं । चारित्तमेयवियप्पं । केवलण-मेयवियप्पं । केवलदंसणमेयवियप्पं । एवं खइओ भावो णववियप्पो । खओवसमिओ भावो ठाणो सत्तविहो । वियप्पदो अट्टारसविहो । भणित्तं च—

णाणणाण च तहा दसण-लक्ष्मी तेहव सम्मत्त ।

चारित्त देसजमो सत्तेव य होति ठाणाइ ॥ ९ ॥

णाणमणाणं दंसणं लक्ष्मी सम्मत्तं चारित्तं संजमासंजमो चेदि सत्त द्वाणाणि । तत्थ णाणं चउच्चिह मदि-सुद-ओधि-मणपज्जवणाणमिदि । केवलणं किण्ण गहिदं ? ण, तस्स खाइयभावादो । अणाणं तिविहं मदि-सुद-विहंगअणाणमिदि । दंसणं तिविहं चक्खु-अचक्खु-ओधिदंसणमिदि । केवलदंसण ण गहिदं । कुदो ? अप्पणो विरोहिक्कम्मस्स

दानादि लब्धियां, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, क्षायिक दर्शन, तथा क्षायिक ज्ञान, इस प्रकार क्षायिक भावमें जिन-भाषित पांच स्थान होते हैं ॥ ८ ॥

लब्धि, सम्यक्त्व, चारित्र, ज्ञान, दर्शन, ये पांच स्थान क्षायिकभावमें होते हैं । उनमें लब्धि पाच प्रकारकी है—क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उप-भोग, और क्षायिक वीर्य । क्षायिक सम्यक्त्व एक विकल्पात्मक है । क्षायिक चारित्र एक भेदरूप है । केवलज्ञान एक विकल्पात्मक है और केवलदर्शन एक विकल्परूप है । इस प्रकारसे क्षायिक भावके नौ भेद हैं । क्षायोपशमिकभाव स्थानकी अपेक्षा सात प्रकार और विकल्परूपकी अपेक्षा अठारह प्रकारका है । कहा भी है—

ज्ञान, अज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व, चारित्र और देशसंयम, ये सात स्थान क्षायोपशमिक भावमें होते हैं ॥ ९ ॥

ज्ञान, अज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व, चारित्र और संयमासंयम, ये सात स्थान क्षायोपशमिकभावके हैं । उनमें मति, श्रुत, अवधि और मन-पर्ययके भेदसे ज्ञान चार प्रकारका है ।

शंका—यहांपर ज्ञानोंमें केवलज्ञानका ग्रहण क्यों नहीं किया गया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वह क्षायिक भाव है ।

कुमति, कुश्रुत और विभगके भेदसे अज्ञान तीन प्रकारका है । चक्षु, अचक्षु और अवधिके भेदसे दर्शन तीन प्रकारका है । यहांपर दर्शनोंमें केवलदर्शनका ग्रहण नहीं

१ ज्ञानदर्शनदानलाममोगोमोमोवीर्याणि च । त सू २, ४

खएण समुत्तमभादो । लक्ष्मी पंचविहा दाणादिभेएण । सम्मत्तमेयविहं वेदगसम्मत्तचदिरैकेण अणसम्मत्तानमणुवलंभा । चारित्तमेयविहं, सामाइयछेदोवद्वान्ण-परिहारसुद्धिसंजम-विवस्खाभावा । संजमासंजमो एयविहो । एवमेदे सव्वे वि वियप्पा अट्टारस होति (१८) । पारिणामिओ तिविहो भव्वाभव्व-जीवत्तमिदि^१ । उचं च—

एय ठाण तिणिण वियप्पा तह पारिणामिए होति ।

भव्वाभव्वा जीवा अत्तवणदो^२ चेव वोद्धव्वा^३ ॥ १० ॥

एदेसि पुव्वुत्तभाववियप्पाणं संगहगाहा—

इगिवीस अह तह णव अट्टारस तिणिण चेव वोद्धव्वा ।

ओदइयादी भावा वियप्पदो आणुपुव्वीए^४ ॥ ११ ॥

किया गया है, क्योंकि, वह अपने विरोधी कर्मके क्षयसे उत्पन्न होता है । दानादिकके भेदसे लब्धि पांच प्रकारकी है । सम्यक्त्व एक प्रकारका है, क्योंकि, इस भावमें वेदक-सम्यक्त्वको छोड़कर अन्य सम्यक्त्वोंका अभाव है । चारित्र एक विकल्परूप ही है, क्योंकि, यहांपर सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धिसंयमकी विवक्षाका अभाव है । संयमासंयम एक भेदरूप है । इस प्रकार मिलकर ये सब विकल्प अठारह होते हैं (१८) । पारिणामिकभाव, भव्य, अभव्य और जीवत्वके भेदसे तीन प्रकारका है । कहा भी है—

पारिणामिकभावमें स्थान एक तथा भव्य, अभव्य और जीवत्वके भेदसे विकल्प तीन प्रकारके होते हैं । ये विकल्प आत्माके असाधारण भाव होनेसे ग्रहण किये गये जानना चाहिए ॥ १० ॥

इन पूर्वोक्त भावोंके विकल्पोंको वतलानेवाली यह संग्रह-गाथा है—
औदयिक आदि भाव विकल्पोंकी अपेक्षा आनुपूर्वीसे इकीस, आठ, नौ, अट्टारह और तीन भेदवाले हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥ ११ ॥

१ ज्ञानाज्ञानदर्शनलघयश्रुतिप्रचमेदा सम्यक्त्वचारित्रसमासयमात्र । त सू २, ५

२ जीवमव्याभव्यवानि च । त सू २, ७

३ अ स्मृत्यो 'अट्टवणदो' आपत्तौ 'अट्टवणदो' मप्रतौ 'अवणदो' सप्रतौ 'अवणदो' इति पाठ ।

४ असाधारणा जीवस्य भावा पारिणामिकास्त्रय एव । स ति २, ७ अन्यद्वयासाधारणास्त्रय पारिणामिका । $X \times X$ अस्तिवाद्योऽपि पारिणामिका, मात्रा सन्ति $X \times X$ सूने तेषां ग्रहण कस्मान् कृत ? अन्यद्वयासाधारणत्वाद्मृतिता । त रा वा २, ७

५ द्विनवाष्टादशैर्गतिविधेया यथाक्रमम् । त सू २, २

अथवा सणिपादिपुं पदुच छत्तीसभंग' । सणिपादिपुंति का सण्णा ? एकस्मिन् गुणद्वये जीवमभ्यासं वा वदन्तो भावा जस्मिन् सणिपदंति तेसिं भावाणं सणिपादिपुंति सण्णा । एतद्-दु-ति-नदु-पंचमंजोगेण भंगा परुचिज्जंति । एतसंजोगेण जथा- ओदइओ ओदइओ ति ' मिच्छादिद्वि अमंजदो य ' । दंमणमोहणीयस्म उदएण मिच्छादिद्वि ति भावो, अमंजदो ति मंजवचादीणं कस्माणमुदएण । एदएण कमेण मन्वे नियप्पा परुवेदव्वा । एतद्-गुचगादा-

एतत्तणपददुओ रूपोभोजित च पददुद्वेः ।

मच्छः सपानफल समाहत. सनिपातफळ' ॥ १२ ॥

एतस्म भावस्मा अणुगमो भावाणुगमो । तेण दुविहो णिहेसो, ओघेण संगहिदो, आदेयेण अमंगहिदो ति णिहेसो दुविहो होदि, तदियस्स णिहेसस्स संभवाभावा ।

अथवा. सानिपातिकी अथवा भावोंके छत्तीस भंग होते हैं ।

शंका--सानिपातिक यह कौनसी संज्ञा है ?

समाधान--एक ही गुणस्थान या जीवसमासमें जो बहुतसे भाव आकर एकत्रित होते हैं, उन भावोंकी सानिपातिक ऐसी संज्ञा है ।

अब उक्त भावोंके एक, दो, तीन, चार और पांच भावोंके संयोगसे होनेवाले भंग गते जाते हैं । उनमेंसे एकसंयोगी भंग इस प्रकार है-- ओदयिक-ओदयिकभाव, जेद-यह जीव मिच्छादिद्वि और अमंजयत है । दर्शनमोहनीयकर्मके उदयसे मिच्छादिद्वि यह भाव उत्पन्न होता है । सयममार्ता कर्मोंके उदयसे ' असंयत ' यह भाव उत्पन्न होता है । इसी नामसे सभी विकल्पोंकी प्ररूपणा करना चाहिए । इस चित्रमें सूत्र गाथा है--

एक एक उत्तर पउसे गहुते एए गच्छको रूप (एक) आदि पदप्रमाण बढ़ाई दूई सजिमे भाजिन करे, ओर परस्पर गुणा करे, तब सम्पातफल अर्थात् एक-मंयोगी, छिन्मयोगी आदि भगोत्ता प्रमाण आता है । तथा इन एक, दो, तीन आदि भंगोंको जोत्त देन पर सनिपातफल अर्थात् सानिपातिकभंग प्राप्त हो जाते हैं ॥ १२ ॥

(इस करणगाथाका विशेष अर्थ और भंग निकालनेका प्रकार समझनेके लिए देवता भाग ४, गुपु १४३ का विशेषार्थ ।)

इस उक्त प्रकारके भावोंके अणुगमको भावाणुगम कहते हैं । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका होता है । आंशमे संशुदीत और आदेशसे असंशुदीत, इस प्रकार निर्देश दो प्रकारका होता है, क्योंकि, तीसरे निर्देशका होना संभव नहीं है ।

१ अणुगमः सानिपातिस्मात् । कतिमिथ दयमेच्छते-गुद्विनीविध पदार्थविध एकत्ववर्तिगद्विध

इत्येवमादिगमे उच । त स मा २, ७

२ अथ मंदत न्गुगमाजिदे स्मेप दरे । लद मिच्छज्जद्वे देसे सजोगणुगगा ॥ गो क ७९९

ओघेण मिच्छादिद्वि ति को भावो, ओदइओ भावो ॥ २ ॥

' जहा उदेसो तहा णिहेसो ' ति जाणावणुमोघेणोत्ति भणिदं । अत्थाहिहाण-पच्चया तुल्लणामधेया इदि णायदो इदि-करणपरो' मिच्छादिद्विसदो मिच्छत्तभावं भणदि । पंचसु भावेषु एसो को भावो ति पुच्छेदे ओदइओ भावो ति तित्थयवयणादो दिव्व-ज्झणी विणिगया । को भावो, पंचसु भावेषु कदमो भावो ति भणिदं होदि । उदये भवो ओदइओ, मिच्छत्तकम्मस्स उदएण उपपण्णमिच्छत्तपरिणामो कम्मोदयजणिदो सि ओदइओ । णणु मिच्छादिद्विस्स अणो वि भावा अत्थि, णण-दंसण-गदि-लिंग-कसाय-मव्वाभवादिभावाभावे जीवस्स संसारिणो अभावप्पसंगा । भणिदं च-

मिच्छत्ते दस भगा आसादण-मिस्सए वि बोदव्वा ।

तिगुणा ते चट्ठहीणा अविरदसग्गस्स एमेव ॥ १३ ॥

देसे खओवसमिए विदेदे खवगाण ऊणवीसं तु ।

ओसामगेषु पुध पुध पणतीस भावदो भगा ॥ १४ ॥

ओघनिर्देशकी अपेक्षा मिच्छादिद्वि यह कौनसा भाव है ? औदयिक भाव है ॥ २ ॥

' जेसा उदएण होता है उसी प्रकार निर्देश होता है ' इस न्यायके आपनार्थ सूत्रमें ' ओघ ' ऐसा पद कहा । अर्थ, अभिधान (शब्द) और प्रत्यय (ज्ञान) तुल्य नामवाले होते हैं, इस न्यायसे ' इति ' करणपरक अर्थात् जिसके पश्चात् हेतुवाचक इति शब्द आया है, ऐसा ' मिच्छादिद्वि ' यह शब्द मिच्छात्वके भावको कहता है । पांचों भावोंमेंसे यह कौन भाव है ? ऐसा पूछनेपर यह औदयिक भाव है, इस प्रकार तीर्थकरके मुखसे दिव्यध्वनि निकली है । यह कौन भाव है, अर्थात् पांचों भावोंमेंसे यह कौनसा भाव है, यह तात्पर्य होता है । उदयसे जो हो, उसे औदयिक कहते हैं । मिच्छात्वकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाला मिच्छात्वपरिणाम कर्मोदयजनित है, अतएव औदयिक है ।

शंका--मिच्छादिद्विके अन्य भी भाव होते हैं, उन ज्ञान, दर्शन, गति, लिंग, कयाय, भव्यत्व, अभव्यत्व आदि भावोंके अभाव माननेपर संसारी जीवके अभावका प्रसंग प्राप्त होता है । कहा भी है--

मिच्छात्वगुणस्थानमें उक्त भावोंसम्यन्धी दश भंग होते हैं । सामान्य और मिश्र-गुणस्थानमें भी इसी प्रकार दश दश भंग जानना चाहिए । अविरतसम्यग्दृष्टि गुण-स्थानमें वे ही भंग विगुणित और चट्ठहीन अर्थात् (१० × ३ - ४ = २६) छत्तीस होते हैं । इसी प्रकार ये छत्तीस भंग क्षायोपशमिक देशविरत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें भी होते हैं । क्षपकत्रेणीवाले चारों क्षपकोंके उत्तीस उत्तीस भंग होते हैं ।

' सामान्येन तावत् मिच्छादिद्वित्यौदयिको मात्र । स. ति १, ८ मिच्छे खलु ओदइओ । गो. जी. १२.

२ प्रतिपु ' इदिकरणपरो ' इति पाठ ।

उपशमश्रेणीवाले चारो उपशमकामे पृथक् पृथक् पैतीस भंग भावकी अपेक्षा होते हैं ॥ १३-१४ ॥

विशेषार्थ—ऊपर बतलाये गये भंगोंका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—औदयिकादि पाँचों मूल भावोंसे मिथ्यात्वगुणस्थानमे औदयिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक, ये तीन भाव होते हैं। अतः असंयोगी या प्रत्येकसंयोगकी अपेक्षा ये तीन भंग हुए। इनके द्विसंयोगी भंग भी तीन ही होते हैं—औदयिक क्षायोपशमिक, औदयिक-पारिणामिक और क्षायोपशमिक-पारिणामिक। तीनों भावोंका संयोगरूप त्रिसंयोगी भंग एक ही होता है। इन सात भगोंके सिवाय स्वसंयोगी तीन भंग और होते हैं। जैसे—औदयिक-औदयिक, क्षायोपशमिक-क्षायोपशमिक और पारिणामिक-पारिणामिक। इस प्रकार ये सब मिलाकर (३ + ३ + १ + ३ = १०) मिथ्यात्वगुणस्थानमें दश भंग होते हैं। ये ही दश भंग सासादन और मिथ्य गुणस्थानमें भी जानना चाहिए। अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें पाँचों मूलभाव होते हैं, इसलिए यहाँ प्रत्येकसंयोगी पाँच भंग होते हैं। पाँचों भावोंके द्विसंयोगी भंग दश होते हैं। किन्तु उनमेंसे इस गुणस्थानमें औपशमिक और क्षायिकभावना संयोगी भंग सम्भव नहीं, क्योंकि, वह उपशमश्रेणीमें ही सम्भव है। अतः दशमेंसे एक घटा देने पर द्विसंयोगी भंग नौ ही पाये जाते हैं। पाँचों भावोंके त्रिसंयोगी भंग दश होते हैं। किन्तु उनमेंसे यहापर क्षायिक-औपशमिक-औदयिक, क्षायिक-औपशमिक-पारिणामिक और क्षायिक औपशमिक-क्षायोपशमिक, ये तीन भंग सम्भव नहीं हैं, अतएव शेष सात ही भंग होते हैं। पाँचों भावोंके चतुःसंयोगी पाँच भंग होते हैं। उनमेंसे यहापर औदयिक-क्षायोपशमिक क्षायिक-पारिणामिक, तथा औदयिक क्षायोपशमिक औपशमिक पारिणामिक, ये दो ही भंग सम्भव हैं, शेष तीन नहीं। इसका कारण यह है कि यहापर क्षायिक और औपशमिकभाव साथ साथ नहीं पाये जाते हैं। इसी कारण पंचसंयोगी भंगना भी यहा अभाव है। इनके अतिरिक्त स्वसंयोगी भंगोंमेंसे क्षायोपशमिक-क्षायोपशमिक, औदयिक-औदयिक और पारिणामिक-पारिणामिक, ये तीन भंग और भी होते हैं। औपशमिक और क्षायिकके स्वसंयोगी भंग यहाँ सम्भव नहीं है। इस प्रकार प्रत्येकसंयोगी पाँच, द्विसंयोगी नौ, त्रिसंयोगी सात, चतुःसंयोगी दो और स्वसंयोगी तीन, ये सब मिलाकर (५ + २ + ७ + २ + ३ = २९) असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें छब्बीस भंग होते हैं। ये ही छब्बीस भंग देशविरत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें भी होते हैं। क्षपकश्रेणीसम्बन्धी चारों गुणस्थानोंमें औपशमिक भावोंके बिना शेष चार भाव ही होते हैं। अतएव उनके प्रत्येकसंयोगी भंग चार, द्विसंयोगी भंग छह, त्रिसंयोगी भंग चार और चतुःसंयोगी भंग एक होता है। तथा चारों भावोंके स्वसंयोगी चार भंग और भी होते हैं। इस प्रकार सब मिलाकर (४ + ६ + ४ + १ + ४ = १९) उन्नीस भंग क्षपकश्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें होते हैं। उपशमश्रेणीसम्बन्धी चारों गुणस्थानोंमें पाँचों ही मूल भाव सम्भव हैं, क्योंकि, यहापर क्षायिकसम्यक्त्वके साथ औपशमिकचारित्र भी पाया जाता है। अतएव पाँचों भावोंके प्रत्येकसंयोगी पाँच भंग, द्विसंयोगी दश भंग, त्रिसंयोगी दश भंग, चतुःसंयोगी पाँच

तदो मिच्छादिद्विस्स ओदइओ चेव भावो अत्थि, अण्णे भावा गत्थि ति णेदं वडदे ? ण एस दोसो, मिच्छादिद्विस्स अण्णे भावा गत्थि ति सुत्ते पडिसेहाभावा । किंतु मिच्छत्तं मोचूण जे अण्णे गदि-लिंगादओ साधारणभावा ते मिच्छादिद्विस्स कारणं ण होति । मिच्छत्तोदओ एकओ चेव मिच्छत्तस्स कारणं, तेण मिच्छादिदिट्ठि ति भावो ओदइओ ति परूषिदो ।

सासनसम्मादिट्ठि ति को भावो, पारिणामिओ भावो ॥ ३ ॥

एत्थ चोदओ भणदि—भावो पारिणामिओ ति णेदं वडदे, अण्णेहिंतो अणु-पण्णस्स परिणामस्स अत्थिचचिरोहा । अह अण्णेहिंतो उप्पत्ती इच्छिज्जदि, ण सो पारिणामिओ, णिककारणस्स सकारणचचिरोहा इदि । परिहारो उच्चदे । तं जहा—जो कम्माणमुदय-उत्तम-वइय-खओवसेहि विणा अण्णेहिंतो उप्पणो परिणामो सो पारि-णामिओ भणदि, ण णिककारणो कारणमंतरेणुपण्णपरिणामाभावा । सत्त-पमेयत्तादओ भंग होते हैं और पंचसंयोगी एक भंग होता है । तथा स्वसंयोगी भंग चार ही होते हैं, क्योंकि यहापर क्षायिकसम्यक्त्वके साथ क्षायिकभावका अन्य भेद सम्भव नहीं है । इस प्रकार सब मिलाकर (५ + १० + १० + ५ + १ + ४ = ३५) पैतीस भंग उपशमश्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें होते हैं ।

इसलिए मिथ्यादृष्टि जीवके केवल एक औदयिक भाव ही होता है, और अन्य भाव नहीं होते हैं, यह कथन घटित नहीं होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, 'मिथ्यादृष्टिके औदयिक भावके अतिरिक्त अन्य भाव नहीं होते हैं, इस प्रकारका सूत्रमे प्रतिषेध नहीं किया गया है । किन्तु मिथ्यात्वको छोड़कर जो अन्य गति, लिंग आदिक साधारण भाव हैं, वे मिथ्या-दृष्टित्वके कारण नहीं होते हैं । एक मिथ्यात्वका उदय ही मिथ्यादृष्टित्वका कारण है, इसलिए 'मिथ्यादृष्टि' यह भाव औदयिक कहा गया है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? पारिणामिक भाव है ॥ ३ ॥

शंका—यहाँ पर शंकाकार कहता है कि 'भाव पारिणामिक है' यह बात घटित नहीं होती है, क्योंकि, दूसरोसे नहीं उत्पन्न होनेवाले पारिणामिके अस्तित्वका विरोध है । यदि अन्यसे उत्पत्ति मानी जावे तो पारिणामिक नहीं रह सकता है, क्योंकि, निष्कारण वस्तुके सकारणत्वका विरोध है ?

समाधान—उक्त शंकाका परिहार कहते हैं । वह इस प्रकार है—जो कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपमेके बिना अन्य कारणोंसे उत्पन्न हुआ परिणाम है, वह पारिणामिक कहा जाता है । न कि निष्कारण भावको पारिणामिक कहते हैं, क्योंकि,

१ सासादनसम्यग्दृष्टिति पारिणामिको भाव । स सि १, ८ विदिसे पुण पारिणामिओ भावो ।
जो जी. ११

माना निष्कारणा उल्लङ्घनीति चे न, विसंगत्तादिसत्त्वेण अपरिणतसत्तादिसाम्यगुणानुवर्तमा । साम्यगुणमिच्छाद्विच्छेदं पि सम्यक्त-चारितुभयविरोहिअणताणुवंधिचउक्कस्सुदय-मंतरेण न होदि ति ओददयमिदि किण्णेच्छिज्जदि ? सच्चमेयं, किंतु न तथा अप्पणा अत्थि, आदिमचदुणुणद्वगुणभातरूपगुणए दंसणमोहचदिदित्तिसेसकम्मसे विवक्खाभावो । ततो अपिदस्स दंसणमोहणीयस्स कम्मस्स उदण्ण उवममेण सएण खओवसमेण वा न होदि ति निष्कारणं साम्यसम्मत्तं, अदो चेव पारिणामियत्तं पि । ओणेण गाएण सब्ब-मानाणं पारिणामियत्तं पमज्जदीदि चे होदु, न कोह दोमो, विरोहाभावो । अण्णभावोसु पारिणामियत्तमो किण्ण कीदे ? न, सासणसम्मत्तं मोत्तण अपिदकम्मोदो पुप्पणस्स अण्णस्स भावस्स अनुपलंभा ।

कारणके विना उत्पन्न होनेवाले परिणामका अभाव है ।

शंका—मत्त, प्रमेयत्व आदिक भाव कारणके विना भी उत्पन्न होनेवाले पाये जाते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, विशेष सत्त्व आदिके स्वरूपसे नहीं परिणत होनेवाले मत्तगदि सामान्य नहीं पाये जाते हैं ।

शंका—सासादनसम्यग्दृष्टिगता भी सम्यक्त्व ओर चारित्र्य, इन दोनोंके विरोधी गन्तानुगन्धी चतुर्गते उदयके विना नहीं होता है, इसलिये इस ओदयिक क्यों नहीं मानते हैं ?

समाधान—यह कहना मत्त है, किन्तु उस प्रकारकी यहां विवक्षा नहीं है, क्योंकि, आदिक चार गुणस्थानांसम्यग्धी भावोंकी प्ररूपणमें दर्शनमोहनीय कर्मके सियाय दोष कर्मोंके उदयकी विवक्षाका अभाव है । इसलिये विवक्षित दर्शनमोहनीयकर्मके उदयमें, उपशममें, क्षयमें अथवा क्षयोपशमसे नहीं होता है, अतः यह सासादन-सम्यक्त्व निष्कारण है ओर इसलिये इसके पारिणामिकपणा भी है ।

शंका—इन न्यायके अनुसार तो सभी भावोंके पारिणामिकरूपनेका प्रसंग प्राप्त होता है ?

समाधान—यदि उक्त न्यायके अनुसार सभी भावोंके पारिणामिकरूपनेका प्रसंग आता है, तो आने दो, कोई दोष नहीं है, क्योंकि, इसमें कोई विरोध नहीं आता ।

शंका—यदि ऐसा है, तो फिर अन्य भावोंमें पारिणामिकरूपनेका व्यवहार क्यों नहीं किया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सासादनसम्यक्त्वको छोड़कर विवक्षित कर्मसे नहीं उत्पन्न होनेवाला अन्य कोई भाव नहीं पाया जाता ।

१ ऐसे माना भिगमा क्षयनोई पडुब मणिगइ । चापि नपि जदो अविदज्जेसु णण्णु ॥ गो जी. १२.

सम्मामिच्छादिद्वि ति को भावो, खओवसमिओ भावो ॥ ४ ॥

पडिवांधिक्कमोदए संते वि जो उवल्लभइ जीवगुणावयवो सो खओवसमिओ उच्चइ । कुदो ? सवधादणसत्तीए अभावो खओ उच्चदि । खओ चेव उवसमो खओव-समो, तसिह जादो भावो खओवसमिओ । न च सम्मामिच्छलुदए संते सम्मत्तस्स कणिया वि उव्वदि, सम्मामिच्छत्तस्स सवधादित्तणहाणुववत्तीदो । तदो सम्मामिच्छत्तं खओव-समियमिदि न वडदे ? एत्थ परिहारो उच्चदे—सम्मामिच्छत्तुदए संते सदहणासदहण-प्यओ कंचिओ जीवपरिणामो उप्पज्जइ । तत्थ जो सदहणंसो सो सम्मत्तानयवो । ते सम्मामिच्छत्तुदओ न विणासदि ति सम्मामिच्छत्त खओवसमियं । असदहणभागेण विणा सदहणभागस्सेव सम्मामिच्छत्तववएसो गत्थि ति न सम्मामिच्छत्तं खओवसमियमिदि चे एवंविहविवक्खाए सम्मामिच्छत्तं खओवसमियं मा होदु, किंतु अवयवयवनिराकरणा निरा-करणं पडुच्च खओवसमियं सम्मामिच्छत्तदव्वकम्मं पि सवधादी चेव होदु, जंचंतरस्स सम्मयगिमिच्छाद्वि यह कौनसा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ४ ॥

शंका—प्रतिबंधी कर्मके उदय होनेपर भी जो जीवके गुणका अवयव (अंश) पाया जाता है, वह गुणांश क्षायोपशमिक कहलाता है, क्योंकि, गुणोंके सम्पूर्णरूपसे घातेनकी शक्तिका अभाव क्षय कहलाता है । क्षयरूप ही जो उपशम होता है, वह क्षयो-पशम कहलाता है । उस क्षयोपशममें उत्पन्न होनेवाला भाव क्षायोपशमिक कहलाता है । किन्तु सम्यगिमित्यात्वकर्मके उदय रहते हुए सम्यक्त्वकी कणिका भी अवशिष्ट नहीं रहती है, अन्यथा, सम्यगिमित्यात्वकर्मके सर्वघातीपणा वन नहीं सकता है । इसलिये सम्यगिमित्यात्वभाव क्षायोपशमिक है, यह कहना घटित नहीं होता ?

समाधान—यहां उक्त शंकाका परिहार करते हैं—सम्यगिमित्यात्वकर्मके उदय होने पर श्रद्धानाश्रद्धानात्मक करंचित अर्थात् शवलित या मिश्रित जीवपरिणाम उत्पन्न होता है, उसमें जो श्रद्धानाश है, वह सम्यक्त्वका अवयव है । उसे सम्यगिमित्यात्व कर्मका उदय नहीं नष्ट करता है, इसलिये सम्यगिमित्यात्वभाव क्षायोपशमिक है ।

शंका—अथद्धान भागके विना केवल श्रद्धान भागके ही 'सम्यगिमित्यात्व' यह संज्ञा नहीं है, इसलिये सम्यगिमित्यात्वभाव क्षायोपशमिक नहीं है ?

समाधान—उक्त प्रकारकी विवक्षा होने पर सम्यगिमित्यात्वभाव क्षायोपशमिक भले ही न होवे, किन्तु अवयवोंके निराकरण और अवयवके अनिराकरणकी अपेक्षा वह क्षायोपशमिक है । अर्थात् सम्यगिमित्यात्वके उदय रहते हुए अवयवीरूप शुद्ध आत्माका तो निराकरण रहता है, किन्तु अवयवरूप सम्यक्त्वगुणका अंश प्रगट रहता है । इस प्रकार क्षायोपशमिक भी वह सम्यगिमित्यात्व द्रव्यकर्म सर्वघाती ही होवे, क्योंकि,

१ सम्यगिमिच्छाद्वि ति क्षायोपशमिको भाव । च. पि. १, ८ मित्से खओवसमिओ । गो जी. १२.

२ प्रतिष्ठ 'त ओवममिय' इति पाठः ।

सम्माभिच्छत्तस्म सम्मत्ताभावो । किन्तु सद्वहणभागो असद्वहणभागो ण होदि, सद्वहणा-सद्वहणाभेयत्तविरोहा । ण च सद्वहणभागो कम्मोदयजणिओ, तत्थ विवरीयत्ताभावा । ण य तत्थ सम्माभिच्छत्तववएसभावो, समुदाएसु पयट्ठाणं तदेगसे वि पउत्तिदंसणादो । तदो सिद्धं सम्माभिच्छत्तं खओवसमियमिदि । मिच्छत्तस्स सव्वधादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेन संतोवसमेण सम्मत्तस्स देसधादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुदओवसमेण वा सम्माभिच्छत्तस्स सव्वधादिफहयाणमुदएण सम्माभिच्छत्तभावो होदि त्ति सम्माभिच्छत्तस्स खओवसमियत्तं केई परूयत्ति, तण्ण घडदे, मिच्छत्तभावस्स वि खओवसमियत्तप्पसंगा । छुदो ? सम्माभिच्छत्तस्स सव्वधादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण सम्मत्तदेसधादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुदओवसमेण वा मिच्छत्तस्स सव्वधादिफहयाणमुदएण मिच्छत्तभावुप्पत्तीए उवलंभा ।

असंजदसम्माइट्टि ति को भावो, उवसमिओ वा खइओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ ५ ॥

जात्यन्तरभूत सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके सम्यक्त्वताका अभाव है । किन्तु श्रद्धानभाग अश्रद्धानभाग नहीं हो जाता है, क्योंकि, श्रद्धान और अश्रद्धानके एकताका विरोध है । और श्रद्धानभाग कर्मोदय-जनित भी नहीं है, क्योंकि, इसमें विपरीतताका अभाव है । और न उनमें सम्यग्मिथ्यात्व संज्ञाका ही अभाव है, क्योंकि, समुदायोंमें प्रवृत्त हुए शब्दोंकी उनके एक देशमें भी प्रवृत्ति देखी जाती है । इसलिए यह सिद्ध हुआ कि सम्यग्मिथ्यात्व क्षायोपशमिक भाव है ।

कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदय-क्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे, सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदय-क्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे, अथवा अनुदयरूप उपशमसे और सम्यग्मिथ्यात्व कर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे सम्यग्मिथ्यात्वभाव होता है, इसलिए सम्यग्मिथ्यात्वके क्षायोपशमिकता सिद्ध होती है । किन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, ऐसा मानने पर तो मिथ्यात्वभावके भी क्षायोपशमिकताका प्रसंग प्राप्त होगा, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे और सम्यक्त्वदेशघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे, अथवा अनुदयरूप उपशमसे, तथा मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे मिथ्यात्वभावकी उत्पत्ति पार्ई जाती है ।

असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव भी है, क्षायिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ ५ ॥

१ असंयतसम्यग्दृष्टिरेति औपशमिको वा क्षायिको वा क्षायोपशमिको वा भाव । स ति १, ८. भविदसम्माइ तिण्णव ॥ गो जी १२

तं जहा—मिच्छत्त-सम्माभिच्छत्तसव्वधादिफहयाणं सम्मत्तदेसधादिफहयाणं च उवसमेण उदयाभावलक्खणेण उवसमसम्मत्तमुप्पज्जदि त्ति तमोवसमियं । एदेसिं चेव खएण उप्पण्णो खइओ भावो । सम्मत्तस्स देसधादिफहयाणमुदएण सह वट्टमाणो सरसत्त-परिणामो खओवसमिओ । मिच्छत्तस्स सव्वधादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण सम्माभिच्छत्तस्स सव्वधादिफहयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुदओवसमेण वा सम्मत्तस्स देसधादिफहयाणमुदएण खओवसमिओ भावो त्ति केई भणत्ति, तण्ण घडदे, अइवत्तिदेसप्पसंगादो । कथं पुण घडदे ? जहट्टियइसद्वहणधायाणसत्ती सम्मत्तफहएसु खीणा त्ति तेसिं खइयसणा । खयाणमुवसमो पसण्णदो खओवसमो । तत्थुप्पणत्तादो खओवसमियं वेदगसम्मत्तमिदि घडदे । एनं सम्मत्तं तिणिण भावा, अण्णे गत्थि । गदिलिगादओ भावा तत्थुवलंभंत इदि चे होदु णाम तेसिमत्थित्तं, किन्तु ण तेहिंतो सम्मत्तमुप्पज्जदि । तदो सम्माइट्टी वि ओइयादिववएसं ण लहदि त्ति घेत्तव्वं ।

जैसे—मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके तथा सम्यक्त्व-प्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयाभावरूप लक्षणवाले उपशमसे उपशमसम्यक्त्व उत्पन्न होता है, इसलिए 'असंयतसम्यग्दृष्टि' यह भाव औपशमिक है । इन्ही तीनों प्रकृतियोंके क्षयसे उत्पन्न होनेवाले भावको क्षायिक कहते हैं । सम्यक्त्वप्रकृतिके देश-घाती स्पर्धकोंके उदयके साथ रहनेवाला सम्यक्त्वपरिणाम क्षायोपशमिक कहलाता है । मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयाभावरूप क्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, तथा उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे अथवा अनुदयोपशमनसे, और सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे क्षायोपशमिक भाव कितने ही आचार्य कहते हैं, किन्तु यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, बैसा मानने पर अतिव्याप्ति दोषका प्रसंग आता है ।

शंका—तो फिर क्षायोपशमिकभाव कैसे घटित होता है ?

समाधान—यथास्थित अर्थके श्रद्धानको घात करनेवाली शक्ति जब सम्यक्त्व-प्रकृतिके स्पर्धकोंमें क्षीण हो जाती है, तब उनकी क्षायिकसंज्ञा है । क्षीण हुए स्पर्धकोंके उपशमको अर्थात् प्रसन्नताको क्षयोपशम कहते हैं । उसमें उत्पन्न होनेसे वेदकसम्यक्त्व क्षायोपशमिक है, यह कथन घटित हो जाता है । इस प्रकार सम्यक्त्वमें तीन भाव होते हैं, अन्य भाव नहीं होते हैं ।

शंका—असंयतसम्यग्दृष्टिमें गति, लिंग आदि भाव पाये जाते हैं, फिर उनका ग्रहण यहाँ क्यों नहीं किया ?

समाधान—असंयतसम्यग्दृष्टिमें भले ही गति, लिंग आदि भावोंका अस्तित्व रहा आवे, किन्तु उनसे सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता है, इसलिए सम्यग्दृष्टि भी औदयिक आदि भावोंके व्यपदेशको नहीं प्राप्त होता है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।

१ प्रतिपु 'पसण्णदो' इति पाठः ।

औदङ्गण भवेण पुणो असंजदो ॥ ६ ॥

मम्मटिद्वीए निणि भावे भणिज्जण अमंजदत्तस्स कदमो भावो होदि सि जाणा-
णह्मदं मुत्तमागदं । मंजमादीणं कम्ममाणमुदएण जेणसो असंजदो तेण असंजदो ति
ओदङ्गो भावो । हेट्टिल्लणं गुणद्वाराणमोदइयमंजदत्तं क्रिण्ण पुरुविदं ? ण एस दोसो,
एदोण तेमिमोदइयमंजदमात्रोपलदीदो । जेणदमंतदीमयं सुत्तं तेणते उइदूण अइकंत-
मव्यमुत्ताणमवयमत्तं पडियज्जदि, तत्थ अप्पणो अत्थितं वा पयासेदि, तेण अदीद-
गुणद्वाराणं मव्यमिमोदइयो असंजमभावो अत्थि ति सिद्धं । एदमादीए अभणिय एत्थ
मणत्तस्स तो अभिप्पाओ ? उच्चदे- असंजमभावस्स पज्जवसाणपरूवणहुमुवरिमाणम-
मंजमभापयडिसेह्मदं नेत्थेदं उच्चदे ।

संजदासंजदः पमत्त-अपमत्तसंजदा ति को भावो, खओवसमिओ
भावो ॥ ७ ॥

किन्तु असंयतसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदायिकभावे है ॥ ६ ॥

सम्यग्दृष्टिके तीनों भाव कएकर असंयतके उसके असंयतत्वकी अपेक्षा
कौनसा भाग होता है, इस गतके बतलानेके लिए यह सूत्र आया है । चूंकि संयमके
गत करनेवाले कर्मोंके उदयसे यह असंयतरूप होता है, इसलिए 'असंयत' यह
औदायिकभावा है ।

शंका—अथस्तन गुणस्थानोंके असंयतपनेको औदायिक क्यों नहीं कहा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, इसी ही सूत्रसे उन अधस्तन गुण-
स्थानोंके औदायिक असंयतभावकी उपलब्धि होती है । चूंकि यह सूत्र अन्तर्दीपक है,
इसलिए असंयतभावको अन्तमें रख देनेसे वह पूर्वोक्त सभी सूत्रोंका अंग बन जाता है ।
अथवा, अतीत सर्व सूत्रोंमें अपने अस्तित्वको प्रकाशित करता है, इसलिए सभी अतीत
गुणस्थानोंका असंयमभाव औदायिक होता है, यह बात सिद्ध हुई ।

शंका—यह 'असंयत' पद आदिमें न रहकर यहापर कहनेका क्या अभिप्राय है ?

समाधान—यहां तत्के गुणस्थानोंके असंयमभावकी अन्तिम सीमा बतानेके
लिए ओर अपरके गुणस्थानोंके असंयमभावके प्रतिषेध करनेके लिए यह असंयत पद
यहांपर कहा है ।

संयतामंयत, प्रमत्तमंयत और अप्रमत्तसंयत, यह कौनसा भाव है ? शायोप-
शुमिक भाव है ॥ ७ ॥

१ शायोप पुनोत्तमिमेन भावेन । स. नि. १, ८.

२ धयउत्तमतः प्रमत्तमजोअनउत्तमत इति च शायोपशुमिको भाव । स. नि. १, ८. देसमिद्वे
पन्ने हरे य मज्झिमनिमासो ३ । सो सुउ चरिणोह पइव भणिण तथा व्वरि । गो. जी १३.

तं जहा- चारित्तमोहणीयकम्मोदए खओवसमसणिणेदे संते जदो संजदासंजद-
पमत्तसंजद-अपमत्तसंजदत्तं च उपपज्जदि, तेणेदे तिणिण वि भावा खओवसमिया ।
पच्चक्खाणावरण-चटुसंजलण-णवणोक्सायाणमुदयस्स सवप्पणा चारित्तविणासणसत्तीए
अभावादो तस्स खयसण्णा । तेसिं चैव उपपणचारित्तं सेडिं वावारात्तस्स उवसमसण्णा ।
तेहि दोहिंतो उपपणा एदे तिणिण वि भावा खओवसमिया जादा । एं संते पच्चक्खाणा-
वरणस्स सव्वधादिच्चं फिड्ढिदि चि उत्ते ण फिड्ढिदि, पच्चक्खाणं सव्वं घादयदि
चि तं सव्वधादी उच्चदि । सव्वमपच्चक्खाणं ण घादेदि, तस्स तत्थ वावारा-
भावा । तेण तप्परिणदस्स सव्वधादिसण्णा । जस्सोदए संते जमुप्पज्जमाणु-
वल्लभदि ण तं पडि तं सव्वधाइवएसं लहइ, अइप्पसंगादो । अपच्चक्खाणा-
वरणचउक्कस्स सव्वधादिह्दयाणमुदयक्खाण तेलिं चैव संतोवसमेण चटुसंज-
लण-णवणोक्सायाणं सव्वधादिह्दयाणमुदयक्खाण तेलिं चैव संतोवसमेण देस-
धादिह्दयाणमुदएण पच्चक्खाणावरणचटुक्कस्स सव्वधादिह्दयाणमुदएण देससंजमो

चूंकि शयोपशमनामक चारित्रमोहनीयकर्मका उदय होने पर सयतासंयत,
प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतपना उत्पन्न होता है, इसलिए ये तीनों ही भाव शायोप-
शुमिक हैं । प्रत्याख्यानावरणचतुष्क, संज्वलनचतुष्क और नव नोक्कायोंके उदयके सर्व
प्रकारसे चारित्र विनाश करनेकी शक्तिका अभाव है, इसलिए उनके उदयकी क्षय संज्ञा
है । उन्हीं प्रकृतियोंकी उत्पन्न हुए चारित्रको अथवा श्रेणीको आवरण नहीं करनेके कारण
उपशम संज्ञा है । क्षय और उपशम, इन दोनोंके द्वारा उत्पन्न हुए ये उक्त तीनों भाव भी
क्षायोशुमिक हो जाते हैं ।

शंका—यदि पेसा माना जाय, तो प्रत्याख्यानावरण कपायका सर्वघातिपना
नष्ट हो जाता है ?

समाधान—पेसा माननेपर भी प्रत्याख्यानावरण कपायका सर्वघातिपना नष्ट
नहीं होता है, क्योंकि, प्रत्याख्यानावरण कपाय अपने प्रतिपक्षी सर्व प्रत्याख्यान (संयम)
गुणको घातता है, इसलिए वह सर्वघाती कहा जाता है । किन्तु सर्व अप्रत्याख्यानको
नहीं घातता है, क्योंकि, उसका इस विषयमें व्यापार नहीं है । इसलिए इस प्रकारसे
परिणत प्रत्याख्यानावरण कपायके सर्वघाती संज्ञा सिद्ध है । जिस प्रकृतिके उदय होने
पर जो गुण उत्पन्न होता हुआ देखा जाता है, उसकी ओक्षा वह प्रकृति सर्वघाति
संज्ञाको नहीं प्राप्त होती है । यदि पेसा न माना जाय तो अतिप्रसंग दोष आजायगा ।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे और उन्हींके सद्-
वस्थारूप उपशमसे, तथा चारों संज्वलन और नवों नोक्कायोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके
उदयाभावी क्षयसे और उन्हींके सद्वस्थारूप उपशमसे तथा देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे
और प्रत्याख्यानावरण कपायचतुष्कके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे देशसंयम उत्पन्न होता

उप्यज्जदि । वारसकसायाणं सव्वधादिफहयणमुदयक्खएण तेसिं चैव संतोवसेण चटु-
सेजुलण-णवणोक्कसायाणं सव्वधादिफहयणमुदयक्खएण तेसिं चैव संतोवसेण देसधादि-
फहयणमुदएण पमत्तापमत्तसंजमां उप्यज्जंति, तेणेदं तिणिण वि भावा खओवसमिया
इदि के वि भणंति । ण च एदं समजसं । कुदो ? उदयाभावो उवसमो चि क्खु उदय-
विरहिदसव्वपयडीहि द्विदि-अणुभागफहयहि अ उवसमसण्णा लद्धा । संपहि ण क्खओ
अत्थि, उदयस्स विज्जमाणस्स खयव्वएसविवोहादो । तदो एदं तिणिण भावा उदओव-
समियत्तं पत्ता । ण च एवं, एदसिमुदओवसमियत्तपटुप्पायणसुत्ताभावा । ण च फलं
दाज्जण णिज्जरियगयकम्मक्खंडाणं खयव्वएसं काज्जण एदेसिं खओवसमियत्तं वोसुं
जुत्तं, मिच्छादिद्विआदि सव्वभावाणं एवं सेंते खओवसमियत्तप्पसंगा । तस्सा पुब्बिल्लो
चेय अत्थो धेत्तव्वो, णिरवज्जत्तादो । दंसणमोहणीयकम्मस्स उवसम-खय-खओवसमे
अस्सिदूण संजदासंजदादीणमोवसमियादिभावा किण्ण पुरुविदो ? ण, तदो संजमासंजमादि-
भावाणमुप्पचीए अभावादो । ण च एत्थ सम्मत्तिसया पुच्छा अत्थि, जेण दंसण-

है । अनन्तावुबन्धी आदि चारह कपायोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सद-
वस्थारूप उपशमसे चारों सञ्चलन और नवों नोकपायोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदय-
क्षयसे, तथा उन्हींके सदवस्थारूप उदयसे और देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे प्रमत्त
और अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी संयम उत्पन्न होता है, इसलिये एक तीनों ही भाव
क्षायोपशमिक हैं, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं । किन्तु उनका यह कथन युक्तिसंगत
नहीं है, क्योंकि, उदयके अभावको उपशम कहते हैं, ऐसा अर्थ करके उदयसे विरहित
सर्वप्रकृतियोंको तथा उन्हींके स्थिति और अनुभागके स्पर्धकोंको उपशमसंज्ञा प्राप्त हो
जाती है । अभी वर्तमानमें क्षय नहीं है, क्योंकि, जिस प्रकृतिका उदय विद्यमान है,
उसके क्षय संज्ञा होनेका विरोध है । इसलिये ये तीनों ही भाव उदयोपशमिकपनेको
प्राप्त होते हैं । किन्तु ऐसा माना नहीं जा सकता है, क्योंकि, एक तीनों गुणस्थानोंके
उदयोपशमिकपना प्रतिपादन करनेवाले सूत्रका अभाव है । और, फलतो देकर एवं
निर्जराको प्राप्त होकर गये हुए कर्मस्पर्धकोंके 'क्षय' संज्ञा करके एक गुणस्थानोंको
क्षायोपशमिक कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि ऐसा होनेपर भिष्यादृष्टि आदि सभी
भावोंके क्षायोपशमिकताका प्रसंग प्राप्त हो जायगा । इसलिये पूर्वोंक ही अर्थ ग्रहण
करना चाहिये, क्योंकि, वही निरव्य (निर्दोष) है ।

शंका—दर्शनमोहनीयकर्मके उपशम, क्षय और क्षयोपशमका आश्रय करके
सयतासंयतादिकोंके औपशमिक्तादि भाव क्यों नहीं बताये गये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, दर्शनमोहनीयकर्मके उपशमादिकसे सयमासंयमादि
भावोंकी उत्पत्ति नहीं होती । दूसरे, यहां पर सम्यक्त्व-विषयक पृच्छा (प्रश्न) भी नहीं है,

१ प्रतिश्रु 'सजमो' इति पाठ ।

मोहविबंधणओवसमियादिभावेहि संजदासंजदादीणं ववएसो होज्ज । ण च एवं,
तथाणुवलंभा ।

चटुण्हमुवसमां ति को भावो, ओवसमिओ भावो ॥ ८ ॥

तं जहा—एकत्रीसपयडीओ उवसामेति ति चटुण्ह ओवसमिओ भावो । होटु
णाम उवसंतकसायस्स ओवसमिओ भावो उवसमिदासेसकसायत्तादो । ण सेसाणं, तत्थ
असेसमोहसुवसमाभावा ? ण, अणियद्विवादसांपराइय-सुहुमसांपराइयाणं उवसमिद-
ओवकसायजणिदुवसमपरिणामाणं ओवसमियभावस्स अत्थिच्चाविरोहा । अपुव्वकरणस्स
अणुव्वसंतासेसकसायस्स कधमोवसमिओ भावो ? ण, तस्स त्रि अपुव्वकरणेहि पडि-
समयमसंखेज्जज्जणुणाए सेडीए कम्मक्खंडे णिज्जरंतस्स द्विदि-अणुभागखंडयाणि घादिदूण
कमेण ठिदि-अणुभागो संखेज्जाणंतणुणहीणे करेतस्स पारदुव्वसमणकिरियस्स तदनिरोहा ।
जिससे कि दर्शनमोहनीय निमित्तक औपशमिकादि भावोंकी अपेक्षा संयतासंयतादिकके
औपशमिकादि भावोंका व्यपदेश हो सके । ऐसा है नहीं, क्योंकि, उस प्रकारकी व्यवस्था
नहीं पाई जाती है ।

अपूर्वकरण आदि चारों गुणस्थानवर्ती उपशमक यह कौनसा भाव है ?
औपशमिक भाव है ॥ ८ ॥

यह इस प्रकार है—चारित्रमोहनीयकर्मकी इक्कीस प्रकृतियोंका उपशमन करते
हैं, इसलिये चारों गुणस्थानवर्ती जीवोंके औपशमिकभाव माना गया है ।

शंका—समस्त कपाय और नोकपायोंके उपशमन करनेसे उपशान्तकपायवीत-
रागछत्रस्थ जीवके औपशमिक भाव भले ही रहा आवे, किन्तु अपूर्वकरणदि शेष गुण-
स्थानवर्ती जीवोंके औपशमिक भाव नहीं माना जा सकता है, क्योंकि, उन गुणस्थानोंमें
समस्त मोहनीयकर्मके उपशमका अभाव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, कुछ कपायोंके उपशमन किए जानेसे उत्पन्न हुआ
है उपशम परिणाम जिनके, ऐसे अनिवृत्तिकरण चादरसाम्पराय और सूक्ष्मसाम्पराय-
संयतके उपशमभावका अस्तित्व माननेमें कोई विरोध नहीं है ।

शंका—नहीं उपशमन किया है किसी भी कपायका जिसने, ऐसे अपूर्वकरण-
संयतके औपशमिक भाव कैसे माना जा सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, अपूर्वकरण परिणामोंके द्वारा प्रतिसमय असंख्यत-
गुणधेणीरूपसे कर्मस्पर्धकोंकी निर्जरा करनेवाले, तथा स्थिति और अनुभागकांडोंको
घात करके क्रमसे कपायोंकी स्थिति और अनुभागको असंख्यात और अनन्तगुणित हीन
करनेवाले, तथा उपशमनक्रियाका प्रारंभ करनेवाले, ऐसे अपूर्वकरणसंयतके उपशम-
भावके माननेमें कोई विरोध नहीं है ।

१ प्रतिश्रु 'उवसमो' इति पाठः ।

२ चटुण्होपुपयमरानमोपशमिने भाव । स ति १, ८ उवसमभावो उवसामणेसु । गो जी १४.

कम्मानुपममेण उत्पण्णो भावो ओपसमिओ भण्णह । अपुव्वरुणस्स तदभावा णोव-
ममिओ भावो इट्ठि चे ण, उत्तममणमत्तिसमण्णिदअपुव्वरुणस्स तदत्थित्ताविरोहा ।
नया च उत्तमे जाये उत्तममियरुम्माणमुव्वसमण्हं जादो वि ओवसमिओ भावो ति
मिद्धं । अयमा भस्सिमाणे भूदोव्वारादो अपुव्वरुणस्स ओपसमिओ भावो, सयला-
संजमे पयइन्नरुहस्स तित्थयव्वएसो व्व ।

चटुण्हं खवा सजोगिकेवली अजोगिकेवलि ति को भावो,
खइओ भावो ॥ ९ ॥

मजोगि-अजोगिकेवलीणं राविदवाइकम्माणं हेदु णाम खइओ भावो । खीण-
रुणायस्स पि हेदु, सविदमोहणीयत्तादो । ण सेसाणं, तत्थ कम्मक्खयाणुणलंभा १ ण,
चार-मुहुसमांपगइयाणं पि सवियमोहेयदेसाणं कम्मक्खयजणिदभावोवलंभा । अपुव्व-

शंका—तमोंके उपशमनसे उत्पन्न होनेवाला भाव औपशमिक कहलाता है ।
किन्तु अपूर्णकरणसंयतके कर्मोंके उपशमन का अभाव है, इसलिए उसके औपशमिक भाव
नहीं मानना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमनशक्तिसे समन्वित अपूर्णकरणसंयतके औप-
शमिकभावके अस्तित्वको माननेमें कोई निरोध नहीं है ।

इस प्रकार उपशम होनेपर उत्पन्न होनेवाला और उपशमन होने योग्य कर्मोंके
उपशमनार्थ उत्पन्न हुआ भी भाव औपशमिक कहलाता है, यह बात सिद्ध हुई । अथवा,
अग्रिममें होनेवाले उपशम भावमें भूतकालका उपचार करनेसे अपूर्णकरणके औपशमिक
भाव यत्न जाता है, जिस प्रकार कि सर्व प्रकारके असंयममें प्रवृत्त हुए चक्रवर्ती तीर्थंकरके
'तीर्थंकर' यह व्यपदेश यत्न जाता है ।

चारों क्षणक, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, यह कौनसा भाव है ?
क्षायिक भाव है ॥ ९ ॥

शंका—यातिकर्मोंके क्षय करनेवाले सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीके क्षायिक
भाव भले ही रहा आप्ते । क्षीणरूपय वीतरागछद्मस्थके भी क्षायिक भाव रहा आप्ते,
पर्यंत, उसके भी मोहनीयकर्मका क्षय हो गया है । किन्तु सूक्ष्मसाग्रपाय आदि शेष
क्षयशक्तिके क्षायिक भाव मानना युक्ति संगत नहीं है, क्योंकि, उनमें किसी भी कर्मका
क्षय नहीं पाया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मोहनीयकर्मके एक देशके क्षण करनेवाले बादर-
सागरपाय और सूक्ष्मसाग्रपाय क्षयशक्तिके भी कर्मक्षय-जनित भाव पाया जाता है ।

१ चतुर्थं सत्तु सयोगमेगमेमिओभं क्षीणो भावः । स सि १, ८. खणेषु खल्लो भावो निवभा
अजोगिकेवलिो पि भिद्दि २ ॥ गो जी. २४.

करणस्स अविण्हकम्मस्स कधं खइओ भावो १ ण, तस्स वि कम्मक्खयणिमिच्चपरिणासु-
वलंभा । एत्थ वि कम्माणं खए जादो खइओ, खयंह जाओ' वा खइओ भावो इदि
दुविहा सदउप्पत्ती वेत्तव्वा । उव्वयारेण वा अपुव्वकरणस्स खइओ भावो । उव्वयारे
आसइज्जमाणे अहप्पसंगो किण्ण होदीदि चे ण, पव्वासत्तीदो अहप्पसंगपडिसेहादो ।

ओघानुगमो समत्तो ।

आदेसेण गइयाणुवादेण णिरयगईए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि ति
को भावो, ओदइओ भावो ॥ १० ॥

कुदो ? मिच्छजुदयजणिदअसइहणपरिणासुवलंभा । सम्मामिच्छत्तसव्वधादि-
फइयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसेमेण सम्मत्तेदसधादिफइयाणमुदयक्खएण तेसिं
चेव संतोवसमेण' अणुदओपसमेण वा मिच्छत्तसव्वधादिफइयाणमुदएण मिच्छाइहो

शंका—किसी भी कर्मके नष्ट नहीं करनेवाले अपूर्णकरणसंयतके क्षायिकभाव
कैसे माना जा सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उसके भी कर्मक्षयके निमित्तभूत परिणाम पाये
जाते हैं ।

यहां पर भी कर्मोंके क्षय होने पर उत्पन्न होनेवाला भाव क्षायिक है, तथा
कर्मोंके क्षयके लिए उत्पन्न हुआ भाव क्षायिक है, ऐसी दो प्रकारकी शब्द-व्युत्पत्ति
ग्रहण करना चाहिए । अथवा उपचारसे अपूर्णकरण संयतके क्षायिक भाव मानना चाहिए ।

शंका—इस प्रकार सर्वत्र उपचारके आश्रय करने पर अतिप्रसंग दांप क्यों नहीं
प्राप्त होगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रत्यासत्ति अर्थात् समीपवर्ती अर्थके प्रसंगसे अति-
प्रसंग दोषका प्रतिषेध हो जाता है ।

इस प्रकार ओघ भावानुगम समाप्त हुआ ।

आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणोंके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि
यह कौनसा भाव है ? औदयिक भाव है ॥ १० ॥

क्योंकि, वहां पर मिथ्यात्वके उदयसे उत्पन्न हुआ अथवादानरूप परिणाम पाया
जाता है ।

शंका—सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सद-
यस्थारूप उपशमसे, तथा सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके
सदवस्थारूप उपशमसे अथवा अनुदयोपशमसे और मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती

१ प्रतिपु 'खण्डुज्जाओ' इति पाठः ।

२ विक्षेपेण गत्यनुवादेन नरकगती प्रयाणां पृथिव्यां नारकाणां मिथ्यादृष्ट्यादयस्तत्सम्यग्दृष्टगताणां
सामान्यत्वं । स सि १, ८. ३ अग्रतो 'सम्मउदेववादि' । सतोवसमेण' इति पाठस्य दिसाट्ठि ।

उप्यज्जदि त्ति खओवसमिओ सो किण्ण होदि ? उच्चदे- ण ताव सम्मत्त-सम्माभिच्छत्त-
देसवादिफहयाणमुदयक्खओ संतोवसमो अणुदओवसमो वा मिच्छादिट्ठीए कारणं, सव्वहि-
चारिआदो । जं जदो णियमेण उप्यज्जदि तं तस्स कारणं, अण्णहा अणवत्थाप्पसंगादो ।
जदि मिच्छुप्यज्जणकाले विज्जमाणा तक्कारणत्तं पडिवज्जंति तो णाण-दंसण-अंसजमा-
दओ वि तक्कारणं होति । ण चेवं, तहाविहवहारभावा । मिच्छादिट्ठीए पुण
मिच्छुदुओ कारणं, तेण विणा तदणुप्पत्तीए ।

सासणसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, पारिणामिओ भावो ॥ ११ ॥

अणंताणुबंधीणमुदण्णेन सासणसम्मादिट्ठी होदि त्ति ओदइओ भावो किण्ण
उच्चदे ? ण, आइल्लेसु चहुसु वि गुणद्वानेसु चारित्तवरणतिव्वोदएण पत्तासंजमेसु दंसण-
मोहणिवंधणेसु चारित्तमोहविवाखाभावा । अपिदस्स दंसणमोहणीयस्स उदएण उवसमेण
खएण खओवसमेण वा सासणसम्मादिट्ठी ण होदि त्ति पारिणामिओ भावो ।

स्पर्धकोके उदयसे मिथ्यादृष्टिभाव उत्पन्न होता है, इसलिये उसे क्षायोपशमिक क्यों न
माना जाय ?

समाधान—न तो सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंके देशघाती
स्पर्धकोका उदयक्षय, अथवा सदवस्थारूप उपशम, अथवा अनुदयरूप उपशम मिथ्यादृष्टि-
भावका कारण है, क्योंकि, उसमें व्यभिचार दोष आता है । जो जिससे नियमतः उत्पन्न
होता है, वह उसका कारण होता है । यदि ऐसा न माना जावे, तो अनवस्था दोषका
प्रसंग आता है । यदि यह कहा जाय कि मिथ्यात्वके उत्पन्न होनेके कालमें जो भाव
विद्यमान हैं, वे उसके कारणपनेको प्राप्त होते हैं । तो फिर ज्ञान, दर्शन, असंयम आदि भी
मिथ्यात्वके कारण हो जावेंगे । किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, उस प्रकारका व्यवहार नहीं
पाया जाता है । इसलिये यही सिद्ध होता है कि मिथ्यादृष्टिका कारण मिथ्यात्वका उदय
ही है, क्योंकि, उसके बिना मिथ्यात्वभावकी उत्पत्ति नहीं होती है ।

नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? पारिणामिक भाव है ॥ ११ ॥

शंका—अनन्तानुबन्धी चारों कणायोंके उदयसे ही जीव सासादनसम्यग्दृष्टि
होता है, इसलिये उसे औदयिकभाव क्यों नहीं कहते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, दर्शनमोहनीयनिवन्धनक आदिके चारों ही गुणस्थानोंमें
चारित्रको आवरण करनेवाले मोहकर्मके तीव्र उदयसे असंयमभावके प्राप्त होनेपर भी
चारित्रमोहनीयकी विवक्षा नहीं की गई है । अतएव विवक्षित दर्शनमोहनीय कर्मके
उदयसे, उपशमसे, क्षयसे, अथवा क्षयोपशमसे सासादनसम्यग्दृष्टि नहीं होता है, इसलिये
वह पारिणामिक भाव है ।

सम्माभिच्छादिट्ठि त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो ॥ १२ ॥

कुदो ? सम्माभिच्छत्तुदए संते त्ति सम्मदंसणेगेदेसमुत्तलभा । सम्माभिच्छत्तभावे
पत्तजच्चंतरे अंससीभावो णलिय त्ति ण तत्थ सम्मदंसणस्स एगेदेस इदि चे, होहु णाम
अभेदिविक्खाए जच्चंतरत्तं । भेदे पुण विविक्षेदे सम्मदंसणभागो अत्थि चेव, अण्णहा
जच्चंतरत्तविरोहा । ण च सम्माभिच्छत्तस्स सव्वधाइत्तमेवं संते विरुज्झइ, पत्तजच्चंतरे
सम्मदंसणभावादो तस्स सव्वधाइत्ताविरोहा । मिच्छत्तसव्वधाइफहयाणं उदयक्खएण
तोसं चेव संतोवसमेण सम्मत्तस्स देसवादिफहयाणमुदयक्खएण तोसं चेव संतोवसमेण
अणुदओवसमेण वा सम्माभिच्छत्तसव्वधादिफहयाणमुदएण सम्माभिच्छत्तं होदि त्ति तस्स
खओवसमियत्तं केइं भणंति, तण्ण घडदे । कुदो ? सव्वहिचारिआदो । विउचारो पुब्बं
परूविदो त्ति णेह परूविज्जदे ।

**असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, उवसमिओ वा, खइओ वा,
खओवसमिओ वा भावो ॥ १३ ॥**

नारकी सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह कौनसा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ १२ ॥
क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके उदय होनेपर भी सम्यग्दर्शनका एक देश पाया
जाता है ।

शंका—जात्यन्तरत्व (भिन्न जातीयता) को प्राप्त सम्यग्मिथ्यात्वभावमें अंशांशी
(अवयव-अवयवी) भाव नहीं है, इसलिये उसमें सम्यग्दर्शनका एक देश नहीं है ?

समाधान—अभेदकी विवक्षामें सम्यग्मिथ्यात्वके भिन्नजातीयता भले ही रही
आवे, किन्तु भेदकी विवक्षा करनेपर उसमें सम्यग्दर्शनका एक भाग (अंश) है ही ।
यदि ऐसा न माना जाय, तो उसके जात्यन्तरत्वके माननेमें विरोध आता है । और, ऐसा
माननेपर सम्यग्मिथ्यात्वके सर्वघातिपना भी विरोधको प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि,
सम्यग्मिथ्यात्वके भिन्नजातीयता प्राप्त होनेपर सम्यग्दर्शनके एक देशका अभाव है, इस-
लिये उसके सर्वघातिपना माननेमें कोई विरोध नहीं आता ।

कितने ही आचार्य, मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोके उदयक्षयसे, उन्हीके
सदवस्थारूप उपशमसे, तथा सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोके उदयक्षयसे और
उन्हीके सदवस्थारूप उपशम, अथवा अनुदयरूप उपशमसे, और सम्यग्मिथ्यात्वके सर्व-
घाती स्पर्धकोके उदयसे सम्यग्मिथ्यात्वभाव होता है, इसलिये उसके क्षायोपशमिकता
कहते हैं । किन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, उक्त लक्षण सव्यभिचारी
है । व्यभिचार पहले प्ररूपण किया जा चुका है, (देखो पृ १९९) इसलिये यहां नहीं कहते हैं ।

नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव भी है, क्षायिक-
भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ १३ ॥

मोहणीयावयवस्स देसघादिलक्खणस्स उदयादो उप्पणसम्मादिट्ठिभावो खओवसमिओ । वेदगसम्मत्तफदयाणं खयसण्णा, सम्मतपडिबंधणसत्तीए तत्थाभावा । मिच्छत्त-सम्मा-मिच्छत्तानुदयाभावो उवसमो । तेहि देहि उप्पणत्तादो सम्माइट्ठिभावो खइओव-समिओ । खइओ भावो किण्णोवलम्भेदो ? ण, विदियादिसु पुढीसु खइयसम्मादिट्ठिण-मुप्पत्तीए अभावा ।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ १८ ॥

सम्मादिट्ठित्तं दुभावसण्णदं सोच्चा असंजदभावावगमत्थं पुच्छदसिस्ससंदेह-

विशेषार्थ—गति, जाति आदि पिंड-प्रकृतियोंमेंसे जिस किसी विवक्षित एक प्रकृतिके उदय आने पर अनुदय-प्राप्त शेष प्रकृतियोंका जो उसी प्रकृतिमें संक्रमण होकर उदय आता है, उसे स्तिवुकसंक्रमण कहते हैं । जैसे—एकेन्द्रिय जीवोंके उदय-प्राप्त एकेन्द्रिय जातिनामकमें अनुदय-प्राप्त द्वीन्द्रिय जाति आदिका संक्रमण होकर उदयमें आना । गति नामकमें भी पिंड-प्रकृति है । उसके चारों भेदोंमेंसे किसी एकके उदय होने पर अनुदय-प्राप्त शेष तीनों गतियोंका स्तिवुकसंक्रमणके द्वारा संक्रमण होकर विपाक होता है । प्रकृतमें यही बात देवगतिको लक्ष्यमें रखकर कही गई है कि देवगति नाम-कर्मके उदयकालमें शेष तीनों गतियोंका स्तिवुकसंक्रमणके द्वारा उदय पाया जाता है ।

दर्शनमोहनीयकर्मकी अवयवस्वरूप और देशघाती लक्षणवाली वेदकसम्यक्त्व-प्रकृतिके उदयसे उत्पन्न होनेवाला सम्यग्दृष्टिभाव क्षायोपशमिक कहलाता है । वेदक-सम्यक्त्वप्रकृतिके स्पर्धकोंकी क्षय संज्ञा है, क्योंकि, उसमें सम्यग्दर्शनके प्रतिबन्धनकी शक्तिका अभाव है । मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंके उदयाभावको उपशम कहते हैं । इस प्रकार उपर्युक्त क्षय और उपशम, इन दोनोंके द्वारा उत्पन्न होनेसे सम्यग्दृष्टिभाव क्षायोपशमिक कहलाता है ।

शंका—यहां क्षायिक भाव क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, द्वितीयादि पृथिवियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंकी उत्पत्तिका अभाव है ।

किन्तु उक्त नारकी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ १८ ॥

द्वितीयादि पृथिवियोंके सम्यग्दृष्टिको औपशमिक और क्षायोपशमिक, इन दो भावोंसे संयुक्त सुन कर वहां असंयतभावके परिक्षानार्थ प्रश्न करनेवाले शिष्यके

विणासण्डुमागदमिदं सुत्तं । संजमघादिचारित्तमोहणीयकर्मोदयसमुप्पणत्तादो असंजद-भावो ओदइओ । अदीदगुणट्ठाणेषु असंजदभावस्स अत्थित्तं एदेण सुत्तेण परूविदं ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियपज्जत्त-पंचि-दियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव संजदासंजदाण-मोघं ॥ १९ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठि त्ति ओदइओ, सासणसम्मादिट्ठि त्ति पारिणमिओ, सम्मा-मिच्छादिट्ठि त्ति खओवसमिओ, सम्मादिट्ठि त्ति ओवसमिओ खइओ खओवसमिओ चा; ओदइएण भावेण पुणो असंजदो, संजदासंजदो त्ति खओवसमिओ भावो इच्चेदेहि ओघादो चउब्बिहतिरिक्खणं भेदाभावा । पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु भेदपदुप्पायण्डु-मुत्तरसुत्तं भणदि—

णवरि विसेसो, पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, ओवसमिओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ २० ॥

संदेहको विनाश करनेके लिए यह सूत्र आया है । द्वितीयादि पृथिवीगत असंयतसम्य-ग्दृष्टि नारकियोंका असंयतभाव संयमघाती चारित्रमोहनीयकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेके कारण औदयिक है । तथा, इस सूत्रके द्वारा अतीत गुणस्थानोंमें असंयतभावके अस्तित्वका निरूपण किया गया है ।

तिर्यचगतिमें तिर्यच, पंचेन्द्रियतिर्यच, पंचेन्द्रियतिर्यचपर्याप्त और पंचेन्द्रिय-तिर्यच योनिमतियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ १९ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि यह औदयिकभाव है, सासादनसम्यग्दृष्टि यह पारिणामिक-भाव है, सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह क्षायोपशमिकभाव है, सम्यग्दृष्टि यह औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव है, तथा औदयिकभावकी अपेक्षा वह असंयत है, संयतासंयत यह क्षायोपशमिक भाव है । इस प्रकार ओघसे चारों प्रकारके तिर्यचोंकी भावप्ररूपणमें कोई भेद नहीं है ।

अब पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमें भेद प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेष बात यह है कि पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ २० ॥

कुदो ? उनसम-वेदयसम्मादिद्वीणं चेय तत्थ संभगदो । खइओ भावो किण्ण तत्थ संभाइ ? सदयसम्मादिद्वीणं व द्वाउआणं त्थिवेदएसु उपपत्तीए अभावा, मणुसगइ-वदिरित्तयेसगसु दंसणमोहणीयसराणाए अभावादो च ।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ २१ ॥

सुगमभेदं ।

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव अजोगिकेवल्लि ति ओघं ॥ २२ ॥

तिविहमणुससयलुणुण्डाणां ओघसयलुणुण्डाणेहिंतो भेदाभावा । मणुसअपज्जत्त-तिरिक्खअपज्जत्तमिच्छादिद्वीणं सुत्ते भावो किण्ण परुविदो ? ण, ओघपरुवणादो चेय तन्भावावगमादो पुथ ण परुविदो ।

क्योंकि, पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमें उपशमसम्यग्दृष्टि और क्षायोपशमिक-सम्यग्दृष्टि जीवोंका ही पाया जाना सम्भव है ।

शंका—उनमें क्षायिकभाव क्यों नहीं सम्भव है ?

समाधान—क्योंकि, वद्धयुक्क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंकी ह्रीवेदियोंमें उत्पत्ति नहीं होती है, तथा मनुष्यगतिके अतिरिक्त शेष गतियोंमें दर्शनमोहनीयकर्मकी क्षपणाका अभाव है, इसलिये पचेन्द्रियतिर्यच योनितियोंमें क्षायिकभाव नहीं पाया जाता ।

किन्तु तिर्यच असंयतसम्यग्दृष्टियोंका असंयतत्व औदयिकभावेसे है ॥ २१ ॥ यह सूत्र सुगम है ।

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ २२ ॥

क्योंकि, तीनों प्रकारके मनुष्योंसम्बन्धी समस्त गुणस्थानोंकी भावप्ररूपणामें ओघके सकल गुणस्थानोंसे कोई भेद नहीं है ।

शंका—लब्धपर्याप्तक मनुष्य और लब्धपर्याप्तक तिर्यच मिथ्यादृष्टि जीवोंके भावोंका सूत्रमें प्ररूपण क्यों नहीं किया गया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ओघसम्बन्धी भावप्ररूपणासे ही उनके भावोंका परि-ज्ञान हो जाता है, इसलिये उनके भावोंका सूत्रमें पृथक् निरूपण नहीं किया गया ।

१ मनुष्यगती मनुष्याणां भिष्यादृष्टयपयोगेस्त्वन्तानां सामान्यत्वं । स. ति. १, ८.

देवगदीए देवेषु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि ति ओघं ॥ २३ ॥

कुदो ? मिच्छादिद्वीणमोदएण, सासणाणं पारिणमिण्ण, सम्माभिच्छादिद्वीणं खओवसमिण्ण, असंजदसम्मादिद्वीणं ओवसमिय-खइय-सओगसमिण्हि भावेहि ओघ-मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिद्वीहि साधममुवलंभा ।

भवणवासिय-चाणवेंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप-वासियदेवीओ च मिच्छादिद्वी सासणसम्मादिद्वी सम्माभिच्छादिद्वी ओघं ॥ २४ ॥

कुदो ? एदेसि सुत्तुत्तगुण्डाणाणं सचपयारेण ओघादो भेदाभावा ।

असंजदसम्मादिट्ठि ति को भावो, उवसमिओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ २५ ॥

कुदो ? तत्थ उवसम-वेदगसम्मत्तणं दोण्हं चेय संभवादो । खइओ भानो एत्थ

देवगतिमें देवोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक भाव ओघके समान हैं ॥ २३ ॥

क्योंकि, देवमिथ्यादृष्टियोंकी औदयिकभावसे, देवसासादनसम्यग्दृष्टियोंकी पारिणामिकभावसे, देवसम्यग्मिथ्यादृष्टियोंकी क्षायोपशमिकभावसे और देवअसंयत-सम्यग्दृष्टियोंकी औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भावोंकी अपेक्षा ओघ मिथ्या-दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके भावोंके साथ समानता पाई जाती है ।

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देव एवं देवियां, तथा सौधर्म ईशान कल्पवासी देवियां, इनके मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि ये भाव ओघके समान हैं ॥ २४ ॥

क्योंकि, इन सूत्रोक्त गुणस्थानोंका सर्व प्रकार ओघसे कोई भेद नहीं है ।

असंयतसम्यग्दृष्टि उक्त देव और देवियोंके कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ २५ ॥

क्योंकि, उनमें उपशमसम्यक्त्व और क्षायोपशमिकसम्यक्त्व, इन दोनोंका ही पाया जाना सम्भव है ।

१ देवगती देवानां भिष्यादृष्टयपसंयतसम्यग्दृष्टयान्तानां सामान्यत्वं । स. भि. १, ८.

किण पल्लवो ? ण, भवणवासिय-चाणवेतर-जोदिसिय-विदियादिछुपुढविणेइय-सन्व-विगल्लिदिय-लद्धिअपज्जत्तिथीवेदेसु सम्मादिट्ठीणमुववादाभावा, मणुसगइवदिरित्तिणगईसु दंसणमोहणीयस्स खवणाभावा च ।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ २६ ॥

सुगमभेदं ।

सोधम्मीसाणपहुडि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छा-दिट्ठिणहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि ति ओवं ॥ २७ ॥

हुदो ? एत्थतणुणट्ठाणणं ओघचदुगुणट्ठाणेहिंतो अप्पिदभावहि भेदाभावा ।

अणुदिसादि जाव सन्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मा-दिट्ठि ति को भावो, ओवसमिओ वा खइओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ २८ ॥

शंका—उक्त भवनविक आदि देव और देवियोंमे क्षायिकनाव क्यों नहीं वतलाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क देव, द्वितीयादि उह पृथिवियोंके नारकी, सर्व विकलेन्द्रिय, सर्व लब्धपर्याप्तक और छावेदियोंमें सम्य-ग्दृष्टि जीवोंकी उत्पत्ति नहीं होती है, तथा मनुष्यगतिके अतिरिक्त अन्य गतियोंमें दर्शन-मोहनीयकर्मकी क्षपणाका अभाव है, इसलिए उक्त भवनविक आदि देव और देवियोंमें क्षायिकभाव नहीं वतलाया गया ।

किन्तु उक्त असंयतसम्यग्दृष्टि देव और देवियोंका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ २६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सौधर्म-ईशानकल्पसे लेकर नव त्रैवेयक पर्यंत विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक भाव ओषके समान है ॥ २७ ॥

क्योंकि, सौधर्मादि विमानवासी चारों गुणस्थानवर्ती देवोंके ओघसम्बन्धी चारों गुणस्थानोंकी अपेक्षा विवक्षित भावोंके साथ कोई भेद नहीं है ।

अनुदिश आदिसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भी है, क्षायिक भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ २८ ॥

तं जहा—वेदगसम्मादिट्ठीणं खओवसमिओ भावो, खइयसम्मादिट्ठीणं खइओ, उवससम्मादिट्ठीणं ओवसमिओ भावो । तत्थ मिच्छादिट्ठीणमभावे संते कथमुवसम-सम्मादिट्ठीणं संभवो, कारणाभावे कज्जस्स उप्पत्तिविरोहादो ? ण एस दोसो, उवसम-सम्मत्तेण सह उवसमसेडि चंडंत-ओदरताणं संजदणं कालं करिय देवेसुप्पण्णाणमुवसम-सम्मत्तुवलंभा । तिसु ट्ठाणेसु पउत्तो वासदो अणत्थओ, एगेणेव इड्ढकज्जसिद्धिदो ? ण, मंदवुद्धिमिस्साणुगहट्ठचादो ।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ २९ ॥

सुगमभेदं ।

एव गइमगणा सम्मत्ता ।

इंदियाणुवादेण पंचिदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव अजोगिकेवलि ति ओवं ॥ ३० ॥

जैसे—वेदकसम्यग्दृष्टि देवोंके क्षायोपशमिक भाव, क्षायिकसम्यग्दृष्टि देवोंके क्षायिक भाव और उपशमसम्यग्दृष्टि देवोंके औपशमिक भाव होता है ।

शंका—अनुदिश आदि विमानोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अभाव होते हुए उपशम-सम्यग्दृष्टियोंका होना कैसे सम्भव है, क्योंकि, कारणके अभाव होनेपर कार्यकी उत्पत्तिका विरोध है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, उपशमसम्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणी-पर चढ़ते और उतरते हुए मरणकर देवोंमें उत्पन्न होनेवाले संयतोंके उपशमसम्यक्त्व पाया जाता है ।

शंका—सूत्रमें तीन स्थानोंपर प्रयुक्त हुआ 'वा' शब्द अनर्थक है, क्योंकि, एक ही 'वा' शब्दसे इष्ट कार्यकी सिद्धि हो जाती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मंदवुद्धि शिष्योंके अनुग्रहार्थ सूत्रमें तीन स्थानोंपर 'वा' शब्दका प्रयोग किया गया है ।

किन्तु उक्त असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका असंयतत्व औदयिकभावसे है ॥ २९ ॥ यह सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई ।

इन्द्रियमार्गणके अनुवादेसे पंचेन्द्रियपर्याप्तकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगि-केवली गुणस्थान तक भाव ओषके समान हैं ॥ ३० ॥

१ इन्द्रियावुवादेन एकेन्द्रियविकलेन्द्रियाणामौदयिको भाव । पंचेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्ट्यायोगकेवल्यान्तानां सामान्यवत् । स मि १, ८.

कुदो ? मन्थनयुगद्वाणाणमोघयुगङ्गुणेहिंतो अपिपदभावं पडि भेदाभावा ।
 एइय-नैइय-नैइय-चउरिंहिय-पंचिदियअजत्तमिच्छादिद्वीणं भावो किण्ण परूदिदो ?
 ण मम दोमो, परूणाणं मिणा णि तत्त भावोवलदीदो । परूणा कीरेदं परावोहणङ्गं,
 ण न अगमयअड्डपरूणा फलन्ता, परूणाकज्जस्म अगमस्स पुब्बमेवुप्पणत्तादो ।

वयमिन्द्रियमगणा समत्ता ।

कायाणुवादेण तसकाइय-तसकाइयपञ्चएसु मिच्छादिहिप्पहुडि
जाव अजोगिकेवल्लि ति ओघं ॥ ३१ ॥

कृदो ? ओघपुण्ड्राणेहिंनो एत्यतपुण्ड्राणामपिदभवेहि भेदाभावा । सव्व-
पुड्डीत्तवआउ-मवनेउ-मवनाउ-सव्ववणफदि-तमअपज्जत्तमिच्छादिद्वीणं भावपरुवणा
मुत्ते ण कदा, अगदपरुवणाए फलाभावा । तस-तसपज्जत्तपुण्ड्राणभावो ओघादो चेव
णज्जिदि ति तवभापरुवणमणत्ययमिदि तपरुवणं पि मा किज्जदु ति भणिदे ण, तत्य

पर्याप्त, पञ्चोन्नियपर्यातिनामं ह्येतेषां गुणस्यानोक्ता ओघगुणस्यानोक्ती अपेक्षा
वियक्षित भावोक्तेः प्रति तेषां भेदः नही है ।

चुंका—यहांपर फेलेन्द्रिय, डीन्द्रिय, वीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पंचेन्द्रिय अप-
र्यान्त सिव्यादि जीवोते भावोंकी प्ररूपणा क्यों नहीं की ?

ममसाधन—यह कोई दोग नहीं, क्योंकि, प्ररूपणाके बिना भी उनमें होनेवाले भावोंका ज्ञान पाया जाता है। प्ररूपणा दूसरोंके परिज्ञानके लिये की जाती है, किन्तु जाने-बूझे अर्थही प्ररूपणा कल रही नहीं होती है, क्योंकि, प्ररूपणाका कार्यभूत ज्ञान प्ररूपणा करनेके पूर्वमें ही उत्पन्न हो चुका है।

इस प्रकार इन्द्रियमार्गणा समाप्त हुई ।

नायमार्गणके अनुवादेने त्रसकार्यिक और त्रसकार्यिक पर्याप्तकामे मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिके ली गुणस्थान तक भान ओधके समान हैं ॥ ३१ ॥

स्वयंकि, जोगगुणस्थानोंकी अपेक्षा इसकायिक और इसकायिकपर्याप्ततामें होने-
पाठं गुणस्थानोंका विचक्षण भावोंके साथ कोई भेद नहीं है। सर्व पृथिवीकायिक, सर्व
जलकायिक, सर्व तेजस्कायिक, सर्व वायुकायिक, सर्व चनस्पतिकायिक और इस लब्ध-
पर्याप्तत मिश्रणद्वि जीवोंकी भावप्ररूपणा सूत्रमें नहीं की गई है, क्योंकि, जाने हुए
भाग्योंकी प्ररूपणा करनेमें कोई फल नहीं है।

शंका—वसकयिक और वसकयिक पर्याप्त जीवोंमें सम्भव गुणस्थानोंके भाग ओगलें ही नात हो जाते हैं, इसलिये उनके भावोंका प्ररूपण करना अनर्थक है, अतः उनका प्ररूपण भी नहीं करना चाहिये ?

१ माण्डादेन स्यारत्तगिम्मानोदयितो मा । नसकगिम्मानो सामान्यमेव । स. सि. १, ८.

बहुसु गुणद्वारेणु संतेसु किणु कस्सइ अणो भावो होदि ति संदेहो मा होदि
ति तप्पडिसेहदं तप्परुणाकरणादो ।

एव कयिमगणा समत्ता ।

जोगाणुवादेण पंचमजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-ओरा-
लियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव सजोगिकेवल ति ओधं
॥ ३२ ॥

सुगममेदं ।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु
मिच्छादिद्वि-सासणसम्मादिद्विणं
ओघं ॥ ३३ ॥

एदं पि सुगमं ।

असंजदसमादिद्धि ति को भावो, खइओ वा खओवसमिओ
वा भावो ॥ ३४ ॥

कुदो ? खइय-चेदरासम्मादिठ्ठाणं देव-गेरइय-मणुसाणं तिरिक्ख-मणुसेसु उप्पज्जन-समाधान --नहीं, क्योंकि, ब्रह्मकायिक और ब्रह्मकायिकृत्यसिद्धांतोंमें बहुतसे गुण-स्थानोंके होनेपर म्या किसी जीवके कोई अन्य भाव होता है, अथवा नहीं होता है, इस प्रकारका सन्देह न होवे, इस कारण उसके प्रतिषेध करनेके लिए उनके भावोंकी प्रन्-पणा की गई है।

इस प्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई ।

योरासार्गणके अनुवादसे पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकवली गुणस्थान तक भाव ओषके समान हैं ॥ ३२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदारिकमिश्रकाययोषियोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्बद्दष्टियोंके भव
 ओषधके समान हैं ॥ ३३ ॥
 यह सूत्र भी सुगम है ।

यह सूत्र भी सुगम है ।

औदारिकमिश्रणयोगी असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? धार्मिक भाव भी है और धार्योपशमिक भाव भी है ॥ ३४ ॥

क्याँकि, तियच और मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले क्षायिकसम्पदप्रि तथा वेदक-
 १ योगानुादेन कायवाह्यानसयोगिनां भिष्यादृथादिरायोगकेन्द्रयन्तानामयोगकेनलिनां च मामान्यसेव ।
 स. सि. १, ८.

माणमुवलंभा । ओवसमिओ भावा एत्थ किण्ण परूविदो ? ण, चउग्गइउवससम्मा-
दिट्ठीणं मण्णाभावादो ओरालियमिस्सिग्गिह उवससम्मतस्सुवलंभाभावा । उवसमसेडिं
चढत-ओअंतंसजदणमुवससम्मतत्तेण मरणं अत्थि ति चे सच्चमत्थि, किंतु ण ते
उवसससम्मतत्तेण ओरालियमिस्सकायजोगिणो होति, देवगदिं मोचूण तेसिम्णत्थ
उप्पत्तीए अभावा ।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ ३५ ॥

सुगमेदं ।

सजोगिकेवलि ति को भावो, खइओ भावो ॥ ३६ ॥

एदं पि सुगमं ।

वेउन्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठिण्हडि जाव असंजदसम्मा-
दिट्ठि ति ओघमंगो ॥ ३७ ॥

सम्यग्दृष्टि देव, नारकी और मनुष्य पाये जाते हैं ।

शंका—यहां, अर्थात् औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें, औपशमिकभाव क्यों
नहीं बतलाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, चारों गतियोंके उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका मरण नहीं
होनेसे औदारिकमिश्रकाययोगमें उपशमसम्यक्त्वका सद्भाव नहीं पाया जाता ।

शंका—उपशमश्रेणीपर चढ़ते और उतरते हुए संयत जीवोंका उपशमसम्यक्त्वके
साथ तो मरण पाया जाता है ?

समाधान—यह कथन सत्य है, किन्तु उपशमश्रेणीमें मरनेवाले वे जीव उपशम-
सम्यक्त्वके साथ औदारिकमिश्रकाययोगी नहीं होते हैं, क्योंकि, देवगतिको छोड़कर
उनकी अन्यत्र उत्पत्तिका अभाव है ।

किन्तु औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदारिक
भावसे है ॥ ३५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली यह कौनसा भाव है ? क्षायिक भाव
है ॥ ३६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

वैक्रियिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक
भाव ओघके समान है ॥ ३७ ॥

एदं पि सुगमं ।

वेउन्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असं-
जदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ३८ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठीणमोदइएण, सासणसम्मादिट्ठीणं, पारिणामिएण, असंजद-
सम्मादिट्ठीणं ओवसमिय-खइय-खओवसमियभावोहि ओघमिच्छादिट्ठिआदीहि साध-
मुवलंभा ।

आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमतसंजदा ति को
भावो, खओवसमिओ भावो ॥ ३९ ॥

कुदो ? चारित्तावरणचटुसंजलण-सत्तणोकोकायाणमुदए सेंते वि पमादाणुविद्धसंज-
मुवलंभा । कधमेत्थ खओवसमो ? पत्तोदयएक्कारसचारित्तमोहणीयपयडिदेसघादिफद-
याणमुवसमसण्णा, णिरवसेसेण चारित्तघायणसत्तीए तथुवसमुवलंभा । तेसिं चेव सन्व-
घादिफदयाणं खयसण्णा, णट्ठोदयभावत्तादो । तेहि देहिं मि उप्पणो संजमो खओव-

यह सूत्र भी सुगम है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्य-
ग्दृष्टि ये भाव ओघके समान हैं ॥ ३८ ॥

क्योंकि, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंके औदारिकभावसे, सासादन-
सम्यग्दृष्टियोंके पारिणामिकभावसे, तथा असंयतसम्यग्दृष्टियोंके औपशमिक, क्षायिक
और क्षायोपशमिक भावोंकी अपेक्षा ओघ मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंके भावोंके साथ
समानता पाई जाती है ।

आहारकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत यह कौनसा
भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ३९ ॥

क्योंकि, यथाव्ययतचारित्रिके आवरण करनेवाले चारों संज्वलन और सात
नोकपयोंके उदय होने पर भी प्रमादसंयुक्त संयम पाया जाता है ।

शंका—यहां पर क्षायोपशमिकभाव कैसे कहा ?

समाधान—आहारक और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें क्षायोपशमिकभाव
होनेका कारण यह है कि उदयको प्राप्त चार संज्वलन और सात नोकपाय, इन ग्यारह
चारित्रमोहनीय प्रकृतियोंके देशघाती स्पर्धकोकी उपशमसंज्ञा है, क्योंकि, सम्पूर्णरूपसे
चारित्र घातनेकी शक्तिका वहां पर उपशम पाया जाता है । तथा, उन्हीं ग्यारह चारित्र-
मोहनीय प्रकृतियोंके सर्वघाती स्पर्धकोकी क्षयसंज्ञा है, क्योंकि, वहां पर उनका उदयमें
आना नष्ट हो चुका है । इस प्रकार क्षय और उपशम, इन दोनोंसे उत्पन्न होनेवाला

समिधौ । अथवा एतन्नामकमण्डपस्तेव सञ्जोतसमसण्णा । कुदो ? चारित्तायण-
मसीए अयान्तमेव तव्वनएमादो । तेण उपपण्ण इदि सञ्जोवससिओ पमादाणुविद्धसंजसो ।

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजद-
सम्मादिट्ठी सञ्जोगिकेवली ओधं ॥ ४० ॥

हुदो ? मिच्छादिट्ठीणमादइएण, सासणाणं पारिणासिएण, कम्मइयकायजोगिसं-
जदसम्मादिट्ठीणं ओवसमिय-सइय-सञ्जोवसमियभावेहि, सञ्जोगिकेवलीणं खइएण भावेण
ओधम्मि' गदगुणद्वणेहि साधम्ममुलंभा ।

एव जोगमगणा समत्ता ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेद-णउंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठी-
पहुडि जाव अणियट्ठि त्ति ओधं ॥ ४१ ॥

मुगममेदं, एदस्सट्ठपरूवणाए विणा वि अत्योवलद्वीदो ।

संयम क्षायोपशमिक कहलता हे । अथवा, चारित्तमोहसम्बन्धी उक्त ग्याह कर्मप्रकृतियोंके
उदयकी ही क्षयोपशमसंज्ञा है, क्योंकि, चारित्रिके घातनेकी शक्तिके अभावकी ही क्षयो-
पशमसंज्ञा है । इस प्रकारके क्षयोपशमसे उत्पन्न होनेवाला प्रमादयुक्त संयम क्षायोप-
शमिक है ।

कार्मणकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और
सञ्जोगिकेवली ये भाव ओघके समान हैं ॥ ४० ॥

क्योंकि, कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंके औदयिकभावसे, सासादनसम्यग्दृष्टि-
योंके पारिणामिकभावसे, असंयतसम्यग्दृष्टियोंके औपशमिक, क्षायिक और क्षायोप-
शमित भावोंकी अपेक्षा, तथा सञ्जोगिकेवलियोंके क्षायिकभावोंकी अपेक्षा ओघमें कहे गये
गुणस्थानोंके भावोंके साथ समानता पाई जाती है ।

इस प्रकार योगमार्गणा समाप्त हुई ।

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदियोंमें मिथ्यादृष्टिसे
लेकर अनियुत्तिकरण गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ४१ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, इसके अर्थकी प्ररूपणोंके विना भी अर्थका ज्ञान हो
जाता है ।

१ परिणु 'ओ' ति' इति पाठः । २ वेदाणुवादेन तांषु पुनर्मवेदनां X X सामान्यवत् । स नि १, ८.

अवगदवेदएसु अणियट्ठिपहुडि जाव अजोगिकेवली ओधं
॥ ४२ ॥

एत्थ चोदगो भणदि-जोणि-मेहणादीहि समण्णिदं सरिरं वेदो, ण तस्स
विणासो अत्थि, सज्जदणं मरणप्पसंगा । ण भाववेदविणासो वि अत्थि, सरिरे अविण्हे
तब्भावस्स विणासविरोहा । तदो णावगदवेदत्तं जुज्जे इदि ? एत्थ परिहारो उच्चदे- ण
सरिरमित्थि-पुरिसवेदो, णामकम्मजणिदस्स सरिरस्स मोहणीयत्तविरोहा । ण मोहणीय-
जणिदमवि सरिरं, जीवविवाइणां माहणीयस्स पोग्गलविवाइत्तविरोहा । ण सरिरभावो वि
वेदो, तस्स तदो पुध्भूदस्स अणुवलंभा । परिसेसादो मोहणीयदव्वकम्मक्खंधो तज्जणिद-
जीवपरिणासो वा वेदो । तत्थ तज्जणिदजीवपरिणामस्स वा परिणामेण सह कम्मक्खंधस्स
वा अभावेण अवगदवेदो होदि त्ति तेण णेस दोसो त्ति सिद्धं । सेसं सुगमं ।

एव वेदमगणा समत्ता ।

अपगतवेदियोंमें अनियुत्तिकरणसे लेकर अजोगिकेवली गुणस्थान तक भाव
ओघके समान हैं ॥ ४२ ॥

शंका—यहापर शंकाकार कहता है कि योनि और लिंग आदिसे संयुक्त शरीर
वेद कहलाता है । सो अपगतवेदियोंके इस प्रकारके वेदका विनाश नहीं होता है, क्योंकि,
यदि योनि, लिंग आदिसे समन्वित शरीरका विनाश माना जाय, तो अपगतवेदी संय-
तोंके मरणका प्रसंग प्राप्त होगा । इसी प्रकार अपगतवेदी जीवोंके भाववेदका विनाश
भी नहीं है, क्योंकि, जब तक शरीरका विनाश नहीं होता, तब तक शरीरके
धर्मका विनाश माननेमें विरोध आता है । इसलिये अपगतवेदता युक्तिसंगत नहीं है ?

समाधान—अब यहां उपर्युक्त शंकाका परिहार कहते हैं- न तो शरीर, ली या
पुरुषवेद है, क्योंकि, नामकर्मसे उत्पन्न होनेवाले शरीरके मोहनीयपनेका विरोध है ।
और न शरीर मोहनीयकर्मसे ही उत्पन्न होता है, क्योंकि, जीवविपाकी मोहनीयकर्मके
पुद्गलविपाकी होनेका विरोध है । न शरीरका धर्म ही वेद है, क्योंकि, शरीरसे पृथग्भूत
वेद पाया नहीं जाता । पारिशेष न्यायसे मोहनीयके द्रव्यकर्मस्कंधको, अथवा मोहनीय-
कर्मसे उत्पन्न होनेवाले जीवके परिणामको वेद कहते हैं । उनमें वेदजनित जीवके परि-
णामका, अथवा परिणामके साथ मोहकर्मस्कंधका अभाव होनेसे जीव अपगतवेदी होता
है । इसलिये अपगतवेदता माननेमें उपर्युक्त कोई दोष नहीं आता है, यह सिद्ध हुआ ।
शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

इस प्रकार वेदमार्गणा समाप्त हुई ।

१ X X X कवेदनां व सामान्यवत् । स नि १, ८.

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-भाणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु
मिच्छादिट्ठिण्हडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा ओघं ॥४३॥
सुगममेदं ।

अकसाईसु चटुडणी ओघं ॥ ४४ ॥

चोदओ भणदि- कसाओ गाम जीवगुणो, ण तस्स विणासो अत्थि, णाण-दंस-
णाणमिव । विणासे वा जीवस्स विणासेण होदन्तं, णाण-दंसणविणासेणेव । तदो ण
अकसायत्तं घडदे इदि ? होदु णाण-दंसणाणं विणासमिद्वि जीवविणासो, तेसिं तल्लक्खण-
त्तादो । ण कसाओ जीवस्स लक्खणं, कम्मजणिदिदस्स तल्लक्खणत्तविरोहा । ण कसायाणं
कम्मजणिदत्तमसिद्धं, कसायवड्डीए जीवलक्खणणाहणिअणहाणुवत्तीदो तस्स कम्म-
जणिदत्तसिद्धीदो । ण च गुणो गुणंतरविरोहे, अणत्थ तहाणुवलंभा । सेसं सुगमं ।

एव कसायमगणा समत्ता ।

कपायमार्गणके अनुवादसे क्रोधकपायी, मानकपायी, मायकपायी और लोभ-
कपायी जीवोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर स्रष्टृसाम्प्रदाय उपशामक और क्षपक गुणस्थान तक
भाव ओघके समान हैं ॥ ४३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अकपायी जीवोंमें उपशान्तकपाय आदि चारों गुणस्थानवर्ती भाव ओघके
समान हैं ॥ ४४ ॥

शंका— यहा शंकाकार कहता है कि कपाय नाम जीवके गुणका है । इसलिये
उसका विनाश नहीं हो सकता, जिस प्रकार कि ज्ञान और दर्शन, इन दोनों जीवके
गुणोंका विनाश नहीं होता है । यदि जीवके गुणोंका विनाश माना जाय, तो ज्ञान और
दर्शनके विनाशके समान जीवका भी विनाश हो जाता चाहिये । इसलिये सूत्रमें कही
गई अकपायता घटित नहीं होती है ?

समाधान—ज्ञान और दर्शनके विनाश होनेपर जीवका विनाश भले ही हो
जावे, क्योंकि, वे जीवके लक्षण हैं । किन्तु कपाय तो जीवका लक्षण नहीं है, क्योंकि,
कर्मजनित कपायको जीवका लक्षण माननेमें विरोध आता है । और न कपायोंका कर्मसे
उत्पन्न होना असिद्ध है, क्योंकि, कपायोंकी वृद्धि होनेपर जीवके लक्षणभूत ज्ञानकी
हानि अन्यथा बन नहीं सकती है । इसलिये कपायका कर्मसे उत्पन्न होना सिद्ध है ।
तथा गुण गुणान्तरका विरोधी नहीं होता, क्योंकि, अन्यत्र वेसा देखा नहीं जाता ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

इस प्रकार कपायमार्गणा समाप्त हुई ।

१ कपायाउवादेन कोधमानमायालोभनपायाणा $\times \times$ सामान्यवत् । स सि १, ८
२ $\times \times \times$ अकपायाणां च सामान्यवत् । स सि १, ८ ३ प्रतिगु 'तदो शुक्कायच' इति पाठ ।

णाणानुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणाणीसु मिच्छा-
दिद्वी सासणसम्मादिद्वी ओघं ॥ ४५ ॥

कथं मिच्छादिट्ठिणाणस्स अण्णाणत्तं ? णाणकज्जाकरणादो । किं णाणकज्जं ?
णादत्थसद्वहणं । ण तं मिच्छादिट्ठिमिद्वि अत्थि । तदो णाणमेव अण्णाणं, अण्णाहा
जीवविणासप्यसंगा । अवगयदवधम्मणाइसु मिच्छादिट्ठिमिद्वि सद्वहणमुवलंभए चे ण,
अत्तागमपयत्थसद्वहणविरहियस्स दवधम्मणाइसु जहडसद्वहणविरोहा । ण च एस ववहारो
लोभे अप्पसिद्धो, पुत्तकज्जमज्जुणंते पुत्ते वि लोभे अपुत्तववहारदंसणादो । तिसु
अण्णाणसु गिरुद्धेसु सम्माभिच्छादिट्ठिभावो किण्ण परूविदो ? ण, तस्स सद्वहणासद्वहणेहि

ज्ञानमार्गणके अनुवादसे मत्तज्ञानी, श्रुताज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवोंमें
मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि भाव ओघके समान हैं ॥ ४५ ॥

शंका—मिथ्यादृष्टि जीवोंके ज्ञानको अज्ञानपना कैसे कहा ?

समाधान—स्यौकि, उनका ज्ञान ज्ञानका कार्य नहीं करता है ।

शंका—ज्ञानका कार्य क्या है ?

समाधान—जाने हुए पदार्थका श्रद्धान करना ज्ञानका कार्य है ।

इस प्रकारका ज्ञानकार्य मिथ्यादृष्टि जीवमें पाया नहीं जाता है । इसलिये उनके
ज्ञानको ही अज्ञान कहा है । (यहांपर अज्ञानका अर्थ ज्ञानका अभाव नहीं लेना चाहिये)
अन्यथा (ज्ञानरूप जीवके लक्षणका विनाश होनेसे लक्ष्यरूप) जीवके विनाशका प्रसंग
प्राप्त होगा ।

शंका—दयाधर्मेसे रहित जातियोंमें उत्पन्न हुए मिथ्यादृष्टि जीवमें तो श्रद्धान
पाया जाता है (फिर उसके ज्ञानको अज्ञान क्यों माना जाय) ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, आस, आगम और पदार्थके श्रद्धानसे रहित जीवके
दयाधर्म आदिमें यथार्थ श्रद्धानके होनेका विरोध है (अतएव उनका ज्ञान अज्ञान ही है) ।
ज्ञानका कार्य नहीं करने पर ज्ञानमें अज्ञानका व्यवहार लोकमें अप्रसिद्ध भी नहीं है,
क्योंकि, पुत्रकार्यको नहीं करनेवाले पुत्रमें भी लोकके भीतर अपुत्र कहनेका व्यवहार
देखा जाता है ।

शंका—तीनों अज्ञानोंको निरुद्ध अर्थात् आश्रय कर उनकी भावप्ररूपणा करते
हुए सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका भाव क्यों नहीं बतलाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, श्रद्धान और अश्रद्धान, इन दोनोंसे एक साथ अनुविद्ध

१ ज्ञानानुवादेन मयज्ञानिश्रुताज्ञानिविभंगणाणिनां $\times \times$ सामान्यवत् । स सि १, ८

देहिं वि अक्कमेण अणुविद्धस्य संजडासंजदो व्य पत्तज्जन्तस्स णाणेषु अण्णाणेषु वा अत्थियन्तिरोहा । मेयं सुगमं ।

आभिणिवोहिय-सुद-ओधिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठिपहुडि जाव खीणकसायवीदरागछुदुमत्था ओघं ॥ ४६ ॥

सुगममेदं, ओघादो मानं पडि भेदाभावा ।

मणपज्जवणाणीसु पमत्तसंजदपहुडि जाव खीणकसायवीदराग-छुदुमत्था ओघं ॥ ४७ ॥

पदं वि सुगमं ।

केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं ॥ ४८ ॥

कुदो ? राइयभावं पडि भेदाभावा । सजोगो ति को भावो ? अणादिपारिणामिओ भावो । णोमसामिओ, मोहणीए अणुमंसे ति जोगुवलंभा । ण खइओ, अणप्यसरूवस्स कम्माणं उण्णप्पत्तिनिरोहा । ण धादिकम्मोदयजणिओ, णट्टे वि धादिकम्मोदए केव-

होनेके कारण संयताम्यतके समान भिन्नजातीयताको प्राप्त सम्यग्मिथ्यात्वका पांचों तानाई, जयता नीनों धामानोंमें अस्तित्व होनेका विरोध है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

आभिनिमोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर क्षीणकसायवीतरागछद्वय गुणस्थान तरु भाव ओघके समान हैं ॥ ४६ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, ज्ञानमार्गणमें ओघसे भावकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है । मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयतसे लेकर क्षीणकसायवीतरागछद्वय गुणस्थान तरु भाव ओघके समान हैं ॥ ४७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

केवलज्ञानियोंमें संयोगिकेवली भाव ओघके समान है ॥ ४८ ॥

क्योंकि, क्षायिकभावेक प्रति कोई भेद नहीं है ।

श्रुता—‘संयोग’ यह कौनसा भाव है ?

समाधान—‘संयोग’ यह अनादि पारिणामिक भाव है । इसका कारण यह है कि यह योग न तो आपश्नामिक भाव है, क्योंकि, मोहनीयकर्मके उपशम नहीं होने पर भी योग पाया जाता है । न यह क्षायिक भाव है, क्योंकि, आत्मस्वरूपसे रहित योगकी कर्मोंके क्षयसे उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है । योग धातिकर्मोदय-जनित भी नहीं है,

१ ४४×४ नदि शुतावधिगन पयसेवल्लहानिना च समानवत् । स डि. १, ८.

लिप्पिह जोगुवलंभा । णो अघादिकम्मोदयजणिदो वि, संते वि अघादिकम्मोदए अजोगिप्पिह जोगाणुवलंभा । ण सरीरणामकम्मोदयजणिदो वि, पोगलविवाइयाणं जीवपरिफुहणेहउत्त-विरोहा । कम्मइयसरीरं ण पोगलविवाइ, तदो पोगलाणं वण्ण-रस-गंध-फास-संठाणा-गमणादीणमणुवलंभा । तदुप्पाइदो जोगो होदु चे ण, कम्मइयसरीरं पि पोगलविवाइ चेव, सव्वकम्माणमासयत्तादो । कम्मइओदयविणट्ठसमए चेव जोगविणासदंसणादो कम्मइयसरीरजणिदो जोगो चे ण, अघाइकम्मोदयविणासाणंतरं विणस्संतभवि्यत्तस्स पारिणामियस्स ओदइयत्तप्पसंगा । तदो सिद्धं जोगस्स पारिणामियत्तं । अघवा ओदइओ जोगो, सरीरणामकम्मोदयविणासाणंतरं जोगविणासुवलंभा । ण च भवि्यत्तेण विउवचारे, कम्मसंघविरोहिणो तस्स कम्मजणिदत्तविरोहा । सेसं सुगमं ।

एव णाणसगणा समत्ता ।

क्योंकि, धातिकर्मोदयके नष्ट होने पर भी संयोगिकेवलीमें योगका सद्भाव पाया जाता है । न योग अघातिकर्मोदय-जनित भी है, क्योंकि, अघातिकर्मोदयके रहने पर भी अयोगिकेवलीमें योग नहीं पाया जाता । योग शरीरनामकर्मोदय-जनित भी नहीं है, क्योंकि, पुद्गलविपाकी प्रकृतियोंके जीव-परिस्पंदनका कारण होनेमें विरोध है ।

श्रुता—कर्मणशरीर पुद्गलविपाकी नहीं है, क्योंकि, उससे पुद्गलोंके वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श और संस्थान आदिका आगमन आदि नहीं पाया जाता है । इसलिए योगको कर्मणशरीरसे उत्पन्न होनेवाला मान लेना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सर्व कर्मोंका आश्रय होनेसे कर्मणशरीर भी पुद्गल-विपाकी ही है । इसका कारण यह है कि वह सर्व कर्मोंका आश्रय या आधार है ।

श्रुता—कर्मणशरीरके उदय विनष्ट होनेके समयमें ही योगका विनाश देखा जाता है । इसलिए योग कर्मणशरीर-जनित है, ऐसा मानना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यदि ऐसा माना जाय तो अघातिकर्मोदयके विनाश होनेके अनन्तर ही विनष्ट होनेवाले पारिणामिक भव्यत्वभावके भी औदयिकपनेका प्रसंग प्राप्त होगा ।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचनसे योगके पारिणामिकरूपना सिद्ध हुआ । अथवा, ‘योग’ यह औदयिकभाव है, क्योंकि, शरीरनामकर्मके उदयका विनाश होनेके पश्चात् ही योगका विनाश पाया जाता है । और, ऐसा माननेपर भव्यत्वभावके साथ व्यभिचार भी नहीं आता है, क्योंकि, कर्मसम्वन्धके विरोधी पारिणामिकभावकी कर्मसे उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई ।

१ निरूपयोगमन्त्यम् । त ए. २, ४४ । अन्ते समगन्त्यम् । किं तत् ? कर्मणम् । इत्थियपगालिकया चन्ददीनापुलविषयमोगः । तदभावाविषयमोगम् । स. ति. ३, ४४.

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओधं ॥ ४९ ॥

सुगममेदं ।

सामाइयछेदेवद्वावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणि-यट्ठि ति ओधं ॥ ५० ॥

एदं पि सुगमं ।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ओधं ॥ ५१ ॥

कुदो ? खओवसमियं भावं पडि विसेसाभावा । पमत्तापमत्तसंजदेसु अणो वि भावा संति, एत्थ ते किण्ण परूविदा ? ण, तेसिं पमत्तापमत्तसंजमत्ताभावा । पमत्ता-पमत्तसंजदाणं भावेसु पुच्छिदेसु ण हि सम्मत्तादिभावानं परूवणा णाओववणोत्तिं ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइया उवसमा खवा ओधं ॥ ५२ ॥

संयममार्गणके अनुवादेसे संयतोमं प्रमत्तसंयतसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ४९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोमं प्रमत्तसंयतसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ५० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

परिहारशुद्धिसंयतोमं प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत ये भाव ओघके समान हैं ॥ ५१ ॥

क्योंकि, क्षायोपशमिक भावके प्रति दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है ।

शंका — प्रमत्त और अप्रमत्त संयत जीवोंमें अन्य भाव भी होते हैं, यहांपर वे क्यों नहीं कहे ?

समाधान — नहीं, क्योंकि, वे भाव प्रमत्त और अप्रमत्त संयम होनेके कारण नहीं हैं । दूसरी बात यह है कि प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोमं भाव पूछनेपर सम्यक्त्व आदि भावोंकी प्ररूपणा करना न्याय सगत नहीं है ।

सूक्ष्मसांप्रसारिकशुद्धिसंयतोमं सूक्ष्मसांप्रसारिक उपशमक और क्षपक भाव ओघके समान हैं ॥ ५२ ॥

१ संयमावुवादेन संयतां संयतानां $\times \times \times$ सामान्यवत् । स ति १, ८

२ प्रतिपु ' णाओववणो ' ति ' इति पाठ ।

उवसमगणसुवसमिओ भावो, खवगणं खइओ भावो ति उत्तं होदि ।
जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चटुट्ठाणी ओधं ॥ ५३ ॥

सुगममेदं ।

संजदासंजदा ओधं ॥ ५४ ॥

एदं पि सुगमं ।

असंजदेसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि ति ओधं ॥ ५५ ॥

सुगममेदं, पुवं परूविदत्तादो ।

एव संजममगणा समत्ता ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि-अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव खीणकसायीदरागछटुमत्था ति ओधं ॥ ५६ ॥

उपशमकोंके औपशमिक भाव और क्षपकोंके क्षायिक भाव होता है, यह अर्थ सूत्रद्वारा कहा गया है ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोमं उपशान्तकषाय आदि चारों गुणस्थानवर्ती भाव ओघके समान हैं ॥ ५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संयतासंयत भाव ओघके समान है ॥ ५४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

असंयतोमं मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ५५ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, पहले प्ररूपण किया जा चुका है ।

इस प्रकार संयममार्गणा समाप्त हुई ।

दर्शनमार्गणके अनुवादेसे चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछट्ठस्य गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ५६ ॥

१ $\times \times \times$ संयतासंयतानां $\times \times \times$ सामान्यवत् । स ति १, ८

२ $\times \times \times$ असंयतानां च सामान्यवत् । स ति १, ८

३ दर्शनावुवादेन चक्षुदर्शनाचक्षुदर्शनावधिदर्शनैवत्वदर्शनिनां सामान्यवत् । स ति १, ८

कुदो ? मिच्छादिद्विपहृडि खीणकसायपञ्जतसन्वयुण्डाणां चक्षु-अचक्षु-
दंशनिराद्वियामणुजलभा ।

ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो ॥ ५७ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ ५८ ॥

पदाणि नो ति सुत्ताणि सुगमाणि ।

एवं दत्तमगमाणा समत्ता ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णील्लेस्सिय काउलेस्सिएसु चटु-
ट्ठाणी ओधं ॥ ५९ ॥

चटुहं टाणाणं समाहारो चटुट्ठणी । केण समाहारो ? एगलेस्साए । सेसं सुगमं ।

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिद्विपहृडि जाव अपमत्त-
संजदा ति ओधं ॥ ६० ॥

पदं सुगमं ।

क्योंकि, मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकसाय पर्यंत कोई गुणस्थान चक्षुदर्शन और
अचक्षुदर्शनवाले जीवोंसे रहित नहीं पाया जाता है ।

अधिदर्शनी जीवोंके भाव अधिज्ञानियोंके भावोंके समान हैं ॥ ५७ ॥

केवलदर्शनी जीवोंके भाव केवलज्ञानियोंके भावोंके समान हैं ॥ ५८ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समान्त हुई ।

लेख्यमार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेख्या, नीललेख्या और कापोतलेख्या बालोंमें
आदिके चार गुणस्थानमूर्ती भाव ओषके समान हैं ॥ ५९ ॥

चार स्थानोंके नमाहारको चतु-स्थानी कहते हैं ।

शुक्ला—चारों गुणस्थानोंका समाहार किस अपेक्षासे है ?

समाधान—एक लेख्यानी अपेक्षासे है, अर्थात् आदिके चारों गुणस्थानोंमें एकसी
लेख्या पाई जाती है ।

दोष सूत्रार्थ सुगम है ।

तेजोलेख्या और पत्रलेख्या बालोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंपत गुणस्थान
तक भाव ओषके समान हैं ॥ ६० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ लेख्यानुवादेन पत्रलेख्यानमलेख्यानां च सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिद्विपहृडि जाव सजोगिकेवलि ति
ओधं ॥ ६१ ॥

सुगममेदं ।

एवं लेस्साणमगमाणा समत्ता ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिद्विपहृडि जाव अजोगि-
केवलि ति ओधं ॥ ६२ ॥

कुदो ? एत्थतणगुण्डाणाणं ओघगुण्डाणेहिहो भवियत्तं षडि भेदाभावा ।

अभवसिद्धिय ति को भावो, पारिणाभिओ भावो ॥ ६३ ॥

कुदो ? कम्माणसुदएण उवसेमण सएण सओघसेमण वा अभवियत्ताणप्पचीदो ।
भवियत्तस्स वि पारिणाभिओ चेय भावो, कम्माणसुदय-उवसम-खय-खओवसमेहि भविय-
त्ताणुप्पचीदो । गुण्डाणस्स भावमभणिय मग्गण्डाणभावं परूवत्तस्स कोभिप्पाओ ?

शुक्कलेख्यानलोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओषके
समान हैं ॥ ६१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार लेख्यमार्गणा समान्त हुई ।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली
गुणस्थान तक भाव ओषके समान हैं ॥ ६२ ॥

क्योंकि, भव्यमार्गणासम्बन्धी गुणस्थानोंका ओघ गुणस्थानोंसे भव्यत्व नामक
पारिणामिकभावेके प्रति कोई भेद नहीं है ।

अभव्यसिद्धिक यह कौनसा भाव है ? पारिणामिक भाव है ॥ ६३ ॥

क्योंकि, कर्मोंके उदयसे, उपशमसे, क्षयसे, अथवा क्षयोपशमसे अभव्यत्व भाव
उत्पन्न नहीं होता है । इसी प्रकार भव्यत्व भी पारिणामिक भाव ही है, क्योंकि, कर्मोंके
उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशमसे भव्यत्व भाव उत्पन्न नहीं होता ।

शंका—यहांपर गुणस्थानके भावको न कह कर मार्गणास्थानसम्बन्धी भावका
प्ररूपण करते हुए आचार्यका क्या अभिप्राय है ?

१ मव्यानुवादेन मव्यानां मिथ्यादृष्ट्यायोगिकेव्यत्तानां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ अव्ययानां पारिणामिको भावः । स. सि. १, ८.

गुणद्वानभावो अउत्तो वि णाणिज्जओ । अभवियत्तं पुण उवदेसमेवखुदे, पुम्भपरु-
विदसरुवत्तादो । तेण मग्गणाभावो उत्तो त्ति ।

एव भवियमग्गणा समत्ता ।

समत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठिण्हुडि जाव
अजोगिकेवलि त्ति ओधं ॥ ६४ ॥

सुगममेदं ।

खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, खइओ
भावो ॥ ६५ ॥

कुदो ? दंसणमोहणीयस्स णिमूलखएणुप्पणसम्मत्तादो ।

खइयं सम्मत्तं ॥ ६६ ॥

खइयसम्मादिट्ठीसु सम्मत्तं खइयं चेव होदि त्ति अणुत्तसिद्धीदो णेदं सुत्तमाढवे-
दत्तं ? ण एस दोसो । कुदो ? ण ताव खइयसम्मादिट्ठी सण्णा खइयस्स सम्मत्तस्स

समाधान—गुणस्थानसम्बन्धी भाव तो विना कोहे भी जाना जाता है । किन्तु
अभव्यत्व (कौनसा भाव है यह) उपदेशकी अपेक्षा रखता है, क्योंकि, उसके स्वरूपका
पहले प्ररूपण नहीं किया गया है । इसलिए यहाँपर (गुणस्थानका भाव न कह कर)
मार्गानुसम्बन्धी भाव कहा है ।

इस प्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई ।

सम्यक्त्वमार्गणके अनुवादसे सम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगि-
केवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ६४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? क्षायिक भाव
है ॥ ६५ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीयकर्मके निर्मूल क्षयसे क्षायिकसम्यक्त्व उत्पन्न होता है ।
उक्त जीवोंके क्षायिक सम्यक्त्व होता है ॥ ६६ ॥

शंका—क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें सम्यग्दर्शन क्षायिक ही होता है, यह बात अनुक-
स्तिष्ठ है, इसलिए इस सूत्रका आरम्भ नहीं करना चाहिए ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि यह संज्ञा क्षायिक-

१ सम्यक्त्वउवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टेः क्षायिको भाव । स. सि १, ८.

२ क्षायिक सम्यक्त्वम् । स. सि १, ८

अत्थित्तं गमयदि, तवण-भक्खरादिणामस्स अणुअट्ठस्स वि उवलंभा । ण च अण्णं किञ्चि
खइयसम्मत्तस्स अत्थित्तमिदं चिण्हमत्थि । तदो खइयसम्मादिट्ठिस्स खइयं चेव सम्मत्तं
होदि त्ति जाणाविदं । अवरं च ण सन्वे सिस्सा उपपण्णा चेव, किंतु अउप्पण्णा
वि अत्थि । तेहि खइयसम्मादिट्ठीणं किमुवसमसम्मत्तं, किं खइयसम्मत्तं, किं वेदगसम्मत्तं
होदि त्ति पुत्थिदे एदस्स सुत्तस्स अवयारो जादो, खइयसम्मादिट्ठीणं खइयं चेव सम्मत्तं
होदि, ण सेसदोसम्मत्ताणि त्ति जाणावण्हं अपुव्वकरणक्खवयाणं खइयभावाणं खइय-
चरित्तस्सेव दंसणमोहखवयाणं पि खइयभावाणं तस्संबंधेण वेदयसम्मत्तोदए संते वि
खइयसम्मत्तस्स अत्थित्तप्पसंगे तप्पडिसेहं व ।

ओदइएण भवेण पुणो असंजदो ॥ ६७ ॥

सुगममेदं ।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा त्ति को भावो, खओवसमिओ
भावो ॥ ६८ ॥

सम्यक्त्वके अस्तित्वका ज्ञान नहीं कराती है । इसका कारण यह है लोकमें तपन, भास्कर
आदि अनन्वर्थ (अर्थशून्य या रूढ) नाम भी पाये जाते हैं । इसके अतिरिक्त अन्य कोई
चिन्ह क्षायिकसम्यक्त्वके अस्तित्वका है नहीं । इसलिए क्षायिकसम्यग्दृष्टिके क्षायिक
सम्यक्त्व ही होता है, यह बात इस सूत्रसे श्रुति की गई है । दूसरी बात यह भी है कि
सभी शिष्य व्युत्पन्न नहीं होते, किन्तु कुछ अव्युत्पन्न भी होते हैं । उनके द्वारा क्षायिक-
सम्यग्दृष्टियोंके क्या उपशमसम्यक्त्व है, किंवा क्षायिकसम्यक्त्व है, किंवा वेदकसम्यक्त्व
होता है, ऐसा पूछने पर क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके क्षायिक ही सम्यक्त्व होता है, शेष
दो सम्यक्त्व नहीं होते हैं, इस बातके जतलानेके लिए, अथवा क्षायिकभाववाले अपूर्व-
करण गुणस्थानवर्ती क्षपकोंके क्षायिक चारित्रिके समान क्षायिकभाववाले भी जीवोंके
दर्शनमोहनीयका क्षपण करते हुए उसके सम्वन्धसे वेदकसम्यक्त्वप्रकृतिके उदय रहने
पर भी क्षायिकसम्यक्त्वके अस्तित्वका प्रसंग प्राप्त होनेपर उसका प्रतिषेध करनेके लिए
इस सूत्रका अवतार हुआ है ।

किन्तु क्षायिकसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ ६७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत यह कौनसा
भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ६८ ॥

१ असंयतत्वमौदयिकेन भावेन । स. सि १, ८

२ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां क्षायोपशमिको भाव । स. सि १, ८

कृदो ? चारिचारणक्रमोदए गंते वि जीवसहचरित्तेगदेसस्स संजमांसजम-
पमत-अप्पमतसंजमम्य णाविग्गमायसुवलंभा ।

खइयं सम्मत्तं ॥ ६९ ॥

सुगममेदं ।

चटुण्हमुवसमा ति को भावो, ओवसमिओ भावो ॥ ७० ॥
मोहणीयसुमुगमेषुप्पण्णचरित्तत्तादो, मोहोवसमण्हदुचारित्तसमण्हित्तत्तादो य ।

खइयं सम्मत्तं ॥ ७१ ॥

पारददंमणमोहणीयसुवणो कदकरणिज्जो वा उवसमसेडिं ण चट्टदि ति जाणा-
णट्टमेदं मुत्तं भणिटं । सेसं सुगमं ।

चटुण्हं खवा सजोगिकेवली अजोगिकेवलि ति को भावो,
खइओ भावो ॥ ७२ ॥

न्योक्ति, चारित्रावरणकर्मके उदय होने पर भी जीवके स्वभावभूत चारित्रके
एक देशरूप संस्कारयुग्म, प्रगतसयम और अग्रमतसंयमका (उक्त जीवके क्रमशः)
आभिर्भावा पाया जाता है ।

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन क्षायिक ही होता है ॥ ६९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानोंके क्षायिकसम्यग्दृष्टि उपशामक यह कौनसा
भाव है ? औपशामिक भाव है ॥ ७० ॥

न्योक्ति, उपशान्तकपायक मोहनीयकर्मके उपशमसे उत्पन्न हुआ चारित्र पाया
जानेने और शेष तीन उपशामकोंके मोहोपशमके कारणभूत चारित्रसे समन्वित होनेसे
औपशामिकभाव पाया जाता है ।

आधिक्यसम्यग्दृष्टि चारों उपशामकोंके सम्यग्दर्शन क्षायिक ही होता है ॥ ७१ ॥
युर्दान्तमोहनीयकर्मके क्षणका प्रारम्भ करनेवाला जीव, अथवा कृतकृत्यवेदक
सम्यग्दृष्टि जीव, उपशमधेणीपर नहीं चढ़ता है, इस बातका ध्यान करनेके लिए यह सूत्र
कहा गया है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

आधिक्यसम्यग्दृष्टि चारों गुणस्थानोंके क्षपक, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली
यह कौनसा भाव है ? क्षायिक भाव है ॥ ७२ ॥

१ साधितं सम्यक्त्वम् । स सि. १, ८.

२ उपशमोपशमगमनोपनिमित्तो मातः । स. सि. १, ८.

३ शान्तिकं मग्नत्वं । ग नि १, ८.

४ देयानां मामान्यवत् । स सि. १, ८

कुदो ? मोहणीयस्स सुवणहेदुअपुव्वसण्हिण्णदचारित्तसमण्हित्तत्तादो मोहकसएणु-
प्पण्णचारित्तत्तादो वादिवखएणुप्पण्णणवकेवललद्धीहिंतो ।

खइयं सम्मत्तं ॥ ७३ ॥

सुगममेदं ।

वेदयसम्मादिट्ठिसु असंजदसम्मादिट्ठि ति को भावो, खओव-
समिओ भावो ॥ ७४ ॥

सुगममेदं ।

खओवसमियं सम्मत्तं ॥ ७५ ॥

ओवसमि असंजदसम्मादिट्ठिस्स तिणिण भावा सामणेण परुविदा, एदं सम्मत्त-
मोवसमियं खइयं खओवसमियं वेत्ति ण परुविदं । संपहि सम्मत्तमगणाए एदं सम्मत्त-
मोवसमियं खइयं खओवसमियं वेत्ति एदेहि सुत्तेहि जाणाविदं । सेसं सुगमं ।

न्योक्ति, अपूर्वकरण आदि तीन क्षपकोंका मोहनीयकर्मके क्षपणके कारणभूत
अपूर्वसंज्ञावाले चारित्रसे समन्वित होनेके कारण, क्षीणकपायवीतरगच्छस्थके मोहक्षयरो
उत्पन्न हुआ चारित्र होनेके कारण, तथा सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीके धातिया
कर्मोंका क्षय हो जानेसे उत्पन्न नव केवललब्धियोंकी अपेक्षा क्षायिक भाव पाया जाता है ।

चारों क्षपक, सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीके सम्यग्दर्शन क्षायिक ही होता
है ॥ ७३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? क्षायोपशामिक
भाव है ॥ ७४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके सम्यग्दर्शन क्षायोपशामिक होता है ॥ ७५ ॥

ओवप्ररूपणमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके सामान्यसे तीन भाव कहे हैं, किन्तु
उनका यह सम्यग्दर्शन औपशामिक है, या क्षायिक है, किंवा क्षायोपशामिक है, यह प्ररूपण
नहीं किया है । अब सम्यन्तवमार्गणमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका यह सम्यग्दर्शन
औपशामिकसम्यक्त्वियोंके औपशामिक होता है, क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके क्षायिक होता है
और वेदकसम्यग्दृष्टियोंके क्षायोपशामिक होता है, यह बात इन सूत्रोंसे सूचित की गई
है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

१ क्षायोपशामिकसम्यग्दृष्टि अक्षयतसम्यग्दृष्टे क्षायोपशामिको मातः । स. सि. १, ८.

२ क्षायोपशामिक सम्यक्त्वम् । स. सि. १, ८.

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो^१ ॥ ७६ ॥

अवगयत्थमेदं ।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ति को भावो, खओवसमिओ भावो^२ ॥ ७७ ॥

णादट्ठमेयं ।

खओवसमियं सम्भत्तं^३ ॥ ७८ ॥

कुदो ? दंसणमोहोदए संते वि जीवगुणीभूदसदहणस्स उप्पत्तीए उवलंभा ।

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठि ति को भावो, उवसमिओ भावो^४ ॥ ७९ ॥

कुदो ? दंसणमोहवसेमणुप्पणसम्मत्तादो ।

उवसामियं सम्भत्तं^५ ॥ ८० ॥

किन्तु वेदकसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ ७६ ॥

इस सूत्रका अर्थ जाना हुआ है ।

वेदकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अग्रमत्तसंयत यह कौनसा भाव है ? क्षायोपशमिकभाव है ॥ ७७ ॥

इस सूत्रका अर्थ ज्ञात है ।

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन क्षायोपशमिक होता है ॥ ७८ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीयके (अंगभूत सम्यक्त्वप्रकृतिके) उदय रहने पर भी जीवके गुणस्वरूप श्रद्धानकी उत्पत्ति पाई जाती है ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव है ॥ ७९ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टियोंका सम्यक्त्व दर्शनमोहनीयकर्मके उपशमसे उत्पन्न हुआ है ।

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन औपशमिक होता है ॥ ८० ॥

^१ अथयत पुनरौदयिनेन भावेन । स सि १, ८

^२ सयतासयतप्रमत्तप्रमत्तसयताना क्षायोपशमिको भाव । स सि १, ८,

^३ क्षायोपशमिक सम्यक्त्वम् । स सि १, ८

^४ औपशमिसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टेरौपशमिको भाव । स सि १, ८

^५ औपशमिक सम्यक्त्वम् । स सि १, ८

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो^१ ॥ ८१ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ति को भावो, खओवसमिओ भावो^२ ॥ ८२ ॥

सुगममेदं ।

उवसमियं सम्भत्तं^३ ॥ ८३ ॥

एदं वि सुगमं ।

चटुण्हसुवसमा ति को भावो, उवसमिओ भावो^४ ॥ ८४ ॥

उवसमियं सम्भत्तं^५ ॥ ८५ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी ओवं^६ ॥ ८६ ॥

किन्तु उपशमसम्यक्त्वो असंयतसम्यग्दृष्टि जीविका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ ८१ ॥

ये दोनो ही सूत्र सुगम हैं ।

उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अग्रमत्तसंयत यह कौनसा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ८२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन औपशमिक होता है ॥ ८३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानोंके उपशमसम्यग्दृष्टि उपशमिक यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव है ॥ ८४ ॥

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन औपशमिक होता है ॥ ८५ ॥

ये दोनो ही सूत्र सुगम हैं ।

सासादनसम्यग्दृष्टि भाव ओवके समान है ॥ ८६ ॥

^१ असंयत पुनरौदयिनेन भावेन । स सि १, ८

^२ सयतासयतप्रमत्तप्रमत्तसयताना क्षायोपशमिको भावः । स सि १, ८

^३ औपशमिक सम्यक्त्वम् । स सि १, ८

^४ चतुर्णामुपशमकानामौपशमिको भावः । स सि १, ८

^५ आपशमिक सम्यक्त्वम् । स सि १, ८ ^६ सासादनसम्यग्दृष्टे पाणिमिको भाव । स सि १, ८

सम्मामिच्छादिद्वौ ओषं ॥ ८७ ॥

मिच्छादिही ओषं ॥ ८८ ॥

निष्णि चि मुत्ताणि अवगयत्थाणि ।

एतु सम्प्रतमगणा समत्ता ।

सणिंयागुवादेण सणीसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव खीणकसाय-
वीदरागच्छदमत्था ति ओघं ॥ ८९ ॥

सुगामयेदं ।

असंख्येति को भावो, ओदृष्टो भावो ॥ ९० ॥

सुदो ? गोत्रदियानरस्स सवघादिफइयाणमुदएण असणिण्तुप्पचीदो । असणिण-
गुणट्ठणभानो किण्ण परूविदो ? ण, उयडेसमंतरेण तदवगमादो” ।

७३ सृष्टिमगणा समता ।

सम्यग्मिश्रयादृष्टि भाव ओघके समान है ॥ ८७ ॥

मिथ्याग्रष्टि भाव ओवर्के समान है ॥ ८८ ॥

इन तीनों ही सूत्रोंका अर्थ बात है।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

मंतिमार्गणाके अनुवादमे संजियेमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणक्रपायवीतराग-
छत्रम्य तक मात्र ओघके समान हैं ॥ ८९ ॥

या मूर मृगन ह ।

जंगली यह कौनसा भाव है ? औदयिक भाव है ॥ ९० ॥

‘ययौकि, नोगनिद्र्यावरणकर्मके सर्वघाती स्पर्धभौके उदयसे असंशित्व भाव उत्पन्न होता है।’

गंगा—यहाँ पर असंख्य जीवों के गुणस्थानसमन्वही भावको क्यों नहीं चतलाया ? समाधान—नहीं, क्योंकि, उपदेशके बिना ही उसका ग्रान हो जाता है ।

इम प्रकार संक्षीमार्गेणा समाप्त हुई ।

१ मन्मथनिष्पद्यते. ज्ञायोगपशुनिर्गो भावः । त मि १, ८

७ निष्पाद्येर्गैरिति भा० । य नि १, ८. ३ सप्तनुवादेन सक्तीनां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

४ अस्मिन्मोक्षो भाग-। स. मि १,८. ५ तदुभयव्यपदेशादितानां सामान्यवत् । स. सि. १,८.

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठिपट्ठुडि
केवलि त्ति ओघं ॥ ९१ ॥

सुगममेदं ।

अणाहारणं कम्मइयभणो^३ ॥ ९३ ॥

एदं पि सुगमं । कम्मइयादो विसेसपदुप्पायण्हं उत्तरसुचं भणदि--

॥ ९३ ॥

सुगममेदं ।

(एव आहारमगणा समत्ता)

एवं भावाणुगमो ति समत्तमणिअंगहारं ।

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारकॉम मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकवली तक भाव ओघके समान हैं ॥ ९१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अनाहारक जीवोंके भाव कर्मणकाययोगियोंके समान ॥ ९२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

कर्मणकाययोगियोंमें विशेषता प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—
किन्तु विशेषता यह है कि कर्मणकाययोगी अयोगिकवली यह कौनसा भाव है ?
क्षायिक भाव है ॥ ९३ ॥

ग्रह सूत्र सुगम है।

(इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई।)

इस प्रकार भावानुगमनामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

२ आहाराव्युत्पादनेन आहारकार्णा $\times \times$ सामान्यवत् । स सि. ३, ८.

२ x x अनाहारकृष्णा च सामान्यन्त । स सि १, ८

३ भाव परितमाव । स ति. १, ८.

ಆತ್ಮವಿಶ್ವಾಸ



सिरि-भगवंत-पुष्पदन्त-भूदचलि-पणीन्द्रो

छवखंडागमो

सिरि-धीरसेणादरिय-विरड्य-धचला-दीक्षा-समणिपेदो

तस्स

पठमखंडे जीवट्टाणे

अप्पावहुगाणुगमो

केवलणाणुजोडयलोयलोए जिणे णमंसिचा ।

अण्णहुआणिओअं जहोवएसं पस्सेमो ॥

अप्पावहुआणुगमेण दुविहो णिहेसो, ओधेण आदेसेण यं ॥१॥

तत्तय णाम-ट्टाणा-द्वय-भावेण अप्पावहुअसदो णामप्पा-
नहुअं । एदम्हादो एदम्स बहुत्तमपत्तं वा एदमिदि एयत्तज्जारेवेण इविदं ठवणप्पा-
नहुअं । दव्यप्पावहुअं दुविहं आगम-णोआगमभेएण । अप्पाहुअपाहुडजाणओ अणुवजुओ

केवलजानके द्वारा लोक ओर अलोकको प्रकाशित करनेवाले श्री जिनेन्द्र देवोंको
नमस्कार करके जिस प्रकारसे उपदेश प्राप्त हुआ है, उसके अनुसार अल्पबहुत्व अनुयोग-
पारता प्रकरण करते हैं ॥

अल्पाहुत्तानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओवनिर्देश और आदेश-
निर्देश ॥ १ ॥

नाम, स्थापना इव्य ओर भावके भेदसे अल्पबहुत्व चार प्रकारका है । उनमेंसे
अन्यत्रादय नामअल्पबहुत्व है । यह इससे बहुत है, यद्यपि यह इससे अल्प है,
इस प्रकार एतन्नेन अच्यारोपने स्थापना करना स्थापनाअल्पबहुत्व है । इव्यअल्प-
बहुत्व आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है । जो अल्पबहुत्व-विषयक प्राश्रुतको
जाननेवाला है, परंतु वर्तमानमें उसके उपयोगसे रहित है उसे आगमद्रव्य अल्पबहुत्व

१ अल्पबहुत्तानुगमे । तत् त्रितिर ताननेन विषेण च । त ति १, ८

आगमद्रव्यप्पावहुअं । नोआगमद्रव्यप्पावहुअं ति विहं जाणुअसरीर-भवि-तव्वदिरित्तभेदा ।
तत्तय जाणुअसरीरं भवि-वड्डमाण-समुज्झादमिदि ति विहमवि अवगत्यं । भविं भविस्स-
काले अप्पावहुअपाहुडजाणओ । तव्वदिरित्तअप्पावहुअं ति विहं सचित्तमचित्तं भिस्समिदि ।
जीवद्वयप्पावहुअं सचित्तं । सेसद्वयप्पावहुअमचित्तं । दोणं पि अप्पावहुअं भिस्सं ।
भावप्पावहुअं दुविहं आगम-णोआगमभेएण । अप्पावहुअपाहुडजाणओ उवजुत्तो आगम-
भावप्पावहुअं । णाण-दंसणाणुभाग-जोगादिविसयं णोआगमभावप्पावहुअं ।

एदेसु अप्पावहुएसु केण पयदं ? सचित्तद्वयप्पावहुएण पयदं । किमप्पावहुअं ?
सखाधम्मो, एदम्हादो एदं ति गुणं चट्टुणमिदि दुद्धिगेज्झो । कस्सप्पावहुअं ? जीव-
द्वयस्स, धम्मवदिरित्तसंखाधम्मणुवलंभा । केणप्पावहुअं ? पाणिमिएण भवेण ।

कहते हैं । नोआगमद्रव्यअल्पबहुत्व शायकशरीर, भावी और तदव्यतिरिक्तके भेदसे तीन
प्रकारका है । उनमेंसे भावी, वर्तमान और अतीत, इन तीनों ही प्रकारके शायकशरीरका
अर्थ जाना जा चुका है । जो भविष्यकालमें अल्पबहुत्व प्राश्रुतका जाननेवाला होगा, उसे
भावी नोआगमद्रव्य अल्पबहुत्वनिक्षेप कहते हैं । तदव्यतिरिक्त अल्पबहुत्व तीन प्रकारका
है—सचित्त, अचित्त और मिश्र । जीवद्रव्य विषयक अल्पबहुत्व सचित्त है, शेष द्रव्य-
विषयक अल्पबहुत्व अचित्त है, और इन दोनोंका अल्पबहुत्व मिश्र है । आगम और
नोआगमके भेदसे भाव-अल्पबहुत्व दो प्रकारका है । जो अल्पबहुत्व-प्राश्रुतका जानने-
वाला है ओर वर्तमानमें उसके उपयोगसे युक्त है उसे आगमभाव अल्पबहुत्व कहते हैं ।
आत्माके ज्ञान और दर्शनको, तथा पुद्गलकर्मोंके अनुभाग और योगादिको विषय करने-
वाला नोआगमभाव अल्पबहुत्व है ।

शंका—इन अल्पबहुत्वोंमेंसे प्रकृतमें किससे प्रयोजन है ?

समाधान—प्रकृतमें सचित्त द्रव्यके अल्पबहुत्वसे प्रयोजन है ।

(अब निर्देश, स्वामित्वादि प्रसिद्ध छह अनुयोगद्वारासे अल्पबहुत्वका निर्णय
किया जाता है ।)

शंका—अल्पबहुत्व क्या है ?

समाधान—यह उससे तिगुणा है, अथवा चतुर्गुणा है, इस प्रकार बुद्धिके द्वारा
ग्रहण करने योग्य संख्याके धर्मको अल्पबहुत्व कहते हैं ।

शंका—अल्पबहुत्व किसके होता है, अर्थात् अल्पबहुत्वका स्वामी कौन है ?

समाधान—जीवद्रव्यके अल्पबहुत्व होता है, अर्थात् जीवद्रव्य उसका स्वामी है,
पर्यंकि, धर्माको छोड़कर संख्याधर्म पृथक् नहीं पाया जाता ।

शंका—अल्पबहुत्व किससे होता है, अर्थात् उसका साधन क्या है ?

समाधान—अल्पबहुत्व पारिणामिक भावसे होता है ।

कथं पपावहुअं ? जीवदन्वे । केवचिरमपावहुअं ? अणादि-अपज्जवसिदं । कुदो ? सव्वेसिं गुणद्वानाणमेदेण पमाणेण सव्वकालमवद्वानादो । कइविहमपावहुअं ? मग्गणभेयभिण्ण-गुणद्वानमेत्तं ।

अप्यं च बहुअं च अप्पावहुआणि । तेसिमगुणमो अप्पावहुआणुगमो । तेण अप्पावहुआणुगमेण गिहेसो दुनिहो हेदि ओघो ओदेसो ति । संगहिदवयणकलावो दव्वट्टियणिंघणो ओघो गाम । असंगहिदवयणकलाओ पुब्बिच्छत्थं वयणविंघो पज्जव-द्वियणिविंघो ओदेसो गाम ।

ओघेण तिसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवां ॥ २ ॥

तिसु अद्वासु ति वयणं चत्तारि अद्वाओ पडिसेहइं । उवसमा ति वयणं खवया-दिपडिसेहइं । पवेसणेण ति वयणं संचयपडिसेहइं । तुल्ला ति वयणेण विसरिस-च-पडिसेहो कदो । आदिमसु तिसु गुणद्वानेसु उवसामया पवेसणेण तुल्ला सरिसा । कुदो ?

शंका—अल्पवहुत्व किसमें होता है, अर्थात् उसका अधिकरण क्या है ?

समाधान—जीवद्रव्यमें, अर्थात् जीवद्रव्य अल्पवहुत्वका अधिकरण है ।

शंका—अल्पवहुत्व कितने समय तक होता है ?

समाधान—अल्पवहुत्व अनादि और अनन्त है, क्योंकि, सभी गुणस्थानोंका इसी प्रमाणसे सर्वकाल अवस्थान रहता है ।

शंका—अल्पवहुत्व कितने प्रकारका है ?

समाधान—मार्गणाओंके भेदसे गुणस्थानोंके जितने भेद होते हैं, उतने प्रकारका अल्पवहुत्व होता है ।

अल्प और बहुत्वको अर्थात् हीनता और अधिकताको अल्पवहुत्व कहते हैं । उनका अनुगम अल्पवहुत्वानुगम है । उससे अर्थात् अल्पवहुत्वानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । जिसमें सम्पूर्ण वचन-कलाप संगृहीत है, और जो द्रव्यार्थिकनय-निमित्तक है, वह ओघनिर्देश है । जिसमें सम्पूर्ण वचन-कलाप संगृहीत नहीं है, जो पूर्वीक अर्थवयव अर्थात् ओघानुगममें वतलाये गये भेदोंके आश्रित है और जो पर्यायार्थिकनय-निमित्तक है वह आदेशनिर्देश है ।

ओघनिर्देशसे अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा परस्पर तुल्य हैं, तथा अन्य सब गुणस्थानोंके प्रमाणसे अल्प हैं ॥ २ ॥

‘तीनों गुणस्थानोंमें’ यह वचन चार उपशामक गुणस्थानोंके प्रतिषेध करनेके लिए दिया है । ‘उपशामक’ यह वचन क्षपकादिके प्रतिषेधके लिए दिया है । ‘प्रवेशकी अपेक्षा’ इस वचनका फल संचयका प्रतिषेध है । ‘तुल्य’ इस वचनसे विसदृशताका प्रतिषेध किया है । श्रेणीसम्बन्धी आदिके तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी

१ प्रतिपु ‘पुब्बिच्छत्ता’ इति पाठ । मज्झिमे तु स्वीकृतपाठ ।

२ सामान्येन तावत् तय उपशामकाः सर्वत स्तोत्रा स्वगुणस्थानकालेषु प्रवेगेन तुल्यमस्या । स सि १, ८

एआदिचउण्णमेत्तजीवाण पनेसं पडि पडिसेहाभावा । ण चं सव्वद्वं तिसु उवसामगेसु पविस्तंजीविह सरिसत्तणियमो, संभवं पडुच्च सरिसत्तउचीदो । एदेसिं संचओ सरिसो असरिसो चि वा क्रिण्ण परुविदो ? ण एम दोसो, पवेससारिच्छेण तेसिं संचयसारिच्छस्स वि अवगमादो । पविस्समाणजीवाणं विसरिससे संते संचयस्स विसरिसत्तं, अण्णहा दिट्ठविरोहादो । अणुत्तादिअद्वानं थोव-बहुत्तादो विसरिसत्तं संचयस्स क्रिण्ण होदि ति पुच्छिदे ण हेदि, तिण्हसुवसामगणमद्वाहिंतो उक्कस्सपवेसंतरस्स बहुत्तुवेसादो । तम्हा तिण्हं संचओ वि सरिसो चेय । थोवा उवरि उच्चमाणगुणद्वानाण संख पेक्खिय थोवा चि भणिदा ।

अपेक्षा तुल्य अर्थात् सदृश होते हैं, क्योंकि, एकसे लेकर चौपन मात्र जीवोंके प्रवेशके प्रति कोई प्रतिषेध नहीं है । किन्तु सर्वकाल तीनों उपशामकोंमें प्रवेश करनेवाले जीवोंकी अपेक्षा सदृशताका नियम नहीं है, क्योंकि, संभावनाकी अपेक्षा सदृशताका कथन किया गया है ।

शंका—इन तीनों उपशामकोंका संचय सदृश होता है, या असदृश होता है, इस बातका प्ररूपण क्यों नहीं किया ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, प्रवेशकी सदृशतासे उनके संचयकी सदृशताका भी ज्ञान हो जाता है । प्रविश्यमान जीवोंकी विसदृशता होने पर ही संचयकी विसदृशता होती है, यदि ऐसा न माना जाय तो प्रत्यक्षसे विरोध आता है ।

शंका—अपूर्वकरण आदिके कालोंमें परस्पर अल्पवहुत्व होनेसे संचयके विसदृशता क्यों नहीं हो जाती है ?

समाधान—ऐसी आशंकापर आचार्य उत्तर देते हैं कि अपूर्वकरण आदिके कालके हीनाधिक होनेसे संचयके विसदृशता नहीं होती है, क्योंकि, तीनों उपशामकोंके कालोंसे उत्कृष्ट प्रवेशान्तरका काल बहुत है ऐसा उपदेश पाया जाता है । इसलिये तीनोंका संचय भी सदृश ही होता है ।

विशेषार्थ—यहां पर शंकाकारने यह शंका उठाई है कि जब अपूर्वकरण आदि गुणस्थानोंका काल हीनाधिक है, अर्थात् अपूर्वकरणका जितना काल है, उससे संख्यात-गुणा हीन अनित्यत्तिकरणका काल है और उससे संख्यातगुणा हीन सूक्ष्मसाम्प्रदायका काल है, तब इन गुणस्थानोंमें संचित होनेवाली जीवराशिका प्रमाण भी हीनाधिक ही होना चाहिए, सदृश नहीं होना चाहिए ? इसके समाधानमें यह कहा गया है कि तीनों उपशामकोंके कालोंसे उत्कृष्ट प्रवेशान्तरके बहुत होनेका उपदेश पाया जाता है । इसका अभिप्राय यह है कि यद्यपि अपूर्वकरण आदि गुणस्थानोंका काल हीनाधिक है, तथापि वह प्रत्येक अन्तर्मुहूर्त या असंख्यात समयप्रमाण है । किन्तु इन गुणस्थानोंमें प्रवेश कर संचित होनेवाले जीव संख्यात अर्थात् उपशामकोंके प्रत्येक गुणस्थानमें अधिकसे अधिक तीन

१ प्रतिपु ‘पडिसेहमात्राण च’ इति पाठ ।

२ अतिपु ‘णण्णहा’ इति पाठ ।

उपसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेय' ॥ ३ ॥

पुथगुत्तारंभो हिमद्वो ? उग्रतत्तयास्य कयाउवसामगणं च पचामचीए अभास्य मंदंमणफलो । जोग पचामची अत्थि तेभिमेगजोगो, इदरेमिं भिणजोगो होदि ति पेदेण जणादिं ।

सवा संखेजगुणा' ॥ ४ ॥

कुरो ? उगामगगुणद्वणमुक्कसेण पविस्समाणचउवणजनिहिंतो खवेगगगुण-

गो चार (३०४) और क्षपकथेर्णके प्रत्येक गुणस्थानमें अधिकसे अधिक छह सो आठ (२०८) ही होती है । यदि सर्वज्ञान्य प्रमाणकी भी अपेक्षासे एक समयमें एक ही जीवका प्रवेश माना जाय, तो भी प्रत्येक गुणस्थानके प्रवेशकालके समय संख्यात अर्थात् उपशमधेर्णके प्रत्येक गुणस्थानमें अधिकसे अधिक तीन सो चार और क्षपकथेर्णके प्रत्येक गुणस्थानमें अधिकसे अधिक छह सो आठ ही होंगे । यहाँ यह स्मरण रखना चाहिये कि उपशम या क्षपकथेर्णमें निरन्तर प्रवेश करनेका मर्चोत्कृष्ट काल आठ समय ही है । दूसरी ऊपर जितना भी प्रवेशकाल है, वह सब सान्तर ही है । इससे यह ग्रथ निकलता है कि अपूर्वकरणदि गुणस्थानोंमें प्रवेशान्तर अर्थात् जीवोंके प्रवेश नहीं करनेका काल अनन्त समयप्रमाण है । चूँकि, सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानसे अतिवृत्ति-करणका काल संख्यातगुणा है इसलिए उसके प्रवेशान्तरका उत्कृष्ट काल भी संख्यात-गुणा ही होगा । इसी प्रकार चूँकि अतिवृत्तिकरणके कालसे अपूर्वकरणका काल संख्यात-गुणा है, अतः उसके प्रवेशान्तरका काल भी संख्यातगुणा ही होगा । इसका यही निष्कर्ष निकलता है कि तीनों उपशमधेर्णके कालोंसे तीनोंके उत्कृष्ट प्रवेशान्तरका काल बहुत है, यद्यपि प्रवेश करनेके समय समान है, अतएव उनका संचय भी सदृश ही होता है ।

उपार्थक जीव गणे कही जानेवाली गुणस्थानोंकी संख्याको 'देराकर अल्प है' ऐसा कहा है ।

उपजान्तरपायवीतरागछदुमत्था पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ३ ॥

श्रीका—पृथक् सूत्रका प्रारम्भ किस लिये किया है ?

समाधान—उपशान्तकरणका और करायके उपशम करनेवाले उपशमनोंकी परस्पर प्रत्यारोचिता अभाव दिराना इसका फल है । जिनकी प्रत्यासत्ति पाई जाती है उनका ही एक योग अर्थात् एक समास हो सकता है और दूसरोंका भिन्न योग होता है, यह बात इस सूत्रसे सूचित की गई है ।

उपजान्तरपायवीतरागछदुमत्थासे क्षपक संख्यातगुणित है ॥ ४ ॥

सर्वोक्ति, उपशमधेर्णके गुणस्थानमें उत्कर्षसे प्रवेश करनेवाले चोपन जीवोंकी

१ उपशान्तपायवीतरागछदुमत्था एव । म. नि. १, ८

२ उपशमधेर्णके गुणस्थान । म. नि. १, ८

मुक्कसेण पविस्समाणअहुत्तरसदजीवाणं दुगुणतुवलंभा, पंचूण-चदुरुत्तरातिसदमेत्तेगुण-सामगगुणद्वणुमकस्समंचयादो वि सववेगगुणद्वणुमकस्ससंचयस्स दुरुउणछस्सदमेत्तस्स दुगुणचंदंसागदो ।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेय' ॥ ५ ॥

पुथसुत्तारंभस्स कारणं पुवं व वत्तवं । सेसं सुगमं ।

सजोगकेवली अजोगकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेय' ॥ ६ ॥

वाइयधादिकम्माणं छदुमत्थेहि पचामचीए अभावादो पुथसत्तारंभो जादो । पवेसणेण तेत्तिया चेवेत्ति उत्ते पवेस-संचएहि अहुत्तरसददुरुउणछस्सदमेत्ता कमेण होति चि वेत्तवं । दो वि तुल्ला चि उत्ते दो वि अणणेणेण सरिसा चि भणिदं होदि । अजोगिकेवलिसंचओ पुब्बिल्लगुणद्वणुमसंचएहि सरिसो जथा, तथा सजोगिकेवलिसंचयस्स वि सरिसत्ती । विसरिसत्तपदुपायणद्वुत्तरसुत्तं भणदि-

अपेक्षा क्षपकके एक गुणस्थानमें उत्कर्षसे प्रवेश करनेवाले एकसो आठ जीवोंके दुगुणता पाई जाती है । तथा संचयकी अपेक्षा उपशमधेर्णके एक गुणस्थानमें उत्कृष्टरूपसे पांच कम तीनसो चार अर्थात् दो सो नित्यानवे (२९९) संचयसे भी क्षपकके एक गुणस्थानको दो कम छह सो (५९८) रूप संचयके दुगुणता देखी जाती है ।

क्षीणकपायवीतरागछदुमत्था पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ५ ॥

पृथक् सूत्र बनानेका कारण पहलेके समान कहना चाहिये । शेष सूत्रार्थ सुगम है । सयोगिकेवली और अयोगिकेवली प्रवेशकी अपेक्षा दोनों ही तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण है ॥ ६ ॥

वातिकर्मोंका वात करनेवाले सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीकी छमस्य जीवोंके साथ प्रत्यासत्तिका अभाव होनेसे पृथक् सूत्र बनाया गया है । प्रवेशकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण ही है, ऐसा कहनेपर प्रवेशसे एक सो आठ (१०८) और संचयसे दो कम छह सो अर्थात् पाच सो अष्टानवे (५९८) कमसे होते हैं, ऐसा ग्रथ ग्रहण करना चाहिये । दोनों ही तुल्य हैं, ऐसा कहनेसे दोनों ही परस्पर समान हैं, ऐसा ग्रथ सूचित होता है । जिस प्रकार अयोगिकेवलीका संचय पूर्ण गुणस्थानोंके संचयके सदृश होता है, उसी प्रकार सयोगिकेवलीके संचयके भी सदृशताकी प्राप्ति होती है, अतएव उनके संचयकी विसदृशताके प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं-

१ क्षीणकपायवीतरागछदुमत्था एव । म. नि. १, ८.

२ सयोगिकेवलिसंचयसंख्येन प्रवेशेन तुल्यमस्या । म. नि. १, ८.

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणां ॥ ७ ॥

कुदो ? दुरुवृणछस्सदमेत्तजीवहिंतो अट्टलक्ख-अट्टणउदिसहस्स-दुराहियपंचद-
मेत्तजीवानं संखेज्जगुणलुवलंभा । हेट्ठिमरासिणा उवरिमरासिं छेचूण गुणयारो उप्पोदेव्वो ।
अपमत्तसंजदा अक्खवा अनुवसमा संखेज्जगुणां ॥ ८ ॥
खवगुवसामगअपमत्तसंजदपडिसेहो किमद्धं कीरेदे ? ण, अपमत्तसामणेण
तेसिं पि गहणपसंगा । सजोगिरासिणा वेकोडि-छणउदिलक्ख-णवणउइसहस्स-तिउत्तर-
सदमेत्तअपमत्तरासिंभि भागे हिदे जं लद्ध सो गुणगारो होदि ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणां ॥ ९ ॥

को गुणगारो ? दोणिण रुवाणि । कुदो णव्वदे ? आहरियपरंपरागदुव्वेसादो ।

सयोगिकेवली कालकी अपेक्षा संख्यातगुणित है ॥ ७ ॥

क्योंकि, दो कम छह सौ, अर्थात् पांच सौ अट्टानवे मात्र जीवोंकी अपेक्षा आठ
लाख, अट्टानवे हजार पांच सौ दो संख्याप्रमाण जीवोंके संख्यातगुणितता पाई जाती
है । यहाँ पर अधस्तनराशिसे उपरिम राशिको छेदकर (भाग देकर) गुणकार उत्पन्न
करना चाहिए ।

सयोगिकेवलियोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यात-
गुणित है ॥ ८ ॥

शंका—यहाँपर क्षपक और उपशामक अप्रमत्तसंयतोंका निषेध किस लिए
किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'अप्रमत्त' इस सामान्य पदसे उनके भी ग्रहणका
प्रसंग आता है, इसलिये क्षपक और उपशामक अप्रमत्तसंयतोंका निषेध किया गया है ।
सयोगिकेवलीकी राशिसे दो करोड़ छयानवे लाख नित्यानवे हजार एक सौ तीन संख्या-
प्रमाण अप्रमत्तसंयतोंकी राशिमें भाग देनेपर जो लब्ध आवे, वह यहाँ पर गुणकार
होता है ।

अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित है ॥ ९ ॥

गुणकार क्या है ? दो संख्या गुणकार है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आचार्य-परम्पराके द्वारा आये हुये उपदेशसे जाना जाता है ।

१ सयोगिकेवलिन स्वमलिन समुदिताः सख्येयगुणाः । (८९८५०२) । स सि १, ८

२ अप्रमत्तमयता सख्येयगुणाः (२९६९९१०३) । स सि १, ८

३ प्रमत्तमयताः सख्येयगुणा (५९३९८२०६) । स सि १, ८

पुव्वुत्तअपमत्तरासिणा पंचकोडि-तिण्णउइलक्ख-अट्टणउइसहस्स-छब्भहियदोसदमेत्तभिं-
पमत्तरासिंभि भागे हिदे जं भागलद्धं सो गुणगारो ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणां ॥ १० ॥

कुदो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तचादो । माणुसखेत्तब्भंतरे चेय
संजदासंजदा होंति, गो वहिद्धा; भोगभूमिंभि संजमांसंजमभावविरोहा । ण च माणुस-
खेत्तब्भंतरे असंखेज्जाणं सजदासंजदाणमत्थि संभवो, तेत्थिमेत्ताणमेत्थेवद्वान्नाविरोहा ।
तदो संखेज्जगुणेहि संजदासंजदेहि होदव्वमिदि ? ण, सयंपहपव्वदपरभागे असंखेज्ज-
जोयणवित्थडे कम्मभूमिपडिभाए तिरिक्खाणमसंखेज्जाणं संजमांसंजमगुणसहिदाण-
मुवलंभा । को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढम-
वगमूलाणि । को पडिभागो ? अंतोमुहुत्तगुणिदपमत्तसंजदरासी पडिभागो ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणां ॥ ११ ॥

पूर्वोक्त अप्रमत्तराशिसे पांच करोड़ तिरानवे लाख, अट्टानवे हजार, दो सौ छह
संख्याप्रमाण प्रमत्तसंयतराशिमें भाग देनेपर जो भाग लब्ध आवे, वह यहाँपर गुणकार है ।

प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत असंख्यातगुणित है ॥ १० ॥

क्योंकि, वे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

शंका—संयतासंयत मनुष्यक्षेत्रके भीतर ही होते हैं, बाहर नहीं, क्योंकि, भोग-
भूमिमें संयमांसयमके उत्पन्न होनेका विरोध है । तथा मनुष्यक्षेत्रके भीतर असंख्यात संयता-
संयतोंका पाया जाना सम्भव नहीं है, क्योंकि, उतने संयतासंयतोंका यहाँ मनुष्यक्षेत्रके
भीतर अवस्थान माननेमें विरोध आता है । इसलिये प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत
संख्यातगुणित होना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, असंख्यात योजन विस्तृत एवं कर्मभूमिके प्रतिभाग-
रूप स्वयंप्रभ पर्वतके परभागमें संयमांसयम गुणसहित असंख्यात तिर्यच पाये जाते हैं ।

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो पल्योपमके
असंख्यात प्रथम वर्गमूल प्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? अन्तर्मुहूर्तसे प्रमत्तसंयतराशिको
गुणित करनेपर जो लब्ध आवे, वह प्रतिभाग है ।

संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित है ॥ ११ ॥

१ संयतासंयता असख्येयगुणाः । स सि १, ८.

२ प्रतिपु 'मेता-' इति पाठः ।

३ सासादनसम्यग्दृष्टयोऽसख्येयगुणा । स सि १, ८

कुदो ? तितिहममचद्विदमंजदमंजदहितो एगुममसममत्तादो सामणगुणं पडि-
गजिय छुनु आमनियानु मंजिदजीनाणममंसेज्जगुणमुवेदसादो । तं पि कथं णव्वेदे ?
परममयमिह मंजममंजमं पडिवज्जमाणजीवेहितो एककसमयमिह चैव मासणगुणं पडि-
गजमाणजीनाणममंसेज्जगुणचंदसादो । तं पि कुदो ? अणंतंसारविच्छेयहउसंजमा-
मंजमलंमम नऽदुल्लभत्तादो । को गुणगारो ? आवलियाण् असंसेज्जदिभागो । हेडिम-
गमिणा उगमिगमिमिह भागे हिदे गुणगारो आगच्छदि, उवरिमरासिअवहारकालेण
नेडिमगमिअवहारकालं भागे हिदे गुणगारो होदि, उवरिमरासिअवहारकालगुणिदेहेडिम-
रासिणा पलितोमं भागे हिदे गुणगारो होदि । एवं तीहि पयोरहि गुणयारो समाण-
भज्जमाणगामीनु मय्यत्थ सहेद्व्यो । णरि हेडिमरासिणा उवरिमरासिभिह भागे हिदे
गुणगारो आगच्छदि ति एदं समाणममाणभज्जमाणरामीणं साहारणं, दोसु नि एदस्स
पउचीण् वाहाणुपलभा ।

क्योंकि, तीन प्रकारके सम्यग्भवके साथ स्थित संयतासंयतोंकी अपेक्षा एक
उपशमनसम्यग्भवासे मानादनगुणस्थानको प्राप्त होकर छह आवलियोंसे संचित जीव
अराग्यातगुणित ई, पेसा उपदेसा पाया जाता है ।

अंता — यह भी कैसे जाना जाता है ?

रामायान—एक समयमें संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंसे एक समयमें
ही सामान्यगुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीव असंख्यातगुणित देते जाते हैं ।

अंता—इसका भी कारण क्या है ?

गमयान—क्योंकि, अनन्त संसारके विच्छेदका कारणभूत संयमासंयमका
पाना अनितुल्य है ।

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । अधस्तनराशिसे
उपरिमराशिमें भाग देनेपर गुणकारका प्रमाण आता है । अथवा, उपरिमराशिके अवहार-
कात्तरो अधस्तनराशिके अवहारकालमें भाग देनेपर गुणकार होता है । अथवा, उपरिम-
राशिके अवहारकालसे अधस्तनराशिको गुणित करके जो लब्ध आवे उसका पल्योपममें
भाग देनेपर गुणकार आता है । ऐसे इन तीन प्रकारोंसे समान भज्यमान राशियोंमें सर्वत्र
गुणकार साधित कर लेना चाहिए । केवल विशेषता यह है कि अधस्तनराशिका उपरिम-
राशिमें भाग देनेपर गुणकार आता है, यह नियम समान और असमान, दोनों भज्यमान
राशियोंमें साधारण है, क्योंकि, उक्त दोनों राशियोंमें भी इस नियमकी प्रवृत्ति होनेमें
गाथा नहीं पाई जाती है ।

१ प्रतिगु 'तं रि' इति पाठः ।

समामिच्छादिद्वी संसेज्जगुणां ॥ १२ ॥

एदस्सत्थो उच्चदे- सम्मामिच्छादिद्विअद्वा अंतोसुहुत्तमेत्ता, सासणसम्मादिद्वि-
अद्वा वि छावलियमेत्ता । किंतु सासणसम्मादिद्विअद्वादो सम्मामिच्छादिद्विअद्वा संसेज्ज-
गुणा । संसेज्जगुणद्वाए उवक्कमणकालो वि सासणद्वावक्कमणकालादो संसेज्जगुणो
उवक्कमणविरोहा निरहकालाणसुहयत्थ साधम्मादो । तेण दोगुणद्वाणाणि पडिवज्जमाण-
रासी जदि वि सरिसो, तो वि सासणसम्मादिद्वीहितो सम्मामिच्छादिद्वी संसेज्जगुणा
होति । किंतु सासणगुणसुवससम्मादिद्विगो चैय पडिवज्जंति, सम्मामिच्छात्तगुणं पुण
वेदगुवससम्मादिद्विगो अद्वावीसंतकम्मियमिच्छादिद्विगो य पडिवज्जंति । तेण सासणं
पडिवज्जमाणरासीदो^१ सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जमाणरासी संसेज्जगुणो । तदो संसेज्ज-
गुणायादो संसेज्जगुणउवक्कमणकालादो च सासणेहितो सम्मामिच्छादिद्विगो संसेज्ज-
गुणा, उवसमसम्मादिद्वीहितो वेदगसम्मादिद्विगो असंसेज्जगुणा, 'कारणाणुसारिणा कजेण
होद्वचमिदि' णायादो । सासणेहितो सम्मामिच्छादिद्विगो असंसेज्जगुणा किण्ण होति
त्ति उत्ते ण होति, अण्येणिगमादो । जदि तेहि पडिवज्जमाणगुणद्वाणमेक्कं^२ चैव होदि,

सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १२ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं- सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र
है और सासादनसम्यग्दृष्टिका काल भी छह आवलीप्रमाण है, किन्तु फिर भी सासादन-
सम्यग्दृष्टिके कालसे सम्यग्मिथ्यादृष्टिका काल संख्यातगुणा है । संख्यातगुणित कालका
उपक्रमणकाल भी सासादनके कालके उपक्रमणकालसे संख्यातगुणा है । अन्यथा उपक्रमण-
कालमें विरोध आजायगा, क्योंकि, विरहकाल दोनों जगह समान है । इसलिए इन दोनों
गुणस्थानोंको प्राप्त होनेवाली राशि यद्यपि समान है तो भी सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे
सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित है । किन्तु सासादन गुणस्थानको उपशमसम्यग्दृष्टि ही
प्राप्त होते हैं, परन्तु सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और
मोहकर्मकी अद्वाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जीव भी प्राप्त होते हैं । इसलिये
सासादनगुणस्थानको प्राप्त होनेवाली राशिसे सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाली
राशि संख्यातगुणी है । अतः संख्यातगुणी आय होनेसे और संख्यातगुणा उपक्रमणकाल
होनेसे सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं । उपशम-
सम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि, 'कारणके अनुसार
कार्य होता है' ऐसा न्याय है । सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित
क्यों नहीं होते हैं, ऐसा पृष्ठने पर आचार्य उत्तर देते हैं कि नहीं होते हैं, क्योंकि,
निर्गमके अर्थात् जानेके मार्ग अनेक हैं । यदि वेदकसम्यग्दृष्टियोंके द्वारा प्राप्त किया

१ सम्यग्मिथ्यादृष्टयः सत्येयगुणाः । स. सि १, ८.

२ प्रतिगु 'पडिमाणरासीदो' इति पाठः ।

३ प्रतिगु 'मेव' इति पाठः ।

तो एस णाओ वोतुं' जुते । किंतु वेदसम्मादिद्विणो मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं च पडिवज्जति, सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जमाणेहिंतो मिच्छत्तं पडिवज्जमाणवेदसम्मादिद्विणो असंखेज्जगुणा, तेण पुव्वुत्तं ण घडदे इदि । ण चासंखेज्जगुणरासिवओ अण्णरासिम-वेक्खियं होदि, तस्स अप्पणो आयाणुसरणसहावत्तादो । एदमेवं चेव होदि त्ति कथं णव्वेदे ? सासणेहिंतो सम्मामिच्छादिद्विणो संखेज्जगुणा त्ति मुत्तण्णहाणुववत्तीदो णव्वेदे ।

असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणां ॥ १३ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । सम्मामिच्छादिद्विरासी अंतो-मुहुत्तसंचिदो, असंजदसम्मादिद्विरासी पुण वेसागरोवमसंचिदो । सम्मामिच्छादिद्विअद्वादो वेसागरोवमकालो पल्लिवमसंखेज्जदिभागगुणो । सम्मामिच्छादिद्विउवक्कमणकालो वि असंजदसम्मादिद्विउवक्कमणकालो पल्लिवमसंखेज्जदिभागगुणो, उवक्कमण-कालस्स अद्वाणुसारित्तदंसादो । तेण पल्लिवमसंखेज्जदिभागेण गुणगारेण होद्वचमिदि ? ण, असंजदसम्मादिद्विरासिस्स असंखेज्जपल्लिवमपमणपसणा । तं

जानेवाला गुणस्थान एक ही हो, तो यह न्याय कहने योग्य है । किन्तु वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों गुणस्थानोंको प्राप्त होते हैं । तथा सम्य-निमथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले वेदकसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले वेदक-सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, इसलिये पूर्वोक्त कथन घटित नहीं होता है । दूसरी बात यह है कि असंख्यातगुणी राशिका व्यय अन्य राशिकी अपेक्षासे नहीं होता है, क्योंकि, वह अपने आयके अनुसार व्ययशील स्वभाववाला होता है ।

शंका—यह इसी प्रकार होता है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं, यह सूत्र अन्यथा बन नहीं सकता है, इस अन्यथानुपपत्तिसे जाना जाता है कि सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १३ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शंका—सम्यग्मिथ्यादृष्टि राशि अन्तर्मुहूर्त संचित है और असंयतसम्यग्दृष्टि राशि दो सागरोपम संचित है । सम्यग्मिथ्यादृष्टिके कालसे दो सागरोपमकाल पल्योपमके असंख्यातवै भाग गुणितप्रमाण है । सम्यग्मिथ्यादृष्टिके उपक्रमकालसे भी असंयत-सम्यग्दृष्टिका उपक्रमकाल पल्योपमके संख्यातवै भागगुणित है, क्योंकि, उपक्रम-काल गुणस्थानकालके अनुसार देखा जाता है । इसलिये पल्योपमके असंख्यातवै भाग-प्रमाण गुणकार होना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, गुणकारको पल्योपमके असंख्यातवै भाग मानने पर असंयतसम्यग्दृष्टि राशिको असंख्यात पल्योपमप्रमाण होनेका प्रसंग प्राप्त होगा ।

१ प्रतिगु 'जोगु' इति पाठ ।

२ अमयतसम्यग्दृष्टयोऽसंखेयगुणा । स सि १, ८

३ म २ प्रती 'दो वि असंजदसम्मादिद्वि उवक्कमणकालो' इति पाठो नास्ति ।

जथा—'एदेहि पल्लिवममवहिरिदि अंतोमुहुत्तेण कालेणेत्ति' दव्वाणिओगहारसुत्तादो णव्वदि जथा पल्लिवममंतोमुहुत्तेण खंडिदेयखंडमेत्ता सम्मामिच्छादिद्विणो होति त्ति । पुणो एदं रासिं पल्लिवमसंखेज्जदिभागेण गुणिदे असंखेज्जपल्लिवममेत्तो' असं-जदसम्मादिद्विरासी होदि । ण चेदं, एदेहि पल्लिवममवहिरिदि अंतोमुहुत्तेण कालेणेत्ति एदेण सुत्तेण सह विरोहा । कथं पुण आवलियाए असंखेज्जदिभागगुणारस्स सिद्धी ? उच्चदे—सम्मामिच्छादिद्विअद्वादो तप्याओगअसंखेज्जगुणद्वाए संचिदो असंजदसम्मा-दिद्विरासी घेत्तव्वा, एदिस्से अद्वाए सम्मामिच्छादिद्विउवक्कमणकालादो असंखेज्जगुण-उवक्कमणकालुवलंभा । एत्थ संचिद-असंजदसम्मादिद्विरासीए वि आवलियाए असंखे-ज्जदिभागेण गुणिदेमेत्तो होदि । अधवा दोणं उवक्कमणकाला जदि वि सरिसा होति त्ति तो वि सम्मामिच्छादिद्विहिंतो असंजदसम्मादिद्वी आवलियाए संखेज्जभागगुणा । कुदो ? सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जमाणरासीदो सम्मत्तं पडिवज्जमाणरासिस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागगुणत्तादो ।

मिच्छादिद्वी अणंतगुणां ॥ १४ ॥

उसका स्पर्शकरण इस प्रकार है—इन सासादनसम्यग्दृष्टि आदि जीवोंकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्योपम अपहृत होता है, इस द्रव्यानुयोगद्वारके सूत्रसे जाना जाता है कि पल्योपमको अन्तर्मुहूर्तसे खंडित करने पर एक खंडप्रमाण सम्यग्मिथ्यादृष्टि होते हैं । पुनः इस राशिको पल्योपमके असंख्यातवै भागसे गुणित करने पर असंख्यात पल्यो-पमप्रमाण असंयतसम्यग्दृष्टिराशि होती है । परंतु यह ठीक नहीं है, क्योंकि, 'इन गुण-स्थानवर्ती जीवोंकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्योपम अपहृत होता है' इस सूत्रके साथ पूर्वोक्त कथनका विरोध आता है ।

शंका—फिर आवलीके असंख्यातवै भागरूप गुणकारकी सिद्धि कैसे होती है ?

समाधान—सम्यग्मिथ्यादृष्टिके कालसे उसके योग्य असंख्यातगुणित कालसे संचित असंयतसम्यग्दृष्टि राशि ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, इस कालका सम्यग्मिथ्या-दृष्टिके उपक्रमकालसे असंख्यातगुणा उपक्रमकाल पाया जाता है । यहां पर संचित असंयतसम्यग्दृष्टि राशि भी आवलीके असंख्यातवै भागसे गुणितमात्र है । अथवा, दोनोंके उपक्रमकाल यद्यपि सदृश होते हैं, तो भी सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्य-दृष्टि जीव आवलीके संख्यात भागगुणित हैं, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाली राशिसे सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाली राशि आवलीके असंख्यातवै भागगुणित है ।

असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ १४ ॥

१ दव्वाणु ६ (भा. ३ पृ ६३)

२ अ स्थात्यो 'पल्लिवमेत्तो' इति पाठः ।

३ मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणा । स सि १, ८ प्रतिगु 'अणंतगुणो' इति पाठ ।

कुदा ? मिच्छादिद्विर्णमाणंतिपादो । को गुणगरो ? अभविविद्धिह अणंतगुणो,
मिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंताणि मव्वजीवरागिपडभवगमूलाणि । को पडिभागो ?
अमत्रदग्गममादिद्वी पडिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठिण्णे सन्वत्थोवा उवसससम्मादिट्ठी ॥ १५ ॥
मंजदायंजदादिट्ठणपडिमेहट्ठं असंजदमम्मादिट्ठिङ्गणवयणं । उवरिमुच्चमाणरासि-
नयेसुं गवन्थोववयणं । सेसमम्मादिट्ठिपडिसेहट्ठमुवसससम्मादिट्ठिवयणं ।

खट्वसम्मादिह्री असंखेज्जगुणा ॥ १६ ॥

उपगमममत्तादो राइयमममत्तमड्डुहं, दंसणमोहणीयकसएण उक्कस्सेण छम्मास-
मंतारिय उक्कस्सेण अट्टुत्तरसदमेत्ताणं चेत्त उपपज्जमाणत्तादो । राइयसम्मत्तादो उपसम-
ममत्तमरगुलहं, सत्तगादिदियाणि अंतारिय एगसमएण पल्लोवमस्स असंखेज्जदिभाग-
भेत्तजीनेसु तट्टप्पत्तिदंमणादो । तदो राइयसम्मादिट्ठिहितो उपसमसम्मादिट्ठिहिं असंखेज-
गुणेहि होदवामिदि ? सत्तमेदं, कितु मंचयत्तालमाहपेण उपसमसम्मादिट्ठिहितो राइय-

कर्मोक्ति, मिथ्यादृष्टि अनन्त होते हैं ।

गंगा-गणकार क्या है ?

ममाभान — अभ्यग्निसिद्धिसे अनन्तगुणा और सिद्धिसे भी अनन्तगुणा गुणकार है, जो सम्पूर्ण जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूल्यप्रमाण है ।

अंश—प्रतिभाग क्या है ?

समाधान--अस्यतन्म्यगृष्टि राशिका प्रमाण प्रतिभाग हे ।

अन्यतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपगमनस्यग्दृष्टि जीव सवसे कम है ॥ १५ ॥
 संयतान्यत आदि गुणस्थानोंका निषेध करनेके लिये सूत्रमें 'असयतसम्यग्दृष्टि-
 स्थान' यह पंचन दिया है। जोते कही जानेवाली राशियोंकी अपेक्षा 'सवसे कम' यह
 पंचन दिया है। जोर सम्यग्दृष्टियोंका प्रतिषेध करनेके लिये 'उपगमनसम्यग्दृष्टि' यह पंचन
 दिया है।

असंयतमग्न्यदृष्टि गुणस्थानमं उपशमसम्यग्दृष्टियांसे शायिकसम्यग्दृष्टि जीव
असंयतमग्न्यदृष्टि ॥ १६ ॥
असंयतगणितं ॥ १६ ॥

शुंकी—उपशमसम्यक्त्वमे क्षायिकसम्यक्त्व अतिदुर्लभ है, क्योंकि, दर्शन-
मोहनीयोंके क्षयद्वारा उत्कृष्ट ब्रह्म मासके अंतरालसे अधिक एकसौ आठ
जीयोंकी ही उत्पत्ति होती है। परंतु क्षायिकसम्यक्त्वसे उपशमसम्यक्त्व अतिदुर्लभ है,
क्योंकि, मात रात दिनके अंतरालसे एक समयमें पल्योगमके असंख्यातवें भागप्रमित
जीयोंमें उपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्ति देखी जाती है। इसलिये क्षायिकसम्यक्त्वप्रियाँसे
उपशमसम्यक्त्वप्रति असंख्यातगुणित होना चाहिए ?

रामाधान—यह कहना सत्य है, किन्तु संचयकाल के माहात्म्यसे उपशमसम्य-

सम्माइद्विणो असंखेज्जगुणा जादा । तं जहा- उवसमसम्मत्तद्धा उक्कस्सिया वि अंतो-
मुहुत्तमेत्ता चेय । खइयसम्मत्तद्धा पुण जहणिया अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सिया दोपुवकोडि-
अब्भहिइयेत्तिसागरोवममेत्ता । तत्थ मज्झिमकालो दिवड्डुपलिदोवममेत्तो । एत्थ
अंतोमुहुत्तमंतरिय संखेज्जोवक्कमणसमएसु धेप्पमाणेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभाग-
मेतोवक्कमणकालो लब्भइ । एदेण कालेण संचिदजीवा वि पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-
भागमेत्ता होदूण आत्रलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तुवक्कमणकालेण समयं पडि उवक्कंत-
पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तजीवेण संचिदुवसमसम्मादिट्ठोहंतो असंखेज्जगुणा
होति । ण सेसवियप्पा संभवंति, ताणमसंखेज्जगुणसुत्तेण सह विरोहा ।

एतथ चोदथो भणदि- आवलियाए असंखेज्जदिभागमेतंतेरेण खइयसम्मदिट्ठोण सोहम्मं जइ संचओ कीरदि पवेत्ताणुसारिणगमादो मणुसेस्सु असंखेज्जा खइयसम्मदिट्ठिणो पावेंति । अह संखेज्जानलियंतरेण डिइसंचओ कीरदि, तो संखेज्जावलियाहि वलिदोवमे संडिदे एयकसंडमेचा खइयसम्मदिट्ठिणो पावेंति । ण च एवं, आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तभागहागब्बुवगमादो । तदो देहि वि पयोरहि दोसो चेय दुक्कदि

गद्यष्टियोंसे शायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हो जाते हैं। वह इस प्रकार है— उपशम-सम्यग्त्वका उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्तमात्र ही है। परन्तु शायिकसम्यग्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल दो पूर्वकोटिसे अधिक तेजीस सागरोपमप्रमाण है। उसमें मध्यम काल डेढ़ पल्योपमप्रमाण है। यहां पर अन्तर्मुहूर्तकालको अन्तरित करने उपक्रमणके सख्यात समयोंके ग्रहण करने पर पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकाल प्राप्त होता है। इस उपक्रमणकालके द्वारा सचित हुए जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र हो करके भी आवलीके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकालके द्वारा प्रत्येक समयमें प्राप्त होनेवाले पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र जीवोंसे सचित हुए उपशमसम्यग्दृष्टियोंकी अपेक्षा असंख्यातगुणित होते हैं। यहां दोष विकल्प संभव नहीं है, क्योंकि, उन विकल्पोंका असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें ‘उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे शायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित है’ इस सूत्रके साथ विरोध आता है।

शंका—यहा पर शंकाकार कहता है कि आचलीके असल्यातवें भागमात्र अन्तरसे क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका सौधमें स्वर्गमें यदि संचय किया जाता है तो प्रवेशके अनुसार निर्गम होनेसे अर्थात् आयके अनुसार व्यय होनेसे मनुष्योंमें असंख्यान क्षायिक-सम्यग्दृष्टि जीव प्राप्त होते हैं। और यदि संख्यात आचलियोंके अन्तरालसे स्थितिका संचय करते हैं तो संख्यात आचलियोंसे पत्योपमके संडित करने पर एक खंडमात्र क्षायिकसम्यग्दृष्टि प्राप्त होते हैं। परंतु ऐसा है नहीं, क्योंकि, आचलिके असंख्यातवें भागमात्र भागहार स्वीकार किया गया है। इसलिप दोनो प्रकारोंसे भी दोष ही प्राप्त होता है ?

त्ति ? न एस दोसो, खइयसम्मादिद्वीणं पमाणगमणं पल्लोदोवमस्स संखेज्जावलियमेत्त-
भागहारस्स जुत्तीए उवलंभादो । तं जहा—अट्टसमयब्भहियल्लम्मासम्भंतरे जदि संखेज्जुव-
क्कमणसमया लब्भंति, तो दिवड्डुपल्लोदोवमवभंतरे किं लभामो ति पमाणेण फलगुणि-
दिच्छाए ओवड्डिदाए उवक्कमणकालो लब्भदि । तम्मि संखेज्जजीवेहि गुणिदे संखेज्जाव-
लियाहि ओवड्डिदपल्लोदोवमेत्ता खइयसम्मादिद्वीणो लब्भंति । तेण आवलियाए असंखे-
ज्जदिभागो भागहारो ति न धेत्तव्वो । उवक्कमणंतरे आवलियाए असंखेज्जदिभागो संते
एदं न घडिदि ति नासंकीज्जं, मणुसेसु खइयसम्मादिद्वीणं असंखेज्जाणमत्थित्तप्पसंगादो ।
एवं संते सासणादीणमसंखेज्जावलियाहि भागहारेण होदव्वं ? न एस दोसो, इड्डादो ।
न अण्णेसिमाइरियाणं वक्खणेण विरुद्धं ति एदस्स वक्खणस्स अभदत्तं, सुत्तेण सह
अविरुद्धस्स अभदत्तविरोहादो । एदेहि पल्लोदोवमवहिरदि अंतोपुट्टुत्तेण कालेणेत्ति सुत्तेण
वि न विरोहो, तस्स उवयारणिबंधणात्तादो ।

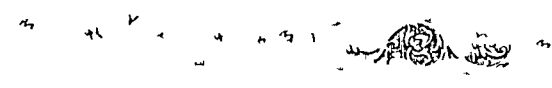
समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके प्रमाण
लानेके लिए पल्लोपमका संख्यात आवलिमात्र भागहार युक्तिसे प्राप्त हो जाता है ।
जैसे—आठ समय अधिक छह मासके भीतर यदि संख्यात उपक्रमणके समय प्राप्त होते
हैं, तो डेढ़ पल्लोपमके भीतर कितने समय प्राप्त होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर
प्रमाणराशिसे फलराशिको गुणित करके और इच्छाराशिसे भाजित कर देने पर उप-
क्रमणकाल प्राप्त होता है । उसे संख्यात जीवोंसे गुणित कर देने पर पल्लोपममें संख्यात
आवलियोंका भाग देने पर जो लब्ध आवे उतने क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव प्राप्त होते हैं ।
इसलिए यहा आवलीका असंख्यातवां भाग भागहार है, ऐसा नहीं ग्रहण करना चाहिए ।

उपक्रमणकालका अन्तर आवलीका असंख्यातवां भाग होने पर उपर्युक्त व्याख्यान
घटित नहीं होता है, ऐसी आशंका भी नहीं करना चाहिए, क्योंकि, ऐसा मानने पर
मनुष्योंमें असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके अस्तित्वका प्रसंग आता है ।

शंका—यदि ऐसा है तो सासादनसम्यग्दृष्टि आदिके असंख्यात आवलियां
भागहार होना चाहिए ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, वह इष्ट ही है ।

तथा, यह व्याख्यान अन्य आचार्योंके व्याख्यानसे विरुद्ध है, इसलिये इस-
व्याख्यानके अभद्रता (अयुक्ति-संगतता) भी नहीं है, क्योंकि, इस व्याख्यानका सूत्रके
साथ विरोध नहीं है, इसलिये उसके अभद्रताके माननेमें विरोध आता है । 'इन राशि-
योंके प्रमाणकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्लोपम अपहृत होता है' इस द्रव्यानुयोग-
द्वारेके सूत्रके साथ भी उक्त व्याख्यानका विरोध नहीं आता है, क्योंकि, वह सूत्र उप-
चार-निमित्तक है ।



वेदगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ १७ ॥

कुदो ? दंसणमोहणीयक्खएणुप्पणखइयसम्मात्तादो खओवसमियवेदगसम्मत्तस्स
सुट्ठु सुलहत्तुवलंभा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? ओघसोहम्म-
असंजदसम्मादिद्विभागहारस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागपमाणत्तादो ।

संजदांसजदट्टाणे सवत्थोवा खइयसम्मादिद्वी ॥ १८ ॥

कुदो ? अनुव्वयसहिदखइयसम्मादिद्वीणमइदुल्लभत्तादो । न च तिरिक्खेसु
खइयसम्मत्तेण सह संजमांसजमो लब्भदि, तत्थ दंसणमोहणीयक्खवणाभावा । तं पि कुदो
णव्वदे ? 'णियमा मणुसगदीए' इदि सुत्तादो । जे वि पुवं वद्वतित्तिक्खलाउआ मणुसा
तिरिक्खेसु खइयसम्मत्तेणुप्पज्जंति, तेसिं न संजमांसजमो अत्थि, भोगभूमिं मोत्तूण
अणत्थुप्पत्तीए असंभवादो । तेण खइयसम्मादिद्विणो संजदांसजदा संखेज्जा चेय,

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव
असंख्यातगुणित हैं ॥ १७ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीय कर्मके क्षयसे उत्पन्न हुए क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा
क्षायोपशमिक वेदकसम्यक्त्वका पाना अति सुलभ है ।

शंका—गुणकार क्या है ?

समाधान—आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, सामान्यसे
सौधर्मस्वर्गके असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका भागहार आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण
होता है ।

संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १८ ॥

क्योंकि, अनुव्रतसहित क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका होना अत्यन्त दुर्लभ है । तथा
तिर्यचोंमें क्षायिकसम्यक्त्वके साथ संयमासंयम पाया नहीं जाता है, क्योंकि, तिर्यचोंमें
दर्शनमोहनीयकर्मकी क्षपणाका अभाव है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—'दर्शनमोहनीयका क्षपण करनेवाले जीव नियमसे मनुष्यगतिमें
होते हैं' इस सूत्रसे जाना जाता है ।

तथा जिन्होंने पहले तिर्यचायुका बंध कर लिया है ऐसे जो भी मनुष्य क्षायिक
सम्यक्त्वके साथ तिर्यचोंमें उत्पन्न होते हैं उनके संयमासंयम नहीं होता है, क्योंकि,
भोगभूमिको छोड़कर उनकी अन्यत्र उत्पत्ति असंभव है । इसलिये क्षायिकसम्यग्दृष्टि
संयतासंयत जीव संख्यात ही होते हैं, क्योंकि, संयमासंयमके साथ क्षायिकसम्यक्त्व

१ दंसणमोहक्खवणापट्टवगो कम्मभूमिजादो दु । णियमा मणुसगदीए णिट्ठगो चांवि सज्जथ ॥ १ ॥
कसायपाहुंढे, खवणाहियारे. २.

कारणं, दन्वाहियत्तादो । वेदगसम्मादिद्वी गत्थि, तेण सह उवसमसेडीआरोहणाभावा । उवसंतत्ताएसु सम्मत्तप्पावहुगं किण्ण परूविदं ? न एस दोसो, तिखु अद्वासु सम्मत्त-
प्पावहुगे अवगदे तत्थ वि तदवगमादो । सुहं गहण्डं चदुसु उवसमाएसु ति' किण्ण
परूविदं ? न, 'एगजोगणिदिट्ठणमेगदेसो गाणुवड्ढि' ति गायदो उवरे चदुहमणुउत्ति-
प्पसंगां । होदु चे न, पडिजोगीणं चदुणहुसुवसामगाणमभावा ।

संवत्थोवा उवसमा ॥ २५ ॥

कुदो ? थोवायुपदेसादो^१ संकलितसचयस्स^२ वि थोवत्तस्स गायसिद्धत्तादो ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित है, क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका यहां द्रव्यप्रमाण अधिक पाया जाता है । उपशमश्रेणीमें वेदकसम्यग्दृष्टि जीव नहीं पाये जाते हैं, क्योंकि, वेदकसम्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणीके आरोहणका अभाव है ।

शंका—उपशान्तकपाय गुणस्थानवर्ती जीवोंमें सम्यक्त्वका अल्पवहुत्व क्यों नहीं कहा ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, तीनों उपशामक गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वका अल्पवहुत्व ज्ञात हो जाने पर उपशान्तकपाय गुणस्थानमें भी उसका ज्ञान हो जाता है ।

शंका—सुख अर्थात् सुगमतापूर्वक ज्ञान होनेके लिए 'चारों उपशामक गुणस्थानोंमें' ऐसा सूत्रमें क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'जिनका निर्देश एक समासके द्वारा किया जाता है उनके एक देशकी अनुवृत्ति नहीं होती है' इस न्यायके अनुसार आगे कहे जानेवाले सूत्रोंमें चारों गुणस्थानोंकी अनुवृत्तिका प्रसंग प्राप्त होगा ।

शंका—यदि आगे चारों उपशामकोंकी अनुवृत्तिका प्रसंग आता है, तो आने दो, क्या दोष है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, चारों उपशामकोंके प्रतियोगियोंका अभाव है । अर्थात् जिस प्रकार अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंके भीतर उपशामक और उनके प्रतियोगी क्षपक पाये जाते हैं, उसी प्रकार चौथे उपशामक अर्थात् ग्यारहवें गुणस्थानमें उपशामकोंके प्रतियोगी क्षपक नहीं पाये जाते हैं ।

अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ २५ ॥

क्योंकि, अल्प आयका उपदेश होनेसे सचित होनेवाली राशिके स्तोकपना अर्थात् कम होना न्यायसिद्ध है ।

१ प्रतिपु 'उवसामए सुवे' इति पाठः ।

२ प्रतिपु 'अणउत्तिप्पसगा' इति पाठः ।

३ प्रतिपु 'थेनए पदेसादो' इति पाठः ।

४ प्रतिपु 'मगलितसचयस्स' इति पाठः ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ २६ ॥

कुदो ? संखेज्जगुणायादो संचउवलंभा । उवसम-खवगणमेदमप्पावहुगं पुवं परूविदिमिदि एत्थ न परूविदवं ? न, पुवमुवसामग-खवगपेसगाणमप्पावहुगकथणादो । तदो चेव संचयप्पावहुगसिद्धीए होदीदि चे सच्चं होदि, उच्चोदो । उच्चिवादे अणि-
उणसत्ताणुगहड्डेमेदमप्पावहुअं पुणो वि परूविदं । खवगसेडीए सम्मत्तप्पावहुअं किण्ण परूविदं ? न, तेसि खइयसम्मत्तं मोत्तूण अण्णसम्मत्ताभावा । तं कुदो णव्वदे ? खवगेसु उवसम-वेदगसम्मादिट्ठिद्ववादिपरूवयसुत्ताणुवलंभा । उवसमा खवा ति सदा उवसम-
सम्मत्त-खइयसम्मत्ताणं वाचया ण होति ति भणंताणमभिप्पाएण खइयसम्मत्तस्स

अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानवर्ती उपशामकोंसे तीनों गुणस्थानवर्ती क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २६ ॥

क्योंकि, संख्यातगुणित आयसे क्षपकोंका संचय पाया जाता है ।

शंका—उपशामक और क्षपकोंका यह अल्पवहुत्व पहले कह आये हैं, इसलिये यहां नहीं कहना चाहिये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पहले उपशामक और क्षपक जीवोंके प्रवेशकी अपेक्षा अल्पवहुत्व कहा है ।

शंका—उसीसे संचयके अल्पवहुत्वकी सिद्धि हो जायगी (फिर उसे पृथक् क्यों कहा) ?

समाधान—यह सत्य है कि युक्तिसे अल्पवहुत्वकी सिद्धि हो सकती है । किन्तु जो शिष्य युक्तिवादमें निपुण नहीं हैं, उनके अनुग्रहके लिये यह अल्पवहुत्व पुनः भी कहा है ।

शंका—क्षपकश्रेणीमें सम्यक्त्वका अल्पवहुत्व क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, क्षपकश्रेणीवालोंके क्षायिकसम्यक्त्वको छोड़कर अन्य सम्यक्त्व नहीं पाया जाता है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि, क्षपकश्रेणीवाले जीवोंमें उपशमसम्यग्दृष्टि और वेदक-सम्यग्दृष्टि जीवोंके द्रव्य अर्थात् संख्या और आदि पदसे क्षेत्र, स्पर्शन आदिके प्ररूपक सूत्र नहीं पाये जाते हैं । उपशामक और क्षपक, ये दोनों शब्द क्रमशः उपशमसम्यक्त्व और क्षायिकसम्यक्त्वके वाचक नहीं हैं, ऐसा कथन करनेवाले आचार्योंके अभिप्रायसे

१ प्रतिपु 'अणिउणसत्ताणुगहड्ड-' इति पाठः ।

नपानदृष्टमयानि, पुत्रमपहृदिदुःखगुणसामगमंचयस्म अपावहुवपल्लयानि वा दोषि मुक्तानि चि धेत्तव्यं ।

५१ ओषधिरूपा समवा ।

आदेसेण गदियाणुवादेण गिरयगदीए णेरइएसु सन्वथोवा सासणसम्मादिद्धी' ॥ २७ ॥

आदेसमणं ओषधिसिंहकलं । सेसमगणादिपडिसिंहकं गदियाणुवादवयणं । मेमगदिपडिनेहणद्धो गिरयगदिनिदिमो । सेमगुणद्वानपडिसिंहकं सासणनिदिमो । उवरि उच्चमाणगुणद्वान्नेहिंतो सामणा दव्यपमाणेण थोवा अप्पा इदि उच्चं होदि ।

सम्माभिच्छादिद्धी संखेज्जगुणा' ॥ २८ ॥

कुदो ? सासणुनत्तनणत्तालादो सम्माभिच्छादिद्धिउवक्कमणकालस्स संखेज्जगुणस्स उलंभा । को गुणगारो ? संखेज्जसमया । हेट्ठिमरासिणा उवरिमरासिहिं भागे

ये गंतो मर श्रायिकसम्यक्त्वे अरपवहुत्वे प्ररूपक हैं, तथा पहले नहीं प्ररूपण किये गये क्षणक और उग्रशान्तमन्मन्धी संचयके अल्पगुल्लके प्ररूपक हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।

इस प्रकार ओषधिरूपा रामान्त हुई ।

आदेसकी अपेक्षा गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें सासादनमम्यग्दृष्टि जीन मवसे कम हैं ॥ २७ ॥

सूत्रमें 'आदेश' यह वचन ओषधका प्रतिषेध करनेके लिए है । शेष मार्गणा आदि प्रतिषेध करनेके लिए 'गतिमार्गणाके अनुवादसे' यह वचन कहा है । शेष गतियोंके प्रतिषेधके लिए 'नरकगति' इस पदका निर्देश किया । शेष गुणस्थानोंके प्रतिषेधार्थ 'सासादन' इस पदका निर्देश किया । ऊपर कहे जानेवाले शेष गुणस्थानोंके द्रव्यप्रमाणोंकी अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणसे स्तोक अर्थात् अल्प होते हैं, यह अर्थ कहा गया है ।

नारकियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २८ ॥

क्योंकि, सासादनसम्यग्दृष्टियोंके उपक्रमणकालसे सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका उपक्रमणका उच्चतमगुणा पाया जाता है । गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । अथस्तनराशिना उपरिमराशियोंमें भाग देने पर गुणकारका प्रमाण आता है । अथस्तन-

१ विदितेन दन्तादेन नगरगतां मर्वांसु पृथिवीसु सर्पतः स्तोत्राः मानादनसम्यग्दृष्टय । स. सि. १, ८.

२ समपुनित्वाद्यन मल्लेयगुणाः । स. सि. १, ८.

हिदे गुणगारो आगच्छदि । को हेट्ठिमरासी ? जो थोवो । जो पुण बहु सो उवरिमरासी । एदमत्थपदं जहावसरं सव्वत्थ वत्तव्वं ।

असंजदसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा' ॥ २९ ॥

कुदो ? सम्माभिच्छादिद्धिउवक्कमणकालादो असंजदसम्मादिद्धिउवक्कमणकालस्स असंखेज्जगुणस्स संभवुलंभा, सम्माभिच्छात्तं पडिउज्जमाणजीवेहिंतो सम्मत्तं पडिउज्जमाणजीवाणमसंखेज्जगुणत्तादो वा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । हेट्ठिमरासिणा उवरिमरासिमोवद्विय गुणगारो साहेयव्वो ।

भिच्छादिद्धी असंखेज्जगुणा' ॥ ३० ॥

को गुणगारो ? असंखेज्जाओ सेडीओ पदरस्स असंखेज्जदिभागो । तारिं सेठीणं विक्खंभस्सुची अंगुलस्म असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि अंगुलवग्गमूलाणि निदियवग्गमूलस्स असंखेज्जभागमेत्ताणि । तं जथा - असंजदसम्मादिद्धिहि स्सुचिअंगुलविदियवग्गमूलं गुणेदूण तेण स्सुचिअंगुले भागे हिदे लद्धमंगुलस्स असंखेज्जदिभागो । असंखेज्जाणि अंगुलवग्गमूलाणि गुणगारिविक्खंभस्सुची होदि चि कथं णव्वदे ? उच्चदे - असंजदसम्मादिद्धिहि राशि कौनसी है ? जो अल्प होती है, वह अथस्तनराशि है, और जो बहुत होती है, वह उपरिमराशि है । यह अर्थपद यथावसर सर्वत्र कहना चाहिए ।

नारकियोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ २९ ॥ क्योंकि, सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके उपक्रमणकालसे असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उपक्रमणकाल असंख्यातगुणा पाया जाता है । अथवा, सम्यग्मिथ्यादृष्टि प्राप्त होनेवाले जीवोंसे सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीव असंख्यातगुणित होते हैं । गुणकार क्या है ? आवलीता असंख्यातवां भाग गुणकार है । अधस्तनराशिसे उपरिमराशिको अपवर्तित करनेके गुणकार सिद्ध कर लेना चाहिए ।

नारकियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३० ॥ गुणकार क्या है ? असंख्यात जगत्प्रेणियां गुणकार है, जो जगत्प्रेणियां जगत्प्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । उन जगत्प्रेणियोंकी विक्कंभस्सुची अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है । जिसका प्रमाण अंगुलके द्वितीय वर्गमूलके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात प्रथम वर्गमूल है, वह इस प्रकार है - असंयतसम्यग्दृष्टियोंके प्रमाणसे सूत्र्यंगुलके द्वितीय वर्गमूलको गुणित करके जो लब्ध थावे, उससे सूत्र्यंगुलमें भाग देने पर अंगुलका असंख्यातवां भाग लब्ध आता है ।

शुक्रा—अंगुलके असंख्यात वर्गमूल गुणकार विक्कंभस्सुची है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—असंयतसम्यग्दृष्टियोंके प्रमाणसे सूत्र्यंगुलके द्वितीय वर्गमूलके

१ असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंयतगुणा । स. सि. १, ८. २ मिणदृष्टयोऽसंयतगुणा । स. सि. १, ८.

स्त्रिअंगुलविदियवगमूले भागे हिदे लद्धम्मि जत्तियाणि रूवाणि तत्तियाणि अंगुलपटम-
वगमूलाणि । कुदो ? दव्वविक्खंभस्सुची घणंगुलविदियवगमूलेमत्ता, असंजदसम्मा-
दिद्धीहि तम्मि घणंगुलविदियवगमूले ओवद्धिदे असंखेज्जाणि सूचिअंगुलपटमवग-
मूलाणि होति त्ति तंत-जुत्तिसिद्धीदो । तत्थ जेत्तियाणि रूवाणि तेत्तियमेत्ता सेडीओ
गुणगारो होदि ।

असंजदसम्मादिद्विद्वाने सव्वथोवा उवसमसम्मादिद्धी ॥ ३१ ॥

कुदो ? अंतोपुहुत्तपेत्तुवसमसम्मतद्वए उवक्कमणकालेण आवलियाए असंखेज्जि-
भागेण संचिदत्तादो उच्चमाणसव्वसम्मादिद्विरासीहिंतो उवसमसम्मादिद्धी थोवा होति ।

खइयसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा ॥ ३२ ॥

कुदो ? सहावदो चेव उवसमसम्मादिद्धीहिंतो असंखेज्जगुणसरूवेण खइयसम्मा-
दिद्वीमणइणिहणमवद्वानादो, संखेज्जपलितोवमभंत्तरे पलितोवमस असंखेज्जदिभाग-
मेत्तुवक्कमणकालेण संचिदत्तादो असंखेज्जगुणा त्ति बुत्तं होदि । एत्थतणखइयसम्मा-
दिद्धीं भागहारो असंखेज्जावलियाओ । कुदो ? ओघासंजदसम्मादिद्धीहिंतो असंखेज्ज-

भाजित करने पर लब्धमें जितना प्रमाण आवे, उतने सूत्र्यगुलके प्रथम वर्गमूल गुणकार-
विक्रमसूत्रमें होते हैं, क्योंकि, द्रव्यविक्रमसूत्री घनांगुलके द्वितीय वर्गमूलमात्र है ।
इसलिए असंयतसम्यग्दृष्टियोंके प्रमाणसे उस घनांगुलके द्वितीय वर्गमूलके अपवर्तित
कर देनेपर सूत्र्यगुलके असंख्यात प्रथम वर्गमूल होते हैं, यह प्रकार आगम और युक्तिसे
सिद्ध है । अतएव वहांपर जितनी संख्या हो तन्मात्र जगश्रेणियां यहांपर गुणकार है ।

नारकियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ३१ ॥

क्योंकि, अन्तर्मुहूर्तमात्र उपशमसम्यक्त्वके कालमें आवलीके असंख्यातवें भाग-
प्रमाण उपक्रमणकाल द्वारा संचित होनेके कारण आगे कहे जानेवाले सर्व प्रकारके
सम्यग्दृष्टियोंकी राशियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव थोड़े होते हैं ।

नारकियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि
असंख्यातगुणित हैं ॥ ३२ ॥

क्योंकि, स्वभावसे ही उपशमसम्यग्दृष्टियोंकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका
असंख्यातगुणितरूपसे अनादिनिधन अवस्थान है, जिसका तात्पर्य यह है कि संख्यात
पत्योपमके भीतर पत्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकाल द्वारा संचित होनेसे
क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे असंख्यातगुणित हैं । यहा नारकियोंमें जो
क्षायिकसम्यग्दृष्टि हैं उनके प्रमाणके लानेके लिए भागहारका प्रमाण असंख्यात आवलियां
हैं, क्योंकि, ओघ असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे असंख्यातगुणित हीन ओघ क्षायिकसम्यग्दृष्टि

गुणहीणओघखइयसम्मादिद्विद्वानं असंखेज्जदिभागमेत्तादो । ण वासपुधत्तंतसुत्तेण सह
विरोहो, सोहम्मीसाणकपं मोत्तूण अणत्थ द्दिदखइयसम्मादिद्विद्वानं वासपुधत्तस्स विउल्ल-
वाइणो' गहणादो । तं तहा धेप्पदि त्ति कुदो णव्वदे ? ओघुवसमसम्मादिद्धीहिंतो
ओघखइयसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा त्ति अप्पावहुअसुत्तादो ।

वेदगसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा ॥ ३३ ॥

कुदो ? खइयसम्मात्तादो खओवसमियस्स वेदगसम्मतस्स सुलहत्तुलंभा । को
गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कधमेदं णव्वदे ? आइरियपरंपरागदु-
वदसादो ।

एवं पटमाए पुढवीए णेरइया ॥ ३४ ॥

जहा सामण्णेरइयाणमप्पावहुअं परुविदं, तहा पटमपुढवीणेरइयाणमप्पावहुअं परू-
वेदव्वं, ओघणेरइयअप्पावहुआलावादो पटमपुढवीणेरइयाणमप्पावहुआलावस्स भेदाभावा ।

जीव असंख्यातवें भाग ही होते हैं । इस कथनका वर्षपृथक्त्व अन्तर वतानेवाले सूत्रके
साथ विरोध भी नहीं आता है, क्योंकि, सौधर्म और पेशानकल्पको छोड़कर अन्यत्र
स्थित क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके अन्तरमें कहे गये वर्षपृथक्त्वके 'पृथक्त्व' शब्दको वैपुल्य-
वाची ग्रहण किया गया है ।

शंका—यहां पर पृथक्त्वका अर्थ वैपुल्यवाची ग्रहण किया गया है, यह कैसे
जाना जाता है ?

समाधान—'ओघ उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे ओघ क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव अर्से-
ख्यातगुणित हैं' इस अल्पबहुत्वके प्रतिपादक सूत्रसे जाना जाता है ।

नारकियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि
असंख्यातगुणित हैं ॥ ३३ ॥

क्योंकि, क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा क्षायोपशमिक वेदकसम्यक्त्वकी प्राप्ति
सुलभ है । गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आचार्य परम्परासे आये हुए उपदेशके द्वारा जाना जाता है ।

इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें नारकियोंका अल्पबहुत्व है ॥ ३४ ॥

जिस प्रकार सामान्य नारकियोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार पहली पृथि-
वीके नारकियोंका अल्पबहुत्व कहना चाहिए, क्योंकि, सामान्य नारकियोंके अल्पबहुत्वके
कथनसे पहली पृथिवीके नारकियोंके अल्पबहुत्वके कथनमें कोई भेद नहीं है । किन्तु

१ पुढुत्तसदो बहुत्तवाई । क. प बुणि

पञ्चाद्विगुणः अलं निज्जमाणे अतिरिमेयो. सो जाणिय वत्तव्वो ।

**विदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए णेरइए सु सव्वथोवा सासण-
सम्मादिट्ठी ॥ ३५ ॥**

विदियान्तिट्ठं पुढवीणं सामणमम्मादिट्ठिणो बुद्धीए पुथ पुथ इविय सव्वथोवा ति उचं । इदो ? छण्हमप्पावद्दुआणमेयचचिरोहदो । सव्वेहितो थोवा सव्वथोवा । आदिअंतसु णेरइए सु णिदिट्ठे सु सेसमज्झिमणेरइया सव्वे णिदिट्ठा चेष, जावसद्धुच्चार-
णणभाणमरणीदो । जामरेण सत्तमपुढवीणेरइयाणं मज्जादत्ताए ठविदाए, विदियपुढवी-
णेरइयाणमाटित्तमादिदं । आदी अंता न मज्जेण पिणा ण होति ति चट्ठण्हं पुढवी-
णेरइयाणं मज्झिमं पि जामरेंदेण पक्खिदं । तदो पुथ पुथ पुढवीणमुच्चारणा ण कदा ।

सम्माभिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३६ ॥

विदियपुढवीआदिसत्तमपुढवीपज्जंतसासणणमुवरि पुथ पुथ छपुढवीसम्माभिच्छा-
दिट्ठिणो संखेज्जगुणा, मासणसम्मादिट्ठिउक्कमणकालादो सम्माभिच्छादिट्ठिउक्कमण-
पर्यायाधिस्सयका अवलम्बन करने पर कुछ विदोपता है, सो जानकर कहना चाहिए ।
(येनो भाग ३, पृ. १६२ इत्यादि ।)

नारकियोंमें दूसरीमें लेकर सातवीं पृथिवी तक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम है ॥ ३५ ॥

दूसरीको आगे लेकर ऊहों पृथिवियोंके सासादनसम्यग्दृष्टियोंको बुद्धिके द्वारा पृथक् पृथक् स्थापित करके प्रत्येक सबसे कम है, ऐसा अर्थ कहा गया है, क्योंकि, छहों पल्लवहृत्कोंका पत्र माननेमें विरोध आता है । सबसे थोड़ोंको सर्वस्त्वोक कहते हैं । आदिम और अन्तिम नारकियोंके निर्देश कर देने पर दोष मध्यम सभी नारकियोंका निर्देश हो ही जाता है, अन्यथा यावत् शब्दका उच्चारण नहीं बन सकता है । यावत् शब्दके द्वारा सातवीं पृथिवीके नारकियोंके मर्यादारूपसे स्थापित किये जानेपर दूसरी पृथिवीके नारकियोंके आविपना अपने आप आ जाता है । आदि और अन्त मध्यके बिना नहीं होते हैं, इसलिए चार पृथिवियोंके नारकियोंके मध्यमपना भी यावत् शब्दके द्वारा ही प्रकृति कर दिया गया । इसी कारण पृथक् पृथक् रूपसे पृथिवियोंका नाम-
निर्देशपूर्ण उच्चारण नहीं किया गया है ।

नारकियोंमें दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्य-
ग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३६ ॥

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक सासादनसम्यग्दृष्टियोंके ऊपर पृथक् पृथक् छह पृथिवियोंके सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकी संख्यातगुणित हैं, क्योंकि, सासादन-
सम्यग्दृष्टियोंके उपक्रमणकालसे सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका उपक्रमणकाल युक्तिके संख्यात-

१ आ स्वयोः 'वेसरणा' इति पाठः ।

२ प्रतिपु 'अविदा' इति पाठ ।

कालस्स जुत्तीए संखेज्जगुणचुवलंभा । को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३७ ॥

कुदो ? छपुढविसम्माभिच्छादिट्ठिउक्कमणकालेहितो छपुढविअमंजदसम्मा-
दिट्ठिउक्कमणकालाणमसंखेज्जगुणत्तदंसादो, एससमएण सम्माभिच्छाचमुक्कमंतजीवेहितो
एससमएण वेदयसम्मत्तमुक्कमंतजीवाणमसंखेज्जगुणत्तादो वा । को गुणगारो ? आव-
लियाए असंखेज्जदिभागो । कधमेदं णव्वेदे ? ' एदेहि पलिदोवममवहिरिदि अंतोमुहुत्तेण
कालेणोत्ति' सुत्तादो । असंखेज्जावलियाहि अंतोमुहुत्तं किण्ण विरुज्झदि ति उत्ते ण,
ओवअसंजदसम्मादिट्ठिअवहारकालं मोत्तूण सेसगुणपडिक्कणमवहारकालस्स कज्जे
कारणोवयारेण अंतोमुहुत्तसिद्धीदो ।

भिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३८ ॥

छण्हं पुढवीणमसंजदसम्मादिट्ठीहितो सेडीवारस-दसम-अट्ठम-छट्ठ-तइय-विदियवग-

गुणा पाया जाता है । गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

नारकियोंमें दूसरीसे सातवीं पृथिवी तक सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि
जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३७ ॥

स्वोंकि, छह पृथिवियोंसम्बन्धी सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके उपक्रमणकालोंसे छह
पृथिवीगत असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उपक्रमणकाल असंख्यातगुणा देखा जाता है । अथवा,
एक समयके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी अपेक्षा एक समयके
द्वारा वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीव असंख्यातगुणित होते हैं । गुणकार क्या है ?
आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—' इन जीवराशियोंके द्वारा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्योपम अपहृत होता
है, ' इस द्रव्ययुगोपकारके सूत्रसे जाना जाता है ।

शंका—अन्तर्मुहूर्तका अर्थ असंख्यात आवलियां लेनेसे उसका अन्तर्मुहूर्तपना
विरोधको क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं, स्वोंकि, ओघअसंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके अवहारकालको छोड़-
कर दोष गुणस्थान-प्रतिपन्न जीवोंके अवहारकालका कार्यमें कारणका उपचार कर लेनेसे
अन्तर्मुहूर्तपना सिद्ध हो जाता है ।

नारकियोंमें दूसरीसे सातवीं पृथिवी तक असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि
जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३८ ॥

द्वितीयादि छहों पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे जगज्जेणिके बारहवें, दशवें,

मूलेष्वदिसेडीमेत्तच्छुधुविमिच्छादिद्विणो असंखेज्जगुणा हँति । को गुणगारो ? सेडीए असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि सेडीपढमवगममूलाणि । को पडिभागो ? असंखेज्जाणि सेडीवारसम-दसम-अडुम-छट्ट-तदिय-विदियवगममूलाणि । कुदो ? असंजदसम्मादिद्विरासिणा गुणिदत्तादो ।

असंजदसम्मादिद्विद्वाने सन्वत्थोवा उवसमसम्मादिद्वी ॥ ३९ ॥

सन्वेहि उच्चमाणद्वानेहिंतो त्थोवा त्ति सन्वत्थोवा । कुदो ? अवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तउवक्कमणकालेण संचिदत्तादो ।

वेदगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ४० ॥

एत्थ पुवं व तीहि पयरोहि सेचियसरूवेहि गुणयारो परूवेद्वो । एत्थ खइयसम्मादिद्विणो ण परूविदा, हेड्डिमछपुढवीसु तेसिमुववादाभावा, मणुसगइ मुच्चा अणत्थ दंसणमोहणीयखवणाभावादो च ।

आठवें, छठवें, तीसरे और दूसरे वर्गमूलसे भाजित जगश्रेणीप्रमाण छह पृथिवियोंके मिथ्याद्वि नारकी असंख्यातगुणित होते हैं । गुणकार क्या है ? जगश्रेणीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो जगश्रेणीके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? जगश्रेणीके चारहवें, दशवें, आठवें, छठवें, तीसरे और दूसरे असंख्यात वर्गमूलप्रमाण प्रतिभाग है, क्योंकि, ये सब असंयतसम्यग्दृष्टिराश्रितसे गुणित हैं ।

नारकियोंमें द्वितीयादि छह पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ ३९ ॥

आगे कहे जानेवाले स्थानोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि थोड़े होते हैं, इसलिये वे सर्व-स्तोक कहलाते हैं, क्योंकि, आवलीके असंख्यातवे भागमात्र उपक्रमणकालसे उनका संचय होता है ।

नारकियोंमें द्वितीयादि छह पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदमसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ४० ॥

यहां पर पहलेके समान सेचिकस्वरूप अर्थात् मापके विशेष भेदस्वरूप तीनों प्रकारोंसे गुणकारका प्ररूपण करना चाहिए (देखो पृ २४९) । यहा क्षयिकसम्यग्दृष्टियोंका प्ररूपण नहीं किया है, क्योंकि, नीचेकी छह पृथिवियोंमें क्षयिकसम्यग्दृष्टियोंकी उत्पत्ति नहीं होती है, और मनुष्यगतिको छोड़कर अन्य गतियोंसे दर्शनमोहनीयकी क्षणता नहीं होती है ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्ख-पंचिदियपज्जत्त-तिरिक्ख-पंचिदियजोणिणीसु सन्वत्थोवा संजदासंजदा ॥ ४१ ॥

पयदचउव्विहतिरिक्खेसु जे देसव्वइणो ते तेसिं चैव सेसगुणद्वानजिविहिंतो थोवा त्ति चट्ठण्हमप्पावड्डुआणं मूलपदमेदेण परूविदं । किमइं देसव्वइणो थोवा ? संजया-संजमुवलभस्स सुदुल्लहत्तादो ।

सासणसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ४२ ॥

चउव्विहतिरिक्खाणं जे सासणमम्मादिद्विणो ते सग-सगसंजदासंजदेहिंतो असंखेज्जगुणा, संजमासंजमुवलभदो सासणगुणलभस्स सुलहत्तुवलभा । को गुणगारो ? अवलियाए असंखेज्जदिभागो । तं कथं णव्वेदं ? अंतोसुहुचसुत्तादो, आहरियपरंपरा-गदुवेदादो वा ।

सम्माभिच्छादिद्विणो संखेज्जगुणा ॥ ४३ ॥

तिर्यचगतिमे तिर्यच, पंचेन्द्रियतिर्यच, पंचेन्द्रियपर्याप्त और पंचेन्द्रिययोनिमती तिर्यच जीवोंमें संयतासंयत सबसे कम हैं ॥ ४१ ॥

प्रकृत चारों प्रकारोंके तिर्यचोंमे जो तिर्यच देशव्रती है, वे अपने ही णेप गुण-स्थानवर्ती जीवोंसे थोड़े हैं, इस प्रकार इससे चारों प्रकारके तिर्यचोंके अल्पबहुत्वका मूलपद प्ररूपण किया गया है ।

शंका—देशव्रती अल्प क्यों होते हैं ?

समाधान—क्योंकि, संयमासंयमकी प्राप्ति अतिदुर्लभ है ।

उक्त चारों प्रकारके तिर्यचोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ४२ ॥

चारों प्रकारके तिर्यचोंमें जो सासादनसम्यग्दृष्टि जीव हैं, वे अपने अपने संयता-संयतोंसे असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि, संयमासंयम-प्राप्तिकी अपेक्षा सासादन गुण-स्थानकी प्राप्ति सुलभ है । गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—अन्तर्मुहूर्त अवहारकालके प्रतिपादक सूत्रसे और आचार्य परम्परासे आये हुए उपदेशसे यह जाना जाता है ।

उक्त चारों प्रकारके तिर्यचोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्याद्वि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ४३ ॥

100-1000
100-1000
100-1000
100-1000

चउन्विनितिक्वपसामणसम्मादिदुर्हितो मग-सगसम्माभिच्छादिद्विणो संखेज्ज-
गुणा । कुदो ? मानयु । स्कमण-कालादो मम्मामिच्छादिद्विणमुवक्कमण-कालस्स तंत-जुत्तीए
संमंज्जणानुलंभा । को गुणगोरो ? मरोज्जसमया ।

असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ४४ ॥

नउन्विहतिरिस्मग्गम्मामिच्छादिद्विहितो तेमिं चेप असंजइसम्ममादिट्ठणो आराखेज-
गुणा । बुद्धो ? गम्मामिच्छत्तमुक्कमंसंतजिंहितो सम्मत्तमुवृत्तमंतजिवाणमसंखेजगुण-
ताओ । को गुणगाओ ? आपलियाए असेजेज्झिभाओ । तं कुदो णब्बदे ? ‘ पलिदोवमम-
नहिन्द अतोमुद्घुत्तेणैत्ति ’ सुचाओ, आजिरियपरंपरागदुवुदेसादो वा ।

मिच्छादिद्वी अणंतगुणा, मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥४५॥
 न इदं तिरिस्माणमसंजदस्मादिद्विहितो तेसि चैव मिच्छादिद्वी अणंतगुणा
 अर्गगेज्जगुणा य । पिप्पडिसिद्धमिदं । जदि अणंतगुणा, कधमसंखेज्जगुणां ? अह

नारो प्रकारके नामादनसम्यग्दृष्टि तिर्यचोपसे अपने अपने सम्यग्मिथ्यादृष्टि
निरन सम्यगतगुणित है, क्योंकि, मासादनसम्यग्दृष्टियोंके उपक्रमणकालसे सम्यग्मिथ्या-
दृष्टियोंका उपक्रमणकाल नागम और शुक्तिसे संख्यातगुणा पाया जाता है। गुणकार
नारा है? सन्यास नमय गुणकार है।

उक्त चार्गे प्रत्नरुके तिर्यचांमे मम्यगिमथ्यादृष्टियोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीवि
असंन्यातशुणित हे ॥ ४४ ॥

चार्ग प्रकाशके सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यचात्ते उनके ही असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंसे सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीव अत्यन्तगुणित होते हैं। गुणकार क्या है? आवर्णिता असंख्यातवां भाग गुणकार हैं।

अंश—अहं किसे जाना जाता है ?

समाधान—'इत नीपरशियोंके प्रमाणद्वारा अन्तर्मुहूर्त कालसे पल्योपम अपट्टन होता है' इस प्रमाणु गेगद्वारे सुनसे और आचार्य परम्परासे आये हुए उपदेशसे जाना जाता है।

उक्त चारों प्रकारके त्रिषंघोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे
गुणित हैं, और मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ४५ ॥

चारों प्रकारके असंयतसम्यग्गुणित्यिच्छासे उनके ही मिथ्याद्वष्टि तिर्यच अनन्त-
गुणित हैं और असंन्यातगुणित भी हैं ।

शंका—यह बात तो विप्रतिपिन्दु अर्थात् परस्पर विरोधी है। यदि अनन्त-गुणित है, तो यहाँ असल्यातगुणत्व नहीं बन सकता है, और यदि असल्यातगुणित है, तो

असंखेज्जगुणा, कधयणंतगुणत्तं; दोण्हमक्कमेण एयत्थ पडत्तिविरोहा ? एत्थ परिहारो उच्चदे- 'जहा उदेसो तथा णिदेसो' ति णायदो 'तिरिक्खमिच्छादिद्वी केनडिया, अणंता, सेसतिरिक्खतियमिच्छादिद्वी असंखेज्जा' इदि सुत्तादो वा एवं संवंधो कीरदे- तिरिक्खमिच्छादिद्वी अणंतगुणा, सेसतिरिक्खतियमिच्छादिद्वी अमंखेज्जगुणा त्ति, अण्हा दोण्हमुच्चाराणए विहलत्तप्पसंगा । को गुणगारो ? तिरिक्खमिच्छादिद्वीणमभवसिद्धिएहि अणंतगुणो, सिद्धेहि त्रि अणंतगुणो, अणंताणि सव्वजीवरासिपढमग्गमूलाणि गुणगारो । को पडिभागो ? तिरिक्खअसजदसम्मादिट्ठरासी पडिभागो । मेसतिरिक्खतियमिच्छादिद्वीणि गुणगारो पदरस्य असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ असंरोज्जसेडीपढमवग्गमूलमेताओ । को पडिभागो ? घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, पालिदोवमस्सासखेज्जदिभागमेत्तपदंगुलाणि वा पडिभागो । अधवा सग-सगङ्गणमसंखेज्जदिभागो (गुणगारो) । को पडिभागो ? सग-सगअंसजदसम्मादिद्वी पडिभागो ।

असंजदसभादिद्विद्वाणे सन्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठि ॥ ४६ ॥

अनन्तरुणत्व कैसे बन सकता है, क्योंकि, दोनोंकी एक साथ एक अर्थमें प्रगुति होनेका विरोध है ?

समाधान—इस शंकाका परिहार करते हैं—‘उद्देशके अनुसार निर्देश क्रिया जाता है’ इस न्यायेसे, अथवा ‘मिथ्यादृष्टि सामान्य तिर्यच फलिते है? अनन्त है, शेष तीन प्रकारके मिथ्यादृष्टि तिर्यच असंख्यात हैं’ इस सूत्रसे इस प्रकार स्वस्पष्ट करना चाहिए—मिथ्यादृष्टि सामान्यतिर्यच अनन्तगुणित है और शेष तीन प्रकारके मिथ्यादृष्टि तिर्यच असंख्यातगुणित हैं। यदि ऐसा न माना जायगा, तो दोनों पदोंकी उच्चारणोके विफलताका प्रसंग प्राप्त होगा।

यहापर गुणकार क्या है ? अव्यवस्थितोंसे अतन्तगुणा और सिद्धोंसे भी अनन्त-गुणा तिर्यच मिथ्यादृष्टियोंका गुणकार है, जो सम्पूर्ण जीवराजिके अनन्त प्रथम वर्गमूल-प्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यचराशि प्रतिभाग है । शेष तीत प्रकारके तिर्यच मिथ्यादृष्टियोंका गुणकार जगप्रतरका असंख्यातवा भाग है, जो जग-श्रेणीके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमित असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? घनगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है । अथवा, पल्योगमके असंख्यातवें भागप्रमित प्रतरांगुल प्रतिभाग है । अथवा, अपने अपने द्रव्यका असंख्यातवां भाग गुणकार है । प्रतिभाग क्या है ? अपने अपने असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका प्रमाण प्रतिभाग है ।

तिर्यचोमै अंसयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थाने उपजामसम्यग्दृष्टि जीव सवसे कम
२७ ॥ ४६ ॥

तं जहा- चउज्जिहेसु तिरिक्खेसु भणिस्समाणसव्वसम्माइद्विदव्वादो उवसम-
सम्माइदी थोवा, आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तउवक्कमणकालब्भंतरे संचिदत्तादो ।

खइयसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ४७ ॥

कुदो ? असंखेज्जवस्साउगेसु पल्लोवस्स असंखेज्जदिभागमेत्तकालेण संचि-
दत्तादो, अणाइणिहणसरूवेण उवसमसम्मादिद्वीहितो खइयसम्मादिद्विणं आवलियाए
असंखेज्जदिभागगुणत्तेण अवट्ठणादो वा । आवलियाए असंखेज्जदिभागो गुणगारो त्ति
कथं णव्वदे ? आइरियपरंपरागदुवदेसादो ।

वेदगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ४८ ॥

कुदो ? दंसणमोहणीयक्खएणुप्पणखइयसम्मत्ताणं सम्मत्तुणत्तीदो पुव्वमेव
नद्धतिरिक्खाउआणं पउरं संभवाभावा । ण य लोए सारदव्वणं दुल्लहत्तमप्पसिद्धं, अस्स-
हत्थि-पत्थरादिसु साराणं लोए दुल्लहत्तुवलंभा ।

चह इस प्रकार है- चारों प्रकारके तिर्यचोंमें आगे कहे जानेवाले सर्व सम्यग्दृष्टि-
योंके द्रव्यप्रमाणसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव अल्प हैं, क्योंकि, आवलीके असंख्यातवें भाग-
मात्र उपक्रमणकालके भीतर उनका संचय होता है ।

तिर्यचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि
जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ४७ ॥

क्योंकि, असंख्यात वर्षकी आयुवाले जीवोंमें पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र
कालके द्वारा संचित होनेसे, अथवा अनादिनिधनस्वरूपसे उपशमसम्यग्दृष्टियोंकी
अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका आवलीके असंख्यातवें भाग गुणितप्रमाणसे अवस्थान
पाया जाता है ।

शंका—यहां आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आचार्य परम्परासे आप हुए उपदेशसे जाना जाता है ।

तिर्यचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि
जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ४८ ॥

क्योंकि, जिन्होंने सम्यक्त्वकी उत्पत्तिसे पूर्व ही तिर्यच आयुका बंध कर लिया
है, ऐसे दर्शनमोहनयिके क्षयसे उत्पन्न हुए क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका प्रचुरतासे होना
संभव नहीं है । और, लोकमें सार पदार्थोंकी दुर्लभता अप्रसिद्ध भी नहीं है, क्योंकि,
अरुच, हस्ती ओर पाषाणादिकोंमें सार पदार्थोंकी सर्वत्र दुर्लभता पाई जाती है ।

संजदासंजदट्ठाणे सव्वथोवा उवसमसम्माइदी ॥ ४९ ॥

कुदो ? देसव्वयाणुविद्धुवसमसम्मत्तस्स दुल्लहत्तादो ।

वेदगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ५० ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । एदम्हदो गुणगारादो णव्वदे
समयं पडि तदुवचयादो असंखेज्जगुणत्तेणुवचिदा त्ति असंखेज्जगुणत्तं । एत्थ खइय-
सम्माइदीणमप्पावहुअं किण्णा परूविदं ? ण, तिरिक्खेसु असंखेज्जवस्साउएसु चैय खइय-
सम्मादिद्वीणमुववादुवलंभा । पंचिदियतिरिक्खजोणिणिसु सम्मत्तप्पावहुअविसेसपदु-
प्पायणदुत्तसुत्तं भणदि-

**णवरि विसेसो, पंचिदियतिरिक्खजोणिणीसु असंजदसम्मादिद्वि-
संजदासंजदट्ठाणे सव्वथोवा उवसमसम्माइदी ॥ ५१ ॥**

सुगममेदं ।

वेदगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ५२ ॥

तिर्यचोंमें संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम है ॥४९॥
क्योंकि, देशव्रतसहित उपशमसम्यक्त्वका होना दुर्लभ है ।

तिर्यचोंमें संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव
असंख्यातगुणित हैं ॥ ५० ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । इस गुणकारसे
यह जाना जाता है कि प्रतिसमय उनका उपचय होनेसे वे असंख्यातगुणित संचित हो
जाते हैं, इसलिए उनके प्रमाणके असंख्यातगुणितता वन जाती है ।

शंका—यहां संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि तिर्यचोंका अल्पवहुत्व
क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, असंख्यात वर्षकी आयुवाले भोगभूमियां तिर्यचोंमें
ही क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपाद पाया जाता है ।

अब पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमें सम्यक्त्वके अल्पवहुत्वसम्बन्धी विशेषके
प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेषता यह है कि पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और
संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ ५१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

पंचेन्द्रियतिर्यच योनिमतियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें
उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ५२ ॥

तो गुणगो ? आनन्धियाण् अमन्वेज्जदिभासो । एत्थ सइयसम्मादिट्ठीणमप्या-
बुद्धं जन्तिय, ननिहत्थीसु मम्मादिट्ठीणिमृत्तादाभास, मणुसगइवदिरित्तण्णगईसु दसण-
मोअणीपइत्तणाभासाञ्च ।

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु तिसु अद्दासु उव-
समा पवेसणेण तुल्ला श्रोवां ॥ ५३ ॥

तिनु रि मणुससु तिणि वि उत्तामया पवेसणेण अण्णेणमवेक्सिय तुल्ला
मरिमा, चउत्तणमेचचादो । ने ज्ञेय थोवा, उमरिमणुणद्धाणजीवावेक्खाए ।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तेत्तिथा चेव ॥ ५४ ॥

कुदो ? देड्डिमणुणद्धाणे पडिचण्णजीमाणं चेय उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थ-
पज्जाण्ण परिणामुलंभा । मंचयस्स अप्पावदुअं क्रिण्ण परुविदं ? ण, पवेसप्पावदुएण
चेय तददगमादो । जदो संचओ णाम पवेसाहीणो, तदो पवेसप्पावदुएण सरिसो
मंचयप्पावदुओ चि पुथ ण उत्तो ।

गुणकार क्या हे ? आचरणीका नसंत्यानवांभास गुणकार हे । यहाँ पंचेन्द्रियतियंच
मोनिनित्तिभासं गारित्तमय्यग्गट्ठि जीवोंका अरूपमुत्त्व नहीं है, क्योंकि, सर्व प्रकारकी
मित्रियों मय्यन्तट्ठि जीवोंका उपपाद नहीं होता है, तथा मनुष्यगति को छोड़कर अन्य
मित्रियों में दृढमोहनीयकर्मही क्षमणात्ता भी अभान है ।

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियमोंमें अपूर्वकरण आदि तीन
गुणन्मानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ५३ ॥

मूर्खोंकी तीनों प्रकारके मनुष्योंमें अपूर्वकरण आदि तीनों ही उपशामक जीव
प्रवेशने परस्परही अपेक्षा तुल्य पर्याप्त सदा है, क्योंकि, एक समयमें अधिकसे अधिक
नोपन जीवोंका प्रवेश पाया जाता है । तथा, ये जीव ही उपरिम गुणस्थानोंके जीवोंकी
अपेक्षा अल्प हैं ।

उपशान्ततपायवीतरागछग्रस्य जीव प्रवेशसे पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ५४ ॥

क्योंकि, अधन्तन गुणस्थानोंको प्राप्त हुए जीवोंका ही उपशान्तकपायवीतराग-
छग्रस्वरूप पर्याप्तमें परिणमण पाया जाता है ।

अज्ञा—यदा उपशामकोंके संचयका अल्पमुत्त्व क्यों नहीं बतलाया ?

ममाभास—नहीं, क्योंकि, प्रवेशसम्बन्धी अल्पमुत्त्वसे ही उसका ज्ञान हो
जाता है । चूंकि, संचय प्रवेशके आधीन होता है, इसलिए प्रवेशके अल्पमुत्त्वसे
संचयता अल्पमुत्त्व सदा है, अतएव उसे पृथक् नहीं बतलाया ।

१ मणुसगो मन्वानासुपरासन्नशिममत्त तात्तानां मामान्यात् । स सि. १, ८.

२ अ मां 'पवेसाहीणो' जा स्सतो 'पवेसाहिणो' इति पाठः ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ ५५ ॥

कुदो ? अहुत्तरसदमेचचादो ।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तेत्तिथा चेव ॥ ५६ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तेत्तिथा
चेय ॥ ५७ ॥

कुदो ? खीणकसायपज्जाएण परिणदाणं चेय उत्तरगुणद्धाणुवककमुवलंभा ।

सजोगिकेवली अद्दं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ ५८ ॥

मणुस-मणुसपज्जत्तएसु ओघसजोगिरासिं ठविय देड्डिमरासिणा ओवाडिय गुणगारो
उपपादेद्वो । मणुसिणीसु पुण तप्पाओगसंखेज्जसजोगिथिलीवि इविय अहुत्तरसदं मुच्चा
तप्पाओगसंखेज्जखीणकसाएहि ओवाडिय गुणगारो उपपादेद्वो ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें उपशान्तकपायवीतरागछग्रस्यसे क्षपक जीव संख्यात-
गुणित हैं ॥ ५५ ॥

क्योंकि, क्षपकसम्बन्धी एक गुणस्थानमें एक साथ प्रवेश करनेवाले जीवोंका
प्रमाण एक लो आठ है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें क्षीणकपायवीतरागछग्रस्य जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही
हैं ॥ ५६ ॥

यह खज सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, ये दोनों भी प्रवेशसे
तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ५७ ॥

क्योंकि, क्षीणकपायरूप पर्याप्तसे परिणत जीवोंका ही आगेके गुणस्थानोंमें
उपक्रमण (गमन) पाया जाता है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित
हैं ॥ ५८ ॥

सामान्य मनुष्य और पर्याप्त मनुष्योंमेंसे ओघ सयोगिकेवलीराशिको स्थापित
करके और उसे अधस्तनराशिके भाजित करके गुणकार उत्पन्न करना चाहिए । किन्तु
मनुष्यनियमोंमें उनके योग्य संख्यात सयोगिकेवली जीवोंको स्थापित करके एक लो आठ
संख्याको छोड़कर उनके योग्य संख्यात क्षीणकपायवीतरागछग्रस्योंके प्रमाणसे भाजित
करके गुणकार उत्पन्न करना चाहिए ।

अपमत्तसंजदा अक्खवा अनुवसमा संखेज्जगुणा ॥ ५९ ॥

मणुस-मणुसपज्जत्ताणं ओघमिह उत्त-अप्पमत्तरासी चेव होदि । मणुसिणीसु पुण तप्पाओगसंखेज्जमेत्तो होदि । सेसं सुगमं ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ६० ॥

एदं पि सुगमं ।

संजदासंजदा संखेज्जगुणा ॥ ६१ ॥

मणुस-मणुसपज्जत्ताणसु संजदासंजदा संखेज्जकोडिमेत्ता । मणुसिणीसु पुण तप्पाओगसंखेज्जरूपमेत्ता ति वेत्तव्वा, वट्टमाणकाले एत्थिया ति उवदेसाभावा । सेसं सुगमं ।

सासणसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ६२ ॥

कुदो ? तत्तो संखेज्जगुणकोडिमेत्तत्तादो । मणुसिणीसु तदो संखेज्जगुणा, तप्पाओगसंखेज्जरूपमेत्तत्तादो । सेसं सुगमं ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सयोगिकेवलीसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्त-संयत संख्यातगुणित हैं ॥ ५९ ॥

ओघप्ररूपणमें कही हुई अप्रमत्तसंयतोंकी राशि ही मनुष्य-सामान्य और मनुष्य-पर्याप्तक अप्रमत्तसंयतोंका प्रमाण है । किन्तु मनुष्यनियोंमें उनके योग्य संख्यात भाग-मात्र राशि होती है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें अप्रमत्तसंयतयोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ ६० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत संख्यातगुणित हैं ॥ ६१ ॥ मनुष्य सामान्य और मनुष्य-पर्याप्तकोंमें संयतासंयत जीव संख्यात कोटिप्रमाण होते हैं । किन्तु मनुष्यनियोंमें उनके योग्य संख्यात रूपमात्र होते हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, वे इतने ही होते हैं, इस प्रकारका वर्तमान कालमें उपदेश नहीं पाया जाता । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६२ ॥

क्योंकि, वे संयतासंयतोंके प्रमाणसे संख्यातगुणित कोटिमात्र होते हैं । मनुष्य-नियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मनुष्य-सामान्य और मनुष्य-पर्याप्तक सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे संख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उनका प्रमाण उनके योग्य संख्यात रूपमात्र है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

१ प्रतिपु 'सजदा' इति पाठ । २ तत्त सत्तेयगुणा सयतासयता । स ति १, ८

३ सासादनसम्यग्दृष्टय सत्तेयगुणा । स ति १, ८

सम्माभिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ६३ ॥

एदं पि सुगमं ।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ६४ ॥

कुदो ? सत्तकोडिसयमेत्तत्तादो । सेसं सुगमं ।

भिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा, भिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ६५ ॥

असंखेज्ज-संखेज्जगुणामेगत्थ संभवाभावा एवं संबंधो कीरेदे- मणुसभिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा । कुदो ? सेड्डीए असंखेज्जदिभागपरिमाणत्तादो । मणुसपज्जत्त-मणुसिणी भिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा, संखेज्जरूपपरिमाणत्तादो । सेसं सुगमं ।

असंजदसम्मादिट्ठिहाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ६६ ॥

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यात-गुणित हैं ॥ ६३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६४ ॥

क्योंकि, असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका प्रमाण सात सौ कोटिमात्र है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं, और मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६५ ॥

असंख्यातगुणित और संख्यातगुणित जीवोंका एक अर्थमें होना संभव नहीं है, इसलिए इस प्रकार सम्बन्ध करना चाहिए- असंयतसम्यग्दृष्टि सामान्य मनुष्योंसे मिथ्यादृष्टि सामान्य मनुष्य असंख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उनका प्रमाण जगत्रेणिके असंख्यातवै भाग है । तथा मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनी असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मनुष्य-पर्याप्त और मनुष्यनी मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उनका प्रमाण संख्यात रूपमात्र ही पाया जाता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ६६ ॥

१ सम्यग्मिथ्यादृष्टय सत्तेयगुणाः । स. ति १, ८

२ असंयतसम्यग्दृष्टय सत्तेयगुणा । स ति १, ८

३ मिथ्यादृष्टयोऽसंखेयगुणा । स ति १, ८

खइयसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ६७ ॥

वेदगसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ६८ ॥

एदानी तिणिं नि सुत्तानि सुगमाणि ।

संजदासंजदद्वाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिद्वी ॥ ६९ ॥

रगीणदंणमोहणीयाणं देसमंजेमं वट्टताणं बहूणमभावा । रगीणदंणमोहणीयाणं अमंजदा होदूणं अज्जंति । ते संजम पडिबज्जंता पाएण महव्वयाइं चैव पडिबज्जंति, ण देसव्वयाइं नि उत्तं होदि ।

उवसमसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ७० ॥

मइयसम्मादिद्विसंजदासंजदोहंतो उवसमसम्मादिद्विसंजदासंजदाणं बहूणमुवलंभा ।

वेदगसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ७१ ॥

कुदो ? बहूवायत्तादो, संचयकालस्स बहूत्तादो वा, उवसमसम्मतं पेक्खिय वेदगसम्मतस्स सुलहत्तादो वा ।

उपशमसम्यग्दृष्टिं क्षायिकसम्यग्दृष्टिं संख्यातगुणितं है ॥ ६७ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टिं वेदकसम्यग्दृष्टिं संख्यातगुणितं है ॥ ६८ ॥

ये तीर्णा ही सूर सुगमं है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि सत्रसे कम है ॥ ६९ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीयकर्मका क्षय करनेवाले और देशसंयममें वर्तमान बहुत जीर्णता आभा है । दर्शनमोहनीयता क्षय करनेवाले मनुष्य प्रायः असंयमी होकर रहते हैं । ये संयम हो प्राप्त होते हुए प्रायः महाव्रतोंको ही धारण करते हैं, अणुव्रतोंको नहीं, यह अर्थ कहा गया है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टिसे उपशमसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित है ॥ ७० ॥

क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयत मनुष्य प्राप्त पाये जाते हैं ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टिसे वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित है ॥ ७१ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टिोंकी अपेक्षा वेदकसम्यग्दृष्टिोंकी आय अधिक है, अर्थात् संचयकाल बहुत हो, अथवा उपशमसम्यक्त्वको देखते हुए अर्थात् उसकी अपेक्षा वेदकसम्यक्त्वका पाना सुलभ है ।

पमत्त-अपमत्तसंजदद्वाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिद्वी ॥ ७२ ॥

कुदो ? धोवकालसंचयादो ।

खइयसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ७३ ॥

बहुकालसंचयादो ।

वेदगसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ७४ ॥

खइयसम्मतं संजमं पडिबज्जमाणजीवेहिंतो वेदगसम्मतं संजमं पडिबज्जमाणजीवाणं बहूतुवलंभा । मणुसिणीयविसेसपदुप्पायणं उवरिमसुत्तं भणदि-

णवरि विसेसो, मणुसिणीसु असंजद-संजदासंजद-पमत्तापमत्त-संजदद्वाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिद्वी ॥ ७५ ॥

कुदो ? अप्पसत्थवेदोदएण दंसणमोहणीयं खंवत्तजीवाणं बहूणमणुवलंभा ।

उवसमसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ७६ ॥

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सत्रसे कम है ॥ ७२ ॥

क्योंकि, इनका संचयकाल अल्प है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टिसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित है ॥ ७३ ॥

क्योंकि, इनका संचयकाल बहुत है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टिसे वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित है ॥ ७४ ॥

क्योंकि, क्षायिकसम्यक्त्वके साथ संयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी अपेक्षा वेदकसम्यक्त्वके साथ संयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी अधिकता पाई जाती है । अब मनुष्यनियोंमें होनेवाली विशेषताके प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

केवल विशेषता यह है कि मनुष्यनियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सत्रसे कम हैं ॥ ७५ ॥

क्योंकि, अप्रमत्त वेदके उदयके साथ दर्शनमोहनीयको क्षपण करनेवाले जीव बहुत नहीं पाये जाते हैं ।

असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानवर्ती मनुष्यनियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टिसे उपशमसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित है ॥ ७६ ॥

अप्यसत्त्ववेदोदणं' दंसणमोहणीयं खर्वेतजीविहितो अप्यसत्त्ववेदोदणं चैव दंसणमोहणीयं उवसमेतजीवाणं मणुसेसु संखेज्जगुणसुखलंभा ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ७७ ॥
सुगममेदं ।

एवं तिसु अद्वासु ॥ ७८ ॥

एदस्सत्त्वो- मणुस-मणुसपज्जत्तएसु गिरुद्धेसु तिसु अद्वासु उवसमसम्मादिट्ठी थोवा, थोवकारणत्तादो । खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा, बहुकारणादो । मणुसिणीसु पुण खइयसम्मादिट्ठी थोवा, उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा । एत्थ पुव्वुत्तमेव कारणं । उवसामग-खवगाणं संचयस्स अप्पावहुअपरुवणहुमुत्तरसुत्तं भणदि-

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ ७९ ॥
थोवपवेसादो ।

क्योंकि, अग्रशस्त वेदके उदयके साथ दर्शनमोहनीयका क्षण करनेवाले जीवोंसे अग्रशस्त वेदके उदयके साथ ही दर्शनमोहनीयका उपशम करनेवाले जीव मनुष्योंमें संख्यातगुणित पाये जाते हैं ।

असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानवर्ती मनुष्यनियोंमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ७७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इसी प्रकार तीनों प्रकारके मनुष्योंमें अपूर्वकरण आदि तीन उपशमक गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ ७८ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं- मनुष्य-सामान्य और मनुष्य-पर्याप्तकोंसे निरुद्ध अपूर्वकरण आदि तीन उपशमक गुणस्थानोंमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव अल्प होते हैं, क्योंकि, उनके अल्प होनेका कारण पाया जाता है । उनसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उनके बहुत होनेका कारण पाया जाता है । किन्तु मनुष्यनियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव अल्प हैं, और उनसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं । यद्वा संख्यातगुणित होनेका कारण पूर्वोक्त ही है (देखो सूत्र नं ७५) । उपशमक और क्षपकोंके संचयका अल्पबहुत्व प्ररूपण करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं-

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें उपशमक जीव सबसे कम हैं ॥ ७९ ॥

क्योंकि, इनका प्रवेश अल्प होता है ।

१ प्रतिपु 'अप्यसत्त्ववेदोदण' इति पाठः ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ ८० ॥

बहुप्पवेसादो ।

देवगदीए देवेषु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी ॥ ८१ ॥

सम्माभिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ८२ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ८३ ॥

एदाणि तिणिण वि सुत्ताणि सुवोज्झाणि, बहुसो परूविदत्तादो ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ८४ ॥

को गुणगारो ? जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ । केत्तिय-मेत्ताओ ? सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणंगुलस्स असंखेज्जदि-भागो, असंखेज्जपदंगुलाणि वा पडिभागो । सेसं सुगमं ।

असंजदसम्मादिट्ठिद्वाने सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ८५ ॥
सुवोज्झमिदं सुत्तं ।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ८६ ॥

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें उपशमकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ८० ॥
क्योंकि, इनका प्रवेश बहुत होता है ।

देवगतिमें देवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ८१ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ ८२ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं ॥ ८३ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुवोच्य अर्थात् सरलतासे समझने योग्य हैं, क्योंकि, इनका बहुत बार प्ररूपण किया जा चुका है ।

देवोंमें अमंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ८४ ॥

गुणन्तार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातयों भाग गुणकार है, जो असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । वे जगश्रेणिया कितनी हैं ? जगश्रेणीके असंख्यातयों भागमात्र है । प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवा भाग प्रतिभाग है, अथवा असंख्यात प्रतरांगुल प्रतिभाग है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ८५ ॥

यह सूत्र सुवोच्य है ।

देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ८६ ॥

२ देवगतौ देवानां नारकवत् । स सि १, ८

को गुणगारो ? आपलियाए असंखेज्जदिभागो । मेसं सुवोच्चं ।

वेदगमममादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ८७ ॥

को गुणगारो ? आपलियाए असंखेज्जदिभागो । सेसं सुगमं ।

भवनवाभिय-चाणवैतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप-
वासियदेवीओ च सत्तमाए पुढवीए भंगो ॥ ८८ ॥

पदेमिभिदि एत्यज्जहाहरो कायवो, अण्णहा मंवंधाभावा । सह्यससममादिद्वीणम-
भारं पटि ताभम्मुजंभा सत्तमाए पुढवीए भंगो एदेमिं हेटि । अत्यदो गुण विसेसो
अन्थि, तं भणिमामो- नवत्थोवा भवनवासियसाणमममाद्वी । सम्मामिच्छादिद्वी
मंजेज्जगुणा । अयंजदमममादिद्वी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? आपलियाए असंखे-
ज्जदियाओ । मिच्छाद्वी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो,
अमंजेज्जाओ मेडीओ । केत्तियमेत्ताओ ? घणंगुलपडमग्गमूलस्स असंखेज्जदिभाग-
मेत्ताओ । को पटिभागो ? अयंजदसममादिद्विरानी पडिभागो ।

गुणकार क्या है ? आवर्त्तोंका असंख्यातवा भाग गुणकार है । शेष सूत्रार्थ
सुगोप (सुगम) है ।

देवोंमें क्षाणिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ८७ ॥

गुणकार क्या है ? आवर्त्तोंका अमन्यतावा भाग गुणकार है । शेष सूत्रार्थ
सुगम है ।

देवोंमें भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क देव और देवियां, तथा सौधर्म-ईशान-
रूपवासिनी देवियां, इनका अल्पबहुत्व सातवीं प्रथिवीके अल्पबहुत्वके समान है ॥ ८८ ॥

इस सूत्रमें ' इनका ' इस पदका अर्थाहार करना चाहिए, अन्यथा प्रकृतमें
इसका समन्वय नहीं बनता है । क्षाणिकसम्यग्दृष्टियोंके अभावकी अपेक्षा अमानता पाई
जानेसे इन सूत्रोंके देव-देवियोंका सातवीं प्रथिवीके समान अल्पबहुत्व है । किन्तु अर्थकी
प्रपेक्षा कुछ विशेषता है, उसे कहते हैं- भवनवासी सासादनसम्यग्दृष्टि देव आगे कहीं
जानेवाली राशियोंकी अपेक्षा सरसे कम है । उनसे भवनवासी सम्यग्मिथ्यादृष्टि
संख्यातगुणित हैं । उनसे भवनवासी असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं । गुणकार
क्या है ? आवर्त्तोंका असंख्यातवा भाग गुणकार है । उनसे भवनवासी मिथ्यादृष्टि असं-
ख्यातगुणित हैं । गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो असं-
ख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । वे जगश्रेणिया कितनी हैं ? घनांगुलके प्रथम वर्गमूलके
असंख्यातवें भागमात्र हैं । प्रतिभाग क्या है ? असंयतसम्यग्दृष्टि जीवरशि प्रतिभाग है ।

सवन्थोवा चाणवैतरसाणसममादिद्वी । सम्मामिच्छादिद्वी संखेज्जगुणा ।
असंजदसममादिद्वी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? आपलियाए असंखेज्जदिभागो ।
मिच्छादिद्वी अमंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ
सेडीओ । केत्तियमेत्ताओ ? सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणं-
गुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जपदंगुलाणि वा पडिभागो । एवं जोदिसियाणं पि
वत्तव्वं । सग-सगइत्थिवेदानं सग-सगोघभंगो । सेसं सुगमं ।

सोहम्मीसाण जाव सदर-सहस्सारकपवासियदेवेषु जहा देवगह-
भंगो ॥ ८९ ॥

जहा देवोघमिह अप्पावहुअं उच्चं, तथा एदेसिमप्पावहुगं वत्तव्वं । तं जहा-
सवन्थोवा सग-सगकपत्था सासणा । सग-सगकपसममामिच्छादिद्विणो संखेज्जगुणा ।
सग-सगकपअसंजदसममादिद्विणो असंखेज्जगुणा । सग-सगमिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ।
एत्थ गुणगारो जाणिय वत्तव्वो, एगसरूवत्ताभावा । अणंतरउत्तकप्पेसु असंजदसम्मा-

वानव्यन्तर सासादनसम्यग्दृष्टि देव आगे कहीं जानेवाली राशियोंकी अपेक्षा
सबसे कम हैं । उनसे वानव्यन्तर सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव संख्यातगुणित हैं । उनसे वान-
व्यन्तर असंयतसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं । गुणकार क्या है ? आवर्त्तोंका असं-
ख्यातवां भाग गुणकार है । वानव्यन्तर असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंसे वानव्यन्तर मिथ्यादृष्टि
देव असंख्यातगुणित हैं । गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है,
जो असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । वे जगश्रेणिया कितनी हैं ? जगश्रेणीके असंख्यातवें
भागमात्र हैं । प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है, अथवा
असंख्यात प्रतरांगुल प्रतिभाग है ।

इसी प्रकार ज्योतिष्क देवोंके अल्पबहुत्वको भी कहना चाहिए । भवनवासी
आदि निराश्रयोंमें अपने अपने स्त्रीविदियोंका अल्पबहुत्व अपने अपने ओघ-अल्पबहुत्वके
समान है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

सौधर्म-ईशान कल्पसे लेकर शतार-सहस्रार कल्प तक कल्पवासी देवोंमें अल्प-
बहुत्व देवगति सामान्यके अल्पबहुत्वके समान हैं ॥ ८९ ॥

जिस प्रकार सामान्य देवोंमें अल्पबहुत्वका कथन किया है, उसी प्रकार इनके
अल्पबहुत्वको कहना चाहिए । वह इस प्रकार है- अपने अपने कल्पमें रहनेवाले सासा-
दनसम्यग्दृष्टि देव सबसे कम हैं । इनसे अपने अपने कल्पके सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव
संख्यातगुणित हैं । इनसे अपने अपने कल्पके असंयतसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं ।
इनसे अपने अपने कल्पके मिथ्यादृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं । यहाँपर गुणकार जानकर
कहना चाहिए, क्योंकि, इन देवोंमें गुणकारकी एकरूपताका अभाव है । अभी इन पंडि

दिट्ठिद्वारेण सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी । खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा । वेदगसमा-
दिट्ठी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? सव्वत्थ आवलियाए असंखेज्जदिभागो चि ।
सेसं सुगमं ।

आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु सव्वत्थोवा सासन-
सम्मादिट्ठी ॥ ९० ॥

सुगममेदं सुत्त ।

सम्माभिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ९१ ॥

एदं पि सुगमं ।

भिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ९२ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कधमेदं णव्वेदे ? दव्याणि-
ओगद्धारसुत्तादो ।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ९३ ॥

कहे गये कल्पोमैं असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि देव सबसे कम हैं ।
इनसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं । इनसे वेदकसम्यग्दृष्टि देव असंख्यात-
गुणित हैं । गुणकार क्या है ? सर्वत्र आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । दोष
स्वार्थ सुगम है ।

आनत-प्राणत कल्पसे लेकर नवग्रेव्यक विमानों तक विमानवासी देवोंमें सासा-
दनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ९० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त विमानोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव संख्यातगुणित
हैं ॥ ९१ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त विमानोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि देव असंख्यातगुणित
हैं ॥ ९२ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—द्रव्यानुरोगद्वारसूत्रसे जाना जाता है कि उक्त कल्पोंमें मिथ्यादृष्टि
देवोंका गुणकार आवलीका असंख्यातवा भाग है ।

उक्त विमानोंमें मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ ९३ ॥

कुदो ? मणुसेहितो आणदादिसु उपपज्जमाणमिच्छादिट्ठी पेक्खिय तत्थुप्पज्ज-
माणसम्मादिट्ठीणं संखेज्जगुणात्तादो । देवलोए सम्मत्तमिच्छाणि पडिवज्जमाणजीवाणं
किण्ण पहाणत्तं ? ण, तेसिं मूलरासिस्स असंखेज्जदिभागत्तादो । को गुणगारो ?
संखेज्जसमया ।

असंजदसम्मादिट्ठिद्वारेण सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ९४ ॥

कुदो ? अंतोयुहुत्तकालसंचिदत्तादो ।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ९५ ॥

कुदो ? संखेजसागरोवमकालेण संचिदत्तादो । को गुणगारो ? आवलियाए
असंखेज्जदिभागो । संचयकालपडिभागेण पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागो गुणगारो
किण्ण उच्चदे ? ण, एगसमएण पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तजीवाणं उवसम-
सम्मत्तं पडिवज्जमाणसुवलंभा ।

क्योंकि, मनुष्योंसे आनत आदि विमानोंमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टियोंकी
अपेक्षा वहांपर उत्पन्न होनेवाले सम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं ।

शंका—देवलोकेमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी प्रधानता क्यों
नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव मूलराशिके असंख्यातवे
भागमात्र होते हैं ।

उक्त विमानोंमें सम्यग्दृष्टियोंका गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

आनत-प्राणत कल्पसे लेकर नवग्रेव्यक तक असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें
उपशमसम्यग्दृष्टि देव सबसे कम हैं ॥ ९४ ॥

क्योंकि, वे केवल अन्तर्बुद्धत कालके द्वारा संचित होते हैं ।

उक्त विमानोंमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित
हैं ॥ ९५ ॥

क्योंकि, वे संख्यात सागरोपम कालके द्वारा संचित होते हैं । गुणकार क्या है ?
आवलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है ।

शंका—संचयकालरूप प्रतिभाग होनेकी अपेक्षा पल्योपमका असंख्यातवां भाग
गुणकार क्यों नहीं कहा है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, एक समयके द्वारा पल्योपमके असंख्यातवे भागमात्र
जीव उपशमसम्यग्दृष्टि प्राप्त होते हुए पाये जाते हैं ।

वेदगसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ९६ ॥

कुदो ? तन्नुपपज्जमाणसुखयसम्मादिद्वीहिंता संखेज्जगुणवेदगसम्मादिद्वीणं तत्तु-
प्पात्तिरसणादो ।

अणुदिसादि जाव अवराइदविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मा-
दिद्विद्विणो सव्वत्थोवा उवससम्मादिद्वी ॥ ९७ ॥

कुदो ? उवससम्मादिद्वीचउणोयरणात्तिरियावावदुवससम्मात्तसिद्विसंखेज्जसंजदाण-
भेतुपुपण्णाणमत्तोपुदुत्तसिचिदाणमुत्तमा ।

सुखयसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ९८ ॥

को गुणगरो ? पल्लिदोयमस्स असंखेज्जदिभागस्स संखेज्जदिभागो । को षडि-
भागो ? मरोज्जुत्तसमम्मादिद्वीजिना षडिभागो ।

वेदगसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ९९ ॥

कुदो ? सुखयसम्मात्तेणुपपज्जमाणनंजदेहिंता वेदगसम्मात्तेणुपपज्जमाणसंजदाणं संखेज्ज-

उक्त विमानोंमें श्रायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित
है ॥ ९६ ॥

स्म्यौक्ति, उन भानतादि कल्पगानी देवोंमें उत्पन्न होनेवाले श्रायिकसम्यग्दृष्टि-
योंमें संख्यातगुणित वेदकसम्यग्दृष्टियोंकी वहा उत्पत्ति देखी जाती है ।

नर अनुदिशोंको आदि लेकर अपराजित नामक अनुत्तरविमान तक विमानवासी
देवोंमें अमयनमस्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सर्वसे कम हैं ॥ ९७ ॥

स्म्यौक्ति, उपशमश्रेणीपर आरोहण और अवतरणरूप क्रियामें लगे हुए, अर्थात्
चरते और उतरते हुए मरुतर उपशमसम्यग्दृष्ट्यसहित यहां उत्पन्न हुए, और अन्तर्मुहूर्त-
कालके द्वारा संचित हुए संख्यात उपशमसम्यग्दृष्टि संयत पाये जाते हैं ।

उक्त विमानोंमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे श्रायिकसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित
है ॥ ९८ ॥

गुणकार क्या है ? पल्लोपमक असंख्यातवें भागका संख्यातवां भाग गुणकार है ।
प्रतिभाग क्या है ? संख्यात उपशमसम्यग्दृष्टि जीव प्रतिभाग है ।

उक्त विमानोंमें श्रायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित
हैं ॥ ९९ ॥

स्म्यौक्ति, श्रायिकसम्यग्दृष्टिके साथ मरण कर यहां उत्पन्न होनेवाले संयतोंकी

गुणत्तादो । तं पि कथं णव्वदे ? कारणाणुसारिकज्जदंसणादो मणुसेसु सइयसम्मादिद्वी
संजदा थोवा, वेदगसम्मादिद्वी संजदा संखेज्जगुणा; तेण तेहिंता देवेसुपपज्जमाणसंजदा
वि तप्पडिभागिया चेत्ति धेत्तवं । एत्थ सम्मत्तप्पावहुअं चैन, सेसगुणद्वणाभावा ।
कथमेदं णव्वदे ? एदम्हादो चैन सुत्तादो ।

सव्वड्ढिसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिद्विद्विणो सव्व-
त्थोवा उवससम्मादिद्वी ॥ १०० ॥

सुखयसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ १०१ ॥

वेदगसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ १०२ ॥

एदाणि तिणिण वि सुत्ताणि सुगमाणि । सव्वड्ढिसिद्धिम्हि तेत्तीसाड्ढिदिम्हि
असंखेज्जजीवरासी किण्ण हेदि ? ण, तत्थ पल्लिदोयमस्स संखेज्जदिभागमेत्ततरम्हि

अपेक्षा वेदकसम्यग्दृष्टिके साथ मरण कर यहां उत्पन्न होनेवाले संयत संख्यातगुणित
होते हैं ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—स्म्यौक्ति, 'कारणमे अनुसार कार्य देखा जाता है,' इस न्यायके
अनुसार मनुष्योंमें श्रायिकसम्यग्दृष्टि संयत उत्पन्न होते हैं, उनसे वेदकसम्यग्दृष्टि संयत
संख्यातगुणित होते हैं । इसलिए उनसे देवोंमें उत्पन्न होनेवाले संयत भी तत्प्रतिभागी ही
होते हैं, यह अर्थ ग्रहण करना चाहिए । इन कल्पोंमें यही सम्यगन्यसम्बन्धी उत्पन्नहुत्व
है, स्म्यौक्ति, वहां ओप गुणस्थानोंका अभाव है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—इस सूत्रसे ही जाना जाता है कि अनुदिश आदि विमानोंमें केवल
एक असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान होता है, ओप गुणस्थान नहीं होते हैं ।

सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि
सर्वसे कम हैं ॥ १०० ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे श्रायिकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ १०१ ॥

श्रायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ १०२ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

शंका—तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले सर्वार्थसिद्धिविमानमें असंख्यात
जीवराशि क्यों नहीं होती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वहांपर पल्लोपमके असंख्यातवें भागप्रमाण कालका
अन्तर है, इसलिए वहां असंख्यात जीवराशिका होना असम्भव है ।

तदसंभवा । जदि एवं, तो आणदादिदेवसु वासपुत्रचंतेसु संखेज्जावलओवडिदपल्लो-
वमेत्ता जीवा क्रिणा हँति ? ण, तत्थतणमिच्छादिद्विआदीणमवहारकालस्स असंखेज्जा-
वलियत्तं फिद्धिदूण संखेज्जावलियमेत्तअवहारकालप्पसंगा । होदु चे ण, 'आणद-पणद
जाव णवगेवज्जविमाणवासियेदेवसु मिच्छादिद्विपहुडि जाव असंजदसम्मादिद्वी दव्व-
पमाणेण केवडिया, पल्लोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एदेहि पल्लोवममवहिरदि अंतो-
मुहुत्तेण । अणुदिसादि जाव अत्राहदविमाणवासियेदेवसु असंजदसम्मादिद्वी दव्वपमाणेण
केवडिया, पल्लोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एदेहि पल्लोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेणेत्ति' ।
एदेण दव्वसुत्तेण जुत्तीए सिद्धअसंखेज्जावलियभागहारगम्भेण सह विरोहा ।

एव गदिसगणा समत्ता ।

शंका—यदि ऐसा है तो वर्षपृथक्त्वके अन्तरसे युक्त आनतादि कल्पवासी
देवोंमें संख्यात आवलियोंसे भाजित पर्योपमप्रमाण जीव क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ऐसा माननेपर वहाँके मिथ्यादृष्टि आदिकोंके अव-
हारकालके असंख्यात आवलीपना न रहकर संख्यात आवलीमात्र अवहारकाल प्राप्त
होनेका प्रसंग आ जायगा ।

शंका—यदि मिथ्यादृष्टि आदि जीवोंके अवहारकाल संख्यात आवलीप्रमाण
प्राप्त होते हैं, तो होने दो ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ऐसा मानने पर 'आनत-प्राणतकल्पसे लेकर नवत्रैवेयक
विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक
जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । इन
जीवरशियोंके द्वारा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्योपम अपहृत होता है । नव अनुदिशोंसे लेकर
अपराजितनामक अनुत्तर विमान तक विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीव
द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । इन जीव-
राशियोंके द्वारा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्योपम अपहृत होता है' । इस प्रकार युक्तिसिद्ध
असंख्यात आवलीप्रमाण भागहार जिनके गर्भमें हैं, ऐसे इन द्रव्यानुयोगद्वारके सूत्रोंके
साथ पूर्वोक्त कथनका विरोध आता है ।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई ।

इंदियाणुवादेण पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्तएसु ओधं । णवरि
मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा' ॥ १०३ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे-सेसिंदिएसु एगगुणद्वगणेसु अप्पावहुअस्साभाव-
पदुप्पायणमुहेण पंचिदियप्पावहुअपदुप्पायणदं पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्तगहणं कदं ।
जथा ओघम्मि अप्पावहुअं कदं, तथा एत्थ वि अण्णाहियमप्पावहुअं कायव्वं । णवरि
एत्थ असंजदसम्मादिद्वीहितो मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ति अभणिदूण असंखेज्जगुणा
त्ति वत्तव्वं, अणंतणं पंचिदियाणमभावा । को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो,
असंखेज्जाओ सेडीओ । केचियमेत्ताओ ? सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ?
घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पदंगुलाणि । अधवा पंचिदिय-पंचिदिय-
पज्जत्तमिच्छादिद्वीणमसंखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? सग-सगअसंजदसम्मादिद्विरासी ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादेसे पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्तिकोमें अल्पबहुत्व
ओधके समान है । केवल विशेषता यह है कि असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव
असंख्यातगुणित हैं ॥ १०३ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं— शेष इन्द्रियवाले अर्थात् पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय-
पर्याप्तिकोंसे अतिरिक्त जीवोंमें एक गुणस्थान होता है, इसलिये उनमें अल्पबहुत्वके
अभावके प्रतिपादनद्वारा पंचेन्द्रियोंके अल्पबहुत्वके प्रतिपादन करनेके लिए सूत्रमें पंचे-
न्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तक पदका ग्रहण किया है । जिस प्रकार ओघमें अल्पबहुत्वका
कथन किया है, उसी प्रकार यहाँ भी हीनता और अधिकतासे रहित अल्पबहुत्वका कथन
करना चाहिए । केवल इतनी विशेषता है कि यहापर असंयतसम्यग्दृष्टि पंचेन्द्रियोंसे
मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय अनन्तगुणित हैं, ऐसा न कहकर असंख्यातगुणित हैं, ऐसा कहना
चाहिए, क्योंकि, अनन्त पंचेन्द्रिय जीवोंका अभाव है । पंचेन्द्रिय असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे
पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, यहाँ गुणकार क्या है ? जगप्रतरका
असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो असंख्यात जगत्रेणीप्रमाण है । वे जगत्रेणिया कितनी
हैं ? जगत्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवां
भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरंगुलप्रमाण है । अथवा, पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय-
पर्याप्तक मिथ्यादृष्टियोंका असंख्यातवा भाग गुणकार है । प्रतिभाग क्या है ? अपनी
अपनी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवराशि प्रतिभाग है ।

१ इन्द्रियाद्यवादेन पंचेन्द्रिय विच्छेदेषु गुणस्थानेदो नास्त्यल्पबहुत्वाभाव । इन्द्रिय प्रत्युच्यते-
पंचेन्द्रियाद्येनेन्द्रियान्ता उत्तरोत्तर बहवः । पंचेन्द्रियाणां सामान्यवत् । अयं तु विशेष-मिथ्यादृष्टयोऽसंख्यगुणा ।
स लि १, ८

महत्याग-मन्यपात्र्याणश्चान्यादृशाणि मृत्युं किण्वं पुरुषिदाणि ? न, परत्थाणादो चेन्न तस्मिं दोषप्रसङ्गमा ।

पुनः पुन्यस्रगाया समस्ता ।

कायागुवादेण तसकाइयत्तसकाइयपज्जत्तएसु ओधं । णवरि
मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ १०४ ॥

पदस्मर्यो- एगुणद्वाण-मैस्काएमु अपावहुअं णत्थि त्ति जाणावणं तस्माद्वय-
तमक्राडयपज्जत्ताद्वणं रुदं । एतेमु दोसु मि अपावहुअं जधा ओघस्मि कदं, तथा
हादन्तं, पियेयाभाया । णारि मग-सगअमजदसम्मादिद्वीहितो भिच्छादिद्वीणं अणंतगुणत्ते
पचे तापडिगेहदुग्गमंतेडगुणा त्ति उत्तं, तमक्राडय-तमक्राडयपज्जत्ताणमाणंतियाभावादो ।
क्को गुणमाणो ? पदस्म अयंपेज्जदिमाणो, असंसेजाओ सेडीओ सेडीण असंसेज्जदि-

शंका—दृष्टान्त अल्पबुद्ध और सर्वपरस्यान अल्पबुद्धत्व यहाँपर क्यों नहीं कहे ?
 समाधान—नहीं, क्योंकि, परस्यान अल्पबुद्धत्वे ही उन दोनों प्रकारके अल्प-
 बुद्धोंका ज्ञान हो जाता है ।

इमं प्रकार इन्द्रियमागंणं समाप्त इह ।

न्यायमार्गणाके अनुवादसे त्रसत्तायिक और त्रसत्तायिक-पर्याप्तकामे अल्पत्रहुत्व
 आनेके समान है । केवल विवेचना यह है कि अमृततत्त्वम्यष्टयामे मिथ्यादृष्टि जीव
 अमृत्ययातगणित है ॥ १०४ ॥

इस सूचना अर्थ कहते हैं— एकमात्र मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवाले शेष स्थावर-
सायिक और व्रमसायिक लक्षणपर्याप्तकोंमें अल्पगुल्य नहीं पाया जाता है, यह ज्ञान
करानेके लिए सूत्रमें व्रमसायिक और व्रमसायिक पर्याप्तक पदका ग्रहण किया है।
जिस प्रकार औषधरूपणमें अल्पगुल्य कह आए हैं, उसी प्रकार व्रमसायिक और
व्रमसायिक पर्याप्तक, इन दोनोंमें भी अल्पगुल्यका कथन करना चाहिए, क्योंकि, ओष-
धगुल्यमानमें इनके अल्पगुल्यमें कोई विशेषता नहीं है। केवल अपने अपने असंयत-
सम्यग्प्रश्रितिके प्रमाणसे मिथ्यादृष्टियोंके प्रमाणके अनन्तगुल्य प्राप्त होनेपर उसके
प्रतियोग करनेके लिए असमयतममग्नदृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, ऐसा
करा है, क्योंकि, व्रमसायिक और व्रमसायिक पर्याप्तक जीवोंका प्रमाण अनन्त नहीं
है। गणकार स्यात है ? जगत्प्रत्यक्ष असंख्यातवां भाग गणकार है, जो जगत्त्रेणीके असं-

१. नानुपुष्टेन स्यात्तगोत्रं । तस्यासंदिगात्प्रत्ययव्युत्पत्तयः । ननु प्रयुज्यते । भवेत्तत्त्वव्यापिका
 २. ननु । ननु ननुः प्रसिद्धोक्तिः । ततोऽप्यापिका । ततोऽप्यापिका । भवेत्तत्त्वव्यापिका । ननु
 ३. ननु ननुः प्रसिद्धोक्तिः । ततोऽप्यापिका । ततोऽप्यापिका । भवेत्तत्त्वव्यापिका । ननु

भागमेत्ताओ । को पडिभागो ? धणंगुलस्स असत्तेज्जदिभागो, असत्तेज्जाणि पदंगुलाणि ।
सेमं सुगमं ।

एतु कायमगणा समस्ता ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-ओरालिय-
कायजोगीसु तीसु अद्दासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवां ॥१०५॥

एदेहि उत्तसब्जोपेहि सह उवसमसेढं चढंताणं बुक्कस्सेण चउवणत्तमत्थि चि
तुल्लचं परुविदं । उवरिमगुणङ्गणजीवेहितो ऊणा चि थोवा चि परुविदा । एदेमि चारस-
ण्हमप्पवद्दथाणं तिस अज्जास ङ्खिदवसमगा मलपदं जादा ।

उवसंतकसायवीदरागछुमत्था तोत्तिया नेव ॥ १०६ ॥
सुगममेदं ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ ३०७ ॥

अदुत्तरसदपरिमाणत्वादे ।

ख्यातवै भागमात्र असंख्यात जगत्त्रेणीप्रमाण हे । प्रतिभाग स्या हे ? घनांगुलका असंख्यातवर्णां भाग प्रतिभाग है जो असंख्यात प्रतयांगुलप्रमाण है । दोष सूत्रार्थ सुगम है ।

इस प्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई ।

योगमार्गनाके अनुवादेसे पांचा मनयोगी, पांचा वचनयोगी, काययोगी और औदारिककायोगियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा परस्पर तल्य और अल्य हैं ॥ १०५ ॥

इन सूत्रों के सर्व योगों के साथ उपशमश्रेणी पर चढ़नेवाले उपशमक जीवों की संख्या उत्क्रम से चोपन होती है, इसलिए उनकी तुल्यता कही है। तथा उपरिम अर्थात् श्रृंखलाश्रेणीसमन्धी गुणस्थानवर्ती जीवों से कम होते हैं, इसलिए उन्हें अल्प कहा है। इस प्रकार पाचों मनोयोगों, पाचों वचनयोगों, काययोगों और औदारिककाययोगों, इन चारह अल्पवहुत्वों का प्रमाण लाने के लिए अपूर्वकरण आदि तीनों गुणस्थानों में स्थित उपशमक मूलपद अर्थात् अल्पवहुत्व के आधार हुए।

उक्त वारह योगबाले उपशान्तक्रमावतीराष्टमस्य जीव पूर्वोक्त ग्रमाण ही ॥ १०६ ॥

ग्रह सब सगम है ।

उक्त चारह योगवाले उपशान्तक्रियायवितरागछद्मस्थोंसे क्षणक जीव संख्यात-
गणित हैं ॥ १०७ ॥

क्योंकि, क्षयजो की संख्याका प्रमाण एक सौ आठ है ।

१ योगानुवादेन वाप्तमानमयोगिनां पचेन्द्रियवत् । काययोगिनां माप्तन्यवत् । स मि १, ८.

स्वीणकसायवीदरागछुमत्था तेत्तिया चैव ॥ १०८ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली पवेसणेण तत्तिया चैव ॥ १०९ ॥

एदं पि सुगमं । जेसु जोगेसु सजोगिगुणद्वयं संभवदि, तेसिं चैवेदमप्याबहुअं वेत्तव्वं ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुव्व संखेज्जगुणा ॥ ११० ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । जहा ओघमिह संखेज्जसमयसाहर्णं कदं, तहा एत्थ वि कायव्वं ।

अपमत्तसंजदा अमखवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ १११ ॥

एत्थ वि जहा ओघमिह गुणगारो साहिदो तहा साहेदव्वो । गवरि अप्पिदजोग-जीवरासिपमाणं गादूण अप्पावहुअं कायव्वं ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ११२ ॥

उक्त वारह योगवाले क्षीणकृपायवीतरागछुमत्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १०८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सयोगिकेवली जीव प्रवेशकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ १०९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है । किन्तु उपर्युक्त वारह योगोंसे जिन योगोंमें सयोगिकेवली गुणस्थान सम्भव है, उन योगोंका ही यह अल्पबहुत्व ग्रहण करना चाहिए ।

सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ ११० ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । जिस प्रकार ओघमें संख्यात समयरूप गुणकारका साधन किया है, उसी प्रकार यहाँपर भी करना चाहिए ।

सयोगिकेवलीसे उपर्युक्त वारह योगवाले अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्त-संयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १११ ॥

जिस प्रकारसे ओघमें गुणकार सिद्ध किया है, उसी प्रकारसे यहाँपर भी सिद्ध करना चाहिए । केवल विदोषता यह है कि विवक्षित योगवाली जीवराशिके प्रमाणको जानकर अल्पबहुत्व करना चाहिए ।

उक्त वारह योगवाले अप्रमत्तमंतयोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ११२ ॥

सुगममेदं ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ ११३ ॥

को गुणगारो ? पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागस्स संखेज्जदिभागो । सेसं सुगमं ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ११४ ॥

को गुणगारो ? आनलियाए असंखेज्जदिभागो । कारणं जाणिदूण वत्तव्वं ।

सभामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ११५ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । एत्थ वि कारणं णिहालिय वत्तव्वं ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ११६ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । जोगद्वयं समासं कादूण तेण साम्मणरासिसोवडिय अप्पिदजोगद्वय गुणिदे इच्छिद-इच्छिदरासीओ हेंति । अणेण पयारेण सब्बत्थ दव्वपमाणसुप्पाइय अप्पावहुअ वत्तव्वं ।

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त वारह योगवाले प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ११३ ॥ गुणकार क्या है ? पल्लोपमके असंख्यातवें भागका संख्यातवां भाग गुणकार है ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

उक्त वारह योगवाले संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ११४ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । इसका कारण जानकर कहना चाहिए (देखो इसी भागका पृ २४९) ।

उक्त वारह योगवाले सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्भिध्यादृष्टि जीव संख्यात-गुणित हैं ॥ ११५ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । यहाँ पर भी इसका कारण स्मरण कर कहना चाहिए (देखो इसी भागका पृ २५०) ।

उक्त वारह योगवाले सम्यग्भिध्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यात-गुणित हैं ॥ ११६ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है । योगसम्बन्धी कालोंका समास (योग) करके उससे सामान्यराशिको भाजित कर पुनः विवक्षित योगके कालसे गुणा करनेपर इच्छित इच्छित योगवाले जीवोंकी राशियां हो जाती हैं । इस प्रकारसे सर्वत्र द्रव्यप्रमाणको उत्पन्न करके उनका अल्पबहुत्व कहना चाहिए ।

मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा, मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ॥११७॥

एतत्तु गुरुं मयं चोक्तं । तं जहा- पंचमणजोगि-पंचवचिजोगिअसंजदममा-
दिद्वीहिं तो तेमिं नेर जोगाणं मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा । को गुणगरो ? पदस्स
असंखेज्जदिभागो, अमरेज्जाओ मेडीओ । केतियेत्ताओ ? सेडीए असंखेज्जदिभाग-
मेत्ताओ । को पडिभागो ? घणंगुलम्म अमरेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पदंगुलाणि ।
स्सयजोगि-ओरालियस्सकायजोगिअमंजदसम्मादिद्वीहिं तो तेसं चैव जोगाणं मिच्छादिद्वी
अणंतगुणा । को गुणगरो ? अभवमिदिदिहिं अणंतगुणो, सिद्धेहिं वि अणंतगुणो,
अणंतानि मवाजीपराभिपट्टयवगममूलाणि चि ।

असंजदसम्मादिद्वि-संजदासंजद-पमत्तापमत्तसंजदद्वीणे सम्भत्त-
प्पावहुअमोघं ॥ ११८ ॥

एदेमिं गुणद्वयाणं जथा ओवमिह सम्भत्तप्पावहुअं उच्चं, तथा एतत्तु वि
अणूणादिहं नत्तन्नं ।

उक्तं वारह योगवाले अमंयतसम्पदधियौ (पांचौ मनोयोगी, पांचौ वचन-
योगी) मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, और (ताययोगी तथा औदारिक-
काययोगी) मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ ११७ ॥

यद्यपि इत्थं प्रकारं सम्बन्धं करना चाहिए । जैसे- पांचौ मनोयोगी और पांचौ
वचनयोगी अभयतन्मयगृहस्थिमें उन्हीं योगोंके मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ।
गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातका भाग गुणकार है, जो असंख्यात जगश्रेणी-
प्रमाण है । न जगश्रेणियों की तत्तनी है ? जगश्रेणीके असंख्यातव भागप्रमाण है । प्रतिभाग
क्या है ? वनागुलका असंख्यातका भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण है ।
काययोगी और औदारिककाययोगी असंयतसम्पदधियोंसे उन्हीं योगोंके मिथ्यादृष्टि
जीव अनन्तगुणित हैं । गुणकार क्या है ? अभवसिद्धोंसे अनन्तगुणित और सिद्धोंसे
भी अनन्तगुणित राशि गुणकार है, जो मंत्र जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

उक्तं वारह योगवाले जीवोंमें असंयतसम्पदधृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और
अप्रमत्तसंयत गुणव्याप्तमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पवहुत्व ओघके समान है ॥ ११८ ॥

इन गुरुंके चारों गुणव्याप्तोंका जिस प्रकार ओघमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्प-
वहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहांपर भी हीनता और अधिकतासे रहित अर्थात् तत्प्रमाण
की अल्पवहुत्व कहना चाहिए ।

एवं तिसु अद्वासु ॥ ११९ ॥

सुगममेदं ।

संवत्थोवा उवसमा ॥ १२० ॥

एदं पि सुगमं ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १२१ ॥

अपिदजोगउवसामगेहिं तो अपिदजोगाणं सवा संखेज्जगुणा । एतत्तु पक्खोव-
संखेवेण मूलरासिमोवडिय अपिदपक्खेवेण गुणिय इच्छिदरासिपमाणमुपपाएदव्वं ।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु संवत्थोवा सजोगिकेवली ॥१२२॥

कन्नाडे चडणोयरणक्रियावावदचालीसजीवमन्लादो थोवा जादा ।

असंजदसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ १२३ ॥

कुदो ? देव-गेरइय-मणुस्सेहिं तो आगंतूण तिरिक्खमणुसेसुव्पणाणं असंजद-
सम्मादिद्वीणमोसालियमिरस्मिह सजोगिकेवलीहिं तो संखेज्जगुणाणमुवलंभा ।

इसी प्रकार उक्त वारह योगवाले जीवोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें
सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पवहुत्व है ॥ ११९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त वारह योगवाले जीवोंमें उपशामक जीन सबसे कम हैं ॥ १२० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त वारह योगवाले उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १२१ ॥

विवक्षित योगवाले उपशामकोंसे विवक्षित योगवाले क्षपक जीव संख्यातगुणित
होते हैं । यद्वापर प्रक्षेपक्षेपके द्वारा मूलजीवराशिको भाजित करके विवक्षित प्रक्षेप-
राशिसे गुणा कर इच्छित राशिका प्रमाण उत्पन्न कर लेना चाहिए (देखो द्रव्यप्र
भाग ३ पृ. ४८-४९) ।

औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सयोगिकेवली सबसे कम हैं ॥ १२२ ॥

क्योंकि, कपाटसमुद्रातके समय आरोहण और अवतरणक्रियामें संलग्न चालीस
जीवोंके अवलम्बनसे औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सयोगिकेवली सबसे कम हो जाते हैं ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सयोगिकेवली जिनोंसे असंयतसम्पदधृष्टि जीव
संख्यातगुणित हैं ॥ १२३ ॥

म्योंकि, देव, नारकी और मनुष्योंसे आकर तिर्यच और मनुष्योंमें उत्पन्न होने-
वाले असंयतसम्पदधृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोगोंमें सयोगिकेवली जिनोंसे संख्यात-
गुणित पाये जाते हैं ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १२४ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढम-
वग्गमूलाणि ।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ १२५ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिहं अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंतगुणो
सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठीणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ १२६ ॥

दंसणमोहणीयखएणुप्पणसहइहाणं जीवाणमइदुल्लभत्तादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १२७ ॥

खओवसमियसम्मत्ताणं जीवाणं बहूणमुवलंभा । को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

वेउव्वियकायजोगीसु देवगदिमंगो ॥ १२८ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगियोमैं असंयतसम्यग्दृष्टियोसैं सासादनसम्यग्दृष्टि जीव
असंख्यातगुणित हैं ॥ १२४ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोमैं सासादनसम्यग्दृष्टियोसैं मिथ्यादृष्टि जीव अनन्त-
गुणित हैं ॥ १२५ ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धौसैं अनन्तगुणित और सिद्धौसैं भी अनन्तगुणित
राशि गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोमैं असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमैं क्षायिकसम्यग्दृष्टि
जीव सबसे कम हैं ॥ १२६ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीयकर्मके क्षयसे उत्पन्न हुए श्रद्धानवाले जीवोंका होना
अतिदुर्लभ है ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोमैं असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमैं क्षायिकसम्यग्दृष्टियोसैं
वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ १२७ ॥

क्योंकि, क्षायोपशमिक सम्यग्भववाले जीव बहुत पाये जाते हैं । गुणकार क्या
है ? संख्यात समय गुणकार है ।

वैक्रियिककाययोगियोमैं (संभव गुणस्थानवर्ती जीवोंका) अल्पबहुत्व देवगतिके
समान है ॥ १२८ ॥

जधा देवगदिमिह अप्पाबहुअं उच्चं, तथा वेउव्वियकायजोगीसु वत्तव्वं । तं जधा-
सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी । सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा । असंजदसम्मादिट्ठी
असंखेज्जगुणा । मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा । असंजदसम्मादिट्ठीद्विहाणे सव्वत्थोवा उवसम-
सम्मादिट्ठी । खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा । वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी ॥ १२९ ॥

कारण पुव्वं व वत्तव्वं ।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १३० ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । एत्थ कारणं संभालिय वत्तव्वं ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १३१ ॥

को गुणगारो ? पदस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ सेडीए
असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि
पदंगुलाणि ।

जिस प्रकार देवगतिमें जीवोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार वैक्रियिककाय-
योगियोमें कहना चाहिए । जैसे- वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे
कम है । उनसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित है । उनसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव
असंख्यातगुणित है । उनसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं । असंयतसम्यग्दृष्टि
गुणस्थानमें वैक्रियिककाययोगी उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं । उनसे क्षायिक-
सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित है । उनसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोमैं सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १२९ ॥

इसका कारण पूर्वके समान कहना चाहिए ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोमैं सासादनसम्यग्दृष्टियोसैं असंयतसम्यग्दृष्टि जीव
संख्यातगुणित है ॥ १३० ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । यहांपर कारण
संभालकर कहना चाहिए ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोमैं असंयतसम्यग्दृष्टियोसैं मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यात-
गुणित हैं ॥ १३१ ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो असंख्यात
जगश्रेणिप्रमाण है । वे जगश्रेणिया भी जगश्रेणिके असंख्यातवै भागमात्र है । प्रसिभाग
क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवा भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण है ।

॥ १४९ ॥

अमंजदसम्मादिट्ठिणो सव्वथोवा उवसमसम्मादिट्ठि ॥ १३२ ॥

कुतो ? उवसमसम्मेण म्हा उवसमेदिमिह म्हाजीणमव्वथोवत्तादो ।

खइयसम्मादिट्ठि संखेज्जगुणा ॥ १३३ ॥

उत्ताममंतितां मंरोज्जगुणअंसजदयम्मादिट्ठिआदिगुणद्विहोतो संचयसंभवो ।

वेदगमम्मादिट्ठि असंखेज्जगुणा ॥ १३४ ॥

निगिमेतिंनो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तवेदगसम्मादिट्ठिजीणं देवेषु उतादसंभादो । को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपडमग्गमूलाणि ।

आहारकायजोगिआहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तंसंजदद्वुणो सव्वथोवा खइयसम्मादिट्ठि ॥ १३५ ॥

सुराममेदं ।

नैत्तिकमिश्रकाययोगियों असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सव्यो कर्म हैं ॥ १३२ ॥

न्यायिक, उपशमसम्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणीमें मेरे हुए जीवोंका प्रमाण अत्यन्त रूप होता है ।

नैतिकमिश्रकाययोगियों असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि-गोंमें ध्यायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १३३ ॥

न्यायिक, उपशमश्रेणीमें मेरे हुए उपशमकोंसे संख्यातगुणित असंयतसम्यग्दृष्टि और गुणस्थानोंही अपेक्षा ध्यायिकसम्यग्दृष्टियोंका संचय सम्भव है ।

नैतिकमिश्रकाययोगियों अमंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें ध्यायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव अमंख्यातगुणित हैं ॥ १३४ ॥

न्यायिक, तिर्यगोंसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंका र्णोंमें उत्पन्न होता संभव है । गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

आहारकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियों प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें ध्यायिकसम्यग्दृष्टि जीव सव्यो कर्म हैं ॥ १३५ ॥

यह मूल सुगम है ।

वेदगसम्मादिट्ठि संखेज्जगुणा ॥ १३६ ॥

एदं पि सुगमं । उवसमसम्मादिट्ठिणमेत्थ संभवाभावा तेसिम्पावदुग्गं ण कहिदं । किमिदं उवसमसम्मेण आहारिद्वी ण उपपज्जदि ? उवससम्मेत्तकालमिह अइदहरमिह तदुपत्तीए संभवाभावा । ण उवसमसेदिमिह उवसमसम्मेत्तेण आहारिद्वीओ लब्भइ, तत्थ पमादाभावा । ण च तत्तो ओइण्णाण आहारिद्वी उवलब्भइ, जत्तियमेत्तेण कालेण आहारिद्वी उपपज्जइ, उवसमसम्मेत्तस्स तत्तियमेत्तकालमव्वट्ठणाभावा ।

कम्मइयकायजोगीसु सव्वथोवा सजोगिकेवली ॥ १३७ ॥

कुदो ? पदर-लेगएरणेसु उक्कस्सेण सट्ठिमेत्तसजोगिहालीणमुवलभा ।

सासणसम्मादिट्ठि असंखेज्जगुणा ॥ १३८ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपडम-वग्गमूलाणि ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियों प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें ध्यायिकसम्यग्दृष्टियोंमें वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १३६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है । इन दोनों योगोंमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका होता सम्भव नहीं है, इसलिए उनका अल्पवहुत्व नहीं कहा है ।

शंका—उपशमसम्यक्त्वके साथ आहारककद्वि न्यों नहीं उत्पन्न होती है ?

समाधान—न्यायिक, अत्यन्त अल्प उपशमसम्यक्त्वके कालमें आहारककद्विका उत्पन्न होना सम्भव नहीं है । न उपशमसम्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणीमें आहारककद्वि पाई जाती है, न्यायिक, बहुपर प्रमादका अभाव है । न उपशमश्रेणीसे उत्तर हुए जीवोंके भी उपशमसम्यक्त्वके साथ आहारककद्वि पाई जाती है, न्यायिक, जितने कालके द्वारा आहारककद्वि उत्पन्न होती है, उपशमसम्यक्त्वका उतने काल तक अवस्थान नहीं रहता है ।

कर्मणकाययोगियों सयोगिकेवली जिन सव्यो कर्म हैं ॥ १३७ ॥

न्यायिक, प्रतर और लोकपूरणसमुदातमें अधिकसे अधिक केवल साठ सयोगिकेवली जिन पाये जाते हैं ।

कर्मणकाययोगियों सयोगिकेवली जिनोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १३८ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ १३९ ॥

को गुणगारा ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । एत्थ कारणं णादण वचनं ।

मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ॥ १४० ॥

को गुणगारो ? अममसिद्धिह्रि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंतगि सच्चजीवरासिपढमवगमभूलाणि ।

असंजदसम्मादिद्विहाणे सवत्थोवा उवसमसम्मादिद्वी ॥ १४१ ॥

कुदो ? उवसमसेडिग्गिह उवसमसम्मेणे मदसंजदणं संखेज्जत्तादो ।

खइयसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ १४२ ॥

पलिदोवमस असंखेज्जदिभागमेत्तखइयसम्मादिद्वीहिंतो असंखेज्जजीवा विगगं किण कंति ति उत्ते उच्चदे— ण ताव देवा खइयसम्मादिद्विणां असंखेज्जा अक्कमेण मंति, मणुसेसु असंखेज्जखइयसम्मादिद्विप्पसंगा । ण च मणुसेसु असंखेज्जा मंति,

कार्मणकाययोगियों सानादनसम्यग्दृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यात-गुणित हैं ॥ १३९ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । यहांपर इसका कारण जानकर कहना चाहिए । (देखो इसी भागका पृ. ४११)

कार्मणकाययोगियों असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ १४० ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंसे भी अनन्तगुणा गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

कार्मणकाययोगियों असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १४१ ॥

क्योंकि, उपशमश्रेणीमें उपशमसम्यग्दृष्टके साथ मरे हुए संयतोंका प्रमाण संख्यात ही होता है ।

कार्मणकाययोगियों असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १४२ ॥

शंका—पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे असंख्यात जीव विग्रह क्यों नहीं करते हैं ?

समाधान—पेली आशंकापर आचार्य कहते हैं कि न तो असंख्यात क्षायिक-सम्यग्दृष्टि देव एत राय मरते हैं, अन्यथा मनुष्योंमें असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके होनेका प्रसंग का जायगा । न मनुष्योंमें ही असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव मरते हैं,

तत्थासंखेज्जाणं सम्मादिद्वीणमभावा । ण तिरिक्खा असंखेज्जा मारणतियं कंति, तत्थ आपाणुसारिवत्तादो । तेण विग्गहर्दए खइयसम्मादिद्विणो संखेज्जा चेव हेति । होंता वि उवसमसम्मादिद्वीहिंतो संखेज्जगुणा, उवसमसम्मादिद्विहकारणादो खइयसम्मा-दिद्विहकारणस्स संखेज्जगुणत्तादो ।

वेदगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ १४३ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग-मूलाणि । को पडिभागो ? खइयसम्मादिद्विरासिगुणिदअसंखेज्जावलियाओ ।

एव योगमगणा समत्ता ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदएसु दोसु वि अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवां ॥ १४४ ॥

क्योंकि, उनमें असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका अभाव है । न असंख्यात क्षायिक-सम्यग्दृष्टि तिर्यच ही मारणान्तिकसमुदात करते हैं, क्योंकि, उनमें आयके अनुसार व्यय होता है । इसलिये विग्रहगतिमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यात ही होते हैं । तथा संख्यात होते हुए भी वे उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे संख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उपशम-सम्यग्दृष्टियोंके (आयके) कारणसे क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके (आयका) कारण संख्यात-गुणा है ।

विशेषार्थ—कार्मणकाययोगमें पाये जानेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीव तो केवल उपशमश्रेणीसे मरकर ही आते हैं, किन्तु क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणीके आतिरिक्त असंयतसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानोंसे मरकर भी कार्मणकाययोगमें पाये जाते हैं । अतः उनका संख्यातगुणित पाया जाना स्वतः सिद्ध है ।

कार्मणकाययोगोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १४३ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? क्षायिकसम्यग्दृष्टि राशिसे गुणित असंख्यात आवलियां प्रतिभाग है ।

इस प्रकार योगमार्गणा समाप्त हुई ।

वेदमार्गणके अनुवादसे स्वीचिदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों ही गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १४४ ॥

दसपरिमाणत्वात् ।

स्वत्वा संखेज्जगुणा ॥ १४५ ॥

नीचपरिमाणत्वात् ।

अपमत्तसंजदा अखत्वा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ १४६ ॥

को गुणगरो ? गंखेज्जगुणा ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ १४७ ॥

को गुणगरो ? दो रूपाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ १४८ ॥

को गुणगरो ? पल्लिदोपमस्य असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पल्लिदोवमपदम-
वगमभूलाणि । को पडिभागो ? मंखेज्जरूपगुणिदअसंखेज्जागलियाओ ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १४९ ॥

को गुणगरो ? आपलियाए असंखेज्जदिभागो । किं कारणं ? असुहसासणगुणस्स

त्थोत्ति, त्थिंयिं उपशामक जीनोंका प्रमाण कम है ।

सीपेदियोंमें उपशामकोंमें क्षपक जीव मंख्यातगुणित हैं ॥ १४५ ॥

त्थोत्ति, उन्नत्त परिमाण सीस है ।

सीपेदियोंमें क्षपकोंमें अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यात-
गुणित हैं ॥ १४६ ॥

गुणकार क्या है ? सख्यात समय गुणकार है ।

सीपेदियोंमें अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १४७ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

सीपेदियोंमें प्रमत्तसंयतोसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १४८ ॥

गुणकार क्या है ? पट्योपमका असख्यातत्वां भाग गुणकार है, जो पट्योपमके
भासख्यात पदम ताम्रप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? सख्यात रूपोंसे गुणित असं-
ख्यात आणियों प्रतिभाग है ।

सीपेदियोंमें संयतासंयतोसे सामादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १४९ ॥

गुणकार क्या है ? आत्मीका त्रसंख्यातत्वां भाग गुणकार है ।

प्रमाण — इनका कारण क्या है ?

सामाधान — स्यात्ति, अशुभ सासादनगुणस्थानका पाना सुलभ है ।

१५) श्री ११०. सीपेदियोंका उ. अक्ष. का ५३.

सुलहत्तादो ।

सम्माभिच्छाइही संखेज्जगुणा ॥ १५० ॥

को गुणगरो ? संखेज्जसमया । किं कारणं ? मासणायादो संखेज्जगुणाय-
संभादो ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १५१ ॥

को गुणगरो ? आपलियाए असंखेज्जदिभागो । किं कारणं ? सम्माभिच्छादिट्ठि-
आयं पेक्सिदूण असंखेज्जगुणायत्तादो ।

भिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १५२ ॥

को गुणगरो ? पदस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ सेडीए
असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, अमंखेज्जाणि
पदंगुलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदट्ठोणे सव्वथोवा खइयसम्मादिट्ठी
॥ १५३ ॥

स्त्रीवेदियोंमें मासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्भिच्छादृष्टि जीव संख्यातगुणित
हैं ॥ १५० ॥

गुणकार क्या है ? सख्यात समय गुणकार है । इसका कारण यह है कि
सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानकी आयसे सम्यग्भिच्छादृष्टि जीवोंकी संख्यातगुणित आय
सम्भव है, यद्यपि दूसरे गुणस्थानमें जितने जीव होते हैं, उनसे संख्यातगुणित जीव
तीसरे गुणस्थानमें आते हैं ।

स्त्रीवेदियोंमें सम्यग्भिच्छादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित
हैं ॥ १५१ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असख्यातत्वा भाग गुणकार है । इसका कारण
यह है कि सम्यग्भिच्छादृष्टि जीवोंकी आयको देखते हुए असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंकी
असंख्यातगुणी आय होती है ।

स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे भिच्छादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १५२ ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातत्वा भाग गुणकार है, जो जगश्रेणीके
असंख्यातत्वां भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका
असंख्यातत्वा भाग प्रतिभाग है जो असंख्यात प्रतरंगुलप्रमाण है ।

स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि
जीव सबसे कम हैं ॥ १५३ ॥

संखेज्जस्वमेत्तत्तादो ।

उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १५४ ॥

को गुणगारो ? पल्लिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पल्लिदोवमपढम-
वगमूलाणि । को पडिभागो ? असंखेज्जावलियपडिभागो ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १५५ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

पमत-अप्पमतसंजदद्वाने सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ १५६ ॥

उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १५७ ॥

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १५८ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एवं दोसु अद्वासु ॥ १५९ ॥

क्योंकि, स्त्रीवेदियोंमें सख्यात रूपमात्र ही क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव पाये जाते हैं।
स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्य-
ग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १५४ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? असंख्यात आवलियां प्रतिभाग है ।
स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे
वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १५५ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

स्त्रीवेदियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव
सबसे कम हैं ॥ १५६ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १५७ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १५८ ॥

ये तर्कों ही सूत्र सुगम हैं ।

इसी प्रकार अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें स्त्रीवेदियोंका
अल्पबहुत्व है ॥ १५९ ॥

सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी, उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा, इच्छेण साधम्मदो ।

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ १६० ॥

एदं सुत्तं गुणरुत्तं किण्णं होदि ? ण, एत्थं पवेसएहि अहियाराभावा । संचएण
एत्थं अहियारो, ण सो पुब्बं परूविदो । तदो ण पुणरुत्तत्तमिदि ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १६१ ॥

सुगममेदं ।

पुरिसवेदएसु दोसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा
॥ १६२ ॥

चउवणपमाणत्तादो ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १६३ ॥

अहुत्तरसदमेत्तत्तादो ।

क्योंकि, इन दोनों गुणस्थानोंमें स्त्रीवेदी क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं,
और उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उनसे संख्यातगुणित होते हैं, इस प्रकार ओघके साथ
समानता पाई जाती है ।

स्त्रीवेदियोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ १६० ॥

शंका—यह सूत्र पुनरुक्त क्यों नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यहां पर प्रवेशकी अपेक्षा इस सूत्रका अधिकार नहीं
है, किन्तु सचयकी अपेक्षा यहांपर अधिकार है और वह संचय पहले प्ररूपण नहीं किया
गया है । इसलिये यहांपर कहे गये सूत्रके पुनरुक्ता नहीं हैं ।

स्त्रीवेदियोंमें उपशामकोसे क्षपक जीव संख्यातगुणित है ॥ १६१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

पुरुषवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशामक
जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प है ॥ १६२ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चौपन है ।

पुरुषवेदियोंमें उक्त दोनों गुणस्थानोंमें उपशामकोमें क्षपक जीव संख्यात-
गुणित है ॥ १६३ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण एक सौ आठ है ।

अपमत्तसंजदा अस्ववा अनुवसमा संखेज्जगुणा ॥ १६४ ॥

तो गुणगणे ? मंगेज्जममया ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ १६५ ॥

तो गुणगणे ? नेणि रुत्ताणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ १६६ ॥

को गुणगणे ? पल्लोदोपमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पल्लोदोवमपडम-
मममूलाणि ।

सासगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ १६७ ॥

को गुणगणे ? आल्लियाए अमंगेज्जदिभागो । सेसं सुगमं ।

सममिच्छादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ १६८ ॥

को गुणगणे ? मंगेज्जसमया । सेसं सुगमं ।

पुरुषोद्वियोंमें दोनों गुणस्थानोंमें क्षपत्तामें अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्त-
मंयन संख्यातगुणित हैं ॥ १६४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

पुरुषोद्वियोंमें अप्रमत्तमंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १६५ ॥

गुणकार क्या है ? जे रूप गुणकार है ।

पुरुषोद्वियोंमें प्रमत्तमंयतोमें मंयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १६६ ॥

गुणकार क्या है ? पन्नापमत्ता अमन्यातवा भाग गुणकार है, जो पत्थोपमके
असंख्यात प्रथम मंगमूलप्रमाण है ।

पुरुषोद्वियोंमें संयतामंयतोमें सामादनसम्पद्यति जीव असंख्यातगुणित
हैं ॥ १६७ ॥

गुणकार क्या है ? आवर्तीका असंयतवा भाग गुणकार है । शेष स्वार्थ
सुगम है ।

पुरुषोद्वियोंमें सामादनसम्पद्यतियोंमें सम्यग्मिथ्याद्यति जीव संख्यातगुणित
हैं ॥ १६८ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । शेष स्वार्थ सुगम है ।

असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ १६९ ॥

को गुणगणे ? आल्लियाए अमंगेज्जदिभागो ।

मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ १७० ॥

को गुणगणे ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ मेडीओ सेडीए
असंखेज्जदिभागमेत्ताओ ।

असंजदसम्मादिद्वि-संजदासंजद-पमत्त-अपमत्तसंजदद्वुणे सम्मत्त-
प्पावहुअमोयं ॥ १७१ ॥

एदेसिं जथा ओघग्ग्हि सम्मत्तप्पावहुअं उत्तं तथा वत्तव्वं ।

एवं दोसु अद्वासु ॥ १७२ ॥

संखेत्योवा उवसमसम्मादिद्वी, राहयसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा; इवेदेहि माधम्माम्मादो ।

संखेत्योवा उवसमा ॥ १७३ ॥

पुरुषोद्वियोंमें सम्यग्मिथ्याद्यतियोंसे असंयतसम्पद्यति जीव असंख्यातगुणित
हैं ॥ १६९ ॥

गुणकार क्या है ? आवर्तीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

पुरुषोद्वियोंमें असंयतसम्पद्यतियोंमें मिथ्याद्यति जीव असंख्यातगुणित
हैं ॥ १७० ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो जगश्रेणीके
असंख्यातवे भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है ।

पुरुषोद्वियोंमें असंयतसम्पद्यति, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत
गुणस्थानमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ १७१ ॥

इन गुणस्थानोंका जिस प्रकार ओघमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है,
उसी प्रकार यहाँपर कहना चाहिए ।

इसी प्रकार पुरुषोद्वियोंमें अपूर्वकरण और अनिश्चितिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें
सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ १७२ ॥

मर्यादित, उपशमसम्पद्यति जीव सबसे कम है और क्षाप्रिकसम्पद्यति जीव
उनसे संख्यातगुणित है, इस प्रकार ओघके साथ समानता पाई जाती है ।

पुरुषोद्वियोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ १७३ ॥

१ प्रतिपु 'ए' 'द्वि' पाठ ।

अवगदेवेदसु दोसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवां
॥ १९१ ॥

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिआ चेव ॥ १९२ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १९३ ॥

कुदो ? अहुत्तरमदप्पमाणत्तादो ।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिआ चेव ॥ १९४ ॥

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिआ
चेव ॥ १९५ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ १९६ ॥

एदं पि सुगमं ।

एव वेदमगणा समत्ता ।

अपगतवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें उप-
शामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १९१ ॥

उपशान्तकपायवीतरागछदुमत्था जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १९२ ॥
ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

अपगतवेदियोंमें उपशान्तकपायवीतरागछदुमत्थासे क्षपक जीव संख्यातगुणित
हैं ॥ १९३ ॥

क्योंकि, इनका प्रमाण एक सौ आठ है ।

अपगतोदियोंमें क्षीणकपायवीतरागछदुमत्था पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १९४ ॥
सयोगिकेवली और अयोगिकेवली ये दोनों ही प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और
पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १९५ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

सयोगिकेवली संवयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ १९६ ॥
यह सूत्र भी सुगम है ।

इस प्रकार वेदमार्गणा समाप्त हुई ।

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु
दोसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवां ॥ १९७ ॥

सुगममेदं ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १९८ ॥

को गुणगरो ? दो रूवाणि ।

णवरि विसेसा, लोभकसाईसु सुहुमसांपराइय-उवसमा विसेसा-
हिया ॥ १९९ ॥

दोउवसायपवेसएहिता संखेज्जगुणे^१ दोगुणद्विगुणपवेसयक्खवए पेविखदूण
कथं सुहुमसांपराइयउवसामया विसेसाहिया ? ण एस दोसो, लोभकसाएण खवएसु
पविसंतजीवे पेविखदूण तेसिं सुहुमसांपराइयउवसामएसु पविसंतताणं चउवणपरिमाणणं

कपायमार्गणोंके अनुवादसे क्रोधकपायी, मानकपायी, मायाकपायी और लोभ-
कपायियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशामक जीव
प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १९७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

चारो कपायवाले जीवोंमें उपशामकसे क्षपक संख्यातगुणित हैं ॥ १९८ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

केवल विशेषता यह है कि लोभकपायी जीवोंमें क्षपकोसे सूक्ष्मसाम्परायिक
उपशामक-विशेष अधिक हैं ॥ १९९ ॥

शंका—अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दो उपशामक गुणस्थानोंमें प्रवेश
करनेवाले जीवोंसे संख्यातगुणित प्रमाणवाले इन्हीं दो गुणस्थानोंमें प्रवेश करनेवाले
क्षपकोंको देखकर अर्थात् उनकी अपेक्षासे सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक विशेष अधिक
कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, लोभकपायके उदयसे क्षपकोंमें प्रवेश
करनेवाले जीवोंका देखते हुए लोभकपायके उदयसे सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामकोंमें
प्रवेश करनेवाले और चौपन सख्यारूप परिमाणवाले उन लोभकपायी जीवोंके विशेष

^१ यथापुत्रादित्थं कोयमानमायकपायाणां पुवेदवत् । ४×४ लोभकपायाणां द्वयोःपशमक्रयोस्तुल्ला
सख्या । क्षपकां सखेयगुणा । सूक्ष्मसाम्परायगुणः सुपुशमकसयता । विशेषाधिना । सूक्ष्मसाम्परायक्षणका
सखेयगुणा । शेषाणां मामायवत् । स. सि १, ८

२ प्रतिपु 'सखेज्जगुणे' इति पाठः ।

मिमहाद्विजातिगोहा । त्रयो ? लोभरुमाहेनु त्ति विमेगनादो ।

स्वया संखेज्जगुणा ॥ २०० ॥

उत्तापामोहितो वरगणं दुगुणलुपलंभा ।

अपमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ २०१ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ २०२ ॥

को गुणगारो ? दो रूवाणि । चट्ठकसायअपमत्तसंजदानमेत्थ संदिद्धी २ । ३ ।

४ । ७ । पमत्तसंजदां संदिद्धी ४ । ६ । ८ । १४ ।

अर्थक संनेमं सोई त्रिरोच नहीं है । त्रिरोच न होनेका कारण यह है कि सूत्रमें 'लोभ-
कयायी जीवोंमें' ऐसा विशेषणपर दिया गया है ।

लोभरुपायी जीवोंमें सुक्ष्मगाम्परायिक उपशमकोमे सुक्ष्मसाम्परायिक क्षपक
संख्यातगुणित हैं ॥ २०० ॥

क्योंकि, उपशमकोंसे क्षपक जीवोंका प्रमाण दुगुणा पाया जाता है ।

चारों कपायवाले जीवोंमें क्षपकोंमे अक्षपक और अनुपशमक अप्रमत्तसंयत
संख्यातगुणित हैं ॥ २०१ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

चारों कपायवाले जीवोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ २०२ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है । यहा चारों कपायवाले अप्रमत्तसंयतोंका
प्रमाण या बल्यगणन उत्तगोनेमाली अंकसंख्या इस प्रकार है- २ । ३ । ४ । ७ । तथा
चारों कपायवाले प्रमत्तसंयतोंकी अंकसंख्या ४ । ६ । ८ और १४ है ।

विशेषार्थ—यहा पर चतु कपायी अप्रमत्त और प्रमत्त संयतोंके प्रमाणका ज्ञान
करनेके लिये जो अंकसंख्या बतलाई गई है, उसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य तिर्यचोंमें
मानकपायका काल मरने कम है, उससे कोध, माया और लोभकपायका काल उत्तरो-
त्तर विशेष अधिक होता है । (देखो भाग ३, दृ. ४२५) । तदनुसार यहां पर अप्रमत्त-
संयत और प्रमत्तसंयतोंका अंकसंख्या द्वारा प्रमाण बतलाया गया है कि मानकपाय-
वाले अप्रमत्तसंयत मरने कम है, जिनका प्रमाण अंकसंख्यामें (२) दो बतलाया गया
है । इनमें कोधकपायवाले अप्रमत्तसंयत विशेष अधिक होते हैं, जिनका प्रमाण अंक-
संख्यामें (३) तीन बतलाया गया है । इनसे मायाकपायवाले अप्रमत्तसंयत विशेष
अधिक होते हैं, जिनका प्रमाण अंकसंख्यामें (४) चार बतलाया गया है । इनसे लोभ-
कपायवाले अप्रमत्तसंयत विशेष अधिक होते हैं, जिनका प्रमाण अंकसंख्यामें (७) सात
बतलाया गया है । चूंकि अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयतोंका प्रमाण दुगुणा माना गया है,
इसलिए यहां अंकसंख्यामें भी उनका प्रमाण क्रमशः दूना ४, ६, ८ और १४ बतलाया गया
है । यह अंकसंख्या काल्पनिक है, और उसका अभिप्राय स्थूल रूपसे चारों कपायोंका

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा' ॥ २०३ ॥

को गुणगारो ? पल्लिदेवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पल्लिदेवमपढम-
वग्गमूलाणि ।

सासणसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा ॥ २०४ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

सम्माभिच्छादिद्धी संखेज्जगुणा ॥ २०५ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

असंजदसम्मादिद्धी असंखेज्जगुणा ॥ २०६ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

मिच्छादिद्धी अणंतगुणा' ॥ २०७ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिरीह अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंतगुणि
सत्त्वजीवरासिपढमवग्गमूलाणि ।

परस्पर आपेक्षिक प्रमाण बतलाना मात्र है । इसी होनाधिकृतोके लिए देखो भाग ३,
पृ ४३४ आदि ।

चारों कपायवाले जीवोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत असंख्यातगुणित हैं ॥ २०३ ॥
गुणकार क्या है ? पल्लोपमत्ता असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्लोपमके
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

चारों कपायवाले जीवोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित
हैं ॥ २०४ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

चारों कपायवाले जीवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यात-
गुणित हैं ॥ २०५ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

चारों कपायवाले जीवोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यात-
गुणित हैं ॥ २०६ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है ।

चारों कपायवाले जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणित
हैं ॥ २०७ ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंसे भी अनन्तगुणा
प्रमाण गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

१ प्रतिपु 'सज्जामज्जदावेज्जगुणा' इति पाठः ।

२ अथ तु विवेचः मियाद्वयोऽनन्तगुणा । स. सि. १, ८.

असंजदस्मादिट्टि-संजदासंजद-पमत्त-अपमत्तसंजदद्वारेण सम्मत्त-
प्पावहुअमोघं ॥ २०८ ॥

एदेसि जघा ओघमिह सम्मत्त-पावहुअं उतं तथा वत्तवं, विसेसाभावादो ।

एवं दोसु अद्दासु ॥ २०९ ॥

जघा पमत्तापमत्ताण सम्मत्त-प्पावहुअं परूविदं, तथा दोसु अद्दासु परूवेदवं ।
णवरि लोभकसायस्स एवं तिसु अद्दासु चि वत्तवं, जाव सुहुमसांपराइओ चि लोभ-
कसायउवलंभा । एवं सुत्ते किण्ण परूविदं ? परूविदमेव पवेसप्पावहुअसुत्तेण । तेणेव
एसो अत्थो णव्वदि चि पुध ण परूविदो ।

सन्वत्थोवा उवसमा ॥ २१० ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २११ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

चारों कपायवाले जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और
अप्रमत्तसंयत गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ २०८ ॥
इन सूत्रोंके गुणस्थानोंका जिस प्रकार ओघमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व
कहा है, उसी प्रकार यहापर कहना चाहिये, क्योंकि, दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है ।

इसी प्रकार अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें चारों कपाय-
वाले जीवोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ २०९ ॥

जिस प्रकारसे चारों कपायवाले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी
अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दो गुणस्थानोंमें
कहना चाहिये । किन्तु विशेषता यह है कि लोभकपायका इसी प्रकार अपूर्वकरण आदि
तीन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है, ऐसा कहना चाहिये, क्योंकि, सूक्ष्म-
साम्पराय गुणस्थान तक लोभकपायका सद्भाव पाया जाता है ।

शंका—यदि ऐसा है, तो इसी प्रकारसे सूत्रमें क्यों नहीं प्ररूपण किया ?

समाधान—प्रवेशसम्बन्धी अल्पबहुत्व सूत्रके द्वारा सूत्रमें उक्त बात प्ररूपित की
ही गई है । और उसी प्रवेशसम्बन्धी अल्पबहुत्व सूत्रके द्वारा यह ऊपर कहा गया अर्थ
जाना जाता है, इसलिए उसे यहांपर पृथक् नहीं कहा है ।

चारों कपायवाले उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ २१० ॥

उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २११ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

अकसाईसु सन्वत्थोवा उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था ॥ २१२ ॥
चउवणपरिमाणत्तादो ।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था संखेज्जगुणा ॥ २१३ ॥

अहुत्तरसदपरिमाणत्तादो ।

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया
वेव ॥ २१४ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ २१५ ॥

कुदो ? अणूणाधियओघरासिचादो ।

एवं कसायमगणा समत्ता ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणाणीसु सन्व-
त्थोवा सासणसम्मादिट्ठी ॥ २१६ ॥

अकपायी जीवोंमें उपशान्तकपायवीतरागछद्वयस्थ सबसे कम हैं ॥ २१२ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चोपन है ।

अकपायी जीवोंमें उपशान्तकपायवीतरागछद्वयस्थोंसे क्षीणकपायवीतरागछद्वयस्थ
संख्यातगुणित हैं ॥ २१३ ॥

क्योंकि, उनका परिमाण एक सौ आठ है ।

अकपायी जीवोंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, ये दोनों ही प्रवेशकी
अपेक्षा तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २१४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अकपायी जीवोंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ २१५ ॥
क्योंकि, उनका प्रमाण ओघराशिसे न कम है, न अधिक है ।

इस प्रकार कपायमार्गणा समाप्त हुई ।

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्तज्ञानी, श्रुताज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवोंमें
सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ २१६ ॥

कृदो ? पलितोयमस्म अमंसेज्जदिभागपरिमाणत्वादो ।

मिच्छादिद्वी अणंतगुणा, मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा' ॥२१७॥

मत्स्य मत्स्यं मंचवो मीरुटे- मदि-मुदअण्णाणिमासणेहिंतो मिच्छादिद्वी अणंतगुणा । को गुणगरो ? सब्बजीवतामिस्म अमंसेज्जदिभागो । विभंगणाणिसासणेहिंतो तेसिं चैव मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा । को गुणगरो ? पदस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ मेडीओ, मेडीए अमंसेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? वणंगुलस्स अमंसेज्जदिभागो, अमंसेज्जाणि पदंगुलाणि ति । अण्णाहि यिप्पडिमेहत्तादो ।

आभिणिचोहिय-मुद-ओधिणाणीसु तिसु अद्वासु उवसमा पवे-सणेण तुल्ला थोवा' ॥ २१८ ॥

गुणममेदं ।

उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिथा चेव ॥ २१९ ॥

स्वयंकि, उक्तका परिमाण पल्योपमके असंख्यातवै भागमात्र है ।

उक्त तीनों अजानी जीवोंमें मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणित हैं, मिथ्यादृष्टि असंख्यात-गुणित हैं ॥ २१७ ॥

यहांपर इस प्रकार स्वार्थ सम्यग् करना चाहिए- मत्स्यजानी और श्रुताजानी सामान्यतः सम्यग्दृष्टिमें मत्स्यजानी और श्रुताजानी मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं । गुणकार क्या है ? स्वर्ग जीवराशिका असंख्यातवां भाग गुणकार है । विभंगजानी रासादन-ममग्गुणोंसे उनके ही मिथ्यादृष्टि अर्थात् विभंगजानी मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यात-गुणित हैं । गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो जगश्रेणीके प्रमत्त्यातवै भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? वनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण है । यदि इस प्रकार मृगता अर्थ न जिन जायगा, तो परस्पर विरोध प्राप्त होगा ।

आभिनिचोधिकरानी, श्रुतजानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणान्ताओंमें उपग्रामक प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ २१८ ॥

यह सूत्र नुगम है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें उपशान्तरूपायवीतरागछदस्य पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ २१९ ॥

* मिथ्यादृष्टयोऽसंख्यगुणाः । ग. सि. १, ८.

२ मदिगु 'पुं' इति पाठ ।

३ मदिशुभाणिमानि पडंत तोरापचा उपग्रामक । स. सि. १, ८.

पदं पि सुगमं ।

खवा संखेज्जगुणा' ॥ २२० ॥

को गुणगरो ? दोष्णि रूपाणि ।

खीणकसायवीदरागछुदुमत्था तेत्तिथा चेव ॥ २२१ ॥

गुणममेदं ।

अपमत्तसंजदा अक्खवा अनुवसमा संखेज्जगुणा' ॥ २२२ ॥

कुदो ? अण्णाहियओघरासिच्चादो ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा' ॥ २२३ ॥

को गुणगरो ? दोष्णि रूपाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा' ॥ २२४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें उपशान्तरूपायवीतरागछदस्योसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २२० ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें क्षपकोंसे क्षीणकपायवीतरागछदस्य पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ २२१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें क्षीणकपायवीतरागछदस्योसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २२२ ॥

स्वयंकि, उक्तका प्रमाण ओघराशिले न कम है, न अधिक है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यात-गुणित हैं ॥ २२३ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयतोसे संयतासंयत जीव असंख्यात-गुणित हैं ॥ २२४ ॥

१ चत्वार क्षपकाः सत्येयगुणा । स. सि. १, ८.

२ अप्रमत्तमयता सत्येयगुणा. । स. सि. १, ८

३ प्रमत्तमयता सत्येयगुणा । ग. सि. १, ८.

४ संयतामयता (अ-) सत्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

कुदो ? पल्लिदोवमस्म असंखेज्जदिभागपरिमाणत्तादो । को गुणगारो ? पल्लिदो-
वमस्म असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पल्लिदोवमपढमवग्गमूलानि ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा' ॥ २२५ ॥

कुदो ? पहाणीकयदेवअसंजदसम्मादिट्ठिरासित्तादो । को गुणगारो ? आवलियाए
असंखेज्जदिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अपमत्तसंजदद्वाने सम्मत्त-
प्पावहुगमोधं ॥ २२६ ॥

जधा ओवग्गि एदेसि सम्मत्तप्पावहुअं परुविंद, तथा परुवेदव्वमिदि वुत्तं होदि ।

एवं तिसु अद्वासु ॥ २२७ ॥

संवत्थोवा उवसमा ॥ २२८ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २२९ ॥

एदाणि तिणिण वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

क्योंकि, उनका परिमाण पल्लोपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । गुणकार क्या
है ? पल्लोपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्लोपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूल-
प्रमाण है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें संयतासंयतोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असं-
ख्यातगुणित है ॥ २२५ ॥

क्योंकि, यहापर असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंकी राशि प्रधानतासे स्वीकार की गई
है । गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत
और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ २२६ ॥

जिस प्रकार ओघमें इन गुणस्थानोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है,
उसी प्रकार यहापर भी प्ररूपण करना चाहिये, यह अर्थ कहा गया है ।

इसी प्रकार मति, श्रुत और अवधिज्ञानी जीवोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुण-
स्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ २२७ ॥

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ २२८ ॥

उपशामकोंसे धपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २२९ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

१ अमयतमग्ग'ट्ठय (अ) मल्लेयगुणा । स ति १, ८

मणपज्जवणाणीसु तिसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा'
॥ २३० ॥

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिथा चेव ॥ २३१ ॥

खवा संखेज्जगुणा' ॥ २३२ ॥

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिथा चेव ॥ २३३ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

अपमत्तसंजदा अम्बवा अणुवसमा संखेज्जगुणा' ॥ २३४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जरूवाणि ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा' ॥ २३५ ॥

को गुणगारो ? दोणिण रूवाणि ।

पमत्त-अपमत्तसंजदद्वाने संवत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ २३६ ॥

मनःपर्ययज्ञानियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव
प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ २३० ॥

उपशान्तकपायवीतरागछद्वस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २३१ ॥

उपशान्तकपायवीतरागछद्वस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३२ ॥

क्षीणकपायवीतरागछद्वस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २३३ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें क्षीणकपायवीतरागछद्वस्थोंसे अक्षपक और अनुपशामक
अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात रूप गुणकार है ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३५ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानोंमें उपशामसम्यग्दृष्टि
जीव सबसे कम हैं ॥ २३६ ॥

१ मन पर्ययज्ञानियु सर्वत स्तोकाश्रित्वा उपशामका । स ति १, ८. तेषां सख्या १० । गो. जी. ६३०

२ चत्वार क्षपकाः सल्लेयगुणा । स ति १, ८ तेषां सख्या २० । गो जी ६३०

३ अप्रमत्तसंयताः सल्लेयगुणा । स ति १, ८

४ प्रमत्तमयता सल्लेयगुणाः । स ति १, ८

उपशममर्द्धादौ त्रोटिणाणं उपशममर्द्धं तदुपमाणं वा उपशमसम्भवेण शोचणं जीवाणमुलंभा ।

खड्गसम्भाद्वी संखेज्जगुणा ॥ २३७ ॥

तदयमयमत्तेण मणपज्जगुणाणिमुणित्तरणं बहुणमुलंभा ।

वेदगसम्भाद्वी संखेज्जगुणा ॥ २३८ ॥

गुणमर्द्धं ।

एवं तिसु अद्वासु ॥ २३९ ॥

सन्वत्योवा उपसमा ॥ २४० ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २४१ ॥

पद्धानि तिणिण मुत्ताणि मुगमाणि, बहुसो परुविदत्तादौ ।

केवलणाणीसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिथा चेव ॥ २४२ ॥

स्योकि, उपशमश्रेणीत्वं उत्तरत्वेनालं, अथवा उपशमश्रेणीपर चढनेवाले मन.पर्यय-
जानी धादु जाय उपशमसम्यक्चकं साय पाये जाने हैं ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि-
नोंमें भागिरुसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३७ ॥

स्योकि, उक्त गुणस्थानोंमें क्षायिकसम्यक्चकं साय बहुतसे मन.पर्ययजानी
मुनिर पाये जाने हैं ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्य-
ग्दृष्टियोंमें वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३८ ॥

याह मूत्र मुगम है ।

इमी प्रकार मनःपर्ययज्ञानियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन उपशमक गुणस्थानोंमें
मम्यक्त्वमन्वयी अल्पाहुत्वं है ॥ २३९ ॥

मनःपर्ययज्ञानियोंमें उपशमक जीव सत्रसे कम है ॥ २४० ॥

उपशमक जीवोंमें क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २४१ ॥

ये तीनों सत्र सुगम हैं, स्योकि, वे बहुत चार प्ररूपण किये जा चुके हैं ।

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिन प्रवेगकी अपेक्षा दोनों
ही तुल्य और तावन्मात्र ही हैं ॥ २४२ ॥

१ य मन्तो: ' चोक्षित्त ' जप्तरां ' शोचिणा ' इति पाठः ।

तुल्ला तत्तिथा सदा हेउ-हेउमंतभावेण जोजेयव्वा । तं कथं ? जेण तुल्ला, तेण
तत्तिथा त्ति । केत्तिथा ते ? अहुत्तरसयसेत्ता ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणां ॥ २४३ ॥

पुव्वकोडिकालिहि संचयं गदा सजोगिकेवल्लिणो एगसमयपवेसगेहितो मरेज्ज-
गुणा, संखेज्जगुणेण कालेण मिलिदत्तादौ ।

एव णणमगणा समत्ता ।

संजमाणुवादेण संजदेसु तिसु अद्वासु उपसमा पवेसणेण तुल्ला
शोवा ॥ २४४ ॥

कुदो ? चउवणपमाणत्तादौ ।

उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिथा चेव ॥ २४५ ॥

सुगममेदं ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ २४६ ॥

तुल्य और तावन्मात्र, ये दोनों शब्द हेतु हेतुमद्रावने मन्वन्धित करना चाहिए।
शंका — नह कैसे ?

समाधान—चूँकि, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली परस्पर तुल्य हैं, इन्मल्लिण
वे तावन्मात्र अर्थात् पूर्वोक्त प्रमाण है ।

शंका—वे कितने हैं ?

ममाधान—वे एक सौ आठ संख्याप्रमाण हैं ।

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ २४३ ॥
पूर्वकोटीप्रमाण कालमें संचयको प्राप्त हुए सयोगिकेवली एक समयमें प्रवेग
करनेवालोंकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं, स्योकि, वे संख्यातगुणित कालसे संचित
हुए हैं ।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई ।
संयममार्गणके अनुवादसे संयतोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उप-
शमक जीव प्रवेगकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ २४४ ॥

स्योकि, उनका प्रमाण चौपन है ।

संयतोंमें उपशान्तकपायवीतरागछमस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २४५ ॥
याह सत्र सुगम है ।

संयतोंमें उपशान्तकपायवीतरागछमस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २४६ ॥

१ केवलज्ञानियु अयोगिकेवल्लिण सयोगिकेवल्लिनः सस्येगुणाः । य. ति १, ८

को गुणगारो ? दोणिण रूवाणि । किं कारणं ? जेण गाणवेदादिसव्ववियप्पेसु उवसमसेहिं चंडंतजीवेहिंतो सवगसेहिं चंडंतजीवा दुगुणा त्ति आइरिओवदेसादो । एण-समएण त्तिथयरा छ सवगसेहिं चंडंति । दस पत्तेयबुद्धा चंडंति, बोहियबुद्धा अट्टत्तर-सयमेत्ता, सग्गच्चुआ तत्तिथा चेव । उक्कस्सोगाहणाए दोणिण खवगसेहिं चंडंति, जहणोगाहणाए चत्तारि, मज्झिमोगाहणाए अट्ट । पुरिसवेदेण अट्टत्तरसयमेत्ता, णउंसय-वेदेण दस, इत्थिवेदेण वीस । एदेसिमद्वमेत्ता उवसमसेहिं चंडंति' त्ति घेतन्नं ।

स्त्रीणकसायवीदरागछुमत्था तत्तिथा चेव ॥ २४७ ॥

केत्तिथा ? अट्टत्तरसयमेत्ता । कुदो ? संजमसामणणविवक्खादो ।

गुणकार स्या है ? दो रूप गुणकार है ।

शंका--क्षपकौका गुणकार दो होनेका कारण क्या है ?

समाधान--चूंकि, ज्ञान, वेद आदि सर्व विकल्पोंमें उपशमश्रेणीपर चढ़नेवाले जीवोंसे क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीव दुगुणे होते हैं, इस प्रकार आचार्योंका उपदेश पाया जाता है ।

एक समयमें एक साथ छह तीर्थंकर क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं । दश प्रत्येकबुद्ध, एक सौ आठ बोधितबुद्ध और स्वर्गसे च्युत होकर आये हुए उतने ही जीव अर्थात् एक सौ आठ जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं । उत्कृष्ट अवगाहनावाले दो जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं । जवय्य अवगाहनावाले चार और तीक मध्यम थवगाहनावाले आठ जीव एक साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं । पुरुषवेदेके उदयके साथ एक सौ आठ, नपुंसकवेदेके उदयसे दश और स्त्रीवेदेके उदयसे बीस जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं । इन उपर्युक्त जीवोंके आधे प्रमाण जीव उपशमश्रेणीपर चढ़ते हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए ।

संयतोमें क्षीणरूपायवीतरागछस्य जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २४७ ॥

शंका--क्षीणरूपायवीतरागछस्य कितने होते हैं ?

समाधान--एक सौ आठ होते हैं, क्योंकि, यहांपर सयम-सामान्यकी विवक्षा की गई है ।

१ दो चैजोमाए चउर जह्माए मस्सिमाए उ । अट्टहिय मय खुउ मिज्झह ओगाहणाइ तहा ॥ प्रवच डा ५०, ४७५

२ तौति खवा इमिस्समे जेहियबुद्धा य पुरिसवेदा य । उक्कस्सेणट्टवसयप्पमा सगदो य बुद्धा ॥ पसेयबुद्धति यरारिपण्डयमणोदिणपद्धता । दमक्कवमिदममद्वीमज्झममो ॥ जेट्ठावररुद्धमन्निमओगाहणा इ चारि अट्टेव । ज्जाव इत्ति वप्पा उयमणा अट्टेदेदिमि ॥ गो जी. ३२९-५३१

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिथा चेव ॥ २४८ ॥

सुबोज्झमेदं ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ २४९ ॥

कुदो ? एगसमयादो संचयकालसमूहस्स संखेज्जगुणत्तुवलंभा ।

अप्पमतसंजदा अवखवा अनुवसमा संखेज्जगुणा ॥ २५० ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । एत्थ ओघकारणं वित्तिथ वत्तव्वं ।

पमतसंजदा संखेज्जगुणा ॥ २५१ ॥

को गुणगारो ? दोणिण रूवाणि ।

पमत-अप्पमतसंजदट्टाणे सव्वथोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ २५२ ॥

कुदो ? अतोसुहुत्तसंचयादो ।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २५३ ॥

संयतोमे सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिन ये दोनों ही प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २४८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संयतोमे सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ २४९ ॥

क्योंकि, एक समयकी अपेक्षा संचयकालका समूह संख्यातगुणा पाया जाता है ।

संयतोमें सयोगिकेवली जिनोंसे अक्षपक और अनुपशमक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५० ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । यहांपर राशिके ओघके समान होनेका कारण चिन्तवन कर कहना चाहिए । इसका कारण यह है कि दोनों स्थानोंपर संयम-सामान्य ही विवक्षित है (देखो सूत्र नं ८) ।

संयतोमे अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५१ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

संयतोमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २५२ ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

संयतोमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे अधिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५३ ॥

कुदो ? पुव्वकोडिमंचयादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २५४ ॥

नञोपममिअम्मत्तादो ।

एवं तिसु अद्वासु ॥ २५५ ॥

मन्वथोवा उवसमा ॥ २५६ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २५७ ॥

एदाणि तिणि नि सुत्ताणि सुगमाणि ।

सामाहयच्छेदोवद्वावणसुद्धिसंजदेसु दोसु अद्वासु उवसमा पवे-
सणेण तुह्वा थोवा ॥ २५८ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २५९ ॥

अप्पमत्तसंजदा अखवा अनुवसमा संखेज्जगुणा ॥ २६० ॥

क्याकि, उनका संचयकाल पूर्वकोटी वर्ष है ।

संयतोमं प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमे धायिकसम्यग्दृष्टियोमे
वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संन्यातगुणित है ॥ २५४ ॥

क्याकि, वेदकसम्यग्दृष्टियोके क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है (जिसकी प्राप्ति
सुलभ है) ।

इसी प्रकार संयतोमं अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोमे नम्यक्त्वसम्बन्धी
अल्पवहृत्व है ॥ २५५ ॥

उक्त गुणस्थानोमे उपशामक जीव मवसे कम है ॥ २५६ ॥

उपशामकोसे शपक जीव संन्यातगुणित है ॥ २५७ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोमे अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण,
इन दोनों गुणस्थानोमे उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प है ॥ २५८ ॥

उपशामकोमे शपक जीव संन्यातगुणित है ॥ २५९ ॥

शपकोसे अप्रपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत संन्यातगुणित है ॥ २६० ॥

१ सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पवहृत्व है ॥ २५५ ॥

२ उक्त जीवोमे उपशामक मवसे कम है ॥ २५६ ॥

३ उपशामकोमे शपक जीव संन्यातगुणित है ॥ २५७ ॥

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ २६१ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदहाणे सव्वथोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ २६२ ॥

कुदो ? अंतोमुहुत्तसंचयादो ।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २६३ ॥

पुव्वकोडिमंचयादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २६४ ॥

सओवसमिअम्मत्तादो ।

एवं दोसु अद्वासु ॥ २६५ ॥

सव्वथोवा उवसमा ॥ २६६ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २६७ ॥

एदाणि तिणि नि सुत्ताणि सुगमाणि ।

अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत संन्यातगुणित है ॥ २६१ ॥

ये सूत्र सुगम है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोमे प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुण-
स्थानोमे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सवसे कम है ॥ २६२ ॥

क्याकि, उनका संचयकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोमे प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुण-
स्थानोमे उपशमसम्यग्दृष्टियोसे धायिकसम्यग्दृष्टि जीव संन्यातगुणित है ॥ २६३ ॥

क्याकि, उनका संचयकाल पूर्वकोटी वर्ष है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोमे प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुण-
स्थानोमे धायिकसम्यग्दृष्टियोसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संन्यातगुणित है ॥ २६४ ॥

क्याकि, वेदकसम्यग्दृष्टियोके क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है (जिसकी प्राप्ति
सुलभ है) ।

इसी प्रकार उक्त जीवोका अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोमे
सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पवहृत्व है ॥ २६५ ॥

उक्त जीवोमे उपशामक सवसे कम है ॥ २६६ ॥

उपशामकोमे शपक संन्यातगुणित है ॥ २६७ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम है ।

१ प्रमत्ताः मत्तगुणा । म ति १, ८.

परिहारसुद्धिसंजदेसु सन्वथोवा अप्पमत्तसंजदा' ॥ २६८ ॥
सुगममेदं ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा' ॥ २६९ ॥
को गुणगारो ? दो रूवाणि ।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदद्वुणे सन्वथोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ २७० ॥
कुदो ? खइयसम्मत्तस्स पउरं संभवाभावा ।
वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २७१ ॥

कुदो ? खओवसमियसम्मत्तस्स पउरं संभवादो । एत्थ उवसमसम्मत्तं णत्थि,
तीसं वासेण विणा परिहारसुद्धिसंजमस्स संभवाभावा । ण च तेत्तियकालसुवसमसम्म-
त्तस्सावद्वुणमत्थि, जेण परिहारसुद्धिसंजमेण उवसमसम्मत्तस्सुवल्लो होज्ज ? ण च
परिहारसुद्धिसंजमल्लदंत्तस्स उवसमसेडीचडण्डं दंसणमोहणीयस्सुवसामणं पि संभवइ,
जेणुवसमसेडिग्घि दोणं पि संजोगो होज्ज ।

परिहारसुद्धिसंयतोमं अग्रमत्तसंयत जीव सबसे कम हैं ॥ २६८ ॥
यह सूत्र सुगम है ।

परिहारसुद्धिसंयतोमं अग्रमत्तसंयतोसं प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ २६९ ॥
गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार हैं ।

परिहारसुद्धिसंयतोमं प्रमत्तसंयत और अग्रमत्तसंयत गुणस्थानमे क्षायिकसम्य-
ग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २७० ॥

क्योंकि, क्षायिकसम्यक्त्वका प्रचुरतासे होना संभव नहीं है ।

परिहारसुद्धिसंयतोमं प्रमत्तसंयत और अग्रमत्तसंयत गुणस्थानमे क्षायिकसम्य-
ग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २७१ ॥

क्योंकि, क्षायोपशमिकसम्यक्त्वका प्रचुरतासे होना संभव है । यहां परिहारसुद्धि-
संयतोमं उपशमसम्यक्त्व नहीं होता है, क्योंकि, तीस वर्षके विना परिहारसुद्धिसंयमका
होना संभव नहीं है । और न उतने काल तक उपशमसम्यक्त्वका अवस्थान रहता
है, जिससे कि परिहारसुद्धिसंयमके साथ उपशमसम्यक्त्वकी उपलब्धि हो सके ?
दूसरी बात यह है कि परिहारसुद्धिसंयमको नहीं छोड़नेवाले जीवके उपशमश्रेणीपर
चढ़नेके लिए दर्शनेमोहनीयकर्मका उपशमन होना भी संभव नहीं है, जिससे कि उपशम-
श्रेणीमें उपशमसम्यक्त्व और परिहारसुद्धिसंयम, इन दोनोंका भी संयोग हो सके ।

१ परिहातानसुद्धिसंयतेषु अग्रमत्तसंय प्रमत्ता मग्गेयगुणा । म सि १, ८

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयउवसमा थोवा'
॥ २७२ ॥

कुदो ? चउवण्णपमाणत्तादो ।

खवा संखेज्जगुणा' ॥ २७३ ॥

को गुणगारो ? दोणिण रूवाणि ।

जधाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु अकसाइभंगो' ॥ २७४ ॥

जधा अकसाईणमपवावहुगं उत्तं तथा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदानं पि कादन्व-
मिदि उत्तं हेदि ।

संजदासंजदेसु अप्पानवहुअं णत्थि' ॥ २७५ ॥

एयपदत्तादो । एत्थ सम्मत्तप्पावहुअं उच्चवे । तं जहा-

संजदासंजदद्वुणे सन्वथोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ २७६ ॥

कुदो ? संखेज्जपमाणत्तादो ।

सूक्ष्मसाम्परायिकसुद्धिसंयतोमं सूक्ष्मसाम्परायिक उपशमक जीव अल्प
हैं ॥ २७२ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चौपन है ।

सूक्ष्मसाम्परायिकसुद्धिसंयतोमं उपशमकोसे क्षपक जीव संख्यातगुणित
हैं ॥ २७३ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार हैं ।

यथाख्यातविहारसुद्धिसंयतोमं अल्पवहुत्व अकपायी जीवोंके समान हैं ॥ २७४ ॥

जिस प्रकार अकपायी जीवोंका अल्पवहुत्व कहा है, उसी प्रकार यथाख्यात-
विहारसुद्धिसंयतोका भी अल्पवहुत्व करना चाहिए, यह अर्थ कहा गया है ।

संयतासंयत जीवोंमें अल्पवहुत्व नहीं है ॥ २७५ ॥

क्योंकि, संयतासंयत जीवोंके एक ही गुणस्थान होता है । यहांपर सम्यक्त्व-
सम्बन्धी अल्पवहुत्व कहते हैं । वह इस इस प्रकार है-

संयतासंयत गुणस्थानमे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २७६ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण संख्यात ही है ।

१ सूक्ष्मसाम्परायसुद्धिसंयतेषु उपशमकेय्य संपपना मग्गेयगुणा । म सि १, ८

२ यथाख्यातविहारसुद्धिसंयतेषु उपशान्तार्यायेय्य क्षीणम्याया मग्गेयगुणा । अयोभिन्निवलिमस्तावत
एव । सयोभिन्निवलिम मग्गेयगुणा । म सि १, ८.

३ मयतामयनानां नास्तत्त्वमहुवम् । म सि १, ८

दंसणुवादेण चक्खुदंसणी-अक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिपहुडि
जाव खीणकसायवीदरागछुदुमत्था त्ति ओघं ॥ २८६ ॥

जथा ओघमिह एदेसिमप्पावहुगं परुविदं तथा एत्थ वि परुवेद्वं, विसेसाभावा ।
विसेसपरुवणहुमुत्तरसुत्तं भणदि-

णवरि चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २८७ ॥
को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ, सेडीए^१
असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । कुदो ? साभावियादो ।

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ॥ २८८ ॥
केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ २८९ ॥
दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एव दसणमगणा समत्ता ।

दर्शनमार्गणके अनुवादसे चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्यादृष्टिसे
लेकर क्षीणकपायवीतरागलभस्य गुणस्थान तक अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ २८६ ॥

जित प्रकार ओघमें इन गुणस्थानवर्ती जीवोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार
यहांपर भी कहना चाहिए, क्योंकि, दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है । अब चक्षुदर्शनी
जीवोंमें सम्भव विशेषताके प्ररूपण करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेषता यह है कि चक्षुदर्शनी जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि
असंख्यातगुणित हैं ॥ २८७ ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो असंख्यात
जगत्रेणिप्रमाण है । वे जगत्रेणिया भी जगत्रेणिके असंख्यातवें भागमात्र हैं । इसका
कारण क्या है ? ऐसा स्वभावसे है ।

अवधिदर्शनी जीवोंका अल्पबहुत्व अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ २८८ ॥
केवलदर्शनी जीवोंका अल्पबहुत्व केवलज्ञानियोंके समान है ॥ २८९ ॥

वे दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई ।

१ दर्शनानुवादेन चक्षुदर्शनिना मनोयोगिवात् । अचक्षुदर्शनिना काययोगिवात् । स सि १, ८

२ प्रतिपू 'सेडीओ' खगसेडी असंखेज्जदिभागो मेडीए' इति पाठ ।

३ अवधिदर्शनिनापपभिन्नानिवात् । स मि १, ८ ४ केवलदर्शनिना केवलज्ञानिवात् । स सि १, ८

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु सव्व-
त्थोवा सासणसम्मादिट्ठी ॥ २९० ॥

सुगममेदं ।

सम्माभिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २९१ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९२ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? साभावियादो ।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ २९३ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंतगुणि
सव्वजीवरासिपदमवग्गमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठिणो सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ २९४ ॥

लेख्यमार्गणके अनुवादसे कृष्णलेख्या, नीललेख्या और कापोतलेख्यावाले जीवोंमें
सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ २९० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेख्यावालोमे सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि
जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २९१ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेख्यावालोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि
जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २९२ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, यह
स्वाभाविक है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेख्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव
अनन्तगुणित हैं ॥ २९३ ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोसे अनन्तगुणित और सिद्धोसे भी अनन्तगुणित
राशि गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेख्यावालोमे असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिक-
सम्यग्दृष्टि सबसे कम है ॥ २९४ ॥

१ लेख्यानुवादेन कृष्णनीलकापोतलेख्यानां अमयतवत् । म सि १, ८

कुदो ? मणुमरिह-णीलेस्सियसंखेज्जइयमम्मादिट्ठिपरिगहादो ।

उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९५ ॥

तो गुणगरो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जिभागो । कुदो ? नेरइएसु किण्हलेस्सिएसु पलिदोवमस्स असंखेज्जिभागमेत्तउवसमसम्मादिट्ठीणमुवलंभा ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९६ ॥

को गुणगरो ? आवलियाए असंखेज्जिभागो । सेसं सुगमं ।

णवरि विसेसो, काउलेस्सिएसु असंजदसम्मादिट्ठिणाणे सव्व-
त्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ २९७ ॥

कुदो ? अंतोपुट्ठत्तमंचयादो ।

सइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९८ ॥

कुदो ? पडमपुट्ठिहिं मंचिदउइयसम्मादिट्ठिगहादो । को गुणगरो ? आन-
लियाए अमंखेज्जिभागो ।

क्योकि, यहाँ पर कृष्ण और नीलेरेश्यावालों संख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका प्रारण किया गया है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिक-
सम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव अमंख्यातगुणित हैं ॥ २९५ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, कृष्ण-
लेख्यावाले नारक्तियोंमें पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका
सद्धान पाया जाता है ।

कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशम-
सम्यग्दृष्टियोंमें नेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २९६ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । शेष सूत्रार्थ
सुगम है ।

फैल विंशतिपा यह है कि कापोतलेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें
उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २९७ ॥

क्योंकि, उनका संन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

कापोतलेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिक-
यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २९८ ॥

क्योंकि, यहाँ पर प्रथम पृथिवीमें संचित क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका ग्रहण
का गया है । गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९९ ॥

को गुणगरो ? आवलियाए अमंखेज्जिभागो ।

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु सव्वत्थोवा अपमत्तसंजदा' ॥ ३०० ॥
कुदो ? संखेज्जपरिमाणचादो ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा' ॥ ३०१ ॥

को गुणगरो ? दो रूवाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा' ॥ ३०२ ॥

को गुणगरो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपडम-
वगमूलाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३०३ ॥

को गुणगरो ? आवलियाए असंखेज्जिभागो । कुदो ? सोहम्मीसाण-सणक्कुमार-
माहिंदराभिपरिगहादो ।

कापोतलेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदक-
सम्यग्दृष्टि जीव अमंख्यातगुणित हैं ॥ २९९ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

तेजोलेश्या और पत्रलेश्यावालोंमें अप्रमत्तसंयत जीव सबसे कम हैं ॥ ३०० ॥

क्योंकि, उनका परिमाण संख्यात है ।

तेजोलेश्या और पत्रलेश्यावालोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित
हैं ॥ ३०१ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

तेजोलेश्या और पत्रलेश्यावालोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यात-
गुणित हैं ॥ ३०२ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

तेजोलेश्या और पत्रलेश्यावालोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव
असंख्यातगुणित हैं ॥ ३०३ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, यहाँ पर
सौधर्म ईशान और सत्कुमार माहेन्द्र कल्पसम्बन्धी देवराशिको ग्रहण किया गया है ।

१ तेजःपत्रलेश्यानां संयतः, स्तोका व्यसृज्य । स. सि. १, ८

२ प्रसृज्यः मल्लेयगुणाः । स. सि. १, ८

३ पृथमितरेण पचेन्द्रियवत् । स. सि. १, ८.

सम्मामिच्छादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ३०४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समय ।

असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ३०५ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । सेसं सुवोज्जं ।

मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ३०६ ॥

को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ, सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? द्वाणगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पदंगुलाणि ।

असंजदसम्मादिद्वि-संजदासंजद-पमत-अपमतसंजदद्वणे सम्मत-प्पावहुअमेधं ॥ ३०७ ॥

जधा ओघमिह अप्पावहुअमेदेसि उत्तं सम्मतं पडि, तथा एत्थ सम्मतत्थावहुगं वत्तवमिदि वुत्तं होइ ।

तेजोलेश्या और पक्खलेश्यावालोंमे सासादनसम्यग्दृष्टियोसि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३०४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

तेजोलेश्या और पक्खलेश्यावालोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३०५ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । शेष स्वार्थ सुगम है ।

तेजोलेश्या और पक्खलेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोसि मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३०६ ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो जगश्रेणीके असंख्यातैव भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? घनागुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरागुलप्रमाण है ।

तेजोलेश्या और पक्खलेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान हैं ॥ ३०७ ॥

जिस प्रकार ओघमें इन गुणस्थानोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार यद्वापर सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहना चाहिए, यह अर्थ कहा गया है ।

सुक्खलैस्सिएसु तिसु अद्दासु उवसमा पवेसणेण^१ तुल्ला थोवां ॥ ३०८ ॥

सुगममेदं ।

उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३०९ ॥

कुदो ? चउवणपमाणात्तादो ।

खवा संखेज्जगुणा^२ ॥ ३१० ॥

अहुत्तरसदपरिमाणत्तादो ।

खीणकसायवीदरागछुदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३११ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली पवेसणेण तत्तिया चेव ॥ ३१२ ॥

एदं पि सुगमं ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा^३ ॥ ३१३ ॥

शुक्खलेश्यावालोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ३०८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

शुक्खलेश्यावालोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्य जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ३०९ ॥

क्योकि, उनका प्रमाण चौपन है ।

शुक्खलेश्यावालोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्योसि क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३१० ॥

क्योकि, उनका परिमाण एक सो आठ है ।

शुक्खलेश्यावालोंमें क्षीणकषायवीतरागछद्मस्य जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३११ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

शुक्खलेश्यावालोंमें सयोगिकेवली प्रवेशकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ३१२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

शुक्खलेश्यावालोंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ ३१३ ॥

^१ शुक्खलेश्याना सर्वत स्तोका उपशमका । स मि १, ८

^२ क्षपका संखेयगुणा । स सि १, ८ ^३ सयोगिकेवलीन संखेयगुणा । स मि १, ८

को गुणगारो ? ओत्रमिन्द्रो ।

अपमत्तमंजदा अस्ववा अणुवसमा संखेज्जगुणां ॥ ३१४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जममया ।

पमत्तमंजदा संखेज्जगुणां ॥ ३१५ ॥

को गुणगारो ? दोणिग रुपाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणां ॥ ३१६ ॥

को गुणगारो ? पल्लिदोपमस्स अयंखेज्जदिभागो, अयंखेज्जाणि पल्लिदोवमपढम-
रगमूलाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणां ॥ ३१७ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए अयंखेज्जदिभागो ।

सम्माभिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३१८ ॥

गणकार क्या है ? ओत्रमें नतलाया गया गुणकार ही यहाँपर गुणकार है ।

शुक्कलेश्यावालोमें ययोगिकेनली जिनोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत
जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३१४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

शुक्कलेश्यावालोमें अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३१५ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

शुक्कलेश्यावालोमें प्रमत्तसंयतोसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३१६ ॥

गुणकार क्या है ? पन्दोपमत्ता असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो पल्लोपमके
प्रमत्तगुणित प्रथम रोगमूलप्रमाण है ।

शुक्कलेश्यावालोमें संयतासंयतोसे सामादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित
हैं ॥ ३१७ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शुक्कलेश्यावालोमें सामादनसम्यग्दृष्टियोसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित
हैं ॥ ३१८ ॥

१ पन्दोपमत्ता: सच्येयगुणा: । म. वि. १, ८.

२ प्रमत्तमत्ता सल्लेयगुणा: । स. वि. १, ८

३ सामादनसत्ता: (अ) मल्लेयगुणा: । म. वि. १, ८.

४ सामादनसत्तमग्दृष्टय: (अ) सल्लेयगुणा । म. वि. १, ८.

५ सम्मभिपत्तादृष्टय: सल्लेयगुणा । स. वि. १, ८.

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणां ॥ ३१९ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणां ॥ ३२० ॥

आणच्चुराभिस्स पहाणत्तपरियप्पणादो ।

असंजदसम्मादिट्ठिणे सवत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ३२१ ॥

कुदो ? अतोसुहुत्तमंचयादो ।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३२२ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३२३ ॥

खओवसमियसम्मत्तादो ।

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

शुक्कलेश्यावालोमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित
हैं ॥ ३१९ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शुक्कलेश्यावालोमें मिथ्यादृष्टियोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित
हैं ॥ ३२० ॥

क्योंकि, यहाँपर आरण-अच्युतकल्पसम्बन्धी देवराशिकी प्रधानता विवक्षित है ।

शुक्कलेश्यावालोमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सत्रमे
क्रम हैं ॥ ३२१ ॥

क्योंकि, उनका संवय काल अन्तर्मुहूर्त है ।

शुक्कलेश्यावालोमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोसे धारिक-
सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३२२ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शुक्कलेश्यावालोमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें धारिकसम्यग्दृष्टियोसे वेदक-
सम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ३२३ ॥

क्योंकि, वेदकसम्यग्दृष्टियोके श्रायोपशमिक सम्यक्त्व होता है (जिसकी प्राप्ति
सुलभ है) ।

१ मिथ्यादृष्टयोऽसल्लेयगुणा । स. वि. १, ८.

२ असंयतसम्यग्दृष्टयोऽयंखेयगुणा (१) । स. वि. १, ८.

संजदासंजद-पमत-अप्पमतसंजदद्वारेण

॥ ३२४ ॥

जथा ऐदसिमोघम्हि सम्मतत्तप्पावहुगं वुत्तं, तहा वत्तव्वं ।

एवं तिसु अद्वासु ॥ ३२५ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ ३२६ ॥

खवा संवेज्जगुणा ॥ ३२७ ॥

एदाणि तिणिणं वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एव लेस्सामगणा^१ समत्ता ।

भविण्यणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छाहट्ठी जाव अजोगिकेव्वलि
त्ति ओघं^२ ॥ ३२८ ॥

एत्थ ओघअप्पावहुअं अणूणाहिणं वत्तव्वं ।

शुक्कलेदयावालोमं संयतासंयत, प्रमतसंयत और अप्रमतसंयत गुणस्थानोंमें
सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान हैं ॥ ३२४ ॥

जिस प्रकार इन गुणस्थानोंका ओघमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है,
उसी प्रकार यहापर भी कहना चाहिए ।

इसी प्रकार शुक्कलेदयावालोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्व-
सम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ ३२५ ॥

उक्त गुणस्थानोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ ३२६ ॥

उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३२७ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार लेब्ध्यामार्गणा समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेव्वली गुण-
स्थान तक जीवोंका अल्पबहुत्त ओघके समान है ॥ ३२८ ॥

यहापर ओघसम्बन्धी अल्पबहुत्त हीनता और अधिकतासे रहित अर्थात्
तत्प्रमाण ही कहना चाहिए ।

^१ व-आप्रलो 'लेस्सामगणा' इति पाठ ।

^२ भवाणुवादने भव्यानां माप्पावर् । म. सि १, ८

अभवसिद्धिएसु अप्पावहुअं णत्थि^१ ॥ ३२९ ॥

कुदो ? एगपदत्तादो ।

एव भवियमगणा समत्ता ।

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु ओधिणाणिभंगो ॥ ३३० ॥

जथा ओधिणाणीणमप्पावहुगं परूखिदं, तथा एत्थ परूखेदव्वं । णवरि सजोगि-
अजोगिपदाणि वि एत्थ अत्थि, सम्मतत्तसामण्णे अहियारादो ।

खइयसम्मादिट्ठीसु तिसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा^२
॥ ३३१ ॥

तप्पाओगसंखेज्जपमाणत्तादो ।

उवसंतकसायवीदरागछुमत्था तत्तिया चेव^३ ॥ ३३२ ॥
सुगममेदं ।

अभव्यसिद्धोंमें अल्पबहुत्व नहीं है ॥ ३२९ ॥

क्योंकि, उनके एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है ।

इस प्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई ।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि जीवोंमें अल्पबहुत्व अवधिज्ञानियोंके
समान है ॥ ३३० ॥

जिस प्रकार ज्ञानमार्गणमें अवधिज्ञानियोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार
यहापर भी कहना चाहिए । केवल विशेषता यह है कि सयोगिकेव्वली और अयोगि-
केव्वली, ये दो गुणस्थानपद यहापर होते हैं, क्योंकि, यहापर सम्यक्त्वसामान्यका
अधिकार है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव
प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ३३१ ॥

क्योंकि, उनका तत्त्वायोग्य संख्यात प्रमाण है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें उपशान्तकपायवीतरागछद्मस्य जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही
है ॥ ३३२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

^१ अव्यव्याना नास्त्यत्वबहुत्वम् । म. सि १, ८.

^२ सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु सर्वतः स्तोत्राश्रितार उपशमना । म. सि १, ८

^३ इतीषां प्रवृत्तानां सामान्यवत् । म. सि १, ८.

स्वभा संखेज्जगुणा ॥ ३३३ ॥

स्त्रीणकसायवीतरागछुदुमत्था तत्तिया चैव ॥ ३३४ ॥

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चैव ॥ ३३५ ॥

पद्दणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ ३३६ ॥

गुणगारे ओघमिद्धो, सड्यसम्मचनिरिहिसजोगीणमभावा ।

अपमत्तसंजदा अक्खवा अनुवसमा संखेज्जगुणा ॥ ३३७ ॥

को गुणगारो ? तप्पाओगसंखेज्जगुणाणि ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ३३८ ॥

को गुणगारे ? दो रूणाणि ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें उपशान्तरूपायवीतरागछन्दस्योसे क्षपक जीव संख्यात-
गुणित हैं ॥ ३३३ ॥

श्रीणरूपायवीतरागछन्दस्य पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ ३३४ ॥

सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, ये दोनों ही प्रवेशकी अपेक्षा और
पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३३५ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

सयोगिकेवली जिन संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ ३३६ ॥

यागपर गुणकार ओघ कथित है, क्योंकि, क्षायिकसम्यक्त्वसे रहित सयोगि-
केवली नहीं पाये जाते हैं ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यात-
गुणित हैं ॥ ३३७ ॥

गुणकार क्या है ? अप्रमत्तसंयतोंके योग्य सख्यातरूप गुणकार है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित
हैं ॥ ३३८ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

संजदासंजदा संखेज्जगुणा ॥ ३३९ ॥

मणुसगदि मोत्तूण अणत्थ खड्यसम्मादिहिसंजदासंजदाणमभावा ।

असंजदसम्मादिही असंखेज्जगुणा ॥ ३४० ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपडम-
वगमूलाणि ।

असंजदसम्मादिहि-संजदासंजद-पमत्त-अपमत्तसंजदद्वारेण खड्य-
सम्मत्तस्स भेदो णत्थि ॥ ३४१ ॥

एदस्स अहिप्पाओ-जेण खड्यसम्मत्तस्स एदेसु गुणद्वारेणसु भेदो णत्थि, तेण
णत्थि सम्मत्तप्पावहुगं, एयपयत्तादो । एसो अत्थो एदेण परूविदो होदि ।

वेदगसम्मादिहीसु सव्वत्थोवा अपमत्तसंजदा ॥ ३४२ ॥

कुदो ? तप्पाओगसंखेज्जपमाणत्तादो ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३३९ ॥
क्योंकि, मनुष्यगतिको छोड़कर अन्य गतियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत
जोंवोंका अभाव है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें संयतासंयतोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित
हैं ॥ ३४० ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और
अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यक्त्वका भेद नहीं है ॥ ३४१ ॥

इस सूत्रका अभिप्राय यह है कि इन असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चारों गुणस्थानोंमें
क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है, इसलिए उनमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्प-
बहुत्व नहीं है, क्योंकि, उन सबमें क्षायिकसम्यक्त्वरूप एक पद ही विवक्षित है । यह
अर्थ इस सूत्रके द्वारा प्ररूपित किया गया है ।

वेदगसम्यग्दृष्टियोंमें अप्रमत्तसंयत जीव सबसे कम हैं ॥ ३४२ ॥

क्योंकि, उनका तत्वायोग्य संख्यातरूप प्रमाण है ।

१ तत. संयतासंयतः सत्येयगुणा । स. नि. १, ८.

२ असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसत्येयगुणा । स. नि. १, ८.

३ क्षायोपशमिन्मम्यग्दृष्टिषु सर्वतः सौका अप्रमत्ताः । स. नि. १, ८.

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणां ॥ ३४३ ॥

को गुणगरो ? दो रूपाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणां ॥ ३४४ ॥

को गुणगरो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढम-
वगमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणां ॥ ३४५ ॥

को गुणगरो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अपमत्तसंजदद्वाने वेदग-
समत्तस्स भेदो णत्थि ॥ ३४६ ॥

एत्थ भेदसदो अप्पावहुअपज्जाओ धेत्तवो, सदाणमणेयत्थत्तादो । वेदगसम्मतस्स
भेदो अप्पावहुअं णत्थि ति उत्तं होदि ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३४३ ॥
गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें प्रमत्तसंयतोसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३४४ ॥
गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें संयतासंयतोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित
हैं ॥ ३४५ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्त-
संयत गुणस्थानोंमें वेदकसम्यक्त्वका भेद नहीं है ॥ ३४६ ॥

यहापर भेद शब्द अल्पबहुत्वका पर्यायवाचक ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि,
शब्दोंके अनेक अर्थ होते हैं । इस प्रकार इस सूत्र द्वारा यह अर्थ कहा गया है कि इन
गुणस्थानोंमें वेदकसम्यक्त्वका भेद अर्थात् अल्पबहुत्व नहीं है ।

१ नमणा मरुरेणुणा । म. सि. १, ८०

२ सततमयता (सं) मग्गेयणुणा स. सि. १, ८

३ अप्रमत्तसम्यग्दृष्टयो-नरो-णुणा । म. सि. १, ८०

उवसमसम्मादिट्ठीसु तिसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला
थोवां ॥ ३४७ ॥

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३४८ ॥

अपमत्तसंजदा अणुवसमा संखेज्जगुणां ॥ ३४९ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणां ॥ ३५० ॥

को गुणगरो ? दो रूपाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणां ॥ ३५१ ॥

को गुणगरो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढम-
वगमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणां ॥ ३५२ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव
प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ३४७ ॥

उपशान्तकषायवीतरागछद्वस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३४८ ॥

उपशान्तकषायवीतरागछद्वस्थोंसे अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित
हैं ॥ ३४९ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित
हैं ॥ ३५० ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें प्रमत्तसंयतोसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित
हैं ॥ ३५१ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें संयतासंयतोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित
हैं ॥ ३५२ ॥

१ औपशमिरूपम्यग्दृष्टीर्ना सर्वत स्तोकाश्रयत्वा उपशमका । स. सि. १, ८

२ अप्रमत्ताः सल्लेयगुणा । स. सि. १, ८

३ संयतामयता (अ-) सल्लेयगुणा । स. सि. १, ८

५ असंयतसम्यग्दृष्टयो-उमल्लेयगुणा । म. सि. १, ८

तो गुणगोमे ? आसलियाए असंखेज्जदिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमतसंजदद्वुणो उव-
समसम्मत्तस्स भेदो णत्थि ॥ ३५३ ॥

सुगममेदं ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मा(मिच्छादिट्ठि)-मिच्छादिट्ठिणं णत्थि अप्पा-
वहुअं ॥ ३५४ ॥

कुदो ? एगपदत्तादो ।

एव समत्तमगणा समत्ता ।

सणियाणुवादेण सणीसु मिच्छादिट्ठिपहुडि जाव खीणकसाय-
वीदरागछदुमत्था ति ओघं ॥ ३५५ ॥

जया ओघन्नि अप्पानहुगं पुरुविदं तथा एत्थ पुरुवेद्वं, सणित्तं पडि उह-
यन् भेदाभावा । विममपदुप्पायणहुमुत्तरसुत्तं भणदि-

गुणकार स्या ते ? आबन्धीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

उपग्रामसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्त-
संयत गुणस्थानमें उपग्रामसम्यक्त्वका अल्पबहुत्व नहीं है ॥ ३५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सागादनसम्यग्दृष्टि, सम्यगभिध्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंका अल्पबहुत्व
नहीं है ॥ ३५४ ॥

क्योंकि, तीनों प्रकारके जीवोंके एक गुणस्थानरूप ही पद है ।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

संज्ञिमार्गणाके अनुवादमें संज्ञियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकपाय-
नीनरागाद्यन्य गुणस्थान तक जीवोंका अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३५५ ॥

जिस प्रकार ओघमें इन गुणस्थानोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहां
पर भी प्रत्येक करना चाहिए, क्योंकि, सत्त्विकी अपेक्षा दोनों स्थानोंपर कोई भेद
नहीं है । पर संज्ञियोंमें संभव विशेषके प्रतिपादनके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

१ दोषाणां गारुडानुत्तरं, निषेधे एहेत्थगुणस्थानप्रवृत्तात् । स. मि. १, ८.

२ महाउत्तरादेन सप्रित्तं चक्षुर्दृशेतिवत् । स. मि. १, ८.

णवरि मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३५६ ॥

ओघमिदि बुत्ते अणंतगुणत्तं पत्तं, तण्णिरायरण्हं असंखेज्जगुणा इदि उत्तं । गुण-
गारो पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ' सेडीओ, सेडीए असंखेज्जदि-
भागमेत्ताओ ।

असणीसु णत्थि अप्पावहुअं ॥ ३५७ ॥
कुदो ? एगपदत्तादो ।

एव सणिमगणा समत्ता ।

आहाराणुवादेण आहारएसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसेणेण
तुल्ला थोवा' ॥ ३५८ ॥

चउवण्णपमाणत्तादो ।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३५९ ॥
सुगममेदं ।

विशेषता यह है कि संज्ञियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असं-
ख्यातगुणित हैं ॥ ३५६ ॥

उपर्युक्त सूत्रमें 'ओघ' इस पदके कह देने पर असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे सजी
मिथ्यादृष्टि जीवोंके अनन्तगुणितता प्राप्त होती थी, उसके निराकरणके लिए इस सूत्रमें
'असंख्यातगुणित है' ऐसा पद कहा है । यहां पर गुणकार जगप्रतरका असंख्यातवां
भाग है, जो जगश्रेणीके असंख्यातवां भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है ।

असंज्ञी जीवोंमें अल्पबहुत्व नहीं है ॥ ३५७ ॥

क्योंकि, उनमें एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है ।

इस प्रकार संज्ञिमार्गणा समाप्त हुई ।

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारकोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें
उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ३५८ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चौपन है ।

आहारकोंमें उपशान्तकपायवीतरागछदुमस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३५९ ॥
यह सूत्र सुगम है ।

१ प्रतिपु 'जगतो गुणत्त' इति पाठः ।

२ प्रतिपु 'असंखेज्जदि' इति पाठः ।

३ असाक्षिनां गारुडानुत्तरम् । स. मि. १, ८

४ आहारावुत्तरादेन आहाराणां काययोगिवत् । स. मि. १, ८.

खवा संखेज्जगुणा ॥ ३६० ॥

अहुत्तसदपमाणत्तादो ।

खीणकसायवीदरागछुदमत्था तत्तिथा चेव ॥ ३६१ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली पवेसणेण तत्तिथा चेव ॥ ३६२ ॥

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ ३६३ ॥

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अनुवसमा संखेज्जगुणा ॥ ३६४ ॥

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ३६५ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ ३६६ ॥

को गुणमारो ? पल्लिदेवमस्त असंखेज्जदिभागो ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३६७ ॥

सम्भामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३६८ ॥

आहारकोमं उपशान्तकपायवीतरागछन्नत्थोसे क्षपक जीव संख्यातगुणित है ॥ ३६० ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण एक सौ आठ है ।

आहारकोमं क्षीणकपायवीतरागछन्न जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३६१ ॥

यह सुत्र सुगम है ।

आहारकोमं सजोगिकेवली जिन प्रवेशकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३६२ ॥

सजोगिकेवली जिन संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित है ॥ ३६३ ॥

सजोगिकेवली जिनोसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३६४ ॥

अप्रमत्तसंयतोसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३६५ ॥

ये सुत्र सुगम है ।

आहारकोमं प्रमत्तसंयतोसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३६६ ॥

गुणकार क्या है ? पल्लोपमका असंख्यातवा भाग गुणकार है ।

आहारकोमं संयतासंयतोसे सामादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३६७ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टियोमे सम्यग्भिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३६८ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३६९ ॥

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ ३७० ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठिसंजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्टाणे सम्मत्त-प्पावहुअमोघं ॥ ३७१ ॥

एवं तिसु अद्वासु ॥ ३७२ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ ३७३ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ ३७४ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

अणाहारएसु सव्वत्थोवा सजोगिकेवली ॥ ३७५ ॥

कुदो ? सट्ठिपमाणत्तादो ।

अजोगिकेवली संखेज्जगुणा ॥ ३७६ ॥

कुदो ? दुरुज्जणछस्सदपमाणत्तादो ।

सम्यग्भिथ्यादृष्टियोसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३६९ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टियोसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ ३७० ॥

ये सुत्र सुगम है ।

आहारकोमं असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानोमे सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३७१ ॥

इसी प्रकार अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोमे सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३७२ ॥

उक्त गुणस्थानोमे उपशाराक जीव सबसे कम हैं ॥ ३७३ ॥

उपशामकोसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३७४ ॥

ये सुत्र सुगम है ।

अनाहारकोमं सजोगिकेवली जिन सबसे कम हैं ॥ ३७५ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण साठ है ।

अनाहारकोमं अजोगिकेवली जिन संख्यातगुणित हैं ॥ ३७६ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण दोग कम छह सौ अर्थात् पांच सौ अठ्यानेव (५९८) है ।

१ अनाहारका समतः स्तोत्रा संयोगचालिनः । स ति १, ८.

२ अजोगिकेवलीन संखेज्जगुणा । स. ति १, ८.

सासगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा' ॥ ३७७ ॥

को गुणगारो ? पल्लोपमस्य असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पल्लोपमपदम-
गममूलाणि ।

असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा' ॥ ३७८ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए अमंखेज्जदिभागो ।

मिच्छादिद्वी अणंतगुणा' ॥ ३७९ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिदिह अणंतगुणो, सिद्धेदि वि अणंतगुणो, अणंतणि
सब्बजीवमिपदमगममूलाणि ।

असंजदसम्मादिद्विद्विणे सव्वथोवा उवसमसम्मादिद्वी ॥ ३८० ॥

द्वदो ? मंखेज्जजीवपमाणत्तादो ।

अनाहारकोमं अमंयतसम्यग्दृष्टिं जीवो तासादनसम्यग्दृष्टिं जीव अमंख्यातगुणित
है ॥ ३७७ ॥

गुणकार क्या है ? पल्लोपमका असंख्यातवा भाग गुणकार है, जो पल्लोपमके
अमंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

अनाहारकोमं मामादनसम्यग्दृष्टियोसे अमंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित
है ॥ ३७८ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

अनाहारकोमं अमंयतसम्यग्दृष्टियोसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित है ॥ ३७९ ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धांसे अनन्तगुणित, सिद्धांसे भी अनन्तगुणित
राशि गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

अनाहारकोमं अमंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थाने उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सव्वसे कम
है ॥ ३८० ॥

क्योंकि, अनाहारक उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका प्रमाण संख्यात है ।

१ तासादनसम्यग्दृष्टोऽसंखेयगुणा । त वि १, ८.

२ अतयतसम्यग्दृष्टयोऽमखेयगुणा । त वि. १, ८

३ विम्यादृष्टयोजनत्तगुणाः । म वि. १, ८

खइयसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ॥ ३८१ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया ।

वेदगसम्मादिद्वी असंखेज्जगुणा ॥ ३८२ ॥

को गुणगारो ? पल्लोपमस्य असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पल्लोपमस्य
पदमवगममूलाणि ।

(एत आहारमगणा समत्ता ।)

एवमप्यवहुगुणगो चि समत्तमणिओगदारं ।

अनाहारकोमं असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थाने उपशमसम्यग्दृष्टियोसे क्षायिक-
सम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित है ॥ ३८१ ॥

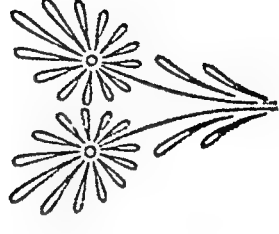
गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

अनाहारकोमं अमंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थाने क्षायिकसम्यग्दृष्टियोसे वेदकसम्य-
ग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित है ॥ ३८२ ॥

गुणकार क्या है ? पल्लोपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्लोपमके
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

(इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई ।)

इस प्रकार अल्यवहुगुणगो नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।





परिचय



ਪਾਤਿਸ਼ਾਹ

पुत्र संख्या	पुत्र	पुत्र संख्या	पुत्र	पुत्र
३६५	पमरमंजदा मंसेज्जगुणा ।	३४७	३७४ खवा संखेज्जगुणा ।	३४८
३६६	मंजदमंजदा असंसेज्जगुणा ।	"	३७५ अणाहारएसु सव्वत्योवा	"
३६७	मानणमम्मादिट्ठी असंसेज्जगुणा ।	"	मज्जीगिकेवली ।	"
३६८	मम्माभिच्छादिट्ठी संसेज्जगुणा ।	"	३७६ अजोगिकेवली संसेज्जगुणा ।	"
३६९	अमंजदमम्मादिट्ठी असंसेज्जगुणा ।	"	३७७ सासणसम्मादिट्ठी असंसेज्जगुणा ।	३४९
३७०	मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ।	३४८	३७८ असंजदसम्मादिट्ठी असंसेज्जगुणा ।	"
३७१	अमंजदमम्मादिट्ठी-मंजदा-मंजद-पमर-अप्पमत्तसंजद-गुणे सम्मत्तप्पमत्तमोघं ।	"	३७९ मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ।	"
३७२	एवं तिसु अद्वासु ।	"	३८० असंजदसम्मादिट्ठीगणे सव्वत्योवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	"
३७३	सव्वत्योवा उवसमा ।	"	३८१ सइयसम्मादिट्ठी संसेज्जगुणा ।	३५०
		"	३८२ वेदगसम्मादिट्ठी असंसेज्जगुणा ।	"

२ अवतरण-गाथा-सूची

(भावप्ररूपणा)

+ २३ * ८८८

क्रम संख्या	गाथा	पुत्र	अन्यत्र कहा	क्रम संख्या	गाथा	पुत्र	अन्यत्र कहा
१	अग्निद्वारभायो	१८६		९	गाणण्णाणं च तथा	१९१	
११	इगिनीस अट्ट तार णव	१९२		१०	गाणिमि धम्मवयरो	१८६	
१२	पफोत्तरपट्टजो	१९३		११	१४ देसे सथोवसमिण	१९३	
१३	एवं काणं तिणिण विव-१९२			१२	१३ मिच्छते दस भगा	"	
५	ओदरओ उवसमिओ	१८७		१३	८ लद्धोओ सम्मत्तं	१९१	
४	रावप य राणिमोहे	१८६ परतंडा वेदनातंडा		१४	३ सम्मत्तुणत्तीय वि	१८६ परतंडा	
६	गदि-लिग-कसाया वि	१८९		१५	वेदनातंडा, गो जी. ६७		
				१६	७ सम्मत्तं चरित्तं दो	१९०	

३ न्यायोक्तियां

क्रम संख्या	न्याय	पुत्र	क्रम संख्या	न्याय	पुत्र
१	एगजोगणिदिट्ठाणमेगदेसो णाणुवट्ठदि ति णायदो ।	२५९	३	कारणणुसारिणा कज्जेण होदव्वमिदि णायदो ।	२५०
२	जहा उहेसो तथा णिहेसो ।	४, ९, २५, २७, ७१, १९४, २७०	४	समुदाणसु पयट्ठाणं तवेग-देसे वि पउत्तिदंसणादो ।	१९९

४ ग्रन्थोल्लेख

१ चूलियासुत्त

१ तं कथं णव्वेदे ? 'पंचिदिपसु उवसामेतो गम्भोवक्रंतिपसु उवसामेदि, गो सम्मुच्छिमेसु' ति चूलियासुत्तादो । ११८

२ दव्वाणिओगद्धार

१ एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुत्तेण कालेणेत्ति दव्वाणिओगद्धार-सुत्तादो णव्वदि । २५२

२ आणद-पाणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिपट्ठि जाव असंजदसम्मादिट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया, पलिदोवमसस असंखेज्जविमाण-एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुत्तेण । अणुदिसादि जाव अवरारदविमाण-वासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया, पलिदोवमसस असंखेज्जवि-भाणो । एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुत्तेणेत्ति एदेण दव्वसुत्तेण । २८७

३ पाहुडसुत्त (कपायप्राभुत्त)

१. चट्ठण्हं कसायाणसु कससंतरस्स छम्मासमेत्तस्सेव सिद्धिदो । ण पाहुड-सुत्तेण वियहिचारो, तस्स भिण्णोवदेसत्तादो । ११२

२ तं पि कुदो णव्वेदे ? 'णियमा मणुगसदीए' इदि सुत्तादो । २५६

४ सूत्रपुस्तक

१. केसु वि सुत्तपोत्थणसु पुरिसेवदस्संतरं छम्मासा । १०६

५ परिभाषिक शब्दसूची

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
अकृपायत्व	२२३	आगमद्रव्यान्तर	२२३
अवधुर्गोचरस्थिति	१३७, १३८	आगमद्रव्यभाव	१८४
अचिरतद्रव्यतिरिक्तद्रव्यान्तर	३	आगमद्रव्याल्पबहुत्व	२४२
अतिप्रसंग	२०६, २०९	आगमभावभाव	१८४
अद्यस्तनराशि	२४९, २६२	आगमभावान्तर	३
अनर्पित	४५	आगमभावाल्पबहुत्व	२४२
अनात्मभूतभाव	१८५	आवेष्टा	१, २४३
अनात्मस्वरूप	२२५	आवली	७
अनादिपरिणामिक	२२५	आसादन	२४
अनुदयोपशम	२०७	आहारकृच्छ्रि	२९८
अन्तर्दीपक	२०१, २००	आहारककाल	१७४
अन्तर	३		
अन्तरानुगम	१	उच्छेद	३
अन्तर्मुहूर्त	९	उत्कीर्णकाल	१०
अन्यथानुपपत्ति	२२३	उत्तरप्रतिपत्ति	३२
अपगतवेदत्व	४४, ७४	उत्तानशय्या	४७
अपक्षिप्त	५४	उत्थेलनकाल	३४
अपूर्वाब्दा	१९४	उत्थेलना	३३
अभिधान	१९४	उत्थेलनाकांडिक	१०, २५
अर्थ	१९४	उपक्रमणकाल	२५०, २५१, २५५
अर्थयुक्त्वपरिवर्तन	११	उपदेश	३२
अर्पित	६३	उपरिभराशि	२४९, २६२
अल्पान्तर	११७	उपशम	२००, २०२, २०३, २११, २२०
अवधारकाल	२४९	उपशमश्रेणी	११, १५१
अंशादिभाव	२०८	उपशमसम्यक्त्वाब्दा	१५, २५४
असंज्ञिस्थिति	१७२	उपशान्तकपायाब्दा	१९
असंयम	१८८	उपशामक	१२५, २६०
असद्भावस्थापनान्तर	२	उपशामकाब्दा	१५९, १६०
असद्भावस्थापनाभाव	१८४		
असिद्धता	१८८	ओघ	१, २४३

(३६)

परिभाषिक शब्दसूची

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
औद्यिकभाव	१८५, १९४	उ	४२, ४४, ४७, ५६
औपशमिकभाव	१८५, २०४	त	२४२
		तद्रव्यतिरिक्तबहुत्व	१८४
कपाटपर्याय	९०	तीर्थकर	१९४, ३२३
करण	११	तीव्र-मन्दभाव	१८७
कषाय	२२३	त्रसपर्यायस्थिति	८४, ८५
कुरु	४१	त्रसस्थिति	६५, ८१
कृतकरणीय	१४, १५, १६, ९९, १०५, १३९, २३३	द	
कोद्योपशमनाब्दा	१९०	दक्षिणप्रतिपत्ति	३२
क्षपक	१०५, १२४, २६०	दिवसपृथक्त्व	९८, १०३
क्षपकश्रेणी	१२, १०६	दिव्यध्वनि	१९४
क्षपकाब्दा	१५९, १६०	दीर्घान्तर	११७
क्षय	१९८, २०२, २११, २२०	दृष्टमार्ग	२२, ३८
क्षयिकभाव	१८५, २०५, २०६	देवलोक	२८४
क्षयिकसम्यक्त्वाब्दा	२५४	देशातिस्पर्धक	१९९
क्षयिकसंज्ञा	२००	देशान्त	२७७
क्षयोपशमिक	२००, २११, २२०	देशसंयम	२०२
क्षयोपशमिकभाव	१८५, १९८	द्रव्यविक्रमसूची	२६३
क्षुद्रभवग्रहण	४५, ५६	द्रव्यान्तर	३
		द्रव्याल्पबहुत्व	२४१
		द्रव्यलिङ्गी	५८, ६३, १४९
गुणकार	२४७, २५७, २६२, २७४	न	
गुणकाल	८९	नपुंसकवेदोपशमनाब्दा	१९०
गुणस्थानपरिपाटी	१३	नामभाव	१८३
गुणाब्दा	१५१	नामान्तर	१
गुणान्तरसंस्कान्ति	८९, १५४, १७१	नामाल्पबहुत्व	२४१
		निदर्शन	६, २५, ३२
घनांगुल	३१७, ३३५	निर्गन्तर	५६, २५७
चक्षुर्दृशेनस्थिति	१३७, १३९	निर्जराभाव	१८७
		निर्वाण	३५
जीवविपाकी	२२२	नोआगमअचित्तद्रव्यभाव	१८४
ज्ञानकार्य	२२४	नोआगमद्रव्यभाव	१८४
		नोआगमद्रव्यान्तर	२
		नोआगमभ्रव्यद्रव्यभाव	१८४

पञ्चिष्ट

(३७)

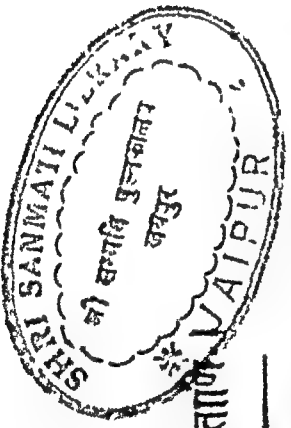
शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
नो आगमशान्तरा	१८३	मासपृथक्त्वान्तर	१७२
नो आगमशान्तरा	३	मिथ्यात्व	६
नो आगमशान्तरा	१८४	मिश्रान्तर	३
नो आगमशान्तरा	२४२	मुहूर्तपृथक्त्व	३२, ४५
नो आगमशान्तरा	२४२	य	
नो आगमशान्तरा	१८४	योग	२२६
नो आगमशान्तरा	२३७	योगान्तरसंक्रान्ति	८९
परमाने	७	ल	
परम्यानाप्यवहुत्व	२८९	लेख्यान्तरसंक्रान्ति	१५३
परिपाटी	२०	लेख्याद्धा	१५१
पल्लोपम	७, ९	लोभोपशामनाद्धा	१९०
पारिणामिकता	१८५, २०७, १९६, २३०	व	
पुनरुपपत्तिर्न	५७	वर्गमूल	२६७
पुनरुपपत्तिर्न	२२३	वर्गपृथक्त्व	१८, ५३, ५५, २६३
पुनरुपपत्तिर्न	२२६	वर्गपृथक्त्वान्तर	१८
पुनरुपपत्तिर्न	१९०	वर्गपृथक्त्वानु	३६
पुनरुपपत्तिर्न	४२, ५२, ७२	विकल्प	१८९
पुनरुपपत्तिर्न	२९३	विग्रह	१७३
पुनरुपपत्तिर्न	३१७, ३३५	विग्रहगति	३००
पुनरुपपत्तिर्न	२७०, २९०	विरह	३
पुनरुपपत्तिर्न	१९८	व्यभिचार	१८९, २०८
पुनरुपपत्तिर्न	३२३	श	
पुनरुपपत्तिर्न	३२३	श्रेणी	१६६
पुनरुपपत्तिर्न	३२३	प	
पुनरुपपत्तिर्न	१८८	पणोक्तयोग्योपशामनाद्धा	१९०
पुनरुपपत्तिर्न	१८६	पणमास	२१
पुनरुपपत्तिर्न	२२२	स	
पुनरुपपत्तिर्न	६३	सच्चित्तान्तर	३
पुनरुपपत्तिर्न	२७७	सदुपसम	२०७
पुनरुपपत्तिर्न	१९०	सद्भावस्थापनाभाव	१८३
पुनरुपपत्तिर्न	१९०	सद्भावस्थापनान्तर	२
पुनरुपपत्तिर्न	३२, ९३	सम्पूर्णम्	४१

पारिभाषिक शब्दसूची

(३८)

शब्द	पृष्ठ	शब्द	पृष्ठ
सम्यक्त्व	६	संचय	२४४, २७३
सम्यग्मिथ्यात्व	७	संचयकाल	२७७
सर्वघातित्व	१९८	संचयकालप्रतिभाग	२८४
सर्वघातिस्पर्धक	१९९, २३७	संचयकालमाहृत्य	२५३
सर्वघाती	१९९, २०२	संचयराशि	३०७
सर्वपरस्थानाल्पबहुत्व	२८९	संयम	६
सागरोपम	६	संयमासंयम	६
सागरोपमपृथक्त्व	१०	स्तितुकसंक्रमण	२१०
सागरोपमशतपृथक्त्व	७२	स्थान	१८९
सातासातबंधपरावृत्ति	१३०, १४२	स्थापनान्तर	२
साधारणभाव	१९६	स्थापनाभाव	१८३
सान्तर	२५७	स्थापनाल्पबहुत्व	२४१
सान्निपातिभाव	१९३	स्थावरस्थिति	८५
सासादनगुण	७	स्त्रीविदस्थिति	९६, ९८
सासादनपञ्चादागतमिथ्यावृष्टि	१०	स्त्रीविदोपशामनाद्धा	१९०
सासंयमसम्यक्त्व	१६	स्वस्थानाल्पबहुत्व	२८९
सिद्धयत्काल	१०४	हेतुहेतुमद्भाव	३२२
सद्भावद्धा	१९		
सोचिकस्वरूप	२६७		





अंतरपरुवणासुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	अंतराणुगमेण द्रुमिहो निदेसो, ओषेण आदेसेण य ।	१	११	उक्कस्सेण अद्धपोगलपरियद्धं देवणं ।	१४
२	ओषेण मिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच पत्तय गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	४	१२	चटुण्हं सवग-अजोगिकेवलीणमंतरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच जहणेण एगसमयं ।	१७
३	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो-मुहुत्तं ।	५	१३	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	१८
४	उक्कस्सेण वे छात्रद्विसागरोव-माणि देवणाणि ।	६	१४	एगजीवं पडुच जहणेण अंतो-मुहुत्तं ।	"
५	सासनसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छा-दिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच जहणेण एगसमयं ।	७	१५	उक्कस्सेण अद्धपोगलपरियद्धं देवणं ।	१९
६	उक्कस्सेण पल्लिदेवमस्स असं-सेज्जदिभागो ।	८	१६	चटुण्हं सवग-अजोगिकेवलीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच जहणेण एगसमयं ।	२०
७	एगजीवं पडुच्च जहणेण पल्लि-दोवमस्स असंसेज्जदिभागो, अंतो-मुहुत्तं ।	९	१७	उक्कस्सेण छम्मासं ।	२१
८	उक्कस्सेण अद्धपोगलपरियद्धं देवणं ।	११	१८	एगजीवं पडुच गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
९	असंजदवम्मादिद्विपट्टुडि जाव अपमत्तमंजदा चि अंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	१३	१९	सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
१०	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो-मुहुत्तं ।	"	२०	एगजीवं पडुच गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
			२१	आदेसेण गदियणुवादेण गिरय-गदीए गेरहएसु मिच्छादिद्वि-असं-जदसम्मादिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	२२

(२) अतपरुवणासुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२२	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो-मुहुत्तं ।	२२	३२	उक्कस्सेण पल्लिदेवमस्स असंसे-ज्जदिभागो ।	२९
२३	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देवणाणि ।	२३	३३	एगजीवं पडुच्च जहणेण पल्लि-देवमस्स असंसेज्जदिभागो, अंतो-मुहुत्तं ।	"
२४	सासनसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छा-दिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	२४	३४	उक्कस्सेण सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तास्स वार्वास तेत्तीसं सागरोवमाणि देवणाणि ।	"
२५	उक्कस्सेण पल्लिदेवमस्स असंसे-ज्जदिभागो ।	"	३५	तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	३१
२६	एगजीवं पडुच्च जहणेण पल्लि-देवमस्स असंसेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ।	२५	३६	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो-मुहुत्तं ।	"
२७	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देवणाणि ।	२६	३७	उक्कस्सेण तिण्णि पल्लिदेवमाणि देवणाणि ।	३२
२८	पडमादि जाव सत्तमीए पुढधीए गेरहएसु मिच्छादिद्वि-असंजद-सम्मादिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	२७	३८	सासनसम्मादिद्विपट्टुडि जाव संजदासंजदा चि ओवं ।	३३
२९	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो-मुहुत्तं ।	"	३९	पंचिदियतिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्ख-पञ्जत्त-पंचिदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छादिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	३७
३०	उक्कस्सेण सागरोवमं तिण्णि सत्त दस सत्तास्स वार्वास तेत्तीसं सागरोवमाणि देवणाणि ।	"	४०	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो-मुहुत्तं ।	३८
३१	सासनसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छा-दिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच जहणेण एगसमयं ।	२९	४१	उक्कस्सेण तिण्णि पल्लिदेवमाणि देवणाणि ।	"
			४२	सासनसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छा-दिद्वीणमंतरं केवचिंरं कालादो	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
६७	संजदासंजदप्पहुडि जाव अप्पमत्त- संजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	५१	८२	एदं गदि पडुच्च अंतरं ।	५७
६८	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो- मुहुत्तं ।	"	८३	गुणं पडुच्च उभयदो वि गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
६९	उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं ।	५२	८४	देवगदीए देहेसु मिच्छादिट्ठि- असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
७०	चटुण्हसुवसाभगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	५३	८५	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो- मुहुत्तं ।	"
७१	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"	८६	उक्कस्सेण एकक्कीसं सागरो- वमाणि देखणाणि ।	५८
७२	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो- मुहुत्तं ।	५४	८७	सासणसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छा- दिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	५९
७३	उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं ।	"	८८	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखे- ज्जदिभागो ।	"
७४	चटुण्हं खवा अजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	५५	८९	एगजीवं पडुच्च जहणेण पलिदो- वमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतो- मुहुत्तं ।	"
७५	उक्कस्सेण छम्मासं, वासपुधत्तं ।	"	९०	उक्कस्सेण एकक्कीसं सागरो- वमाणि देखणाणि ।	६०
७६	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	५६	९१	भवणवासिय-वाणवंतर-जोदिसिय- सोधम्मीसाणप्पहुडि जाव सदार- सहस्सारकप्पवासियदेहेसु मिच्छा- दिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	६१
७७	सजोगिकेवली ओघ ।	"	९२	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो- मुहुत्तं ।	"
७८	मणुमअपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	५७			
७९	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखे- ज्जदिभागो ।	"			
८०	एगजीवं पडुच्च जहणेण सुदा- भवगगहणं ।	"			
८१	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज- योगलपरियट्ठं ।	५७			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
४३	होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	३८	५५	एदं गदि पडुच्च अंतरं ।	४६
४४	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखे- ज्जदिभागो ।	३९	५६	गुणं पडुच्च उभयदो वि गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
४५	एगजीवं पडुच्च जहणेण पलिदो- वमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतो- मुहुत्तं ।	"	५७	मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त- मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"
४६	उक्कस्सेण तिणिण पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणभहियाणि ।	४०	५८	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो- मुहुत्तं ।	४७
४७	असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	४१	५९	उक्कस्सेण तिणिण पलिदोवमाणि देखणाणि ।	"
४८	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो- मुहुत्तं ।	४२	६०	सासणसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छा- दिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	४८
४९	संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	४३	६१	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखे- ज्जदिभागो ।	"
५०	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो- मुहुत्तं ।	"	६२	एगजीवं पडुच्च जहणेण पलि- दोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ।	"
५१	उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं ।	४४	६३	उक्कस्सेण तिणिण पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणभहियाणि ।	४९
५२	पांचदियतिरिस्सअपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	४५	६४	असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	५०
५३	एगजीवं पडुच्च जहणेण सुदा- भवगगहणं ।	"	६५	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतो- मुहुत्तं ।	"
५४	उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज- योगलपरियट्ठं ।	"	६६	उक्कस्सेण तिणिण पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणभहियाणि ।	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
९३ उक्कस्सेण मागगेमं पलिदेवमं वे सत्तदम चोदम मोलस अट्ठारस सागरोमणि सादियेयाणि । ६१		६५	१०३ उक्कस्सेण वे सागरोवमसह-स्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणवम-हियाणि ।		६५
९४ मागणमम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छा-दिट्ठिणं मत्थणोपं । ६२		"	१०४ वादरेइंदियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं । ६६		"
९५ आणद जाय गवरोज्जविमाण-वासियेदेवसु मिच्छादिट्ठि-असं-जदमम्मादिट्ठिणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीनं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।		"	१०५ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदा-भवग्गहणं ।		"
९६ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मृदुत्तं ।		"	१०६ उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ।		"
९७ उक्कस्सेण वीमं वामीसं तेनीसं चउरीसं पणवीसं छब्बीसं सत्ता-वीसं अट्ठमीसं उगत्तीसं तीसं एक्कत्तीसं सागरोमणि देस-णाणि । ६३		६७	१०७ एवं वादरेइंदियपज्जत्त-अपज-त्ताणं ।		"
९८ मानणमम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छा-दिट्ठिणं सत्थाणमोवं । ६४		"	१०८ सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदियपज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीनं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।		"
९९ अणुदिसादि जाय सव्वहसिद्धि-पिमाणवासियेदेवसु असंजद-सम्मादिट्ठिणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीनं पडुच्च (गत्थि) अंतरं, गिरंतरं ।		"	१०९ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदा-भवग्गहणं ।		"
१०० एगजीनं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।		"	११० उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखे-ज्जदिभागो, असंखेज्जामंखे-ज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पि-णीओ ।		"
१०१ इंदियाणुनादेण एइंदियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणा-जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं । ६५		६८	१११ वीइंदिय-तीइंदिय-चदुरिंदिय-तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणा-जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।		"
१०२ इंदियाणुनादेण एइंदियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणा-जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं । ६५		"	११२ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुदा-भवग्गहणं ।		"
१०३ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण सुदा-		"	११३ उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज-		"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
११४ पंचिदिय-पंचिदियपज्जत्तएसु मि-च्छादिट्ठि ओवं । ६९		६८	१२५ सागरोवमसदपुधत्तं । ७५		७५
११५ सासणसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छा-दिट्ठिणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जह-ण्णेण एगसमयं ।		"	१२६ सजोगिकेवली ओवं । ७७		७७
११६ उक्कस्सेण पलिदेवमस्स असंखे-ज्जदिभागो ।		"	१२७ पंचिदियअपज्जत्ताणं वेइंदिय-अपज्जत्ताणं भंगो ।		"
११७ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदेवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोसुहुत्तं । ७०		"	१२८ एदमिंदियं पडुच्च अंतरं ।		"
११८ उक्कस्सेण सागरोवमसह-स्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणवमहि-याणि सागरोवमसदपुधत्तं ।		"	१२९ गुणं पडुच्च उभयदो वि गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।		"
११९ असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तमंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं । ७१		७०	१३० कायाणुनादेण पुढविक्काइय-आउक्काइय-तेउक्काइय-वाउक्काइय-वादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्ताण-मंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।		७८
१२० एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-सुहुत्तं ।		"	१३१ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण सुदा-भवग्गहणं ।		"
१२१ उक्कस्सेण सागरोवमसह-स्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणवमहि-याणि, सागरोवमसदपुधत्तं । ७२		७१	१३२ उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्ज-पोग्गलयरियइं ।		"
१२२ चदुण्हसुवसामाणं गाणाजीवं पडि ओवं । ७५		७२	१३३ वणप्फदिकाइय-गिगोदजीन-वादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्ताण-मंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं । ७९		७९
१२३ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-सुहुत्तं ।		"	१३४ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण सुदा-भवग्गहणं ।		"
१२४ उक्कस्सेण सागरोवमसह-स्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणवमहि-		"	१३५ उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ।		"
		"	१३६ वादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीर-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केव-चिरं कालादो होदि, गाणा-		"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१३७	जीवं पडुच्च गतिथ अंतरं, गिरंतरं ।	७९	१४७	ओधं ।	८५
१३७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण सुदा- भवग्गहणं ।	८०	१४८	एगस्सेण वे सागरोवमसह- स्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहि- याणि, वे सागरोवमसहस्साणि देखणाणि ।	८६
१३८	उक्कस्सेण अद्दुहज्जयोगल- परिपटं ।	"	१४९	चटुण्हं खवा अजोगिकेवली ओधं ।	"
१३९	तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी ओधं ।	"	१५०	सजोगिकेवली ओधं ।	"
१४०	सासनसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छा- दिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च ओधं ।	"	१५१	तसकाइयअपज्जत्तणं पंचिंदिय- अपज्जत्तभंगो ।	"
१४१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलि- दोयमस्स असरेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ।	८१	१५२	एदं कायं पडुच्च अंतरं । गुणं पडुच्च उभयदो वि गतिथ अंतरं, गिरंतरं ।	८७
१४२	उक्कस्सेण वे सागरोवमसह- स्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहि- याणि, वे सागरोवमसहस्साणि देखणाणि ।	"	१५३	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि- पंचवचिजोगीसु कायजोगि- ओरालियकायजोगीसु मिच्छा- दिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-संजदा- संजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजद- सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणेगजीवं पडुच्च गतिथ अंतरं, गिरंतरं ।	८२
१४४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	८३	१५४	सासनसम्मादिट्ठि सम्माभिच्छा- दिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	"
१४५	उक्कस्सेण वे सागरोवमसह- स्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहि- याणि, वे सागरोवमसहस्साणि देखणाणि ।	"	१५५	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंसे- ज्जदिभागो ।	"
१४६	चटुण्हमुवममगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च	"	१५६	एगजीवं पडुच्च गतिथ अंतरं	"

(८)	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	१५७	गिरंतरं ।	८८	१७०	णीणं मणजोगिभंगो ।	९१
	१५७	चटुण्हमुवममगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च ओधं ।	"	१७०	वेउवियमिस्सकायजोगीसु मि- च्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जह- ण्णेण एगसमयं ।	"
	१५८	एगजीवं पडुच्च गतिथ अंतरं, गिरंतरं ।	८९	१७१	उक्कस्सेण वासस मुहुत्तं ।	९२
	१५९	चटुण्हं खवाणमोधं ।	"	१७२	एगजीवं पडुच्च गतिथ अंतरं, गिरंतरं ।	"
	१६०	ओरालियमिस्सकायजोगीसु मि- च्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणेगजीवं पडुच्च गतिथ अंतरं, गिरंतरं ।	"	१७३	सासनसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मा- दिट्ठीणं ओरालियमिस्सभंगो ।	"
	१६१	सासनसम्मादिट्ठीणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च ओधं ।	"	१७४	आहारकायजोगीसु आहार- मिस्सकायजोगीसु पमत्तसंज- दाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जह- ण्णेण एगसमयं ।	९३
	१६२	एगजीवं पडुच्च गतिथ अंतरं, गिरंतरं ।	९०	१७५	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"
	१६३	असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समयं ।	"	१७६	एगजीवं पडुच्च गतिथ अंतरं, गिरंतरं ।	"
	१६४	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"	१७७	कम्मइयकायजोगीसु मिच्छा- दिट्ठि-सासनसम्मादिट्ठि-असं- जदसम्मादिट्ठि-सजोगिकेवलीणं ओरालियमिस्सभंगो ।	"
	१६५	एगजीवं पडुच्च गतिथ अंतरं, गिरंतरं ।	"	१७८	वेदाणुवादेण इत्थिवेदेसु मिच्छा- दिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गतिथ अंतरं गिरंतरं ।	९४
	१६६	सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	९१	१७९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं ।	"
	१६७	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"	१८०	उक्कस्सेण पणवण्ण पलिदोव- माणि देखणाणि ।	"
	१६८	एगजीवं पडुच्च गतिथ अंतरं, गिरंतरं ।	"			
	१६९	वेउवियत्रायजोगीसु चटुट्ठा-	"			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२०५	पटुच्च जहणेण एगसमयं ।	१०५	२१७	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	११०
२०५	उक्कस्सेण वासं सादिरेयं ।	१०६	२१८	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था-	
२०६	एगजीवं पटुच्च गत्थि अंतरं,			णमंतरं केवचिरं कालादो होदि,	
	णिरंतरं ।			णाणाजीवं पटुच्च जहणेण	
२०७	णवुंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठीण-			एगसमयं ।	
	मंतरं केवचिरं कालादो होदि,			२१९ उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	
	णाणाजीवं पटुच्च गत्थि			२२० एगजीवं पटुच्च गत्थि अंतरं ।	१११
	अंतरं, णिरंतरं ।	१०६		२२१ अणियट्ठिखवा सुद्धमखवा	
२०८	एगजीवं पटुच्च जहणेण			सीणकसायवीदरागछदुमत्था	
	अंतोमुहुत्तं ।	१०७		अजोगिकेवली ओघं ।	
२०९	उक्कस्सेण तेचीसं सागरोव-			२२२ सजोगिकेवली ओघं ।	
	माणि देसणाणि ।			२२३ कसायाणुवादेण कोधकसाइ-	
२१०	सासणसम्मादिट्ठिप्पट्ठीजव			माणकसाइ-मायकसाइ-लोह-	
	अणियट्ठिउवसामिदो ति			कसाईसु मिच्छादिट्ठिप्पट्ठि	
	मूलोघं ।			जाव सुद्धमसांपराइयउवसमा	
२११	दोण्हं सवाणमंतरं केवचिरं			खवा ति मणजोगिमंगो ।	
	कालादो होदि, णाणाजीवं			२२४ अकसाईसु उवसंतकसायवीद-	
	पटुच्च जहणेण एगसमयं ।	१०९		रागछदुमत्थाणमंतरं केवचिरं	
२१२	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।			कालादो होदि, णाणाजीवं	
२१३	एगजीवं पटुच्च गत्थि अंतरं,			पटुच्च जहणेण एगसमयं ।	११३
	णिरंतरं ।			२२५ उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	
२१४	अवगदेवेदएसु अणियट्ठिउव-			२२६ एगजीवं पटुच्च गत्थि अंतरं,	
	सम-सुद्धमउवसमाणमंतरं केव-			णिरंतरं ।	
	चिरं कालादो होदि, णाणा-			२२७ सीणकसायवीदरागछदुमत्था	
	जीवं पटुच्च जहणेण एग-			अजोगिकेवली ओघं ।	
	समयं ।			२२८ सजोगिकेवली ओघं ।	
२१५	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।			२२९ णाणाणुवादेण मदिअणाणि-	
२१६	एगजीवं पटुच्च जहणेण			सुदअणाणि—विमंगणाणीसु	
	अंतोमुहुत्तं ।	११०		मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१८१	सायणमस्मादिद्वि-सम्मामिच्छा- दिद्वीणमंतरं केचिं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण पन्निदोवमस्स असंसेज्जदि- भागो, अंतोमुहुत्तं ।	९५	१९३	पुरिसेवेदएसु ओघं ।	१००
१८२	एगजीवं पडुच्च जहणेण पन्निदोवमस्स असंसेज्जदि- भागो, अंतोमुहुत्तं ।	"	१९४	सायणमस्मादिद्वि-सम्मामिच्छा- दिद्वीणमंतरं केचिं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	१०१
१८३	उक्कस्सेण पल्लोवमसद- पुघत्तं ।	९६	१९५	उक्कस्सेण पल्लोवमस- असंसेज्जदिभागो ।	"
१८४	अयंजदसम्मादिद्विप्पहुडि जाव अप्पमत्तंसज्जाणमंतरं केचिं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	९७	१९६	एगजीवं पडुच्च जहणेण पल्लोवमस- असंसेज्जदि- भागो, अंतोमुहुत्तं ।	"
१८५	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ।	"	१९७	उक्कस्सेण सागरोवमसद- पुघत्तं ।	"
१८६	उक्कस्सेण पल्लोवमसद- पुघत्तं ।	"	१९८	असंजदसम्मादिद्विप्पहुडि जाव अप्पमत्तंसज्जाणमंतरं केचिं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	१०२
१८७	दोण्हयुसामगाणमंतरं केचिं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणुक्कस्समोघं ।	९९	१९९	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ।	१०३
१८८	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ।	"	२००	उक्कस्सेण सागरोवमसद- पुघत्तं ।	१०३
१८९	उक्कस्सेण पल्लोवमसद- पुघत्तं ।	"	२०१	दोण्हयुसामगाणमंतरं केच- चिं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च ओघं ।	१०४
१९०	दोण्हं समाणमंतरं केचिं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहणेण एगसमयं ।	१००	२०२	एगजीवं पडुच्च जहणेण अंतोमुहुत्तं ।	"
१९१	उक्कस्सेण वासपुघत्तं ।	"	२०३	उक्कस्सेण सागरोवमसद- पुघत्तं ।	"
१९२	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	"	२०४	दोण्हं समाणमंतरं केचिं कालादो होदि, गाणाजीवं	"

परिशिष्ट (११)

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२३०	कालादो होदि, गाणेगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं । ११४		२४१	चटुण्हसुवसामगणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं । १२२	
२३१	सासनसम्मादिट्ठीणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च ओघं ।		२४२	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	
२३२	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।		२४३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	
२३३	आभिणिचोहिय-सुद-ओहि- गाणीसु असंजदसम्मादिट्ठीण- मंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।		२४४	उक्कस्सेण छावट्ठिसागरो- वमाणि सादिरैयाणि ।	
२३४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।		२४५	चटुण्हं खवगणमोघं । गव्वरि विसेसो ओधिणाणीसु खवाणं वासपुधत्तं । १२३	
२३५	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देखणं	११५	२४६	मणपज्जवणाणीसु पमत्त- अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	
२३६	संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं । ११६		२४७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	
२३७	उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोव- माणि सादिरैयाणि ।		२४८	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	
२३८	पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं । ११९		२४९	चटुण्हसुवसामगणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं । १२५	
२३९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।		२५०	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	
२४०	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरैयाणि ।		२५१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । १२६	
२४१	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरैयाणि ।		२५२	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देखणं ।	
२४२	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरैयाणि ।		२५३	चटुण्हं खवगणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं । १२७	
२४३	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरैयाणि ।		२५४	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	

(१२) अतरपरुवणासुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२५५	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं गिरंतरं । १२७		२७०	कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं । १३१	
२५६	केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघं ।		२७१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	
२५७	अजोगिकेवली ओघं ।		२७२	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	
२५८	संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्त- संजदप्पट्ठि जाव उवसंत- कसायवीदरागछटुमत्था ति मणपज्जवणाणिभंगो । १२८		२७३	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सु- हुमसांपराइयउवसमाणमंतरं के- वचिरं कालादो होदि, गाणा- जीवं पडुच्च जहण्णेण एग- समयं । १३२	
२५९	चटुण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं ।		२७४	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	
२६०	सजोगिकेवली ओघं ।		२७५	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	
२६१	सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धि- संजदेसु पमत्तापमत्तसंजदाण- मंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।		२७६	खवाणमोघं ।	
२६२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । १२९		२७७	जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु अकसाइभंगो ।	
२६३	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।		२७८	संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणेगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं । १३३	
२६४	दोण्हसुवसामगणमंतरं केव- चिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।		२७९	असंजदेसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं ।	
२६५	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।		२८०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	
२६६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । १३०		२८१	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोव- माणि देखणाणि । १३४	
२६७	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देखणं ।		२८२	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोव- माणि देखणाणि ।	
२६८	दोण्ह खवाणमोघं ।		२८३	सासनसम्मादिट्ठि-सम्माभिच्छा- दिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमोघं ।	
२६९	परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्तमंजदाणमंतरं केवचिरं				

पृष्ठ संख्या	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२८२ दंगणपुत्रादेण चसुदुंमणीसु	१३५	२९४ ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो । १४३	पृष्ठ	
मिच्छादिद्वीणमोघं ।		२९५ केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ।		
२८३ सागणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छा-	१३६	२९६ लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-		
दिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो		णीलेस्सिय-काउलेस्सिएसु		
होदि, गाणाजीवं पडुच्च	१३६	मिच्छादिद्वि-असंजदसम्मा-		
ओघं ।		दिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो		
२८४ एगजीवं पडुच्च जहणणेण		होदि, गाणाजीवं पडुच्च		
पलिदोवमस्स अमंखेज्जदि-		णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।		
भागो, अंतोमुहुत्तं ।		२९७ एगजीवं पडुच्च जहणणेण		
२८५ उक्कस्सेण वे सागरोवममह-		अंतोमुहुत्तं ।		
स्साणि देखणाणि ।		२९८ उक्कस्सेण तेचीसं सत्तारस		
२८६ अंगंनदसम्मादिद्विपडुडि जाव		सत्त सागरोवमाणि देखणाणि । १४४		
अप्पमत्तजदणमंतरं केवचिरं		२९९ सागणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छा-		
कालादो होदि, गाणाजीवं पडुच्च	१३८	दिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो		
णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।		होदि, गाणाजीवं पडुच्च		
२८७ एगजीवं पडुच्च जहणणेण		ओघं ।	१४५	
अंतोमुहुत्तं ।		३०० एगजीवं पडुच्च जहणणेण		
२८८ उक्कस्सेण वे मागरोवममह-		पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-		
स्साणि देखणाणि ।		भागो, अंतोमुहुत्तं ।		
२८९ चट्ठणमुत्तममगणमंतरं केव-		३०१ उक्कस्सेण तेचीसं सत्तारस सत्त		
चिरं कालादो होदि, गाणाजीवं	१४१	सागरोवमाणि देखणाणि ।		
पडुच्च ओघं ।		३०२ तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु		
२९० एगजीवं पडुच्च जहणणेण		मिच्छादिद्वि-असंजदसम्मा-		
अंतोमुहुत्तं ।		दिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो		
२९१ उक्कस्सेण वे सागरोवममह-		होदि, गाणाजीवं पडुच्च णत्थि		
स्साणि देखणाणि ।		अंतरं, णिरंतरं ।	१४६	
२९२ चट्ठणं रत्तणमोघं ।	१४२	३०३ एगजीवं पडुच्च जहणणेण		
२९३ अचसुदुंमणीसु मिच्छादिद्वि-		अंतोमुहुत्तं ।		
प्पडुडि जाव रीणरुसायवीद-		३०४ उक्कस्सेण वे अट्टारस सागरो-		
रागछदुमत्था ओघं ।	१४३	वमाणि सादिरयाणि ।	१४७	

पृष्ठ संख्या	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३०५ सागणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छा-	१४७	३१५ संजदासंजद-यमत्तसंजदाण-		
दिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो		मंतरं केवचिरं कालादो होदि,		
होदि, गाणाजीवं पडुच्च		गाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं,		
ओघं ।		णिरंतरं ।	१५१	
३०६ एगजीवं पडुच्च जहणणेण		३१६ अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं		
पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-	१४८	कालादो होदि, गाणाजीवं		
भागो, अंतोमुहुत्तं ।		पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।		
३०७ उक्कस्सेण वे अट्टारस सागरो-		३१७ एगजीवं पडुच्च जहणणेण		
वमाणि सादिरयाणि ।		अंतोमुहुत्तं ।		
३०८ संजदासंजद-यमत्त-अप्पमत्त-		३१८ उक्कस्समंतोमुहुत्तं ।		
संजदाणमंतरं केवचिरं कालादो		३१९ तिण्हमुत्तममगणमंतरं केव-		
होदि, गाणेगजीवं पडुच्च		चिरं कालादो होदि, गाणा-		
णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।		जीवं पडुच्च जहणणेण एग-		
३०९ सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिद्वि-		समयं ।	१५२	
असंजदसम्मादिद्वीणमंतरं केव-		३२० उक्कस्सेण वासपुत्तं ।		
चिरं कालादो होदि, गाणा-		३२१ एगजीवं पडुच्च जहणणेण		
जीवं पडुच्च णत्थि अंतरं,		अंतोमुहुत्तं ।		
णिरंतरं ।	१४९	३२२ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।		
३१० एगजीवं पडुच्च जहणणेण		३२३ उवसंतकसायवीदरागछदुम-		
अंतोमुहुत्तं ।		त्थाणमंतरं केवचिरं कालादो		
३११ उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरो-		होदि, गाणाजीवं पडुच्च जह-		
वमाणि देखणाणि ।		णणेण एगसमयं ।	१५३	
३१२ सागणसम्मादिद्वि-सम्माभिच्छा-		३२४ उक्कस्सेण वासपुत्तं ।		
दिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो		३२५ एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं,		
होदि, गाणाजीवं पडुच्च ओघं ।		णिरंतरं ।		
३१३ एगजीवं पडुच्च जहणणेण		३२६ चट्ठणं खवा ओघं ।		
पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-		३२७ सजोगिकेवली ओघं ।	१५४	
भागो, अंतोमुहुत्तं ।		३२८ भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु		
३१४ उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरो-		मिच्छादिद्विपडुडि जाव		
वमाणि देखणाणि ।	१५०	अजोगिकेवल चि ओघं ।		

पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३२९	अभयसिद्धियानमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं । १५४	अंतोमुहुत्तं । १५७	१५७
३३०	एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं । १५४	वमाणि सादिरैयाणि । १५७	१५७
३३१	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठसि अंसजदसम्मादिट्ठिणमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं । १५५	३४३ चटुण्हं खवा अजोगिक्खली ओधं । १६१	१६१
३३२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । १५५	३४४ उक्कस्सेण नासपुधत्तं । १६०	१६०
३३३	उक्कस्सेण पुच्चकोडी देखणं । १५५	३४५ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । १५५	१५५
३३४	संसत्तकमायवीदरागछदुमत्था ओधिणाणिभंगो । १५५	३४६ उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरो-वमाणि सादिरैयाणि । १५५	१५५
३३५	चटुण्हं खवा अजोगिक्खली ओधं । १५५	३४७ उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरो-वमाणि सादिरैयाणि । १५५	१५५
३३६	संसत्तकमायवीदरागछदुमत्था ओधिणाणिभंगो । १५५	३४८ सजोगिक्खली ओधं । १६१	१६१
३३७	संसत्तकमायवीदरागछदुमत्था ओधिणाणिभंगो । १५५	३४९ वेदगसम्मादिट्ठसि अंसजदसम्मादिट्ठिणं सम्मादिट्ठिभंगो । १६२	१६२
३३८	संसत्तकमायवीदरागछदुमत्था ओधिणाणिभंगो । १५५	३५० संजदासंजदानमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं । १५५	१५५
३३९	उक्कस्सेण पुच्चकोडी देखणं । १५५	३५१ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । १५५	१५५
३४०	संसत्तकमायवीदरागछदुमत्था ओधिणाणिभंगो । १५५	३५२ उक्कस्सेण छावडिसागरोवमाणि देखणाणि । १५५	१५५
३४१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । १५५	३५३ पमत्त-अप्पमत्तसंजदानमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं । १५५	१५५
३४२	उक्कस्सेण पुच्चकोडी देखणं । १५५	३५४ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । १५५	१५५

पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३५५	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरो-वमाणि सादिरैयाणि । १५५	३७० एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । १६९	१६९
३५६	उवसमसम्मादिट्ठसि अंसजदसम्मादिट्ठिणमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं । १६५	३७१ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । १६९	१६९
३५७	उक्कस्सेण सत्त रादिदियाणि । १६५	३७२ उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था-णमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं । १६५	१६५
३५८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । १६५	३७३ उक्कस्सेण वासपुधत्तं । १६५	१६५
३५९	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । १६५	३७४ एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं । १६५	१६५
३६०	संजदासंजदानमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं । १६५	३७५ सासणसम्मादिट्ठि-सम्मा-मिच्छादिट्ठिणमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं । १७०	१७०
३६१	उक्कस्सेण चोदस रादिदियाणि । १६५	३७६ उक्कस्सेण पलिदेवमस्स असंय-उज्जदिभागो । १७१	१७१
३६२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । १६५	३७७ एगजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं । १७१	१७१
३६३	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । १६५	३७८ मिच्छादिट्ठिणमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं । १७१	१७१
३६४	पमत्त-अप्पमत्तसंजदानमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं । १६५	३७९ सणियाणुवादेण सणीसु मिच्छादिट्ठिणमोघं । १७१	१७१
३६५	उक्कस्सेण पणारस रादिदियाणि । १६५	३८० सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था चि पुरिसेवदभंगो । १७२	१७२
३६६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । १६५	३८१ चटुण्हं सवाणमोघं । १७२	१७२
३६७	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । १६५	३८२ असणीणमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणजीवं पडुच्च गत्थि अंतरं, गिरंतरं । १७२	१७२
३६८	तिण्हसुवसामागणमंतरं केवचिं कालादो होदि, गाणजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं । १६५		
३६९	उक्कस्सेण वासपुधत्तं । १६५		

(१७)

सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३८३	एगजीवं पटुच्च नलिय अंतरं, गिरंतरं ।	१७२	अंतोमुहुत्तं ।	१७५
३८४	आदागणुवादेण आहारएसु मिच्छादिद्वीणमोघं ।	१७३	३९० उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखे-ज्जदिभागो असंखेज्जाओ ओसपिणि-उस्सपिणीओ ।	"
३८५	सागणसम्मादिद्वि-मम्माभिच्छा-दिद्वीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणा-जीवं पटुच्च ओघमंगो ।	१७७	३९१ चटुण्हमुवसामगणमंतरं केव-चिरं कालादो होदि, गाणा-जीवं पटुच्च ओघमंगो ।	"
३८६	एगजीवं पटुच्च जहण्णेण पल्लिदानमम्म असंखेज्जदि-भागो, अंतोमुहुत्तं ।	"	३९२ एगजीवं पटुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"
३८७	उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखे-ज्जदिभागो, अयंखेज्जासंखे-ज्जाओ ओसपिणि-उस्स-पिणीओ ।	"	३९३ उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखे-ज्जदिभागो असंखेज्जासंखे-ज्जाओ ओसपिणि-उस्सपि-णीओ ।	"
३८८	असंजदमम्मादिद्विप्पहुडि जाव अपमत्तसंजदणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, गाणाजीवं पटुच्च नलिय अंतरं, गिरंतरं ।	१७४	३९४ चटुण्हं खवाणमोघं ।	१७८
३८९	एगजीवं पटुच्च जहण्णेण		३९५ सजोगिकेवली ओघं ।	"
			३९६ अणाहारा कम्मइयकायजोगि-मंगो ।	"
			३९७ गवरि विसेसा, अजोगि-केवली ओघं ।	१७९

भावपरुवणासुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	भाणुगमेण दुमिहो गिदेसो, ओघेण आदेसेण य ।	१८३	भावो, परिणामिओ भावो ।	१९६
२	ओघेण मिच्छादिद्वि त्ति को भावो, ओदइओ भावो ।	१९४	४ सम्माभिच्छादिद्वि त्ति को भावो, सओवसमिओ भावो ।	१९८
३	सासणसम्मादिद्वि त्ति को		५ असंजदसम्मादिद्वि त्ति को भावो, उवसमिओ वा खइओ	

(१८)

सूत्र संख्या	सूत्र	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	वा सओवसमिओ वा भावो ।	१९९	६ ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ।	२१०
	७ संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्त-संजदा त्ति को भावो, खओव-समिओ भावो ।	२०१	१९ तिरिक्खगदीए तिरिक्ख-पंचि-दियतिरिक्ख-पंचिदियपज्जत्त-पंचिदियतिरिक्खजोणिणीसु मि-च्छादिद्विप्पहुडि जाव संजदा-संजदाणमोघं ।	२१२
	८ चटुण्हमुवसमा त्ति को भावो, ओवसमिओ भावो ।	२०४	२० गवरि विसेसो, पंचिदिय-तिरिक्खजोणिणीसु असंजद-सम्मादिद्वि त्ति को भावो, ओवसमिओ वा खओवसमिओ वा भावो ।	२१२
	९ चटुण्हं खवा सजोगिकेवली अजोगिकेवलि त्ति को भावो, खइओ भावो ।	२०५	२१ ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ।	२१३
	१० आदेसेण गइयाणुवादेण गिरय-गईए गेइएसु मिच्छादिद्वि त्ति को भावो, ओदइओ भावो ।	२०६	२२ मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिद्विप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ।	"
	११ सासणसम्माइद्वि त्ति को भावो, परिणामिओ भावो ।	२०७	२३ देवगदीए देवेसु मिच्छादिद्वि-प्पहुडि जाव असंजदसम्मादिद्वि त्ति ओघं ।	२१४
	१२ सम्माभिच्छादिद्वि त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो ।	२०८	२४ भवणवासिय-वाणवत्तर-जोदि-सियेदेवा देवीओ, सोधम्मसाण-कप्पवासियेदेवीओ च मिच्छा-दिद्वी सासणसम्मादिद्वी सम्मा-भिच्छादिद्वी ओघं ।	"
	१३ असंजदसम्मादिद्वि त्ति को भावो, उवसमिओ वा खइओ वा सओवसमिओ वा भावो ।	"	२५ असंजदसम्मादिद्वि त्ति को भावो, उवसमिओ वा सओवसमिओ वा भावो ।	"
	१४ ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ।	२०९	२६ ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ।	२१५
	१५ एवं पढमाए पुढवीए गेरइयाणं ।	"	२७ सोधम्मसाणप्पहुडि जाव गव-	
	१६ विदियाए जाव सत्तमीए पुढवीए गेरइएसु मिच्छादिद्वि-सासण-सम्मादिद्वि-सम्माभिच्छादिद्वीण-मोघं ।	२१०		
	१७ असंजदसम्मादिद्वि त्ति को भावो, उवसमिओ वा खओवसमिओ			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२८	भगवन्निमाणवासियदेवेसु मिच्छादिद्विप्पह्निं जान अंसजदसम्मादिद्विप्पह्निं ति ओघं ।	२१५	३७	सहओ भवो ।	२२९
२९	अणुदिसादि जाव सब्बद्विसिद्धि-निमाणवासियदेवेसु अंसजदसम्मादिद्विप्पह्निं ति को भवो, योममभियो या सहओ वा सओममभियो या भवो ।	"	३८	वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिद्विप्पह्निं जाव अंसजदसम्मादिद्विप्पह्निं ति ओघं ।	"
२९	ओददएण भवेण पुणो अंसजदो ।	२१६	३९	नेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिद्विप्पह्निं सासणसम्मादिद्विप्पह्निं अंसजदसम्मादिद्विप्पह्निं ओघं ।	२२०
३०	इंदियाणुवादेण पंचिदियपज्जत्तएणु मिच्छादिद्विप्पह्निं जाव अजोगिकेवल्लि ति ओघं ।	"	४०	आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसजदा ति को भवो, सओममभियो भवो ।	"
३१	कायाणुवादेण तसकाइयत्तसकाइयपज्जत्तएणु मिच्छादिद्विप्पह्निं जाव अजोगिकेवल्लि ति ओघं ।	२१७	४१	कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिद्विप्पह्निं सासणसम्मादिद्विप्पह्निं अंसजदसम्मादिद्विप्पह्निं सजोगिकेवल्ली ओघं ।	२२१
३२	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचविजोगि-कायजोगि-ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिद्विप्पह्निं जाव सजोगिकेवल्लि ति ओघं ।	२१८	४२	अवगदेवेदएणु अणियद्विप्पह्निं जान अजोगिकेवल्ली ओघं ।	२२२
३३	ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिद्विप्पह्निं—सासणसम्मादिद्विप्पह्निं ओघं ।	"	४३	कसायाणुवादेण कोधकसाइमाणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाइसु मिच्छादिद्विप्पह्निं जाव सुहुमसापराइयउवसमा खवा ओघं ।	२२३
३४	अंसजदसम्मादिद्विप्पह्निं ति को भवो, सहओ या सओममभियो वा भवो ।	"	४४	अकसाईसु चदुडणी ओघं ।	"
३५	ओददएण भवेण पुणो अंसजदो ।	२१९	४५	गाणाणुवादेण मदअण्णाणिसुदअण्णाणि-विभंगणीसु मिच्छादिद्विप्पह्निं सासणसम्मादिद्विप्पह्निं ओघं ।	२२४

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
४६	आभिणिवोहिय-सुद-ओधिणाणीसु अंसजदसम्मादिद्विप्पह्निं जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं ।	२२५	४७	मणपज्जवणणीसु पमत्तसंसजदपह्निं जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं ।	"
४८	केवलणणीसु सजोगिकेवल्ली (अजोगिकेवल्ली) ओघं ।	"	४९	संसमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंसजदपह्निं जाव अजोगिकेवल्ली ओघं ।	२२७
५०	सामाइयेदेवद्विवाणसुद्विसंसजदेसु यमत्तसंसजदपह्निं जाव अणियद्विप्पह्निं ति ओघं ।	"	५१	परिहारसुद्विसंसजदेसु पमत्तअपमत्तसंसजदा ओघं ।	"
५२	सुहुमसांपराइयसुद्विसंसजदेसु सुहुमसांपराइया उवसमा खवा ओघं ।	"	५३	जहाक्खादविहारसुद्विसंसजदेसु चदुडणी ओघं ।	२२८
५४	संसजदासंसजदा ओघं ।	"	५५	अंसजदेसु मिच्छादिद्विप्पह्निं जाव अंसजदसम्मादिद्विप्पह्निं ति ओघं ।	"
५६	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणिअचक्खुदंसणीसु मिच्छादिद्विप्पह्निं जाव खीणकसायवीदरागउदुमत्था ति ओघं ।	"	५७	ओददएण भवेण पुणो अंसजदो ।	२३२
५८	संसजदासंसजद-पमत्त-अपमत्तसंसजदा ति को भवो, सओममभियो भवो ।	"	५९	सहयं सम्मत्तं ।	२३३

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
५७	ओहिंसणी ओहिणाणिभंगो ।	२२९	६०	तेउलेस्सिय-पम्मेलस्सिएसु मिच्छादिद्विप्पह्निं जाव अपमत्तसंसजदा ति ओघं ।	"
५८	केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ।	"	६१	सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिद्विप्पह्निं जाव सजोगिकेवल्लि ति ओघं ।	२३०
५९	लेस्साणुवादेण किण्डलेस्सिय-णीलेस्सिय-काउलेस्सिएसु चदुडणी ओघं ।	"	६२	भविषाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिद्विप्पह्निं जाव अजोगिकेवल्लि ति ओघं ।	"
६३	अभवसिद्धिय ति को भवो, परिणामिओ भवो ।	"	६४	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिद्विप्पह्निं जाव अंसजदसम्मादिद्विप्पह्निं जाव अजोगिकेवल्लि ति ओघं ।	२३१
६५	खइयसम्मादिद्विप्पह्निं अंसजदसम्मादिद्विप्पह्निं ति को भवो, सहओ भवो ।	"	६६	सहयं सम्मत्तं ।	"
६७	ओददएण भवेण पुणो अंसजदो ।	२३२	६८	संसजदासंसजद-पमत्त-अपमत्तसंसजदा ति को भवो, सओममभियो भवो ।	"
६९	सहयं सम्मत्तं ।	२३३			

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
७०	चटुण्हुमुनमा चि को भावो, २३३		८२	संजदासंजद-यमत्त-अप्यमत्त-	
७१	ओनमभियो भावो ।		८३	संजदा चि को भावो, खओव-	
७२	सहयं सम्मत्तं ।	२३६	समिओ भावो ।		
७३	चटुण्हुं रत्ता मजोगिकेवली २३६		८४	उवसमियं सम्मत्तं ।	
७४	अजोगिकेवल चि को भावो, २३६		८५	चटुण्हुमुनमा चि को भावो,	
७५	सहओ भावो ।		८६	उवसमिओ भावो ।	
७६	सहयं सम्मत्तं ।	२३४	८७	उवममियं सम्मत्तं ।	
७७	वेदयसम्मादिहोमु असंजदसम्मा-		८८	सासणसम्मादिहो ओधं ।	
७८	दिट्ठि चि को भावो, सओव-		८९	मम्माभिच्छादिहो ओधं ।	
७९	समिओ भावो ।		९०	मिच्छादिहो ओधं ।	
८०	सओत्तमियं सम्मत्तं ।		९१	सणियाणुवादेण सणीसु मिच्छा-	
८१	ओदण्ण भावेण पुणो असंजदो । २३५		९२	दिट्ठिप्पहुडि जाव सीणकसाय-	
८२	संजदासंजद-यमत्त-अप्यमत्त-		९३	चीदरागछुदुमत्ता चि ओधं ।	
८३	संजदा चि को भावो, सओव-		९४	असणि चि को भावो, ओदहओ	
८४	मभियो भावो ।		९५	भावो ।	
८५	सओत्तमियं सम्मत्तं ।		९६	आहाराणुवादेण आहारएसु	
८६	सओत्तमियं सम्मत्तं ।		९७	मिच्छादिहोप्पहुडि जाव सजोगि-	
८७	उनममयम्मादिहोसु अमंजद-		९८	केवल चि ओधं ।	२३८
८८	सम्मादिट्ठि चि को भावो, उव-		९९	अणाहराणं कम्महयभंगो ।	
८९	समिओ भावो ।		१००	णवरि विसेसो, अजोगिकेवलि	
९०	उत्तमियं सम्मत्तं ।		१०१	चि को भावो, सहओ भावो ।	
९१	ओदण्ण भावेण पुणो असंजदो । २३६				

अपावहुगपरूवणासुत्ताणि ।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
१	अपावहुआणुगमेण दुविहो २ ओधेण तिसु अद्वासु उवसमा २४३		२	ओधेण तिसु अद्वासु उवसमा २४३	
	निहेमो, ओधेण आदेसेण य । २४१			पवेसणेण तुल्ला योवा ।	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३	उवसंतकसायवीदरागछुदुमत्ता २४५		३२	खइयसम्मादिहो संसेज्जगुणा ।	२५८
४	तत्तिया चय ।		३३	वेदगसम्मादिहो संसेज्जगुणा ।	"
५	खवा संसेज्जगुणा ।	"	३४	एवं तिसु वि अद्वासु ।	"
६	सीणकसायवीदरागछुदुमत्ता त-		३५	सव्वत्थोवा उवसमा ।	२५९
७	तिया चय ।	२४६	३६	खवा संसेज्जगुणा ।	२६०
८	सजोगिकेवली अजोगिकेवली २४६		३७	आदेसेण गदियाणुवादेण गिरय-	
९	पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया २४६		३८	गदीए गेरइएसु सव्वत्थोवा	२६१
१०	चय ।	"	३९	सासणसम्मादिहो ।	
११	सजोगिकेवली अद्ध पडुच्च २४७		४०	सम्माभिच्छादिहो संसेज्जगुणा ।	"
१२	संसेज्जगुणा ।		४१	असंजदसम्मादिहो असंसेज्ज-	२६२
१३	अप्यसत्तंसंजदा अवखा अणुव-		४२	गुणा ।	
१४	समा संसेज्जगुणा ।	"	४३	मिच्छादिहो असंसेज्जगुणा ।	"
१५	पमत्तंसंजदा संसेज्जगुणा ।	२४८	४४	असंजदसम्मादिहो सव्व-	२६३
१६	संजदासंजदा असंसेज्जगुणा ।	"	४५	तथोना उवसमसम्मादिहो ।	
१७	सासणसम्मादिहो असंसेज्जगुणा ।	२५०	४६	खइयसम्मादिहो असंसेज्ज-	"
१८	सम्माभिच्छादिहो संसेज्जगुणा ।		४७	गुणा ।	
१९	असंजदसम्मादिहो असंसेज्ज-		४८	वेदगसम्मादिहो असंसेज्जगुणा ।	२६४
२०	गुणा ।	२५१	४९	एवं पढमाए पुढवीए गेरइया ।	"
२१	मिच्छादिहो अणंतगुणा ।	२५२	५०	विदियाए जाव सत्तमाए पुढवीए	
२२	असंजदसम्मादिहो सव्व-		५१	गेरइएसु सव्वत्थोवा सासण-	२६५
२३	तथोवा उवसमयम्मादिहो ।	२५३	५२	सम्मादिहो ।	
२४	सहयसम्मादिहो असंसेज्जगुणा ।	"	५३	सम्माभिच्छादिहो संसेज्जगुणा ।	"
२५	वेदगसम्मादिहो असंसेज्जगुणा ।	२५६	५४	असंजदसम्मादिहो असंसेज्ज-	२६६
२६	संजदासंजदगुणे सव्वत्थोवा २५७		५५	गुणा ।	
२७	सहयसम्मादिहो ।	"	५६	मिच्छादिहो असंसेज्जगुणा ।	"
२८	उनमसम्मादिहो असंसेज्ज-		५७	असंजदसम्मादिहो असंसेज्ज-	२६७
२९	गुणा ।	२५७	५८	तथोवा उवसमसम्मादिहो ।	"
३०	वेदगसम्मादिहो असंसेज्जगुणा ।	"	५९	असंजदसम्मादिहो असंसेज्जगुणा ।	२६७
३१	पमत्तापमत्तंसंजदगुणे सव्व-		६०	वेदगसम्मादिहो असंसेज्जगुणा ।	"

सूत्र संख्या	सूत्र	परिशिष्ट	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
४१	तिरिक्त्तगदीए तिरिक्त्त-पंचि- दियतिरिक्त्त-पंचिदियपञ्जत्त- तिरिक्त्त-पंचिदियजोणिणिसु सन्वत्थोपा संजदासंजदा । २६८	५३ मणुसपदीए मणुस-मणुसपञ्जत्त- मणुसिणीसु तिसु अद्वासु उव- समा पयसणेण तुल्ला थोवा । २७३	२६८	५४	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तेत्तिया चैव ।	२७३
४२	सागणसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	५५ खा संखेज्जगुणा ।	२७४	५५	खोपा संखेज्जगुणा ।	२७४
४३	सम्मामिच्छादिट्ठो संखेज्ज- गुणा ।	५६ सीणकसायवीदरागछदुमत्था त- त्तिया चैव ।	२७४	५६	सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला, तत्तिया चैव ।	२७४
४४	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	५७ सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला, तत्तिया चैव ।	२६९	५७	अप्यमत्तसंजदा अक्सवा अनु- वसमा संखेज्जगुणा ।	२७५
४५	मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा, मिच्छा- दिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	५८ सजोगिकेवली अंद् पडुच्च संखेज्जगुणा ।	२७०	५८	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	२७५
४६	असंजदसम्मादिट्ठिद्वारे सन्व- त्थोपा उवसमसम्मादिट्ठी ।	५९ अप्यमत्तसंजदा अक्सवा अनु- वसमा संखेज्जगुणा ।	२७०	५९	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	२७५
४७	सइयसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	६० पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	२७१	६०	संजदासंजदा संखेज्जगुणा ।	२७५
४८	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	६१ सागणसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७१	६१	सागणसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७५
४९	संजदासंजदद्वारे सन्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	६२ सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७२	६२	सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७५
५०	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	६३ सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७२	६३	असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७५
५१	गवरि विमयो, पंचिदिय- तिरिक्त्तजोणिणिसु असंजद- सम्मामिच्छादिट्ठिद्वारे सन्व- त्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	६४ असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७२	६४	मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा, मिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७५
५२	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	६५ मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा, मिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७२	६५	असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७५
५३	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	६६ असंजदसम्मादिट्ठिद्वारे सन्व- त्थोपा उवसमसम्मादिट्ठी ।	२७२	६६	त्योपा उवसमसम्मादिट्ठी ।	२७५
५४	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	६७ सइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७२	६७	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७५
५५	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	६८ वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७२	६८	संजदासंजदद्वारे सन्वत्थोवा सइयसम्मादिट्ठी ।	२७५
५६	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	६९ संजदासंजदद्वारे सन्वत्थोवा सइयसम्मादिट्ठी ।	२७२	६९	उवसमसम्मादिट्ठी ।	२७५
५७	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	७० उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७२	७०	उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७५

(२४)	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	७१	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७७	८९	सोहम्मीसाण जाव सदर-सह- स्सारकप्पवासियदेवेषु जहा देवगइभंगो ।	२८२
	७२	पमत्त-अप्यमत्तसंजदद्वारे सन्व- त्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	२७८	९०	आणद जाव गवगेवज्जविमाण- वासियदेवेषु सन्वत्थोवा सागणसम्मादिट्ठी ।	३८३
	७३	खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७८	९१	सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्ज- गुणा ।	३८३
	७४	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७८	९२	मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	३८३
	७५	गवरि विमयो, मणुसिणीसु असंजद-संजदासंजद-पमत्तापमत्त- संजदद्वारे सन्वत्थोवा खइय- सम्मादिट्ठी ।	२७९	९३	असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	३८३
	७६	उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७९	९४	असंजदसम्मादिट्ठिद्वारे सन्व- त्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	२८४
	७७	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७९	९५	सइयसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	२८४
	७८	एवं तिसु अद्वासु ।	२७९	९६	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२८५
	७९	सन्वत्थोवा उवसमा ।	२८०	९७	अणुदिसादि जाव अवराइद- विमाणवासियदेवेषु असंजद- सम्मामिच्छादिट्ठिद्वारे सन्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	२८५
	८०	खा संखेज्जगुणा ।	२८०	९८	खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	२८५
	८१	देवगदीए देवेषु सन्वत्थोवा सागणसम्मादिट्ठी ।	२८०	९९	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२८५
	८२	सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२८०	१००	सन्वत्ठिसिद्धिमाणवासियदेवेषु असंजदसम्मादिट्ठिद्वारे सन्व- त्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	२८६
	८३	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्ज- गुणा ।	२८०	१०१	सइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२८६
	८४	मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	२८०	१०२	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२८६
	८५	असंजदसम्मादिट्ठिद्वारे सन्व- त्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	२८१	१०३	इंदियाणुवोदेण पंचिदिय-पंचि- दियपञ्जत्तएसु ओंघ । गवरि मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	२८८
	८६	खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	२८१			
	८७	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	२८१			
	८८	भवणवासिय-चाणवत्तर-जोदि- सियदेवा देवीओ सोधम्मीसाण- कप्पवासियदेवीओ च सत्तमाए पुढवीए भंगो ।	२८१			

मूल मन्त्रा	मूल	परिशिष्ट	(२५)
मूल मन्त्रा	मूल	पृष्ठ सूत्र संख्या	पृष्ठ
१०४ तायाणुपदेन तमसाहय तम- साहयपञ्चतमसु ओषं । ननरि मिच्छादिद्वी अमरेज्जगुणा । २८९		मंजद--पमसापमत्तसंजदद्विणे मम्मत्तपात्रद्विभोषं ।	२९३
१०५ जोगाणुपदेन पंचमणजोगि- पचन्निजोगि--कायजोगि- ओगालियतायजोगीसु तीसु अद्रासु पवेसणेण तुल्ला थोवा । २९०		११९ एवं तिसु अद्रासु । १२० मव्वत्थोवा उवमसा । १२१ खवा संसेज्जगुणा । १२२ ओगालियमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवा मजोगिकेवली	२९४ " " "
१०६ उपमंतकमायपीदरागल्लदुमत्था तेसिया चेत्त ।		१२३ असंजदसम्मादिद्वी संसेज्ज- गुणा ।	"
१०७ मात्त संसेज्जगुणा ।		१२४ सामणसम्मादिद्वी असंसेज्ज- गुणा ।	"
१०८ गीणकसायपीदरागल्लदुमत्था तेसिया चेत्त । २९१		१२५ मिच्छादिद्वी अणंतगुणा । १२६ अमंजदमम्माद्विद्विद्विणे सव्व- त्थोवा सइयसम्मादिद्वी ।	२९५ " "
११० मजोगिहेत्तली पायणेण तत्तिया चेत्त ।		१२७ वेदगसम्मादिद्वी संसेज्जगुणा । १२८ वेज्जियकायजोगीसु देवगदि- भंगो ।	" " "
१११ सजोगिहेत्तली अदं पडुच्च संसेज्जगुणा ।		१२९ वेज्जियमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवा सासनमम्मादिद्वी । २९६	"
११२ अपमत्तमंजदा अरुत्ता अणु- ममसा संसेज्जगुणा ।		१३० असंजदसम्मादिद्वी संसेज्ज- गुणा ।	"
११३ ममत्तमंजदा संसेज्जगुणा । २९२		१३१ मिच्छादिद्वी असंसेज्जगुणा । १३२ असंजदसम्मादिद्विद्विद्विणे सव्व- त्थोवा उवसमसम्मादिद्वी । २९७	" " "
११४ सामणमम्मादिद्वी असंसेज्ज- गुणा ।		१३३ सइयसम्मादिद्वी संसेज्जगुणा । १३४ वेदगसम्मादिद्वी असंसेज्ज- गुणा ।	" " "
११५ मम्मामिच्छादिद्वी संसेज्ज- गुणा ।		१५० सम्मामिच्छादिद्वी संसेज्ज- गुणा ।	"
११६ अमंजदमम्मादिद्वी अमंसेज्ज- गुणा ।		१५१ असंजदमम्मादिद्वी असंसेज्ज- गुणा ।	"
११७ मिच्छादिद्वी असंसेज्जगुणा, मिच्छादिद्वी अणंतगुणा । २९३		१५१ आहारकायजोगि-आहारमिस्स-	"
११८ अमंजदसम्मादिद्वि--संजदा--			"

(२६)	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ	सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
		कायजोगीसु पमत्तसंजदद्विणे सव्वत्थोवा सइयसम्मादिद्वी । २९७		१५२ मिच्छादिद्वी असंसेज्जगुणा । ३०२		
१३६ वेदगसम्मादिद्वी संसेज्जगुणा । २९८		१३७ रुम्मइयकायजोगीसु सव्व- त्थोवा सजोगिकेवली ।		१५३ असंजदसम्मादिद्वि-संजदासंजद- द्विणे सव्वत्थोवा सइयसम्मा- दिद्वी ।		"
१३८ सासनसम्मादिद्वी असंसेज्ज- गुणा ।		१३९ असंजदसम्मादिद्वी असंसेज्ज- गुणा ।		१५४ उवसमसम्मादिद्वी असंसेज्ज- गुणा ।		३०३
१३९ असंजदसम्मादिद्वी असंसेज्ज- गुणा ।		१४० मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ।	२९९	१५५ वेदगसम्मादिद्वी असंसेज्ज- गुणा ।		"
१४० असंजदसम्मादिद्विद्विद्विणे सव्व- त्थोवा उवसमसम्मादिद्वी ।		१४१ असंजदसम्मादिद्विद्विद्विणे सव्व- त्थोवा उवसमसम्मादिद्वी ।	"	१५६ पमत्त-अप्पमत्तसंजदद्विणे सव्व- त्थोवा सइयसम्मादिद्वी ।		"
१४२ सइयमम्मादिद्वी संसेज्जगुणा ।		१४३ वेदगसम्मादिद्वी असंसेज्ज- गुणा ।	"	१५७ उवसमसम्मादिद्वी संसेज्जगुणा ।		"
१४३ वेदगसम्मादिद्वी असंसेज्ज- गुणा ।	३००	१४४ वेदगसम्मादिद्वी असंसेज्ज- गुणा ।	"	१५८ वेदगसम्मादिद्वी संसेज्ज- गुणा ।		"
१४४ वेदगसम्मादिद्वी असंसेज्जगुणा वि अद्रासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।		१४५ खवा संसेज्जगुणा । ३०१	"	१५९ एवं दोसु अद्रासु ।		"
१४५ खवा संसेज्जगुणा ।	३०१	१४६ अपमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संसेज्जगुणा ।	"	१६० सव्वत्थोवा उवसमा ।		३०४
१४६ अपमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संसेज्जगुणा ।	"	१४७ पमत्तमंजदा संसेज्जगुणा ।	"	१६१ खवा संसेज्जगुणा ।		"
१४७ पमत्तमंजदा संसेज्जगुणा ।	"	१४८ संजदासंजदा असंसेज्जगुणा ।	"	१६२ पुरिसवेदएसु दोसु अद्रासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।		"
१४८ संजदासंजदा असंसेज्जगुणा ।	"	१४९ सासनसम्मादिद्वी असंसेज्ज- गुणा ।	"	१६३ खवा संसेज्जगुणा ।		"
१४९ सासनसम्मादिद्वी असंसेज्ज- गुणा ।	"	१५० सम्मामिच्छादिद्वी संसेज्ज- गुणा ।	३०२	१६४ अपमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संसेज्जगुणा । ३०५		"
१५० सम्मामिच्छादिद्वी संसेज्ज- गुणा ।	३०२	१५१ असंजदमम्मादिद्वी असंसेज्ज- गुणा ।	"	१६५ पमत्तसंजदा संसेज्जगुणा ।		"
१५१ असंजदमम्मादिद्वी असंसेज्ज- गुणा ।	"	१६९ असंजदसम्मादिद्वी असंसेज्ज- गुणा ।	"	१६६ संजदासंजदा असंसेज्जगुणा ।		"

पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ संख्या	सूत्र	परिशिष्ट	(२७)	पृष्ठ
३०६	गुणा ।	गुणा ।	गुणा ।	३१०	३१०	३१०
१७०	मिच्छादिद्वी असंखेज्जगुणा ।	१८७	वेदगसम्मादिद्वी संखेज्जगुणा ।	३१०	३१०	३१०
१७१	अंगजदमम्मादिद्वि-संजदा- मंजद-पमत्त-अप्पमत्तमंजदद्विगणे सम्मत्तप्पावहुअमोघं ।	१८८	एवं दोसु अद्वासु ।	३१०	३१०	३१०
१७२	एवं दोसु अद्वासु ।	१८९	संवत्थोमा उवसमा ।	३१०	३१०	३१०
१७३	मज्जन्योमा उवसमा ।	१९०	सखा संखेज्जगुणा ।	३१०	३१०	३१०
१७४	सखा संखेज्जगुणा ।	१९१	अवगदेवदएसु दोसु अद्वासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	३११	३११	३११
१७५	उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	१९२	उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	३११	३११	३११
१७६	उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	१९३	उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	३११	३११	३११
१७७	उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	१९४	उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	३११	३११	३११
१७८	उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	१९५	उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	३११	३११	३११
१७९	उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	१९६	उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	३११	३११	३११
१८०	उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	१९७	उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	३११	३११	३११
१८१	उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	१९८	उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	३११	३११	३११
१८२	उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	१९९	उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	३११	३११	३११
१८३	उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	२००	उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	३११	३११	३११
१८४	उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	२०१	उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	३११	३११	३११
१८५	उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	२०२	उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	३११	३११	३११

(२८) अप्पावहुगपरुक्कणासुत्ताणि

पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२०३	संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ।	३१४	२०४	सासणसम्मादिद्वी असंखेज्ज- गुणा ।	३१४	३१४
२०५	सम्माभिच्छादिद्वी संखेज्ज- गुणा ।	३१४	२०६	असंजदसम्मादिद्वी असंखेज्ज- गुणा ।	३१४	३१४
२०७	मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ।	३१४	२०८	असंजदसम्मादिद्वि-संजदा- संजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजद- द्विगणे सम्मत्तप्पावहुअमोघं ।	३१५	३१५
२०९	एवं दोसु अद्वासु ।	३१५	२१०	संवत्थोमा उवसमा ।	३१५	३१५
२११	सखा संखेज्जगुणा ।	३१५	२१२	अकसाईसु संवत्थोमा उवसं- कसायवीदरागछदुमत्था ।	३१५	३१५
२१३	खीणकसायवीदरागछदुमत्था संखेज्जगुणा ।	३१५	२१४	सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव ।	३१५	३१५
२१५	सजोगिकेवली अंद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ।	३१५	२१६	णाणायुवादेण मदिअण्णाणि- सुदअण्णाणि-विभंगणाणीसु संवत्थोमा सासणसम्मादिद्वी ।	३१५	३१५
२१७	मिच्छादिद्वी अणंतगुणा ।	३१५	२१८	आभिणिनोदिय-सुद-ओधिणा-	३१५	३१५

